श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश कृत
तन्त्रसारः

वाराणसीं तान्त्रिक टेक्स्ट् सिरीज नं० ३

साधकचूडामणि श्रीमत् कृष्णानन्द आगमवागीश कृत

बृहत् तन्त्रसारः

राम कुमार राय

द्वारा

सम्पादित एवं लिप्यन्तरित

प्राच्य प्रकाशन

जगतगंज, वाराणसी-२२१ ००२

प्रथम बार १९८५

प्रकाशक :

प्राच्य प्रकाशन

७४-ए, जगतगंज

वाराणसी - २२१००२ (भारत)

मूल्य १००.०० रुपये
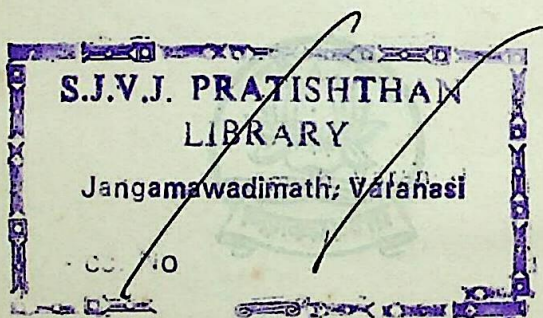
मुद्रक :

अनूप प्रिन्टिंग वर्क्स, जगतगंज, वाराणसी

VARANASI TANTRIC TEXTS SERIES
No. 3

Brihat Tantrasara

by

Sadhaka Chudamani

Krishnanand Agamavagish

Edited and Rendered into Devanagari Script
by
RAM KUMAR RAI

Prachya Prakashan
Varanasi-221002
1985

First Edition : 1985

PRACHYA PRAKASHAN
74-A, Jagatganj
VARANASI—221002 (INDIA)
Phone : 53252

Price Rs. 100.00

Printed by P. K. Rai at the Anoop Printing Works, Varanasi, and Published by Rakesh Rai for Prachya Prakashan, Varanasi.

सूचीपत्रम्

प्रकाशकीय निवेदन

प्रधानतः तन्त्रशास्त्र के तीन भेद हैं : आगम, यामल और तन्त्र।

सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा का साधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन, और चार प्रकार का ध्यानयोग—जिसमें ये सात प्रकार के लक्षण हों उसको आगम कहते हैं।

सृष्टितत्त्व, ज्योतिष का वर्णन, नित्यकर्म, क्रमसूत्र, वर्णभेद, जातिभेद और युगधर्म—यह आठ यामल के लक्षण हैं।

सृष्टि, लय, मन्त्रनिर्णय, देवताओं का संस्थान, तीर्थवर्णन, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान, भूतादि-संस्थान, यन्त्रनिर्णय, देवताओं की उत्पत्ति-वृक्षोत्पत्ति, कल्पवर्णन, ज्योतिषसंस्थान, पुराणाख्यान, कोषकथन, व्रतकथन, शौचाशौचवर्णन, स्त्री-पुरुष के लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार और आध्यात्मिक विषय का वर्णन इत्यादि लक्षणों का जिसमें समावेश हो उसको तन्त्र कहा जाता है।

सभी शास्त्रों की अपेक्षा तन्त्रशास्त्र श्रेष्ठ एवं प्रत्यक्ष फलप्रद है। मत्स्यसूक्त में इस शास्त्र की श्रेष्ठता का इन शब्दों में प्रतिपादन किया गया है :

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा। नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः॥ अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां राज्ञामिन्द्रो यथावरः। देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा। तथा समस्त शास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मतम्। कीर्तन देवदेवस्य हरस्य मतमेव च॥

इसी तन्त्रशास्त्र के प्रभाव से पूर्वकाल में मनुष्य, ऋषि, मुनि और देवताओं ने अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। निर्धन को धन, निःसन्तान को सन्तान, अज्ञानी को ज्ञान, रोगी को आरोग्य आदि सभी फल इसी शास्त्र के अधीन हैं। कलियुग में तो सिद्धियाँ और कामनायें केवल तन्त्रशास्त्र द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं।

कलियुग में तन्त्रशास्त्र की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में देवादिदेव श्री महादेव ने अपने श्रीमुख से महानिर्वाणतन्त्र में इस प्रकार कहा है :

'कलिकल्मषदीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि। मेध्यामेध्यविचाराणां

न शुद्धिः श्रौतकर्मणा। न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणाम्भवेत्। सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं समोच्यते। विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये। श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे। आगमोक्त विधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधीः॥ कलावागममुल्लंघ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्त्तते। न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः।'

उक्त तन्त्र में ही अन्यत्र पुनः इस प्रकार कहा गया है :

"कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः। शस्ताः सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु॥ निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव। सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव। पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः। अमूढशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥ अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म बन्ध्यास्त्रीसङ्गमो यथा। न तत्र फलसिद्धिः स्याच्छ्रम एव हि केवलम्॥ कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः। तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः।"

विभिन्न कर्मों के निमित्त श्रीमहादेव ने इस तन्त्रशास्त्र को भिन्न-भिन्न रूप से एवं भिन्न-भिन्न खण्डों में विभक्त किया है जिनका विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। कुछ प्रमुख तन्त्र ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं :

सिद्धीश्वरं महातन्त्रं कालीतन्त्रं कुलार्णवं। ज्ञानार्णवं नीलतन्त्रं फेत्कारीतन्त्रमुत्तमम्॥ देव्यागमं उत्तराख्यं श्रीक्रमं सिद्धियामलम्। मत्स्यसूक्तं सिद्धसारं सिद्धसारस्वतं तथा। वाराहीतन्त्रं देवेशि योगिनी तन्त्रमुत्तमम्। गणेशविमर्षिणी तन्त्रं नित्यातन्त्रं शिवागमम्॥ चामुण्डाख्यं महेशान मुण्डमालाख्यतन्त्रकं। हंसमाहेश्वरं तन्त्रं निरुत्तरमनुत्तमम्। कुलप्रकाशकं देवि कल्पं गन्धर्वकं शिवे। क्रियासारं निबन्धाद्याख्यं स्वतन्त्रतन्त्रमुत्तमम्॥ सम्मोहनं तन्त्रराजं ललिताख्यं तथा शिवे। ताराख्यं मालिनीतन्त्रं रुद्रयामलमुत्तमम्॥ बृहत् श्रीक्रम तन्त्रञ्च गवाक्षं सुकुमुदिनी। विशुद्धेश्वरतन्त्रञ्च मालिनीविजयं तथा। समयाचारतन्त्रञ्च भैरवीतन्त्रमुत्तमम्। योगिनीहृदयं तन्त्रं भैरवं परमेश्वरि। सनत्कुमारकं तन्त्रं योनितन्त्रं प्रकीर्त्तितम्। तन्त्रान्तरञ्च देवेशि नवरत्नेश्वरं तथा। कुलचूडामणितन्त्रं भावचूडामणीयकम्। तन्त्रदेवप्रकाशञ्च कामाख्यानामकं तथा। कामधेनु कुमारी च भूतडामरसंज्ञकम्। मालिनीविजयं तन्त्रं यामलं ब्रह्मयामलं। विश्वसारं महातन्त्रं महाकालं कुलामृतम्।

कुलोड्डीशं कुब्जिकाख्यं यन्त्रचिन्तामणीयकम् । एतानि तन्त्ररत्नानि सकलानि युगे युग ॥

आगम तत्त्व विलास में ६४ तन्त्रों के ये नाम मिलते हैं : स्वतन्त्र तन्त्र, फेत्कारिणी तन्त्र, उत्तर तन्त्र, नीलतन्त्र, वीरतन्त्र, कुमारीतन्त्र, कालीतन्त्र, नारायणीतन्त्र, तारिणीतन्त्र, बालातन्त्र, समयाचार तन्त्र, भैरवतन्त्र, भैरवीतन्त्र, त्रिपुरातन्त्र, वासकेश्वर तन्त्र, कुटकुटेश्वर तन्त्र, मातृकातन्त्र, सनत्कुमार तन्त्र, विशुद्धेश्वर तन्त्र, सम्मोहन तन्त्र, गौतमीयतन्त्र, बृहद्गौतमीय तन्त्र, भूतभैरवतन्त्र, चामुण्डातन्त्र, पिङ्गलातन्त्र, वाराही तन्त्र, मुण्डमाला तन्त्र, योगिनीतन्त्र, मालीनीविजय तन्त्र, स्वच्छन्दभैरव तन्त्र, महातन्त्र, शक्तितन्त्र, चिन्तामणि तन्त्र, उन्मत्तभैरव तन्त्र, त्रैलोक्यसार तन्त्र, विश्वसारतन्त्र, तन्त्रामृत, महाफेत्कारिणी तन्त्र, बारवीय तन्त्र, तोडलतन्त्र, मालिनीतन्त्र, ललितातन्त्र, त्रिशक्तितन्त्र, राजराजेश्वरी तन्त्र, महामाहेश्वरोत्तर तन्त्र, गवाक्षतन्त्र, गान्धर्वतन्त्र, त्रैलोक्यमोहन तन्त्र, हंसपारमेश्वर तन्त्र, हंसमाहेश्वर तन्त्र, कामधेनु तन्त्र, वर्णविलास, मायातन्त्र, मन्त्रराज, कुब्जिकातन्त्र, विज्ञानलतिका, लिङ्गागम, कालोत्तर, ब्रह्मयामल, आदियामल, रुद्रयामल, बृहद्यामल, सिद्धयामल, और कल्पसूत्र ।

इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों में भी अनेक नाम मिलते हैं, यथा : मत्स्यसूक्त, कुलसूक्त, कामराज, शिवागम, उड्डीश, कुलोड्डीश, वीरभद्रोड्डीश, भूतडामर, डामर, यक्षडामर, कुलसर्वस्व, कालिकाकुलसर्वस्व, कुलचूडामणि, दिव्य, कुलसार, कुलार्णव, कुलामृत, कुलावली, कालीकुलार्णव, कुलप्रकाश, वासिष्ठ, सिद्धसारस्वत, योगिनीहृदय, करालीहृदय, मातृकार्णव, योगिनीजालकुरक, लक्ष्मीकुलार्णव, तारार्णव, चन्द्रपीठ, मेरुतन्त्र, चतुःशती, तत्त्वबोध, महोग्र, स्वच्छन्दसारसंग्रह, ताराप्रदीप, संकेत चन्द्रोदय, षट्त्रिंशत्तत्त्वक, लक्ष्यनिर्णय, त्रिपुरार्णव, विष्णुधर्मोत्तर, मन्त्रर्पण, वैष्णवामृत, मानसोल्लास, पूजाप्रदीप, भक्तिमञ्जरी, भुवनेश्वरी, पारिजात, प्रयोगसार, कामरत्न, क्रियासार, आगमदीपिका, भावचूडामणि, तन्त्रचूडामणि, बृहत् श्रीक्रम, श्रीक्रम सिद्धान्तशेखर गणेशविमर्षिनी, मन्त्रमुक्तावली, तत्वकौमुदी, तन्त्रकौमुदी, मन्त्रतन्त्रप्रकाश, रामार्चनचन्द्रिका, शारदातिलक, ज्ञानार्णव, सारसमुच्चय, कल्पद्रुम, ज्ञानमाला, पुरश्चरणचन्द्रिका, आगमोत्तर, तत्त्वसार, सारसंग्रह, देवप्रकाशिनी, तन्त्रार्णव, क्रमदीपिका, तारारहस्य, श्यामारहस्य, तन्त्ररत्न,

तन्त्रप्रदीप, ताराविलास, विश्वमातृका, प्रपञ्चसार, तन्त्रसार और रत्नावली।

इनके अतिरिक्त महासिद्धि सारस्वत में सिद्धीश्वर, नित्यतन्त्र देव्यागम, निबन्धतंत्र, राधातन्त्र, कामाख्यातन्त्र, महाकालतन्त्र, यन्त्रचिन्तामणि, कालीविलास और महाचीन तन्त्र का वर्णन भी पाया जाता है।

परन्तु इन तन्त्रग्रन्थों के नामोल्लेख तथा वाराही तन्त्र में इनकी श्लोक संस्थाओं तक के उल्लेख के विपरीत आज प्रायः अधिकांश तन्त्र-या तो पूर्णतः अथवा अंशतः लुप्त हो गये हैं। ऐसी परिस्थिति में साधक-चूडामणि श्रीकृष्णानन्द आगमवागीश कृत 'वृहत् तन्त्रसारः' अपने नाम के अनुरूप ही सम्पूर्ण तन्त्र वाङ्मय का सर्व प्रभाणिक सार प्रस्तुत करता है। अब तक मात्र वङ्गाक्षरों में प्रकाशित इस विशाल ग्रन्थ को विद्वानों ने कितना अधिक सम्मान दिया है उसका प्रमाण इसके सात वङ्गाक्षरी संस्करणों से ही स्पष्ट हो जाता है। तन्त्रशास्त्र के अनेक परवर्ती ग्रन्थों ने इस महाग्रन्थ को मुक्तरूप से उद्धृत किया है। मन्त्र महार्णव में इसके प्रचुर उद्धरण मिलते हैं।

इस ग्रन्थ में जितने देवी देवताओं की साधना-विधियों का उल्लेख है उतना अन्यत्र एकत्र कहीं नहीं मिलता। साथ ही अभिचार, षट्कर्म, वीरसाधन, शवसाधन आदि पर भी अत्यन्त विस्तार से वर्णन मिलता है। फिर भी आज तक इस ग्रन्थ का नागरी लिपि में संस्करण नहीं प्रकाशित हो सका था। अतः अनेक विद्वानों के आग्रह और परामर्श पर हम व्ययसाध्य होते हुए भी इस ग्रन्थ को नागरी लिपि में प्रस्तुत कर रहे हैं। मूल बङ्गाक्षरी संस्करण में जितने चक्र मिलते हैं उनमें भी मन्त्र आदि बङ्गाक्षर में ही हैं। अतः उन सभी चक्रों को हमने फिर से बनवाकर और उनके मन्त्रों को भी देवनागरी में लिखवाकर यहाँ प्रस्तुत किया है।

अब ग्रन्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। हम अपनी सीमाओं से परिचित हैं। अतः पाठकों से निवेदन है कि यदि ग्रन्थ में कोई कमी रह गई हो तो उसके सम्बन्ध में अपने परामर्श से हमारा मार्गदर्शन करें जिससे अगले संस्करणों में हम यथोचित परिष्कार कर सकें।

बृहत् तन्त्रसारः

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वृहत् तन्त्रसारः

प्रथमः परिच्छेदः

अथ मङ्गलाचरणं ग्रन्थसूचना च

नत्वा कृष्णपदद्वन्द्वं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्। गुरुञ्च ज्ञानदातारं कृष्णानन्देन धीमता ॥ १ ॥ तत्तद्ग्रन्थगताद्वाक्यान्नानार्थं प्रतिपद्य च। सौकर्यार्थञ्च संक्षेपात्तन्त्रसारः प्रतन्यते। उच्यते प्रथमं तन्त्र लक्षणं गुरुशिष्ययोः ॥ २ ॥

अथ गुरुलक्षणम् :

शान्तोदान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान्। शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् ॥ ३ ॥ आश्रमी ध्याननिष्ठश्च तन्त्रमन्त्रविशारदः। निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ॥ ४ ॥

आगमसंहितायाम् : उद्धर्त्तुंश्चैव संहर्त्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः। तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते ॥ ५ ॥

अथ गुरुमाहात्म्यम् :

ज्ञानार्णवे : गुरौ मानुषबुद्धिन्तु मन्त्रे चाक्षरबुद्धिकम्। प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ ६ ॥ जन्म हेतु हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः। गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः ॥ ७ ॥ गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः। शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥ ८ ॥ गुरोर्हितं प्रकर्त्तव्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः। अहिताचरणाद्देवि! विष्ठायां जायते क्रिमिः ॥ ९ ॥ शरीरदः पिता देवि! ज्ञानदो गुरुरेव च।

गुरोर्गुरुतरो नास्ति संसारे दुःखसागरे ॥ १० ॥ यस्य वक्त्राद्विनिर्यातं पूर्णब्रह्ममयं वपुः । तारयेन्नात्र सन्देहो नरकार्णवतो ध्रुवम् ॥ ११ ॥ मन्त्रत्यागाद्भवेन् मृत्युर्गुरुत्यागाद्दरिद्रता । गुरुमन्त्रपरित्यागाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १२ ॥ गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यदेवताः । स याति नरकं घोरं सा पूजा विफला भवेत् ॥ १३ ॥

श्रीक्रमे : उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता । तस्यान्मन्ये-त्सततं पितुरप्यधिकं गुरुम् ॥ १४ ॥ गुरुवद् गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु । गुरुवत्पूजनं कार्यं तोषणं वाक्यपालनम् ॥ १५ ॥ गुरुवद्भजनं कार्यं सर्वदा गुरुसन्ततौ ॥ १६ ॥

निगमकल्पद्रुमे : अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव च दैवतम् । अमार्गस्थोऽपि मार्गस्थो गुरुरेव सदागतिः ॥ १७ ॥ आयान्तमग्रतो गच्छेद्गच्छन्तं तमनुव्रजेत् । आसने शयने वाऽपि न तिष्ठेदग्रतो गुरोः ॥ १८ ॥ अनुज्ञां प्राप्य तिष्ठेत्तु नैवं शापमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

तथा क्रियासारे : गुरुर्माता पिता स्वामी बान्धवाः सुहृदः शिवः । इत्याधाय मनोनित्यं भजेत् सर्वात्मना गुरुम् ॥ २० ॥

अथ निन्द्यगुरुलक्षणम् :

क्रियासार समुच्चये : श्वित्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः । कुनखी श्यावदन्तश्च स्त्रीजितश्चाधिकाङ्गकः ॥ २१ ॥ हीनाङ्गः कपटी रोगी बह्वाशी बहुजल्पकः । एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तो (विहीनः पाठान्तरम्) यः स गुरुः शिष्यसम्मतः ॥ २२ ॥

यामले : अभिशप्तमपुत्रश्च कदर्यं कितवं तथा । क्रियाहीनं शठश्चापि वामनं गुरुनिन्दकम् ॥ २३ ॥ जलरक्तविकारश्च वर्जयेन्मतिमान् सदा । सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं तन्त्रेण वर्जयेत् ॥ २४ ॥

वैशम्पायन संहिताम् : अपुत्रोमृतपुत्रश्च कुण्ठी च वामनस्तथा । इत्याद्यपि बोध्यमिति ॥ २५ ॥

अथ शिष्यलक्षणम् :

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणाक्षमः । समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो यतिः । एवमादि गुणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा ॥२६॥ अन्यच्चः पुण्यवान् धार्मिकः शुद्धो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । शिष्य योग्यो भवेत् सो हि दानध्यानपरायणः ॥ २७ ॥

अथ निषिद्ध शिष्यलक्षणम् :

पापिने क्रूरचेष्टाय शठाय कृपणाय च। दीनायाचारशून्याय यन्त्र-द्वेषपराय च ॥ २८ ॥ निन्दकाय च मूर्खाय तीर्थद्वेषपराय च। गुरुभक्ति-विहीनाय न देया मलिनाय च ॥ २९ ॥

आगमसारे : अलसा मलिनाः क्लिन्ना दाम्भिकाः कृपणास्तथा। दरिद्रा रोगिणो रुष्टा रागिणो भोगलालसाः ॥ ३० ॥ असूयमत्सरग्रस्ताः सदा परुषवादिनः। अन्यायोपार्जितधनाः परदाररताश्च ये ॥ ३१ ॥ विदुषां वैरिणश्चैव त्याज्याः पण्डितमानिनः। भ्रष्टाचाराश्च ये कष्टवृत्तयः पिशुनाः खलाः ॥ ३२ ॥ बह्वाशिनः क्रूरचेष्टा दुरात्मनश्च निन्दिताः। इत्येवमादयोऽन्येपि पापिष्ठाः पुरुषाधमाः। एवंभूताः परित्याज्याः शिष्यत्वेनोपकल्पिताः ॥ ३३ ॥

अथ गुरुताशिष्यताविधिः गुरुसन्निधौ कर्त्तव्याकर्त्तव्यनिरूपणञ्च :

गुरुता शिष्यता वापि तयोर्वत्सरवासतः ॥ ३४ ॥

तथा चोक्तं सारसंग्रहे : सद्गुरुः स्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत् (प्रतीक्षयेत्) ॥ ३५ ॥ स्वप्ने तु न कालनियमः। स्वप्ने तू नियमो न हीति नारदवचनात् ॥ ३६ ॥

तत्रैव : राज्ञि चामात्यजो दोषः पत्नीपापं स्वभर्त्तरि। तथा शिष्या-र्ज्जितं पापं गुरुः प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ३७ ॥ वर्षैकेण भवेद्योग्यो विप्रो गुणसमन्वितः। वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः। चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता ॥ ३८ ॥

ताराप्रदीपे : आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत्सुधीः। न हि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्य विधानतः ॥ ३९ ॥

तथा : कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात् त्रेतायां स्मृतिसम्भवः। द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः ॥ ४० ॥ अशुद्धाः शूद्रकर्माणो ब्राह्मणाः कलिसम्भवाः। तेषामागममार्गेण सिद्धिर्न श्रौतवर्त्मना ॥ ४१ ॥ मन्त्रर्णा देवता ज्ञेया देवता गुरुरूपिणी। तेषां भिदा न कर्त्तव्या यदीच्छेच्छुभ-मात्मनः ॥ ४२ ॥

देव्यागमे शिववाक्यम् : गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानत्पीठकम्। स्नानोदकं तथाच्छायां लङ्घनं नैव कारयेत् ॥ ४३ ॥ गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यञ्च विवर्जयेत्। दीक्षाव्याख्यां प्रभुत्वञ्च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥ ४४ ॥

रुद्रयामले : ऋणदानं तथादानं वस्तुनां क्रयविक्रयम् । न कुर्य्याद्गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूत्वा कदाचन ॥ ४५ ॥

अथ गुरुशब्दार्थः :

तन्त्रार्णवे : गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्यदाहकः । उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा: गुरुः परः ॥ ४६ ॥ गकाराज्ज्ञानसम्पत्ति रेफः पापस्य दाहकः । उकाराच्छिवतादात्म्यं दद्यादिति गुरुः स्मृतः ॥ ४७ ॥ गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः । अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥ ४८ ॥

अथ आश्रमादिभेदेन गुरुनिर्णयः दूरत्वादूरत्वभेदेन गुरुं प्रति कर्त्तव्यश्च :

कुलचुड़ामणौ : उदासीनो ह्युदासीनां वनस्थो वनवासिनः । यतीनाञ्च यतिः प्रोक्तो गृहस्थानां गुरुर्गृही ॥ ४९ ॥ वैष्णवे वैष्णवो ग्राह्यः शैवे शैवस्तथा पुनः । शक्तिके त्रितयं विद्यादीक्षास्वामी न संशयः ॥ ५० ॥ गुरुरपि गृहस्थ एव कुलार्णवे सर्वशास्त्रार्थवेत्ता च गृहस्थो गुरुरुच्यते ॥ ५१ ॥

तथा च कल्पे : कलत्रपुत्रवान् विप्रो दयालुः सर्वसम्मतः । दैवे पित्रेऽरिमित्रे च गृहस्थो देशिको भवेत् ॥ ५२ ॥

कुलचुड़ामणौ : पिता माता तथा भ्राता पितृव्यो मातुलस्तथा । येनोपदिष्टस्तन्त्रेऽस्मिन् तं गुरुं समुपासयेत् ॥ ५३ ॥ न च वालो न वृद्धश्च न खञ्जो न कृशस्तथा । इति हयशीर्षात् ॥ ५४ ॥

तथा च नित्यानन्दे : गुरुं न मर्त्यं बुध्येत् यदि बुध्येत तस्य तु । न कदाचिद्भवेत् सिद्धिर्न मन्त्रैर्देवपूजनैः ॥ ५५ ॥

तथा : एकाग्रमस्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद्गुरुम् । क्रोशमात्रस्थितो भूत्वा गुरुं प्रतिदिनं नमेत् ॥ ५६ ॥ अर्धयोजनतः शिष्यः प्रणमेत् पञ्चपर्वसु । एकयोजनमारभ्य योजन-द्वादशावधि । दूर-देशस्थितः शिष्यो भक्त्या तत्सन्निधिं गतः । तत्र योजनसंख्योक्तमासेन प्रणमेद् गुरुम् ॥ ५७ ॥ यदि दूरे च चार्वाङ्गि ! स्वगुरोर्नगरं भवेत् । वर्षे वर्षे च कर्त्तव्यं गुरोश्चरणवन्दनम् ॥ ५८ ॥ एतच्च एकधा दक्षिणायने एकधा उत्तरायणे कर्त्तव्यम् ॥ ५९ ॥

अथ पित्रादितो दीक्षानिषेधः :

योगिनीतन्त्रे : पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात् तथा मातामहस्य च । सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य वा ॥ ६० ॥

गणेश - विमर्षिण्याम् : यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः। विविक्ताश्रमिणो दीक्षा न सा कल्याणदायिका ॥ ६१ ॥

रुद्रयामले : न पत्नीं दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम्। न पुत्रश्च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत् ॥६२॥ सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत्। शक्तित्वेन वरारोहे ! न च सा पुत्रिका भवेत् ॥ इत्यादि-निषेधवचनादेभ्यो मन्त्रं न गृह्णीयात् इत्यर्थः इदन्तु सिद्धेतर-विषयम्। सिद्धमन्त्रे न दूष्यतीति वचनात् ॥ ६३ ॥

यतेरपि दीक्षोक्ता शक्तियामले : तीर्थाचारयुतो मन्त्री ज्ञानवान् सुसमाहितः। नित्यनिष्ठो यतिः ख्यातो गुरुः स्याद्भौतिकेऽपि च ॥६४॥

तथा च सिद्धयामले : यदि भाग्यवशेनैव सिद्धिविद्यां लभेत् प्रिये। तदैव तान्तु दीक्षेत त्यक्त्वा गुरुविचारणम् ॥ ६५ ॥

तथा : प्रमादाच्च तथाऽज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरेत्। प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा सुनेर्दीक्षां (पुनर्दीक्षां) समाचरेत् ॥ पितुरित्युपलक्षणम् तथा मातामहादीनामपि। प्रायश्चित्तन्तु अयुतसावित्रीजपः सर्वत्र दर्शनात् ॥ ६६ ॥

शङ्खः : दशसाहस्रयजापेन सर्वकल्मषनाशिनी ॥ ६७ ॥

तथा मत्स्यसूक्ते : निर्वीर्यश्च पितुर्मन्त्रं शैवे शाक्ते न दूष्यतीति वचनं कौलिकमन्त्रदीक्षापरम् ॥

अत्र हेतुः योगिनीतन्त्रे : शक्त्यादिविद्यामधिकृत्य दीक्षानिषेधात् (तथा च विष्णुमन्त्रस्तु पित्रादिभ्यो गृहीतव्यः इत्यर्थः) यद्वा शाक्ते तारादिविद्याया मत्स्यसूक्ते तामधिकृत्य तथाप्रतिपादनात्। तथा च निजकुलतिलकाय ज्येष्ठपुत्राय दद्यादित्यादि ॥ ६८ ॥

श्रीक्रमेऽपि : मनुर्विमृष्य दातव्यो ज्येष्ठपुत्राय धीमते। महातीर्थं उपरागे सति सर्वत्र न दोषः ॥ ६९ ॥

तथा च विष्णुमन्त्रमधिकृत्य : साधु पृष्टं त्वया विप्र वक्ष्यामि सकलन्तव। ब्रह्मणा कथितं पूर्वं वसिष्ठाय महात्मने ॥ ७० ॥ वसिष्ठोऽपि स्वपुत्राय सत्पित्रे दत्तवान स्वयम्। प्रसन्नहृदयः स्वच्छः पिता मे करुणानिधिः ॥ ७१ ॥ कुरुक्षेत्रे महातीर्थे सूर्यपर्वणि दत्तवान्। इत्यादि वैशम्पायनसंहितायां शौनकं प्रति व्यासवचनम् ॥ ७२ ॥

योगिनीतन्त्रे : निर्वीर्यश्च पितुर्मन्त्रं तथा मातामहस्य च। स्वप्नलब्धं स्त्रियादत्तं संस्कारेणैव शुध्यति ॥ ७३ ॥

यत्तु : साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया। सर्वमन्त्रार्थ-तत्त्वज्ञा सुशीला पूजने रता। गुरुयोग्या भवेत् सा हि विधवा परि-वर्जिता। स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणाः स्मृताः ॥ इदन्तु गुरोरुपासितमन्त्रपरम् ॥ ७४ ॥

तथा भैरवीतन्त्रे : स्त्रीयमन्त्रोपदेशे तुन कुर्याद्गुरुचिन्तनम् ॥ ७५ ॥ मातुरित्युपासितेऽष्टगुणम्। अनुपासिते शुभफलदमित्यर्थः। सिद्धमन्त्र-विषयं वा इति केचित्। वस्तुतस्तु योगिनीतन्त्रे स्त्रीपदं विधवापरं एकवाक्यताबलात् ॥७६॥ विधवायाः सुतादेशात् कन्यायाः पितुराज्ञया। नाधिकारो यतो नार्य्याः सधवा भर्त्तुराज्ञया। नाधिकार इति स्वातन्त्र्ये-णाधिकारस्य ॥ ७७ ॥ स्त्रीणां गर्भवतीनाञ्च दीक्षायां नैव दूषणम्। न कुर्य्याद्दशमे मासि कृत्वा च नारकी भवेत् ॥ ७८ ॥

स्वप्नलब्धमन्त्रे यदि सद्गुरुं प्राप्नोति तदा तत एव तन्मन्त्रं गृह्णीयात्, नचेत् जलपूर्णकलसे गुरोः प्राणप्रतिष्ठां विधाय वटपत्रे कुंकुमेन लिखितं मन्त्रं तत्कलसे प्रक्षिप्य उत्तोल्य मन्त्रं गृह्णीयादित्यर्थः ॥७९॥

तथा हि : स्वप्नलब्धे च कलसे गुरोः प्राणान निवेशयेत्। वटपत्रे कुंकुमेन लिखित्वा ग्रहणे शुभम्। ततः सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा विफलं भवेत्। इदन्तु सद्गुरोरभावे तस्मादेव मन्त्रं गृह्णीयात्। स्वप्ने तु नियमो न हीति नारदवचनात्। तत्र सिद्धादिनियमो नास्ति ॥ ८० ॥

तथा विद्याधराचार्यधृतं जावालवचनम् : मध्यदेशकुरुक्षेत्र-नट-कोङ्कणसम्भवाः। अन्तर्वेदिप्रतिष्ठाना आवन्त्याश्च गुरूत्तमाः ॥ मध्यदेश आर्यावर्त्तः ॥ ८१ ॥ गौडाः शाल्वाः सुराश्चैव मागधाः केरलास्तथा। कोशलाश्च दशार्णाश्च गुरवः सप्त मध्यमाः। कर्णाटनर्मदा-राष्ट्रकच्छ-तीरोद्भवास्तथा। कालिन्दाश्च कलम्बाश्च काम्बोजाश्चाधमा मताः। ॥ ८२ ॥

अथ दीक्षाविचारादि-निर्णय :

दीक्षां विना जपस्य दुष्टत्वात् प्रथमं सा निरूप्यते। दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्य्यात्पापस्य संक्षयम्। तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्र-वेदिभिः ॥ ८३ ॥

अथ सर्वाश्रमेषु दीक्षाया आवश्यकत्वम् :

तथा च : दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परं तपः। दीक्षामाश्रित्य निवसेद्यत्र कुत्राश्रमे वसन् ॥ ८४ ॥ अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः

क्रियाः । न भवन्ति प्रिये ! तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥ ८५ ॥ देवि ! दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥ ८६ ॥ अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत् । अदीक्षितस्य मरणे पिशाचत्वं न मुञ्चति । तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन सदा कुर्वीत्तान्त्रिकात् ॥ ८७ ॥

तथा च नवरत्नेश्वरे : सर्वासामपि दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम् । अविरोधाद्भवन्त्येव प्रासङ्गिक्यस्तुभुक्तयः ॥ ८८ ॥ उपपातकलक्षाणि महापातककोटयः । क्षणाद्दहति देवेशि ! दीक्षा हि विधिना कृता ॥८९॥ कल्पे दृष्ट्वा तु मन्त्रं वै यो गृह्णाति नराधमः । मन्वन्तरसहस्रेषु निष्कृतिर्नैव जायते ॥ ९० ॥ नादीक्षितस्य कार्यं स्यात् तपोभिर्नियमव्रतैः । न तीर्थगमनेनाऽपि न च शरीरयन्त्रणैः ॥ ९१ ॥

मत्स्यसूक्ते : अदीक्षितानां मर्त्त्यानां दोषं शृणु वरानने ! । अन्नं विष्ठासमं तस्य जलं मूत्रसमं स्मृतम् ॥ ९२ ॥ तत्कृतं तस्य वा श्राद्धं सर्वं याति ह्यधोगगिम् ॥ ९३ ॥

ततः : सद्गुरोराहिता दीक्षा सर्वकर्माणि सोधयेत् ।

अथ शूद्रस्य निषिद्धमन्त्रा :

तन्त्रान्तरे : प्रणवाद्यं न दातव्यं मन्त्रं शूद्राय सर्वथा । आत्ममन्त्रं गुरोर्मन्त्रं मन्त्रञ्चाजपसंज्ञकम् ॥ ९४ ॥ स्वाहाप्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद्द्विजः । शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥ ९५ ॥

श्रुतिरपि : सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रो यदि जानीयात् स मृतोऽधोगच्छति ॥ ९६ ॥

विशेषमाह वाराहीये : गोपालस्य मनुर्देयो महेशस्य च पादजे । तत्पत्न्याश्चापि सूर्यस्य गणेशस्य मनुस्तथा । एषां दीक्षाधिकारी स्याद-न्यथा पापभाग्भवेत् ॥ ९७ ॥

अथ मन्त्राणां सिद्धादिविचार :

तत्राप्यनुकूलं मन्त्रं दीक्षयेत् । मननात्त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ९८ ॥

तथा च : स्वताराराशिकोष्ठानामनुकूलान् भजेन्मनून् ॥ ९९ ॥

सिद्धसारस्वते : नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रणवस्य च । सपिण्डाक्षरमन्त्राणां सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥ १०० ।

वाराहीतन्त्रे : ताराचक्रं राशिचक्रं नामचक्रंतथैव च । तत्र चेत्

सगुणो मन्त्रो नान्यच्चक्रं विचिन्तयेत् । इति तु प्रधानतया बोद्धव्यम् । ॥ १ ॥

तथा च : धनिमन्त्रं न गृह्णीयादकुलञ्च तथैव च । इत्यादौ तथा-दर्शनात्तत्तच्चक्रविचारस्यावश्यकत्वात् प्रथमं तन्निरूप्यते । स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे । काली-तारामगौ मन्त्री तथा छिन्नमनावपि । वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥ २ ॥

मालामन्त्रस्तु वाराहीये : विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥ नपुंसकस्य मन्त्रस्य सिद्धादिन्नैव शोधयेत् । हंसस्याष्टाक्षरस्यापि तथा पञ्चाक्षरस्य च । एक-द्वि-त्र्यादिबीजस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ।

तथा : एकाक्षरस्य मन्त्रस्य मालामन्त्रस्य पार्वति ! वैदिकस्य च मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥ ४ ॥ पुं-मन्त्रा हुंफडन्ताः स्युद्विठान्तास्तु स्त्रियो मताः । नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा । एतत्शून्या महाविद्या महाशब्देन नीयते ॥ ५ ॥

मालिनीविजये : अथ वक्ष्याम्यहं या या महाविद्या महीतले । दोषजालैरसंस्पृष्टास्ताः सर्वा हि फलैः सह । काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका । वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः । कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी । इत्याद्याः सकला देव्याः कलौ पूर्णफलप्रदाः ॥ ६ ॥ सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रमः । तथा चैता महाविद्याः कलिदोषान्न बाधिताः ॥ ७ ॥

तथा च मुण्डमालातन्त्रे : काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी । भैरवी छिन्नमस्ता त्र विद्या धूमावती तथा । बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका । एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः । नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा । कालादिशोधनं नास्ति नारिमित्रादिदूषणम् । सिद्धिविद्यातया नात्र युगसेवापरिश्रमः । नास्ति किञ्चिन्महादेवि ! दुःखसाध्यं कदाचन । इत्यादिवचनादेषु विचारो नास्ति । वस्तुतस्तु इदं प्रशंसापरम् । सर्वत्र विचारस्यावश्यकत्वं दुरदृष्टवशात् कदाचिद्वैरिमन्त्रस्य स्वप्नानादौ प्राप्त्या तद्दोषस्य दृष्टत्वादिति साम्प्रदायिकाः ॥ ८ ॥

अथ कुलाकुलचक्रम् : (देखिये चित्र १)

कुलाकुलस्य भेदं हि वक्ष्यामि मन्त्रिणामिह । तथा निबन्धे-वाय्वग्नि-

भू-जलाकाशाः पञ्चाशल्लिपयः क्रमात् । पञ्चह्रस्वाः पञ्चदीर्घा विन्द्वन्ताः सन्धिसम्भवाः । कादयः पञ्चशः यक्षलसहान्ताः प्रकीर्त्तिताः । तथा च— अ आ ए क च ट त प य षा मारुताः । इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्षा आग्नेयाः । उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळाः पार्थिवाः । ऋ ॠ औ घ झ ट ध भ व सा वारुणाः ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श हा नाभसाः । साधकस्याक्षरं पूर्वं मन्त्रस्यापि तदक्षरम् । यद्येकभूतदैवत्यं जानीयात् स्वकुलं हितम् । भौमस्य वारुणं मित्रं आग्नेयस्यापि मारुतम् । मारुतं पार्थिवानाञ्च आग्नेयश्चाम्भसां रिपुः ॥ ९ ॥

पार्थिवानाञ्चेति चकारात् आग्नेयं पार्थिवानां रिपुः । नाभसं सर्वमित्रं स्याद्विरुद्धं नैव शीलयेत् । तथा च रुद्रयामले : पार्थिवे वारुणं मित्रं तैजसं शत्रुरीरितम् । ऐन्द्रवारुणयोः शत्रुर्मारुतः परिकीर्त्तितः । इति राघवभट्टधृतवचनात् जलमारुतयोः शत्रुता । मित्रे सिद्धिः समाख्याता उदासीने न किञ्चन । मृत्युर्व्याधिरमित्रे च स्वकुले सिद्धिरुत्तमा ॥ ९ क ॥

अथ राशिचक्रम् : (देखिये चित्र २)

यथा आगमकल्पद्रुमे : रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्य्यात्तन्मध्यतो याम्यकुवेरभेदात् । एकैकमीशाननिशाकरे तु हुताशवायव्योर्विलिखेत्ततोऽर्णान् । वेदाग्नि-वह्नियुगल-श्रवणाक्षिसंख्यान् पञ्चेषुवाणशरपञ्चचतुष्टयार्णान् । मेषादितः प्रविलिखेत् सकलांस्तु वर्णान् कन्यागतान् प्रविलिखेदथ पादिवर्णान् ॥१०॥ शारदायाम बालं गौरं खुरं शोनं शमीशोभेति राशिषू क्रमेण भेदिता वर्णाः कन्यायां शादयः स्मृताः । तेन अ आ इ ई मेषः । उ ऊ ऋ वृषः । ॠ ऌ ॡ मिथुनम् । ए ऐ कर्कटः । ओ औ सिंहः । अं अः श ष स ह ल क्षः कन्या । कवर्गस्तुला । चवर्गो वृश्चिकः । टवर्गो धनुः । तवर्गो मकरः । पवर्गः कुम्भः । यवर्गो मीनः । स्वराशीनामनुकूलं मन्त्रं भजेत् । तथा च स्वताारराशिकोष्ठानामनुकूलान् भजेन्मनूनिति नारदवचनात् । राशीनां शुद्धता ज्ञेया त्यजेच्छक्रं मृतिं व्ययम् । स्वराशेर्मन्त्रराश्यन्तं गणनीयं विचक्षणैः । यदा तु स्वराशेरज्ञानं तदा साधकनामाद्यक्षरसम्बन्धिनं राशिं गृहीत्वा गणयेत् ॥

नारायणीये : अज्ञाते राशिनक्षत्रे नामाद्यक्षरदर्शनात् साध्यस्याक्षरराश्यन्तं गणयेत् साधकाक्षरादिति रामार्चनचन्द्रिकाधृतत्वाच्च ॥११॥

तन्त्रराजे : तेन मन्त्राद्यवर्णेन नाम्नश्चाद्यक्षरेण च । गणयेद्यदि

षष्ठं वाप्यष्टमं द्वादशन्तु वा। रिपुर्मन्त्राद्यवर्णः स्यात्तेन तस्याहितं भवेत् ॥ १२ ॥

रामार्चनचन्द्रिकायाम् : एकपञ्च-नवबान्धवाः स्मृता द्वौ च षष्ठ-दशमाश्च सेवकाः। वह्निरुद्रमुनयस्तु पोषका द्वादशाष्टचतुरस्तु घातकाः। चतुरस्तु घातका इति विष्णुविषयम्। रामार्चनचन्द्रिकाधृतत्वाच्च ॥ १३ ॥ शक्त्यादौ षष्ठं वर्जनीयम्। षष्ठाष्टमद्वादशानि वर्जनीयानि यत्नतः इति वचनात्। तन्त्रराजधृतत्वाच्च ॥ १४ ॥

तन्त्रान्तरे : द्वादशराशीनामियं संज्ञा नामानुरूपं फलम्। लग्नं धनं भ्रातृवन्धुपुत्रशत्रुकलत्रकम्। मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः। नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं लभेत्। वैष्णवे तु वन्धुस्थाने शत्रुः शत्रुस्थाने वन्धुरिति पाठः ॥१५॥ लग्ने सिद्धिस्तथा नित्यं धने धनसमृद्धिदम्। भ्रातरि भ्रातृवृद्धिः स्याद्बान्धवे वान्धवप्रियः। पुत्रे पुत्रविवृद्धिः स्याच्छत्रौ शत्रुविवर्द्धनम्। कलत्रे मध्यमा प्रोक्ता मरणे मरणं भवेत्। धर्मे धर्मविवृद्धिः स्यात्। सिद्धिदः कर्मसंस्थितः। आये च धनसम्पत्तिर्व्यये च सञ्चितव्ययः ॥ १६ ॥

अथ नक्षत्रचक्रम् : (देखिये चित्र ३)

अ आ अश्विनी देवः। इ भरणी मानुषः। ई उ ऊ कृत्तिका राक्षसः। ऋ ॠ ऌ ॡ रोहिणी मानुषः। ए मृगशिरो देवः। ऐ आर्द्रा मानुषः। ओ औ पुनर्वसुर्देवः। क पुष्या देवः। ख ग अश्लेषा राक्षसः। घ ङ मघा राक्षसः च पूर्वफल्गुनी मानुषः। छ ज उत्तरफल्गुनी मानुषः। झ ञ हस्ता देवः। ट ठ चित्रा राक्षसः। ड स्वाती देवः। ढ ण विशाखा राक्षसः। त थ द अनुराधा देवः। ध ज्येष्ठा राक्षसः। न प फ मूला राक्षसः। ब पूर्वाषाढा मानुषः। भ उत्तराषाढा मानुषः। म श्रवणा देवः। य र धनिष्ठा राक्षसः। ल शतभिषा राक्षसः। व श पूर्वभाद्रपदा मानुषः। ष स ह उत्तरभाद्रपदा मानुषः। अं अः ल क्ष रेवती देवः।

वृहच्छ्रीक्रमे : उत्तराद्दक्षिणाग्रां तु रेखां कुर्य्याच्चतुष्टयीम्। दशरेखाः पश्चिमग्राः कर्त्तव्या वीरवन्दिते। अश्विन्यादिक्रमेणैव विलिखेत्तारकाः पुनः ॥ १७ ॥ अकारादि-क्षकारास्तान् द्विचन्द्रवह्निवेदकान्। भूमीन्दु-नेत्रचन्द्राक्षिण अश्लेषान्तं खगौ प्रिये। द्विभूनेत्र-नेत्रयुग्मांश्चेन्दुनेत्राग्नि-चन्द्रकान्। मघादिज्येष्ठापर्य्यन्तं द्वितीयं नवतारकम्। वह्निभूमीन्दु-

चन्द्रांश्च युग्मेन्दुनेत्र-वह्निकान्। वेदेन भेदितान् वर्णान् रेवत्यंशगतान् क्रमात् ॥ १८ ॥

तथा च निबन्धे : पूर्वोत्तर-त्रयश्चैव भरण्यार्द्राथ रोहिणी। इमानि मानुषान्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः ॥ १९ ॥ ज्येष्ठा शतभिषा-मूला-धनिष्ठाश्लेषकृत्तिकाः। चित्रा-मघा-विशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः ॥ २० ॥ अश्विनी रेवती पुष्या स्वाती हस्ता पुनर्वसुः। अनुराधा मृगशिरा श्रवणा देवतारकाः ॥ २१ ॥

तथा : स्वजातौ परमा प्रीतिर्मध्यमा भिन्नजातिषु। रक्षोमानुषयो र्नाशो वैरं दानवदेवयोः ॥ २२ ॥ जन्म-सम्पद्विपत्क्षेम-प्रत्यरिः साधको वधः। मित्रं परममित्रश्च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥ २३ ॥ जन्म तृतीय पञ्चम सप्तमानि नक्षत्राणि वर्जनीयानि ॥ २४ ॥

तथा च॰ राघवभट्ट : रसाष्टनवभद्राणि युगयुग्मगतानि च। इतराणि न भद्राणि तत्त्यज्यानि मनीषिणा इत्यादि। तत्र स्वनक्षत्रादेव नक्षत्रं गणनीयम्। स्वनक्षत्राज्ञाने स्वनामाद्यक्षरसम्बन्धिनक्षत्रादेव नक्षत्रं गणनीयम् ॥

पिङ्गलातन्त्रे : प्रकटं यस्य जन्मर्क्षं तस्य जन्मर्क्षतो भवेत्। प्रनष्टं जन्मभं यस्य तस्य नामर्क्षतो भवेत्। इति वचनात्। तथा च प्रादक्षिण्येन गणयेत् साधकाद्यक्षरात् सुधीः। इति वचनात्।

प्रकारान्तरं निबन्धे : प्रापालाभात् पटुग्राह्यं रुद्रस्याद्रिरूरुः करम्। लोकलोपपटुप्रायः खलो घो भेषु भेदिताः ॥ २५ ॥ पक्षैकत्र्यद्विरूपावनि-भुजशशियुग्मेन्दुपक्षाः। युग्मैकर्द्वियुग्मनेत्रेन्दु-पक्षाग्निचन्द्रकान्। त्रय-शशिभूरेकपक्षेन्दुनेत्राग्निवेदाः। वर्णाः क्रमात् स्वराश्यन्त्यौ रेवत्यंश-गतावुभौ। जप्तुर्नक्षत्रादथ परिगणयेत् जन्म-सम्पत्क्रमेण सुधीरिति वचनात् ॥ २६ ॥

अथ अकथह चक्रम : (देखिये चित्र ४)

चतुरस्रे लिखेद्वर्णान् चतुःकोष्ठसमन्विते। चतुःकोष्ठे चतुश्चतुकोष्ठे षोडश कोष्ठ इति यावत् ॥ २७ ॥

विश्वसारे : चतुरस्रं लिखेत् कोष्ठं चतुःकोष्ठसमन्वितम्। पुनश्चतुष्कं तत्रापि लिखेद्धीमान् क्रमेण तु। ततः षोडशकोष्ठेषु अकारादिवर्णान् प्रादक्षिण्येन लिखेत्।

तत्र क्रम : इन्द्राग्नि-रुद्र-नव-नेत्र-युगार्क-दिक्षु-ऋत्वष्ट-षोडश-चतु-

दंशभौतिकेषु। पाताल-पञ्चदश-वह्निहिमांशुकोष्ठे वर्णाल्लिखेल्लिपिभवान् क्रमशस्तु धीमान् ॥ नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम्। चतुर्भि कोष्ठैरेकैकमिति कोष्ठचतुष्टयम्। पुनः कोष्ठग-कोष्ठेषु सव्यतो नाम्न आदितः। सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेया विचक्षणैः। सव्यतो दक्षिणतः।

कल्पद्रुमे : पूर्वापरायतं कृत्वा पञ्चसूत्रं प्रकल्पयेत्। तथैव दक्षिणोदीच्यक्रमेण पञ्चसूत्रकम्। यथा षोडशकोष्ठानि सम्पद्यन्ते तथा लिखेत्। ॥ २९ ॥

विश्वसारे : अकारादि-हकारान्तं मूलाकोष्ठादितः सुधीः। दक्षिणावर्त्तयोगेन कोष्ठे वर्णान् लिखेत् सुधीः। येनैव लिखनं कुर्य्यात्तेनैव गणनं स्मृतम् ॥ ३० ॥ सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः। सिद्धः सिध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः। सुसिद्धो ग्रहणादेव रिपुर्मूलं निकृन्तति ॥ ३१ ॥

तन्त्रान्तरे : सिद्धार्णा बान्धवाः प्रोक्ताः साध्यास्तु सेवकाः स्मृताः। सुसिद्धाः पोषका ज्ञेयाः शत्रवो घातकाः स्मृताः ॥ ३२ ॥ जपेन बन्धुः सिद्धः स्यात् सेवकोऽधिकसेवया। पुष्णाति पोषकोऽभीष्टं घातको नाशयेद्-ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्विगुणात् सिद्धसाध्यकः। सिद्ध-सुसिद्धोऽर्द्धजपात् सिद्धारिर्हन्ति बान्धवान् ॥ ३४ ॥ साध्य-सिद्धो द्विगुणकः साध्य-साध्यो निरर्थकः। तंसुसिद्धो द्विगुणजपात् साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान् ॥ ३५ ॥ सुसिद्धसिद्धोऽर्द्धजपात् तत्साध्यो द्विगुणाधिकात्। तत्सुसिद्धो ग्रहादेव सुसिद्धारिः स्वगोत्रहा ॥ ३६ ॥ अरिसिद्धः सुतान् हन्यात् अरिसाध्यस्तु कन्यकाः। तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदरिर्हन्ति साधकम् ॥ ३७ ॥

अथ वैरिमन्त्रपरित्यागप्रमाणमाह तन्त्रे :

गवां क्षीरे द्रोणमिते जपेन्मन्त्रशताष्टकम्। पीत्वा क्षीरं जले तद्वत् समुच्चार्य्य त्यजेत्तथा। अनेनैव विधानेन वैरिमन्त्राद्विमुच्यते ॥ ३८ ॥ अरिमन्त्रं विदित्वा तु न पुनः प्रजपेच्च तत्। सन्त्यज्य तत् देवतायास्तस्य, अन्यं भजेन्मनुम् ॥ ३९ ॥

द्रोणपरिमाणं यथा तन्त्रान्तरे : पलद्वयन्तु प्रसृतिः कुडवं तच्चतुष्टयम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकम्। चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कथितो मानवेदिभिः ॥ ४० ॥

प्रकारान्तरमाह रुद्रयामले : वटपत्रे लिखित्वारि-मन्त्रं स्रोतसि निक्षिपेत् । एवं मन्त्रविमुक्तिः स्यादित्याह भगवान शिवः ॥ ४१ ॥

अथ अकडम-चक्रम् : (देखिये चित्र ५)

रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्य्यात्तन्मध्यतो याम्यकुबेरभेदात् । महेश-रक्षोधिपतिक्रमेण तिर्यक् तथा वायुहुताशनेन ॥ ४२ ॥ अकारादि-क्षकारान्तान् क्लीवहीनान लिखेत्ततः । ऋ ॠ वर्णद्वयं ऌ ॡ तद्धि क्लीवं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥ एकैकक्रमतो लेख्यान् मेषादिषु वृषान्तकान् । गणयेत् क्रमशो भद्रे । नामादि वर्ण पूर्वकान् । मेषादितोऽपि मीनान्तं गणयेत् क्रमशः सुधीः ॥ ४४ ॥ जप्तुः स्वनामतो मन्त्री यावन्मन्त्रादि-माक्षरम् ॥

रत्नावल्याम् : द्वादशाख्ये राशिचक्रे कूटषण्डविवर्जितान् । आदि-हन्ताद् लिखेद्वर्णान् पुरतोयावदीश्वरम् । सिद्ध-साध्य-सुसिद्धारीन् पुनः सिद्धादयः पुनः । नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके । सुसिद्धस्त्रिसप्तके रुद्रे वेदाष्टद्वादशे रिपुः एतत्ते कथितं देवि ! अकड-मादिकमुत्तमम् । इदं तु गोपालविषयकमेव । गोपालेऽकडमः स्मृत इति वचनात् ॥ ४५ ॥

शिवविषयेऽपि : वैष्णवं राशिसंशुद्धं शैवञ्चाकडमं स्मृतम् । इति यामलीयात् ॥ ४६ ॥

तथा च वाराहीतन्त्रे : ताराशुद्धिर्वैष्णवानां कोष्ठशुद्धिः शिवस्य च । राशिशुद्धिस्त्रैपुरे च गोपालेऽकडमः स्मृतः ॥ ४७ ॥

अथ ऋणि-धनि चक्रम् : (देखिये चित्र ६)

तद्यथा : कोष्ठान्येकादशान्येव वेदेन पूरितानि च । अकारादि-हकारान्तान् लिखेत् कोष्ठेषु तत्त्ववित् ॥ ४८ ॥ प्रथमं पञ्चकोष्ठेषु ह्रस्वदीर्घकमेण तु । द्वयं द्वयं लिखेत्तत्र विचारे खलु साधकः । शेषे-ष्वेकैकशो वर्णान् क्रमशस्तु लिखेत् सुधीः ॥ ४९ ॥ तथा द्वौ द्वौ स्वरौ पञ्चसु कोष्ठकेषु शेषान् स्वरान षट्सु षडेकमेकम् । कादीन हशेषान् विलिखेत्ततोऽर्णान् एकैकमेकादश-कोष्ठकेषु । षट्काल-काल-वियदग्नि-समुद्र-वेद-खाकाश-शून्य-दहनाः खलु साध्यवर्णाः । युग्म-द्वि-पञ्च वियदम्बर-षुक् शशाङ्क-व्योमाद्धि-वेदशशिनः खलु साधकाणां । नामा-ज्झला दकठवाद्-गजभुक्तशेषं ज्ञात्वोभयोरधिकशेषमृणं धनं स्यात् । ॥ ५० ॥

अस्यार्थ : साध्यवर्गान् स्वर-व्यञ्जन-भेदेन पृथक्कृतानि षट्काला-द्यंकैर्गुणितानि कृत्वा तथा साधकनामाक्षराणि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्-कृतान् युग्माद्यैरङ्कैर्गुणितान् कृत्वा अष्टसंख्याभिर्हृत्वा उभयोः साध्य-साधकयोर्यदधिकं तदृणं यन्न्यूनं तद्धनम् । एवं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्यात् । मन्त्रश्चेदृणी भवति तदा मन्त्रः शुभदो भवति धनी चेन्न ॥ ५१ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे : मन्त्रो यद्यधिकांकः स्यात्तदा: मन्त्रं जपेत् सुधीः । समेऽपि च जपेन्मन्त्रं न जपेत्तु ऋणाधिके । शून्ये मृत्युं विजानीयास्तस्माच्छून्यं परित्यजेत् । ऋणाधिके धने ॥ ५२ ॥

तथा : इन्द्रर्क्ष नेत्र रवि-पञ्चदशत्तु वेदवह्न्यायूधाष्टनवाभिर्गुणि-तांश्च साध्यान् । दिग्भू-गिरि-श्रुति-गजाग्नि-मुनीषु-वेदषड्वह्निभिस्तु गुणितानथ साधकार्णान् । षट्कालेत्यादिकन्तु विष्णुविषयं रामार्च्चन-चन्द्रिकाधृतत्वादिति केचित् । वस्तुतस्तु पूर्व्वस्यैव विवरणमिदम् । ॥ ५३ ॥

तथा च इन्द्रर्क्षनेत्र ईत्याद्यभिधाय नामार्णकोष्ठांकमथाभिहन्यादे-कादि-रुद्रांकगतं क्रमेण इति ॥ ५४ ॥

व्यक्तं रुद्रयामले : साध्यांकान् साधाकांकांश्च पूरयेद्ग्रहसंख्यया । गुणिते हृतेऽष्टाभिर्यच्छेषं जायते स्फुटम् । तदङ्कं कथयाम्यत्र एकादशगृहं स्थितम् । ईत्युक्त्वा षट्काल-काल इत्युक्तम् ॥ ५५ ॥

तन्त्रार्णवे : मन्त्रस्त्वृणी शुभफलोऽप्यशुभो धनी च तुल्यं यदा समफलः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ ५६ ॥

अन्यत्र : शून्ये मृत्युमवाप्नोति धने च विफलं भवेत् । ऋणे तु प्राप्तिमात्रेण सर्व्वसद्धिस्तु जायते ॥ ५७ ॥

प्रकारान्तरम् : नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् । त्रिधा कृत्वा स्वरैर्भिन्नं तदन्यद्विपरीतकम् । अस्यार्थः साधकनामाद्यक्षरतो गणनया यावन्मन्त्राद्यक्षरं तत्संख्यं त्रिधा कृत्वा सप्तभिहृत्वा अधिकं ऋणं शेषं धनं स्यात् । अन्यदिति मन्त्राद्यक्षरमारभ्य यावत् साधक-नामाद्यक्षरं भवेत् तावत्संख्यां सप्तगुणं कृत्वा त्रिभिर्हरेत् ॥ ५८ ॥

अन्यच्च पिङ्गलामते : साध्यनामद्विगुणितं साधकेन समन्वितम् । अष्टाभिश्च हरेच्छेषं तदन्यद्विपरीतकम् ।

अस्यार्थ : साध्यनाम स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विगुणीकृत्य साधकनामाक्षरेण स्वरव्यञ्जनभेदेन संयोज्य अष्टाभिर्हृत्वा ऋणं धनं ज्ञेयम् । अन्यदिति

साधकनामाक्षरं स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विगुणीकृत्य साध्याक्षरेण स्वरव्यञ्जन-भेदेन संयोज्य अष्टाभिर्हृत्वा अधिकं ऋणं शेषं धनं ज्ञेयम् ॥ ५९ ॥

नामग्रहणप्रकारमाह सनत्कुमारीये : पितृमातृकृतं नाम त्यक्त्वा-शर्म्मादि-देवकान् । श्रीवर्णंश्च ततो हित्वा चक्रेषु योजयेत् क्रमात् । ॥ ६० ॥

नामग्रहणप्रकारमाह पिङ्गलायाम् : प्रसिद्धः यद्भवेन्नाम कंवास्य जन्मनाम च । यतीनां पुष्पपातेन गुरुणा यत् कृतं भवेत् ॥ ६१ ॥

तन्त्रान्तरे : लोकप्रसिद्धमथवा मात्रा पित्रा तथा कृतम् ॥ १६२ ॥

रुद्रयामले : सुप्तो जागर्त्ति येनासौ दूरस्थः प्रतिभाषते । वदत्यन्य-मनस्कोऽपि तन्नाम ग्राह्यमेव च ॥ ६३ ॥

देवताभेदेन चक्रविचारस्यावश्यकता वाराहीतन्त्रे यामलादौ च :

ताराशुद्धिर्वैष्णवानां कोष्ठशुद्धिः शिवस्य च । राशिशुद्धिस्त्रैपुरे च गोपालेऽकडमः स्मृतः ॥ ६४ ॥ अकडमो रामचन्द्रे गणेशे हरचक्रकम् । कोष्ठचक्रं वराहस्य महालक्ष्म्याः कुलाकुलम् ॥ ६५ ॥ नामादिचक्रं सर्वेषां भूतचक्रं तथैव च । त्रैपुरं तारके चक्रे शुद्धं मन्त्रं जपेद्बुधः ॥६६॥

तथा : वैष्णवं राशिसंशुद्धं शैवश्चाकडमं स्मृतम् । कालिकायाश्च तारायास्ताराचक्रं शुभावहम् ॥ ६७ ॥ चण्डिकायास्तारकोष्ठे गोपाले-ऽकडमं स्मृतम् हरचक्रे सर्वमन्त्रं धनाधिक्ये न चाश्रयेत् ॥ ६८ ॥ ऋणाधिक्ये शुभं विद्याद्धनाधिक्ये च नो विधिः । दोषान् संशोध्य गृह्णीयान्मध्यदेशोद्भवस्य च ॥ ६९ ॥ ऋणी मन्त्रः शुभफलो धनी मन्त्रोऽशुभप्रदः । तुल्यं यदा शुभफलं कथितो मुनिसत्तमैः ॥ ७० ॥

अन्यत्रापि शून्ये मृत्युमवाप्नोति धने च विफलं भवेत् । ऋणे च प्राप्तिमात्रेण सर्वसिद्धिस्तु जायते ॥ ७१ ॥

अथ दीक्षाप्रकरणम् :

गुरुदीक्षापूर्वदिने स्वशिष्यमभिमन्त्रयेत् । दर्भशय्यां परिष्कृत्य शिष्यं तत्र निवेशयेत् ॥ ७२ ॥ स्वापमन्त्रेण मन्त्रज्ञः शिशोः शिखां प्रबन्धयेत् । तन्मन्त्रं स्वापसमये पठेद्वारत्रयं शिशुः ॥ ७३ ॥ श्री गुरोः पादुकां ध्यात्वा उपवासी जितेन्द्रियः । तारो हिलिद्वयं शूलपाणये द्विठ ईरितम् ॥ ७४ ॥ वारत्रयं पठित्वा तु उपवासी जितेन्द्रियः । श्री गुरोः पादुकां ध्यात्वा शयीत कुशशायने ॥ ७५ ॥

मन्त्रान्तरम् : स्वपमानस्य मन्त्रोऽयं शम्भुना परिकीर्त्तितः । नमो

जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने। रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः। स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः। क्रियासिद्धि विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर। इति मन्त्रेण सच्छिष्यो देवं प्रार्थ्य स्वपेच्च वा। स्वप्ने शुभाशुभं दृष्टं पृच्छेत्प्रातः शिशुं गुरुः। कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम्। कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फणिनं द्रुमम्। पर्वतं तुरगं मेध्यमाममांसं सुरासवम्। एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात्। इति मन्त्रसिद्धिज्ञापनार्थं शिष्याभिमन्त्रणम् ॥ ७६ ॥

अथ दीक्षायां कालनिर्णय :

गौतमीये : मन्त्रारम्भस्तुचैत्रे स्यात् समस्तपुरुषार्थदः। वैशाखे रत्नलाभः स्यात् ज्यैष्ठे तु मरणं भवेत्। आषाडे बन्धुनाशः स्यात् पूर्णायुः श्रावणे भवेत्। प्राणनाशो (प्रजानाशो) भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥ ७७ ॥ कार्त्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यात् मार्गशीर्षे तथा भवेत्। पौषे तु शत्रु-पीडा स्यात् माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥ फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् ॥७९॥ चैत्रे तु गोपालविषयं गौतमीये उक्तत्वात् ॥ ८० ॥ मधुमासे भवेद्दीक्षा दुःखाय मरणाय च। इति योगिनीतन्त्रात् नान्यत्र ॥ ८१ ॥

तथा : ज्यैष्ठे मृत्युप्रदा विद्या आषाढे सुखसम्पदः। इति योगिनीहृदयादाषाढे श्रीविद्यायां न दोषः। तत्र मासः सौर एव। सौरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न च तारके इति गौतमीयात्।

वैशम्पायन-संहितायान् : मन्त्रस्यारम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत्। वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम्। कर्कटे मन्त्रसिद्धिः स्यात् सिंहे मेधविनाशनम्। कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः वृश्चिके स्वर्णलाभः स्यात् धनुर्मानविनाशकम्। मकरः पुण्यदः प्रोक्तः कुम्भोः धनसमृद्धिदः। मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं मासविधिक्रमः ॥ ८२ ॥

अथ दीक्षायां वारनिर्णयः

रविवारे भवेत् वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत् किल। आयुरङ्गारको हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥८३॥ बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं स्यात्तु बृहस्पतौ। शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्चरे ॥ ८४ ॥

अथ दीक्षायां तिथिनिर्णय :

आगमकल्पद्रुमे : प्रतिपदि कृता दीक्षा ज्ञाननाशकरी मता। द्वितीयायां भवेज्ज्ञानं तृतीयायां शुचिर्भवेत् ॥ ८५ ॥ चतुर्थ्यां वित्तनाशः

स्यात् पञ्चम्यां बुद्धिवर्द्धनम् । षष्ठ्यां ज्ञानक्षयः सौख्यं लभते सप्तमीदिने ॥ ८६ ॥ अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः ॥ ८७ ॥ दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत् ॥ ८८ ॥ द्वादश्यां सर्वशुद्धिः स्यात् त्रयोदश्यां दरिद्रता ॥ ८९ ॥ तिर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां हानिर्मासावसानके । पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं विवर्जयेत् ॥ ९० ॥ अस्वाध्यायमाह : सन्ध्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्लकानिपातनम् ॥ ९१ ॥ एतानन्यांश्च दिवसान् श्रुत्युक्तान् परिवर्जयेत् ॥ ९२ ॥ द्वितीया पञ्चमी चैव षष्ठी चैव विशेषतः ॥ ९३ ॥ द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥९४॥ इति यत् षष्ठीत्रयोदशीविधानं तद्विष्णुविषयं रामार्चनचन्द्रिका-धृतत्वात् ॥ ९५ ॥ पञ्चमी सप्तमी षष्ठी द्वितीया पूर्णिमा तथा ॥ ९६ ॥ त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकमदा । इति सनत्कुमारवचनात् षष्ठीविधानमपि ।

शिवविषये दशमीसप्तम्योर्निषेधमाह : शुक्लपक्षस्य दशमी सप्तमी च विशेषतः । निन्द्या सदैव षष्ठी स्यादिति शैवागमान्तरे ॥ ९७ ॥

अथ दीक्षायां नक्षत्र निर्णयः

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् । कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥ ९८ ॥ मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धु-नाशनम् । पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात् पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥ ९९ ॥ अश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् । सौन्दर्य्यं पूर्वफल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः ॥ १०० ॥ ज्ञानीश्चोत्तरफल्गुन्यां हस्तायाञ्च धनी भवेत् । चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥ १ ॥ विशाखायां सुखं चानुराधायां बन्धुवर्द्धनम् । ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलायां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥ २ ॥ पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्त्तिदायिके । श्रवणायां भवेद्दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता ॥ ३ ॥ बुद्धिः शतभिषायां स्यात् पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् । सौख्यञ्चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्त्ति-वर्द्धनम् ॥ ४ ॥

आर्द्राकृत्तिकयोर्निषेधस्तु शिववह्नीतरविषये

तथा च : आर्द्रायां कृत्तिकायाञ्च मन्त्रारम्भः प्रशस्यते । यदीशस्य कृशानोर्वा मन्त्रारम्भो यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

तन्त्रान्तरे : अश्विनी-भरणी-स्वाती-विशाखाहस्तभेषु च । ज्येष्ठो-

त्तराग्रयेष्वेवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् । इति ज्येष्ठाभरण्योर्यद्विधानं तत्रामविषयमगस्त्यसंहितोक्तत्वात् ॥ ६ ॥

अथ योगनिर्णयः

विश्वसारे : शुभः सिद्धस्तथायुष्मान् ध्रुवयोगस्ततः परम् । प्रीतिः सौभाग्ययोगश्च बुद्धियोगस्ततः परम् । हर्षणश्च तथा योगः सर्वतन्त्रे शुभावहाः ॥ ७ ॥

रत्नावल्याम् : योगाः स्युः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनो धृतिः । वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्रश्च हर्षणः । वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्म ऐन्द्रश्च षोडश ॥ ८ ॥

अथ करणनिर्णयः

वव-बालव-कौलव-तैतिला वणिजस्तदनन्तरम् । करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम् ॥ ९ ॥

अथ लग्ननिर्णयः

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनख्यलग्नके । चन्द्रतारानुकूले च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्त्तनम् ॥ १० ॥

तथा : स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरः शुभम् । द्विस्वभावन्तं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥ ११ ॥

अगस्त्यसंहितायाम् : त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः । दीक्षायास्तु शुभाः सर्वे वक्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥ १२ ॥

अथ पक्षनिर्णय :

शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमाद्दिनात् ॥ १३ ॥

अगस्त्यसंहितायाम् : शुक्लपक्षे तु कृष्णे वा दीक्षा सर्वत्र शोभना ॥ १४ ॥

कालोत्तरे तु : भूतिकामैः सिते सदा मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे इति शेषः । निषिद्धमासेषु तत्तद्विशेषो मुनिभिरुदितः ।

रत्नावल्याम् : षष्ठी भाद्रपदे मासि ईषे कृष्णाचतुर्दशी । कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गे शुक्ला तृतीयका । पौषे तु नवमी शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका । फाल्गुने नवमी शुक्ला चैत्रे कामचतुर्द्दशी । त्रयोदशीति केचित् ॥ १५ ॥ वैशाखे चाक्षया चैव ज्यैष्ठे दशहरा तिथिः । आषाढे पञ्चमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥१६॥ एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटि-फलं लभेत् । अत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ १७ ॥ न वारं

न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणनम्। न योगकरणश्चैव शङ्करेण च भाषितम् ॥ १८ ॥

अन्यच्च मतम् : चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता। ज्यैष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥१९॥ श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी-सहिताष्टमी। आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ २० ॥ कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता। षष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता। फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ २१ ॥

योगिनीतन्त्रे : अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। रविसंक्रान्ति-दिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ॥ २२ ॥ मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिनेषु च। चतुर्थी पञ्चमी चैव चतुर्दश्यष्टमी तथा ॥ तिथयः शुभदाः प्रोक्ता दीक्षाग्रहणकर्मणि। इत्यादिवचनाच्चतुर्दश्यष्टमीति शक्तिविषयम् ॥ २३ ॥ चतुर्थीति गणेशविषयं तत्तत्कल्पोक्तत्वात् ॥ २४ ॥ निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा। सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्ति भूतले। विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि। तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्। रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा। तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विपर्य्यं कथञ्चन्। रविसंक्रमणे चैव नान्यदन्वेषितं भवेत्। न वारतिथि-मासादिशोधनं सूर्यपर्वणि। एवं चन्द्रग्रहणेऽपि ॥ २५ ॥

तथा च रुद्रयामले : न कुर्यात् शाक्तिकीं दीक्षामुपरागे विभावसौ। न कुर्य्याद्वैष्णवीं तान्तु यदि चन्द्रमसो ग्रहः। एतच्च गोपाल-श्रीविद्येतर-विषयम् ॥ २६ ॥ अन्येषु पर्वयोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। इति गौत-मीयात् ॥ २७ ॥ प्रशस्ता सकला दीक्षा स्व स्व वारे तदा भवेत्। सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्। इति योगिनीहृदयाच्च ॥ २८ ॥

तारादौ तु विशेषो यथा : दीक्षाकालं प्रवक्ष्यामि नीलतंत्रानुसारतः। कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभे क्षणे ॥ २९ ॥ पूर्वभाद्रपदायुगे मित्रतारादिसंयुते। अथवाप्यनुराधायां रेवत्यां वा प्रशस्यते ॥ ३० ॥ जानीयाच्छोभनं कालं मन्त्रस्य ग्रहणं प्रति। ईषे चैव विशेषेण कार्त्तिके च विशेषतः ॥ ३१ ॥

सूर्य्यग्रहणे विशेषमाह रत्नावलीयृतयामले : श्रीपरा-कालि बीजानि लोपादीर्गश्च यो मनुः। सूर्यस्य ग्रहणे लब्धो नृणां मुक्तिफलप्रदः ॥३२॥ अमावस्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी। सप्तमी रविवारे च सूर्यपर्वशतैः समाः ॥ ३३ ॥

कुलार्णवे : सप्तमी रविवारे च सोमे दर्शस्तथैव च। चतुर्थी कुजवारे च अष्टमी च वृहस्पतौ। देवपर्वसमा ज्ञेया तासु दीक्षां समाचरेत् ॥३४॥

यामले : पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये। प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत् ॥ ३५ ॥

विष्णुयामले : देवीबोधं समारभ्य यावत् स्यान्नवमी तिथिः। कृता तासु बुधैर्दीक्षा सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ ३६ ॥ शुक्लपक्षे विशेषेण तत्रापि तिथिरष्टमी। तत्रापि शारदी दुर्गा यत्र देवी गृहे गृहे। तत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या मासर्क्षादीन् न शोधयेत् ॥ ३७ ॥

तथा : बोधने चैव दुर्गायाः कालाकालं न शोधयेत्। अशोकाख्याष्टमी यत्र रामाख्या नवमी तथा। लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र तत्र तिथावपि। गुरोराज्ञानुरूपेण दीक्षा कार्या विशेषतः ॥ ३८ ॥ चतुर्थ्यङ्गारवारे च दिवसे त्रिदिनस्पृशि। तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥ ३९ ॥

समयातन्त्रे : युगाद्यायां जन्मदिने विवाहदिवसे तथा। विषुवायनयोर्द्वन्द्वे नैव किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ४० ॥

तथा : शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया यदि दीयते। तदा लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कदाचन् ॥ ४१ ॥ सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः। यस्मिन्नहनि मन्त्रज्ञो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥ ४२ ॥

योगिनीतन्त्रे : ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ॥ ४३ ॥

अथ वक्ष्यामि दीक्षायाः स्थानं तन्त्रानुसारतः। गोशालायां गुरोर्गेहे देवागारे च कानने। पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च मन्त्रवित्। धात्री बिल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च। गङ्गायास्तु तटे वापि कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ४४ ॥

निषिद्धस्थानमाह : गयायां भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्वते। चट्टले च मतङ्गे च तथा कन्याश्रमेषु च। न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति ॥ ४५ ॥

तारारहीतन्त्रे : शुक्रोऽस्तो यदि वा वृद्धो गुर्वादित्यो भवेद्यदि। मेषवृश्चिक-सिंहेषु तदा दोषो न विद्यते। महाविद्यासु सर्वासु कालादिविचारो नास्ति तदुक्तं मुण्डमालातन्त्रे : कालादिशोधनं नास्ति न चामित्रादिदूषणम् ॥ ४६ ॥

अथ मालानिर्णयः

सनत्कुमारसंहितायां : तर्जनी मध्यमानामा कनिष्ठा चेति ताः क्रमात् । तिस्रोऽंगुल्यस्त्रिपर्वाणो मध्यमा चैकपर्विका । पर्वद्वयं मध्यमायां मेरुत्वेनोपकल्पयेत् ॥ ४७ ॥

तत्र क्रममाह सत्कुमारसंहितायाम् : अनामा-मध्यमारभ्य कनिष्ठादित एव च । तर्जनीमूलपर्यन्तं दशपर्वसु संजपेत् ॥ ४८ ॥

तथा : अनामामूलमारभ्य कनिष्ठादित एव च । तर्जनीमध्यपर्यन्तमष्टपर्वसु संजपेत् । एतद्वचनन्तु अष्टोत्तरशतविषयम् विष्णुविषयश्च ॥ ४९ ॥

शक्तिविषये पुनः : अनामिकात्रयं पर्व कनिष्ठा च त्रिपर्विका । मध्यमायाश्च त्रितयं तर्जनीमूलपर्वणि । तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् । इति श्रीक्रम वचनात् ॥ ५० ॥

तथा हंसपारमेश्वरे : पर्वत्रयमनामायाः परिवर्तेन वै क्रमात् । पर्वत्रयं मध्यमायास्तर्जन्येकं समाहरेत् । पर्वद्वयञ्च तर्जन्या मेरुं तद्विद्धि पार्वति । शक्तिमाला समाख्याता सर्वतन्त्रप्रदीपिका ॥ ५१ ॥

तथा : अनामामूलमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण च । मध्यमामूल पर्यन्तमष्टपर्वसु संजपेत् । इदमप्यष्टोत्तरशतादिविषयम् ॥ ५२ ॥

श्री विद्याविषये पुनः : अनामामध्यमायाश्च मूलाग्रञ्च द्वयं द्वयम् । कनिष्ठायाश्च तर्जन्यास्त्रयं पर्व सुरेश्वरि । अनामाया मध्यमायाश्च मेरुः स्याद्द्वितयं शुभम् । प्रादक्षिणक्रमाद्देवि । जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम् । इति यामलवचनात् ॥ ५३ ॥ कनिष्ठामूलमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण च । तर्जनीमूलपर्यन्तमष्टपर्वसु संजपेत् । इदमप्यष्टोत्तरशतविषयम् ॥ ५४ ॥

मुण्डमालातन्त्रे : अनामिकाद्वयं पर्व कनिष्ठादिक्रमेण तु । तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्त्तिता ॥ ५५ ॥ अंगुलिनं वियुञ्जीत किञ्चिदाकुञ्चिते तले । अंगुलिनां वियोगाच्च छिद्रे च स्रवते जपः ॥ ५६ ॥

अन्यत्रापि : अंगुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने । पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५७ ॥ गणनाविधिमुल्लंघ्य यो जपेत्तज्जपं यतः । गृह्णन्ति राक्षसास्तेन गणयेत् सर्वथा बुधः ॥ ५८ ॥

विश्वासारे : जपसंख्या तु कर्तव्या नासंख्यातं जपेत् सुधीः । असंख्याकारकस्यास्य सर्वं भवति निष्फलम् ॥ ५९ ॥

तन्त्रे : हृदये हस्तमारोप्य तिर्य्यक् कृत्वा करांगुलीः । आच्छाद्य वाससा हस्तौ दक्षिणेन जपेत् सदा ॥ ६० ॥

अथ जपसंख्याधारणे निषिद्धानिषिद्धानि ।

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः । न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्या न कारयेत् । लाक्षा-कुसीद-सिन्दूरं गोमयञ्च करीषकम् । विलोडय गुलिकां कृत्वा जपसंख्यान्तु कारयेत् । कुसीदं रक्तचन्दनं करीषं शुष्क-गोमयभस्म । इदन्तु पुरश्चरणविषये ज्ञेयम् । जपने यादृशी माला संख्यानेऽपि च तादृशी ॥ ६१ ॥

अथ वर्णमाला :

सनत्कुमारीये : क्रमोत्क्रमगतैर्माला मातृकार्णैः क्षमेरुकैः । सविन्दुकैः साष्टवर्गैरन्तर्यजनकर्मणि आदि कु चु टु तु पु यु शवोष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ ६२ ॥

तत्रायमर्थः : अकारादिवर्णान् प्रत्येकं सविन्दु कृत्वा अनुलोम-विलोमक्रमेण शतं संजप्य अकारादीनां वर्णानां कवर्गादीनाञ्चान्त्यवर्णं सानुस्वारं कृत्वा पूर्वमुच्चार्य पश्चात् मन्त्रजपः कर्त्तव्यः । अनेन प्रकारेणा-ष्टोत्तरशतसंख्यजपो भवति । अन्तर्यजन इत्युपलक्षणम् ॥ ६३ ॥

तथा च : सविन्दुं वर्णमुच्चार्य पश्चान्मन्त्रं जपेद्बुधः । अकारादि-क्षकारान्तं विन्दुयुक्तं विभाव्य च । वर्णमाला समाख्याता अनुलोम-विलोमिका । इति नारदवचनात् ॥ ६४ ॥

प्रकारान्तरं विशुद्धेश्वरे : अनुलोमविलोमेन वर्गाष्टकविभेदतः । मन्त्रेणान्तरितान् वर्णान् वर्णेनान्तरितान् मनून् । कुर्याद्वर्णमयीं मालां सर्वतन्त्रप्रकाशिनीम् । चरमार्णं मेरुरूपं लङ्घनं नैव कारयेत् ॥६५॥

तथा मालिनीविजये सूत्रनियम : अन्तर्विद्रुमभासमानभुजगीं सुप्रोत्यवर्णोज्ज्वलाम् । आरोह-प्रतिरोहतःशतमयीं वर्गाष्टकाष्टोत्तरम् ॥६६॥

अथ वैशम्पायनसंहितायाम् :

प्रलयानलतः पूर्वं रुद्ररूपेण मूर्त्तिना । उद्धृतं पृथिवीबीजमतोऽन्ते तं नियोजयेत् । प्रलयोद्धरितं बोजं लकारमनलात् पुनः । द्विलकार-विधावत्र पुनरन्ते नियोजयेत् । एतेन लकारद्वयं ज्ञेयमिति ॥ ६७ ॥

अथ मालायां मणिनिर्णयः

पद्मवीजादिभिर्माला वहिर्योगे शृणुस्व ताः । रुद्राक्ष-शङ्ख-पद्माक्ष-

जावपुत्रक-मौक्तिकैः। स्फाटिकैर्मणिरत्नैश्च सौवर्णैर्विद्रुमैस्तथा। राजतैः कुशमूलैश्च गृहस्थस्याक्षमालिका ॥ ६८ ॥

अथ मालाफलम् :

अंगुल्यागणनादेकं पर्वणाष्टगुणं भवेत्। पुत्रजीवैर्दशगुणं शतं शङ्खैः सहस्रकम् ॥ प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसाहस्रिकं स्मृतम्। तदेव स्फाटिकैः प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते। पद्माक्षैर्दशलक्षं स्यात् सौवर्णैः कोटिरुच्यते। कुशग्रन्थ्या कोटिशतं रुद्राक्षैः स्यादनन्तकम्। सर्वैर्विरचिता माला नृणां मुक्तिफलप्रदा ॥ ६९ ॥

कालिकापुराणे : रुद्राक्षैर्यदि जप्यते इन्द्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा। नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यंपुत्रजीवादिकश्च यत्। यद्यन्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि। तस्य कामश्च मोक्षश्च न ददाति प्रियंकरो ॥ ७० ॥

मुण्डमालायाम् : श्मशानधुस्तूरमाला ज्ञेया धूमावतीविधौ। नरांगुल्यस्थिभिर्माला प्रथिता सर्वकामदा। नाड्यो संग्रथनं कार्यं रक्तेन वाससा तथा। सदा गोप्या प्रयत्नेन जनन्या जारवत् प्रिये ! ॥७१॥

कामनाभेदे तु : पद्माक्षैर्विहिता माला शत्रुणां नाशिनी मता। कुशग्रन्थिमयी माला सर्वपापप्रणाशिनी। पुत्रजीवफलैः क्लृप्ता कुरुते पुत्रसम्पदम्। निर्मिता रौप्यमणिभिर्जपमालेप्सितप्रदा। प्रवालैर्विहिताः माला प्रयच्छेद्विपुलं धनम् ॥ ७२ ॥

भैरवीविद्यां तु वाराहीतन्त्रे : सुवर्णमणिभिर्मालां स्फाटिकीं शङ्ख-निर्मिताम्। प्रवालैरेव वा कुर्यात् पुत्रजीवं विवर्जयेत्। पद्माक्षश्चैव रुद्राक्षं भद्राक्षश्च विशेषतः ॥ ७३ ॥ त्रिपुरामन्त्रजपादौ तु रक्तचन्दन-बीजादिभिरतिप्रशस्ता।

तथा च तन्त्रे : रक्तचन्दनमाला तु भोगमोक्षप्रदा भवेत् ॥ ७४ ॥

तथा : वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे। त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षे रक्तचन्दनैः ॥ ७५ ॥

मुण्डमालायाम् : महाशङ्खमयी माला नीलसारस्वते विधौ ॥७६॥

महाशङ्खस्तु तन्त्रे : नृललाटास्थिखण्डेन रचिता जपमालिका। महाशङ्खमयो माला ताराविद्याजपे प्रिये। कर्णनेत्रान्तरस्थास्थि महाशङ्खः प्रकीर्त्तितः ॥ ७७ ॥

मणिनियमस्तु मुण्डमालायाम् : अन्योन्यसमरूपाणि नातिस्थूल-कृशानि च। कीटादिभिरदुष्टानि न जीर्णानि नवानि वै ॥ ७८ ॥

अथ गौतमीये : पञ्चाशल्लिपिर्माला विहिता सर्व कर्मसु । अकारादिक्षकारान्ता अक्षमाला प्रकीर्त्तिता । क्षवर्णं मेरुमुखं तत्र कल्पयेन्मुनिसत्तम । अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वसमृद्धिदः ।

चामुण्डातन्त्रे : नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यमबोधनात् । जपमपि करे कुर्यान्मालाभावे तु सुन्दरि ।

कामनाभेदे तु गौतमीये : विशेषेणाक्षसूत्रस्य विधानमिह लक्ष्यते । पञ्चविंशतिभिर्मोक्षं त्रिंशद्भिर्धनसिद्धये । सर्वार्थाः सप्तविंशत्या पञ्चदश्याभिचारिके । पञ्चाशद्भिः काम्यसिद्धिः स्यात्तथा चतुरोत्तरैः । अष्टोत्तरशतैः सर्वसिद्धिरुक्ता मनीषिभः ॥ ७९ ॥

अथ आसनभेदाः

हंसमाहेश्वरे : कबम्लं कोमलं कौशं दारवं कर्मसाधनम् । शुक्लं वा यदि वा कृष्णं विशेषात् रक्तकम्बलमिति । एतेषामासनं शुद्धं चर्मासनं सुरेश्वरि ! ॥ ८० ॥ लोम्नि चैव यदासीनस्तदा सर्वं विनश्यति । लोमस्पर्शनमात्रेण सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ ८१ ॥ काम्यार्थं कम्बलश्चैव श्रेष्ठश्च रक्तकम्बलम् । कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षः श्रीर्व्याघ्रचर्मणि ॥ ८२ ॥ कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा । धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने ॥ ८३ ॥ वंशासने दरिद्रः स्यात् पाषाणे व्याधिपीडनम् । तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः । जपध्यानतपोहानिं वस्त्रानं करोति हि ॥८४॥ अतएव वस्त्रासनं केवलमेव विरुद्धं वस्त्रासनं रोगहरमित्यादिवचनेनविशिष्टस्य फलजनकत्वात् । चेलाजिनकुशोत्तरमिति भगवद्वचनाच्च ॥ ८५ ॥

तथा च गौतमीये : तथा मृद्वासने मन्त्री पटाजिनकुशोत्तर इति । ॥ ८६ ॥

योगिनीहृदये : नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही । विशेद्यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च भिक्षुकः ॥ ८७ ॥

आगमनकल्पद्रुमे : मेषव्याघ्रगजोष्ट्रऋक्षोरगत्वचस्तु षट्कर्मसु प्रत्येकं विहितासनानि ॥ ८८ ॥

अथ मालासंस्कारः

यामले : अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति यो नरः । सर्वं तन्निष्फलं विद्यात् क्रुद्धा भवति देवता ॥ ८९ ॥

सनत्कुमारे : कार्पाससम्भवं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् । तच्च

विपेन्द्रकन्याभिर्निर्मितश्च सुशोभनम् ॥ ६० ॥ श्वेतं रक्तं तथा कृष्णं पट्टसूत्रमथापि वा । शान्तिवश्याभिचारेषु मोक्षैश्वर्यजयेषु च । शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं वर्णेषु च क्रमात् । सर्वेषामेव वर्णानां रक्तं सर्वेप्सितप्रदम् ॥ ६१ ॥ त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्रथयेत् शिल्पशास्त्रतः । मणिरत्नप्रमाणस्य सूत्रं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ६२ ॥ एकैकं मातृकावर्णं सतारं प्रजपेत् सुधीः । मालामादाय सूत्रेण ग्रथयेन्मध्यमध्यतः ॥ ६३ ॥ ब्रह्मग्रन्थि विधायेत्थं मेरुञ्च ग्रन्थिसंयुतम् । ग्रथयित्वा पुरो मालां ततः संस्कारमारभेत् ॥ ६४ ॥ कस्यचिन्मते मूलविद्यया ग्रथयेत् ।

तथा च एकवीराकल्पे : मातृकावर्णतो ग्रन्थि विद्यया वाथ कारयेत् । सुवर्णादिगुणैर्वापि ग्रथयेत् साधकोत्तमः । ब्रह्मग्रन्थि ततो दद्यान्नागपाश-मथापि वा । कवचेनाथ बध्नीयान्मालां ध्यानपरायणः सर्वशेषं ततो मेरुं सूत्रद्वयसमन्वितम् । ग्रथयेत्तारयोगेन बध्नीयात् साधकोत्तमः । एवं निष्पाद्य देवेशि प्रतिष्ठाञ्च समाचरेत् ॥ ६५ ॥

गौतमीये : मुखे मुखन्तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत् । गोपुच्छ-सदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिः शुभा ॥ ६६ ॥

मुखपुच्छनियमस्तु छन्दःसारे : रुद्राक्षस्योन्नतं प्रोक्तं मुखं पुच्छन्तु निम्नगम् । कमलाक्षस्य सूक्ष्मांशं सविन्दुद्वितयं मुखम् । सविन्दुकस्य स्थूलांशं पुच्छं श्लक्ष्ममिति स्मृतम् । एवं ज्ञात्वा मुखं पुच्छं रुद्राक्षाम्भोरुहा-क्षयोः । त्वं सजातीयमेकाक्षं मेरुत्वेनाग्रतो न्यसेत् ॥ ६७ ॥ एकैकं मणिमादाय ब्रह्मग्रन्थि प्रकल्पयेत् । एकैकं मातृकावर्णं ग्रथनादौ तु संजपेत् ॥ ६८ ॥

ग्रन्थिनियमस्तत्रैव : त्रिरावृत्तिग्रन्थिकेन तथार्द्धेन विधीयते । सार्द्धद्वयावर्त्तनेन ग्रन्थि कुर्यात् यथा दृढम् । इत्येताभ्यामिच्छा विकल्पः ॥ ६९ ॥

कालिकापुराणेः : ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं यथास्थितम् । अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम् । एवं निर्माय मालां वै शोधये-न्मुनिसत्तम ॥ १०० ॥ अश्वत्थपत्रनवकैः पद्माकारन्तु कल्पयेत् । तन्मध्ये स्थापयेन्मालां मातृकामूलमुच्चरन् । क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः ॥ १ ॥

सद्योजातमन्त्रस्तु : ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवे भवेनादिभवे भजस्व मां भवेद्भवाय वै नमः । चन्दनागुरु-गन्धाद्यै-र्वामदेवेन घर्षयेत् ।

वामदेवमन्त्रस्तु : ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बल प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथनाय । धूपयेत्तामघोरेण ।

अघोरमन्त्रस्तु : ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः । लेपयेत्तत्पुरुषेण तु ।

तत्पुरुषमन्त्रस्तु : ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकन्तु शतं शतम् । मेरुञ्च मन्त्रयेचैव मूलेन च शतं शतम् ।

मुण्डमालायाम् : पञ्चमेनैव मन्त्रेण प्रत्येकन्तु शतं शतम् । मेरुञ्च पञ्चमेनैव तथा मन्त्रेण मन्त्रयेत् । प्रत्येकन्तु सकृत् सकृदिति वा । तत्रैव : प्रत्येकं मन्त्रयेन्मन्त्री पञ्चमेन सकृत् सकृदिति ।

तथा च गौतमीये समुदायमालामधिकृत्य : पञ्चमेनैव सूक्तेन शतान्यूनेन मन्त्रयेदिति दर्शनान्मालायां वा शतजपः कार्यः ।

पञ्चमन्त्रस्तु : ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मा-धिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम् । प्रत्येकन्तु सकृत् सकृदिति वा ।

तथा च तत्रैव : प्रत्येकं मन्त्रयेन्मन्त्री पञ्चमेन सकृत् सकृत् । तत्रा-वाह्य यजेद्देवं यथाविभवविस्तरैः ॥ ३ ॥ मालायाः प्राणप्रतिष्ठानन्तरं देवतां पूजयेत् ।

तथा च सनत्कुमारतन्त्रे : संस्कृत्यैवं बुधो मालां तत्प्राणांस्तत्र योजयेत् मूलमन्त्रेण तां मालां पूजयेद् द्विजसत्तमः ॥ ४ ॥

वाराहीतन्त्रे : माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि चतुर्वर्ग-स्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव । मायाबीजादिकं कृत्वा रक्तपुष्पैः समर्चयेत् । इति शक्तिविषयम् ॥ ५ ॥

विष्णु-विषये तु यामले : वाग्भवञ्च तथा लक्ष्मीमक्षादिमालिकां ततः । ङेऽन्तां हृदयवर्णान्तां मन्त्रेणानेन पूजयेत् । मन्त्रयेन्मूलमन्त्रेण क्रमेणोत्क्रमयोगतः : तथैव मातृकावर्णैर्मन्त्रयेत्तन्तु मन्त्रवित् ॥ ६ ॥

योगिनीहृदये : होमकर्म ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये । अष्टोत्तरशतं हुत्वा सम्पाताज्यं विनिक्षिपेत् ॥ ७ ॥ होमकर्मण्यशक्तश्चेद्द्विगुणं जपमा-चरेत् । नान्यमन्त्रं जपेन्मन्त्री कम्पयेन्न विधूनयेत् ॥ ८ ॥ कम्पनात् सिद्धिहानिः स्यादधूननं बहुदुःखदम् । शब्दे जाते भवेद्रोगः करभ्रष्टा

विनाशकृत् ॥ ९ ॥ छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत् ॥ १० ॥ जपान्ते कर्णदेशे वा उच्चदेशेऽथवा न्यसेत्। ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता। तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते इत्युक्ता परिपूज्याथ गोपयेद्यत्नतो गृही ॥ ११ ॥

कामनाभेदे अंगुलीनियममाह गौतमीये : तर्जन्यंगुष्ठयोगेन शत्रूच्चाटनकर्मणि। अंगुष्ठमध्यमायोगात् सर्वसिद्धिः सुनिश्चिता ॥ १२ ॥ अंगुष्ठानामिका योगादुच्चाटोच्छादने मते। ज्येष्ठाकनिष्ठायोगेन शत्रुणां नाशनं मतम् ॥ १३ ॥

वैशम्पायन संहितायाम् : अंगुष्ठमध्यमाभ्याञ्च चालयेन्मध्यमध्यतः। तर्जन्या न स्पृशेदेनां मुक्तिदो गणनक्रमः ॥ १४ ॥ जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रथयित्वा शतं जपेत्। प्रमादात् पतिता हस्तात् शतमष्टोत्तरं जपेत्। जपेन्निषिद्धसंस्पर्शं क्षालयित्वायथोदितम् ॥ १५ ॥ छिन्नेऽपि अष्टोत्तरशत-जपः कार्यः।

तदुक्तं कुब्जिकातन्त्रे : छिन्ने सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रथयित्वा शतं जपेदिति। करभ्रष्ट-छिन्नयोस्तुल्यफलकत्वात् ॥ १६ ॥

प्रकारान्तरमागमकल्पद्रुमे : भूतशुद्ध्यादिकां पूजां समाप्य तत्र पूजयेत्। गणेश-सूर्य-विष्णवीशान दुर्गाश्चावाह्य मन्त्रवित् ॥ १७ ॥ पञ्चगव्ये ततः क्षिप्त्वा ह्सौर्मंत्रेण मन्त्रवित्। तस्मादुत्तोल्य तां मालां स्वर्णपात्रे निधाय च ॥ १८ ॥ पयो-दधि-घृत-क्षौद्र-शर्कराद्यैरनुक्रमात्। तोयधूपान्तरैः कृत्वा पञ्चामृतविधिं बुधः ॥ १९ ॥ क्रमादत्रैव संस्थाप्य स्नापयेत् शीतलैर्जलैः। ततश्चन्दनगन्धेन कस्तूरी-कुंकुमादिभिः। तामालिप्य ह्सौर्मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् ॥ २० ॥ तस्यां नवग्रहांश्चैव दिक्पालांश्च प्रपूजयेत्। ततः सम्पूज्य च गुरुं गृह्णीयान्मालिकां शुभाम्। ॥ २१ ॥

अथ पुरश्चरणम् :

योगिनीहृदये : गुरोराज्ञां समादाय शुद्धान्तःकरणो नरः। ततः पुरस्क्रियां कुर्यान्मन्त्रसिद्धिकाम्यया ॥ २२ ॥

तस्य नित्यतामाह : जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः। तस्मादादौ स्वयं कुर्याद्गुरुं वा कारयेद्बुधः ॥ २३ ॥ गुरोरभावे विप्रं वा सर्वप्राणिहिते रतम्। स्निग्धं शास्त्रविदं मित्रं नानागुणसमन्वितम् ॥ स्त्रियं वा सगुणोपेतां सुपुत्रां विनियोजयेत् ॥ २४ ॥

अथ पुरश्चरणे स्थाननिर्णयः

योगिनीहृदये : आदौ पुरस्क्रियां कर्त्तुं स्थाननिर्णय उच्यते ॥ २५ ॥ पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहा पर्वतमस्तकम् । तीर्थप्रदेशाः सिन्धुनां सङ्गमः पावनं वनम् ॥ २६ ॥ उद्यानानि विविक्तानि विल्वमूलं तटं गिरेः । तुलसी-काननं गोष्ठं वृषशून्यं शिवालयम् ॥ २७ ॥ अश्वत्थामलकीमूलं गोशाला जलमध्यतः । देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजालयम् । साधने च प्रशस्तानि स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम् ॥ २८ ॥ सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च । विप्राणाञ्च गवाञ्चैव सन्निधौ शस्यते जपः ॥ २९ ॥ अथवा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति ॥ ३० ॥

तथा : गृहे शतगुणं विद्याद्गोष्ठे लक्षगुणं भवेत् । कोटिर्देवालये पुण्यमनन्तं शिवसन्निधौ ॥ ३१ ॥

ब्रह्मयामले : जपमेकगुणं गेहे गोष्ठे दशगुणं स्मृतम् । वनान्तरे शतगुणं तडागे च सहस्रकम् ॥ ३२ ॥ नदीतीरे लक्षगुणं नगाग्रे कोटिसम्मितम् । शिवालये कोटिशतमनन्तं गुरुसन्निधौ ॥ ३३ ॥

तथा : गृहे गोष्ठवनाराम-नदी-नग-शिवालये । गुरोर्वा सन्निधौ यत्र स जपः परमो मतः ॥ ३४ ॥ म्लेच्छ-दुष्ट-मृगवाल-शङ्कातङ्कविवर्जिते । एकान्तपावने निन्दारहिते भक्तिसंयुते ॥ ३५ ॥ सुदेशे धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे । रम्ये भक्तजनस्थाने निवसेत्तपसः प्रिये ॥ ३६ ॥ गुरूणां सन्निधाने च चित्तैकाग्रस्थले तथा । एषामन्यतमस्थानमाश्रित्य जपमाचरेत् ॥ ३७ ॥ यत्र ग्रामे जपेन्मन्त्री तत्र कूर्मं विचिन्तयेत् ॥३८॥

गौतमीये : पर्वते सिन्धुतीरे वा पुण्यारण्ये नदीतटे । यदि कुर्यात् पुरश्चर्यां तत्र कूर्मं न चिन्तयेत् ॥ ३९ ॥ ग्रामे वा यदि वास्तौ गृहे तञ्च विचिन्तयेत् ॥ ४० ॥

अथ पुरश्चरणे भक्ष्यादिनियमः

गौतमीये : पुरश्चरणकृन्मन्त्री भक्ष्याभक्ष्यं विचारयेत् । अन्यथा भोजनाद्दोषात् सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ ४१ ॥ शस्तान्नञ्च समश्नीयान्मन्त्रसिद्धिसमीहया । तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन शस्तान्नाशी भवेन्नरः ॥ ४२ ॥

अगस्त्यसंहितायाम् : दधिक्षीरंघृतंगव्यम् ऐक्षवं गुडवर्जितम् । तिलाश्चैव सिता मुद्गाः कन्दः केमुकवर्जितः ॥ ४३ ॥ नारिकेलफलञ्चैव कदली लवली तथा । आम्रमालकञ्चैव पनसञ्च हरीतकी । व्रतान्तरे प्रशस्तञ्च हविष्यं मन्यते बुधैः । व्रतारम्भ इति वा पाठः ॥४४॥ हैमन्तिकं

सिता स्विन्नं धान्यं मुद्गास्तिला यवाः। कलायकंकुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका। षष्टिकाकालशाकश्च मूलकं केमुकेतरत्। लवणे सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिणी। पयोनुद्धृतसारश्च पनसाम्रहरीतकी। पिप्पली जीरकश्चैव नागरङ्गश्च तिन्तिडी। कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् अतैलपक्वं मुनये हविष्यान्नं प्रचक्षते ॥ ४५ ॥ भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं यावकमेव वा। पयो मूलं फलं वापि यत्र यत्रोपलभ्यते ॥४६॥ रम्भाफलं तिन्तिडीकं कमलानागरङ्गकम्। फलान्येतानि भोज्यानि एभ्योऽन्यानि विवर्जयेत् ॥ ४७ ॥

यत्तु योगिनीतन्त्रे : चिञ्चाञ्च नालिकाशाकं कलायं लकुचं तथा। कदम्बं नारिकेलञ्च व्रते कुष्माण्डकं त्यजेत्। तत्तु व्रतान्तरे बोध्यम्।

अथ पुरश्चरणे वर्ज्यानि :

विवर्जयेन्मधु क्षारलवणं तैलमेव च। ताम्बूलं कांस्यपात्रञ्च दिव्यभोजनमेव च ॥ ४६ ॥ तथा : क्षारञ्च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम्। माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि। अन्नं पर्युषितञ्चैव निस्नेहं कीटदूषितम् ॥ ५० ॥

रामार्चनचन्द्रिकायाम् : मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत्। ऋतुकालं विना मन्त्रीस्वस्त्रियं नाभिसंस्पृशेत् ॥ ५१ ॥ लवणञ्चैव यत्क्षारं तथा क्षौद्रं रसान्तरम्। कौटिल्यं क्षौरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम् ॥५२॥ असंकल्पितकृत्यञ्च वर्जयेन्मर्दनादिकम्। स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा ॥ ५३ ॥ मन्त्रं जप्त्वान्नपानीयैः स्नानाचमनभोजनम्। कुर्याद्यथोक्तविधिना त्रिसन्ध्यां देवतार्चनम् ॥ ५४ ॥ त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा न मन्त्रं केवलं जपेत्। शक्त्या त्रिषवणं स्नानमशक्तौ द्वे सकृच्च वा ॥ ५५ ॥ अस्नातस्य फलं नास्ति न चातर्पयतः पितॄन्। अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रवृत्तोऽपि वा। प्रलपन् प्रजपेद्यावत्तावन्निष्फलमुच्यते। ॥ ५६ ॥

नारदीये : मृदु सोष्णं सुपक्वञ्च कुर्याद्धि लघु भोजनम्। नेन्द्रियाणां यथा वृद्धिस्तथा भुञ्जीत साधकः ॥ ५७ ॥

कुलार्णवे : यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते धर्मसञ्चयम्। अन्नदातुः फलस्यार्द्धं कर्त्तुश्चार्द्धं न संशयः। तस्मात् सर्व प्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत् सुधीः ॥ ५८ ॥ पुरश्चरणकाले तु सर्वकर्मसु शङ्करि। जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ॥ ५९ ॥ मनो दग्धं परस्त्रीभिः कथं

सिद्धिर्वैरानने। परान्नं भिक्षालब्धेतरविषयम्। भिक्षायां स्वात्वोत्पादनात् ॥ ६० ॥

तथा च : वैदिकाचारयुक्तानां शुचीनां श्रीमतां सताम्। सत्कुलस्थानजातनां भिक्षाशी चाग्रजन्मनाम् ॥ ६१ ॥

वामकेश्वरतन्त्रे : विहाय वह्निं न हि वस्तु किञ्चिद्ग्राह्यं परेभ्यः सति सम्भवे च। असम्भवे तीर्थवहिर्विशुद्धात् पर्वातिरिक्ते पतिगृह्य जपात्। तत्रासमर्थोऽनुदिनं विशुद्धाद्याचेत यावद्दिनमात्रभक्ष्यम्। गृह्णाति रागादधिकं न सिद्धिः प्रजायते। कल्पशतैरमुष्य ॥ ६२ ॥

सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत्। प्रोक्ते पारसवे शब्दे प्राणायामं सकृच्चरेत् ॥ ६३ ॥ वहुप्रलापी चाचम्य न्यास्याङ्गानि ततो जपेत्। क्षुतेऽप्येवं तथाऽस्पृश्यस्थानानां स्पर्शनेऽपि च। एवमादींश्च नियमान् पुरश्चरणकृच्चरेत् ॥ ६४ ॥ विण्मुत्रोत्सर्गशङ्कादियुक्तः कर्म करोति यः जपार्चनादिकं सर्वमपवित्रं भवेत् प्रिये ॥ ६५ ॥ मलिनाम्बरकेशादिमुखदौर्गन्ध्यसंयुतः। यो जपेत्तं दहत्याशु देवता गुप्तिसंस्थिता ॥ ६६ ॥ आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुतं निष्ठीवनं भयम्। नीचाङ्गस्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ एवमुक्तविधानेन विलम्बं त्वरितं विना। उक्तसंख्यां जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये ॥ ६८ ॥ देवतागुरुमन्त्रणामैक्यं सम्भावयन् धिया। जपेदेकमनाः प्रातःकालान्मध्यन्दिनावधि ॥ ६९ ॥ यत्संख्यया समारब्धं तत्कर्त्तव्यमहर्निशम्। यदि न्यूनाधिकं कुर्याद्व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥ ७० ॥

गौतमीये : न वीक्षेत् पतितं व्रात्यं पिशुनं देवनिन्दकम्। तथाऽनाश्रमिनं विप्रं तथा विश्वविनिन्दकम् ॥ ७१ ॥

मुण्डमालायाम् : यत्संख्यया समारब्धं तज्जप्तव्यं दिने दिने। न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यमासमाप्तं सदा जपेत्। प्रजपेदुक्तसंख्यायाश्चतुर्गुणजपः कलौ ॥ ७२ ॥

अन्यत्रापि : कृते जपस्तु कल्पोक्तस्त्रेतायां द्विगुणो जपः। द्वापरे त्रिगुणं प्रोक्तश्चतुर्गुणजपः कलौ ॥ ७३ ॥

कुलार्णवेऽपि : न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति कदाचन। यथाविधि कृतान्येव तत्कर्माणि फलन्ति हि ॥ ७४ ॥ भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनन्चाचार्यसेविता। नित्यां त्रिषवणं स्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम्। नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्त्तनम्। नैमित्तिकार्चनञ्चैव विश्वासो

गुरुदेवयोः। जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ॥ ७५ ॥ स्त्रीशूद्र-पतितव्रात्यनास्तिक्येच्छिष्टभाषणम्। असत्यभाषणञ्चैव जृम्भणं परिवर्जयेत्। सत्येनापि न भाषेत जपहोमार्चनादिषु। अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम् ॥ ७६ ॥ पुरश्चरणकाले तु यदि स्यान्मृतसूतकम्। तथापि कृतसङ्कल्पोव्रतं नैव परित्यजेत् ॥ ७७ ॥

योगिनीहृदये : शयित कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा। प्रत्यहं क्षालयेत् शय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ॥ ७८ ॥ असत्यभाषणं वाच्य कौटिल्यं परिवर्जयेत्। वर्जयेद्गीतवाद्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम् ॥ ७९ ॥ अभ्यङ्गं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च। त्यजेदुष्णोदकस्नानमन्यदेवप्रपूजनम् ॥ ८० ॥ तत्रैव नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्राकुलोऽपि वा ॥ ८१ ॥

वैशम्पायनसंहितायाम् : विपर्यासं न कुर्याच्च कदाचिदपि मोहतः। उपर्यधो वहिर्वस्त्रे पुरश्चरणकृन्नरः विनियोगविधाने न भवेदनियमः क्वचित् ॥ ८२ ॥ पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते। क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥ ८३ ॥ तथाचम्य च तत्प्राप्तौ प्राणायामं षडङ्गकम्। कृत्वा सम्यग्जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् आदिसदावह्नि ब्राह्मणञ्च ॥ ८४ ॥

तत्रान्तरे : मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्। अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः। उष्णिषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गणावृतः। अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत् क्वचित् ॥ ८५ ॥ अनासनः शयानो वा गच्छन् भुञ्जान एव वा। अप्रावृतकरौ कृत्वा शिरसि प्रावृत्तोऽपि वा। चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्षुब्धो भ्रान्तः क्षुधान्वितः रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमिरावृते। उपानदगूढपादो वा यानशय्यागतस्तथा। प्रसार्य न जपेत् पादावुत्कटासन एव वा। न यज्ञकाष्ठे पाषाणे न भूमौ नासने स्थितः। मार्जारं कुक्कुटं क्रौञ्चं श्वानं शूद्रं कपिं खरम्। दृष्ट्वाचाम्यजपेच्छेषं स्पृष्ट्वास्नानं विधीयते। सर्वत्र जपे अयं नियमः। मानसेतु नियमो नास्त्येव ॥ ८६ ॥

तथा च : अशुचिर्वापि शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि। मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्। न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा ॥ ८७ ॥ श्यामादिविद्याजपे तु तत्प्रकरणे विशेषो द्रष्टव्यः ॥ ८८ ॥

अथ जपफलम् :

शिवधर्मे : जपनिष्ठो द्विजश्रेष्ठोऽखिलयज्ञफलं लभेत् । सर्वेषामेव यज्ञानां जायतेऽसौ महाफलः ॥ ८९ ॥ जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति । प्रसन्ना विपुलान् कामान् दद्यान्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ॥ ९० ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सर्पाश्च भीषणाः । जल्पिनं नोपसर्पन्ति भय-भीताः समन्ततः ॥ ९१ ॥

पद्मनारदीययोः : यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युः प्रतिष्ठादितपांसि च । सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ९२ ॥ माहात्म्यं वाचिकस्यैत-ज्जपयज्ञस्य कीर्त्तितम् । तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ९३ ॥ मानसः सिद्धकामानां पुष्टिकामैरुपांशुकः । वाचिको मारणे चैव प्रशस्तो जप ईरितः ॥ ९४ ॥

गौतमीये : शक्त्या त्रिषवणं स्नानमशक्तो द्विः सकृच्च वा । त्रिसन्ध्यं प्रजपेन्मन्त्रं पूजनञ्च समं भवेत् । सन्ध्यात्रये पूजाङ्गत्वात्जपमष्टोत्तर-शतमित्यर्थः ॥ ९५ ॥ एकदा वा भवेत्पूजा जपेत्तत्पूजनं विना । जपान्ते वा भवेत्पूजा पूजान्ते वा जपेन्मनुम् ॥ ९६ ॥ प्रातःकाले समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि । (मध्यन्दिनावधीति न नियमपरं किन्त्वधिककाल-व्यवच्छेदपरम् । अन्यथा तत्समयजपनियमे कदाचित्जिह्वाया जाड्या-जाड्येन प्रतिनियतजपसंख्याया अपूर्णत्वे अधिकत्वे वा नियमभङ्गः स्यात्) ॥ ९७ ॥ मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगतमानसः । न द्रुतं न विलम्बञ्च जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥ ९८ ॥

अथ जपनिरूपणम् :

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः । धिया यदक्षरश्रेणीं वर्ण-स्वरपदात्मिकाम् । उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः ॥ ९९ ॥ जिह्वोष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागतमानसः । किञ्चित्श्रवणयोग्यः स्यादु-पांशुः स जपः स्मृतः ॥ १०० ॥

विशुद्धेश्वरतन्त्रे : निजकर्णागोचरोऽयं स जपो मानसः स्मृतः । उपांशुर्निजकर्णस्य गोचरः परिकीर्त्तितः ॥ १ ॥ मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा स जपो वाचिकः स्मृतः । उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः ॥ २ ॥ जिह्वाजपः शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ३१ ॥

तन्त्रान्तरे : उच्चैर्जपोऽधमः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमः स्मृतः । उत्तमो मानसो देवि ! त्रिविधः कथितो जपः । जिह्वाजपः सविज्ञेयः केवलं

जिह्वया बुधैः। अतिह्रस्वो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः। अक्षराक्षरसंयुक्तं जपेन्मौक्तिकहारवत् ॥ ५ ॥ मनसा यत्स्मरेत्स्तोत्रं वचसा वा मनुं स्मरेत्। उभयं निष्फलं याति भिन्नभाण्डोदकं यथा ॥ ६ ॥

गौतमीये : पशुभावे स्थिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलाः। सौषुम्नध्वन्युच्चरिता प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते ॥ ७ ॥ मन्त्राक्षराणि चित्शक्तौ प्रोतानि परिभावयेत्। तमेव परमव्योम्नि परमानन्दवृंहिते। दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना ॥ ८ ॥

गौतमीये दशाक्षरपटले : मूलमन्त्रं प्राणबुद्ध्या सुषुम्नामूलदेशके। मन्त्रार्थं तस्य चैतन्यं जीवं ध्यात्वा पुनः पुनः ॥ ९ ॥

कुलार्णवेऽपि : मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः। न सिध्यति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि ॥ १० ॥ जातसूतकमादौ स्यादन्ते च मृतसूतकम्। सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्रः स न सिध्यति ॥ ११ ॥ गुरोस्तद्रहितं कृत्वा मन्त्रं यावज्जपेद्धिया। सूतकद्वयनिर्मुक्तः स मन्त्रः सर्वसिद्धिदः ॥ १२ ॥

तत्रैव : तस्माद्देवि ! प्रयत्नेन ध्रुवेण पुटितं मनुम्। अष्टोत्तरशतं वापि सप्तवारं जपादितः। जपान्ते च ततो जप्याच्चतुर्वर्गफलाप्तये। ब्रह्मबीजं मनोर्दत्त्वा चाद्यन्ते परमेश्वरि। सप्तवारं जपेन्मत्रं सूतकद्वयमुक्तये ॥ १३ ॥ मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः। शतकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥ १४ ॥ लुप्तबीजाश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये। मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः ॥ १५ ॥ चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलाः। फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिशतैरपि ॥ १६ ॥ मन्त्रोच्चारे कृते यादृक् स्वरूपं प्रथमं भवेत्। शते सहस्रे लक्षे वा कोटिजापे न तत्फलम् ॥ १७ ॥ हृदये ग्रन्थिभेदः स्यात्सर्वावयववर्द्धनम्। आनन्दाश्रुणि पुलको देहावेशः कुलेश्वरि। गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशयः ॥ १८ ॥ सकृदुच्चरितेऽप्येवं मन्त्रे चैतन्यसंयुते। दृश्यन्ते प्रत्यया यत्र पारस्पर्यं तदुच्यते ॥ १९ ॥ मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्यादि संयुतम्। क्रमोत्क्रमात्सहस्रस्तु तस्य सिद्धो भवेन्मनुः। ॥ २० ॥

तत्र भूतलिपिः : पञ्चह्रस्वाः सन्धिवर्णा व्योमेराग्निजलन्धराः। अन्त्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ॥ २१ ॥ पञ्चवर्गाक्षराणि

स्युर्वान्तश्वेतेन्दुभिः सह। एषा भूतलिपिः द्विचत्वारिंशदक्षरैः। एवं जपं पुरा कृत्वा तेजोरूपं समर्पयेत्। देवस्य दक्षिणे हस्ते कुशपुष्पार्घ्य-वारिभिः ॥ २२॥ सफलं तद्विभाव्यैवं प्राणायामं समाचरेत् ॥ २३ ॥ जपस्यादौ जपान्ते च त्रितयं त्रितयश्चरेत् ॥ २३ ॥ शक्तिविषये देव्या वामहस्ते।

तथा च : एवं जपं पुरा कृत्वा गन्धाक्षतकुशोदकैः। जपं समर्पये-द्देव्या वामहस्ते विचक्षणः ॥२४॥ जपान्ते प्रत्यहं देवि होमयेत्तद्दशांशतः। तर्पणश्चाभिषेकश्च तत्तद्दशांशतो मुने। प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् न्यूना-धिक्यप्रशान्तये। अथवा सर्वसम्पूर्णे होमादिकमथाचरेत् ॥ २५ ॥

मुण्डमालायाम् : यस्य यावान् जपः प्रोक्तस्तद्दशांश जपः क्रमात्। तत्तद्द्रव्यैर्जपस्यान्ते होमं कुर्याद्दिने दिने। अथवा लक्षसंख्यायां पूर्णायां होममाचरेत् ॥ २६ ॥

तथा होमाद्यशक्तौ च सनत्कुमारतन्त्रे : यद्यदङ्गं भवेद्भङ्गं तत्संख्याद्विगुणो जपः। होमाभावे जपः कार्यो होमसंख्याचतुर्गुणः ॥२७॥ विप्राणां क्षत्रियाणाञ्च रससंख्यागुणः स्मृतः। वैश्यानां वसुसंख्याकमेषां स्त्रीणामयं विधिः ॥ २८ ॥ यं वर्णमाश्रितः शूद्रः स च तस्य विधिञ्चरेत्। अनाश्रितस्य शूद्रस्य दिक्संख्याकः समीरितः ॥ २९ ॥ शूद्रस्य विप्रभक्तस्य तत्पत्न्याः सदृशो जपः ॥ ३० ॥

योगिनीहृदये : होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः। इत-रेषान्तु वर्णानां सर्वेषां त्रिगुणादिः समीरितः। त्रिगुण इति त्रिगुणादि-होमसंख्यात्रिगुणजपः क्षत्रियेण कार्यः। वैश्येन चतुर्गुणः शूद्रेण पञ्चगुणः ॥ ३१ ॥

तदुक्तं कुलप्रकाशे : यद्यदङ्गं विहीनं स्यात्तत्संख्याद्विगुणो जपः। कुर्वीत त्रिचतुःपञ्च यथासंख्यं द्विजातयः। एतेन स्त्रीशूद्राणां होमा-धिकारः ॥ ३२ ॥ तथा च शूद्राणां त्र्यस्रमीरितमिति कुण्डप्रकरणे शारदयाम स्त्रीणां होमाधिकारश्च।

तत्रैव : लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमं कन्या प्रयच्छति। अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वाञ्छितम्। अतएव स्त्रीणां होमाधिकारः स च ब्राह्मणद्वारा ॥ ३३ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे : ओंकारोच्चारणाद्धोमात्शालग्रामशिलार्चनात्। ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्। इति साक्षान्निषेधात् ॥

तथा : स्त्रीणामपि सर्वत्रवैदिककर्मसु शूद्रतुल्यत्वप्रतिपादनात्।

"स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रपातो ममोपरि" इति भगवद्वचनात् ॥३४॥

नृसिंहतापनीयेऽपि : सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रयोर्नेच्छन्ति स मृतोऽधोगच्छति नेच्छन्तीति पर्यन्तं पराशरभाष्येऽपि गोविन्दभट्ट-धृतम् । "स्वाहाप्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद्विजः । शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्" । यजुर्वेदः । लक्ष्मीः श्रीबीजमित्यर्थः ॥३५॥

तथा नारायणकल्पेऽपि : अष्टाक्षरो महामन्त्रः सप्तार्णः शूद्रयोषितोः । प्रणवादिश्च यो मन्त्रो न स्त्रीशूद्रे प्रशस्यते । इति सर्वत्र स्त्रीणां शूद्र-वद्व्यवहारः । शूद्रस्यापि स्वकर्तृकहोम इति केचित् ॥ ३६ ॥

तथा च वाराहीतन्त्रे : यदि कामी भवत्यत्र शूद्रोऽपि होमकर्मणि । वह्निजायां परित्यज्य हृदयान्तेन होमयेत् ॥ ३७ ॥ सर्वेषां द्विगुणजपः ॥

तथा च वसिष्ठे : यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणो जपः । कर्त्तव्य-श्चाङ्गसिद्धार्थं तदशक्तेन भक्तितः ॥ ३८ ॥ न चेदङ्गं विहीयेत तद्विशिष्ट-मवाप्नुयात् । विप्रभोजनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्ध्रुवम् । यद्यद्भुङ्क्ते द्विजः साक्षात्तत्तद्भुङ्क्तेहरिः स्वयम् ॥ ३९ ॥

तथागस्त्यसंहितायाम् : यदि होमेऽप्यशक्तः स्यात्पूजायां तर्पणेऽपि वा तावत्संख्याजपेनैव ब्राह्मणाराधनेन च । भवेदङ्गद्वयेनैव पुरश्चरण-मार्यं वै ॥ ४० ॥

वीरातन्त्रे : नियमः पुरुषे ज्ञेया न योषित्सु कथञ्चन । न न्यासो योषितामत्र न ध्यानं न च पूजनम् । केवलंजपमात्रेण मन्त्राः सिध्यन्ति योषिताम् । आचार्यमते विप्रभोजनेऽप्यनुकल्पः ॥ ४१ ॥

तथा च मुण्डमालायाम् : यदि पुजाद्यशक्तश्चेद्द्रव्यभावेन सुन्दरि । केवलं जपमात्रेण पुरश्चर्या विधीयते । अत्र ब्राह्मणभोजनमावश्यकमेव । सर्वथा भोजयेद्द्विजान्कृतसङ्कल्पसिद्धये । विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

कुलार्णवे : दीक्षाहीनान्पशून्यस्तु भोजयेद्वा स्वमन्दिरे । स याति परमेशानि नरकानेकविंशतिम् ॥ ४३ ॥ एवं यः कुरुते देवि । पुरश्चरणकं प्रिये । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४३ ॥

तथा : तद्दशांशेन विप्रांश्च कौलिकानथ भोजयेत् । क्षीरखण्डाद्य-भोज्यैश्च वहुमानपुरःसरम् ॥ ४५ ॥

ततश्च : गुरुवे दक्षिणान्दद्याद्भोजनाच्छादनादिभिः । गुरुसन्तोष-मात्रेण मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । गुरोरभावे तत्पुत्राय तत्पत्न्यै वा

निवेदयेत् । तयोरभावे देवेशि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ ४६ ॥ सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य पश्चाङ्गोपासनेन च । सर्वे मन्त्राश्च सिध्यन्ति तत्प्रसादात् कुलेश्वरि ॥ ४७ ॥ गुरुमूलमिदं सर्वमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः । एकग्रामे स्थितो नित्यं गत्वा वन्देत वै गुरुम् । गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मादौ तमर्चयेत्। तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात्साधकसत्तमः । सुवासिनीं कुमारीश्च भूषणैरपि भूषयेत् । मिष्टान्नं वहुशं कार्यं भुञ्जीत बन्धुभिः सह । एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेत्सकलेप्सितान् ॥ ४८ ॥

मतान्तरे पुरश्चरणविधिः

तन्त्रे : अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वोमुपोषितः । नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः । स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ ४९ ॥

यदि नक्रादिदूषिता नदी भवति तदा यत्कर्त्तव्यं तदाह रुद्रयामले : अपि शुद्धोदके स्नात्वा शुचौ देशे समाहितः । ग्रासाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । इति कृत्वा न सन्देहो जपस्य फलभाग्भवेत् । ॥ ५० ॥

नद्यभावे : यद्वा पुण्योदके स्नात्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः । ग्रहणादिविमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥ ५१ ॥

उपवासासमर्थे तु तत्रैव : अथवान्यप्रकारेण पौरश्चारणिकोविधिः । चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः । स्पर्शनादि विमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः । जपाद्दशांशतो होमं तथा होमात्तु तर्पणम् । तर्पणस्य दशंशेन चाभिषेकं समाचरेत् । अभिषेकदशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । एवं कृत्वा तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ॥ ५२ ॥

गोपाल मन्त्र तर्पणे तु होमसंख्यत्वम् ।

यथा : "इह गोपालमन्त्राणां तर्पणं होमसंख्यया" इत्यादि ॥ ५३ ॥ दृष्टा स्नात्वा ससङ्कल्पो विमोक्षान्तं जपं चरेत् । तावद्यज्ञादिकं कुर्याद् ग्रहणान्ते शुचिः पुमान् । एवं जपान्मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः । ग्रहणे जपस्यावश्यकत्वम् ॥ ५४ ॥ श्राद्धादेरनुरोधेन यदि जपं त्यजेन्नरः । स भवेद्देवताद्रोही पितॄन सप्त नयत्यधः । इति सनत्कुमारवचनात् । वस्तुतस्तु आरब्धपुरश्चरणविषयमिदम् ।

तथा हि : आरब्धे पुरश्चरणे यदि च ग्रहणं भवेत्तदा श्राद्धाद्यनुरोधेन जपं नैव त्यजेत् । इत्येकवाक्यत्वात् : (सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै

राहुदर्शने। अकुर्वाणन्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति। इति प्रतिकूल-वाक्यपराहतत्वाच्च इत्यधिकपाठः आगमतत्त्वविलासे।) एवं रात्रावपि पुरश्चरणविशेषे बोद्धव्यम्। इति सर्वसमञ्जसम्॥ ५६॥

योगिनीहृदये : कल्पोक्तविधिना मन्त्री कुर्याद्धोमादिकं ततः। अथवा तद्दशांशेन होमादींश्च समाचरेत्॥ ५७॥

तथा : अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकञ्चरेत्। तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद्ब्राह्मणतोषणम्। ततो मन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत्। एवञ्च मन्त्रसिद्धिः स्याद्देवता च प्रसीदति॥ ५८॥

क्रियासारे : दीक्षाहीनान्पशून्यस्तु भोजयेद्वा स्वमन्दिरे। स याति परमेशानि नरकानेकविंशतिम्॥ ५९॥

यद्यपि पुरश्चरणपदं पञ्चाङ्गपरं तथा च : जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम्। पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमुच्यते। तथापि ग्रहणादौ पुरश्चरणपदं गौणं जपमात्रपरम्। सूर्योदयात्समारभ्य यावत्सूर्योदया-वधि। तावज्जप्तो महेशानि पुरश्चरणमिष्यते। इत्यादौ तथा दर्शनात्। ॥६०॥ तत्रहोमादेरभावात्तर्हि कथं ग्रहणपुरश्चरणे होमदिरिति चेद्वचनादेव जायते। न च पुरश्चरणस्य पञ्चाङ्गत्वात्सर्वत्र तदेव स्यादिति वाच्यं ग्रहणे तद्विधानमनर्थकं स्यात्। किन्तु ग्रहणे होमादिनियमान्नान्यत्र होमादिः। गृहणपुरश्चरणे होमादिविधानन्तु प्रकृतीभूतपञ्चाङ्गपुरश्चरण-तुल्यत्वबोधनाय। अतएव ग्रहणे पाञ्चङ्गस्वरूपपुरश्चरणे कृते मुख्य-प्रयोगेऽप्यधिकार इति प्रकटिकृतम्। तदकरणे पुनः केवलजपमात्रपुरश्चरणे कृते नाधिकार इति सर्वसम्मतम्॥ ६१॥

पुरश्चरणकालस्तु वाराहीतन्त्रे : चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि। आरभेत पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत्॥ ६२॥

प्रतिप्रसवस्तु रुद्रयामले : कार्त्तिकाश्विन-वैशाख-माघेऽथ मार्ग-शीर्षके। फाल्गुने श्रावणे दीक्षा पुरश्चर्या प्रशस्यते। ग्रहणे च महातीर्थे न कालमवधारयेत्॥ ६३॥

ग्रसान्ते ग्रस्तोदये दीक्षापुरश्चरणयोर्निषेधमाह तन्त्रान्तरे : ग्रसास्ते ह्युदिते नैव कुर्याद्दीक्षाजपं प्रिये। कृते नाशो भवेदाशु ह्यायुःश्रीसुत-सम्पदाम्॥६४॥ तत्र तावद्भूमेः परिग्रहं कृत्वा पुरश्चरणप्राक् तृतीयदिवसे क्षौरादिकं विधाय वेदिकायाश्चतुर्दिक्षु क्रोशं क्रोशद्वयं वा क्षेत्रं चतुरस्रं आहारादिविहारार्थं परिकल्प्य तत्र कूर्मचक्रानुरूपं मण्डपं विधाय

एकभक्तं कुर्यात् । ततः परदिने स्नानादिकं विधाय शुद्धः सन् वेदिकाया-श्चतुर्दिक्षु अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षाणामन्यतमस्य वितस्तिमात्रान्दशकीलान् ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट् इति मन्त्रेणाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितान्वेदिकाया दशदिक्षु ॐ ये चात्र विघ्नकर्त्तारो भुवि दिव्यन्तरिक्षगाः । विघ्नभूताश्च ये चान्ये मम मन्त्रस्य सिद्धिषु । ममैतत्कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः । अपसर्पन्तु ते सर्वे निर्विघ्नं सिद्धिरस्तु मे । इत्यनेन निखन्य तेषु 'ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' इति अस्त्रं सम्पूज्य तेषु पूर्वादिक्रमेण इन्द्रदिलोकपालान्पूजयेत् ।

यथा : भूर्भुवः स्वः इन्द्रलोकपाल इहागच्छ इत्यावाह्य । पञ्चोपचारैः पूजयेत् । एवंक्रमेण अन्यानपि पूजयेत् ॥ ६५ ॥

तथा च मुण्डमालायाम् : पुण्यक्षेत्रादिकं गत्वा कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् । तथा ह्यमुकमन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये । मयेयं गृह्यते, भूमिर्मन्त्रोऽयं सिध्यतामिति ।

तथा च : ग्रामे क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ स्वेच्छया मतम् । नगरादावपि क्रोशं क्रोशयुग्ममथापि वा । (क्षेत्रं वा यावदिष्टन्तु विहारार्थं प्रकल्पयेत्) । आहारादि विहारार्थं तावतीं भूमिमाक्रमेत् । क्षीरिवृक्षोद्भवान्कीलान् अस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितान् । निखनेद्दशदिग्भागे तेष्वस्त्रञ्च प्रपूजयेत् । लोकपालान्पुनस्तेषु गन्धाद्यैः पूजयेत्सुधीरिति ॥ ६६ ॥ ततो मध्यस्थाने क्षेत्रपालं वास्त्वीशञ्च सम्पूज्य सर्वविघ्नविनाशार्थं गणपतिं पूजयेत् ।

यथा : ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा मत्कर्त्तव्यामुकदेवतामुकमन्त्रपुरश्चरणकर्मणि सर्वविघ्नविनाशार्थं गणेशपूजामहं करिष्ये । इति संकल्प्य वेदिकामध्ये पञ्चोपचारैर्गणेशं पूजयेत् ॥ ६७ ॥

तदुक्तम् : क्षेत्रपालादिकं तत्र पूजयेद्विधिवत्ततः । क्षेत्रेशं वास्तुनामानं विघ्नराजं समर्चयेत् । दिक्पालेभ्यो बलिं दद्यात्ततः क्षेत्रं समाविशेत् । ततो मासभक्तादिना पूजितदेवताभ्यो बलिं दद्यात् ।

ततः : ॐ ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः । मातरोऽप्युग्ररूपाश्च गणाधिपतयश्च ये । विघ्नभूताश्च ये चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः । सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् । इत्यनेन दशदिक्षु भूतेभ्यो बलिं दद्यात् । ततो गायत्रीं जपेत् ।

तथा च : प्रातः स्नात्वा तु गायत्र्याः सहस्रं प्रयतो जपेत् । ज्ञाता-

ज्ञातस्य पापस्य क्षयार्थं प्रथमं ततः। इति विद्याधराचार्यः : विप्रान्सन्तर्पयेदर्थंतोषणाच्छादनासनैः। बहुभिर्वस्त्रभूषाभिः सम्पूज्य गुरुमात्मनः। आरभेत जपं पश्चात्तदनुज्ञापुरःसरमिति।

गायत्री पुनस्तत्तद्देवतायाः यथा गोविन्दवृन्दावने : जपात्पूर्वं जपेत्कृष्णगायत्रीं सर्वपापहाम्। अयुतैकप्रमाणेन एनसो न्यूनहेतवे : इति कृष्णगायत्रीस्वरसादन्यत्रापि तथा अतएव स्त्रीशूद्रे साधारणमिति माधवाचार्यः। यत्तु "प्रातः स्नात्वा तु सावित्र्या अयुतं प्रयतो जपेदिति" तत्पुनरत्यन्तपापशङ्कया। ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा ज्ञाताज्ञातपापक्षयकामः अष्टोत्तरसहस्रसावित्रीजपमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य जपेत् अयुतं वा कुर्यात्। तत उपवासत्हविष्यं वा कुर्यात्। परदिने उषसि स्नानादिकं कृत्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात् ॥ ६८ ॥ ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धकाशेषदुरितक्षयपूर्वक-तन्मंत्रसिद्धिकामोऽद्यारभ्य यावता कालेन सेत्स्यति तावत्कालं अमुकमन्त्रस्य इयत्-संख्यक जप-तद्दशांशहोम-तद्दशांशतर्पण-तद्दशांशाभिषेक -तद्दशांश-ब्राह्मणभोजन-रूपपुरश्चरणमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य भूतशुद्धिप्राणायामादिकं कृत्वा स्वस्वमुद्रां बध्वास्वस्वपद्धत्युक्त क्रमेण देवतां सम्पूज्य दीपे प्रज्वलिताकारां देवतां हृदये कृत्वा प्रातःकालमारभ्य मध्यन्दिनं यावत्जपं कुर्यात्। ततो होमस्ततस्तर्पणम् ॥ ६९ ॥

कुलार्णवे : तर्पणन्तु ततः कुर्यात्तीर्थोदकैश्चन्द्रमिश्रितैः। जले देवं समावाह्य पाद्याद्यैरुदकात्मकैः। सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या परिवार-समन्वितम्। एकैकमञ्जलिं तोयं परिवारान्प्रतर्पयेत्। ततो होमदशांशेन तर्पयेत्परदेवताम्। सम्पूर्णायान्तु संख्यायां पुनरेकैकमञ्जलिम्। तर्पण-वाक्यन्तु स्नानप्रकरणे वक्तव्यम् ॥ ७० ॥

अथाभिषेकवाक्यम् :

नमोऽन्तं मूलमुच्चार्य अमुकदेवतामहमभिषिञ्चामि इति कलशमुद्रया स्वमूर्ध्नि अभिषेचयत्।

तथा च गौतमीये : नमोऽन्तं मूलमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम्। द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु। अभिषिञ्चत्स्वमूर्द्धानं तोयैः कुम्भाख्यमुद्रया ॥ ७१ ॥

शक्ति विषये नीलतन्त्रे : "मूलान्ते नाम चोच्चार्य सिञ्चामीति नमः पादमिति"।

ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणां कुर्यात् : ॐ अद्येत्यादि कृतैतदमुकदेवताया अमुकमन्त्र पुरश्चरणकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं वह्निदैवतं अमुकगोत्राय गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे ततोऽच्छिद्राव-धारणं कुर्यात् ॥ ७२ ॥

अथ ग्रहणपुरश्चरणसङ्कल्पः :

तद्यथा : ॐ अद्येत्यादि राहुग्रस्ते दिवाकरे निशाकरे वा अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामो ग्रासाद्विमुक्ति पर्यन्तं अमुकदेवतामुकमन्त्रजपरूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य जपेत् । ततस्तद्दिने तत्परदिने वा स्नानं विधाय ॐ अद्येत्यादि अमुक-मंत्रस्य कृतैतदमुकग्रहण-कालीनअमुकदेवतामुकमंत्रेयत्संख्यक-जपतद्दशांश-होम-तद्दशांश - तर्पण - तद्दशांशाभिषेक - तद्दशांश- ब्राह्मणभोजनकर्माण्यहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य होमादिकं कर्म कृत्वा पूर्ववद्दक्षिणादिकं कुर्यादिति पुरश्चरणप्रयोगः ॥ ७३ ॥

अथ कूर्मचक्रम् : (देखिये चित्र ७)

दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम् । पुरुषो दीप्यते यत्र दीपस्थानं तदुच्यते ॥ ७४ ॥ चतुरस्रां भुवं भित्त्वा कोष्ठानां नवकं लिखेत् । पूर्वकोष्ठादि विलिखेत्सप्तवर्गाननुक्रमात् । लक्ष्मीशे मध्यकोष्ठे स्वरान् युग्मक्रमाल्लिखेद्दिक्षु पूर्वादितो यत्र क्षेत्राद्यक्षरसंस्थितिः । मुखन्तत्तस्य जानीयात्हस्तावुभयतः स्थितौ । कोष्ठे कुक्षौ उभे पादौ द्वे शिष्टं पुच्छमीरितम् । क्रमेणानेन विभजेन्मध्यस्थमपि भागतः ॥ ७५ ॥ मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्पजीवनः । उदासीनः कुक्षिसंस्थः पादस्थो दुःखमाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ पुच्छस्थः पीडयते मन्त्री बन्धनोच्चाटनादिभिः । कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदायकम् ॥ ७७ ॥

पिङ्गलायाम् : कूर्मचक्रमविज्ञाय यः कुर्याज्जपयज्ञकम् । तस्य यज्ञफलं नास्ति सर्वानर्थाय कल्पते ॥ ७८ ॥

अथ मन्त्राणां दशसंकाराः

गौतमीये : जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा । अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः । तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः ॥७९॥ स्वर्णादिपात्रे संलिख्य मातृकायन्त्रमुत्तमम् । काश्मीरचन्दनेऽपि भस्मना वाथ सुव्रते । काश्मीरं शक्ति-संस्कारे चन्दनं वैष्णवे मनौ । शैवे भस्म समाख्यातं मातृकायन्त्रलेखने ॥ ८० ॥

अथ मातृकायन्त्रम् (देखिये चित्र ८, ९)

व्योमेन्दूरसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरम्, वर्गोल्लासि वसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम्। आशास्वस्त्रिपु लान्तलाङ्गलियुजा क्षौणि-पूरेणावृतं, यन्त्रं वर्णतनोः परं निगदितं सौभाग्यसम्पत्करम् ॥ यन्त्रस्य दिक्षु वं विदिक्षु ठं लिखेत् ॥ ८१ ॥

तथा च गौतमीये : कादिमान्तान्पञ्चवर्गान्दिक्षु पूर्वादितो न्यसेत्। यादिवान्ताः शादिहान्ताः लक्ष्ममीशे प्रविन्यसेत्। चतुरस्रं चतुर्द्वारं दिक्षु वं ठं विदिक्षु च। इति मातृकायन्त्रम् ॥ ८२ ॥

अथ मन्त्राणां दशसंकाराः

मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो जननं स्मृतम्। पंक्तिक्रमेण विधिना मुनिभिस्तत्रनिश्चितम्। प्राणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णाञ्जपेत्सुधीः। प्रत्येकं शतवारं तु जीवनं तदुदाहृतम्। दशसंख्यो वा जपः ॥ ८३ ॥

विश्वसारे : पृथक्शतं वा दशधा मन्त्रवर्णाञ्जपेत्सुधीरिति। मन्त्र-वर्णान्समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा। प्रत्येकं वायुबीजेन पूर्ववत्ताडनं मतम्। ताडनं शतधा वा ॥ ८४ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे : ताडनं ताडयेद्वर्णानखिलांश्चन्दनाम्भसा। शतं वा दशधा वापि बोधयेत्तुमनुं ततः ॥ ८५ ॥

विश्वसारे : दशधा शृणु देवेशि ताडनं परिकीर्त्तितम्। विलिख्य मन्त्रवर्णांस्तु प्रसूनैः करवीरजैः। तन्मन्त्रवर्णसंख्याकैर्हन्याद्रेफेण बोधनम् ॥ ४६ ॥

तन्त्रान्तरे : विलिख्याक्षरसंख्याकैः पुष्पै रक्तहयारिभिः। मन्त्र-वर्णान्वह्निनैकमभिमन्त्र्य सकृत्सकृत्। तत्तन्मन्त्रोक्त-विधिना अभिषेकः प्रकीर्त्तितः। अश्वत्थपल्लवैः सिञ्चेन्मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया ॥ ८७ ॥ सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं सुषुम्नामूलमध्यतः। ज्योतिर्मन्त्रेण विधिवद्दहेन्मलत्रयं यतिः ॥ ८८ ॥ तारं व्योमाग्निमनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः। तारं प्रणवः। व्योमो हकारः। अग्निरेफः। मनुरौकारः। दण्डी अनुस्वारः। तेन ॐ ह्रौं ॥ ८९ ॥ स्वर्णेन कुशतोयेन पुष्पतोयेन वा तथा। तेन मन्त्रेण विधिवदाप्यायनविधिः स्मृतः ॥ ९० ॥ मन्त्रेण वारिणा मन्त्रे तर्पणं तर्पणं मतम् ॥ ९१ ॥

मधुना शक्तिमन्त्रे तु वैष्णवे चेन्दुमज्जलैः। शैवे घृतेन दुग्धेन तर्पणं सम्यगीरितम्। अभिषेकेऽपि तथा ॥ ९२ ॥ तारमाया-रमायोगे मनो-

दीपनमुच्यते । जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम् ॥९३॥ संस्काराः दश सम्प्रोक्ताः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः । यान् कृत्वा साम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमाप्नुयात् । मलत्रयमिति आनव्यं मायिकं कार्मणश्चेति ॥

प्रपञ्चसारे : मायिकंनाम योषोत्वं पौरुषं कार्मणं मलम् । आनव्यं तद्द्वयं प्रोक्तं निषिद्धं तन्मलत्रयम् ॥ ९५ ॥ तारमायारमायोगे इति तारमायारमाबीजपुटितं मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेदित्यर्थः ।

तथा च विश्वसारे : तारमायारमाबीजपुटितेन जपेन्मनुम् । शतमष्टोरश्चैव दीपयेत्साधकोत्तमः ॥ ९६ ॥

अथ कलावतीदीक्षाप्रयोगः

शिष्यः पूर्वमुपोषितः कृतनित्यक्रियः स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात् ॥

तद्यथा : ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा धर्मार्थकाममोक्षप्राप्तिकामः अमुकदेवताया अमुकाक्षरमन्त्रदीक्षामहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य गुरुं वृणुयात् । ॐ साधु भवनास्ताम्. ॐ साध्वहमासे इति प्रतिवचनम् । ॐ अर्चयिष्यामो भवन्तम्, ॐ अर्चय इति प्रतिवचनम् । ततो गन्धपुष्पवस्त्रालङ्कारादिभिर्गुरुमभ्यर्च्य दक्षिणं जानु धृत्वा पठेत् । ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया मत्कर्तृकामुकमन्त्रदीक्षाकर्मणि अमुकगोत्रं श्री अमुकदेवशर्माणमेभिः गन्धादिभिरभ्यर्च्य गुरुत्वेन भवन्तमहं वृणे, ॐ वृतोऽस्मीत्युत्तरम् । ॐ यथाविहितं गुरुकर्म कुरु, यथाज्ञानतः करवाणीति प्रतिवचनम् । ततो गुरुराचम्य द्वारदेशे सामान्यार्घ्यं कुर्यात् ।

तद्यथा : स्ववामे त्रिकोणवृत्त भूबिम्बं विलिख्य, ॐ आधारशक्तये नमः इति सम्पूज्य, फडिति मन्त्रेण अर्घ्यपात्रं प्रक्षाल्य, साधारं शङ्खं तत्र निधाय, नमः इति मन्त्रेण जलेनापूर्य, अंकुशमुद्रया ॐ गङ्गे चेत्यादिना सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य प्रणवेन गन्धादीन्निक्षिप्य, धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, ओमित्यष्टधा दशधा वा जपेत् ॥ ९७ ॥

तथा च : त्रिकोणभूवृत्तबिम्बमण्डलं रचयेत्ततः । आधारशक्ति सम्पूज्य तत्राधारं विनिक्षिपेत् । अस्त्रेण पात्रं संशोध्य हृन्मन्त्रेण प्रपूरयेत् । निक्षिपेत्तीर्थमावाह्य गन्धादीन्प्रणवेन तु । दर्शयेद्धेनुमुद्रां वै सामान्यार्घ्यमिदं स्मृतम् । इति गौतमीयवचनात् अष्टधा प्रणवजपः । विशेषार्घ्यौ तथादर्शनात् । श्यामादौ तु दशधा तदर्घ्यं तथादर्शनात् ।

पात्रं तोयैः प्रपूर्याथ प्रणवं दशधाजपेत् । इति भैरवीयात् ॥ ९८ ॥ ततः फडिति तज्जलेन द्वारमभ्युक्ष्य द्वारपूजां कुर्यात् ।

तद्यथा : ऊर्द्धोडुम्बरे ॐ विघ्नाय नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः । दक्षिणाशाखायां ॐ विघ्नाय नमः । वामशाखायां ॐ क्षेत्रपालाय नमः । तयोः पार्श्वे ॐ गङ्गायै नमः । ॐ यमुनायै नमः । देहल्यां ॐ अस्त्राय नमः । इति पुष्पवारिभिः पूजयेत् ।

निबन्धे : द्वारमस्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत् । ऊर्द्धोडुम्बरके विघ्नं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् । ततो दक्षिणशाखायां विघ्नं क्षेत्रेश-मन्यतः । तयोः पार्श्वद्वये गङ्गायमुने पुष्पवारिभिः । देहल्यामर्चयेदस्त्रं प्रति द्वारमिति क्रमात् । अशक्तश्चेद्द्वारदेवताभ्यो नमः इत्येतावन्मात्रम् ॥ ९९ ॥

त्रिपुरादिपूज्यादिषु स्वतन्त्रतन्त्रे : गणेशं क्षेत्रपालञ्च योगिनी वटुकं तथा । गङ्गाञ्च यमुनाञ्चैव लक्ष्मीं वाणीं ततो जपेत् । इति विशेषः ॥ १०० ॥

वैष्णवे तु : नन्दः सुनन्दश्चण्डश्च प्रचण्डो बल एव च । प्रबलो भद्रनामा च सुभद्रो विघ्नवैष्णवाः । प्रणवादि नमोऽन्तेन नाम्ना मन्त्रेण पूजयेत् ॥ १ ॥ ततो दक्षिणपादप्रक्षेपपुरःसरं वामशाखां स्पृशं दक्षिणाङ्गं सङ्कोचयन्मण्डपान्तः प्रविश्य नैर्ऋत्यां ॐ वास्तुपुरुषाय नमः ॐ ब्रह्मणे नमः इति पूजयेत् । ततो देयमन्त्रेण दिव्यदृष्ट्यावलोकनाद्दिव्यान्विघ्ना-नुत्सार्य अस्त्राय फट् इति मन्त्रेण जलेनान्तरीक्षगान्विघ्नानुत्सार्य वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान्विघ्नानुत्सार्य फडितिसप्तजप्तान्त्रिकारा-नादाय : ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया । इति तान्विकिरेत् ॥ २ ॥ लाज-चन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाकुशाक्षताः विकिरा इति सन्दिष्टाः सर्वाविघ्नौघ-नाशकाः ॥ ३ ॥

तथा : अनन्तरं देशिकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यावलोकनैः । दिव्यानुत्सारये-द्विघ्नान् अस्त्राद्भिश्चान्तरीक्षगान् । पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमान् । इति विघ्नान्निवारयेत् ॥ ४ ॥ ततोऽक्षतान्समादाय दक्षे नाराचमुद्रया । प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रेण गृहान्तर्विघ्नशान्तये । अपसर्पन्तु ते इति मन्त्रेण चादरात् । इति शारदीयात् ॥ ५ ॥

सम्मोहनतन्त्रे : विकिरान्विकरेत्तत्र सप्तजप्तान्शरानुना इति । ततो

ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनं सम्पूज्य धृत्वा पठेत् । आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपरिग्रहे विनियोगः । ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् । इति पठित्वा स्वस्तिकाद्यासनेनोपविशेत्, उपविश्य विघ्नानुत्सारयेत् ॥ ६ ॥

तन्त्रान्तरे : आदौ विघ्नान्समुत्सार्य पश्चादासनकल्पनम् । अथवा चासने स्थित्वा विघ्नानुत्सारयेत्सुधीः ॥ ७ ॥ ततः पञ्चगव्येन मूलेन मण्डपं शोधयेत् ।

तत्प्रमाणन्तु गौतमीये : पञ्चगव्येन तद्गेहं मण्डपञ्च विशोधयेत् । ॥ ८ ॥

पञ्चगव्यप्रमाणन्तु तत्रैव : पलमात्रं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते । घृतञ्च पलमात्रं स्याद्गोमयं तोलकद्वयम् । दधि प्रसृतिमात्रं स्यात्पञ्चगव्यमिदं स्मृतम् ॥ ९ ॥

अथवा : पञ्चगव्यानां समानो भाग इष्यते । मूलमन्त्रेण सम्मन्त्र्य तेनैव परिशोधयेत् । तेन सर्वविशुद्धिः स्यात्सर्वपापनिकृन्तनम् ॥ १० ॥ ततो दक्षिणभागे पूजाद्रव्याणि वामभागे सुवासिताम्बुपूर्णं कुम्भं हस्तक्षालनार्थं पात्रान्तरं पृष्ठदेशे स्थापयेत्, सर्वदिक्षु घृतप्रदीपांस्तु स्थापित्वा पुटाञ्जलिर्भूत्वा वामे ॐ गुरुभ्यो नमः ॐ परमगुरुभ्यो नमः ॐ परापरगुरुभ्यो नमः दक्षिणे ॐ गणेशाय नमः मध्ये ॐ अमुकदेवतायै नमः ।

तथा च : कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामे गुरुत्रयं यजेत् । गुरुञ्च परमादिञ्च परापरगुरुं तथा । दक्षिणे च गणेशञ्च मूर्ध्नि देवं विभावयेत् ॥ ११ ॥ ततः फडिति मन्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य ऊर्ध्वोर्द्धतालत्रयं दत्त्वा छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कुर्यात् । ततो रमिति जलधारया वह्निप्राकारं विचिन्तयेत् ॥ १२ ॥ ततो भूतशुद्धिः । ततो मातृकान्यासः । ततः प्राणायामः । ततः पीठन्यासः । ततो ऋष्यादिन्यासः । ततो मन्त्रन्यासः । ततो मुद्राप्रदर्शनम् । ततो ध्यानम् । ततो मानसपूजा । ततोऽर्घ्यस्थापनम् ॥ १३ ॥

तद्यथा : अर्घ्यस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्याऽपि त्रयं भवेत् । तथैवाचमनीयादिपात्राणि च विभागशः । तथा करणदौर्बल्यादेकमेव प्रशस्यते । षडाचमनपात्राणि इति आगमान्तरे पाठः ॥ ४ ॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् : एकस्मिन्नथवा पात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।

इत्यत्यन्ताशक्तविषयम्। किन्तु सामान्यार्घ्यविशेषार्घ्यद्वयस्यावश्यकत्वम् ॥ १५ ॥

तथा च नवरत्नेश्वरे : एकपात्रं न कर्त्तव्यं यदि साक्षान्महेश्वरः। मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदस्तु पदे पदे। इहलोके दरिद्रः स्यान्मृते च पशुतां व्रजेत् ॥ १६ ॥

तथा राघवभट्टधृतवचनम् : सर्वत्रैव प्रशस्तोऽजः शिवसूर्यार्चनं विना। अजः शङ्खः ॥ १७ ॥

अर्घ्यपात्रस्य मानमाह लैङ्गे : षट्त्रिंशदंगुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्त्तितम्। मध्यमन्तु त्रिभागोनं कनीयो द्वादशांगुलम् ॥ १८ ॥ स्ववामे त्रिकोणमण्डलं कृत्वा, तदुपरि त्रिपदिकामारोप्य, फडिति शङ्खं प्रक्षाल्य तदुपरि संस्थाप्य। नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतदूर्वादि तत्र निक्षिप्य विमलजलेन विलोममातृकया मूलेन च पूजयेत्।

यथा : क्षं लं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं इत्यनेन ॥ १९ ॥ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इति त्रिपदिकायां, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शङ्खे, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले सम्पूज्य, ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु। इत्यनेनांकुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थाण्यावाह्य अमुकि इहावह इह तिष्ठ इति स्वहृदयाद्देवतां तत्रावाह्य, हुं इति तर्जनीभ्यामवगुण्ठ्य, वषडिति गालिनीमुद्रां प्रदर्श्य, वौषडिति तज्जलं वीक्ष्य, पुनरङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, गन्धपुष्पाभ्यां नमः इति तत्र देवतां सम्पूज्य, तदुपरि मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य, मूलमन्त्रमष्टधा जपेत् ॥ १९क ॥

तथा च गौतमीये : गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य कृष्णाख्यं तत्र योजयेत्। अष्टकृत्वो जपेन्मन्त्रं शिखया गालिनीं न्यसेत्। अत्र कृष्णपदं तत्तद्देवतापरम् ॥ २० ॥ ततो वमिति मन्त्रेण धेनुमुद्रां प्रदर्श्यास्त्रेण संरक्ष्य तस्मात्किञ्चिज्जलं प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्च मूलेन त्रिरभ्युक्ष्य पीठन्यासक्रमेण शरीरे धर्मादीन्पूजयेत् ॥ २१ ॥

तद्यथा : दक्षिणस्कन्धे ॐ धर्माय नमः। वामे ॐ ज्ञानाय नमः, वामोरौ ॐ वैराग्याय नमः, दक्षिणोरौ ॐ ऐश्वर्याय नमः, मुखे ॐ

अधर्माय, वामपार्श्वे ॐ अज्ञानाय, नाभौ ॐ अवैराग्याय, दक्षिणपार्श्वे ॐ अनैश्वर्याय, सर्वत्र प्राणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् ॥ २२ ॥

तथा च शारदायाम् : अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान प्रादक्षिण्येन देशिकः । धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यांश्चाप्यनुक्रमात् । मुख-पार्श्व-नाभिपार्श्वेष्वधर्मादीन्प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥ हृदये ॐ अनन्ताय, ॐ पद्माय, ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने, ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः । एवं सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने, प्रणवादि-नमोऽन्तेन पूजयेत् ॥ २४ ॥

शारदायाम् : न्यासक्रमेण देहेषु धर्मादीन्पूजयेदथ । पुष्पाद्यैः पीठमन्वन्तं तस्मिंश्च परदेवताम् ॥ २५ ॥ ततो हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु पीठशक्ति सम्पूज्य मध्ये पीठमनुं यजेत् । तत्र हृदये मूलदेवतां नैवेद्यं विना गन्धाद्यैः पूजयेत् ॥ २६ ॥

तथा च निबन्धे : विना नैवेद्यं गन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत् । तत उत्तमाङ्ग-हृदयमूलाधारपादसर्वाङ्गेषुमूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा यथाशक्ति मन्त्रं जप्त्वा ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वमित्यादिना जपं समर्पयेत् ॥ २७ ॥

तथा च निबन्धे : पञ्चकृत्तस्ततः कुर्यात्पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः । उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गकं न्यसेत् । सर्वमेतत्प्रोक्षणीपात्रस्थवारिणा विदध्यात् ॥ २८ ॥ ततः प्रोक्षण्यास्तोयं विसृज्य पूर्ववदापूर्य वहिः-पूजामारभेत । तत्रः वक्ष्यमाणशारदोक्तसर्वतोभद्रमण्डलाद्यन्यतमं विधाय तत्र पूजयेत् । ॐ मण्डलाय नमः इति मण्डलं सम्पूज्य, शालिभिः कर्णिकामापूर्य, तदुपरि तण्डुलान्विकीर्य, तेषु दर्भानास्तीर्य, विष्टरं चाक्षतसंयुक्तं तदुपरि न्यसेत् । ततो मण्डले एताः पूजयेत् ।

तद्यथा : पीठमध्ये ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः इत्यादि पीठमन्वन्तं तत्तत्पटलोक्त-पीठपूजां कुर्यात् । ततो मण्डले प्रादक्षिण्येन एताः पूजयेत् : ॐ य धूमार्चिषे नमः इत्यादिवक्ष्यमाणवह्नेर्दशकला विन्यस्य पूजयेत् । ततो हेमादिरचितं कुम्भं झडिति प्रक्षाल्य, चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपयित्वा त्रिगुणतन्तुना संवेष्ट्य, ॐ कुम्भाय नमः इति गन्ध-पुष्पाभ्यां सम्पूज्य, विष्टराक्षतनवरत्नानि च प्रक्षिप्य, प्रणवमुच्चरन्कुम्भ-पीठयोरैक्यं विभाव्य, पीठे स्थापयेत् ॥ २९ ॥

गौतमीये कुम्भविधानन्तु : हैमं रौप्यं तथा ताम्रं मार्त्तिकं वा स्वशक्तितः। वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कृते निष्फलमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ षट्त्रिंशदंगुलं कुम्भं विस्तारोन्नतिशालिनम्। षोडशं द्वादशं वापि ततो न्यूनं न कारयेत् ॥ ३१ ॥ ततः कुम्भे प्रादक्षिण्येन सूर्यस्य ॐ कं भं तपिन्यै नमः इति द्वादशकला विन्यस्य पूजयेत्। ततः क्षीरिद्रुमकषायेण पलाशत्वग्भवेन वा तीर्थोदकैर्वा गन्धपुष्पसुवासित जलैर्वा आतपाभेदेन मातृकां प्रतिलोमतो देयमन्त्रश्च जपन्पूजयेत्कुम्भं देवताधिया। ततश्चन्द्रस्यामृतादिषोडशकला जले प्रादक्षिण्येन विन्यस्य, ॐ अं अमृतायै नमः इत्यादिना सम्पूज्य, शङ्खान्तरं क्षीरिद्रुमकषायादिद्रव्यैरापूर्य गन्धाष्टकं विलोड्य तस्मिञ्जले सकलाः कला आवाह्य पूजयेत् ॥ ३२ ॥

शारदायाम् : गन्धाष्टकं तु त्रिविधं शक्तिविष्णुशिवात्मकम्। चन्दनागुरुकर्पूरचोरकुंकुमरोचनाः। जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः ॥ ३३ ॥ चन्दनागुरुह्रीवेरकुष्ठकुंकुमसेव्यकाः। जटामांसी सुरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं स्मृतम् ॥ ३४ ॥ चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुंकुमम्। कुशोदं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं स्मृतम् ॥ ३५ ॥

अस्यार्थः : चन्दनागुरु कर्पूर कृष्णशठी कुंकुम रोचना जटामांसी गाठियाला शक्तेर्गन्धाष्टकम्। चन्दनागुरु बाला कुड कुंकुम श्वेतवीरणमूल जटामांसी देवदारु इति विष्णोः। चन्दनागुरु कर्पूर तमाल बाला कुंकुम रक्तचन्दन कुड इति शिवस्य ॥ ३६ ॥ तत्रादौ वह्नेर्दशकलाः पूजयेत्। यथा : वह्नेर्धूमार्चिरादिदशकला इहागच्छत इहागच्छत इह तिष्ठत तिष्ठत इह सन्निहिता भवत इत्यावाहयेत्। ततो मूलमन्त्रं प्रतिलोमतो जपन्मन्त्रस्य देवतां मनसा ध्यायन् आसां प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।

तद्यथा : आं ह्रीं क्रौं हं सः धूमार्चिरादिवह्निदशकलानां प्राणाः इह प्राणाः एवं आमित्यादि धूमार्चिरादिवह्निदशकलानां जीव इह स्थितः एवं आमित्यादि धूमार्चिरादिवह्निदशकलानां सर्वेन्द्रियाणि एवं आमित्यादि धूमार्चिरादिवह्निदशकलानां वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्र-घ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति प्राणान्प्रतिष्ठाप्य गन्धादिभिः पूजयेत्। ॐ धूमार्चिरादिभ्य एष गन्धो नमः। इत्यादिना पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः प्रत्येकेन पूजयेत् ॥ ३७ ॥

तद्यथा : यं धूमार्चिषे नमः। रं उष्मायै नमः। लं ज्वलिन्यै नमः। वं ज्वालिन्यै नमः। शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। यं सुश्रियै नमः। सं

सुरूपायै नमः। हूं कपिलायै नमः। लं हव्यवाहनायै नमः। क्षं कव्यवाहनायै नमः। शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततः सूर्यस्य तपिन्यादि द्वादशकलाः पूर्ववत्प्राणप्रतिष्ठावाहनादिकं कृत्वा पूजयित्वा च प्रत्येकन्तु पूजयेत्।

द्वादशकला यथा : तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वलिनी रुचिः। सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा। एताः कलास्तु सूर्यस्य सूर्यमण्डलसंस्थिताः।

तद्यथा : कं भं तपिन्यै नमः। खं बं तापिन्यै नमः। गं फं धूम्रायै नमः। घं पं मरीच्यै नमः। ङं नं ज्वलिन्यै नमः। चं धं रुच्यै नमः। छं दं सुषुम्नाये नमः। जं खं भोगदायै नमः। झं तं विश्वायै नमः। ञं णं बोधिन्यै नमः। टं ढं धारिण्यै नमः। ठं डं क्षमायै नमः। इति पूजयेत्। शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य प्रत्येकं पाद्यादिभिः पूजयेत्।

तथा निबन्धे : कभाद्या वसुदाः सौराः ठडान्ता द्वादशेरिताः ॥ ३७ क ॥ ततश्चन्द्रस्यामृतादिषोडशकलाः प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वा पूर्ववत्पूजयेत्।

तद्यथा : अं अमृतायै नमः। आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः। ईं तुष्ट्यै नमः। उं पुष्ट्यै नमः। ऊं रत्यै नमः। ऋं धृत्यै नमः। ॠं शशिन्यै नमः। ऌं चन्द्रिकायै नमः। ॡं कान्त्यै नमः। एं ज्योत्स्नायै नमः। ऐं श्रियै नमः। ओं प्रीत्यै नमः। औं अङ्गदायै नमः। अं पूर्णायै नमः। अः पूर्णामृतायै नमः। शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततः सृष्ट्यादि-पञ्चाशत्कलाः पूजयेत्।

यथा : सृष्ट्यादिकवर्गचवर्गदशकलाः पूर्ववत्प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वा प्रत्येकं पूजयेत्।

प्रत्येकपूजनन्तु : कं सृष्ट्यै नमः, खं ऋद्ध्यै नमः, गं स्मृत्यै नमः, घं मेधायै नमः। ङं कान्त्यै नमः, चं लक्ष्म्यै नमः, छं धृत्यै नमः, जं स्थिरायै नमः, झं स्थित्यै नमः, ञं सिद्ध्यै नमः। शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत्। तत्र ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसन्नृषद्वरसदृतसद्व्योम सदजा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहदिति जप्त्वा आवाह्य शङ्खे पूजयेत्। ततो जवादिटतप-वर्गदशकलाः पूर्ववत्प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वा पूजयेत् ॥ ३८ ॥

यथा : टं जवायै नमः, ठं पालिन्यै नमः, डं शान्त्यै नमः, ढं ऐश्वर्यै

नमः, णं रत्यै नमः, तं कामिकायै नमः, थं वरदायै नमः, दं ह्लादिन्यै नमः, धं प्रीत्यै नमः, नं दीर्घायै नमः, सर्वत्र शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पूजयेत् । ततः ॐ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषधिक्षियन्ती भुवनानि विश्वा इति जप्त्वा आवाह्य पूजयेत् । ततस्तीक्ष्णादिपयवर्गदशकलाः पूर्ववत्प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वा पूजयेत् । यथा—पं तीक्ष्णायै नमः, फं रौद्रायै नमः, बं भयायै नमः, भं निद्रायै नमः, मं तन्त्र्यै नमः, यं क्षुधायै नमः, रं क्रोधिन्यै नमः, लं क्रियायै नमः, वं उत्कारिण्यै नमः, शं मृत्यवे नमः । सर्वत्र शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् । ततः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् इति जप्त्वावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् । ततः पीतादिषवर्गपञ्चकलाः पूर्ववत्प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् । यथा : यं पीतायै नमः, सं श्वेतायै नमः, हं अरुणायै नमः, लं असितायै नमः, क्षं अनन्तायै नमः । शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पूजयेत् । ततः ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् इति जप्त्वा विष्णुं स्मरेत् । ततो विवृत्त्यादि षोडशकला पूर्ववत्प्राणप्रतिष्ठादिकं कृत्वा आवाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

यथा : अं निवृत्त्यै नमः, आं प्रतिष्ठायै, इं विद्यायै, ईं शान्त्यै, उं गन्धिकायै, ऊं दीपिकायै, ऋं रेचिकायै, ॠं मोचिकायै, ऌं परायै, ॡं सूक्ष्मायै, एं सूक्ष्मामृतायै, ऐं ज्ञानामृतायै, ओं आप्यायिन्यै, औं व्यापिन्यै, अं व्योमरूपायै, अः अनन्तायै नमः । शक्तश्चेत्प्रत्येकमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् । ॐ तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदं विष्णुर्योनिं प्रकल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंषतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते । ॐ गर्भं देहि सिनीवालि गर्भं देहि सरस्वति । गर्भंन्ते आश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजाविति जप्त्वावाह्य पूजयेत् । ततः कलात्मकं तत्शङ्खस्थं स्वार्थं कुम्भे निक्षिपेत् ॥ ३८ क ॥ ततोऽश्वत्थपनसचूतपल्लवैरिन्द्रवल्लीवेष्टितैः कल्पवृक्षबुद्धया कुम्भवक्त्रं पिधाय, तस्मिन्कुम्भवक्त्रे सफलाक्षतं चषकं कल्पवृक्षफलबुद्धया स्थापयेत् । ततः कुम्भं निर्मलेन क्षौमयुग्मेन संवेष्ट्य, मूलेन कुम्भे मूर्त्तिं सङ्कल्प्य, यथोक्तरूपेण देवतां ध्यात्वा, तत्रावाहनं कृत्वा पूजयेत् ॥ ३९ ॥

यथा : मूलमन्त्रमुच्चरन् अमुक इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व इत्यावाहनादिकं कृत्वा, हुं इत्यवगुण्ठ्य, देवताङ्गे षडङ्गन्यासं कृत्वा, वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, परमीकरण-मुद्रया परमीकुर्यात् । ततः प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । ॥ ३९ क ॥

यथा : मूलमुच्चार्य इदमासनं अमुकदेवतायै नमः, अमुकदेव स्वागतन्ते इति स्वागतम् । ततो मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं अमुकदेवतायै नमः इति पादाम्बुजे दद्यात् । एतत्श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् । अर्घ्यं अमुकदेवतायै स्वाहा इति गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वात्मकमर्घ्यं शिरसि दद्यात् । वैष्णवे तु अर्घ्यादिक्रमेणैव देयमिति वदन्ति । ततो मूलमुच्चार्य इदमाचमनीयं अमुकदेवतायै स्वधा इति जातीलवङ्ग कक्कोलात्मकमाचमनीयं वदने दद्यात् । स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादा-चमनीयकं इत्यत्रसुधापाठं कुर्वन्तः सुधाशब्दस्यामृतवाचकत्वादमृत-वाचकशब्दाद्य जलवाचकत्वादिदमाचमनीयं वमिति वदन्ति ॥ ४० ॥

तथा च : मधुपर्कं ततो दद्याज्जलमन्त्रेण देशिकः इति वचनात् । न च मधुपर्कमात्रविषयमिदम् । स्वधानुना ततः कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे । तेनैव मनुना कुर्यादद्भिराचमनीयकम् ॥ इति वचनात् ।

तथा : वारुणेन च मन्त्रेण दद्यादाचमनीयकम् इत्यादिवचनविरो-धात् । एतद्वचनं शूद्रविषयकमिति केचित् । वस्तुतस्तु इच्छाविकल्पः । मैथिलास्तु स्वधा इति पाठं कुर्वन्ति न सुधेति वकारस्य त्यागावोधक-त्वात् । किञ्च त्यागार्थकस्वाहाशब्देनार्घ्यदानविधानात्, तत्समभिव्या-हृताचमनीयदाने त्यागार्थबोधकत्वेन स्वधामन्त्रो युज्यते न तु सुधेत्याहुः ॥ ४१ ॥

तथा च : नमः स्वाहास्वधावौषडिति यथाक्रमाभिधानात्जलमन्त्रेण देशिक इति वचनं प्रमाणशून्यमिति तान्त्रिकाः । तेन चाचमनीयं स्वधेति ।

तथा : स्वधेत्याचमनीयञ्च त्रिवारं मुखपङ्कजे । स्वधेति मधुपर्कञ्च पुनराचमनीयकमिति सोमशम्भुधृतवचनात् । एके पुनर्जलमन्त्रेण देशिकः । वारुणेन च बीजेन इत्यत्र सहार्थे तृतीयां वदन्तः इदमाचमनीयं अमुकदेवतायै वं स्वधेति मन्यन्ते । ततो मधुपर्कः स्वधा इति मधुपर्कं दद्यात् ॥ ४२ ॥ आज्यं दधिमधून्मिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधाः । एवं पुनरा-

चमनीयं स्वधेति। ततः स्नानीयं निवेदयामि, ततो वस्त्रयज्ञोपवीतानि दद्यात्। ततः आभरणं नमः, एष गन्धे नमः, स च गन्धश्चन्दनकर्पूर-कालागुरुभिरीतः ॥४३॥ ततो मन्त्रपुटितमातृकावर्णेन तत्तन्न्यासस्थानानि पूजयित्वा एतानि पुष्पाणि वौषट् इति। सर्वत्र दाने मूलमन्त्रोच्चारणम्। ॥ ४४ ॥

ततः आवरणपूजा ॥ ४५ ॥

ततो गुग्गुल्वगुरूशीरशर्करामधुचन्दनघृतात्मकं धूपं दद्यात् ॥
तया च शारदायाम् : गुग्गुल्वगुरूशीरशर्करामधुचन्दनैः धूपयेदा-ज्यसम्मिश्रैर्नीचैर्देवस्य देशिकः ॥ ४६ ॥

विशेषस्तु तत्रैव : सिताज्य-मधुसम्मिश्रं गुग्गुल्वगुरुचन्दनम्। षडङ्गं धूपयेत्तत्तु सर्वदेवप्रियं सदा। रोगरोगहररोगदकेशाः सुरतरुजतुलघुपत्र-विशेषाः। वक्रविवर्जितवारिजमुद्रा धूपवर्त्तिरिह सुन्दरि भद्रा ॥

अस्यार्थः : कुड-हरीतकी-गुड-जटामांसी-देवदारु- जतु-अगुरु-तेजपत्र-सरल-नखी मुथाः ॥ ४७ ॥

तथा : गुग्गुलुं सरलं दारु पत्रं मलयसम्भवम्। ह्रीवेरमगुरुं कुष्ठं गुडं सज्जरसं घनम्। हरीतकीं नखीं लाक्षां जटामांसीञ्च शैलजम्। षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पैत्रे च कर्मणि। मधु मुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरु शैलजम्। सरलं शिह्लसिद्धार्थं दशाङ्गो धूप उच्यते ॥ ४८ ॥

ततः कर्पूरगर्भिण्या वर्त्तिकया दीपं दद्यात् ॥

तथा च : वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा। आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः। इति शारदाधृतम् ॥ ४९ ॥

विशेषस्तु : तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरे। मधुपर्के च वस्त्रे च दद्यादाचमनीयकम्। ततो नैवेद्यानि दद्यात् ॥ ५० ॥

गन्धादिदाने विशेषस्तु तन्त्रान्तरे : मध्यमानामिकांगुष्ठैरंगुल्यग्रेण पार्वति। दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण साधकः ॥ ५१ ॥ अंगुष्ठतर्जनी-भ्यान्तु चक्रे पुष्पं निवेदयेत्। यथा गन्धं तथा देवि धूपं दद्याद्विचक्षणः ॥ ५२ ॥ मध्यमानामिकाभ्यान्तु मध्यपर्वणि देशिकः। अंगुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत् ॥५३॥ उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः। तत्त्वाख्यमुद्रया देवि नैवेद्यन्तु निवेदयेत् ॥५४॥ मूलेनाचमनं दद्यात्ताम्बूलं तत्त्वमुद्रया। धूपभाजनमन्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य हृदामुना ॥ ५५ ॥ अस्त्रेण

पूजितां घण्टां वादयन्गुग्गुलुं दहेत् । ततः समर्पयेद्धूपं घण्टावाद्यजय-स्वनैः ॥ ५६ ॥

तथा : जयध्वनि तथा मन्त्रमातः स्वाहेत्युदीर्यते । अभ्यर्च्य वादये-द्घण्टां सुधूपैर्धूपयेत्ततः ॥ ५६ ॥

तन्त्रे : न भूमौ वितरेद्धूपं नासने न घटे तथा ॥ ५८ ॥

तथा च गौतमीये : उत्तार्य दृष्टिपर्यन्तं घण्टां वामदिशि स्थिताम् । वादयन्वामहस्तेन दक्षहस्तेन चार्पयेत् ॥ एवं दीपदानेऽपि घण्टावादनम् । ॥ ५६ ॥

यामले : निवेदयेत्पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भूषणम् । दीपं दक्षिणतो दद्यात्पुरतो वा न वामतः ॥ ६० ॥ वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे । नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः ॥ ६१ ॥ वामदक्षिण-भागस्तु देवताया एव न तु साधकस्य । धूपदीपौ सुभोज्यञ्च देवताग्रे निवेदयेत् इति दर्शनात् ॥ ६२ ॥

घृतयुक्तं दक्षिणे तैलयुक्तं वामे । एवं सिता वर्त्तिश्चेद्दक्षिणे रक्ता चेद्वामे । सम्मुखे तु न नियमः । पक्वञ्च देवतावामे आमान्नञ्चैव दक्षिणे । ॥ ६४ ॥

तथा च पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् : दक्षिणन्तु परित्यज्य वामे चैव निधापयेत् । अभोज्यं तद्भवेदन्नं पानीयञ्च सुरोपमम् । इति साम्प्र-दायिकाः ॥ ६५ ॥

तथा च यामले : दीपं घृतयुतं दक्षे तैलयुक्तञ्च वामतः । दक्षिणे च सितावर्त्तिं वामतो रक्तवर्त्तिकम् । पक्वापक्वविधानेन नैवेद्येष्विति तत्स्थितिः । पुरतो नियमो नास्ति दीपनैवेद्ययोः क्वचित् ॥ ६६ ॥ ततो वन्दनं । ततोऽष्टोत्तरसहस्रं शतं वा संजप्य गुह्यातीत्यादिना जपं समर्पयेत् ॥ ६७ ॥ अथ मन्त्रस्य दशसंस्कारान्पूर्वोक्तेन प्रकारेण कृत्वा गुरुः शिष्यमानीय वौषडितिमन्त्रेण शिष्यनेत्रं वस्त्रेणाच्छाद्य शिष्याञ्जलिं पुष्पैः पूरयित्वा गुरुः स्वयमेव मन्त्रमुच्चरन् कलसे पुष्पाञ्जलिं देवताप्रीत्यै क्षेपयेत् । ततो नेत्रबन्धनं दूरीकृत्य दर्भास्तरे शिष्यं उपवेश्य स्वकृतपूजा-क्रमाद्भूतशुद्ध्यादिकं विधाय तत्तन्मन्त्रोक्तन्यासान् शिष्यदेहे कुर्यात् । कुम्भस्थां देवतां पुनः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य अलंकृतं शिष्यमन्यस्मिन्नुप-वेशयेत् । ततो मङ्गलाचारपूर्वकं कुम्भं समुद्धृत्य, तन्मुखस्थान्सुरद्रुम-रूपान्पल्लवांशिष्यस्य शिरसि निधाय, मातृकां मनसा जपं मूलेन साधिते-

स्तोयैर्वसिष्ठसंहितोक्ताभिषेकमन्त्रैस्तमभिषिञ्चेत् ॥ ६८ ॥ ततः शिष्यः अवशिष्टजलेनाचम्य, वाससी परिधाय, गुरोः सन्निधावुपविशेत् । ततस्तामेव गुरुरात्मनो देवतां शिष्यसंक्रान्तां तयोरैक्यं सम्भावयन, गन्धादिभिः पूजयेत् । ततः ॐ सहस्रारे हुँ फडिति मन्त्रेण शिष्यशिखां बध्वा संरक्ष्य शिष्यशरीरे कलान्यासं कुर्यात् ।

तद्यथा : कुशत्रयेण पादतलाज्जानुपर्यन्तम् ॐ निवृत्त्यै नमः । जानुनोर्नाभिपर्यन्तम् ॐ प्रतिष्ठायै नमः । नाभेराकण्ठम् ॐ विद्यायै नमः । कण्ठादाललाटम् ॐ शान्त्यै नमः । ललाटाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तम् ॐ शान्त्यतीतायै नमः । पुनर्ब्रह्मरन्ध्रादाललाटम् ॐ शान्त्यतीतायै नमः । ललाटादाकण्ठम् ॐ शान्त्यै नमः । कण्ठान्नाभिपर्यन्तम् ॐ विद्यायै नमः । नाभेर्जानुपर्यन्तम् ॐ प्रतिष्ठायै नमः । जानुनोः पादपर्यन्तम् ॐ निवृत्त्यै नमः ॥ ६९ ॥ ततः शिष्यस्य शिरसि हस्तं दत्त्वा, देयमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा, अमुकमन्त्रं तेऽहं ददामिति शिष्यहस्ते जलं दद्यात् । ततो ददस्वेति शिष्यो ब्रुयात् ।

तथा च वासिष्ठे : ततस्तच्छिरसि स्वहस्तं दत्त्वा शतं जपेत् । अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम् । आवयोस्तुल्यफलदो भवत्वेवमुदीरयेत् ॥ ७० ॥ ततः ऋष्यादिसंयुक्तं मन्त्रं गुरुर्दक्षिणकर्णे त्रिः श्रावयित्वा वामकर्णे सकृत्श्रावयेत् ।

तथा च गौतमीये : न्यासजलं तस्य देहे गुरुः संन्यस्य यत्नतः । दक्षकर्णं वदेन्मन्त्रं त्रिवारं पूर्णमानसः । दक्षकर्णं इति द्विजातिविषयम् । ॥ ७१ ॥

तथा च तन्त्रे : दक्षकर्णे त्रिशो विद्यां एकोच्चारेण चोच्चरेत् । एष विधिर्द्विजातीनां स्त्रीशूद्राणाञ्च वामतः ॥ ७२ ॥

रुद्रयामले : गुरुस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शिष्यां प्रत्यङ्मुखस्थितम् । त्रिवारं दक्षिणे कर्णवामेचैव तथा सकृत्फविपरीतं ततो ज्ञेय स्त्रीशूद्राणाञ्च वामतः ॥ ७३ ॥ ततो गुरुचरणे पतित एव तिष्ठेत् । त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः । मायामृत्युमहापाशाद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च । इति वदेत् ॥ ७४ ॥

ततो गुरुः : उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव । कीर्त्तिश्रीकान्तिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदाऽस्तु ते । इति उत्थापयेत् ॥ ७५ ॥

विश्वसारे : दक्षकर्णे वदेन्मन्त्रं ऋष्यादिकसमन्वितम् । तथा तस्मिन्क्षणे देवि जपेन्मन्त्रं शताष्टकम् ॥ ७६ ॥

शारदायाम् : गुरोर्लब्धां परां विद्यामष्टकृत्वो जपेत्सुधीः । गुरुमन्त्रदेवतानामैक्यंसम्भावयन् धिया । एतद्वचनं तत्तद्भावनापरजपविषयं भावनाशून्ये तु सहस्रम् ॥ ७७ ॥ गुरुः स्वशक्तिरक्षार्थं सहस्रं शतं वा जपेत् ।

तन्त्रान्तरे : शतं जपेत्तदग्रे तु निकटे त्रिदिनं वसेत् । नोचेत्सञ्चारिणीशक्तिर्गुरुमेति न संशयः ॥ ७८ ॥

विश्वसारे : अष्टाधिकसहस्रं शतं वाऽपि विधानतः । स्वशक्तिरक्षणार्थाय गुरुर्मन्त्रं तदा जपेत् ॥ ७९ ॥

यामले : दत्वा मन्त्रं जपेद्देवि शतमष्टोत्तरं ततः ॥ ८० ॥ ततः शिष्यः कुशतिलजलान्यादाय ॐ अद्य कृतैतत् अमुकदेवताया अमुकमन्त्रग्रहणप्रतिष्ठार्थं । दक्षिणामिदं सुवर्णं काञ्चनं वा वह्निदैवतं अमुकगोत्रायामुकदेवशर्मणे गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥ ८१ ॥ शरीरमर्थं प्राणांश्च सर्वं तस्मै निवेदयेत् । ततः प्रभृति कुर्वीत गुरोः प्रियमनन्यधीः । यद्यदिष्टतमं लोके मुखे तन्निवेदयेत् ॥ ८२ ॥

स्वतन्त्रतन्त्रे दक्षिणानियमो यथा : गुरवे दक्षिणां दद्यात्प्रत्यक्षाय शिवात्मने । सर्वस्वं वा तदर्धं वा तदर्धं वा तदाज्ञया । नोचेत्सञ्चारिणीशक्तिः कथमस्य भविष्यति ॥ ८३ ॥

कुलामृते : वित्तशाठ्यं परित्यज्य सर्वकर्माणि साधयेत् । वित्तशाठ्यं निहन्त्याशु पुत्रानायुर्यशोधनम् ॥ ८४ ॥ गुरुदेवं पञ्चयित्वा यः कुर्याद्धनसञ्चयम् । तेन तद्भुज्यते नैव ह्रियते राजतस्करैः ॥ ८५ ॥ आसनं गुरवे दद्याद्रक्तकम्बलमेव च । हाराद्याभरणं दद्याद्गाश्च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ८६ ॥ भुमिं वृत्तिकरीं दद्यात्पुत्रपौत्रानुगामिनीम् ॥ ८७ ॥

तथा : गुरवे दक्षिणांदद्यात्स्वर्णं वस्त्रसमन्वितम् । गुरुसन्तोषमात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ ८८ ॥ अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादभिचाराय कल्पते । दीक्षाग्रहणसामग्रीं गुरवेऽथ निवेदयेत् । अन्यांश्च ब्राह्मणांस्तत्र यत्नतः परितोषयेत् । ततो मिष्टान्नपानादिना ब्राह्मणान्परितोष्य स्वयं भुञ्जीत ॥ ८९ ॥

तथा च निबन्धे : ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्विधिवद्दीक्षितो नरः । विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ९० ॥

दीक्षादिवसे गुरुशिष्योरुपवासे दोषमाह योगिनीतन्त्रे : मन्त्रं दत्त्वा गुरुश्चैवमुपवासं यदाचरेत्। महान्धकारे नरके कृमिर्भवति नान्यथा ॥ ९१ ॥ दीक्षां कृत्वा यदा मन्त्री चोपवासं समाचरेत्। तस्य देवः सदा रुष्टः शापं दत्त्वा व्रजेत्पुरम् ॥ ९२ ॥ यद्यत्र होमः क्रियते तदा तद्विधानं वक्ष्यामः। इति कलावतीदीक्षाप्रयोगः ॥ ९३ ॥

अथ पञ्चायतनी दीक्षा :

यामले : भवानीन्तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्। आग्नेयां पार्वतीनाथं नैर्ऋत्यां गणनायकम्। वायव्यां तपनश्चैव पूजाक्रम उदाहृतः ॥ ९४ ॥

यदा तु मध्ये गोविन्दमैशान्यां शङ्करं यजेत्। आग्नेयां गणनाथश्च नैर्ऋत्यां तपनन्तथा ॥ ९५ ॥ वायव्यामम्बिकाश्चैव भोगमोक्षैकभूमिकाम्। शङ्करश्च यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत् ॥ ९६ ॥ आग्नेयां तपनश्चैव नैर्ऋत्यां गणनायकम्। वायव्यां पार्वतीश्चैव स्वर्गमोक्षप्रदायिनीम् ॥९७॥ आदित्याश्च यदा मध्ये ऐशान्यां शङ्करं यजेत्। आग्नेयां गणनाथश्च नैर्ऋत्यां केशवं तथा ॥९८॥ वायव्यमम्बिकां देवीं स्वर्गसाधनभूमिकाम्। गणनाथं यदा मध्ये ऐशान्यां केशवं यजेत् ॥ ९९ ॥ आग्नेयामीश्वरश्चैव नैर्ऋत्यां तपनन्तथा। वायव्यां पार्वतीश्चैव पूजयेन्मोक्षसाधिनीम्। स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदाः ॥ १०० ॥

तथा च गणेशविमर्षिण्याम् : शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करे भास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजम्बिकाः स्थापिताः। देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेश्वरे नार्याः शङ्करभागतोऽतिसुखदा व्यास्तास्तु ते हानिदाः ॥ १ ॥

रामार्चनचन्द्रिकायां गौतमीये च : यदा तु मध्ये गोविन्दमाग्नेयां गणनायकम्। नैर्ऋत्यां हंसमभ्यर्च्य वायव्यामर्चयेच्छिवाम् ॥२॥ ऐशान्यां शङ्करश्चैव भोगमोक्षफलाप्तये। इति यदङ्गदेवतायाः पूजने आग्नेयादौ गणेशादिपूजनमुक्तं तद्रामगोपालविषयमिति केचित्। वस्तुतो वैकल्पिकमिति साम्प्रदायिकाः ॥ ३ ॥

एतेषांपूजनन्तु गौतमीये : गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य षडङ्गार्चनमेव च। विंशकृत्वो जपेन्मन्त्रं नमस्कृत्य समापयेत् ॥ ४ ॥ अङ्गदेवतापूजाकालस्तु पीठदेवतापूजानन्तरम् ॥

तथा च सनत्कुमारतन्त्रे : पीठस्यार्चनमङ्गदेवयजनं प्राणप्रतिष्ठा

ततः, आह्वानं निजमुद्रिकाविरचनं ध्यानं प्रभोः पूजनम् ॥ ५ ॥

यत्तु : देवे पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा अङ्गदेवान्समर्चयेत् । तत्तु प्रतिष्ठितप्रतिमादियन्त्रादिविषयम् ॥ ६ ॥

यन्त्रातिरिक्ताधारे पूजने तु कुलावल्याम् : एकपीठे पृथक्पूजां विना यन्त्रं करोति यः । अङ्गाङ्गित्वं परित्यज्य देवताशापमाप्नुयात् । ॥ ७ ॥

एवञ्च : आवाह्य देवतामन्यामर्चयंस्त्वन्यदेवताम् । उभाभ्यां लभते शापं मन्त्री भवति दुर्मतिः । इति तु अङ्गातिरिक्तपरम् । सर्वेषामङ्गमन्त्राणां सिद्धादिविचारो नास्ति ॥

तथा च : सिद्धादिशोधनं नैषामङ्गत्वे सति राजवत् ॥८॥ श्यामादौ तु पञ्चायतनाभावः ॥

तथा च रुद्रयामले : श्यामायां भैरवीताराच्छिन्नमस्तातु भैरवि । मंजुघोषे तथा रौद्रे पञ्चाङ्गं नेष्यते बुधैः ॥ ९ ॥ उपविद्यासु सर्वासु षट्कर्मादिषु साधने । नात्र दीक्षाद्यपेक्षास्ति नात्राङ्गाङ्गि-प्रपूजनम् । ॥ १० ॥

तत्त्वसारे : उपविद्यासु सर्वासु तथा प्रयोगसाधने । दीक्षां विनैव कर्त्तव्य उपदेशः सदैव हि ॥ ११ ॥

अथ संक्षेपदीक्षा :

मुहूर्त्ते सर्वतोभद्रे नवं कुम्भं निधाय च । सोदकं गन्धपुष्पाभ्यामर्चितं वस्त्रसंयुतम् । सर्वौषधिनवरत्नपञ्चपल्लवसंयुतम् । ततो देवार्चनं कृत्वा हुनेदष्टोत्तरं शतम् । पञ्चपल्लवमिति पनसाम्राश्वत्थवटवकुलानि ॥१२॥

तथा च वासिष्ठे : पनसाम्रं तथाश्वत्थं वटं वकुलमेव च । पञ्चपल्लवमित्युक्तं मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥ १३ ॥

नवरत्नानि : मुक्तामाणिक्यवैदूर्यगोमेदान्वज्रविद्रुमौ । पद्मरागं मरकतं नीलश्चेति यथाक्रमात् ॥ १४ ॥

निबन्धे : शिष्यं स्वलंकृतं वेद्यामुपाग्निमुपवेशयेत् । मन्त्रितः प्रोक्षणीतोयैः शान्तिकुम्भजलैस्तथा ॥ १५ ॥ मूलमन्त्रेणाष्टशतैर्मन्त्रितैरभिषेचयेत् । अष्टशतैः अष्टोत्तरशतैः ॥ १६ ॥

अथ सम्पादयेन्मन्त्रं हस्तं शिरसि धारयन् । नमोऽस्त्वित्यक्षतान् दद्यात्ततः शिष्योऽर्चयेद्गुरुम् ॥ १७ ॥ यद्वा दीक्षान्तरं शङ्खमभ्यर्च्य

साक्षतं तदम्बुनाभिषिच्याष्टवारं मूलेन शिरसि करं निधायाष्टौ वारान् कर्णे जपेत् ।

तथा च तत्राप्यशक्तः कश्चिच्चेदब्जमभ्यर्च्य साक्षतम् । तदम्बुनाभिषिच्याष्टवारं मूलेन केवलम् । निधायाष्टौ जपेत्कर्ण उपदेशे त्वयं विधिः । इति संक्षेपदीक्षा ॥ १८ ॥

उपदेशान्तरमाह विश्वसारे : चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये । मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते ॥ १९ ॥

विश्वसारे : महादीक्षा तथा दीक्षा उपदेशस्ततः परम् । युगे युगे च कर्त्तव्य उपदेशः कलौ युगे ॥ २० ॥

अथ सर्वतोभद्रमण्डलम् : (देखिये चित्र १०)

शारदायाम् : चतुरस्रे चतुष्कोष्ठे कर्णसूत्रसमन्विते । चतुर्ष्वपि च कोष्ठेषु कोणसूत्रचतुष्टयम् । मध्ये मध्ये यथा मत्स्या भवेयुः पातयेत्तथा । पूर्वापरायते द्वे द्वे मन्त्री याम्योत्तरायते पातयेत्तेषु मत्स्येषु समं सूत्रचतुष्टयम् । पूर्ववत्कोणकोष्ठेषु कर्णसूत्राणि पातयेत् । तदुद्भूतेषु मत्स्येषु दद्यात्सूत्रचतुष्टयम् । ततः कोष्ठेषु मत्स्याः स्युस्तेषु सूत्राणि पातयेत् । यावच्छतद्वयं मन्त्री षट्पञ्चाशत्पदान्यपि । तावत्तेनैव विधिना तत्र सूत्राणि पातयेत् ॥ २१ ॥ षट्त्रिंशता पदैर्मध्ये लिखेत्पद्मं सलक्षणम् । वहिःपंक्त्या भवेत्पीठं पंक्तियुग्मेन वीथिकाम् । द्वारशोभोपशोभास्त्रां शिष्टाभ्यां परिकल्पयेत् । शास्त्रोक्तविधिना मन्त्री ततः पद्मं समालिखेत् । पद्मक्षेत्रस्य संत्यज्य द्वादशांशं वहिः सुधीः । तन्मध्यं विभजेद्वृत्तैस्त्रिभिः समविभागतः । आद्यं स्यात्कर्णिकास्थानं केशराणां द्वितीयकम् । तृतीयं पद्मपत्राणां मुक्तांशेन दलाग्रकम् । वाह्यवृत्तान्तरालस्य मानेन विधिना सुधीः । निधाय केशराग्रेषु परितोऽर्द्धनिशाकरान् । लिखित्वा-सन्धिसंस्थानि तत्र सूत्राणि पातयेत् । दलाग्राणाञ्च यन्मानं तन्मानं वृत्तमालिखेत् ॥२१ क॥ तदंतराले तन्मध्यसूत्रस्योभयतः सुधीः । आलिखेद्वाह्यहस्तेन दलाग्राणि समन्ततः । दलमूलेषु युगशः केशराणि प्रकल्पयेत् । एतत्साधारणं प्रोक्तं पङ्कजं तन्त्रवेदिभिः । पदानि त्रीणि पदार्थं पीठकोणेषु मार्जयेत् । अवशिष्टैः पदैर्विद्वान पीठगात्राणि परिकल्पयेत् । पदानि वीथिसंस्थानि मार्जयेत्पंक्त्यभेदतः । दिक्षु द्वाराणि रचयेद्विचतुष्कोष्ठकैस्ततः । पदैस्त्रिभिरथैकेन शोभाः स्युर्द्वारपार्श्वयोः । उपशोभाः स्युरेकेन त्रिभिः कोष्ठैरनन्तरम् । अवशिष्टैः पदैः षड्भिः कोणानां स्याच्चतुष्टयम् । रञ्जयेत्पञ्चभिर्वर्णैर्मण्डलं तन्मनोहरम् ॥ २१ ख ॥ पीठं

हरिद्राचूर्णं स्यात्सितं तण्डुलसम्भवम् । कुसुम्भचूर्णमरुणं कृष्णं दग्ध-पुलाकजम् । बिल्वादिपत्रजं श्याममित्युक्तं वर्णपञ्चकम् ॥ २२ ॥ अंगुलोत्सेधविस्ताराः सीमारेखाः सिताः शुभाः । कर्णिकां पीतवर्णेन केशराण्यरुणेन च । शुक्लवर्णानि पत्राणि तत्सन्धिः श्यामलेन च । रजसा रञ्जयेन्मन्त्री यद्वा पीतेव कर्णिका । केशराः पीतवर्णाक्ताः अरुणानि दलानि च । सन्धयः कृष्णवर्णाः स्युः पीतेनाप्यसितेन वा । रञ्जयेत्पीठगर्भाणि पादाः स्युररुणप्रभाः । गात्राणि तस्य शुक्लानि वीथीषु च चतसृषु । आलिखेत्कल्पलतिकां दल-पुष्प-समन्विताः । वर्णैर्नानाविधैश्चित्राः सर्वदृष्टिमनोहराः । द्वाराणि श्वेतवर्णानि शोभा रक्ताः समीरिताः । उपशोभाः पीतवर्णाः कोणान्यसितभांसि च । तिस्रो रेखा वहिः कार्याः सितरक्तासिताः क्रमात् । मण्डलं सर्वतोभद्रमेतत्साधारणं मतम् ॥ २३ ॥

अथ स्वल्पसर्वतोभद्रमण्डलम् : (देखिये चित्र ११)

चतुरस्रां भुवं भित्त्वा दिग्भ्यो द्वादशधो सुधीः । पातयेत्तत्र सूत्राणि कोष्ठानां दृश्यते शतम् । चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं पश्चात्षट्त्रिंशताम्बुजम् । कोष्ठैः प्रकल्पयेत्पीठं पंक्त्या नैवात्र वीथिका ॥ २४ ॥ द्वारशोभे यथापूर्वमुपशोभा न दृश्यते । अवशिष्टैः पदैः कुर्यात्षड्भिः कोणानि तन्त्रवित् । विदध्यात्पूर्ववच्छेषं एवं वा मण्डलं स्मृतम् ॥ २४ क ॥

अथ नवनाभमण्डलम् : (देखिये चित्र १२)

चतुरस्रे चतुःषष्टिपदान्यारचयेत्सुधीः । पादैश्चतुर्भिः पद्मं स्यान्मध्ये तत्परितः पुनः । वीथीश्चतस्रः कुर्वीत मण्डलान्तावसानिकाः । दिग्गतेषु चतुष्केषु पङ्काजानि (पञ्चाजानि) समालिखेत् । विदिग्गतचतुष्कानि भित्त्वा षोडशधा सुधीः । मार्जयेत्स्वस्तिकाकारं श्वेतपीतारुणासितैः । राजोभिः पूरयेत्तानि स्वस्तिकानि शिवादितः । प्राक्प्रोक्तेनैव मार्गेण शेषमन्यत्समापयेत् । नवनाभमिदं प्रोक्तं मण्डलं सर्वसिद्धिदम् ॥ २५ ॥

अथ पञ्चाब्जमण्डलम् : (देखिये चित्र १३)

पञ्चाब्जमण्डलं प्रोक्तमेतत्स्वस्तिकवर्जितम् । दीक्षायां देवपूजार्थं मण्डलानां चतुष्टयम् । सर्वतन्त्रानुसारेण प्रोक्तं सर्वसमृद्धिदम् ॥ २६ ॥

अथ त्रिलौहोमुद्रा :

अथ मन्त्रिणां हितार्थाय त्रिलौहीमुद्रा निरूप्यते । सोमसूर्याग्निरूपाः

स्युर्वर्णा लौहत्रयं तथा। रौप्यमिन्दुः स्मृतो हेम सूर्यस्ताम्रो हुताशनः ॥ २७ ॥ लौहभागाः समुद्दिष्टाः स्वराद्यक्षरसंख्यया। तैर्लोहैः कारयेन्मुद्रामसङ्कुलितसङ्गताम् ॥ २८ ॥ एषु स्वराः स्मृताः सौम्याः स्पर्शाः सौराः शुभोदयाः। आग्नेया व्यापकाः सर्वे सोमसूर्याग्निदेवताः ॥ २९ ॥ स्वराः षोडश विख्याताः स्पर्शास्ते पञ्चविंशतिः। व्यापका दश ते कामधनधर्मप्रदायिनः ॥ ३० ॥ साष्टं सहस्रं संजप्य स्पृष्ट्वा तां जुहुयात्ततः। तस्यां सम्पातयेन्मन्त्री सर्पिषा पूर्वसंख्यया ॥ ३१ ॥ निक्षिप्य कुम्भे तां मुद्रामभिषेकोक्तवर्त्मना। आवाह्य पूजयेद्देवीमुपचारैर्विधानतः ॥ ३२ ॥ अभिषिच्य विनीताय दद्यात्तां मुद्रिकां गुरुः। इयं मुद्रा क्षुद्ररोगविषज्वरविनाशिनी ॥ ३३ ॥ व्यालचौरमृगादिभ्यो रक्षां कुर्याद्विशेषतः। युद्धे विजयमाप्नोति धारयेन्मनुजेश्वरः ॥ ३४ ॥ मन्त्रसिद्धिकरीं पुंसां चतुर्वर्गफलप्रदाम्। धारयेन्मनुजो नित्यं देवतुल्यो भवेद्भुवि ॥ ३५ ॥ अभिषिच्येति पूर्वोक्तदीक्षा पद्धत्युक्तक्रमेण घटं संस्थाप्य तत्तत्कल्पोक्तदेवतामावाह्य यथोपचारतः सम्पूज्य साध्यमभिषिच्य तस्मै दद्यादित्यर्थः। ततो गुरवे दक्षिणां दत्त्वा महान्तमुत्सवं कुर्यात् ॥ ३६ ॥

इति महामहोपाध्यायश्रीकृष्णानन्दागमवागीशविरचिते
तन्त्रसारे प्रथमः परिच्छेदः।

द्वितीयः परिच्छेदः

अथ सामान्यपूजापद्धतिः

तत्र ब्राह्मेमुहूर्त्ते उत्थाय मुक्तस्वापः रात्रिवासस्त्यक्त्वा शिरसि सहस्रदलकमलकर्णिका स्थितं श्वेतवर्णं गुरुं द्विभुजं वराभयकरं श्वेत-माल्यानुलेपनं स्वप्रकाशरूपं स्ववामस्थितसुरक्तशक्त्या स्वप्रकाशरूपया सहितं विभाव्य मानसोपचारैराराध्य नमस्कुर्यात् ।

यथा : अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः । अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः । ततो मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यां विभावयेत् । मूलविद्यां कुण्डलिनीम् ॥

तथा च योगिनीहृदये : विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी ॥ १ ॥

अन्यत्रापि : ध्यायेत्कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम् । तामिष्ट-देवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम् । कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भुलिङ्गवेष्टिताम् । तामुत्थाय महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः । उद्यद्दिनकरद्योतां यावच्छ्वासं दृढासनः । अशेषाशुभशान्त्यर्थं समाहितमनाः शिवम् । तत्प्रभापटलव्याप्तं शरीरमपि चिन्तयेत् ॥ २ ॥

एतस्य नित्यत्वमाह गौतमीये : इदानीं पूर्वकृत्यञ्च प्रसङ्गात्कथयामि ते । यत्कृत्वाधिकारितां याति मन्त्रयन्त्रार्चनादिषु । येन विना न सिद्धिः स्यान्नरकञ्च प्रपद्यते ॥ ३ ॥

यामले च : प्रातःकृत्यमकृत्वा तु यो देवीं भक्तितोऽर्चयेत् । निष्फला तस्य पूजा स्याच्छौचहीना यथा क्रिया ॥ ४ ॥

लक्ष्मीकुलार्णवेऽपि : सन्ध्यया तु विहीनो यो न दीक्षाफलमाप्नुयात् । इति वचनात्तस्यावश्यकत्वम् ॥ ५ ॥ वैदिकसन्ध्यानन्तरं तान्त्रिकसन्ध्या कर्त्तव्या ।

तदुक्तम् : वैदिकी तान्त्रिकी सन्ध्या यथानुक्रमयोगतः ॥ ६ ॥

अथ सन्ध्याप्रयोग: :

तत्र शक्तिविषये : ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा इत्याचामेत् । अन्यत्राचमनमात्रम् ॥

तथा च स्वतन्त्रतन्त्रे : आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत्साधकाग्रणीः । वह्निजायां ततो दत्त्वा शुद्धेन पाथसा प्रिये ॥

मालिनीतन्त्रे : आचामेदात्मतत्त्वाद्यैः प्रणवाद्यैर्द्विठान्तकैरिति । ततो जले गङ्गे चेत्यादिना तीर्थमावाह्य मूलेन कुशेन त्रिवारं भूमौ जलं क्षिपेत् । तज्जलेन सप्तधा मूर्द्धानमभिषिञ्चेत् । ततः प्राणायाम-षडङ्गन्यासौ कृत्वा वामहस्ततले जलं निधाय दक्षिणहस्तेन जलमाच्छाद्य हं यं वं लं रं इति त्रिवारमभिमन्त्र्य, मूलमुच्चरन्गलितोदकविन्दुभि-स्तत्त्वमुद्रया मूर्द्धनि सप्तधाभ्युक्षणं कृत्वा, शेषजलं दक्षिणहस्ते समादाय, तेजोरूपं ध्यात्वा, इडयाकृष्य, देहान्तःपापं प्रक्षाल्य, कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं ध्यात्वा, पिङ्गलया विरेच्य, पुरःकल्पितवज्रशिलायां फडिति मन्त्रेण पापपुरुषस्वरूपं तज्जलं क्षिपेदित्यघमर्षणम् । गङ्गे चेत्यादिमन्त्रं तीर्थेऽपि पठेत्, तीर्थे तदद्विगुणफलमिति स्मृतेः ।

तथा च गौतमीये : आचम्य विधिवन्मन्त्री शुचौ देशे च संविशेत् । जले संयोज्य तीर्थानि त्रिबारं मूलमन्त्रतः । क्षिपेद्भूमौ कुशाग्रेण सप्तधा मूर्ध्नि सेचयेत् ॥

तन्त्रान्तरे : पुनराचम्य विन्यस्य षडङ्गमपि धर्मवित् । वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकविन्दुभिः । सप्तधा प्रोक्षणं कृत्वा मूर्ध्नि मन्त्रं समुच्चरन् । अवशिष्टोदकं दक्षहस्ते संगृह्य बुद्धिमान् । इडयाकृष्य देहान्तः क्षालितं पापसञ्चयम् । कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाड्या विरेचयेत् । दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च । पुरतो वज्रपाषाणे निक्षिपेदस्त्र-मुच्चरन् ॥ ७ ॥

अन्यत्रापि : षडङ्गन्यासमाचर्य वामहस्ते जलं ततः । गृहीत्वा दक्षिणेनैव सम्पुटं कारयेद्बुधः । शिव-वायु-जल-पृथ्वीवह्निबीजैस्त्रिधा पुनः । अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तधा तत्त्वमुद्रया । निक्षिप्य तज्जलं मूर्ध्नि शेषं दक्षे निधाय च । शरीरान्तःस्थितं पापं क्षालयेत्साधकाग्रणीः ॥ ८ ॥ ततोहस्तं प्रक्षाल्याचम्य ह्रीं हं सः ॐ घृणि सूर्य आदित्य इति मन्त्रेण वा सूर्यायार्घ्यं दद्यात् ॥

तथा सम्मोहनतन्त्रे : शिवबीजं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ।

विन्दु नादात्मकं देवि हंसः पदमथो लिखेत्। अनेन मनुना मन्त्री भास्करस्य प्रियेण तु। अर्घ्यं दद्यादिति शेषः। विशेषस्तु स्नानप्रकरणे वक्तव्यः ॥ ९ ॥ ततः ॐ सूर्यमण्डलस्थायै अमुकदेवतायै नमः, इत्यनेन तद्गायत्र्या वा त्रिवारं जलं निक्षिप्य तत्तद्देवताया गायत्रीं जपेत्। ॥ १० ॥

तथा चार्घ्यानन्तरं ज्ञानार्णवे : ततश्च प्रजपेद्धीमान्गायत्रीं परमाक्षरीम्। गायत्री तु स्नान प्रकरणे वक्तव्या ॥ ११ ॥

नन्दिकेश्वरसंहितायाम् : यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय महात्मने। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा महेश्वरीम् ॥ १२ ॥

गोतमीये : एवं ते कथिता मन्त्रसन्ध्या मन्त्रफलाप्तये। न कुर्याद्यदि मोहेन न दीक्षाफलमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ सन्ध्यात्रयं तथा कुर्याद्ब्राह्मणो विधिपूर्वकम्। तन्त्रोक्तविधिपूर्वन्तु शूद्रः सन्ध्यां समाचरेत्। संक्षेपसन्ध्यामथवा कुर्यान्मन्त्री ह्यशक्तितः। सायं प्रातश्च मध्याह्ने देवं ध्यात्वा मनुं जपेत्। सन्ध्यायां पतितायान्तु गायत्रीं दशधा जपेत् ॥ १४ ॥

अथ स्नानविधिः

नद्यादौ गत्वा वैदिकस्नानं कृत्वा तान्त्रिकस्नानमाचरेत् ॥१५॥

तथा च गौतमीयतन्त्रे : अथ स्नानं तथा कुर्याद्यथाशास्त्रविधानतः मलप्रक्षालनं स्नानं स्वशाखोक्तं समाचरेत्। मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात्कर्मणां सिद्धिहेतवे ॥ १६ ॥

तद्यथा : ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवताप्रीतये स्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्पं कुर्यात् ॥ १७ ॥

तथा च कुलचुडामणौ : ताम्रपात्रं सदूर्वञ्च सतिलं सजलं तथा। गृहीत्वामुकदेवस्य प्रीतये स्नानामाचरेत् ॥ १८ ॥ ततः षडङ्गन्यासः प्राणायामौ कृत्वा ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे। सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु। इत्यनेनांकुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य, वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, कवचेनावगुण्ठ्य, अस्त्रेण संरक्ष्य, मूलेनैकादशधाभिमन्त्र्य, सूर्याभिमुखं द्वादशवारिधारां निक्षिप्य, तस्मिन्निष्टदेवताचरणारविन्दनिःसृते जले त्रिर्निमज्य, देवतां ध्यायन्मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपन्, उदकेन त्रिवारजप्तेन कलशमुद्रया त्रिवारमात्मानमभिषिच्य, वैदिकसन्ध्यातर्पणं कृत्वा, सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा, तान्त्रिकाघमर्षणादि वारिधारान्तं कर्म कुर्यात् ॥ १९ ॥

तथा च यामले : ध्यात्वा जलाञ्जलीन् क्षिप्त्वा तर्पयेदिष्टदेवताम् ॥ २० ॥

तत्र क्रममाह : ॐ देवांस्तर्पयामि, ॐ ऋषींस्तर्पयामि, ॐ पितॄंस्तर्पयामि, इति सन्त० र्यगुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुञ्च तर्पयेत् ॥

तथा च : देवान् ऋषीन् पितॄंश्चैव तं कल्पोक्तविधानतः। गुरुपंक्ति पुरा तर्प्य तर्पयेदिष्टदेवताम् ॥ २१ ॥ वैष्णवे तु विशेषः। नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकम्। विश्वक्सेनञ्च शैनेयं गुरुञ्च तर्पयेत्त्रिशः।

वाक्यन्तु : ॐ नारदं तर्पयामि इत्यादिक्रमेण प्रयोगः ॥ २२ ॥ ततो मूलमुच्चार्य अमुकदेवतां तर्पयामि नमः इति विष्णुविषयम्।

तथा च गौतमीये : आदौ मन्त्रं समुच्चार्य श्रीपूर्वं कृष्णमित्यपि। तर्पयामिपदञ्चोक्त्वा नमोऽन्तं तर्पयेत्ततः ॥ २३ ॥ अन्यत्र मूलमुच्चार्य अमुकदेवतां तर्पयामि।

तथा च तन्त्रान्तरे : तर्पयामिपदं योज्यं मन्त्रान्तेष्वेषु नामसु। द्वितीयान्तेषु चेत्येवं तर्पणस्य मनुः स्मृतः ॥ २४ ॥ शक्तिविषये पुनः। मूलमुच्चार्य अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहा। होमतर्पणयोः स्वाहेति तत्तन्मन्त्रवचनात् ॥ २५ ॥

तथा च नीलतन्त्रे : मन्त्रान्ते नाम उच्चार्य तर्पयामि ततः परम्। स्वाहान्तं तर्पयन्त्वेवम् इत्यादि ॥ २६ ॥ विशुद्धेश्वरे : विद्यां पूर्वं समुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम्। तर्पयामीति सम्प्रोक्त्वा स्वाहान्तस्तर्पणे मतः। पञ्चविंशतिसंख्या वा दशधा वा त्रिधापि वा। मूलमन्त्रं समुच्चार्य श्रीकृष्णं तर्पयेत्सुधीः। इति गौतमीयवचनात्पञ्चविंशतिवारं दशधा त्रिधा वा सन्तर्पयेत् ॥ २७ ॥ अत्र श्रीकृष्णमित्युपलक्षणम्। शक्तिविषये त्रिधा तर्पणम्। स्नानकर्मणि सम्प्राप्ते मूर्ध्नि मन्त्री जलाञ्जलिम्। विद्ययाथ त्रिशः कुर्यात्पूतास्तु त्रिः पयः पिबेत् ॥ तर्पणञ्च त्रिधा भूयस्त्रिधा च प्रोक्षणं तनोरिति कुलामृतवचनात् ॥ २८ ॥ ततश्च तदावरणदेवतानां प्रत्येकेन सकृत्तर्पयेत्।

तथा च कुलार्णवे : एकैकमञ्जलिं तोयं परिवारान् प्रतर्पयेत्। तत्राशक्तश्चेन्मूलमन्त्रमुच्चार्य इष्टदेवतामात्रं तर्पयेत् ॥ २९ ॥

तथा च : अशक्तौ मूलमुच्चार्य देवीमात्रं प्रतर्पयेत् ॥ ३० ॥ ततो

जलादुत्थाय धौते वाससी परिधायाचम्य ह्रीं हंसः इदमर्घ्यं सूर्याय स्वाहा। तारादौ तु ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा।

तन्त्रान्तरे : सूर्यमन्त्रं समुच्चार्य मार्त्तण्डभैरवाय च। प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं ततः पठेत्। स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य अर्घ्यं दत्त्वा जपेन्मनुम् ॥ ३१ ॥

श्री विद्याविषये तु : ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं सः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय ग्रहराशिनक्षत्रतिथियोगकरणपरिवारसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा इदमर्घ्यं दत्त्वा, तत्तद्देवता गायत्रीं शतधा वा जपेत् ॥ ३२ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे : अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः। महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद्दशधा यदि। सत्यं सत्यं महादेवि मुक्तो भवति तत्क्षणात्। इति दशधा शक्ताशक्तभेदेन ॥ ३३ ॥

गायत्रीजपानन्तरं तर्पणं वा। तथा च : सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम्। अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिरुत्क्षिपेत्। यथाशक्ति जपेद्देवीं गायत्रीं तदनन्तरम्। तर्पणार्थं समाचम्य प्राणानायम्य साधकः। ध्यात्वा जलाञ्जलिं क्षिप्त्वा तर्पयेदिष्टदेवताम्। इति यामलवचनात् ॥ ३४ ॥

गायत्री तु : त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। इति विष्णुगायत्री। नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। इति नारायणगायत्री। वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात्। इति नृसिंहगायत्री। वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्। इति हयग्रीवगायत्री।

गोपालगायत्री तु : कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति। दशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्। इति रामगायत्री। तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्। इति शिवगायत्री। तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। इति गणेशगायत्री। दक्षिणामूर्त्तये विद्महे ध्यानस्थाय धीमहि तन्नो धीशः प्रचोदयात्। इति दक्षिणामूर्त्तिगायत्री। आदित्याय विद्महे मार्त्तण्डाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्। इति सूर्यगायत्री। कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। इति कामदेवगायत्री। सर्वसम्मोहिन्यै विद्महे विश्वजनन्यै

धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात् । इति शक्तिगायत्री । त्वरितायै विद्महे महानित्यायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति त्वरितागायत्री । ऐं वागीश्वर्यै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि सौस्तनः शक्ति प्रचोदयात् । बालाभैरवी गायत्री । ऐं त्रिपुरादेव्यै विद्महे क्लीं कामेश्वर्यै धीमहि सौस्तनः क्लिन्ने प्रचोदयात् । इति त्रिपुरासुन्दरी गायत्री । त्रिपुरायै विद्महे भैरव्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति भैरवीगायत्री । महादेव्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति दुर्गागायत्री । नारायण्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात् । इति जयदुर्गा-गायत्री । महालक्ष्म्यै विद्महे महाश्रियै धीमहि तन्नः श्रीः प्रचोदयात् । इति लक्ष्मीगायत्री । वाग्देव्यै विद्महे कामराजाय धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति सरस्वती गायत्री । नारायण्यै विद्महे भुवनेश्वर्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति भुवनेश्वरी-गायत्री । भगवत्यै विद्महे माहेश्वर्यै धीमहि तन्नोऽन्नपूर्णे प्रचोदयात् । इति अन्नपूर्णागायत्री । महिष-मर्दिन्यै विद्महे दुर्गायै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात् । इति महिष-मर्दिनीगायत्री । वैरोचिन्यै वि ्हे छिन्नमस्तायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति छिन्नमस्तागायत्री । कलिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो देवो प्रचोदयात् । इति कालिकागायत्री । तारायै विद्महे महोग्रायै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । इति तारागायत्री । गरुडाय विद्महे सुपर्णाय धीमहि तन्नो गरुडः प्रचोदयात् । इति गरुडगायत्री ॥ ३५ ॥

ध्यानन्तु : प्रातः, उद्यदादित्यसङ्काशां पुस्तकाक्षकरां स्मरेत् । कृष्णाजिनधरां ब्राह्मीं ध्यायेत्तारकितेऽम्बरे ॥

मध्याह्ने : श्यामवर्णां चतुर्बाहुं शङ्खचक्रलसत्कराम् । गदापद्मधरां देवीं सूर्यासन-कृताश्रयाम् ॥ ३६ ॥

सायाह्ने बरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः । शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् । त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलञ्च नृकरोटिकाम् । सूर्यमण्लमध्यस्थां ध्यायन् देवीं समभ्यसेत् ॥ ३७ ॥

त्रिपुरादौ ध्यानविशेषो यथा : प्रातराधारकमले हुतभुङ्मण्डलो-परि । वाग्बीजरूपां विद्याया विद्युत्पटलभास्वराम् । पुष्पबाणेक्षुकोदण्ड-पाशांकुशलसत्कराम् । स्वेच्छागृहीतवपुषीं गुरुविद्याक्षरात्मिकाम् ॥३८॥

मध्याह्ने हृदयाम्भोजकर्णिके सूर्यमण्डले । कामबीजात्मिकां देवीमलक्तक-रसारुणाम् । प्रसूनवाणपुण्ड्रेक्षु-चापपाशांकुशान्विताम् । परितः स्वात्म-मुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः ॥ ३९ ॥ सायमाज्ञासरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमद्युतिम् । शक्तिबीजात्मिकां चाप-बाण-पाशांकुशान्विताम् । युग-नित्याक्षराकारां स्फटिकाभरणान्विताम् । चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम् ॥ ४० ॥

तारादौ तु : ह्रीं हंसः इति सूर्यार्घ्यं दत्त्वा, ताम्रादिपात्रे चन्दनार्क-कुसुमापराजिता-पुष्पाणि निक्षिप्य, उद्यदादित्यमण्डलवर्त्तिन्यै नित्यचैत-न्योदितायै श्रीमदेकजटायै स्वाहा इत्यर्घ्यं दत्त्वा, गायत्रीं जपेदिति विशेषः ।

तदुक्तं नीलतन्त्रे : उद्यदादित्यमण्डलवर्त्तिन्यै च समुद्धरेत् । नित्य-चैतन्योदितायै स्वाहेति च मनुः स्मृतः । अन्यत्र कालिकामन्त्रे एकजटा-पदस्थाने कालिकापदप्रयोगः ॥ ४१ ॥ ततः सूर्यमण्डले देवतां विभाव्य मूलमन्त्रं यथाशक्ति जप्त्वा, संहारमुद्रया देवतां स्वहृदयमानीय, तीर्थं नमस्कृत्य, यागस्थानमाविशेदिति स्नानविधिः ॥४२॥ ततः सामान्यार्घ्यं स्थापनाद्यासनोपवेशनान्तं दीक्षापद्धत्युक्तं कर्म समाप्य वामे ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः । दक्षिणे ॐ गणेशाय नमः । मूर्ध्नि मूलमुच्चार्य अमुकदेवतायै नमः ।

तथा च गौतमीये : कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामे गुरुत्रयं यजेत् । गुरुश्च परमादिश्च परापरगुरुस्तथा । दक्षपार्श्वे गणेशश्च मूर्ध्नि देवं विभावयेत् । ततः फडितिमन्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य ऊर्ध्वोर्ध्वं तालत्रयं दत्त्वा, छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा, रमिति जलधारया वह्निप्राकारं विचिन्त्य भूतशुद्धिं कुर्यात् ॥ ४३ ॥ तद्यथा : स्वांके उत्तानौ करौ कृत्वा सोऽहमिति हृदयस्थं जीवात्मानं दीपकलिकाकारं मूलाधार-स्थितकुलकुण्डलिन्या सह सुषुम्नावर्त्मना मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरकानाहत-विशुद्धाज्ञाख्यषट्चक्राणि भित्त्वा, शिरोऽवस्थिताधोमुख-सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमात्मनि संयोज्य, तत्रैव पृथिव्यप्ते-जोवाय्वाकाश-गंध-रस-स्पर्श-शब्द-नासिका-जिह्वा-चक्षुस्त्वक्-श्रोत्र-वाक्-पाणि - पाद - पायूपस्थ-प्रकृतिमनोबुद्ध्यहंकाररूप-चतुर्विंशति- तत्त्वानि विलीनानि विभाव्य, यमिति वायुबीजं धूम्रवर्णं वामनासापुटे विचिन्त्य, तस्य षोडशवारजपेन वायुना देहमापूर्य, नासापुटौ धृत्वा, तस्य-

चतुःषष्टिवार जपेन कुम्भकं कृत्वा, वामकुक्षिस्थ-कृष्णवर्णपापपुरुषेण सह देहं संशोष्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षिणनासया वायुः रेचयेत्। ततो दक्षिणनासापुटे रमिति वह्निबीजं रक्तवर्णं ध्यात्वा, तस्य षोडशवार-जपेन वायुना देहमापूर्य, नासापुटौ धृत्वा, तस्य चतुःषष्टिवारजपेन कुम्भकं कृत्वा, वामकुक्षिस्थ-कृणवर्णपापपुरुषेण सह देहं मूलाधारस्थित-वह्निना दग्ध्वा, तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वामनासया भस्मना सह वायुं रेचयेत् ॥ ४४ ॥

ठमितिचन्द्रबीजं शुक्लवर्णं वामनासिकायां ध्यात्वा, तस्य षोडश-वारजपेन ललाटे चन्द्रं नीत्वा नासापुटौ धृत्वा, वमिति वरुणबीजस्य चतुःषष्टिवारजपेन तस्माल्ललाटचन्द्राद्गलितसुधया मातृकावर्णात्मिकया समस्तदेहं विरच्य, लमिति पृथ्विबीजस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन देहं सुदृढं विचिन्त्य, दक्षिणेन वायुं रेचयेत्। मात्रासंख्यया वा।

तदुक्तं गौतमीये। सुषुम्नावर्त्मना सोऽहमिति मन्त्रेण योजयेत्। सहस्रारे शिवस्थाने परमात्मनि देशिकः। धूम्रवर्णं ततो वायुबीजं षड्बिन्दुलाञ्छितम्। पूरयेदिडया वायुं सुधीः षोडशमात्रया। मात्रया तु चतुःषष्ट्या कुम्भयेच्च सुषुम्नया। द्वात्रिंशन्मात्रया मन्त्री रेचयेत्पिङ्ग-लाख्यया। पूरयेदनया चैव सञ्चिन्त्य नीलमारुतम्। रक्तवर्णं वह्निबीजं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम्। तेन पूरकयोगेन मात्रया षोडशाख्यया। चतुःषष्ट्या मात्रया च निर्दहेत्कुम्भकेन तु। वामपार्श्वस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम्। ब्रह्महत्याशिरस्कञ्च स्वर्णस्तेय भुजद्वयम्। सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्। तत्संसर्गि-पदद्वन्द्वमङ्ग-प्रत्यङ्ग-पातकम्। उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रु विलोचनम्। खड्गचर्मधरं क्रुद्धमेवं कुक्षौ विचिन्तयेत्। मूलाधारोत्थितेनैव वह्निना निर्दहेच्च तम्। एवं संदह्य परितो द्वात्रिंशन्मात्रया ततः। भस्मना सहितं मन्त्री रेचयेदिडया पुनः। वामनाड्यां चन्द्रबीजं कुन्देन्द्वयुतसप्रभम्। भालेन्दुराजे संयोज्य ततः षोडशमात्रया। सुषुम्नया चतुःषष्टिमात्रया तोयबीजकम्। ध्यात्वा-मृतमयीं सृष्टिं पञ्चाशद्वर्णरूपिणीम्। तया देहं विचिन्त्यैवं मनसा पिङ्गलाध्वना। द्वात्रिंशन्मात्रया मंत्री लं बीजेन दृढं नयेत्। स्वस्थाने हंस-मंत्रेण पुनस्तेनैव वर्त्मना। जीवं तत्त्वानि चानीय स्वस्थाने स्थापयेत्ततः। इति कृत्वा भूतशुद्धिं मातृकान्यासमाचरेत्॥ ततः हंस इति बीजं स्वहृदयमानीय कुलकुण्डलिनीं पृथिव्यादीनि यथास्थाने स्थापयेत्। ॥ ४४ क ॥

विशेषस्तु शक्तिविषये : हंस इति जीवादिकं परमशिवे संयोज्य सोऽहमिति मन्त्रेण स्वस्थानमानयेत् ।

तथा च तन्त्रान्तरे : सोऽहमेवं समाभास्य जीवं हृदि समानयेत् । ॥ ४५ ॥

शूद्रे तु विशेषो वाराहीतन्त्रे : हंसाख्यं न स्मरेत्शूद्रो भूतशुद्धौ कदाचन । स्मरणान्नरकं याति दीक्षा च विफला भवेत् ॥ ४६ ॥

शारदायाम् : जीवं तेजोमयं ध्यात्वा नसोमन्त्रेण योजयेत् ॥४७॥

भूतशुद्धिपदव्युत्पत्तिमाह विशुद्धेश्वरे : शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् । अव्ययब्रह्मसंयोगाद्भूतशुद्धिरियं मतेति ॥ ४८ ॥

वाराहीये : मूलाधारात्ततो जीवं ब्रह्ममार्गेण देशिकः । हंसेन पुष्कर-स्थाने परमात्मनि योजयेत् । ब्रह्ममार्गः सुषुम्ना ॥ ४९ ॥

त्रिपुरासारसमुच्चये : संयोज्य जीवमथ दुर्गमसध्यनाडीमार्गेण पुष्करनिविष्टशिवे सुसूक्ष्मे ॥ ५० ॥ तत आं सोऽहं इति पठित्वा हृदि हस्तं दत्त्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ॥

ज्ञानार्णवे : प्राणप्रतिष्ठया पश्चाज्जीवं देहे नियोजयेत् । मुखवृत्तं समुच्चार्य हंसस्तु विपरीतकम् । उद्धरेत्परमेशानि विद्येयं त्र्यक्षरी मता । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं सर्वकर्माणि साधयेत् । तेनैव विधिना देवि स्थिरी-कुर्यान्निजां तनुम् ॥ ५१ ॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् : अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिर्विधीयते । धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालसुशोभनम् । ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परं वैराग्य-कर्णिकम् । स्वीयहृत्कमलं ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम् । कृत्वा तत्कर्णिका-संस्थं प्रदीपकलिकानिभम् । जीवात्मानं हृदि ध्यात्वा मूले सञ्चिन्त्य कुण्डलीम् । सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत् ॥ ५२ ॥

अथ मातृकान्यासः

तत्र मातृकाया ऋष्यादिन्यासः । अस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मऋषि-र्गायत्रीच्छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयो मातृकान्यासे विनियोगः । शिरसि ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः, गुह्ये ॐ व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नमः, पादयोः ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः ।

तथा च ज्ञानार्णवे : मातृकां शृणु देवेशि न्यसेत्पापनिकृन्तनीम् ।

ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रीच्छन्द उच्यते। देवता मातृका देवी बीजं व्यञ्जनमुच्यते। शक्तयस्तु स्वरा देवि षडङ्गन्यासमाचरेत्।

ततः कराङ्गन्यासो: अं कं खं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः। इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं। ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः इत्यादि क्रमेण न्यसेत्।

तथा च ज्ञानार्णवे: अं आं मध्ये कवर्गन्तु इं ईं मध्ये चवर्गकम्। उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्ये तवर्गकम्। ओं औं मध्ये पवर्गन्तु विन्दु-युक्तं न्यसेत्प्रिये अनुस्वार-विसर्गान्तौ यशवर्गौ सलक्षकौ। हृदयञ्च शिरो देवि शिखा कवचकं तथा। नेत्रमन्त्रं न्यसेत् ङेऽन्तं नमः स्वाहा क्रमेण तु। वषट् हुं वौषडन्तञ्च फडन्तं योजयेत्प्रिये। षडङ्गोऽयं मातृ-कायाः सर्वपापहरः स्मृतः॥

अथान्तर्मातृका अगस्त्यसंहितायाम्: एकैकवर्णानेकैकपत्रान्ते विन्यसेत्प्रिये। अकारादिषोडशस्वरान् सविन्दून्षोडशदलकमले कण्ठमूले न्यसेत्। ककारादि-द्वादशवर्णान् सविन्दून्द्वादशदलकमले हृदये न्यसेत्। डकारादिदशवर्णान् सविन्दून् दशदलकमले नाभौ न्यसेत्। बकारादि-षड्वर्णान् सविन्दून् षडदलकमले लिङ्गमूले न्यसेत्। वकारादि चतुरो वर्णान् सान्ताञ्चतुर्दलकमले मूलाधारे न्यसेत्। हक्षवर्णद्वयं द्विदलकमले भ्रूमध्ये न्यसेत्।

तथा च ज्ञानार्णवे: द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् षोडश विन्यसेत्। द्वादशच्छदहृत्पद्मे कादीन्द्वादश विन्यसेत्। दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन्न्यसेद्दश। षट्पत्रमध्ये लिङ्गस्थे बकारादीन्न्यसेच्च षट्। आधारे चतुरो वर्णान्न्यसेद्वादीश्चतुर्दले। हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले विन्यसेत्प्रिये। इत्यन्तर्मातृकां न्यस्य सर्वाङ्गन्यासमाचरेत्॥ ५३॥

अगस्त्यसंहितायाम्: एकैकवर्णमेकैकपत्रान्ते विन्यसेत्प्रिये। एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसातो वहिर्न्यसेत्।

वैष्णवे तु विशेषः: एकैकं वर्णमुच्चार्य मूलाधाराच्छिरोऽन्तकम्। नमोऽन्त इति विन्यास आन्तरः परिकीर्त्तितः।

तथा: अथान्तर्मातृकान्यासो मूलाधारे चतुर्दले। सुवर्णाभे व श ष

स चतुर्वर्णविभूषिते। षड्दले वैद्युतनिभे स्वाधिष्ठानेऽनलत्विषि। व भ मैर्यरलैर्युक्ते वर्णैः षड्भिश्च सुव्रते। मणिपूरे दशदले नीलजीमूतसन्निभे। डादिफान्तर्दलैर्युक्ते विन्दूद्भासितमस्तकैः। अनाहते द्वादशारे प्रवाल-रुचिसन्निभे। कादिठान्तदलैर्युक्ते योगिनां हृदयङ्गमे। विशुद्धे षोडशदले धूम्राभे स्वरभूषिते। आज्ञाचक्रे तु चन्द्राभे द्विदले हक्षलाञ्छिते। सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते। अकथादित्रिरेखात्महलक्षत्रयभूषिते। तन्मध्ये परविन्दुश्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्। एवं समाहितमना ध्याये-न्न्यासोऽयमान्तरः॥ ५३ क॥

अथ वाह्यमातृकाध्यानम् :

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलाम्। भास्वन्मौलि-निबद्ध-चन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्। मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजैर्विभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये। एवं ध्यात्वा न्यसेत्।

तत्र अंगुलिनियमतन्त्रे : ललाटेऽनामिकामध्ये विन्यासेन्मुखपङ्कजे। तर्जनीमध्यमानामा वृद्धानामे च नेत्रयोः। अंगुष्ठं कर्णयोर्न्यस्य कनिष्ठांगु-ष्ठकौ नसोः। मध्यास्तिस्रो गण्डयोस्तु मध्यमाश्चोष्ठयोर्न्यसेत्। अनामां दन्तयोर्न्यस्य मध्यमामुत्तमाङ्गके। मुखेऽनामां मध्यमाञ्च हस्ते पादे च पार्श्वयोः। कनिष्ठानामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठे च विन्यसेत्। ताः सांगुष्ठा नाभिदेशे सर्वाः कुक्षौ च विन्यसेत्। हृदये च तलं सर्वमंसयोश्च ककुत्स्थले। हृत्पूर्वहस्तपत्कुक्षिमुखेषु तलमेव च। एताश्च मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्त्तिताः॥ ५४॥

नित्यत्वमाह तत्रैव : अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः। इति।

स्थानमाह गौतमीये : ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः। ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्यदोःपत्सन्ध्यग्रकेषु च। पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेंऽसके। ककुद्यंसे च हृत्पूर्वपाणिपादयुगे तथा। जठराननयोर्न्यस्ये-न्मातृकावर्णान्यथाक्रमम्।

तद्यथा : अं नमो ललाटे, आं नमो मुखवृत्ते, इं ईं चक्षुषोः, उं ऊं कर्णयोः, ऋं ॠं नसोः, ऌं ॡं गण्डयोः, एं ओष्ठे, ऐं अधरे, ओं ऊर्ध्वदन्ते, औं अधोदन्ते, अं ब्रह्मरन्ध्रे, अः मुखे। कं दक्षबाहुमूले, खं कूर्परे, गं मणिबन्धे, घं अंगुलिमूले, ङं अंगुल्यग्रे। एवं चं छं जं झं ञं वामबाहु-

मूलसन्ध्यग्रकेषु। एवं टं ठं डं ढं णं दक्षपादमूलसन्ध्यग्रकेषु। एवं तं थं दं धं नं वामपादमूलसन्ध्यग्रकेषु। पं दक्षपार्श्वे, फं वामपार्श्वे, बं पृष्ठे, भं नाभौ, मं उदरे, यं हृदि, रं दक्षबाहुमूले, लं ककुदि, वं वामबाहुमूले, शं हृदादिदक्षकरे, षं हृदादिवामकरे, सं हृदादिदक्षपादे, हं हृदादिवामपादे, लं हृदाद्युदरे, क्षं हृदादिमुखे, सर्वत्र नमोऽन्तेन न्यसेत्॥

तथा च : ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सविन्दुर्विन्दुवर्जितः। पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमादुक्तो मनीषिभिः। इति राघवभट्टः॥ ५४ क॥

अथ संहारमातृकान्यासः

अस्या ध्यानं यथा : अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं, विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्। अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां वर्णेश्वरीं प्रणमतः स्तनभारनम्राम्। न्यासस्तु क्षकारादि अकारान्तः।

यथा : क्षं नमो हृदादिमुखे इत्यादि।

अपरञ्च : चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला विन्दुसंयुता। सविसर्गा सोभया च रहस्यं शृणु कथ्यते। विद्याकरी केवला च सोभया भुक्तिदायिनी। पुत्रदा सविसर्गा तु सविन्दुर्वित्तदायिनी।

विशुद्धेश्वरे : वाग्भवाद्या च वाक्सिद्धयै रमाद्या श्रीप्रवृद्धये। हृल्लेखाद्या सर्वसिद्धयै कामाद्या लोकवश्यदा। श्रीकण्ठाद्यानिमान्न्यस्येत्सर्वमन्त्रः प्रसीदति॥ ५५॥

श्रीविद्याविषयेनवरत्नेश्वरे : वाग्भवाद्या नमोऽन्ताश्च न्यस्तव्या मातृकाक्षराः। श्रीविद्याविषये मन्त्री वाग्भवाद्यष्टसिद्धये॥ ५६॥

नित्यतामाह यामले : भूतशुद्धिलिपिन्यासौ विना यस्तु प्रपूजयेत्। विपरीतफलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा॥ ५७॥

सामान्यन्यासे अंगुलिनियमस्तु गौतमीये : मनसा वा न्यसेन्न्यासान् पुष्पेणैवाथ वा मुने। अंगुष्ठानामिकाभ्यां वा चान्यथा विफलं भवेत्॥ ५८॥ विशेषन्यासे तु नायं नियमः। श्यामादिविद्यायां विशेषमातृकान्यासो वक्तव्यः॥ ५९॥

प्राणायामे अंगुलिनियमस्तु ज्ञानार्णवे : भूतशुद्धिं ततः कुर्यात्प्राणायामक्रमेण च। कनिष्ठानामिकागुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्। प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना॥ ६०॥

प्राणायामो द्विविधः : सगर्भो निर्गर्भश्च।

तथा च : सगर्भो मन्त्रजापेन निर्गर्भो मात्रया भवेत्॥ ६१॥

मात्रा च : वामजानुनि तद्धस्तभ्रामणं यावता भवेत् । कालेन मात्रा साज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ ६२ ॥

अथ प्राणायामः

मूलमन्त्रस्य बीजस्य प्रणवस्य वा षोडशवारजपेन वामनासापुटेन वायुं पूरयेत् ।

तथा च कालीहृदये : प्राणायामत्रयं कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा । अथवा मन्त्रबीजेन यथोक्तविधिना सुधीः । तस्य चतुःषष्टिवारजपेन वायुं कुम्भयेत् । तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन वायुं रेचयेत् । पुनर्दक्षिणेनापूर्य उभाभ्यां कुम्भयित्वा वामेन रेचयेत् । पुनर्वामेनापूर्य उभाभ्यां कुम्भयित्वा दक्षिणेन रेचयेत् ।

यथासारसमुच्चये : विपरीतमतो विदधीत बुधः पुनरेव तु तद्विपरीतकर्मिति । यौगिके पुनर्मात्रानियमः ॥ ६३ ॥

तथा च गौतमीये : मन्त्रप्राणायामः प्रोक्तो यौगिकं कथयामि ते । पूरयेद्वामया विद्वान्मात्राषोडशसंख्यया । इत्यादि ।

यद्वा : चतुःषोडशाष्टवारजपे पूरकादिकं कुर्यात् । अथवा एकचतुर्द्विवारेण ।

तथा च तन्त्रान्तरे : पूजयेत्षोडशभिर्वायुं धारयेच्च चतुर्गुणैः । रेचयेत्कुम्भकार्द्धेन अशक्त्या तत्तुरीयकैः । तदशक्तौ तच्चतुर्थमेवं प्राणस्य संयमः ।

अस्य नित्यत्वमाह स एव : प्राणायामं विना मन्त्रपूजने न हि योग्यता ।

निबन्धे : आदावन्ते च यत्नेन प्राणायामं समाचरेत् । कर्मस्वपि समस्तेषु शुभेष्वप्यशुभेषु च । गोपाले तु विशेषो वक्तव्यः ॥६३ क॥

अथ पीठन्यासः

ॐ आधारशक्तये नमः, प्रकृतये, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय । एतत्सर्वं हृदि । ततो दक्षिणस्कन्धे धर्माय, वामस्कन्धे ज्ञानाय, वामोरौ वैराग्याय, दक्षिणोरौ ऐश्वर्याय, मुखे अधर्माय, वामपार्श्वेऽज्ञानाय, नाभौ अवैराग्याय, दक्षिणपार्श्वे अनैश्वर्याय, सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन न्यसेत् ।

तथा च शारदायाम् : अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान्प्रादक्षिण्येन साधकः । धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं क्रमशः सुधीः । मुखपार्श्व-नाभिपार्श्वेष्व-

धर्मादीन्प्रकल्पयेदिति । पुनश्च हृदि । ॐ अनन्ताय नमः, एवं पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने । सर्वत्र नमः, इत्यन्तं विन्यस्य हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु तत्तत्कल्पोक्त पीठशक्तीर्मध्ये पीठमनुञ्च न्यसेत् ॥ ६४ ॥

शारदायाम् : अनन्तं हृदये पद्मं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् । एषु स्वस्वकलां न्यस्य नामाद्यक्षरपूर्वकम् । सत्त्वादीन्त्रिगुणान्न्यस्य तथैवात्र गुरूत्तमः । आत्मानमन्तरात्मनं परमात्मानमेव च । ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत्पीठमनुं ततः ॥ ६४ क ॥

अथ ऋष्यादिन्यासः

ऋषिस्तु : महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुम् । संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः ॥ ६५ ॥ गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्त्तितः ॥ ६६ ॥ सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते । अक्षरत्वात्पदत्वाच्च मुखे छन्दः समीरितम् ॥ ६७ ॥ सर्वेषामेव जन्तूनां भाषणात्प्रेरणात्तथा । हृदयाम्भोजमध्यस्था देवता तत्र तां न्यसेत् ॥६८॥ ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रफलभाग्भवेत् । दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम् ॥ ६९ ॥

तन्त्रान्तरे : ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे । देवतां हृदये चैव बीजन्तु गुह्यदेशके । शक्तिञ्च पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ॥ ७० ॥ ततस्तु तत्तन्मन्त्रोक्तन्यासान्कुर्यात् ।

तदुक्तं कुलार्णवे : आगमोक्तेन विधिना नित्यं न्यासं करोति यः । देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥ ७१ ॥ यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये । दृष्ट्वाविघ्नाः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥७२॥ अकृत्वा न्यासजालं यो मूढत्वात्प्रजपेन्मनुम् । सर्वविघ्नैः स वाध्यः स्याद्व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा ॥ ७३ ॥

षडङ्गन्यासे अगुलिनियमस्तु :

त्रिद्व्येकदशक-त्रिद्विसंख्यया शैलसम्भवे । अंगुलीनामिति वचनादिति सर्वत्र साधारणम् ॥ ७४ ॥

यामले : हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः । मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादंगुष्ठेन शिखा तथा । दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्र-

मोरितम् । प्रोक्तांगुलीभ्यामस्त्रं स्यादङ्गक्लृप्तिरियं मता । इति । तिसृभिस्तर्जनीमध्यमानामाभिः ॥ ७५ ॥ तर्जनीमध्यमानामा प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात् । यदि नेत्रद्वयं प्रोक्तं तदा तर्जनीमध्यमे । इति राघवभट्टधृतवचनात् ॥ ७६ ॥ हृदयादिषु विन्यस्येदङ्गमन्त्रांस्ततः सुधीः । हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभा । शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् । नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् । षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षडङ्गेषु नियोजयेत् ॥ ७७ ॥ पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेत् । इति शारदावचनम् ॥ ७८ ॥

वैष्णवे तु : अनंगुष्ठा ऋजवो हस्तशाखा भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षकेऽपि च ॥ अधोंगुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां करद्वन्द्वांगुलयो वर्मणि स्युः । नाराचमुष्ट्युद्धृतबाहुयुग्मकांगुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु । विश्वग्विषक्तः कथितास्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे च ॥ ७८ ॥ नेत्रत्रयं यत्र भवेदनामा षडङ्गमुद्रा कथिता यथावत् । अङ्गहीनस्य मन्त्रस्य स्वेनैवाङ्गानि कल्पयेत् ।

तथा च ब्रह्मयामले : स्वनामाद्यक्षरं वीजं सर्वेषामभिधीयते ॥ ८० ॥ ततस्तत्तत्कल्पोक्तमुद्रां प्रदर्श्य ध्यानं कृत्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ।

तथा च सनत्कुमारतन्त्रे : अकृत्वा मानसं यागं न कुर्याद्बहिरर्चनम् ॥ ८१ ॥ शङ्खस्थापनन्तु दीक्षाप्रकरणे उक्तम् ॥ ८२ ॥ ततः शरीरे धर्मादिपूजा ।

तथा च शारदायाम् : न्यासक्रमेण देहेषु धर्मादीन्पूजयेत्ततः । पुष्पाद्यैः पीठमन्त्रन्तं तस्मिश्च परदेवताम् । इति दर्शनात्शरीरे पीठपूजा ॥ ८३ ॥ ततः पीठपूजा । पीठस्योत्तरे गुरुपंक्तीः पूजयेत् ।

यथा : वायव्यादीशपर्यन्तं ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ॥ ८४ ॥ त्रिपुरादौ तु विशेषगुरुपूजा वक्तव्या ॥ ८५ ॥ ततः पीठमध्ये ॐ आधारशक्तये नमः, एवं प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय । अग्निकोणे धर्मञ्च । निर्ऋतिवाय्वीशानेषु ज्ञानं वैराग्यं ऐश्वर्यञ्च पूजयेत् । ततः पूर्वादिचतुर्दिक्षु अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यान्पूजयेत् । मध्ये अनन्तादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः । इत्यन्तं सम्पूज्य पूर्वादि-केशरेषु मध्ये तत्तत्कल्पोक्त पीठशक्तीः सम्पूज्य मध्ये पीठमनुं प्रपूजयेत् ।

क्रमदीपिकायाम् : वायव्यादीशपर्यंतं अर्च्या पीठस्योत्तरे गौरवी पंक्तिरादौ। पूज्योऽन्यत्राप्याम्बिकेय: कराब्जैः पाशं दण्डं सृण्यभीती दधानः। आरभ्याधारशक्त्याद्यमरचरणपावध्यतो मध्यभागे, धर्मादीन् वह्निरक्ष:परमशिवगतान्दिक्ष्वधर्मादिकांश्च। मध्ये शेषाब्जविम्बत्रितय-गुणगुणात्मस्रजं केशराणां, मध्ये मध्ये च शक्तीर्नव समभियजेत्पीठमन्त्रेण भूयः ॥ ८६ ॥ तारादिविद्यादौ तु विशेषो वक्तव्य: ॥ ८७ ॥

पूर्वादि-दिङ्नियमस्तु यामले : पूज्यपूजकयोर्मध्यं प्राचीति कीर्त्यंते बुधैः। तद्दक्षिणं दक्षिणं स्यादुत्तरं चोत्तरं स्मृतम्। पृष्ठन्तु पश्चिमं ज्ञेयं सर्वत्रैवं प्रयोजयेत्।

स्पष्टमाह शाम्भवीये : स्वसम्मुखं भवेत्प्राची देवीपृष्ठन्तु पश्चिमम्। सव्यञ्च दक्षिणं विद्याद्दक्षिणश्चोत्तरं मतम् ॥ ८८ ॥

भावचुडामणौ : साधकेच्छावशाद्देवि सर्वदिङ्मुखदेवता। रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव हि। शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः।

विष्णुविषये वाराहीये : स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वाचान्तः पूर्वदिङ्मुखः। अनेन विधिना मन्त्री पूर्वादौ पूजनं चरेत् ॥ ८९ ॥

अविशेषे यन्त्रनियमस्तु मत्स्यसूक्ते : अनुक्तकल्पे यन्त्रन्तु लिखेत्पद्मं दलाष्टकम्। षट्कोणकर्णिकं तत्र वेदद्वारोपशोभितम् ॥ ९० ॥ ततः पुनर्ध्यात्वा दीक्षापद्धत्युक्तक्रमेण आवाहनादि प्राणप्रतिष्ठान्तं कर्म कुर्यात् ॥ ९१ ॥

आवाहने तु विशेषो यथा आगमकल्पद्रुमे : मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुम्नावर्त्मना सुधीः। आनीय तेजः स्वस्थानान्नासिकारन्ध्रनिर्गतम्। करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्यं पुष्पसञ्चये। संयोज्य-यन्त्रमध्ये तत्संस्थाप्यावाहयेत्ततः ॥ ९२ ॥ ततः षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्। ॥ ९३ ॥

षोडशोपचारनियमस्तु : आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च। सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवेद्यवन्दनम्। प्रयोजयेदर्चनायामुपचारस्तु षोडशः ॥ ९४ ॥ अथवा एषामप्यभावे पञ्चोपचारान् कल्पयेत्। गन्धादयो नैवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपरचारिका इति ॥ ९५ ॥

विष्णुविषये तु : अर्घ्याद्याः पञ्चपञ्चैव गन्धाद्या इति भेदतः।

प्रयोजयेदर्चनायामुपचारान्दश क्रमात् ॥ ९६ ॥ ततः पुष्पपर्यन्तमुपचार तत्तन्मन्त्रेण दत्त्वा षडङ्गेन पूजयेत् ॥ ९७ ॥

पुष्पदाने तु विशेषः : पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् । दुःखदं तत्समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् । अधोमुखं फलं नेष्टं पुष्पाञ्जलि-विधौ न च । सर्वस्व द्रव्यदानेऽयं क्रमः । आदौ मूलं ततो द्रव्यं देवतायै ततः पदम् ।

श्रीतत्त्वचिन्तामणौ : हृद्वह्निवल्लभातोयमन्त्रं पाद्यादिषु क्रमात् । नमो वौषट् गन्धपुष्पे हृदान्यानि निवेदयेत् । मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं अमुकदेतायै नमः । इत्यादिना दद्यात् ॥ ९८ ॥ ततो मूर्द्धहृद्गुह्यपाद-सर्वाङ्गकेषु मूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा तत्तत्कल्पोक्तावरणपूजां कुर्यात् ।

तथा च : पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा परिवारार्चनं चरेदिति भट्टः । ततो धूपदीपौ दद्यात् ॥ ९९ ॥

तद्यथा : जयध्वनि-मन्त्रमातः स्वाहेति पुष्पाक्षतैर्घण्टां सम्पूज्य, वामहस्तेन तां वादयन्, तत्तन्मन्त्रेण नीचैर्धूपं एवं दृष्टिपर्यन्तं दीपं दद्यात् ॥ १०० ॥ ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा, नैवेद्यमानीय, फडिति सम्प्रोक्ष्य, चक्रमुद्रया अभिरक्ष्य, तदुपरि मूलमष्टधा जप्त्वा धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, मूलमुच्चार्य नैवेद्यं दद्यात् । यत्तोयमर्घ्यपात्रस्य तदादाय निवेदयेत् । अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः । न गृह्णाति महादेवी दत्तं विधिशतैरपि । इति वचनादुपचारानर्घ्यपात्रस्थजलेनोत्सृज्य दद्यात् ॥ १ ॥ ततः पुनराचमनीयं दत्त्वा ताम्बूलादीन दद्यात् । वैष्णवे तु नैवेद्ये विशेषो वक्तव्यः ॥ २ ॥ ततः सपरिवारां देवतां गन्धादिभिरभ्यर्च्य, नृत्यगीतैर्देवं सन्तोष्य, जय जयेत्युक्त्वा, विशेषार्घ्यं दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ॥ ३ ॥

दाने तु : आदौ मूलं ततो द्रव्योल्लेखः ततः सम्प्रदानं ततस्त्यागार्थकं पदमिति सर्वत्र ।

तथा च कुलार्णवे : आदौ मूलं समुच्चार्य पश्चाद्देयं समुच्चरेत् । सम्प्रदानं तदन्ते तु त्यागार्थकपदन्ततः । एवं क्रमेण देवेशि उपचारा-न्प्रकल्पयेत् । मन्त्राते कर्मसन्निपात इति न्यायात् ॥ ४ ॥ ततश्चुल्लकोदकमादाय ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यव-स्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं

यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, मां मदीयं सकलं सम्यगमुकदेवतायै समर्पयेत् ॐ तत्सत् । नमस्कारानन्तरं वा ॥ ५ ॥ ततोऽष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जप्त्वा ॐ गुह्यातिगुह्यागोप्ता त्वं गृहाणस्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रासादात्त्वयि स्थिते । अन्यत्र गोप्त्री देवीति विशेषः । इति जपं समर्प्य स्तुत्वा नत्वाऽष्टाङ्गप्रमाणं कुर्यात् ॥ ६ ॥

अष्टाङ्गप्रणामो यथा : पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा । वचसा मनसा चैव प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥ ७ ॥ बाहुभ्याञ्चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा । पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात्पूजासु प्रवराविमौ ॥ ८ ॥ भूमौ निपत्य यः कुर्यात्कृष्णेऽष्टाङ्गनतिं सुधीः । सहस्रजन्मजं पापं त्यक्त्वा वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

तथा च : वेदविद्भ्यो धरां दत्त्वा यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते भक्त्या कृष्णे कृत्वा प्रदक्षिणम् । कृष्ण इत्युपलक्षणम् ॥

विश्वसारे : शङ्खहस्तेन सर्वत्र प्रदक्षिणं प्रकीर्त्तितम् ॥ १० ॥

नतिविशेषस्तु यामले : त्रिकोणकारा सर्वत्र नतिः शक्तेः प्रकीर्त्तिता। दक्षिणाद्वारवीं गत्वा दिशस्तस्माच्च शाम्भवीम् । ततश्च दक्षिणं गत्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ॥ ११ ॥ अर्द्धचन्द्रं महेशस्य पृष्ठतश्च समीरिता । शिवप्रदक्षिणे मन्त्री अर्द्धचन्द्रक्रमेण तु । सव्यासव्यक्रमेणैव सोमसूत्रं न लङ्घयेत् । सोमसूत्रं जलनिःसरणस्थानम् ॥ १२ ॥ प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः । दर्शयेद्दक्षिणं पार्श्वं मनसाऽपि विचक्षणः । त्रिधा च वेष्टयेत्सम्यग्देवतायाः प्रदक्षिणे ॥ १३ ॥ एकहस्तप्रणामश्च एकं वाऽपि प्रदक्षिणम् । अकाले दर्शनं विष्णोर्हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ १४ ॥ ततो देवताङ्गे आवरणदेवता विलाप्य, क्षमस्वेति विसर्जनं कृत्वा, संहारमुद्रया तत्तेजः पुष्पैः सार्द्धमाघ्राय स्वहृदयमानयेत् । (पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् : क्षमस्वेति वदन्मूलमन्त्रेण व्यापकं त्रिश इति वचनात्विसर्जनान्तरं व्यापकं कुर्यात् ।)

तथा च : निधाय देवतां पश्चात्स्वीयहृत्सरसीरुहे । सुषुम्नावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेत्ततः ॥ १५ ॥ ततः ऐशान्यां त्रिकोणमण्डलं कृत्वा निर्माल्यशेषं दद्यात् ।

विष्णौ तु : ॐ विश्वक्सेनाय नमः । शक्तौ: ॐ शेषिकायै नमः । शिवे : ॐ चण्डेश्वराय नमः । सूर्ये : ॐ तेजश्चण्डाय नमः । गणेशे : ॐ उच्छिष्टगणेशाय नमः । कालिकादौ : ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः ।

तथा च : विश्वक्सेनः स्मृतो विष्णोस्तेजश्चण्डो विवस्वत इत्यादि। ॥ १६ ॥

तथा च निबन्धे : सूर्ये गणपतावुग्रे शाक्ते शैवेऽथ वैष्णवे। तेजश्चण्ड-मखोच्छिष्टसोजमुच्छिष्ट पूर्विकाम्। चाण्डालीं शेषिकां चण्डं विश्वक्सेनं क्रमाद्यजेत्। सोज इति उमा शम्भुना सह वर्त्तते इति सो-दुर्गा तज्जो गणेशः। ॥ १६ क ॥ ततः पादोदकं पीत्वा नैवेद्यं किञ्चित्स्वीकृत्य अन्यद्यथायोग्याय दत्त्वा यथासुखं विहरेदिति ॥ १७ ॥

मत्स्यसूक्ते : अनिवेद्यं न भुञ्जीत मत्स्य-मांसादिकञ्च यत्। अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। विष्णोरिति तत्तद्देवतापरम् ॥१८॥

तथा च भैरवतन्त्रे : हृदये च वहिर्देवीं समर्प्य विधिवत्ततः। निर्माल्यञ्च शुचौ देशे नैवेद्यं भक्षयेत्सुधीः ॥ १६ ॥

तन्त्रान्तरे : निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गे चानुलेपनम्। नैवेद्यं चोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने। देवतार्चावशिष्टं यत्सलिलं शङ्ख-मध्यगम्। अङ्गलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २० ॥ इति सामान्यपूजापद्धतिः (सामान्य पूजायन्त्रम् चित्र १४)।

विविध-देवीमन्त्राः

यामाहुराद्यां प्रकृतिं मुनीन्द्राः पद्मां त्रिशक्तिं गिरमन्नपूर्णाम्। नित्याञ्च दुर्गां त्वरिताः तथान्यां भजामि नित्यं भुवनेश्वरीं ताम् ॥ २१ ॥

अथ वक्ष्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम्। ब्रह्मादयोऽपि यां ज्ञात्वा लेभिरे परमां श्रियम् ॥ २२ ॥

अथ भुवनेश्वरीमन्त्राः : नकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान्। बीजं तस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धिकांक्षिभिः। नकुलीशो हकारः, अग्नी रेफः, वामनेत्रमीकारः, अर्द्धचन्द्रोऽनुस्वारः ॥ २३ ॥

भुवनेश्वरी पदार्थमाह दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम् : व्योमबीजे महेशानि कैलासादि प्रतिष्ठितम्। वह्निबीजात्सुवर्णादि निष्पन्नं बहुधा प्रिये। तेनायं वर्त्तते लोको भूमिमण्डलसंस्थितः। तूर्यस्वरेण पाताले शेषरूपेण धार्यते। महाभूमण्डलं तस्मात्पातालस्याऽपि नायिका। अतएव महेशानि भुवनाधीश्वरी प्रिये।

मतान्तरमाह : हकारो व्योम तूर्येण स्वरेणानिलसम्भवः। विकारे सति रेफेण साक्षद्वह्निस्वरूपिणी। वह्निबीजं वसुधेयं तस्माद्रेफश्च सुन्दरि। अतएव महेशानि सवायोः समता भवेत्। विन्दुचक्रामृता-

ईदृवि प्लावयन्ती जगत्त्रयम् । द्रवरूपी भवेत्तस्मात्प्लवन्ती चार्द्धमात्रया । अतएव महेशानि भुवनेशीति कथ्यते ॥ २४ ॥

अस्याः पूजाप्रयोगः : सामान्यपूजापद्धत्युक्तक्रमेण प्रातःकृत्यादि-पीठन्यासान्तं कर्म विधाय हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु मध्ये च पीठ-शक्तीर्न्यसेत् ।

तद्यथा : जया विजया अजिता अपराजिता नित्या विलासिनी दोग्ध्री अघोरा मङ्गला । वाचयन्तु : ॐ जयायै नमः इत्यादि । कर्णिकायां ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः ॥ २५ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : अस्य भुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिर्ऋषिर्गायत्री-च्छन्दो भुवनेश्वरी देवता हकारो बीजम् ईकारः शक्तिः रेफः कीलकं चतुर्वर्गसिद्धयर्थे विनियोगः । शिरसि ॐ शक्तये ऋषये नमः । मुखे ॐ गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदि ॐ भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः, गुह्ये ॐ हं बीजाय नमः, पादयोः ईं शक्तये नमः, सर्वाङ्गे रं कीलकाय नमः ।

तथा च शारदायाम् : ऋषिः शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री देवता मनोः । कथिता सुरसंघेन सेविता भुवनेश्वरी । हतूर्यबीजशक्ती च कीलकं रेफ उच्यते ॥ २६ ॥ ततो मन्त्रन्यासं कुर्यात् । शिरसि ॐ हृल्लेखायै नमः एवं वदने एं गगनायै नमः, हृदि उं रक्तायै नमः, गुह्ये इं करालिकायै नमः, पादयोः अं महोच्छुष्मायै नमः । एवमूर्ध्वप्राग्याम्योदीच्य-पश्चिमेषु मुखेषु तां न्यसेत् ।

एतासां बीजानि निबन्धे : हृल्लेखां मूर्ध्नि वदने गगनां हृदयाम्बुजे । रक्तां करालिकां गुह्ये महोच्छुष्मां पदद्वये ॥ ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्य-पश्चिमेषु मुखेषु ताः । सत्यादि पञ्चह्रस्वाढ्या न्यस्तव्या भूतसंप्रभाः । ॥ २७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात् : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एव हृदयादिषु ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि ।

तथा च : षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गक्रियां मनोः ।

स्वच्छन्दसंग्रहे : स्वरं विहाय बीजं तं दीर्घषट्केन योजयेत् । षडङ्गानि विधेयानि सर्वत्रायं विधिः स्मृतः । अंगुलिनियमस्तु पूर्व-मेवोक्तः । सर्वत्र कराङ्गन्यासे एवं क्रमः ॥ २८ ॥ ततो भाले ॐ गायत्री

सहित ब्रह्मणे नमः, दक्षिणकपोले ॐ सावित्रीसहित विष्णवे नमः, वामकपोले ॐ वागीश्वरीसहित महेश्वराय नमः, वामकर्णोपरि ॐ श्रीसहित धनपतये नमः। मुखे ॐ रतिसहितस्मराय नमः, सव्यकर्णोपरि ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः, दक्षिणगण्डकर्णान्तराले ॐ शङ्खनिधये नमः, वामगण्डकर्णान्तराले ॐ पद्मनिधये नमः, मुखे ॐ भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः, एवं कण्ठमूल-दक्षिणस्तन-वामस्तन-वामांस-हृदय-दक्षिणांस-नाभिषु एतान्न्यसेत्। तथा च : ब्रह्माणं विन्यसेद्भाले गायत्र्या सह संयुतम्। सावित्र्या सहितं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत्। वागीश्वर्या समायुक्तं वामगण्डे महेश्वरम्। न्यसेच्छ्रिया धनपतिं वामकर्णाग्रके पुनः। रत्या स्मरं मुखे न्यस्य पुष्ट्या गणपतिं न्यसेत्। सव्यकर्णोपरि निधी कर्णगण्डान्तरालयोः। न्यस्तव्यं वदने मूलं भूयश्चैतां स्तनौ न्यसेत्। ॥ २९ ॥

तथा च शारदायाम् : कण्ठमूले स्तनद्वन्द्वे वामांसे हृदयाम्बुजे। सव्यांसे पार्श्वयुगले नाभिदेशे च देशिकः ॥ ३० ॥

तथा च वर्णभिन्नन्यासे तु विश्वसारे : ॐ काराद्यं ङेयुतश्च नमोऽन्तश्च यथा स्थितिः। विधिना विन्यसेत्सर्वं शङ्करस्य मतेन च। एवं सर्वत्र ॥ ३१ ॥ ततो भाले ॐ ब्राह्म्यै नमः, वामांसे ॐ माहेश्वर्यै नमः, वामपार्श्वे ॐ कौमार्यै नमः, जठरे ॐ वैष्णव्यै नमः, दक्षिणपार्श्वे ॐ वाराह्यै नमः, दक्षिणांसे ॐ इन्द्राण्यै नमः, गले ॐ चामुण्डायै नमः, हृदि ॐ महालक्ष्म्यै नमः, इति न्यस्य मूलेन व्यापकत्रयं सप्तमं वा कुर्यात्।

तथा च : भालेंऽसे पार्श्वे जठरे पार्श्वेंऽसे च गले हृदि। ब्राह्मण्याद्यास्ततो न्यस्य विधिना प्रोक्तलक्षणा। मूलेन व्यापकं देहे न्यस्य देवीं विभावयेदिति ॥

ततो ध्यानम् : उद्यद्दिनकरद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्। स्मरेमुखीं वरांकुशपाशाभीतिकरां प्रजजेद्भुवनेशीम्। एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य वहिःपूजामारभेत ॥ ३३ ॥

पूजायन्त्रम् : पद्ममष्टदलं वाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः। विलिखेत्कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम्। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेव मण्डलमालिखेत् ॥ ३४ ॥ ततो दीक्षापद्धत्युक्तक्रमेण शङ्खस्थापनं कुर्यात्। ततः सामान्यपूजापद्धत्युक्तक्रमेण पीठपूजां विधाय पीठशक्तिः पूजयेत्। (भुवनेश्वरी यन्त्रम्, चित्र १५)।

तद्यथा : पूर्वादिकेशरेषु ॐ जयायै नमः, एवं विजयायै अजितायै, अपराजितायै, नित्यायै, विलासिन्यै दोग्ध्र्यै, अघोरायै, मध्ये मङ्गलायै।

तथा च निबन्धे : ततः सम्पूजयेत्पीठं नवशक्तिसमन्वितम् जयाख्या विजया पश्चात् अजिता चापराजिता। नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गलाऽपि च। बीजाढ्यमासनं दत्त्वा मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत्। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् ॥ ३५ ॥ तदुपरि ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः। ततः पूर्ववत्ध्यानावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत्।

तद्यथा : ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्य, कर्णिकामध्ये ॐ हृल्लेखायै नमः, पूर्वे एं गगनायै नमः, दक्षिणे उं रक्तायै, उत्तरे इं करालिकायै, पश्चिमे अं महोच्छुष्मायै, षट्कोणेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ गायत्र्यै नमः, एवं ब्रह्मणे नमः, नैर्ऋते सावित्र्यै, विष्णवे, वायव्ये सरस्वत्यै, रुद्राय। वह्निकोणे श्रियै, धनपतये, पश्चिमे रत्यै, स्मराय, ऐशान्यां पुष्ट्यै, गणपतये, षट्कोणस्योभयपार्श्वयोः ॐ शङ्खनिधये, ॐ पद्मनिधये, सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तम्। केशरेषु अग्निनिर्ऋतिवायव्योशानेषु मध्ये चतुर्दिक्षु च ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत्।

तथा च निबन्धे : केशरेष्वग्निकोणादौ हृदयादीनि पूजयेत्। नेत्रमग्रे दिशास्वस्त्रं ध्यातव्याश्चाङ्गदेवताः। एवं सर्वत्र। भैरव्यादौ विशेषो वक्तव्यः। पूर्वाद्यष्टदलेषु ॐ अनङ्गकुसुमायै नमः, एव अनङ्गकुसुमातुरायै, अनङ्गमदनायै, अनङ्गमदनातुरायै, भुवनपालायै, अनगङ्गवेद्यायै, शशिरेखायै, गगनरेखायै ॥ ३६ ॥ पूर्वादि षोडशदलेषु करात्यै, विकरात्यै, उमायै, सरस्वत्यै, श्रियै, दुर्गायै, उषायै, लक्ष्म्यै, श्रुत्यै, स्मृत्यै, धृत्यै, श्रद्धायै, मेधायै, मत्यै, कान्त्यै, अर्घ्यायै। तद्बहिः भूमागे पूर्वादितः, अनङ्गरूपायै, अनङ्गमदनायै, अनङ्गमदनातुरायै, भुवनवेगायै, भुवनपालिकायै, सर्वशिशिरायै, अनङ्गवेदनायै, अनङ्गमेखलायै। प्रणवादिनमोऽन्तेनैताः पूजयेत्। तद्बहिश्चतुरस्रे पूर्वादौ ॐ लां इन्द्राय देवाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नमः। ॐ रां अग्नये तेजोधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नमः। ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये सायुधेत्यादि। ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोधिपतये सायुधेत्यादि। ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये सायुधेत्यादि। ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये

सायुधेत्यादि। ॐ सां सोमाय ताराधिपतये सायुधेत्यादि। ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधेत्यादि। इन्द्रेशानयोर्मध्ये ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधेत्यादि। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधेत्यादि।

तथा च : लोकपाला बहिः पूज्याः समस्ताश्चतुरस्रके। पुरुहुतेशयोर्मध्ये रक्षोवरुणयोस्तथा। ब्रह्मविष्णु सदा पूज्यौ दिगीशार्चां विदुर्बुधाः। इन्द्रादिलोकपालानां ये मन्त्रास्ते ध्रुवादिकाः। स्वस्वबीजान्विताः सर्वं सचतुर्थीनमोऽन्तिकाः। इति वचनात्सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजनम्। ॥ ३६ क ॥

स्व स्व बीजमाह मन्त्रदर्शने : पृथिव्याग्निपवनाद्यन्तवरुणानिलसेश्वरैः। अनन्तविन्दुसंयुक्तैरर्च्याः पाशेन मायया।

तथा : अन्ते यजेल्लोकपालान्मूलपारिषदान्वितान्। हेतिजात्यधिपोपेतान्दिक्षु पूर्वादितो यजेत्। सवाहनायेति क्रमदीपिका ॥ ३७ ॥ तद्बहिः पूर्वादौ वज्राय शक्तये दण्डाय खड्गाय पाशाय अंकुशाय गदायै शूलाय पद्माय चक्राय प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं द्वात्रिंशल्लक्षजपः ॥ ३८ ॥

तथा च : प्रजपेन्मन्त्रविन्मन्त्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः। त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः ॥ ३९ ॥

अष्टद्रव्याणि यथा : अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षन्यग्रोधसमिधस्तिलाः। सिद्धार्थपायसाज्यानि द्रव्याण्यष्टौ विदुर्बुधाः। त्रिस्वाद्विति घृतमधुशर्करा इति ॥ ४० ॥

मन्त्रान्तरम् : वाग्भवं शम्भुवनितारमाबीजत्रयात्मकम्। मन्त्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम्। न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् ॥ ४१ ॥ षडङ्गन्यासे तु विशेषः। ऐं ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि।

तथा च निबन्धे : षड्दीर्घभाजा बीजेन वाग्भवाद्येन कल्पयेत्। षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तेन देशिकः ॥ ४२ ॥

ध्यानन्तु : सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्। पाणिभ्यां मणिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत्पराम्म्बिकाम् ॥ ४३ ॥

अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः

तथा च शारदायाम् : रविलक्षं जपेन्मन्त्रं पायसैर्मधुरान्वितैः। तद्दशांशं जुहुयान्मन्त्री पीठे प्रागीरिते यजेदितिवचनात् ॥ ४४ ॥

मन्त्रान्तरम् : वाग्बीजपुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरी मता। अस्य मन्त्रस्य पूर्ववन्न्यासः ॥ ४५ ॥

कराङ्गन्यासौ : ऐं ह्लां ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः, इत्यादि। ऐं ह्लां ऐं हृदयाय नमः इत्यादि।

तथा च : मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटेन प्रकल्पयेत्। षडङ्गानीत्यादि ॥ ४६ ॥

ध्यानन्तु : श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पलं, रत्नाढ्यं चषकं परं भयहरं संबिभ्रतीं शाश्वतीम्। मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं वंदेऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ॥ एवं ध्यात्वा पूर्ववद्यजेत् ॥ ४७ ॥

अष्टपत्रेषु विशेषः : आं ब्राह्म्यै, ईं माहेश्वर्यै, ऊं कौमार्यै, ॠं वैष्णव्यै, ॣं वाराह्यै, ऐं इन्द्राण्यै, औं चामुण्डायै, अः महालक्ष्म्यै। पुनरष्टदले : अं असिताङ्गाय, इं रुरवे, उं चण्डाय, ऋं क्रोधाय, ऌं उन्मत्ताय, एवं कपालिने, ओं भीषणाय, अं संहाराय। नमः सर्वत्र।

यद्वा : अं आं असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः इत्यादि।

तथा च : दीर्घाद्या मातरः प्रोक्ता ह्रस्वाद्या भैरवाः स्मृता। अन्यत् सर्वं पूर्ववद्बोधाम् ॥ ४८ ॥ अस्य पुरश्चरणजपो दशलक्षः। त्रिमधुरान्वितैः पलाशपुष्पैर्दशांश होमः।

तथा च : तत्वलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः। पलाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैः पुष्पैर्वा राजवृक्षजैः।

तत्त्वलक्षं दशलक्षम् : अन्तरङ्गत्वात्शक्तेर्दशतत्त्वमिति वचनाच्च इति गुरवः। चतुर्विंशतिलक्षमिति केचित् ॥ ४९ ॥

मन्त्रान्तरम् : अनन्तो विन्दुसंयुक्तो मायाब्रह्माग्नितारवान्। पाशादिस्त्र्यक्षरो मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः। अस्यैकाक्षरीवत् ऋषिच्छन्दोदेवतान्यासः ॥ ५० ॥

अङ्गमन्त्रस्तु : ह्रों अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं हृदयाय नमः इत्यादि। सर्वत्र ह्रों बीजेन कराङ्गन्यासौ कुर्यात्।

तथा च निबन्धे : ऋष्याद्याः पूर्वमुक्ताः स्युर्बीजेनाङ्गक्रिया मता। ॥ ५१ ॥

ध्यानम् : वरांकुशौ पाशमभीतिमुद्रां करैर्वहन्तीं कमलासनस्थाम्। बालार्ककोटिप्रतिमां त्रिनेत्रां भजेऽहमाद्यां भुवनेश्वरीं ताम् ॥ ५२ ॥ अस्याः पूजा तु एकाक्षरीवत्। अष्टदलेषु ब्राह्म्यादियुगलं पूर्ववत्पूजयेत्। षोडशदले पूजाया अनुक्तत्वात्षोडशदलाभावः ॥५३॥ अस्य पुरश्चरणजपो दशलक्षः। दधिमधुघृताक्ताभिरश्वत्थोडुम्बरप्लक्षाणां। समिद्भिस्तिलैर्दुग्धाक्तैर्दशसहस्रहोमः।

तथा च : हविष्यभुग्जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः। तत्सहस्रं जुहुयाच्च जपान्ते मन्त्रवित्तमः। दधिक्षौद्रघृताक्ताभिः समिद्भिः क्षीरिभूरुहाम्। तत्संख्यया तिलैः शुद्धैः पयोऽक्तैर्जुहुयात्ततः। अत्र तत्त्वशब्देन दश उच्यन्ते शक्तेर्दश तत्त्वानीति वचनात्। अन्ये तु भुवनेश्वरीमन्त्रा न निबद्धा अप्रसिद्धत्वात्।

अथान्नपूर्णामन्त्राः

मायाहृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः। अन्नपूर्णे ठयुगलं मनुः सप्तदशाक्षरः ॥ ५५ ॥

कल्पे च : प्रणवाद्या यदा देवि तदा सप्तदशाक्षरी। अन्नप्रदा मोक्षदा च सदा विभवदायिनी ॥ ५६ ॥ मायाद्या च यदा देवि तदा सा सकलेष्टदा। श्रीबीजाद्या यदा देवि तदा सुखविवर्द्धिनी ॥ ५७ ॥ वाग्बीजाद्या यदा वागीशत्वप्रदायिनी। कामाद्या च यदा विद्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ ५८ ॥ तारमायादिका विद्या भोगमोक्षप्रदायिनी। मायाश्रीबीजयुग्माद्या सदा विभवदायिनी। श्रीमायायुग्मबीजाद्या सर्वसम्पत्तिपूरणी ॥ ४९ ॥

अस्याः पूजाप्रयोग : प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म विधाय हृत्पद्मस्य केशरेषु मध्ये च भुवनेश्वरीपीठमन्त्रोक्तपीठशक्तीर्विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

तद्यथा : शिरसि ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे पंक्तये छन्दसे नमः, हृदि अन्नपूर्णायै देवतायै नमः।

तत्रैव : एतेषां मन्त्रराशीनां ऋषिर्ब्रह्मा उदाहृतः। पंक्तिश्छन्दः समाख्यातं देवता चान्नपूर्णिका ॥ ६० ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं हृदयाय नमः इत्यादि। सर्वत्र मायाबीजेन कुर्यात्।

तथा च निबन्धे : अङ्गानि मायया कुर्यात्ततो देवीं विचिन्तयेत्।

कल्पे च : यद्वीजाद्या भवेद्विद्या तद्वीजेनाङ्गकल्पना ॥ ६१ ॥

ततो ध्यानम् : रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडामन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम् ॥ नृत्यन्तमिन्दुसकलाभरणं विलोक्य हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहन्त्रीम्। एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ६२ ॥ ततः सामान्योक्त पीठपूजां विधाय भुवनेश्वरीमन्त्रोक्तजयादि-पीठमन्वन्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलि-दानपर्यन्तं कर्म विधाय आवरणपूजामारभेत्।

तद्यथा : केशरेषु अग्निकोणे ह्रीं हृदयाय नमः, नैर्ऋते ह्रीं शिरसे स्वाहा, वायव्ये ह्रीं शिखायै वषट्, ऐशान्यां ह्रीं कवचाय हुं, मध्ये ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु ह्रीं अस्त्राय फट् ॥

अष्टदलेषु : पूर्वादिक्रमेण ब्राह्म्यै माहेश्वर्यै कौमार्यै वैष्णव्यै वाराह्यै इन्द्राण्यै चामुण्डायै महालक्ष्म्यै प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्।

तत्रैव : दलेषु पूजयेदेताः ब्राह्म्याद्याः क्रमतः सुधीः। शूद्रस्य प्रणव-स्थले चतुर्दशस्वरो विन्दुसंयुक्तः।

कालिकापुराणे : मन्त्रस्य सेतुकरणे उक्तत्वात् ॥

तथा च : चतुर्दशस्वरेणाढ्यं विन्दुभूषितमस्तकम्। शूद्रस्य प्रणवं देवि कथितं तन्त्रवेदिभिः ॥ ६३ ॥ अतः पूर्वादौ इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूर्ववत्सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणजपः षोडशसहस्रसंख्यः।

तथा च : यथाविधि जपेन्मन्त्रं वसुयुग्मसहस्रकम्। साज्येनान्नेन जुहुयात्तद्दशांशमनन्तरम्। (अयं मन्त्रः प्रणवादिरष्टादशाक्षरः। मायादिः श्रीबीजादिश्च।) तथा मायां विना प्रणवादिः कामादिः श्रीबीजादि-र्वाग्भवादिश्च सप्तदशाक्षरः कवचे तथा प्रतिपादनात्।

विशेषस्तु : यद्यद्वीजादिको मन्त्रस्तेनैवाङ्ग प्रकल्पना ॥ ६४ ॥

अथ त्रिपुटामन्त्राः

श्रीमायामदनैः प्रोक्तो मन्त्रो बीजत्र्यात्मकः ॥ ६५ ॥

तत्र पूजायन्त्रम् : (चित्र १६)।

तदुक्तं दक्षपटल्याम् : षट्कोणं पूर्वमालिख्य मध्ये विद्यां लिखेत्सुधीः।

वीप्सया तान्तु षट्कोणकोणेषु क्रमतो लिखेत् । वाह्ये वसुदलं कुर्याद्दीर्घ-स्वरविभूषितम् । चतुरस्रं चतुर्द्वारभूषितं मण्डलं लिखेत् । मध्ये देवीं समावाह्य ध्यायेत्सर्वसमृद्धिदाम् ॥ ६६ ॥

अस्याः पूजाप्रयोगः : ततः प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म विधाय भुवनेश्वरीमन्त्रोक्तजयादिपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

तद्यथा : शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः, मुखे गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदि त्रिपुटायै देवतायै नमः ।

ततः कराङ्गन्यासौ : श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, क्लीं मध्यमाभ्यां वषट्, श्रीं अनामिकाभ्यां हुं, ह्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, क्लीं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं श्रीं हृदयाय नमः इत्यादि ।

तथा च निबन्धे : ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्री देवता पुनः । त्रिपुटाख्या द्विरुक्तैस्तद्बीजैरङ्गानि षट्क्रमात् ॥ ६७ ॥

ततो ध्यानम् : पारिजातवने रम्ये मण्डपे मणिकुट्टिमे । रत्नसिंहासने रम्ये पद्मे षट्कोणशोभिते । अधस्तात्कल्पवृक्षस्य निषण्णां देवतां स्मरेत् । चापं पाशाम्बुजसरसिजान्यंकुशं पुष्पबाणान्, संविभ्राणां करसरसिजैः रत्नमौलिं त्रिनेत्राम् । हेमाब्जाभां कुचभारनतां रत्नमञ्जीर-काञ्चीं, ग्रैवेयाद्यैर्विलसिततनुं भावयेच्छक्तिमाद्याम् ॥ चामरादर्श-ताम्बूलकरण्डकसमुद्गकान् । वहन्तीभिः कुचार्त्ताभिर्दूतीभिः परि-वारिताम् । करुणामृतवर्षिण्या पश्यन्तीं साधकं दृशा । अम्बुजं पद्मं न तु शङ्खं, दधतीं पद्मयुगलमिति दक्षिणामूर्त्तिवचनात् । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ६८ ॥ ततः सामान्यपूजापद्धत्युक्त पीठपूजां विधाय केशरेषु भुवनेश्वरीमन्त्रोक्तजयादिपीठमन्वन्तं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजां कुर्यात् ।

तद्यथा : अग्न्यादिषट्कोणेषु ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ हरये नमः, एवं गौर्यै, शिवाय, रत्यै, कामाय, षट्कोणस्योभयतः पार्श्वयोः ॐ शङ्खनिधये नमः, ॐ पद्मनिधये नमः । ततः केशरेषु अग्न्यादिकोणचतुष्टयेषु मध्ये दिक्षु च श्रीं हृदयाय नमः । इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् ॥ ६९ ॥ ततः पत्रेषु ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्याः ।

तथा च निबन्धे : हृल्लेखाविहिते पीठे पूजयेत्तां समाहितः । अग्न्या-दिषट्सु कोणेषु लक्ष्म्याद्याः पूजयेद्ध्रुवम् । लक्ष्मीं हेमप्रभां तन्वीं स-वराब्जयुगाभयाम् । शङ्खचक्रगदाम्भोजधरं हेमनिभं हरिम् ।

पाशांकुशाभयाभीष्टधरां गौरीं जवारुणाम्। मृगटङ्काभयाभीष्टधरं हेमनिभं हरम्। नीलोत्पलकरां सौम्यां रतिं काञ्चनसन्निभाम्। घृतपाशांकुशेष्वासं पुष्पेषुमरुणं स्मरन्। पूर्ववन्निधियुग्मन्तु यजेदुभयपार्श्वयोः। बहिरङ्गानि सम्पूज्य पूज्याः पत्रेषु मातर इति। तद्बहिरिन्द्रादोन्वनितारूपान्पूजयेत् ॥ ७० ॥

निबन्धे : लोकेशान्वनितारूपानर्चयेत्सौम्यविग्रहान्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणजपो द्वादशलक्षः।

तथा च : भानुलक्षं जपेदेनं मनुं तावत्सहस्रकम्। विल्वारग्वधसम्भूतैर्मधुराक्तैः समिद्वरैः। जवापुष्पैश्च जुहुयात्तोषयेद्वसुना गुरुम्। आरग्वधः शोणालुः। अयं मन्त्रस्त्रिधा भवति। परादिर्वा भवेद्देवि कामादिर्वा भवेदियमिति दक्षिणामूर्त्तिवचनात् ॥ ७२ ॥

अथ त्वरितामन्त्राः

अथाभिधास्ये त्वरितां त्वरितं फलदायिनीम्। तारो माया वर्मबीजम् ऋद्धिरीशस्वरान्विता। कूर्मस्तदन्त्यो भगवान्क्षस्त्री दीर्घतनुच्छदम्। संवर्त्तो भगवान्माया फडन्तो द्वादशाक्षरः। माया भुवनेशी, वर्म हुं, ऋद्धिः खकारः, ईश्वरः एकारः, कूर्मश्चकारः, तदन्त्यश्छकारः, भग एकारस्तद्युक्तः क्षः, स्त्री स्वरूपं, दीर्घतनुच्छदं हूं, संवर्त्तः क्षकारः भग एकारस्तद्युक्तः क्षः, पुनर्भुवनेश्वरी फट् ॥७३॥ अस्यार्जुनऋषिर्विराट छन्दः त्वरिता देवता पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थं विनियोगः।

तथा च निबन्धे : मुनिरर्जुन आख्यातो विराट् छन्द उदाहृतम्। त्वरिता देवता प्रोक्ता पुरुषार्थफलप्रदा ॥ ७४ ॥

अस्याः पूजापद्धतिः : (त्वरितायन्त्र चित्र १७)

पूतत्र जायंत्रं दक्षिणामूर्त्तौ : अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं वहिर्भूविन्द्वमालिखेत्। प्रत्येकं वसुकोणेषु कवचञ्चाष्टधा लिखेत्। मध्ये तु भुवनेशानीं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः। सर्वरक्षाकरं नाम यन्त्रमेतदुदाहृतम्। यत्रावाह्य महेशानीमुपचारैः समर्चयेत् ॥ ७५ ॥ ततः प्रातःकृत्यः पीठादि न्यासान्तं कर्म समाप्य केशरेषु भुवनेश्वरीमन्त्रोक्त जयादिपीठशक्तीर्विन्यस्य मध्ये क्षं हुं हं वज्रदेह घुरु घुरु हिंगुलु हिंगुलु गर्ज गर्ज हं हूं क्षां पञ्चाननाय नमः। इति मन्त्रं न्यसत्।

तथा च निबन्धे : संवर्त्तको विन्दुयुतः कवचं सकलं वियत्। वज्रदेह

घुरुद्वन्द्वमाभाष्य हिंगुलुद्वयम् । गर्ज गर्ज वियत्सेन्दु वर्मान्त्यो दीर्घविन्दुवान् । पञ्चाननाय हृदयं पीठमन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ७६ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि अर्जुनऋषये नमः, मुखे विराट छन्दसे नमः, हृदि त्वरितायै देवतायै नमः ।

ततो मन्त्रन्यासः : मूर्ध्नि, ॐ नमः, भाले हुं नमः, गले खे नमः, हृदि च नमः, नाभौ छे नमः, गुह्ये क्ष नमः, ऊर्वो स्त्री नमः, जानुनोः हूं नमः, जङ्घयोः क्षे नमः, पादद्वन्द्वे फट् नमः । मूलेन व्यापकं कुर्यात् । ॥ ७७ ॥

तथा च निबन्धे : मायाविवर्जितान् वर्णान्मूर्ध्नि भाले गले हृदि । नाभिगुह्योरुयुगे च जानुजङ्घापदेषु च । विन्यस्य व्यापकं कुर्यात्समस्तेनैव साधकः ॥ ७८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : चछे अंगुष्ठाभ्यां नमः, छेक्ष तर्जनीभ्यां स्वाहा, क्षस्त्री मध्यमाभ्यां वषट्, स्त्रीहुं अनामिकाभ्यां हुं, हूंक्षे कनिष्ठाभ्यां वौषट्, क्षेफट् करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं चक्षे हृदयाय नमः इत्यादिना हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : कूर्माद्यैः सप्तभिर्वर्णैः पूर्वपूर्व विवर्जितैः । द्वाभ्यां द्वाभ्यां षडङ्गानि कुर्यात्साधकसत्तमः ॥ ७९ ॥

ततो ध्यानम् : श्यामां वर्हिकलापशेखरयुतामाबद्धपर्णांशुकां, गुञ्जाहारलसत्पयोधरनतामष्टाहिपान्बिभ्रतीम् । ताडाङ्काङ्गदमेखलागुणरणन्मञ्जीरतां प्रापितान्, कैरातीं वरदाभयोद्यतकरां देवीं त्रिनेत्रां भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ८० ॥ ततः सामान्योक्त पीठपूजां विधाय पद्मस्य केशरेषु पूर्वादिक्रमेण जया-विजया-अजिता-अपराजिता-नित्या-विलासिनी-दोग्ध्री-अघोरा-मङ्गलाः, प्रणवादिनमोऽन्तेन पूज्याः । मध्ये क्षं हुं हं वज्रदेह घुरु घुरु हिंगुलु हिंगुलु गर्ज गर्ज हृं हूं क्षां पञ्चाननाय नमः । ततः पूर्ववद्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत । अग्न्यादिकोणेषु चछे गायत्र्यै हृदयाय नमः, छेक्ष गायत्र्यै शिरसे स्वाहा, क्षस्त्री गायत्र्यै शिखायै वषट्, स्त्रीहूं गायत्र्यै कवचाय हुं, हूंक्षे गायत्र्यै नेत्रत्रयाय वौषट् । दिक्षु क्षे फट् गायत्र्यै अस्त्राय फट् । इति सम्पूज्य उत्तरेशानयोः प्रणीतां गायत्रीञ्च पूजयेत् ।

तथा च निबन्धे : अङ्गैः प्रणीतां गायत्रीं केशरेष्वर्चयेत्क्रमात् ।

दलेषु पूजयेदेताः श्रीबीजाद्याः सुभूषिताः। हुंकारीं खेचरीं चण्डां छेदिनीं क्षेपिणीं स्त्रियम्। हूंकारीं क्षेमकारीञ्च लोके सायुधभूषणाम्। फट्कारीमग्रतो वाह्ये कोदण्डशरधारीणीम्। वाक्यन्तु, : श्रीं हुंकार्यै नमः, वाह्ये अग्रतः ॐ फट्कारिण्यै नमः इत्यादि ॥ ८१ ॥

द्वारस्योभयपार्श्वयोः ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः। तद्वाह्ये किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञास्थिरो भव हुं फट् इति मन्त्रेण किङ्करां पूजयेत्।

तथा च निबन्धे : द्वारस्यो पार्श्वयोः पूज्ये हेमवेत्रकराम्बुजे। जयाख्या विजयाख्या च किङ्कराय पदं ततः। रक्ष रक्ष पदस्यान्ते त्वरिताज्ञास्थिरो भव। वर्मास्त्रान्तेन मनुना किङ्करं तद्वहिर्यजेत्। लगुडं विभ्रतं कृष्णं कृष्णचर्चरमूर्द्धजम्। आरण्यैररुणैः पुष्पैरतिरम्यैः सुगन्धिभिः। पूजयेद्धूपदोपाद्यैर्नृत्यगोर्मतैर्महोत्सवैरिति। अत्र न इन्द्रादिपूजा अनुक्तत्वात् ॥ ८० क ॥

ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरण जपो लक्षसंख्यकः। तद्दशांशं बिल्वस्य समिद्भिस्त्रिमधवक्तैर्होमयेत्।

तथा च : लक्षं संजयप्य मन्त्रज्ञो मन्त्रमेनं जितेन्द्रियः। दशांशं जुहुयाद्बिल्वैस्त्रिमधवक्तैः समिद्वरैः ॥ ८२ ॥

अथ नित्यामन्त्रः

वाग्भवं कामबीजञ्च नित्यक्लिन्ने मदो पुनः। द्रवे वह्निवधूर्मन्त्रो द्वादशार्णोऽयमीरितः ॥ ८३ ॥

अस्याः पूजाप्रयोग : प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु पूर्वादिक्रमेण जयादि ह्रीं सर्वशक्ति कमलासनाय नमः इत्यन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं समाचरेत्

तद्यथा : शिरसि सम्मोहनऋषये नमः, मुखे निवृच्छन्दसे नमः, हृदि नित्यायै देवतायै नमः।

तथा च निबन्धे : ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो निवृन्नित्या च देवता इति ॥ ८४ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः, ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ऐं मध्यमाभ्यां वषट्, ऐं अनामिकाभ्यां हुं, ऐं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ऐं करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु ऐं हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गेषु न्यसेत् ॥

तथा च निबन्धे : वाचा कृत्वा षडङ्गानि नित्यां ध्यायेद्यथाविधि ॥ ८५ ॥

ततो ध्यानम् : अर्द्धेन्दुमौलिमरुणाममराभिवन्द्यामम्भोजपाशसृणि-पूर्णकपालहस्ताम् । रक्ताङ्गरागवसनाभरणां त्रिनेत्रां ध्यायेच्छिवस्य वनितां मदविह्वलाङ्गीम् ॥ एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ८६ ततः पीठपूजां विधाय केशरेषु जयादि पीठ शक्तीः संपूज्य मध्ये ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इत्यन्तं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा आवा-हनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत : (नित्यायन्त्रम् चित्र १८)

तद्यथा : अग्न्यादिकोणचतुष्टये मध्येदिक्षु च ऐं हृदयाय नमः, ऐं शिरसे स्वाहा, ऐं शिखायै वषट्, ऐं कवचाय हुं, मध्ये ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु ऐं अस्त्राय फट् । अष्टदलेषु ॐ नित्यायै निरञ्जनायै, क्लिन्नायै, क्लेदिन्यै, मदनातुरायै, मदद्रवायै, द्राविण्यै, द्रविण्यै, सर्वत्र प्रणवादि-नमोऽन्तेन पूजयेत् ।

तथा च निबन्धे : नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा । मदद्रवा द्राविणी च द्रविणीत्यष्टशक्तयः । नीलोत्पलकपालाढ्यकरा रक्ताम्बुजप्रभा इति । तद्बाह्ये इन्द्रादीन वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ८७ ॥ अस्य पुरश्चरणजपश्चतुर्लक्षः ।

तथा च : चतुर्लक्षं जपित्वा च मधुराक्तैर्मधूकजैः । कुसुमैरयुतं हुत्वा तोषयेद्गुरुमात्मनः ॥ ८८ ॥

अथ वज्रप्रस्तारिणीमन्त्राः

वाङ्मायानन्तरं भूयो नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । स्वाहान्तो रवि-संख्यार्णो मन्त्रो वश्यप्रदायकः ॥ ८९ ॥

अस्याः पूजायन्त्रम् : षट्कोणं द्वादशदलंचतुर्द्वारं चतुरस्रञ्च ॥ ९० ॥ (चित्र १९)

ततः पूजा : प्रातः कृत्यादिपीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु जयादि-पीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुयात् । शिरसि अङ्गिरसे ऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि वज्रप्रस्तारिण्यै देवतायै नमः ।

तथा च निबन्धे : अङ्गिराः स्यादृषिस्त्रिष्टुप्छन्दो मुनिभिरी-रितम् । वज्रप्रस्तारिणी प्रोक्ता देवताभीष्टदायिनोति ॥ ९१ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि, ऐं हृदयाय नमः इत्यादिना हृदयादिषु।

तथा च निबन्धे : वाग्भवेन षडङ्गानि विदध्यान्मन्त्रवित्तमः ॥ ९२ ॥

ततो ध्यानम् : रक्ताब्धौ रक्तपोते रविदलकमलाभ्यन्तरे सन्निषण्णां, रक्ताक्षीं रक्तमौलिस्फुरितशशिकलां स्मेरवक्त्रां त्रिनेत्राम्। बीजापूरेषुपाशांकुशमदनधनुःसत्कपालानि हस्तैर्विभ्राणामानताङ्गीं स्तनभारनमितामम्बिकामाश्रयामः ॥९३॥ एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं विधाय पूर्ववत् पीठपूजां कृत्वा पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलि दानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत। अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ऐं हृदयाय नमः इत्यादिना संपूज्य द्वादशदलेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ हृल्लेखायै नमः एवं क्लेदिन्यै, क्लिन्नायै, क्षोभिण्यै, मदनातुरायै, निरञ्जनायै, रागवत्यै, मदनावत्यै, मेखलायै, द्राविण्यै, वेगवत्यै, स्मरायै, सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्।

तथा च निबन्धे : हृल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा। निरञ्जना रागवतो सप्तमी मदनावती। मेखला द्राविणी पश्चात्वेगवत्यपरा स्मरेति। कपालोत्पलधारिण्यः शक्तयो रक्तविग्रहाः। तद्बाह्ये ब्राह्म्यादि मातृः पूजयेत्। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्।

तथा च निबन्धे : मातरो दिग्विदिक्ष्वर्च्याः पुनः पूज्या दिगीश्वराः। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ९३ क ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च : मन्त्रं मन्त्री जपेल्लक्षं जपान्ते जुहुयात्ततः। अयुतं राजवृक्षोत्थैर्घृतसिक्तैः समिद्वरैः। राजवृक्षः शोणालुः ॥ ९४ ॥

अथ दुर्गामन्त्राः

अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये दृष्टादृष्ट फलप्रदाम्। मायाद्रि-कर्ण विन्द्वाढ्यो भूयोऽसौ सर्गवान् भवेत्। पश्चान्तकः प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासनः। तारादि हृदयान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः। अद्रिर्दकारः, कर्णः उकारः, पश्चान्तको गकारः, प्रतिष्ठा आकारः, मारुतो यकारः, भौतिकः ऐकाः। (प्रमाणान्तरं): तारो माया स्वबीजञ्च दुर्गायै हृदयं ततः। इति भट्टः ॥ ९५ ॥

अस्याः पूजाप्रयोगः : प्रातः कृत्यादिपीठन्यासान्तं विधाय हृत्पद्मस्य केशरेषु मध्ये च पीठशक्तीर्न्यसेत् ।

तद्यथा : आं प्रभायै ईं मायायै ऊं जयायै एं सूक्ष्मायै ऐं विशुद्धायै ओं नन्दिन्यै औं सुप्रभायै अं विजयायै अः सर्वसिद्धिदायै, नमः सर्वत्र । तदुपरि ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुँ फट् नमः इति न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः । सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः । अज्भिर्ह्रस्वत्रयक्लीवरहितैः पूजयेदिमाः । प्रणवानन्तरं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय चा । महासिंहाय वर्मान्तं नतिः सिंहमनुर्मतः । दद्यादासनमेतेन मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥ ९६ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः

तद्यथा : शिरसि नारदऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि दुर्गायै देवतायै नमः ।

तथा च निबन्धे : ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्री देवता मनोः । दुर्गा समीरिता सद्भिर्दुरितापन्निवारिणीति ॥ ९७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै तर्जनीभ्यां स्वाहा, ह्रूं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्, ह्रैं ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै अनामिकाभ्यां हुं, ह्रौं दुं दुर्गायै कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ह्रः ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः इत्यादि ।

तथा च निबन्धे : नमस्कारविमुक्तेन मूलमन्त्रेण साधकः । ह्रामाद्यैः सह कुर्वीत षडङ्गानि यथाविधि ॥ ९८ ॥

ततो ध्यानम् : सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजैः, शङ्खं चक्र-धनुः-शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता । आमुक्ताङ्गद-हारकङ्कणरणत्काञ्चीक्वणन्नूपुरा, दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु वो रत्नोल्लसत्कुण्डला ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ९९ ॥ ततः पीठपूजां कृत्वा केशरेषु मध्ये च आं प्रभायै, ईं मायायै, ऊं जयायै, एं सूक्ष्मायै, ऐं विशुद्धायै, ओं नन्दिन्यै, औं सुप्रभायै, अं विजयायै, अः सर्वसिद्धिदायै, तदुपरि वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हूं फट् नमः इति पूजयेत् ।

तथा च : अज्भिर्ह्रस्वत्रयक्लीवरहितैः पूजयेदिमाः । प्रणवानन्तरं

वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च। महासिंहाय वर्मान्तं नतिः सिंहमनुर्मतः। दद्यादासनमेतेन मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत्। ततः पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत।

तद्यथा : अग्निनिर्ऋतिवायव्यीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च ह्रां ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् ॥१००॥ ततः पत्रेषु जं जयायै, विं विजयायै, कीं कीर्त्यै, प्रीं प्रीत्यै प्रं प्रभायै, श्रं श्रद्धायै, श्रुं श्रुत्यै, मं मेधायै। पत्रेषु ॐ शङ्खाय चक्राय गदायै खड्गाय पाशाय अंकुशाय चापाय शराय। तद्बाह्ये इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादि-विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १ ॥

अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः।

तथा च : वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं तिलैर्मधुरलोडितैः। पयोन्धसा वा जुहुयात्तत्सहस्रं जितेन्द्रियः तेन वाचनिकोऽष्टसहस्रहोमः ॥ २ ॥

अथ महिषमर्दिनीमन्त्राः

शारदायाम् : भान्तं वियत्सनयनं श्वेतो मर्दिनि ठ द्वयम्। अष्टाक्षरी समाख्याता विद्या महिषमर्दिनी।

नारायणीतन्त्रे : विषं हि मज्जा कालोऽग्निरद्रिरिस्थो नि ठ द्वयम्। विषं मकारः, हि स्वरूपं, मज्जा यकारः, कालो मकार, अग्नि रेफः, अद्रिर्दकारः, इस्थः इकारयुक्तः, इति वचनादिकारयुक्तो दकारः। अयं मन्त्रः तारादिः मायादिः कामादिः वाग्भवादिः वधूबीजादिः कवचा-दिश्च नवाक्षरः ॥ ३ ॥

तथा च विश्वसारे : प्रणवाद्यां जपेद्विद्यां मायाद्यां वा जपेत्सुधीः। वधूबीजादिकां वापि कवचाद्यां जपेत्तथा। सर्वकालेषु सर्वत्र कामाद्यां प्रजपेत्सुधीः। वाग्भवाद्यां जपेत्तान्तु देवीं वाक्यविशुद्धये। विना बीजैर्महा-विद्या निर्वीर्या परिकीर्त्तिता। पुटिता बीजयुग्मेन मुखे युग्मदेशके। दशाक्षरी समा नास्ति विद्या त्रिभुनेश्वरी। प्रणवश्च तथा माया भवेद्विद्या पुनर्दश। कामं प्रणवमित्युक्तं भवेद्विद्या पुनर्दश ॥ ४ ॥

एतेषां पूजा : प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु मध्ये च दुर्गामन्त्रोक्त-पीठशक्तीः पीठमनुञ्च न्यसेत्। ततः पूर्वोक्त-ऋष्यादिन्यासञ्च कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ॥ ५ ॥

तद्यथा : महिषहिंसिके हूं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः, महिषशत्रोशार्वि हूं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा, महिषं द्वेषय हेषय हूं फट् मध्यमाभ्यां वषट्,

महिषं हन हन देवि हूं फट् अनामिकाभ्यां हूं, महिषसूदनि हूं फट् कनिष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादि महिषहिंसिके हूं फट् हृदयाय नमः इत्यादि। तथा च, पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रं विवर्जयेत्। नेत्ररहितं पञ्चाङ्गं कुर्यात्॥

तथा च निबन्धे : महिषहिंसिके हूं फट् हृदयं परिकीर्त्तितम्। महिषत्रोशार्वि हूं फट् शिर उदाहृतम्। महिषं हेषय-द्वन्दं हूं फडन्तः शिखामनुः। महिषं हन युग्मान्ते देवि हूं फट् तनुच्छदम्। महिषान्ते सूदनि हूं फडन्तमस्त्रमोरितम्॥ ५ क॥

ततो ध्यानम् : गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डिताम्। नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषोम्। शङ्ख चक्र-कृपाण-खेटक-बाण कार्मुकशूलकान्। तर्जनीमपि विभ्रतीं निजबाहुभिः शशि-शेखराम्॥ ६॥ एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्य अर्घ्यस्थापनं कृत्वा पीठ-पूजां विधाय केशरेषु मध्ये च पूर्वोक्त-पीठशक्तिः पोठमनुञ्च यजेत्।

अर्घ्यं पात्रन्तु विश्वसारे : कालीवत् पूजयेद्देवी कालीवत् फलमाप्नु-यात्। न वैष्णवैर्यजेद्देवीं न तुलस्या कदाचन। न शङ्खैरर्घ्यपात्रं स्यात् कथितं पद्मयोनिना। विश्वामित्रस्य पात्रेण मृदा वापि शिवांयजेत्। इति वचनात् शङ्खनिषेधः॥ ७॥ पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पा-ञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत। अग्न्यादिषु पूर्ववदङ्गं पूजयेत्। ततः पत्रेषु पूर्वादि आं दुर्गायै नमः, ईं वरवर्णिन्यै, ऊं आर्यायै, ॠं कनकप्रतिभायै, ॡं कृत्तिकायै, ऐं अभयप्रदायै, औं कन्यायै, अः सुरूपायै।

तथा च तन्त्रान्तरे : आदौ दुर्गां ततो वरवर्णिनीमार्घ्यकाह्वयाम्। कनकप्रतिभाञ्चैवकृत्तिकाम भयप्रदाम्। कन्याञ्चैव सुरूपाञ्च यजेत्पूर्वा-दितः क्रमात्। दीर्घायत्वमेतासान्तु॥ ८॥ अष्टपत्रे यजेद्देवी दुर्गाद्या दीर्घपूर्विकाः। इति मन्त्रचूडामणिना उक्तत्वात्। दीर्घस्वरैः क्रमादिति शारदावचनाच्च॥ ६॥ पत्राग्रेषु यं चक्राय, रं शङ्खाय, लं खड्गाय, वं खेटकाय, शं बाणाय, षं धनुषे, सं शूलाय, हं तर्जन्यै। नमः सर्वत्र।

तथा च निबन्धे : यजेदग्रेष्वायुधानि चक्रशङ्खावासिखेटकान्। बाणं बाणासनं शूलं तर्जनीं यादिभिः क्रमात्। पत्राग्रेषु ब्राह्मयाद्याः पूजयेत्। ततो दिक्षु तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रादींश्च प्रपूजयेत्। ततो धूपादिविसर्ज-नान्तं कर्म समापयेत्।

तथा च कुलचुडामणौ : ब्राह्मयाद्याश्च ततः पश्चाल्लोकपालांस्ततो

वह्निः। तदस्त्राणि सिद्धमयो प्रयोगश्च समाचरेत् ॥ १० ॥

अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः अष्टसहस्रं तिलैर्होमः

तथा च : अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं तिलैः शुभैः। इत्यादि वचनात् ॥११॥ जपसमर्पणात्पूर्वमुत्तरस्यां दिशि त्रिकोणमण्डलं विलिख्य बलिं दद्यात्। एहि एहि पदद्वन्द्वं गृह्ण गृह्ण पदद्वयम्। मदीयश्च बलिं देवि लुलापकपदद्वयम्। साधय-द्वितयं ब्रूयात्खादय-द्वितयं पुनः। सर्वसिद्धिपदं देहि ततः स्वाहापदं वदेत्। बलिदानस्य मन्त्रोऽयं मर्दिन्याः परिकीर्त्तितः ॥ १२ ॥

अथ जयदुर्गामन्त्राः

तारो दुर्गे युगं रक्तमन्त्योढान्तं सलोचनम्। द्विठान्तो जयदुर्गेयं विद्या वेद्या दशाक्षरी ॥ १३ ॥

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादि दुर्गामन्त्रोक्तं ऋष्यादिन्यासान्तं कर्म कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। ॐ दुर्गे अंगुष्ठाभ्यां नमः, दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा, दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्, भूतरक्षणि अनामिकाभ्यां हुं, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु ॥ १४ ॥

तथा च निबन्धे : तारादि दुर्गे हृदयं दुर्गे च शिरईरितम्। दुर्गायै स्याच्छिखावर्म भूतरक्षणि कीर्त्तितम्। तारादि दुर्गे द्वितयं रक्षण्यक्षि समीरितम्। तारादि दुर्गे युगलं रक्षण्यस्त्रमुदीरितम् ॥ १४ क ॥

ततो ध्यानम् : कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां, शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्। सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं, ध्यायेद्दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः। एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ १५ ॥

ततः पूर्वोक्त पीठपूजां विधाय पूर्ववत्पूजां कुर्यात्। अस्य पुरश्चरणं पञ्चलक्षजपः। घृतेन दशांशहोमः।

तथा च निबन्धे : बाणलक्षं जपेन्मन्त्रं घृतेन जुहुयात्ततः। दशांशं संस्कृते वह्नौ ब्राह्मणानपि भोजयेत्। अष्टाक्षरोदिते पीठे पूर्ववत्पूजयेत्सुधीः ॥ १६ ॥

अथ शूलिनीमन्त्राः

ज्वलज्वलपदस्यान्ते शूलिनिती पदं ततः। दुष्टग्रहहुमस्त्रान्ते वह्नि-

जायावधिर्मनुः । भूतेन्द्रियाक्षरैः प्रोक्तो ग्रहक्षुद्रविनाशकृत् ॥ १७ ॥

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादि दुर्गामन्त्रोक्त पीठन्यासान्तं कर्म कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि दीर्घतपसे ऋषये नमः, मुखे ककुप्छन्दसे नमः, हृदि शूलिन्यै देवताय नमः ।

निबन्धे : ऋषिर्दीर्घतपाः प्रोक्तः ककुप छन्द उदाहृतम् । शूलिनी देवता प्रोक्ता समस्तसुरवन्दितेति ॥ १८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात्यथा : शूलिनि दुर्गे हुं फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः, शूलिनि वरदे हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा, शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्, शूलिनि असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं, शूलिनि देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : दुर्गे हृद्वरदे शीर्षं विन्ध्यवासिनि तच्छिखा । असुरान्ते मर्दिनि स्याद्युद्धपूर्वं प्रिये पुनः । त्रासय-द्वितयं वर्मं देवसिद्ध-सुपूजिते । नन्दिनि स्याद्रक्षयुगं महायोगेश्वरि क्रमात् । शूलिन्याद्या हुं फडन्ताः पञ्च वै मनवः क्रमात् ॥ १९ ॥

ततो ध्यानम् : अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजलजलधरश्यामलां हस्तपद्मैः, शूलं बाणं कृपाणन्त्वरिजलजगदाचापपाशान्वहन्तीं । चन्द्रोत्तंसां त्रिनेत्रां चतसृभिरसिनाखेटकं बिभ्रतीभिः कन्याभिः सेव्यमानां प्रतिभटभयदां शूलिनीं भावयामि । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थानं कुर्यात् ॥ २० ॥ ततः पूर्वोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्च-पुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कर्म कृत्वा आवरणपूजामारभेत ।

तद्यथा : अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशानकोणेषु दिक्षु च शूलिनि दुर्गे हुं फट् हृदयाय नमः इत्यादिना पूर्वोक्तपञ्चाङ्गानि यजेत् । ततः पत्रेषु पूर्वादि ॐ दुर्गायै नमः, एवं वरदायै विन्ध्यवासिन्यै असुरमर्दिन्यै युद्धप्रि-यायै देवसिद्धसुपूजितायै नन्दिन्यै महायोगेश्वर्यै । ततः पत्राग्रेषु तदस्त्राणि पूजयेत् ॥ २१ ॥

तथा च निबन्धे : विधाय पूजामङ्गानां पूज्यां पत्रेषु शक्तयः दुर्गाद्या वरदा विन्ध्यवासिन्यसुरमर्दिनी । युद्धप्रिया पंचमी स्याद्देवसिद्ध सुपूजिता । सप्तमी नन्दिनी प्रोक्ता महायेगेश्वरी परा । दलाग्रेषु तदस्त्राणि शङ्खं चक्रमसिं पुनः । गदेषुचापशूलानि पाशं पश्चाद्दिशोऽधिपान् ॥ ततो

धूपादि-विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्यपुरश्चरणं पञ्चदशलक्षजपः ।

तथा च : मनुमेनं जपेन्मन्त्री वर्णलक्षं विचक्षणः । सर्पिषान्नेन वा होमस्तद्दशांशमितो भवेत् ॥ २२ ॥

अथ वागीश्वरीमन्त्राः

अथ वर्णतनुं वक्ष्ये विश्वबोध प्रबोधिनीम् । यस्यामनुपलब्धायां सर्वमेतज्जगज्जडम् ॥ वद वद वाग्वादिनि वह्निवल्लभा इति दशाक्षरः ॥ २३ ॥

तथा च निबन्धे : अद्रिर्वरुणसंरुद्धो-द-वाग्वादिनि ठ-द्वयम । सरस्वत्या दशार्णोऽयं वागैश्वर्यप्रदायकः । भुवनेशीसंपुटोऽयं महासारस्वतप्रदः ॥ २४ ॥

अस्याः पूजायन्त्रं : व्योमेन्द्वो रसनार्णकार्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरं पत्रान्तर्गत पञ्चवर्गयशलार्णादिठिजवर्गं क्रमात् । आशास्वस्त्रिषु लान्तलाङ्गलियुजा क्षौणी पुरेणावृतं यन्त्रं वर्णतनोः परं निगदितं सर्वथिसिद्धि प्रदम् ॥ २५ ॥ (चित्र २०)

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु मध्ये दिक्षु च ॐ मेधायै नमः एवं प्रज्ञायै प्रभायै विद्यायै श्रियै धृत्यै स्मृत्यै बुद्धयै विद्येश्वर्यै, मध्ये वर्ण पद्मासनाय । नमः सर्वत्र ॥ २६ ॥

ततऋष्यादिन्यासः : शिरसि कण्वऋषये नमः, मायापुटिश्चेत्बृहस्पतये ऋषये नमः । मुखे विराट्च्छन्दसे नमः । हृदि वागीश्वर्यै देवतायै नमः ॥ २७ ॥

अथ मन्त्रन्यासः : वं शिरसि नमः । श्रवणयोः दं नमः वं नमः । चक्षुषोः दं नमः वां नमः । नासिकयोः ग्वां नमः दिं नमः । वदने निं नमः । लिङ्गे स्वां नमः । गुह्ये हां नमः । ततो मातृकायाः कराङ्गन्यासौ कृत्वा ध्यायेत् । ॥ २८ ॥

तथा च निबन्धे : शिरः-श्रवणदृङ्नासावदनान्धुगुदेष्विमान् । न्यस्य वर्णान् षडङ्गानि मातृकोक्तानि कल्पयेत् ॥ २९ ॥

ततो ध्यानम् : तरुणसकलमिन्दोर्विभ्रती शुभ्र-कान्तिः कुचभारनमिताङ्गी सन्निषण्णा सिताब्जे । निजकर कमलोद्यल्लेखनी पुस्तकश्रीः, सकलविभव सिद्धयै पातु वाग्देवता नः ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ३० ॥

ततः पीठपूजां कृत्वा केशरेषु मध्ये दिक्षु च मेधादि पीठ मन्त्रान्तं संपूज्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजां कुर्यात् । अग्निकोणे अं कं खं गं घं ङं आं हृदयायै नमः । नैर्ऋते इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा । वायुकोणे उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् । ईशाने एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं । मध्ये ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् । दिक्षु अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट् । पत्रेषु पूर्वादि ॐ योगायै नमः, ॐ सत्यायै नमः, एवं विमलायै ज्ञानायै बुद्धयै स्मृत्यै मेधायै प्रज्ञायै । दलाग्रेषु ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्याः ।

यथा निबन्धे : ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्याः प्रणवादिनमोऽन्तिकाः ।

तथा च : आदावङ्गानि संपूज्य पश्चात् शक्तिरिमा यजेत् । योगा सत्या च विमला ज्ञाना बुद्धिः स्मृतिः पुनः । मेधा प्रज्ञा च पत्रेषु मुद्रापुस्तकधारिणी । दलाग्रेषु समभ्यर्च्य ब्राह्म्याद्याश्च यथाविधि । लोकपाला वहिः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्वहिः । इति प्रपञ्चसारात् । तद्वहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् ॥ ३१ ॥ ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्य पुरश्चरणं दशलक्षजपः ।

तथा च : दशलक्षं जपेन्मन्त्रं-दशांशं जुहुयात्ततः । पुण्डरीकैः पयोऽभ्यक्तैस्तिलैर्वा मधुराप्लुतैः ॥ ३२ ॥

अथ मन्त्रान्तरम्

हृदयान्ते भगवति वदशब्दयुगं ततः । वाग्देवि वह्निजायान्तं वाग्भवाद्यं समुद्धरेत् । मनुः षोडशवर्णाढ्यो वागैश्वर्यफलप्रदः ॥ ३३ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु मध्ये च पूर्वोक्तपीठशक्तीः पीठमनुञ्च न्यसेत् ॥ ३४ ॥ ततः पूर्वोक्तऋष्यादिन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

तद्यथा : ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः । नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा । भगवति मध्यमाभ्यां वषट् । वद वद अनामिकाभ्यां हुं । वाग्देवि कनिष्ठाभ्यां वौषट् । स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : मनोः षड्भिः पदैः कुर्याज्जातियुक्तं षडङ्गकम् ॥ ३५ ॥

ततो ध्यानम् : शुभ्रां स्वच्छविलेपमाल्यवसनां पीतांशुखण्डोज्ज्वलां, व्याख्यामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजैः । बिभ्राणां कमलासनां कुचलतां वाग्देवतां सस्मितां, वन्दे वाग्विभवप्रदां त्रिनयनां सौभाग्य-

सम्पत्करीम् । एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ३६ ॥ ततः पूर्वोक्तक्रमेण पूजयेत् । किन्त्वङ्गमन्त्रे विशेषः । अस्य पुरश्चरमष्ट-लक्षजपः ।

तथा च : हविष्याशी जपेन्मन्त्रं वसुलक्षमनन्यधीः । दशांशं जुहुया-दन्ते तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ ३७ ॥

मन्त्रान्तरम्

तारो मायाधरो विन्दुशक्तिस्तारः सरस्वती । ङेन्तानत्यन्तको मन्त्रः प्रोक्त एकादशाक्षरः ॥ ३८ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिपूर्वोक्त पीठमन्वन्तं विन्यस्य पूर्वोक्त ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥ ३९ ॥

ततो मन्त्रन्यासः : ॐ नमो ब्रह्मरंध्रे । ह्रीं नमो भ्रूवोर्मध्ये । चक्षुषोः ऐं नमः ह्रीं नमः । कर्णयोः ॐ नमः सं नमः । नासिकयोः रं नमः स्वं नमः । मुखे त्यैं नमः : लिङ्गे नं नमः । गुह्ये मं नमः ॥ ४० ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ऐं अंगुष्ठभ्यां नमः । ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ऐं मध्यमाभ्यां वषट् । ऐं अनाभिकाभ्यां हुं । ऐं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ऐं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ऐं हृदयाय नमः इत्यादि ।

तथा च निबन्धे : ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये नवरन्ध्रेषु च क्रमात् । मन्त्र-वर्णान्न्यसेन्मत्री वाग्भवेनाङ्गकल्पना ॥ ४१ ॥

ततो ध्यानम् । वाणीं पूर्णनिशाकरोज्ज्वलमुखीं कर्पूरकुन्दप्रभां, चन्द्रार्द्धाङ्कितमस्तकां निजकरैः संविभ्रतीमादरात् । वीणामक्षगुणं सुधा-ढ्यकलसं विद्यांश्च तुङ्गस्तनीं, दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं हंसाधिरूढां भजे । एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ४२ ॥

ततः पीठपूजां विधाय केशरेषु मध्ये च पूर्वोक्त पीठशक्तीः पीठ-मनुश्च यजेत् । ततः पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत । देव्या दक्षिणे ॐ संस्कृतायै वाङ्मयै नमः । वामे ॐ प्राकृतायै वाङ्मयै नमः । ततः केशरेषु अग्निकोणे ऐं हृदयाय नमः, नैऋते ऐं शिरसे स्वाहा, वायव्ये ऐं शिखायै वषट्, ईशाने ऐं कव-चाय हुं, मध्ये ऐं नेत्रत्रयाय वौषट, दिक्षु ऐं अस्त्राय फट । ततः पत्रेषु पूर्वादि प्रज्ञायै मेधायै श्रुत्यै शक्त्यै स्मृत्यै वागीश्वर्यै मत्यै स्वस्त्यै, सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् । ततः पत्राग्रेषु ब्राह्मयाद्या मातरः पूज्याः ।

तथा च निबन्धे : देव्या दक्षिणतः पूज्याः संस्कृता वाङ्मयी शुभा ।

प्राकृता वाङ्मयी पूज्या वामतः सर्वदा शुभा। इष्टा पूर्ववदङ्गानि प्रज्ञाद्याः पूजयेत् पुनः। प्रज्ञा मेधा श्रुतिः शक्तिः स्मृतिर्वागीश्वरी मतिः। स्वस्तिश्चेति समाख्याता ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम्। ततस्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च प्रपूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४३ ॥

अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः

तथा च : जपेद्द्वादशलक्षाणि तत्सहस्रं सिताम्बुजैः। नागचम्पक-पुष्पैर्वा जुहुयात्साधकोत्तमः ॥ ४४ ॥

मन्त्रान्तरम्

शारदायाम् : वाचस्पतेऽमृते भूयः प्लुवः प्लुरिति कीर्त्तयेत्। वागाद्यो मनुराख्यातो रुद्रसंख्याक्षरोऽपरः ॥ ४५ ॥ अस्य पूजादिकं पूर्ववत्। कराङ्गन्यासौ तु ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः। वाचस्पते तर्जनीभ्यां स्वाहा। अमृते मध्यमाभ्यां वषट्। प्लुवः अनामिकाभ्यां हुं। प्लुः कनिष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु ॥ ४६ ॥

तथा च निबन्धे : कुर्यादङ्गानि विधिवद्वागाद्यैः पञ्चभिः पदैः ॥ ४६ क ॥

ध्यानन्तु : आसीना कमले करैर्जपवटीं पद्मद्वयं पुस्तकं, बिभ्राणा तरुणेन्दुवद्धमुकुटा मुक्तेन्दुकुन्दप्रभा। भालोन्मीलितलोचना कुचभार-क्लान्ता भवद्भूतये, भूयाद्वागधिदेवता मुनिगणैरासेव्यमानानिशम् ॥ ४७ ॥ अस्य पुरश्चरणमेकादशलक्षजपः।

तथा च : रुद्रलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद्घृतैः ॥ ४८ ॥

तथा च शारदायाम् : तोयस्थं शयनं विष्णोः सकेवल चतुर्मुखम्। अर्घीशेन्दुयुतोवह्निर्विन्दुसत्याम्बुमान् भृगुः। उक्तानि त्रीणि बीजानि सद्भिः सारस्वतो मनुः। तोयं वकारः, विष्णोः शयनमाकारः, केवलेन स्वररहितेन ककारेण सह तेन वाक्। वाग्भवमिति पर्यवसितार्थः। केचित्तुलक्षितलक्षणाभयादेवं वर्णयन्ति। आकारयुक्तो वकारः के मस्तके वलते केवलोऽनुस्वारः तद्युक्तेन ककारेण सह वर्त्तत तेन क्वामिति तन्न निरूढलक्षणायाः शक्तितुल्यत्वात् वाक्वाग्भवमिति पर्यायः।

वस्तुतस्तु : द्वादशस्वरमुद्धृत्य विन्दुनादभूषितम्। विन्दुनादसमायुक्तं वह्निबीजं समुद्धरेत्। षष्ठस्वरसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुद्धरेत्। चन्द्रबीजं समुद्धृत्य वारुणं योजयेत्ततः। त्रयोदशस्वरारूढं विन्दुनादविभूषितमिति विश्वसारवचनात्वाग्भवबीजमेव ॥ ४९ ॥

अस्य पूजा पूर्ववत्। कराङ्गन्यासस्तु द्विरुक्तैस्त्रिभिर्बीजैर्विधेयः। ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः, रूं तर्जनीभ्यां स्वाहा, स्वौं मध्यमाभ्यां वषट् इत्यादि।

तथा च निबन्धे : अङ्गानि कल्पयेन्मन्त्री द्विरुक्तैर्जातिसंयुतैः ॥५०॥

ध्यानन्तु मुक्ताहारावदातां शिरसि शशिकलालंकृतां बाहुभिः स्वैर्व्याख्यां वर्णाख्यमालां मणिमयकलसं पुस्तकञ्चोद्वहन्तीम्। आपीनोत्तुङ्गवक्षोरुहभरविलसन्मध्यदेशामधोशां वाचमीडे चिराय त्रिभुवननमितां पुण्डरीके निषण्णाम्। इति ध्यात्वा पूर्ववत्पूजयेत् ॥ ५१ ॥ अस्य पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः ॥

तथा च : त्रिलक्षं प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः। पायसैराज्यसम्मिश्रैः संस्कृते हव्यवाहने ॥ ५२ ॥

अथ पारिजातसरस्वतीमन्त्रः

मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम् : स च प्रणवहृल्लेखासम्पुटितहकारसकारौकारविन्दुयुक्तः सरस्वती ङेन्ता नतिश्च ॥ ५३ ॥

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादि पीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्शिरसि कण्वऋषये नमः, मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि पारिजात सरस्वत्यै नमः ॥ ५४ ॥

ततो मातृकोक्तकराङ्गन्यासौ कुर्यात्। मूर्द्धभ्रूमध्यनेत्रकर्णनासापुटद्वयवदनगुह्यपादेष्वेकादशाक्षरविन्यासः। (ततो ह्सां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिना कराङ्गन्यासौ कुर्यात्) अन्यत्सर्वं पूर्ववत् ॥ ५५ ॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायान्तु : सम्पत्प्रदाया भैरव्या वाग्भवं बीजमालिखेत्। तारेण परया देवि सम्पुटीकृत्य मन्त्रवित्। सरस्वत्यै हृदन्तोऽयं रुद्रार्णो मनुरीरितः।

प्रपञ्चसारे : आद्यन्तप्रणवशक्तिमध्यसंस्था वाग्भूयो भवति सरस्वती ङेन्ता नत्यन्तामनुरयमीशसंख्यवर्णः सम्प्रोक्तो भजमानः पारिजातः। दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः प्रोक्ता गायत्री छन्द ईरितम्। पारिजातेश्वरी वाणी देवता परिकीर्त्तिता। तृतीयश्च द्वितीयश्च बीजं शक्तिश्च तारकम्। कीलकं परमेशानि महासारस्वतप्रदम्। षड्दीर्घस्वरसंभिन्नबीजेनाङ्गक्रिया मता ॥ ५६ ॥

ततो ध्यानम् : हंसारूढा (हरहसितहारेन्दु) कुन्दावदाता, वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा। विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्रजा

दीप्तहस्ता, श्वेताब्जस्था भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात् ॥ ५७ ॥ अस्याः पूजादिकं पूर्वोक्तैकादशाक्षरीवत् । पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः । अर्कपुष्पैर्नागचम्पकैर्वा जुहुयाद्द्वादशसहस्रकम् । इति सरस्वतीमन्त्राः ॥ ५८ ॥

अथ गनेशमन्त्राः

अथ वक्ष्ये गणपतेर्मन्त्रान्सर्वार्थसिद्धिदान् । यान् ज्ञात्वा मानवा नित्यं साधयन्ति मनोरथान् ॥ ५९ ॥ पश्चान्तकं शशिधरं बीजं गणपतेर्विदुः । पश्चान्तकं गकारः ॥ ६० ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु मध्ये च ॐ तीव्रायै नमः, ज्वालिन्यै नन्दायै भोगदायै कामरूपिण्यै उग्रायै तेजोवत्यै सत्यायै विघ्ननाशिन्यै तदुपरि सर्वशक्तिकमलासनाय नमः । सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् ॥

तथा च निबन्धे : तीव्राख्या ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी । उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी । सर्वादिशक्तिकमलासनाय हृदयावधिः । पीठमन्त्रोऽयमेतेन प्रदद्यादासनं विभोः ॥ ६१ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि गणकऋषये नमः, मुखे निवृच्छन्दसे नमः, हृदि गणेशाय देवतायै नमः ॥ ६२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, गूं मध्यमाभ्यां वषट्, गैं अनामिकाभ्यां हुं, गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, गः करतलपृष्ठाभ्यां फट् एवं गां हृदयाय नमः इत्यादिना हृदयादौ न्यसेत् ॥

तथा च निबन्धे : षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात् । ॥ ६३ ॥

ततो ध्यानम् : सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं, दण्डं पाशांकुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम् । बालेन्दुद्योतिमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं, भोगीन्द्राबद्धभूषं भजतगणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥ एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ ६४ ॥ ततः पीठपूजां विधाय केशरेषु मध्ये च तीव्रादिपीठमन्वन्तं पूजयेत् । ततो मूलेन मूर्त्तिं परिकल्प्य पुनर्ध्यत्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कर्म विधाय आवरणपूजामारभेत ।

यथा : कर्णिकायां पूर्वादिदिक्षु ॐ गणाधिपतये नमः एवं गणेशाय गणनायकाय गणक्रीडाय । ततः केशरेषु अग्निनिर्ऋति वायव्यांशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च गां हृदयाय नमः इत्यादिक्रमेण पूजयेत् ।

पत्रमध्ये पूर्वादि : वक्रतुण्डमेकदन्तं महोदरगजाननौ। लम्बोदराख्यं विकटं विघ्नराजमनन्तरम् धूम्रवर्णं दलाग्रेषु ब्राह्म्याद्याः पूजयेत्ततः।

वाक्यन्तु : ॐ वक्रतुण्डाय नमः इत्यादिक्रमेण पूजयेत्। दलाग्रेषु ब्राह्म्याद्या मातरः पूर्वादिक्रमेण पूज्याः। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च प्रपूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥६५॥ अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः॥

तथा च : वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः। मोदकैः पृथुकैर्लाजैः शक्तुभिः सेक्षुपर्वभिः। नारिकेलैस्तिलैः शुद्धैः सुपक्वैः कदलीफलैः। अष्टद्रव्याणि विघ्नस्य कथितानि मनीषिभिः॥ ६६ ॥

अथ महागणेशमन्त्रः

निबन्धे : श्रीशक्तिस्मरभूमिविघ्नबीजानि प्रथमं लिखेत्। ङेन्तं गणपतिं पश्चाद्वरान्ते वरदं पदम्। उक्त्वा सर्वजनं मेन्ते वशमानय ठद्वयम्। अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ताराद्यो मनुरीरितः॥ ६७ ॥

भूबीजमाह : स्मृतिस्थं मांसमौबिन्दुयुक्तं भूबीजमीरितम्। स्मृतिर्गकारः, मांसं लकारः। तेन ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा॥ ६८ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं कर्म विधाय पूर्वोक्ततीव्रादि-पीठमन्वन्तं पीठशक्तीर्विन्यस्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत्। शिरसि गणकऋषये नमः, मुखे निवृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि महागणपतये देवतायै नमः॥ ६९ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, एवं ॐ ५ गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ५ गूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ५ गैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ५ गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ५ गः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। केचित्तु ॐ गां हृदयाय नमः इत्यादि वदन्ति तन्न, षड्बीजस्थ स्वबीजने दीर्घभाजा प्रकल्पयेत्। इति प्रपञ्चसारवचनाद्विशिष्टस्यैव ग्रहणात्॥ ६९ क ॥

ततो ध्यानम् : नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ। तद्वीचिधोतपर्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्। मन्दारपारिजातादिकल्पवृक्षलताकुलम्। उद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृतभूतलम्। उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भासितदिगन्तरम् तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्। ऋतुभिः सवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनैः। तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे।

षटकोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्। हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसादाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया साङ्कस्थया सङ्गतम्। बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पलं व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलसान् हस्तैर्वहन्तं भजे। गण्डपालीगलाद्दानपूरलालसमानसान्। द्विरेफान् कर्ण-तालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहुः। कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिसृतैः। रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान् मदविह्वलम्। माणिक्यमुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम्॥ एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य वहिः पूजामारभेत॥ ७०॥

अस्य पूजायन्त्रम् : त्रिकोणं तद्वहिः षटकोणञ्च, अन्यत् सर्वं मातृकायन्त्रवत् बोध्यम्॥ ७१॥ (चित्र २१)

ततः शङ्खस्थापनं कृत्वा पीठपूजां विधाय पूर्ववत्पीठशक्तीः पीठमनुञ्च संपूज्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत। त्रिकोणवाह्ये पूर्वादि चतुर्दिक्षु पूर्वे विल्ववृक्षाधः श्रियं श्रीपतिं, दक्षिणे वटवृक्षाधः गौरीं गौरीपतिं, पश्चिमे पिप्पलवृक्षाधः रतिं रतिपतिम्, उत्तरे प्रियंगुवृक्षाधः महीं वराहं, देवताग्रे लक्ष्मीं गणनायकं, षट्कोणेषु अग्रकोणे सिद्धिसहितमामोदम्, अग्निकोणे समृद्धिसहितं प्रमोदं, ईशानकोणे कान्तिसहितं सुमुखं, पश्चिमे मदनावतीसहितं दुर्मुखं, नैर्ऋते मदद्रवासहितं विघ्नं, वायव्ये द्राविणीसहितं विघ्नकर्त्तारं पूजयेत्। षट्कोणस्योभय पार्श्वयोः ॐ वसुधासहित शङ्खनिधये नमः, ॐ वसुमतीसहित पद्मनिधये नमः।

यथा निवंधे : त्रिकोणस्य वहिर्विल्वटपिप्पलभूरुहाम्। प्रियङ्गोरप्यधो मन्त्री दिक्षु पूर्वादितो यजेत्। द्वौ द्वौ श्रियं श्रीपतिञ्च गौरीं गौरीपतिं तथा। रतिं रतिपतिञ्चापि महीमपि वराहकम्। अग्रे च पूजयेल्लक्ष्मीसहितं गणनायकम्। अग्रेकोणे तथा सिद्धिसहितामोदमित्यपि। अग्नि कोणे समृद्ध्या च सहितञ्च प्रमोदकम्। ईशाने कान्तिसहितं सुमुखं पश्चिमे तथा। दुर्मुखं मदनावत्या सहितं नैर्ऋते तथा। सहितं मदद्रवया गणस्याप्यधिनायकम्। द्राविण्या सहितं वायौ विघ्नकर्त्तारमेव च। षट्कोणपार्श्वयोः शङ्खनिधिं वसुधया युतम। वसुमत्या युतञ्चापि यजेत् पद्मनिधिं द्रुतम्। ततः, केशरेषु अग्न्यादि-कोणे मध्ये दिक्षु च षड्बीजस्थ गीं हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत्। ततः पद्ममध्ये ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य तद्वहिः भूगृहे इन्द्रदीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्॥ ७२॥

अस्य पुरश्चरणजपश्चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राधिकश्चतुर्लक्षः ।

तथा : ध्यायेन्मन्त्रं जपेन्मन्त्री चतुर्लक्षं समाहितः । चतुःसहस्रसंयुक्तं चत्वारिंशत्सहस्रकं दशांशं जुहुयाद्द्रव्यैरष्टाभिर्मोदकादिभिः ॥७३॥

मन्त्रान्तरम् :

शक्तिरुद्धं निजं बीजं महागणपतिं वदेत् । ङेन्तमग्निवधुः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ॥ ७४ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादितीव्रादिपीठशक्तीः पीठमन्वन्तं पीठमनुञ्च विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥

निबन्धे : गणकः स्यादृषिश्छन्दो गायत्री निवृदादिका । उदिता देवता मन्त्रे नाम्ना शक्तिगणाधिपः ॥ ७५ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । गं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रीं मध्यमाभ्यां वषट् । महागणपतये अनामिकाभ्यां हुं । स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् । समुदायमुच्चार्य करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : व्यस्तैः समस्तैर्मन्त्रस्य पदैरङ्गानि कल्पयेत् ॥

तथा : शिरसि गणकऋषये नमः, मुखे निवृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि शक्तिगणाधिपतये देवतायै नमः ॥ ७६ ॥

ततो ध्यायेत् : मुक्तागौरं मदगजमुखं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं हस्तैः स्वोयैर्दधतमरविन्दांकुशौ रत्नकुम्भम् । अङ्कस्थायाः सरसिजरुचेस्तद्ध्वजालम्बिपाणेर्देव्या योनौ विनिहितकरं रत्नमौलिं भजामः ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ७७ ॥ ततः पीठपूजां विधाय तीव्रादिपीठमन्वन्तं पूजयेत् । पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरपूजां कुर्यात् ॥ ७८ ॥ पूर्वोक्तचत्वारि मिथुनानि श्रो श्रीपतिप्रभृतीनि षट्कोणेषु आमोदादीन् केशरेष्वग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ह्रीं हृदयाय नमः, गं शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, महागणपतये कवचाय हुं, स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, समुदायमूलमुच्चार्य अस्त्राय फट् । पत्रेषु ब्राह्म्यादिमातृकास्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । यन्त्रन्तु महागणपतियन्त्रवत् ॥ ७८ क ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रमपूपैस्तद्दशांशतः । जुहुयादर्चिते बह्नौ दिनेशो देवमर्चयेत् ॥ ७६ ॥

मन्त्रान्तरम् :

शक्तिरुद्धं निजं बीजं वशमानय ठद्वयम् । ताराद्यो मनुराख्यातो रुद्रसंख्याक्षरोऽपरः । अस्य पूजायन्त्रञ्च पूर्ववत् ॥ ८० ॥

अङ्गमन्त्रस्तु : एकेन त्रिभिर्द्वाभ्यां समस्तेन प्रकल्पयेत् । ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं गं तर्जनीभ्यां स्वहा । वशं मध्यमाभ्यां वषट् । आनय अनामिकाभ्यां हुं । स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् । समस्तमुच्चार्यं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : एकेनादौ त्रिभिर्द्वाभ्यां त्रिभिर्द्वाभ्यामनन्तरम् । समस्तेनास्त्रमाख्यातमङ्गक्लृप्तिरियं मता । एतान्यंगुष्ठादिषु हृदयादिषु विन्यसेत् ॥ ८१ ॥

ततो ध्यानम् : हस्तैर्विभ्रतमिक्षुदण्डवरदौ पाशांकुशौ पुष्करपृष्ठस्वप्रमदावराङ्गमनयाश्लिष्टं ध्वजाग्रस्पृशा । श्यामांग्या विधृताब्जया त्रिनयनं चन्द्रार्द्धचूडं जपारक्तं हस्तिमुखं स्मरामि सततं भोगातिलोलं विभुम् । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् । अस्य पुरश्चरणजपो लक्षत्रयम् ।

तथा च निबन्धे : लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रमिक्षुदण्डैर्दशांशतः । अपूपैराज्ययुक्तैर्वा जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ ८३ ॥

अथ हेरम्बमन्त्रः

स च उकारयुक्तो गकारः सविन्दुः प्रणवादिनमोऽन्तश्चतुरक्षरः ।

तथा च निबन्धे : पञ्चान्तको विन्दुयुक्तो वामकर्णविभूषितः । तारादिहृदयान्तोऽयं हेरम्बमनुरीरितः । चतुर्वर्णात्मको नृणां चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ८४ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं विधाय गणेशोक्तपीठशक्तोः पीठमनुञ्च विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । अस्य गणकऋषिर्गायत्रीच्छन्दो हेरम्बो देवता गकारो बीजं विन्दुः शक्तिश्चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे विनियोगः । शिरसि गणकऋषये नमः इत्यादि ॥ ८५ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : गां गीं गूं गैं गौं गः इत्येतैः षडङ्गानि कुर्यात् ॥

तथा च : षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ ८६ ॥

ततो ध्यानम् : मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दघुसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितैर्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभम् । दृप्तं दानमभीतिमोदक-

रदान् टङ्कं शिरोक्षात्मिकां मालां मुद्गरमंकुशं त्रिशिखकं दोर्भिर्दधानं भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ ८७ ॥ ततो गणेशोक्तपीठशक्त्यन्तं सम्पूज्य ॐ हुं हुं महासिंहाय गां हेरम्बासनाय नमः इत्यासनं पूजयेत् ।

तथा च निबन्धे । प्रणवं कवचद्वन्द्वं महासिंहाय गां ततः । हेरम्बेति पदं पश्चादासनाय हृदन्ततः । अयमासनमन्त्रः स्यात्प्रदद्यादमुनासनम् । पीठन्यासेऽप्ययं मन्त्रः ।

तथा च निबन्धे : आसने यो मनुः प्रोक्तस्तन्न्यासेऽपि स एव हि । ततः ॐ गमितिमन्त्रेण मूर्त्तिं कल्पयेत् ।

तथा च निबन्धे : तारादिविघ्नबीजेन मूर्त्ति तस्य प्रकल्पयेत् । ततः पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत ॥

यथा : अग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च गां हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् ॥ ८८ ॥

पत्रेषु : विघ्नं विनायकं शूरं वीरं वरदसंज्ञकम् । इभवक्त्रश्चैकरदं लम्बोदरञ्च पूजयेत् । पत्राग्रे लोकपालान् तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ८८ क ॥ अस्य पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः ।

तथा च : लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः । होतव्यं पूर्ववत् ॥ ८९ ॥

मन्त्रान्तरम् : गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः ।

तथा च निबन्धे : संवर्त्तको नेत्रयुतः पार्श्वो वह्न्यासने स्थितः । प्रसादनाय हृन्मन्त्रं स्वबीजाद्यो दशाक्षरः ॥ ९० ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिपीठन्यासन्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि गणकऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदि क्षिप्रप्रसादनाय देवतायै नमः ।

तदुक्तम् : गणको मुनिराख्यातो विराट्छन्द उदीरितम् । क्षिप्रप्रसादनो विघ्नो देवतास्य प्रकीर्त्तिता । दीर्घयुक्तेन बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् । एकाक्षरवत् कराङ्गन्यासौ कृत्वा ध्यायेत् ॥ ९१ ॥

ध्यान : पाशांकुशौ कल्पलतां विषाणं दधत् स्वशुण्डाहितबीजपूरः ।

रक्तस्त्रिनेत्रस्तरुणेन्दुमौलिर्हारोज्ज्वलो हस्तिमुखोऽवताद्वः । एवं ध्यात्वा मानसैः संपूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ९२ ॥

ततः पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदान-पर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत् अग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च गां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् ।

तथा च निबन्धे : अङ्गानि पूर्वमभ्यर्च्य विघ्नानष्टौ यजेत्ततः । पत्रेषु पूजयेदेता ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ।

पत्रेषु : विघ्नं विनायकं शूरं वीरं वरदसंज्ञकम् । इभवक्त्रञ्चैकरदं लम्बोदरञ्च पूजयेत् ।

पत्राग्रे : ब्राह्म्याद्यास्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ९३ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : लक्षं जपेज्जपस्यान्ते जुहुयादयुतं तिलैः । मधुरत्रितयैर्वापि द्रव्यैरष्टाभिरीरितैः ॥ ९४ ॥

अथ हरिद्रागणेशमन्त्राः

पञ्चान्तको धरासंस्थो विन्दुभूषितमस्तकः । एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः । अस्य वसिष्ठ ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो हरिद्रागणपतिर्देवता गकारो बीजं लकारः शक्तिः । बीजेनैव षडङ्गकम् ॥ ९५ ॥

ध्यानन्तु : हरिद्राभं चतुर्बाहुं हारिद्रवसनं विभुम् । पाशांकुशधरं देवं मोदकं दन्तमेव च । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनादि तीव्रादिपीठमन्वन्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा गणपतिं पूजयेत् ॥९६॥ (गणेशस्यधारणयन्त्रम् चित्र २२) ।

आवरणपूजाविनियोगमेकाक्षरगणपतिवत् ॥ ९७ ॥ अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः । त्रिमधुर-युक्त हरिद्रा-चूर्ण-मिश्रितैस्तण्डुलैरयुतहोमः ॥ ९८ ॥

मन्त्रान्तरम्

मन्त्रोद्धारमहं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने । इन्द्रबीजं समुद्धृत्य निजबीजं समुद्धरेत् । चतुर्दशस्वरेणाढ्यं विन्दुभूषितमस्तकम् । एकाक्षरी महाविद्या कथिता पद्मयोनिना ॥ ९९ ॥ अस्य पूजादिकं सर्वं महागणपतिवत् । कराङ्गन्यासो तु षड्दीर्घयुक्तेन स्वबीजेन ॥ १०० ॥

अस्य भेदान्तरम् : लक्ष्म्याद्यां वाथ कूर्चाद्यां मायाद्यां वा जपेत्

सुधीः । कामाद्यां वधूबीजाद्यां वागाद्यां वा जपेत् सदा । ॐ कराद्यां महाविद्यां निजबीजादिकां तथा ॥ १ ॥

तथा च : द्व्यक्षरी च महाविद्या त्र्यक्षरी चास्त्रसंयुता । चतुर्वर्णात्मिका विद्या वह्निजायावधिः प्रिये ॥ २ ॥ एषा विद्या महाविद्या त्रैलोक्ये च सुदुर्लभा । चतुर्वर्गप्रदा साक्षान्महापातकनाशिनी । एतासां पूजादिकं महागणपतिमन्त्रवत् ॥ ३ ॥

अथ लक्ष्मीमन्त्राः

अथ वक्ष्ये श्रियो मन्त्रान् श्रीसौभाग्यफलप्रदाम् । यस्याः कटाक्षमात्रेण त्रैलोक्यमपि वर्द्धते ॥ ४ ॥ वान्तं वह्निसमारूढं वामनेत्रेन्दुसंयुतम् । बीजमेतत् श्रियो देव्याः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : सामान्यपूजापद्धत्युक्त प्रातः कृत्यादिपीठन्यासान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि भृगवे ऋषये नमः, मुखे निवृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदये श्रियै देवतायै नमः । केशरेषु मध्ये च पीठशक्तीः पीठमनुञ्च न्यसेत् ।

यथा : ॐ विभूत्यै नमः । एवं उन्नत्यै कान्त्यै सृष्ट्यै कीर्त्यै सन्नत्यै व्युष्ट्यै उत्कृष्ट्यै ऋद्धयं ।

तथा च निबन्धे : विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्त्तिश्च सन्नतिः । व्युष्टिरुत्कृष्टिर्ऋद्धिश्च सम्प्रोक्ता नवशक्तयः ॥ ६ ॥ ततः श्रीं कमलासनाय नमः इत्यासनं न्यसेत् ।

ततः कराङ्गन्यासौ : श्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । श्रूं मध्यमाभ्यां वषट । श्रैं अनामिकाभ्यां हुं । श्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट । श्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट । एवं श्रां हृदयाय नमः इत्यादिना न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : अङ्गानि दीर्घयुक्तेन रमाबीजेन कल्पयेत् ॥ ७ ॥

ततो ध्यानम् : कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैर्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् । बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां, क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् । ततः पीठपूजां विधाय केशरेषु मध्ये च विभूत्यादिपीठमन्त्वन्तं सम्पूज्य, मूलेन मूर्त्तिं परिकल्प्य, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कर्म विधाय, आवरणपूजामारभेत ॥

तद्यथा : अग्न्यादि केशरेषु मध्ये दिक्षु च श्रां हृदयाय नमः इत्यादिना सम्पूज्य दिग्दलेषु पूर्वादि ॐ वासुदेवाय नमः एवं सङ्कर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय। विदिग्दलेषु अग्न्यादि ॐ दमकाय नमः, सलिलाय, गुग्गुलवे, कुरुण्टकाय। ततो देव्या दक्षिणे ॐ शङ्खनिधये नमः, एवं वसुधायै, वामे ॐ पद्मनिधये नमः एवं वसुमत्यै। पत्राग्रेषु पूर्वादि ॐ बलाक्यै नमः एवं विमलायै कमलायै वनमालिकायै विभीषिकायै मालिकायै शाङ्कर्यै वसुमालिकायै, तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्त कर्म समापयेत् ॥ ६ ॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः।

तथा च : भानुलक्षं जपेमन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः। तत्सहस्रञ्च जुहुयात्कमलैर्मधुरोक्षितैः। जपान्ते जुहुयामन्त्री तिलैर्वा मधुराप्लुतैः। विल्वैः फलैर्वा जुहुयात्त्रिभिर्वा साधकोत्तम ॥ १० ॥

मन्त्रान्तरम्

वाग्भवं वनिता विष्णोर्माया मकरकेतनः। चतुर्वर्णात्मको मन्त्रः-चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ११ ॥ अस्य पूजादिकं पूर्ववद्बोध्यम् ॥ १२ ॥

तथा च : रमायाः कल्पिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत्। कुर्यात् प्रयोगांस्तत्रस्थान् मनुना साधकोत्तमः। निधिभिः सेव्यते नित्यं मूर्त्तिमद्भिरुपस्थितैः।

ध्याने तु विशेषो यथा : माणिक्यप्रतिमप्रभां हिमनिभैस्तुङ्गैश्चतुर्भिर्गजैर्हस्ताग्राहितरत्नकुम्भसलिलैरासिच्यमानां सदा। हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुजयुगाभीतीर्दधानां हरेः, कान्तां कांक्षितपारिजातलतिकां वन्दे सरोजासनाम् ॥ १३ ॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः।

तथा च : भानुलक्षं हविष्याशी जपेदन्ते सरोरुहैः। जुहुयादरुणैः फुल्लैस्तत्सहस्रं जितेन्द्रियः ॥ १४ ॥

मन्त्रान्तरम् :

नमः कमलवासिन्यै ठद्वयमिति प्रोक्तो दशाक्षरः।

तथा च निबन्धे : दीर्घो यादिर्विसर्गान्तो ब्रह्मा भानुर्वसुन्धरा। वान्ते सिन्यै प्रिया वह्नेर्मनुः प्रोक्तो दशाक्षरः ॥ १५ ॥

अस्य पूजा : पूर्ववत्पीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा : शिरसि दक्षऋषये नमः। मुखे विराटच्छन्दसे नमः। हृदि श्रियै देवतायै नमः।

तथा च शारदायाम् : ऋषिर्दक्षो विराटछन्दो देवताश्री समोरिता ॥ १६ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ देव्यै नमोऽङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ पद्मिन्यै नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ विष्णुपत्न्यै नमो मध्यमाभ्यां वषट। ॐ वरदायै नमोऽनामिकाभ्यां हुं। ॐ कमलरूपायै नमः कनिष्ठाभ्यां फट। एवं ॐ देव्यै नमो हृदयाय नमः इत्यादि।

तथा च निबन्धे : देव्यै हृदयमाख्यातं पद्मिन्यै शिर ईरितम्। विष्णुपत्न्यै शिखा प्रोक्ता वरदायै तनुच्छदम्। अस्त्रं कमलरूपायै नमोऽन्ताः प्रणवादिकाः ॥ १७ ॥

ततो ध्यानम् : आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्बिभ्रती, दानं पद्मयुगाभये च वपुषा सौदामिनी सन्निभा। मुक्ताहारविराजमान-पृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी, पायाद्वः, कमला कटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, शङ्खस्थापनं कृत्वा, पूर्वोक्तपीठशक्ति-सहितपीठमन्वन्तां पीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पा-ञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजां कुर्यात् ॥ १८ ॥ अग्न्यादि चतुष्कोण-मध्ये दिक्षु च ॐ देव्यै नमो हृदयाय नमः। ॐ पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा। ॐ विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट। ॐ वरदायै नमः कवचाय हुं। ॐ कमलरूपायै नमोऽस्त्राय फट।

ततः पूर्वादिदलेषु पूर्ववद्बलाक्यादिकाः पूजयेत्। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १९ ॥ अस्य पुरश्चरणजपो दशलक्षः।

तथा च : दशलक्षं जपेन्मन्त्रं मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः। दशांशं जुहुया-न्मन्त्री मधुराक्तैः सरोरुहैः ॥ २० ॥

अथ महालक्ष्मीमन्त्राः

तारो वाग्भवं माया रमा कामः हेसौर्जगत्प्रसूत्यै नमः।

तथा च : वाग्भवं शम्भुवनिता रमा मकरकेतनः। तार्त्तीयश्च जगत्पार्श्वो वह्निबीजसमुज्ज्वलः। अर्धीशाढ्यो भृगुस्त्यैहृन्मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः। महालक्ष्म्याः समुद्दिष्टस्ताराद्यः सर्वसिद्धिदः ॥ २१ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिश्रीबीजोक्तपीठन्यासान्तं विधाय ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात्। शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि

महालक्ष्म्यै देवतायै नमः ॥ २२ ॥ ततो मूलेन करौ संशोध्य अंगुष्ठादि-क्रमेण प्रत्येकं तारादिनमोऽन्तानि पञ्चबीजानि न्यसेत् । ॐ ऐं नमः, ॐ ह्रीं नमः, ॐ श्रीं नमः, ॐ क्लीं नमः, ॐ हसौ नमः, ॐ जगत्प्रसूत्यै नमः । इति करतले । ततो मस्तकादिचरणं यावन्मूलेन व्यापकं कुर्यात् । ततो मूर्द्धास्यहृदयगुह्यपादेषु पञ्चबीजानि न्यसेत् । शेषाक्ष-राणि हृदये सप्तधातुषु ।

तथा च निबन्धे : हस्तौ संशोध्य मूलेन तारादिहृदयान्तकम् । बीजानां पञ्चकं न्यस्येदंगुलिषु यथाक्रमम् । मन्त्रशेषं न्यसेन्मत्री तलयो-रुभयोरपि । मूर्द्धादिचरणं यावन्मूलेन व्यापकं न्यसेत् । मूर्द्धास्यवक्षो-गुह्यांघ्रौ पञ्चबीजानि विन्यसेत् । शेषान्न्यसेत्सप्तवर्णान् हृदये सप्तधातुषु ॥ २३ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ऐं ज्ञानाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं ऐश्वर्याय तर्जनीभ्यां स्वाहा । श्रीं शक्तये मध्यमाभ्यां वषट् । क्लीं बलाय अनामिकाभ्यां हुं । हसौः वीर्याय कनिष्ठाभ्यां वौषट । जगत्प्रसूत्यै नमस्तेजसे करतलपृष्ठाभ्यां फट । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : अङ्गानि पञ्चभिर्बीजैरस्त्रं शेषाक्षरैर्भवेत् । ज्ञानैश्वर्यादिभिर्युक्तैश्चतुर्थ्यन्तैः सजातिभिः । ज्ञानमैश्वर्यशक्ती च बलवीर्ये सतेजसी । ज्ञानैश्वर्यादयः प्रोक्ताः षट्क्रमादङ्गदेवताः ॥ २४ ॥

ततो ध्यानम् : बालार्कद्युतिमिन्दुखण्डविलसत्कोटीरहारोज्ज्वलां रत्नाकल्पविभूषितां कुचनतां शालेः करैर्मञ्जरीम् । पद्मं कौस्तुभरत्न-मप्यविरतं संबिभ्रतीं सस्मितां, फुल्लाम्भोजविलोचनत्रययुतां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥ विस्तरेण तु ध्यानं शारदायां द्रष्टव्यम् । इतिध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ २५ ॥ ततः श्रीबीजोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरण-पूजामारभेत् ।

यथा : देव्या दक्षिणे शङ्करनन्दनाय नमः, एवं वामे पुष्पधन्वने, अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ऐं ज्ञानाय हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् ।

तथा च शारदायाम् : पूजयेद्दक्षिणे पार्श्वे देव्याः शङ्करनन्दनम् । अन्यतः पुष्पधन्वानं पुष्पाञ्जलिकरं यजेत् । अंगानि पूर्वमुक्तेषु स्थानेषु विधिवद्ययजेत् । पत्रेषु पूर्वादि ॐ उमायै नमः, एवं श्रियै सरस्वत्यै दुर्गायै

धरण्यै गायत्र्यै देव्यै उषायै। दक्षिणे जह्नुसुतायै, वामे सूर्यसुतायै, पुनर्दक्षिणे ॐ शङ्खनिधये, पुनर्वामे ॐ पद्मनिधये, पश्चिमे धृतातपत्रं वरुणं पूजयेत्।

यथा : उमाद्याः पत्रमध्यस्थाः शक्तीरष्टौ यजेत् क्रमात्। अथोमा श्री सरस्वत्यै दुर्गाधरणीसंयुता॥ गायत्री देव्युषा चेति पद्महस्ताः सुशोभनाः। तद्बाह्ये द्वादशराशीन् नवग्रहान् प्रत्येकेन यजेत्। तद्बाह्ये अष्टौ गजान् ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकान् पूजयेत्।

तथा च निबन्धे : जह्नुसूर्यसुते पूज्ये पादप्रक्षालनोद्यते। शङ्खपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ॥ धृतातपत्रवरुणं पूजयेत् पश्चिमे ततः। सम्पूज्य राशीन् परितो यजेदथ नवग्रहान्। अर्चयेद्दिग्गजान् दिक्षु चतुर्दन्तविभूषितान्। ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः॥ पुष्पदंतः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च ते क्रमात्। तत इन्द्रादीन् वज्रादींश्च प्रपूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्॥ २॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः।

तथा च : भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद्घृतैः। जुहुयात् श्रीफलैः पद्मैः प्रत्येकमयुतद्वयम्॥ तर्पयेत् सलिलैः शुद्धैः सुगन्धैरयुतद्वयम्। अयुतद्वयमिति याचनिकव्यवस्था॥ २७॥

मन्त्रान्तरम्: शम्भुपत्नी श्रिया रुद्धा कमो भगवती मही। ब्रह्मादित्यौ धरा दीर्घा लक्ष्म्यादिर्भगवान्मरुत्॥ प्रसीदयुगलं भूयः श्रीरुद्धा भुवनेश्वरी। महालक्ष्मि नमोऽन्तः स्यात् प्रणवादिरयं मनुः। मही लकारः, भगवती एकारवती, ब्रह्मा ककारः, आदित्यो मकारः, धरा लकारः, दीर्घा आकारयुक्ता, लक्ष्म्यादिर्लकारः, मरुत् यकार एकारयुक्तः, ॥ २०॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिपूर्वोक्त ऋष्यादिन्यासान्तं विधाय कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः। एवं श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं मध्यमाभ्यां वषट्। श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं अनामिकाभ्यां हुं। श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि श्रीं ह्रीं श्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। श्रीं ह्रीं श्रीं नमः श्रीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्। एवं हृदयादिषु।

तथा च निबन्धे : कमले हृदयं प्रोक्तं शिरः स्यात्कमलालये । शिखा प्रसीद तेनैव कवचं चतुरक्षरैः । अस्त्रमेतैः पदैः कुर्यात्रिबीजपुटितैः पृथक् ॥ २९ ॥

ततो ध्यानम् : सिन्दूरारुणकान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्यवारां निधिं, कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रादिभिर्भूषिताम् । हस्ताब्जैर्वसुपात्रमब्ज-युगलादर्शौवहन्तीं परामावीतां परिचारिकाभिरनिशं ध्यायेत्प्रियां शार्ङ्गिणः ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ३० ॥

पूर्ववत्पीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदान-पर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत । केशरेषु अग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च श्रीं ह्लीं श्रीं कमले श्रीं ह्लीं श्रीं हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् । दलमूले पूर्वादि ॐ श्रीधराय नमः, एवं हृषिकेशाय वैकुण्ठाय विश्व-रूपाय वासुदेवाय सङ्कर्षणाय प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय । दलमध्ये भारत्यै पार्वत्यै चान्द्र्यै शच्यै दमकाय सलिलाय गुग्गुलवे कुरुण्टकाय ।

दलाग्रेषु : अनुरागं विसंवाद विजयं वल्लभं मदम् । हर्षं बलं तेज इति महालक्ष्मीबाणान्यजेत् ।

वाक्यन्तु : अनुरागाय महालक्ष्मीबाणाय नमः एवं क्रमेण पूजयेत् । ॥ ३१ ॥

तथा च निबन्धे : दलाग्रेष्वर्चयेद्बाणान्महालक्ष्म्या क्रमादमून् । तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् ॥ ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ३१ क ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ॥

तथा च : लक्ष जपेत्फलैर्बिल्वैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः । दशांशं संस्कृते वह्नौ प्राक्प्रोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ३२ ॥

अथ सूर्यमन्त्राः

तारो घृणिर्भृगुः पश्चाद्वामकर्णविभूषितः । वह्न्यासनो मरुच्छेषः सनेत्रोऽद्रिस्त्य पश्चिमः ॥ अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो भानोरभिमतप्रदः ॥ ३३ ॥

अस्य पूजा : सामान्यपूजापद्धत्युक्त प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय पीठन्यासं कुर्यात् ।

तत्र विशेषः : स्वहृदयस्य पूर्वादिदिक्षु मध्ये च प्रभूतं विमलं सारं

समाराध्यं परमसुखं विन्यस्य आधारशक्त्यादि अं सूर्यमण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः इत्यन्तं न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : पीठे क्लृप्ते प्रथमं दिक्षु मध्ये च संयजेत् । प्रभूतं विमलं सारं समाराध्यमनन्तरम् । परमादिसुखं पीठं स्वविद्यान्तं प्रकल्पयेत् । ततः केशरेषु मध्ये च रां दीप्तायै नमः, रीं सूक्ष्मायै नमः, रूं जयायै, रें भद्रायै, रैं विभूत्यै, रों विमलायै, रौं अमोघायै, रं विद्युतायै, रः सर्वतोमुख्यै नमः ।

तदुक्तं निबन्धे : दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला पुनः । अमोघा विद्युता सर्वतोमुखी पीठशक्तयः । दीप्तदीपशिखाकारा बीज-न्यासं विदुः क्रमात् । अक्लीवह्रस्वत्रितयस्वरान्विन्द्वग्निसंयुतान् ॥ तदुपरि ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठाय नमः ।

तथा च शारदायाम् : वदेत्पदं चतुर्थ्यन्तं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् । सौराय योगपीठाय नमः पदमनन्तरम् ॥ पीठमन्त्रोऽयमाख्यातो दिनेशस्य जगत्पतेः ॥ ३४ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि देवभागऋषये नमः, मुखे गायत्री-च्छन्दसे नमः, हृदि आदित्याय देवतायै नमः ।

तथा च निबन्धे : देवभागो मुनिःप्रोक्तो गायत्रीच्छन्द ईरितम् । आदित्यो देवता प्रोक्तो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥ ३५ ॥

रामार्चनचन्द्रिकायाम् : तारं बीजमिति प्रोक्तं यः शक्तिः समुदा-हृतः । चैतन्मन्त्रस्य भार्गवऋषिः ॥

तदुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायाम् : भार्गवोऽस्य मुनिः प्रोक्ता गायत्री देवता मनोः । इत्यादि ।

ततः कराङ्गन्यासः : सत्याय तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः । ब्रह्मणे तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा । विष्णवेतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् । रुद्राय तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं । अग्नये तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् । सर्वाय तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥ ३६ ॥

तथा च शारदायाम : सत्याय हृदयं प्रोक्तं ब्रह्मणे शिर ईरितम् । विष्णवे स्याच्छिखा वर्म रुद्राय परिकीर्त्तितम् । अग्नयेनेत्रमाख्यातं

सर्वाया स्त्रमुदाहृतम् तेजोज्वालामणे हुं फट् द्विठान्ताः पृथगीरिताः । ॥ ३७ ॥

ततो मूर्त्तिन्यासः

यथा : शिरसि ॐ आदित्याय नमः, एवं मुखे एं रवये, हृदये उं भानवे, गुह्ये इं भास्कराय, चरणयोः अं सूर्याय ॥ ३८ ॥

तथा च निबन्धे : आदित्यं विन्यसेन्मूर्ध्नि रविञ्च मुखतो न्यसेत् । हृदये भानुनामानं भास्करं गुह्यदेशतः ॥ सूर्यश्चरणयोर्न्यस्येत् ह्रस्वैः सत्यादिपञ्चभिः ।

ततो मन्त्रन्यासः : शिरसि ॐ ॐ नमः, मुखे ॐ घृ नमः । कण्ठे ॐ णि नमः, हृदये ॐ सू नमः, कुक्षौ ॐ र्य नमः, नाभौ ॐ आ नमः । लिङ्गे ॐ दि नमः, पादयोः ॐ त्य नमः ।

तथा च निबन्धे : मूर्द्धास्य कण्ठहृदयकुक्षिनाभिध्वजांघ्रिषु । मन्त्रवर्णान् न्यसेदष्टौ प्रत्येकं प्रणवादिना ॥ ३९ ॥

ततो ध्यानम् : रक्ताब्जयुग्माभयदानहस्तं, केयूरहाराङ्गदकुण्डलाढ्यम् । माणिक्यमौलिं दिननाथमीडे बन्धूककान्तिं विलसत्त्रिनेत्रम् ॥४०॥

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ ४१ ॥ ततो गुरुपंक्तिपूजां कृत्वा पीठपूजां कुर्यात् । ॐ खं खखोल्काय नमः इति मूर्त्तिं परिकल्प्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत ।

तथा च निबन्धे : तारादि खं खखोल्काय मनुना मूर्त्तिकल्पना । साक्षिणं सर्वलोकानां तस्यामावाह्य पूजयेत् ॥ केशरेषु अग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च ॐ सत्याय तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः । एवं ॐ ब्रह्मणे तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा । ॐ विष्णवे तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट् । ॐ रुद्राय तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुं । ॐ अग्नये तेजोज्वालामणे हुं फट स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट । ॐ सर्वाय तेजोज्वालामणे हुं फट स्वाहा अस्त्राय फट । दिक्पत्रेषु पूर्वादि ॐ आदित्याय नमः, एवं एं रवये उं भानवे इं भास्कराय । विदिक्पत्रेषु ऊं ऊषायै, पं प्रज्ञायै, पं प्रभायै, सं सन्ध्यायै ।

तथा च निबन्धे : अङ्गानि पूजयेदादौ दिक्पत्रेष्वर्कमूर्त्तयः । आदित्याद्याश्चतस्रोऽर्च्याः शक्तयः कोणपत्रगाः ॥ स्वस्वनामादिवर्णाः स्युस्तासां वीजान्यनुक्रमात् । ऊषा प्रज्ञा प्रभा सन्ध्या शक्तयः परि-

कीर्त्तिताः ॥ ततः पत्राग्रेषु ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य पुरतोऽरुणमर्चयेत् ।

तथा च शारदायाम् : पत्राग्रस्था ब्राह्म्याद्याः पुरतोऽरुणमर्चयेत् । तद्बाह्ये पूर्वादि चन्द्रादीन् पूजयेत् । ॐ चन्द्राय नमः, एवं मङ्गलाय बुधाय वृहस्पतये शुक्राय शनश्चराय राहवे केतवे ।

तथा च शारदायाम् : चन्द्रादीन् पूजयेत् पश्चाद्ग्रहानष्टौ ततो वहिः । तत इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४२ ॥ अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः ।

तथा च : वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं समिद्भिः क्षीरशाखिनाम् । तत्सहस्रं प्रजुहुयात् क्षीराक्ताभिर्जितेन्द्रियः ॥ अत्रापि वाचनिक एवाष्टसहस्रहोमः ॥ ४२ ॥

मन्त्रान्तरम्

आकाशमग्निदीर्घेन्दुसंयुतं भुवनेश्वरी । सर्गान्वितो भृगुर्भानोस्त्र्यक्षरोऽयं समीरितः ॥ ४४ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिपूर्वमन्त्रोक्त पीठन्यासं विधाय पूर्वमन्त्रोक्त-ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥ ४५ ॥

ततो मन्त्रन्यासः : आधारादिपादपर्यन्तं ह्रां नमः । कण्ठादाधार-पर्यन्तं ह्रीं नमः । मूर्द्धादिकण्ठपर्यन्तं सः नमः ।

शारदायाम् : आधारादिपदाग्रान्तं कण्ठदाधारकावधि मूर्द्धादि-कण्ठपर्यन्तं क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत् ॥ ४६ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं । ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : षड्दीर्घयुक्तमध्येन बीजेनाङ्गादिकल्पना ॥४७॥

ततो ध्यानम् : रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं, भानुं समस्तजगता-मधिपं भजामि । पद्मद्वयाभयवरान्दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्ग-रुचिं त्रिनेत्रम् ॥ इति ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् । ततः पूर्वोक्तक्रमेण पीठपूजां विधाय मूलमन्त्रेण मूर्त्तिं सङ्कल्प्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजां कुर्यात् । अग्निनिर्ऋति-वायव्यीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् । पत्रेषु चन्द्रादान्पूर्ववत्पूजयत् ॥ तत इन्द्रादान्वज्रा-

दींश्च प्रपूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४९ ॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः ।

तथा च : भानुलक्षं जपेन्मन्त्रमाज्येन च दशांशतः । तिलैर्वा मधुरासिक्तैर्जुहुयाद्विजितेन्द्रियः ॥ ५० ॥

मन्त्रान्तरम्

आकाशवह्निपवनसत्यान्तार्घीशविन्दुमत् । मार्त्तण्डभैरवं नाम बीजमेतदुदाहृतम् । पुटितं विम्बबीजेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५१ ॥

विम्बबीजमाह तन्त्रे : टान्तं दहननेत्रेन्दुसहितं तदुदाहृतम् ॥५२॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि पूर्वमन्त्रोक्त पीठन्यासान्तं कर्म विधाय पूर्ववत्ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥ ५३ ॥

ततो मूर्त्तिन्यासः : ठं सूर्याय नमोऽङ्गुष्ठयोः । ठिं भास्कराय नमस्तर्जन्योः । ठुं भानवे नमो मध्यमयोः । ठें रवये नमोऽनामिकयोः । ठों दिवाकराय नमः कनिष्ठयोः । ततः शिरसि वदने हृदये पादेषुतान् तत्तद्बीजादिकान् न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : पञ्चह्रस्वाढ्य बीजेन पञ्चमूर्त्तीः प्रविन्यसेत् । अंगुष्ठादिकनिष्ठान्तमंगुलीषु क्रमादिमाः ॥ सूर्यस्तु भास्करो भानुस्ततो रविर्दिवाकरो । शिरोवदनहृद्गुह्य पाददेशेषु तान् पुनः ॥

ततः कराङ्गन्यासः : ठां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ठीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ठूं मध्यमाभ्यां वषट् । ठैं अनामिकाभ्यां हुं । ठौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ठः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं ठां हृदयाय नमः इत्यादि ॥

तथा च निबन्धे : दीर्घयुक्तेन बीजेन नेत्रान्ताङ्गानि विन्यसेत् । ततो मूलबीजेन व्यापकन्यासं कृत्वा ध्यायेत् ॥

तथा च निबन्धे : व्यापकं मूलबीजेन कुर्वीत तदन्तरम् ॥ ५४ ॥

ततो ध्यानम् : हेमाम्भोज प्रवालप्रतिमनिजरुचिचारुखट्वाङ्ग चापौ चक्रं शक्तिं सपाशं सृणिमतिरुचिरामक्षमालां कपालम् । हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामं, मार्त्तण्डं वल्लभार्द्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः ॥ एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ ५५ ॥ ततः पूर्वोक्तक्रमेण पीठमन्त्रान्तं सम्पूज्य पूर्वादिषु कर्णिकायां ॐ ऊषायै नमः । एवं प्रज्ञायै प्रभायै सन्ध्यायै इति सम्पूज्य मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् । ततः पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कर्म विधाय अवारणपूजामारभेत् ।

तथा च निबन्धे : पीठे दीप्तादिभिर्युक्ते कर्णिकायामुषादिकाः । पूर्वादिदिक्षु सम्पूज्य मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् । ततः पूर्वादि दिक्षु सूर्यं भास्करं भानुं रविञ्च पूजयेत् । कोणेषु दिवाकरम् । ततोऽग्निनिर्ऋति-वायव्यीशानकोणेषु ठ्रां हृदयाय नमः इत्यादि । ईशाने ठ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

शारदायाम् : सूर्यादीन् चतुरो दिक्षु विदिक्ष्वन्यं समर्चयेत् । अङ्गपूजा यथापूर्वं नेत्रमीशादिदिग्गतमिति । ततः पूर्ववच्चन्द्रादि अष्टग्रहान् सम्पूज्य भूगृहेषु लोकपालान् पूजयेत् ।

तथा च निबन्धे : ग्रहानष्टौ तथा बाह्ये लोकपालांस्ततः परम् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ५६ ॥ अस्य पुरश्चरणजपो लक्षत्रय-संख्यः । त्रिमधुरोपेतैः पद्मैर्दशांशहोमः ।

तथा च : लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं बिम्बबीजपुटीकृतम् । दशांशं कमलैः फुल्लैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ॥ ५७ ॥ इमं मन्त्रं जपेन्मर्त्यः कान्तिं पुत्रान् धनं द्युतिम् । वाक्सिद्धिमतुलां लक्ष्मीं सौभाग्यमपि साधयेत् ॥ ५८ ॥

अथ अजपामन्त्रः

वियदर्द्धेन्दुललितं तदादिः सर्गसंयुतः । अजपाख्यो मनुः प्रोक्तो द्व्यक्षरः सुरपादपः ॥ ५९ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि पूर्वोक्तपीठमन्त्वन्तं समाप्य ऋष्या-दिन्यासं कुर्यात् । शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि श्रीगिरिजापतये देवतायै नमः ।

तथा च निबन्धे : ऋषिर्ब्रह्मा स्मृतो देवि गायत्रीच्छन्द ईरितम् । देवता जगतामादिः संप्रोक्ता गिरिजापतिः ॥ ६० ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्सां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : ह्सां षड्दीर्घयुक्तेन कुर्यादङ्गक्रियां मनोः ॥ ६१ ॥

ततो ध्यानम् : उद्यद्भानुस्फुरततडिदाकारमर्द्धाम्बिकेशं, पाशाभीति वरदपरशुं सन्दधानं कराब्जैः । दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः शोभितं विश्व-मूलं, सौम्याग्नेयं वपुरवतु वश्चन्द्रचूडं त्रिनेत्रम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कृत्वा, पूर्वोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरण-पूजामारभेत । अग्निनिर्ऋतिवायव्यीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च ह्सां

हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत्। दिग्दलेषु ऋतं वरं वसुं नरं वरं; विदिग्दलेषु ऋतजा-गोजा-अब्जद्रिजा पूजयेत्।

तथा च निबन्धे : ऋतं वसुं नरवरौ दिग्दलेषु विदिक्ष्वथ। अर्चयेत् ऋतजां गोजामब्जाख्यामद्रिजां पुनः। तद्बाह्ये इन्द्रादीन् वज्रादींश्च प्रपूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ६२ ॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः। घृतयुक्तपायसेन दशांशहोमः।

तथा च : भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं पायसेन ससर्पिषा। दशांशं जुहुयान्मन्त्री ततः सिद्धो भवेन्नरः ॥ ६३ ॥

अथ विष्णुमन्त्राः

अथ वक्ष्ये महामन्त्रान् विष्णोः सर्वसमृद्धिदान्। यस्य संस्मरणात् सन्तो भवाब्धे पारमाश्रिताः ॥ ६४ ॥ तारं नमः पदं ब्रूयान्नरौ दीर्घ-समन्वितौ। पावनो नाम मन्त्रोऽयं प्रोक्तो वस्वक्षरः परः ॥ ६५ ॥

अस्य पूजा-प्रयोगः : प्रातःकृत्यादिस्नानान्तं कर्म कृत्वा पूजामण्डप-मागत्य वैष्णवाचमनं कुर्यात् ॥ ६६ ॥

तद्यथा गोतमीये : केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत् करौ। द्वाभ्यामोष्ठौ च संमृज्य द्वाभ्यां मृज्यान्मुखः ततः। एकेन हस्तं प्रक्षाल्य पादावपि तथैकतः। संप्रोक्ष्यैकेन मूर्द्धानं ततः सङ्कर्षणादिभिः। आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभ्युरस्कं भुजौ क्रमात्। स्पृशेदेवं भवेदाचमनन्तु वैष्णवान्वये। एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत् ॥ ६७ ॥ केशवादयस्तु केशव नारायण-माधव-गोविन्द-विष्णु मधुसूदन-त्रिविक्रम-वामन-श्रीधर-हृषीकेशपद्मनाभ-दामोदर-संकर्षण-वासुदेव-प्रद्युम्नानिरुद्ध-पुरुषोत्तम-अधोक्षज-नृसिंह-अच्युत-जनार्दन-उपेन्द्र-हरि-विष्णवः। वाक ॐ केशवाय नमः इत्यादि।

तथा च : सचतुर्थीनमोऽन्तैश्च नामभिर्विन्यसेत् सुधीः ॥ ६८ ॥ ततः सामान्यार्घ्यादि-मातृकान्यासान्तं कर्म विधाय केशवकोर्त्यादिन्यासं कुर्यात्।

अस्य ऋष्यादिन्यासः : शिरसि प्रजापतये ऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि अर्द्धलक्ष्मीहरये देवतायै नमः ॥ ६९ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि। एवं हृदयादिषु।

तथा च गौतमीये : ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गयात्री देवता पुनः। अर्द्धलक्ष्मीहरिः प्रोक्तः श्रीबीजेन षडङ्गकम् ॥ ७० ॥

ततो ध्यानम् : उद्यत्-प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदाभं पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम। नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं, विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकी चक्र पाणिम् ॥

एवं ध्यात्वा न्यसेत्।

तथा च क्रमदीपिकायाम् : वर्णानुक्त्वा सार्द्धचंद्रान् पुरस्तात् इत्यादि दर्शनात्सर्वत्र सानुस्वारः ॥ ७१ ॥ अं केशवाय कीर्त्यै नमो ललाटे। आं नारायणाय कान्त्यै नमो मुखे। इं माधवाय तुष्ट्यै नमो दक्षनेत्रे। ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमो वामनेत्रे। सर्वत्र एवं उं विष्णवे धृत्यै दक्षकर्णे। ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै वामकर्णे। ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै दक्षनासापुटे। ॠं वामनाय दयायै वामनासापुटे। ऌं श्रीधराय मेधायै दक्षगण्डे। ॡं हृषीकेशाय हर्षायै वामगण्डे। एं पद्मनाभाय श्रद्धायै ओष्ठे। ऐं दामोदराय लज्जायै अधरे। ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ। औं संकर्षणाय सरस्वत्यै अधोदन्तपंक्तौ। अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै मस्तके। अः अनिरुद्धाय रत्यै मुखे। कं चक्रिणे जयायै। खं गदिने दुर्गायै, गं शार्ङ्गिणे प्रभायै, घं खड्गिने सत्यायै, ङं शङ्खिने चण्डायै, इतिदक्षकरमूलसन्ध्यग्रकेषु। चं हलिने बाण्यै, छं मुषलिने विलासिन्यै, जं शूलिने बिजयायै, झं पाशिने विरजायै, ञं अंकुशिने विश्वायै, इति वामकरमूलसन्ध्यग्रकेषु। टं मुकुन्दाय विनदायै, ठं नन्दजाय सुनदायै, डं नन्दिने स्मृत्यै, ढं नराय ऋद्ध्यै, णं नरकजिते समृद्ध्यै, इति दक्षपादमूलसन्ध्यग्रकेषु। तं हरये शुद्ध्यै, थं कृष्णाय बुद्ध्यै, दं सत्याय भक्त्यै, धं सात्त्वताय मत्यै, नं शौरये क्षमायै, इति वामपादमूलसन्ध्यग्रकेषु। पं शूराय रमायै दक्षपार्श्वे। फं जनार्दनाय उमायै वामपार्श्वे। बं भूधराय क्लेदिन्यै पृष्ठे। भं विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै नाभौ। मं वैकुण्ठाय वसुदायै उदरे। यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै हृदि। रं असृगात्मने बलिने परायै दक्षांसे। लं मांसात्मने बलानुजाय परायणायै ककुदि। वं मेदात्मने बालाय सूक्ष्मायै वामांसे। शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै हृदादिदक्षकरे। षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै हृदादिवामकरे। सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै हृदादिदक्षपादे। हं प्राणात्मने वराहाय निशायै हृदादिवामपादे। लं जीवात्मने विमलाय अमोघायै हृदाद्युदरे। क्षं क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै हृदादिमुखे इति। नमः सर्वत्र ॥ ७२ ॥

केशवादिमाह शारदायाम् : केशवनारायणमाधवगोविन्दविष्णवः। मधुसूदनसंज्ञोऽन्यः स्यात्त्रिविक्रमवामनो। श्रीधरश्च हृषीकेशः पद्मनाभस्ततः परः। दामोदरः वासुदेवः संकर्षण इतीरितः॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च स्वरार्णमूर्त्तयः स्मृताः। पश्चाच्चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी शङ्खी हली पुनः। मुषली शूलिसंज्ञोऽन्यः पाशी स्यादंकुशी पुनः। मुकुन्दो नन्दजो नन्दी नरो नरकजिद्धरिः॥ कृष्णः सत्यः सात्त्वतः स्यात्शौरिः शूरो जनार्दनः। भूधरो विश्वमूर्त्तिश्च वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः। बली बलानुजो बालो वृषघ्नश्च वृषः पुनः। हंसो वराहो निमलो नृसिंहो मूर्त्तयो हलाम॥ केशवाद्या इमे श्यामाः शङ्खचक्रलसत्कराः। कीर्त्ति कान्तिस्तुष्टिपुष्टि धृतिः शान्तिः क्रिया दया॥ मेधा सहर्षा श्रद्धा स्याल्लज्जा लक्ष्मीः सरस्वती। प्रीति रतिरिमाः प्रोक्ताः क्रमेण स्वरशक्तयः॥ जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डा वाणी विलासिनी। विजया विरजा विश्वा विनदा सुनदा स्मृतिः। ऋद्धिः समृद्धिः शुद्धिः स्यद्भुक्तिर्बुद्धिर्मति क्षमा। रमोमा क्लेदिनी क्लिन्ना वसुदा वसुधा परा॥ तथा परायणा सूक्ष्मा सन्ध्या प्रज्ञा प्रभा निशा। अमोघा विद्युता चेति कीर्त्याद्याः सर्वकामदाः॥ एताः प्रियतमाङ्गेषु निमग्नाः सस्मिताननाः। विद्युद्दामसमाभाः स्युः पङ्कजाभयबाहवः॥ ७३॥

गौतमीये : केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिनाम्। अच्युतत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न संशयः। मातृकार्णं समुच्चार्य केशवाय इति स्मरेत्। कीर्त्यै च नमसा युक्तमित्यादि न्यासमाचरेत्॥

आगमनकल्पद्रुमे : आदिक्षान्तान्विदुयुक्तान्मातृकार्णान्यथाक्रमम्। ङेऽन्तं देवं तथा शक्तिं पश्चान्नम इति क्रमः। केशवाय ततः कीर्त्यै कान्त्यै नारायणाय च॥ इत्याद्यगस्त्यसंहितावचनादयं क्रमः। न तु केशवकीर्त्तिभ्यां नमः इत्यादि। तथा भुक्तिमिच्छता अयं न्यासः कर्त्तव्यः श्री बीजादिकः।

यथा : ॐ श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः इत्यादि॥ ७५॥

तथा च गौतमीये : प्रणवं पूर्वमुच्चार्य श्रीबीजं तदनन्तरम्। मातृकार्णं ततो न्यस्येद्वक्ष्यामि तत्प्रकारकम्॥ वाग्भवाद्यं न्यसेद्वाथ वागीश्वरत्वमवाप्नुयात्। यद्यदाद्यं न्यसेन्न्यासं तद्बीजेनाङ्ग कल्पना। एवं प्रविन्यसेन्न्यासं लक्ष्मीबीजपुरःसरम्। स्मृति धृतिं महालक्ष्मीं प्राप्यान्ते हरितां व्रजेत्॥ ७६॥

ततस्तत्त्वन्यासः : मादिकान्तानथार्णांश्च बीजान्येकैकशो वदेत् । नमः परायेत्युच्चार्य ततस्तत्त्वात्मने नमः ॥ इति गौतमीय दर्शनात्सर्वत्र तत्त्वपद प्रयोगः ।

यथा : मं नमः पराय जीवतत्त्वात्मने नमः । भं नमः पराय प्राणतत्त्वात्मने नमः । एतद्द्वयं सर्वगात्रे । बं नमः पराय मतितत्त्वात्मने नमः । फं नमः परायाहंकारतत्त्वात्मने नमः । पं नमः पराय मनस्तत्त्वात्मने नमः । एतत्त्रितयं हृदि ॥

नं नमः पराय शब्दतत्त्वात्मने नमो मस्तके । धं नमः पराय स्पर्शतत्त्वात्मने नमो मुखे । दं नमः पराय रूपतत्त्वात्मने नमो हृदि । थं नमः पराय रसतत्त्वात्मने नमो गुह्ये । तं नमः पराय गन्धतत्त्वात्मने नमः पादयोः । णं नमः पराय श्रोत्रतत्त्वात्मने नमः कर्णयोः ॥ ढं नमः पराय त्वक्तत्त्वात्मने नमः त्वचि । डं नमः पराय नेत्रतत्त्वात्मने नमो नेत्रयोः ॥ ठं नमः पराय जिह्वातत्त्वात्मने नमो जिह्वायाम् । टं नमः पराय घ्राणतत्त्वात्मने नमो घ्राणयोः ॥ ञं नमः पराय वाक्तत्त्वात्मने नमो वाचि । झं नमः पराय पाणितत्त्वात्मने नमः पाण्योः ॥ जं नमः पराय पादतत्त्वात्मने नमः पादयोः । छं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमो गुह्ये । चं नमः पराय उपस्थतत्त्वात्मने नमो लिङ्गे । ङं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमो मूर्ध्नि । घं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमो मुखे । गं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमो हृदि ॥ खं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमो लिङ्गमूले । कं नमः पराय पृथिवीतत्त्वात्मने नमः पादयोः ॥ ७७ ॥

तथा च दीपिकायाम् : इत्युच्युतीकृततनुर्विदधीत तत्त्वन्यासं मपूर्वकपराक्षरनत्युपेतम् । भूयः पराय च तदाह्वयमात्मने च नत्यन्तमुद्धरत तत्त्वमनुक्रमेण ॥ सकलवपुषि जीवं प्राणमायोज्य मध्ये न्यसतु मतिमहंकारं मनश्चेति मन्त्री । कमुखहृदयगुह्याङ्घ्रिष्वथो शब्दपूर्वं गुणगणमथ कर्णादिस्थितं श्रोत्रपूर्वम् ॥ वागादीन्द्रियवर्गमात्मनि नयेदाकाशपूर्वं गणं मूर्द्धास्ये हृदये शिरे चरणयोर्हृत् पुण्डरीकं हृदि । शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकतत्त्वात्मने नमो हृदि । हं नमः पराय द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलतत्त्वात्मने नमो हृदि । सं नमः पराय षोडशकलाव्याप्तसोममण्डलतत्त्वात्मने नमो हृदि । रं नमः पराय दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलतत्त्वात्मने नमो हृदि । यं नमः पराय परमेष्ठितत्त्वात्मने

वासुदेवाय नमः शिरसि। यं नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने सङ्कर्षणाय नमो मुखे। लं नमः पराय विश्वतत्त्वात्मने प्रद्युम्नाय नमो हृदि। वं नमः परायनिवृत्तितत्त्वात्मने अनिरुद्धाय नमो लिङ्गे। लं नमः पराय सर्व-तत्त्वात्मने नारायणाय नमः पादयोः। क्ष्रौं नमः पराय कोपतत्त्वात्मने नृसिंहाय नमः सर्वगात्रे ॥ ७८ ॥

तथा च गौतमीये : शं-बीजं हृत्पुण्डरीकतत्त्वं हृदि प्रविन्यसेत्। हं-बीजं सूर्यमण्डलतत्त्वं हृदि प्रविन्यसेत्। सं-बीजं चन्द्रमण्डलतत्त्वं हृदि प्रविन्यसेत्। रं-बीजं वह्निमण्डलतत्त्वं तत्र प्रविन्यसेत्। यं-बीजं परमेष्ठि-तत्त्वं वासुदेवञ्च मूर्ध्नि ॥ यं-बीजमथ पुंस्तत्त्वं सङ्कर्षणमथो मुखे। लं बीजं विश्वतत्त्वञ्च प्रद्युम्नञ्च हृदि न्यसेत् ॥ वं-बीजं निवृत्तितत्त्वञ्च अनिरुद्ध-मुपस्थके। लं-बीजं सर्वतत्वञ्च पादे नारायणं न्यसेत् ॥ क्ष्रौं-बीजं कोप-तत्त्वञ्च नृसिंहं सर्वगात्रके। एवं तत्त्वानि विन्यस्य प्राणायामं समाचरेत् ॥ ७९ ॥

फलस्तु तत्रैव : तत्त्वन्यासं ततः कुर्यात्साधकः सिद्धिहेतवे। कृतेन येन देवस्य रूपतामेव यात्यसौ। ततो यथाविधि प्राणायामं कृत्वा पीठन्यासं विधाय केशरेषु पूर्वादि प्रादक्षिण्येन मध्ये च ॐ विमलायै नमः एवं उत्कर्षिण्यै ज्ञानायै क्रियायै योगायै प्रह्व्यै सत्यायै ईशानायै अनुग्रहायै। तदुपरि ॐ नमो विष्णवे भगवते सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः ॥ ८० ॥

तथा च निबन्धे : विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च शक्तयः। प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा नवमी स्मृता ॥ ८१ ॥

पीठमन्त्रोच्चारणमाह : नमो भगवते ब्रूयाद्विष्णवेऽथ पदं वदेत्। सर्व-भूतात्मने वासुदेवायेति वदेत्ततः ॥ सर्वात्मसंयोगपदाद्योगपद्मपदं ततः। पीठात्मने हृदन्तोऽयं मन्त्रस्तारादिको हरेः ॥ ८२ ॥ ततः ऋष्यादि-न्यासः।

तद्यथा : शिरसि साध्यनारायणाय ऋषये नमः। मुखे देवीगायत्री-च्छन्दसे नमः। हृदि श्रीविष्णवे देवतायै नमः।

तथा च : साध्यनारायणः प्रोक्त ऋषिश्छन्द उदाहृतम्। मन्त्रस्य देवी गायत्री देवता विष्णुरव्ययः ॥ ८३ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : क्रुद्धोल्काय अंगुष्ठाभ्यां नमः। महोल्काय तर्जनीभ्यां स्वाहा। वीरोल्काय मध्यमाभ्यां वषट्। अत्युल्काय

अनामिकाभ्यां हुं। सहस्रोल्काय कनिष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु।

तथा च प्रपञ्चसारे : क्रुद्धोल्काय हृदाख्यातं महोल्काय शिरः स्मृतम्। वीरोल्काय शिखा प्रोक्तात्युल्काय कवचं स्मृतम्। सहस्रोल्कायास्त्रमुक्तमङ्गक्लृप्तिरियं मता ॥ ८४ ॥ ततो मन्त्रेण षडङ्गन्यासं कुर्यात्। ॐ हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मों शिखायै वषट्, नां कवचाय हूं, रां नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट्। णां नमो दक्षपार्श्वे, यं नमो वामपार्श्वे ॥ ८५ ॥

तथा च : भूयो वर्णैर्मनोः षड्भिः षडङ्गानि समाचरेत्। अवशिष्टैः पुनर्वर्णैर्विन्यसेत्कुक्षिपार्श्वयोः। ततः ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट् इति मन्त्रेण दिग्बन्धनं कृत्वा मन्त्रन्यासं कुर्यात्।

तथा च : मन्त्रन्यासं ततः कुर्यात्सर्वकामफलप्रदम्। यं विना नैव तत्सम्यगासुरं निष्फलं भवेत् ॥ ८६ ॥

तद्यथा : आधारे ॐ नमः, हृदि नं नमः, वक्त्रे मों नमः, दोर्मूले नां नमः रां नमः, पादयोः यं नमः णां नमः नाभौ यं नमः। एवं कण्ठे नाभौ हृदि कुचयोः पार्श्वयोः पृष्ठे च। मूर्ध्नि आस्ये नेत्रयोः श्रवणयोघ्राणयोः हस्तयोः सन्ध्यंगुलीषु। तथा पादयोः सन्ध्यंगुलीषु। हृदये सप्तधातुषु प्राणेषु।

धातवस्तु : त्वग्सृङ्मांसमेदोस्थिमज्जशुक्राणि धातवः। मूर्ध्नि नेत्रे आस्ये हृदि कुक्षौ ऊर्वोः। जङ्घयोः पादयोर्गण्डयोरंसयोः ऊर्वोः पादयोश्चक्रे शङ्खे गदायां पद्मे च विन्यसेत् ॥ ८७ ॥

तथा च निबन्धे : बद्धदिक्चक्रमन्त्रेण मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेत्। आधारे हृदये वक्त्रे दोःपन्मूलेषु नाभिके। कण्ठे नाभौ हृदि कुचे पार्श्वे पृष्ठे च तत्परम्। मूर्द्धास्यनेत्रश्रवणघ्राणेषु तदनन्तरम्। दोःपादसन्ध्यंगुलीषु धातुप्राणेषु हृत्स्थले। मूर्द्धक्षणास्यहृत्कुक्षिसोरुजङ्घापदद्वये। एकैकशो न्यसेद्वर्णान्गण्डांसोरुपदेषु च। शङ्खचक्रगदाम्भोजपादष्ववहितो न्यसेत् ॥ ८८ ॥

ततो मूर्त्तिपञ्जरन्यासः : ललाटे ॐ अं केशवाय धात्रे नमः। कुक्षौ नं आं नारायणाय अर्यम्ने नमः॥ हृदि मों इं माधवाय मित्राय नमः। गलकूपे भं ईं गोविन्दाय वरुणाय नमः॥ दक्षपार्श्वे गं उं विष्णवे अंशवे नमः। दक्षिणांसे वं ऊं मधुसूदनाय भगाय नमः। गलदक्षिणभागे तें एं त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः। वामपार्श्वे वां ऐं वामनाय इन्द्राय नमः॥

वामांसे सुं ओं श्रीधराय पूष्णे नमः। गलवामभागे दें औं हृषिकेशाय पर्जन्याय नमः। पृष्ठे वां अं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः। ककुदि यं अः दामोदराय विष्णवे नमः। ततो वक्ष्यमाणकिरीटमन्त्रेण व्यापकं कृत्वा शिरसि द्वादशाक्षरमन्त्रं न्यसेत् ॥ ८९ ॥

तथा च निबन्धे : अष्टार्णोऽष्टप्रकृत्यर्थो ज्ञेयः स्याच्चतुरात्मनाम्। संयोगात्सूरीभिः प्रोक्तो विशिष्टो द्वादशक्षरः। अतस्तन्मन्त्रवर्णाद्या द्वादशस्वरसंयुताः॥ द्वादशादित्यसहिता मूर्तीर्द्वादश विन्यसेत्। केशवाद्याः क्रमाद्देहे वक्ष्यमाणविधानतः॥ ललाटे केशवं धात्रा कुक्षौ नारायणं पुनः। अर्यम्णा हृदि मन्त्रेण माधवं कण्ठदेशतः वरुणेन च गोविन्दं पुनर्दक्षिणपार्श्वके। अंशुना विष्णुमंसे स्यात्भगेन मधुसूदनम्॥ गले विवस्वता युक्तं त्रिविक्रममनन्तरम्। वामपार्श्वस्थमिन्द्रेण वामनाख्यमथांसके॥ पूष्णा श्रीधरनामानं गले पर्जन्यसंयुतम्। हृषीकेशाह्वयं पृष्ठे पद्मनाभं ततः परम्॥ त्वष्ट्रा दामोदरं पश्चाद्विष्णुना ककुदि न्यसेत्। द्वादशार्णं महामन्त्रं ततो मूर्ध्नि प्रविन्यसेत्॥ ततः किरीटमन्त्रेण व्यापकं विन्यसेत्ततः॥ ९० ॥

तथा च गौतमीये : द्वादशाक्षरं मन्त्रवरं विन्यसेद्ब्रह्मरन्ध्रके वासुदेवो भवेत्साक्षाद्व्यापितस्तस्य तेजसा। त्रिमात्रिकं समुद्धृत्य नमो भगवते लिखेत्। वासुदेवं चतुर्थ्यां तु मन्त्रोऽयं सुरपादपः॥ अस्य विज्ञानमात्रेण वासुदेवः प्रजायते ॥ ९१ ॥

तत अमुं मन्त्रं पठेत् : चैतन्यामृतवपुरर्ककोटितेजा मूर्ध्निस्थो वपुरखिलं स वासुदेवः। उद्यस्यं सुविमलपाथसीव सिक्तं व्याप्नोति प्रकटितमन्त्रवर्ण सङ्कीर्णम्।

न्यासफलन्तु : तन्मूर्त्तिपञ्जरन्यासोऽभिहितः परमेष्ठिना। सकृन्न्यासाद्भवेन्मन्त्री विष्णुमूर्त्तिरनुत्तमा॥ मूर्तिपञ्जरन्यासस्तु बहुधा। ॐ अं धातृसहितकेशवाय नमः इति केचित्। ॐ अं केशव धातृभ्यां नमः इत्यन्ये। ॐ अं केशवसहित-धात्रे नमः इत्यपरे। तत्र॥ वासुदेवमनोरेकं वर्णं क्लीवविवर्जितम्। स्वरैकं विन्दुसंयुक्तं चतुर्थ्यां केशवादिकम्॥ तथा धात्र्यादिकञ्चोक्त्वा नमो न्यास उदाहृतः। इति नारदीयतन्त्रात् ॐ अं केशवाय धात्रे नमः इति वदन्ति ॥९२॥ ततः ॐ किरीट-केयूरहारमकर-कुण्डल-शङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कित वक्षःस्थल श्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः। इति

मन्त्रेण व्यापकं विन्यस्य मुद्राः प्रदर्श्य ध्यानं कुर्यात् ॥ ९३ ॥

तथा च प्रपञ्चसारे : किरीटकेयूरहारपदान्याभाष्य मन्त्रवित् । मकारान्ते कुण्डलश्च शङ्खचक्रगदादिकम् पद्महस्तपदं प्रोक्त्वा पीताम्बरधरेति च । श्रीवत्साङ्कितमाभाष्य वक्षःस्थलमथो वदेत् । श्रीभूमिसहितं स्वात्मज्योतिर्मयपदं वदेत् । दीप्तमुक्त्वा करायेति सहस्रादित्यतेजसे । हृदन्तः प्रणवादिः स्यात् किरीटादिमनुद्वयम् । एवं न्यासं पुरा कृत्वा ध्यायेन्नारायणं परम् ॥ ९४ ॥

ध्यानं यथा : उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं, चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम् । कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभोद्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसत्श्रीवत्सचिह्नं भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ९५ ॥

तत्र वैष्णवपात्रस्तु गौतमीये : ताम्रपात्रन्तु विप्रर्षे । विष्णोरतिप्रियं मतम् । तथैव सर्वपात्राणां मुख्यं शङ्खं प्रकीर्त्तितम् । मृत्पात्रञ्च तथा प्रोक्तं सौवर्णं राजतन्तथा । पञ्चपात्रं हरेः शुद्धं नान्यत्तत्र नियोजयेत् ॥ ९६ ॥

नैवेद्यदाने तु तत्र : स्वर्णे वा ताम्रपात्रे वा रौप्ये वा पङ्कजे दले इत्यादि ।

भक्तिकल्पद्रुमे : हैरण्यं राजतं कांस्यं ताम्रं मृण्मयमेव वा । पालाशं श्रीहरेः पात्रं नैवेद्ये कल्पयेद्बुधः ।

तथा च पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् : सौवर्णे राजते रौप्ये इत्यादि ॥९७॥ ततः सामान्यपीठपूजानन्तरं विमलादिशक्तिसहितपीठपूजां कृत्वा, पुनर्ध्यात्वा, मूलेन कल्पितमूर्त्तावावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत ।

तद्यथा : अग्निकोणे ॐ क्रुद्धोल्काय हृदयाय नमः । नैर्ऋते महोल्काय शिरसे स्वाहा । वायुकोणे वीरोल्काय शिखायै वषट् । ईशाने अत्युल्काय कवचाय हुं । दिक्षु सहस्रोल्काय अस्त्राय फट् । ततः केशरेषु पूर्वादि ॐ नमः, नं नमः, मों नमः, नां नमः, रां नमः, यं नमः, णां नमः, यं नमः । ततो दलेषु पूर्वादिदिक्षु ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ सङ्कर्षणाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अनिरुद्धाय नमः । आग्नेयादिकोणदलेषु ॐ शान्त्यै नमः; एवं श्रियै, सरस्वत्यै, रत्यै ॥ ९८ ॥

ततोऽष्टदलाग्रेषु पूर्वादिदिक्षु ॐ चक्राय नमः, एवं शङ्खाय गदायै पद्माय कौस्तुभाय मुषलाय खड्गाय वनमालायै । तद्बहिरग्रे ॐ गरुडाय

नमः; दक्षिणे ॐ शङ्खनिधये; वामे ॐ पद्मनिधये; पश्चिमे ॐ ध्वजाय; अग्निकोणे ॐ विघ्नाय, नैर्ऋते ॐ आर्यायै; वायुकोणे ॐ दुर्गायै; ईशाने ॐ सेनान्यै । नमः सर्वत्र । तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपदीपौ दत्त्वा, नैवेद्यं दद्यात् ॥ ९८ क ॥

तद्यथा : नैवेद्यमानीय देवाय मूलेन पाद्यार्घ्याचमनीयं दत्त्वा, फडिति मन्त्रेण नैवेद्यं संप्रोक्ष्य, चक्रमुद्रया अभिरक्ष्य, यं इति मन्त्रेण दोषसमूहं, संशोष्य, रमिति दोषं सन्दह्य, वामकरसौधधाराभिपूर्णं वमित्यमृतीकृतं विभाव्य, मूलमष्टधा जपेत् । ततो वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, गन्धपुष्पाभ्यां नैवेद्यं सम्पूज्य, देवाय मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, कृताञ्जलिः सन् हरिं प्रार्थयेत् । अस्य मुखतो महः प्रसवेदिति विभाव्य, स्वाहान्तं मूलमुच्चार्य, नैवेद्ये जलं दद्यात् । ततो मूलमुच्चार्य एतन्नैवेद्यम् अमुकदेवतायै नमः । ततो नैवेद्यमुद्धृत्य, ॐ निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे इति नैवेद्यं समर्प्य, अमुकदेवतायै एतज्जलम् अमृतोपस्तरणमसीति जलं दत्त्वा, वामहस्तेन ग्रासमुद्रां प्रदर्श्य दक्षिण-हस्तेन प्राणादिमुद्राः प्रदर्शयेत् ।

यथा : ॐ प्राणाय स्वाहा इति कनिष्ठानामिके अंगुष्ठेन स्पृशेत् । ॐ अपानाया स्वाहा इति तर्जनीमध्यमे अंगुष्ठेन स्पृशेत् । ॐ व्यानाय-स्वाहा इति मध्यमानामिके अंगुष्ठेन स्पृशेत् । ॐ उदानाय स्वाहा इति तर्जनीमध्यमानामा अंगुष्ठेन स्पृशेत् । ॐ समानाय स्वाहा इति सर्वाङंगुलीरंगुष्ठेन स्पृशेत् ॥ ९९ ॥ ततोऽगुष्ठाभ्यामनामिकाग्रं स्पृशन् ठौं नमः पराय अन्तरात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि इति नैवेद्ये मुद्राः प्रदर्श्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य, अमुकदेवं तर्पयामि इति चतुर्धा सन्तर्प्य, अमुकदेवतायै एतज्जलं अमृतापिधानमसीति जलं दत्त्वा, तत्तेजो देवतामुखे स्थापयित्वा आचमनीयादिकं दद्यादिति । वैष्णवे तु सर्वत्र नैवेद्यदाने अयं क्रमः । ततः सामान्य पद्धतिक्रमेण विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्य पुरश्चरण षोडशलक्षजपः ।

तथा च : विकारलक्षं प्रजपेन्मनुमेनं समाहितः । तद्दशांशं सरसि-जैर्जुहुयान्मधुराप्लुतैः ॥ १०० ॥

अथ श्रीराममन्त्राः

अनन्तोऽग्न्यासनः सन्दुर्बीजं रामाय हृन्मनुः । षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतां कामदो मणिः ॥ १ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्तपीठन्यासान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि श्रीरामाय देवतायै नमः ॥ २ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, रूं मध्यमाभ्यां वषट्, रैं अनामिकाभ्यां हुं, रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु रां हृदयाय नमः इत्यादि ॥३॥

ततः मन्त्रन्यासः : ब्रह्मरन्ध्रे रां नमः, भ्रुवोर्मध्ये रां नमः, हृदि मां नमः, नाभौ यं नमः, लिङ्गे नं नमः, पादयोः मं नमः ।

ततो मूर्त्तिपञ्जरन्यासादिकं पूर्वोक्तं विधाय ध्यायेत् : कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासीनं, मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि । सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं, पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥ एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ४ ॥

ततः पीठपूजां विधाय वैष्णवोक्तपीठशक्तीः पीठमनुञ्च सम्पूज्य, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत ॥ ५ ॥

देववामपार्श्वे श्रीं सीतायै नमः । अग्रे ॐ शार्ङ्गाय नमः, वामदक्षिणपार्श्वयोः ॐ परेभ्यो नमः, ॐ चापाय नमः । तद्बहिः केशरेषु अग्न्यादि कोणेषु मध्ये दिक्षु च रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् । ॥ ६ ॥

ततो दलेषु पूर्वादिदिक्षु ॐ हनूमते नमः, एवं सुग्रीवाय भरताय विभीषणाय लक्ष्मणाय अङ्गदाय शत्रुघ्नाय जाम्बवते । दलग्रेषु ॐ सृष्टये नमः, एवं जयन्ताय विजयाय सुराष्ट्राय राष्ट्रवर्द्धनाय अकोपाय धर्मपालाय स्वमन्त्राय । ततः इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ७ ॥ अस्य पुरश्चरणं षड्लक्षजपः ।

तथा च : ऋतुलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं कमलैः शुभैः । जुहुयादर्चिते वह्नौ ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ ८ ॥ अयं मन्त्रः षड्विधः ।

तथा च : स्वकामशक्तिवाग्लक्ष्मीताराद्यः पञ्चवर्णकः । षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ९ ॥ ब्रह्मा सम्मोहनः षक्तिर्दक्षिणा-

मूर्त्तिरव्ययः । अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तो मुनयोऽत्र क्रमादिमे ॥ १० ॥
अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रमुनिर्मनोः । छन्दो गायत्रीसंज्ञश्च श्रीरामश्चैव देवता । ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् ॥ ११ ॥

मन्त्रान्तरम् :

जानकीवल्लभं ङेऽन्तं वह्निजाया हुमादिकम् । दशाक्षरोऽयं मन्त्रः स्याद्वसिष्ठः स्यादृषिर्विराट ॥ १२ ॥ छन्दश्च देवता रामः सीतापाणि-परिग्रहः । आद्यं बीजं द्विठः शक्तिः कामेनाङ्गक्रिया मता ॥ १३ ॥ शिरोललाटभ्रूमध्यतालुकण्ठेषु हृद्यपि । नाभ्यूरुजानुपादेषु दशार्णान्विन्य-सेन्मनोः ॥ १४ ॥

ततो ध्यानम् : अयोध्यानगरे रम्ये रत्नसौन्दर्यमण्डपे । मन्दार-पुष्पैराबद्धवितानतोरणान्विते । सिंहासनसमारूढं पुष्पकोपरि राघवम् । रक्षोभिर्हरिभिर्देवैर्दिव्ययानगतैः शुभैः । संस्तूयमानं मुनिभिः सर्वज्ञैः परिशोभितम् । सीतालंकृत वामाङ्गं लक्ष्मणेनोपसेवितम् ॥ श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् । ध्यायन्नेवं जपेन्मन्त्रं वर्णलक्षमनन्यधीः । दशांशं जुहुयाद्बिल्वपुष्पैर्मधुरसंयुतैः । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् ॥ १५ ॥

मन्त्रान्तरम् : वह्निर्नारायणेनाढ्यो जठरः केवलस्तथा । द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ १६ ॥ श्रीमायामन्मथैकैकबीजाद्यन्तगतो मनुः । चतुर्वर्णः स एव स्यात्षड्वर्णो वाञ्छितप्रदः ॥ स्वाहान्तो हुंफडन्तो वा नमोऽन्तो वा भवेन्मनुः । तारमायारमानङ्गवाक्स्वबीजैस्तु षड्विधः ॥ त्र्यक्षरो मन्त्रराजः स्यात्सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ १७ ॥

द्व्यक्षरश्चन्द्रभद्रान्तो मन्त्रोऽयं चतुरक्षरः । रामाय हृन्मनुः प्रोक्तो मन्त्रः पञ्चाक्षरः परः ॥ पञ्चाशन्मातृकावर्णप्रत्येकपूर्वको मनुः । लक्ष्मी-वाङ्मन्मथादिश्च तारादिः स्यादनेकधा ॥ तेन अं रामाय नमः इत्यादि षडक्षरः । वह्निस्थं शयनं विष्णोरर्द्धचन्द्रविभूषितम् ॥ एकाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्त्रराजः सुरद्रुमः । ब्रह्मा ऋषिः स्याद्गायत्रीच्छन्दो रामश्च देवता ॥ १८ ॥ एकाक्षरे तु द्वादशलक्षजपः पुरश्चरणम् ।

तथा च : भानुलक्षं जपेन्मन्त्रं इति वचनात् । अन्येषां षड्लक्षजप इति विशेषः ॥ एतेषां ध्यानपूजादिकं प्रागुक्तषडक्षरवत् ॥ १९ ॥

अथ श्रीकृष्णमन्त्राः

गोपीजन पदस्यान्ते वल्लभाय द्विठावधिः । अयं दशाक्षरो मन्त्रो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥ अयं मन्त्रः कामबीजादिः । राशिनक्षत्रविचारे

पुनर्बीजरहितेन विचारः ॥ १ ॥ बीजपूर्वो जपश्चास्य रहस्यं कथितं मुने । लुप्तबीजस्वभावत्वाद्दशाक्षर इहोच्यते ॥ इति गौतमीयात् ॥ २ ॥

तथा च बृहद्गौतमीये : भोगमोक्षैकनिलयो लुप्तबीजो दशाक्षरः । उद्धरेत्तु पृथक्त्वेन कामबीजं महामुने तद्योगात्फलदो मन्त्रो नान्यथा सिद्धये भवेत् ॥ ३ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : विष्णुमन्त्रोक्तवैष्णवाचमनं कृत्वा प्रातःकृत्यादि तत्त्वन्यासन्तं कर्म विधाय प्राणायामं कुर्यात् ।

तथा च गौतमीये : एवं तत्त्वानि विन्यस्य प्राणायामत्रयं चरेत् । कामबीजस्यैकवारजपेन दक्षिणनासया वायुं रेचयेत् । पुनः सप्तवारजपेन वामनासया वायुं पूरयेत् । ततो नासापुटौ धृत्वा विंशतिवारजपेन वायुं कुम्भयेत् । पुनर्वामनासया रेचयेत्, दक्षिणेन पूरयेत् उभाभ्यां कुम्भयेत् । पुनर्दक्षिणेन रेचयेत्वामेनापूर्य उभाभ्यां कुम्भयेत् ।

तथा च : एकेन रेचयेत्कामबीजेनैव पृथक्पृथक् । पूरयेत्सप्तजप्तेन विंशत्या तेन धारयेत् । सर्वेषु कृष्णमन्त्रेषु बीजेनानेन वा जपेत् । यद्वा मूलेनैव मन्त्रेण सर्वत्र प्राणायामः ॥ ४ ॥

तदुक्तं क्रमदीपिकायाम् : पवनसंयमनस्त्वमुनाचरेत्यमिह जप्तुमासौ मनुमिच्छति । यदि दशाक्षर जपत्ति तदा दशाक्षरेण चेत्तत्र चाष्टाविंशति-वारं रेचयेत् । पूरयेद्वामतस्तद्वद्धारयेत्तत्प्रमाणतः । प्राणायामे भवेदेको रेचकपूरककुम्भकैः । अष्टादशाक्षरेण चेद्द्वादशैवं समाचरेत् । अन्यमनु-भिर्वर्णानुरूपमित्युक्तत्वात् । तत्तन्मन्त्रवर्णसंख्याकै रेचकादित्रयं कुर्यात् । ॥ ५ ॥ रेचयेन्मारुतं दक्षया दक्षिणः पूरयेद्वामया मध्यमाभ्यां पुनर्धारये-दित्यादि । एतत्तु श्रीकृष्णमन्त्रविषयं, नान्यत्र ॥ ५ क ॥

ततः पीठन्यासं विधाय केशरेषु मध्ये च विमलादिपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥

तद्यथा : शिरसि नारदऋषये नमः, मुखे विराटछन्दसे नमः, हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः, गुह्ये क्लीं बीजाय नमः, पादयोः स्वाहा शक्तये नमः । मन्त्राधिष्ठातृदेवतायै दुर्गायै नमः इति दुर्गां नमस्कुर्यात् । ॥ ६ ॥

ततः प्रणवपुटितं मूलमन्त्रं करयोर्मध्ये पृष्ठे पार्श्वे च त्रिशो विन्यस्य प्रणवपुटितान् सबिन्दून्मूलवर्णान् अंगुलीनां पर्वसु नमोऽन्तेन न्यसेत् ।

तद्यथा : दक्षिणांगुष्ठे त्रिषु पर्वसु ॐ गों ॐ नमः। दक्षिणतर्जन्यां ॐ पीं ॐ नमः। दक्षिणमध्यमायां ॐ जं ॐ नमः। दक्षिण अनामिकायां ॐ नं ॐ नमः। दक्षिणकनिष्ठायां ॐ वं ॐ नमः। वामकनिष्ठायां ॐ ह्लं ॐ नमः। वामानामिकायां ॐ भां ॐ नमः। वामामध्यमायां ॐ यं ॐ नमः। वामतर्जन्यां ॐ स्वां ॐ नमः। वामांगुष्ठे ॐ हां ॐ नमः। अयंतु सृष्टिन्यासः। एवं दक्षिणांगुष्ठपूर्वा वामकनिष्ठान्ता स्थितिः। संहृतिश्च वामांगुष्ठादिदक्षिणांगुष्ठान्ता। पुनः सृष्टिस्थितीति पञ्चधा कुर्यात् ॥ ७ ॥

तथा च गौतमीये : संहृतिर्दोषसङ्घानां हारिणी परिकीर्त्तिता। विद्याप्रदश्च सृष्ट्यन्तो वर्णिनां शुद्धचेतसाम्। स्थित्यन्तः स्याद्गृहस्थानां त्रयं कामानुरूपतः॥ सहजानो वानप्रस्थे स्थित्यन्तं कश्चिदिच्छति। संहारान्तो मुनोनाञ्च विरक्तस्य च सर्वशः॥ अशक्तश्चेदेकमात्रं कुर्यात्।

तथा च : न्यासत्रयं सदा कुर्यादशक्तावेक एव हि। इति गौतमीयात् ॥ ८ ॥ ततः स्थितिक्रमेणांगुलीषु दशाक्षराणि विन्यसेत्।

तद्यथा : प्रणवपुटितं सर्वत्र। गां नमो दक्षांगुष्ठे। पीं नमस्तर्जन्याम्। जं नमो मध्यमायाम्। नं नमोऽनामिकायाम्। वं नमः कनिष्ठायाम्। ह्लं नमो वामांगुष्ठे। भां नमो वामतर्जन्याम्। यं नमो वाममध्यमायाम्। स्वां नमो वामानामिकायाम्। हां नमो वामकनिष्ठयां। ततः करयोरंगुलीषु पञ्चाङ्गन्यासः।

यथा आचक्राय स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः। विचक्राय स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा। सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं। असुरान्तकचक्राय स्वाहा कनिष्ठाभ्यां फट्। ॥ ९ ॥

ततो मूलमन्त्रपुटितान् सविन्दून्मातृकावर्णान् मातृकास्थानेषु न्यसेत्। ततः प्रणवपुटितं मूलमन्त्रं आकेशादापादम् आपादादाकेशं क्रमात्त्रिवार विन्यस्य संहारसृष्टिभेदेन दशतत्त्वानि विन्यसेत्।

तथा च क्रमदीपिकायाम् : संहृतावनुगतो मनुवर्यः सृष्टिवर्त्मनि भवेत् प्रतियातः। उद्धृतिः खलु पुरोक्तवदेषां न्यासकर्म कथयाम्यधुनेति ॥

तद्यथा : पादयोः गों नमः पराय पृथिवीत्त्वात्मने नमः। लिङ्गे पीं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः। हृदि जं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने

नमः । मुखे नं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः । शिरसि वं नमः पराया-काशतत्त्वात्मने नमः । ळं नमः परायाहङ्कारतत्त्वात्मने नमः । भां नमः पराय महत्तत्त्वात्मने नमः । एतद्द्वयं हृदिन्यस्यमिति । यं नमः पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः स्वां नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने नमः । ह्रां नमः पराय परतत्त्वात्मने नमः । एतत्त्रितयं सर्वगात्रे । इति संहारन्यासः ।

अथ सृष्टिन्यासः : ह्रां नमः परायपरतत्त्वात्मने नमः । स्वां नमः पराय-पुरुषतत्त्वात्मने नमः । यं नम पराय प्रकृतितत्त्वात्मने नमः । एतत्त्रितयं सर्वगात्रे । हृदि भां नमः पराय महत्तत्वात्मने नमः । ळं नमः पराया-हङ्कारतत्त्वात्मने नमः । शिरसि वं नमः परायाकाशतत्त्वात्मने नमः । मुखे नं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः । हृदि जं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नम. । लिङ्गे पीं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः । पादयोः गों नमः पराय पृथिवीतत्त्वात्मने नमः । इति सृष्टिन्यासः ॥ १० ॥

सृष्ट्यादिन्यासे अंगुलिनियमो निबन्धे : शिरसि विहिता मध्या सैवाक्षिण तर्जनिकान्विता । श्रवसि रहितांगुष्ठा ज्येष्ठान्वितोपकनिष्ठिका । नसि वदने सर्वाः सज्यायसी हृदि तर्जनी । प्रथमयुता मध्यमा नाभौ श्रवणि विहिता लिङ्गे । ता एवांगुलयो जान्वोः सांगुष्ठास्तु पदद्वये । स्थानार्णयोर्विनिमयोनांगुलिस्थानयोर्भवेत् ।

तद्यथा : शिरसि गों नमो मध्यमांगुल्या । नेत्रयोः पीं नमस्तर्जनी-मध्यमाभ्याम् । कर्णयोः जं नमः अंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । घ्राणे नं नमोऽंगुष्ठानामिकाभ्यांम् । मुखे वं नमः सर्वांगुलीभिः । हृदि ळं नमोऽंगु-ष्ठतर्जनीभ्याम् । नाभौ भां नमः अंगुष्ठमध्यमाभ्याम् । लिङ्गे यं नमोऽंगु-ष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । जानुनोः स्वां नमोऽंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । पादयोः ह्रां नमः सर्वांगुलीभिः । इति सृष्टिक्रमः ।

अथ स्थितिक्रमः : हृदि गों नमोऽंगुष्ठतर्जनीभ्याम् । नाभौ पीं नमोऽंगुष्ठमध्यमाभ्याम् । लिङ्गे जं नमोऽंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । जानुनोः नं नमोऽंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । पादयोः वं नमः सर्वांगुलीभिः । शिरसि ळं नमो मध्यमया । नेत्रयोः भां नमो मध्यमातर्जनीभ्याम् । कर्णयोः यं नमोऽंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । घ्राणे स्वां नमोऽंगुष्ठानामिका-भ्याम् । मुखे ह्रां नमः सर्वांगुलीभिः ।

अथ संहारक्रमः : पादयोः गों नमः सर्वांगुलीभिः । जानुनोः पीं नमः अंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । लिङ्गे जं नमोऽंगुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः ।

नाभौ नं नमोऽङ्गुष्ठमध्यमाभ्याम् । हृदि त्रं नमोऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम् । मुखे क्षं नमः सर्वांगुलीभिः । घ्राणे भां नमोऽङ्गुष्ठानामिकाभ्याम् । कर्णयो यं नमोऽङ्गुष्ठरहिताभिरंगुलीभिः । नेत्रयोः स्वां नमो मध्यमातर्जनीभ्याम् । मूर्ध्नि हां नमो मध्यमांगुल्या । इति संहारक्रमः । पुनः सृष्टिस्थिती विन्यसेत् ।

तथा च : विद्यार्थी ब्रह्मचारी च पुनः सृष्टिं समाचरेत् । गृहस्थश्च पुनः सृष्टिस्थिती कुर्याद्विशेषतः । यतिर्वैराग्ययुक्तश्च संहारान्तं न्यसेत्ततः । एतेन विद्यार्थिब्रह्मचारिणां चतुर्द्धा गृहस्थानां पञ्चधा । यतिविरक्तादीनाञ्च त्रिधा न्यासः ॥ १० क ॥

तथा च निबन्धे : न्यासः संहारान्तो मस्करिवैखानसेषु विहितोऽयम् । स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्ट्यन्तो वर्णिनामितिप्राहुः । वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारान्तं केचिदाहुराचार्याः । सहजानौ वनवासिनि स्थितिश्च विद्यार्थिनां तथा सृष्टिः ॥ केचित्तु न्यासत्रये विपर्यासमामनन्ति, तेन सर्वैरेव त्रिधा न्यासः कर्त्तव्यः ॥ ११ ॥

अथ विभूतिपञ्जरन्यासः । निबन्धे : वक्ष्म्यपरं न्यासवरं विभूत्यभिधं भूतिकरम् । मन्त्रदशावृत्तिमयं गुप्ततमं मन्त्रिवरैः ॥

तद्यथा : आधारे गों नमः, लिङ्गे पीं नमः, नाभौ जं नमः, हृदि नं नमः, गले वं नमः, मुखे क्षं नमः, अंसयोः भां नमः यं नमः, ऊर्वोः स्वां नमः, हां नमः, कन्धरायां गों नमः, नाभौ पीं नमः, कुक्षौ जं नमः, हृदि नं नमः, स्तनयोः वं नमः, क्षं नमः, पार्श्वयोः भां नमः, यं नमः, श्रोण्योः स्वां नमः, हां नमः । शिरसि गों, मुखे पीं, नेत्रयोः जं नं, कर्णयोः वं, क्षं, नासापुटयोः भां यं, कपोलयोः स्वां हां । एवं दक्षिणकरस्य मूलसन्ध्यग्रकेषु पञ्च, तदंगुलीषु पञ्च । वामकरमूलसन्ध्यग्रकेषु पञ्च, तदंगुलीषु पञ्च । एवं दक्षिणपादमूलसन्ध्यग्रकेषु पञ्च, तदंगुलीषु पञ्च । वामपादमूलसन्ध्यग्रकेषु पञ्च, तदंगुलीषु पञ्च । मूर्ध्नि गों, तत्पूर्वे पीं, तद्दक्षिणे जं, तत्पश्चिमे नं, तदुत्तरे वं, मूर्ध्नि क्षं, भुजयोः भां यं, ऊर्वोः स्वां हां । शिरसि गों, नेत्रयोः पीं, मुखे जं, कण्ठे नं, हृदि वं, जठरे क्षं, मूलाधारे भां, लिङ्गे यं, जानुयोः स्वां, पादयोः हां । श्रोत्रयोः गों, गण्डयोः पीं, अंसयोः जं, स्तनयोः नं, पार्श्वयोः वं, लिङ्गे क्षं, ऊर्वोः भां, जानुनोः यं, जङ्घयोः स्वां, पादयोः हां । एतानि नमोऽन्तानि विन्यसेत् ॥ १२ ॥

तत्र क्रमो गौतमीये : हस्तमूलादि सृष्टिः स्यान्मणिबन्धात् स्थितिः

स्मृता। अंगुल्यग्रात्संहृतिश्च स्थित्यन्तं त्रितयं न्यसेत् ॥ ततः पूर्ववन्मूर्त्ति-पञ्जरन्यासः। ततः पूर्ववन्मूर्त्तिपञ्जरस्यैव सृष्टिस्थिती। ततो दशाङ्ग-पञ्चाङ्गन्यासौ।

तद्यथा : हृदि गों, शिरसि पीं, शिखायां जं, सर्वाङ्गे नं, दिक्षु वं, दक्षपार्श्वे ह्लं, वामपार्श्वे भां, कटिदेशे यं, पृष्ठे स्वां, मूर्ध्नि हां।

ततः पञ्चाङ्गन्यासः यथा : आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः। विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा। सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्। त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा। कवचाय हुं असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्।

ततो नारायणमन्त्रोक्त-किरीट-केयूरेत्यादिमन्त्रेण व्यापकं विधाय वेणुबिल्वादिमुद्रां प्रदर्श्य ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फडिति मन्त्रे दिग्बन्धनं कुर्यात्। किरीटादिन्यासस्तु सर्वत्र विष्णुमन्त्रे ॥ १२ ॥

ततो ध्यायेत् : स्मेरद्वृन्दावने रम्ये मोहयन्तमनारतम्। गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं गोपकन्याः सहस्रशः। आत्मनो वदनाम्भोजे प्रेरिताक्षि-मधुव्रताः। पीडिताः कामबाणेन चिरमाश्लेषणोत्सुकाः। मुक्ताहार-लसत्पीनतुङ्गस्तनभारनताः। स्रस्तधम्मिल्लवसना मदस्खलितभाषणाः। दन्तपंक्तिप्रभोद्भासि-स्पन्दमानाधराञ्चिताः। विलोभयन्तीर्विविधैर्विभ्र-मैर्भावगर्वितैः। फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं, श्रीवत्साङ्क-मुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्। गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसङ्घावृतं, गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात्।

ततो वैष्णवोक्तपीठमन्त्वन्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाह-नादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय देवशरीरे सृष्टि-स्थितिदशाङ्ग-पञ्चाङ्गन्यासक्रमेण पूजयेत्। ततो मुखे ॐ वेणवे नमः, हृदि ॐ वनमालायै नमः ॐ कौस्तुभाय नमः ॐ श्रीवत्साय नमः। ततः अपरं पञ्चपुष्पाञ्जलिं दद्यात्। शुक्लचन्दनपङ्किलां श्वेततुलसीं रक्त-चन्दनपङ्किलां रक्ततुलसीं मूलेन दक्षिणवामपार्श्वयोर्दद्यात्। तथा तुलसीद्वयं करवीरद्वयं पद्मद्वयञ्च शिरसि दद्यात्। सर्वाणि पुष्पाणि सर्वतनौ दद्यात्।

तथा च गौतमीये : दक्षिणे वासुदेवाख्यं स्वच्छं चैतन्यमव्ययम्। वामे च रुक्मिणी रक्ता नित्या रजोगुणान्विता। तुलसीयुगलं पार्श्वद्वय

गन्धद्वयान्वितम्। हयारियुगलं पार्श्वद्वये दक्षिणवामके। पञ्चपुष्पं मूर्ध्नि देशे मूलेन दक्षवामके। षड्भिः सर्वतनौ दद्यात्पुनः शिरसि सर्वतः। तत आवरणं पूजयेत्। पूर्वे ॐ दामाय नमः, दक्षिणे ॐ सुदामाय नमः, पश्चिमे ॐ वासुदेवाय नमः, उत्तरे ॐ किङ्किण्यै नमः, केशरेषु अग्न्यादि-कोणे ॐ आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, नैर्ऋते ॐ विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा, वायुकोणे ॐ सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, ईशाने ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, चतुर्दिक्षु ॐ असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्। ततः पत्रेषु पूर्वादि ॐ रुक्मिण्यै नमः, एवं सत्य-भामायै नाग्नजित्यै सुनन्दायै मित्रविन्दायै सुलक्षणायै जाम्बवत्यै सुशीलायै। पत्राग्रेषु पूर्वादि ॐ वसुदेवाय नमः, एवं देवक्यै नन्दाय यशोदायै बलभद्राय सुभद्रायै गोपेभ्यः गोपीभ्यः। तद्बाह्ये मध्ये च पूर्वादिक्रमेण ॐ मन्दाराय नमः, एवं सन्तानकाय पारिजाताय कल्प-वृक्षाय हरिचन्दनाय। तद्बाह्ये इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत्। ततः कृष्णाष्टकं पूजयेत्। ॐ श्रीकृष्णाय नमः, एवं वासुदेवाय देवकीनन्दनाय नारायणाय यदुश्रेष्ठाय वार्ष्णेयाय धर्मसंस्थापनाय असुराक्रान्तभार-हारिणे। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। अशक्तश्चेदङ्गं वज्रादींश्च पूजयेत्॥

तथा च गौतमीये : अथवाङ्गं दिक्पतिभिस्तदस्त्रैरपि चार्चयेत्। एवमभ्यर्चयन्कृष्णं काममुक्त्योः स भाजनम्। एतद्यजनाशक्तश्चेत्कृष्णा-ष्टकेन पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्॥ १५॥

अस्य पुरश्चरणं दशलक्षजपः। तथा च : दशलक्षमक्षयफलप्रदं मनुं प्रतिजप्य निर्मलमतिर्दशाक्षरम्। जुहुयात्सिताज्यमधुरप्लुतैर्नवैररुणा-म्बुजैर्हुताशने दशायुतम्॥ १६॥ अथ शुषिरयुगलवर्णं चेन्मनुं पञ्चलक्षं प्रजपेत्तु जुहुयाच्च प्रोक्तक्लृप्तार्द्धलक्षम्। अमलमतिरभावे पायसैरम्बुजानां ससितघृतसुसिक्तैरारभेद्धोमकर्म॥ १७॥

श्रीकृष्णस्य त्रयोदशाक्षर मन्त्राः

दशाक्षरादौ श्रीमायाकामः मायाश्रीकामः काममायाश्रीस्त्रिविध-स्त्रयोदशाक्षरो भवति॥

तथा च : श्रीशक्तिमारपूर्वश्च शक्तिश्रीमारपूर्वकः कामशक्तिरमापूर्वो दशार्णो मनवस्त्रयः॥ इति सनत्कुमारवचनात्॥ १८॥

एतेषां पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि-वैष्णवोक्तपीठन्यासान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥

तद्यथा : शिरसि नारदऋषये नमः, मुखे विराड्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः ।

ततः कराङ्गन्यासौ : आचक्राय स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः, आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, इत्यादि दशाक्षरवद्विन्यसेत् । ततः फलार्थी चेद्दशतत्त्वमूर्त्तिपञ्जरौ न्यसेत् । ततः किरीटमन्त्रेण व्यापकं विधाय यथाशक्ति मुद्रां प्रदर्श्य ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फडिति दिग्बन्धनं विधाय ध्यायेत् ॥ १९ ॥ आद्ये मनौ दशाक्षरवद्ध्यानं द्वितीये रत्नाभिषेकवत् ।

तृतीये तु ध्यानम् : शङ्खचक्रधनुर्बाणपाशांकुशधरोऽरुणः । वेणुं धमनधृतो दोर्भ्यां ध्येयः कृष्णो दिवाकरे ॥२०॥ गौतमीयमते तु अत्रापि दशाक्षरवद्ध्यानम् ।

तथा च : रमादिकामादिमन्त्रद्वयमधिकृत्य, अनयोर्मन्त्रयोर्मन्त्री आचक्राद्यैः षडङ्गकम् । कुर्याद्दशार्णवत्सर्वं ध्यानपूजादिकं सुधीः । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ २१ ॥

ततो वैष्णवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं पूर्वोक्त वेण्वादिपूजनञ्च विधाय आवरणपूजामारभेत । अस्यावरणानि अङ्गेन्द्रवज्रादीनि । ततः कृष्णाष्टकं सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥२२॥ एतेषां पुरश्चरणं पञ्चलक्षजपः ।

तथा च : पञ्चलक्षं जपेत्तावदयुतं पायसेन च । जुहुयात् संस्कृते वह्नौ मन्त्री सर्वार्थसिद्धये ॥ २३ ॥

मन्त्रान्तरम्

कृष्णायपदमाभाष्य गोविन्दाय ततः परम् । गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभाय द्विठावधि । कामबीजादिराख्यातो मनुरष्टादशाक्षरः ॥२४॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि नारदऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि कृष्णाय देवतायै नमः । गुह्ये क्लीं बीजाय नमः । पादयोः स्वाहा शक्तये नमः । ततः प्रणवपुटितं मन्त्रं त्रिशः करयोर्व्याप्य कराङ्गन्यासौ कुर्यात् । क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । गोविन्दाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । गोपीजन

मध्यमाभ्यां वषट् । वल्लभाय अनामिकाभ्यां हुम् । स्वाहा कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु । ततो मूलेन मूर्धादिपादपर्यन्तं त्रिशो व्याप्य आपादादिमूर्द्धपर्यन्तं प्रणवेन सकृद्व्याप्य मंत्रन्यासं कुर्यात् । मूर्ध्नि ललाटे भ्रूमध्ये कर्णयोश्चक्षुषोर्घ्राणयोर्वदने ग्रीवायां हृदि नाभौ कट्यां लिङ्गे जानुनोः जङ्घयोः एषु स्थानेषु प्रत्येकमन्त्रवर्णान् नमोऽन्तान्न्यसेत्, शिरसि प्रणवञ्च न्यसेत् ॥ २५ ॥

ततो नयन-मुख-हृदय-गुह्यांघ्रिषु मन्त्रस्य पदपञ्चकं नमोऽन्तं न्यसेत् । पदपञ्चकञ्च चतुश्चतुस्तथा द्वयम् । ततोऽङ्गन्यासं कुर्यात् । क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः । गोविन्दाय शिरसे स्वाहा । गोपीजन शिखायै वषट् । वल्लभाय कवचाय हुं । स्वाहा अस्त्राय फट् ।

तथा च : चतुःकरणवेदाब्धिनेत्रसंख्याक्षरैः क्रमात् । पञ्चाङ्गानि मनोः कुर्यान्मन्त्रविज्जाति संयुतैः । नमः स्वाहा-वषट्-वौषट्-हुं-फडन्ताश्च जातयः ।

ततो दशतत्त्वमूर्तिपञ्जरन्यासौ विधाय किरीटमन्त्रेण व्यापकं यथाशक्ति मुद्रां बद्धा ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फडिति दिग्बन्धनं कृत्वा दशाक्षरोक्तं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कृत्वा वैष्णवोक्त पीठमन्वन्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय क्लीमित्याद्यक्षरैस्तत्तदङ्गेषु न्यासक्रमेण क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः इत्यादिना अङ्गमन्त्रेण सम्पूज्य च पुनः पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दद्यात् । ततो वेण्वादिपूजनं कृत्वा दशाक्षरोक्तावरणपूजाञ्च कृत्वा धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्य पुरश्चरणं दशाक्षरपटलोक्तम् ॥ २६ ॥

मन्त्रान्तरम्

शक्तिश्रीपूर्वकश्चाष्टादशार्णो विंशदक्षरः ॥ २७ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्त पीठमन्वन्तं पीठन्यासं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः, गुह्ये क्लीं बीजाय नमः, पादयोः स्वाहा शक्तये नमः ।

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रीं श्रीं क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । कृष्णाय तर्जनीभ्यां स्वाहा । गोविन्दाय मध्यमाभ्यां वषट् । गोपीजन अनामिका-

भ्यां हुं। वल्लभाय कनिष्ठाभ्यां वौषट्, स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु ॥ २८ ॥

ततो मूलने व्यापकं कृत्वा मन्त्रपुटितान् मातृकावर्गान् तत्तत्स्थानेषु (ललाटादिषु) न्यसेत्। ततो दशतत्त्वानि विन्यस्य पुनर्मूलेन व्यापकं कुर्यात् ॥ २९ ॥

ततो मन्त्रन्यासः : मूर्ध्नि ह्लीं नमः, ललाटे श्रीं नमः, भ्रूमध्ये क्लीं नमः, नेत्रयोः कृं नमः, कर्णयोः ष्णां नमः, नसोः यं नमः, वदने गों नमः, चिबुके विं नमः, कण्ठे न्दां नमः, दोर्मूले यं नमः, हृदि गों नमः, उदरे पीं नमः, नाभौ जं नमः, लिङ्गे नं नमः, आधारे वं नमः, कट्यां ल्लं नमः, जान्वोः भां नमः, जङ्घयोः यं नमः, गुल्फयोः स्वां नमः, पादयोः हां नमः। इति सृष्टिः।

हृदि ह्लीं, उदरे श्रीं, नाभौ क्लीं, लिङ्गे कृं, आधारे ष्णां, कट्यां यं, जान्वोः गों, जङ्घयोः विं, गुल्फयोः न्दां, पादयोः यं, मूर्ध्नि गों, कपाले पीं, भ्रूमध्ये जं, नेत्रयोः नं, कर्णयोः वं, नसोः ल्लं, वदने भां, चिबुके यं, कण्ठे स्वां, दोर्मूले हां। इति स्थितिः।

पादयोः ह्लीं, गुल्फयोः श्रीं, जङ्घयोः क्लीं, जान्वोः कृं, कट्यां ष्णां, आधारे यं, लिङ्गे गों, नाभौ विं, उदरे न्दां, हृदि यं, दोर्मूले गों, कण्ठे पीं, चिबुके जं, वदने नं, नसोः वं, कर्णयोः ल्लं, नेत्रयोः भां, भ्रूमध्ये यं, ललाटे स्वां, मस्तके हां। सर्वत्र नमोऽन्तान् न्यसेत्। इति संहारन्यासः।

पुनः सृष्टिस्थिती कृत्वा मूर्त्तिपञ्जरं विन्यस्य मूर्त्तिपञ्जरस्य सृष्टि-स्थिती विन्यस्य षडङ्गानि न्यसेत्।

ह्लीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः। कृष्णाय शिरसे स्वाहा। गोविन्दाय शिखायै वषट्। गोपीजन कवचाय हुं। वल्लभाय नेत्राभ्यां वौषट्। स्वाहा अस्त्राय फट्।

तथा च : सृष्टिस्थिती च विन्यस्य षडङ्गानि समाचरेत्। गुणाग्नि वेदकरणकरणाक्ष्यक्षरैर्मनोः ॥ ३७ ॥

ततः पूर्ववन्मुद्रादिदर्शनं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा किरीटमन्त्रेण व्यापकं विधाय यथाशक्ति मुद्रां बध्वा ध्यायेत् ॥ ३१ ॥ (श्रीकृष्ण यन्त्रम् चित्र २३-१,२,३)

तद्यथा : द्वारावत्यां सहस्रार्कभासुरैर्भवनोत्तमैः। अनल्पैः कल्प-वृक्षैश्च परीते मणिमण्डपे। ज्वलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुड्यके।

फुल्लस्रगुल्लसच्चित्रवितानालम्बिमौक्तिके । पद्मरागस्थलीराजद्रत्ननद्योश्च मध्यतः । अनारतगलद्रत्नधारस्य स्वस्तरोरधः । रत्नदीपावलीभिश्च प्रदीपितदिगन्तरे । उद्यदादित्यसङ्काशमणिसिंहासनाम्बुजे । समासीनोऽच्युतो ध्येयो द्रुतहाटकसन्निभः । समानोदित-चन्द्रार्क-तडित्-कोटि समद्युतिः । सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः । पीतवासाश्चक्र-शङ्खगदापद्मोज्ज्वलद्भुजः । अनारतच्छलद्रत्नधारौघकलसं स्पृशन् । वामपादाम्बुजाग्रेण मुष्णता पल्लवच्छविम् । रुक्मिणीसत्यभामे द्वे मूर्ध्नि रत्नौघधारया । सिञ्चन्त्यौ दक्षवामस्थे स्वदोःस्थकलसोत्थया । नाग्न-जिती सुनन्दा च दिशन्त्यौ कलसौ तयोः । ताभ्याञ्चदशवामस्थे मित्र-विन्दासुलक्षणे । रत्ननद्योः समुद्धृत्य रत्नपूर्णौ घटौ तयोः । जाम्बवती सुशीला च दिशन्त्यौ दक्षवामके । बहिःषोडश साहस्र्यसंख्याताः परितः प्रियाः । ध्येयाः कनकरत्नौघधाराम्बुकलसोज्वलाः । तद्बहिश्चाष्टनिधयः पूरयन्तो धनैर्धराम् । तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे पुरोवच्चसुरादयः ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ३२ ॥

अस्य पूजायन्त्रम : षट्कोणमध्यमष्टदलपद्मं विलिख्य षट्कोणमध्ये तु ससाध्यं कामबीजं विलिख्य अवशिष्टैः सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् । ततः षट्कोणस्य प्राग्रक्षोऽनिलकोणेषु श्रीबीजं अवशिष्टेषु भुवनेश्वरीं लिखेत् । ततः षट्सन्धिषु क्लीं कृष्णाय नमः इति षड्वर्णान् लिखेत् । ततः केशरेषु कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् । इति गायत्र्यास्त्रीणि त्रीण्यक्षराणि पूर्वादिक्रमेण विलिखेत् । ततः पत्रेषु पूर्वादिक्रमेण नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा इति माला-मन्त्रस्य षट्षडक्षराणि दलेषु विलिखेत् ।

मालामन्त्रमाह शारदायाम् : नमोऽन्ते कामदेवाय वदेत् सर्व-जनन्ततः । प्रियाय सर्ववर्णान्ते जनसम्मोहनाय च । ज्वलद्वयं प्रज्वलान्तं वदेत् सर्वजनस्य च । हृदयं ममशब्दान्ते वशं कुरुयुगं शिरः । मालामनु-रयञ्चाष्टचत्वारिंशतिकाक्षरैः ॥ तद्बाह्ये मातृकया संवेष्टयेत् । ततो भूबिम्बे दिक्षु च श्रीबीजं विदिक्षु मायाबीजं विलिखेत् । तद्बाह्ये अष्ट-वज्राणि लिखेत् ।

तथा च : विलिप्य गन्धपङ्केन लिखेष्टदलाम्बुजम् । कर्णिकायान्तु षट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम् ॥ शिष्टैस्तं सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् स्मरम् ॥

प्राग्रक्षोऽनिलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु संविदम् ॥ षडक्षरं षट्सन्धिषु केशरेषु त्रिशस्त्रिशः ॥ विलिखेत् स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दलाष्टके ॥ षट्शः संलिख्य तद्वाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः । भूविम्बञ्च लिखेद्वाह्ये श्रीमाये दिग्विदिक्ष्वपि ॥ भूगृहं चतुरस्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम् । एतद्यन्त्र-मष्टादशाक्षर-द्वाविंशत्यक्षर-द्वादशाक्षर-दशाक्षर-चतुर्दशाक्षर-एकादशाक्ष-राणामिति ॥ ३३ ॥

यत्तु : पद्ममष्टपलाशन्तु चतुरस्रं सुलक्षणम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं काम-गर्भितकर्णिकम् ॥ सामान्ययन्त्रमुद्दिष्टमष्टादशाक्षरे शृणु ॥३०॥

चतुरस्रं चतुर्द्वारं पद्ममष्टदलान्वितम् । षट्कोण गर्भकामाख्यं सप्तदशार्ण-वेष्टितम् । षडक्षरं मनुवरं षट्कोणे विलिखेत्ततः । इति गौतमीये अष्टादशाक्षरदशाक्षरयोर्यद्विशेषमुक्तं तदशक्तविषयम् । अन्यथा तापिन्यादिविरोधः स्यात् ॥ ३५ ॥

ततः पूर्वोक्तपीठमन्वन्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय सृष्टिं स्थितिं षडङ्गञ्च सम्पूज्य ॐ किरीटाय नमः एवं कुण्डलाभ्यां शङ्खाय चक्राय गदायै पद्माय वनमालायै श्रीवत्साय कौस्तुभाय सर्वत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन पूजयेत् । पुनः पञ्च-पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा आवरणपूजामारभेत । यथा-षट्कोणेष्वग्न्यादि ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः । कृष्णाय शिरसे स्वाहा इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् । ततो दिक्पत्रस्य मूले ॐ वासुदेवाय नमः एवं सङ्कर्षणाय प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय प्रणवादि-नमोऽन्तेन पूजयेत् ।

एवं विदिक्पत्रमूलेषु : ॐ शान्त्यै नमः एवं श्रियै सरस्वत्यै रत्यै । पत्रेषु पूर्वादि पूर्ववत् । रुक्मिण्याद्याः पूजयेत् । अत्र षोडशसहस्र-महिषीभ्यो नमः तद्बहिः पूर्वादि इन्द्रनिधिं नीलनिधिं मुकुन्दनिधिं मकरनिधिं आनन्दनिधिं कच्छपनिधिं पद्मनिधिं शङ्खनिधिश्च पूजयेत् । तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ३६ ॥ अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः ।

तथा च : ध्यात्वैवं परमात्मानं विंशत्यर्णं मनुं जपेत् । चतुर्लक्षं हुनेदाज्यैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ ३७ ॥

मन्त्रान्तरम् : वाग्भवं कामबीजञ्च कृष्णाय भुवनेश्वरी । गोविन्दाय रमा गोपीजनवल्लभङेशिरः । चतुर्दशस्वरोपेतो भृगुः सर्गी तदूर्ध्वतः । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रदायकः ॥ ३८ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्त पीठमन्वन्तं पीठन्यासं विधाय अष्टादशाक्षरवहृष्यादिन्यासं कराङ्गन्यासौ विधाय मुद्रादि दिग्बन्धनञ्च कृत्वा ध्यायेत् ।

यथा : वामोर्ध्वहस्ते दधतं विद्यासर्वस्वपुस्तकम् । अक्षमालाञ्च दक्षोर्ध्वे स्फाटिकीं मातृकामयीम् ॥ शब्दब्रह्ममयं वेणुमधःपाणिद्वयेरितम् ॥ गायन्तं पीत वसनं श्यामलं कोमलच्छविम् ॥ बर्हिबर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः । उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद्धरिं सदा ॥

एवं ध्यात्वा विंशत्यर्णवत् पूजयेत् ॥

विशेषस्तु : सृष्टिस्थिति तत्पूजनं नास्ति तद्वर्णाभावात् ॥ ३९ ॥ अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः ।

तथा च : चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रमिमं मन्त्री सुसंयतः । पलाशपुष्पैः स्वादुक्तैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ जुहुयात्कर्मणानेन मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । ॥ ४० ॥

मन्त्रान्तरम् :

वाग्भवं कामबीजञ्च मायालक्ष्मीमनन्तरम् । दशार्णो मनुवर्यश्च भवेच्छक्राक्षरो मनुः ॥

ब्रह्मसंहितायाम् : वाग्भवं भुवनेशानीं श्रीबीजं कामबीजकम् । दशार्णो मनुवर्यश्च भवेच्छक्राक्षरोऽपरः ॥ ४१ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्तपीठन्यासं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः ॥ ४२ ॥

अन्य न्यासपूजाजपहोमादि सर्वं दशाक्षरवत्कार्यम् ॥ ४३ ॥

ध्याने तु विशेषः : ध्यायेद्वृन्दावने रम्ये काञ्चनीभूमिमध्यगे । नानापुष्पलताकीर्णेवृक्षषण्डैश्च मण्डिते ॥ कल्पाटवीतले सम्यक्श्रीमान्माणिक्यमण्डपे । नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैः स्तवद्भिः परिवारिते ॥ रत्नसिंहासने ध्यायेदुपविष्टं कजोपरि । सजलजलदश्यामं रक्तपद्मायतेक्षणम् ॥ रक्तपद्मस्फुरत्पादपाणिभ्यां परिमण्डितम् । नानारत्नसमारब्धभूषणैः परिभूषितम् ॥ श्रीयुक्तवक्षसि भ्राजत्कौस्तुभोद्भासिताम्बरम् । तारहारवलीरम्यं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ रोचनातिलकप्रान्तकुन्तलभ्रमरायितम् । कन्दर्पचापसदृशचिल्लिमालाविराजितम् ॥ अनेकरत्न संयुक्तं

स्फुरन्मकरकुण्डलम् । बर्हिवर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः । उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद्धरिं सदा । इति ॥ ४४ ॥

मन्त्रान्तरम् (एकाक्षरी)

कामाक्षरं धरासंस्थं शान्तिविन्दुविभूषितम् । त्रैलोक्यमोहनो विष्णुः कथितस्तव यत्नतः ॥ ४५ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि-वैष्णवोक्तपीठशक्तिपर्यन्तं विन्यस्य तदुपरि पक्षिराजाय स्वाहेति पीठमनुं न्यसेत् । ततः ऋष्यादि-न्यासः ।

तद्यथा : शिरसि सम्मोहनऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि त्रैलोक्यसम्मोहनाय विष्णवे नमः ।

तदुक्तम् : ऋषिः सम्मोहनच्छन्दो गायत्री परिकीर्त्तिता । त्रैलोक्य-मोहनो विष्णुर्देवता समुदीरिता ॥ ४६ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । क्लां हृदयाय नमः इत्यादि ।

तथा च निबन्धे : दीर्घषट्कयुजानेन कामबीजेन कल्पयेत् ॥४७॥

ततो बाणन्यासः : अंगुष्ठे द्रां शोषणबाणाय नमः । तर्जन्योः द्रीं मोहनबाणाय नमः । मध्यमयोः क्लीं सन्दीपनबाणाय नमः । अना-मिकयोः ब्लूं तापनबाणाय नमः । कनिष्ठयोः सः मादनबाणाय नमः ।

तथा : मस्तकमुखहृदयगुह्यपादेषु न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : द्रामाद्यं शोषणं पूर्वं द्रीमाद्यं मोहनं ततः । सन्दीपनाख्यं क्लीमाद्यं ब्लूमाद्यं तापनं पुनः सर्गान्तभृगुणा भूयो मादनं पञ्चमं न्यसेत् ॥ ४७ क ॥

ततो ध्यायेत् : भग्नविद्रुमसङ्काशं सर्वतेजोमयं वपुः । किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ॥ मुक्तासद्रत्नसन्नद्धतुलाकोटिसमुज्ज्वलम् । नानालङ्कारसुभगं पीताम्बरयुगावृतम् ॥ गरुडोपरिसन्नद्धरक्तपङ्कज-मध्यगम् । उत्तप्तहेमसङ्काशां लक्ष्मीं वामोरुसंस्थिताम् ॥ सर्वालङ्कार-सुभगां शुक्लवासोयुगावृताम् ॥ सकामां लीलया देवं मोहयन्तं पुनः पुनः ॥ शङ्खचक्रगदापद्मपाशांकुशधनुःशरान् । धारयन्तं जगन्नाथं रक्त-पद्मारुणेक्षणम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं विधाय न्यासक्रमेण दशा-क्षरवत्पीठपूजां कृत्वा पुनर्ध्यानावाहनादिपंचपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय

षडङ्गानि सम्पूज्य न्यासक्रमेण देवशरीरे पञ्चबाणान् सम्पूज्य ॐ किरीटाय नमः एवं कुण्डलाय शङ्खाय चक्राय गदायै पद्माय पाशाय अंकुशाय धनुषे शराय इति हस्तेषु पूजयेत्। स्तनोर्द्ध्वे श्रीवत्साय कौस्तुभाय, गले वनमालायै, नितम्बे पीतवसनाय, वामाङ्गे श्रीं लक्ष्म्यै नमः। सर्वत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन पूजयेत्। ततः केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च क्लीं हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा इत्यादि षडङ्गानि पूजयेत्। ततः पूर्वादिदिक्षु चतुरो बाणान् सम्पूज्य कोणेषु पञ्चमं बाणं पूजयेत्। पत्रेषु ॐ लक्ष्म्यै नमः। एवं सरस्वत्यै रत्यै प्रीत्यै कीर्त्यै कान्त्यै तुष्ट्यै पुष्ट्यै तद्बहिर्लोकपालान्पूजयेत्। अत्र वज्रादिपूज्य नास्ति अनुक्तत्वात्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४८ ॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः।

तथा च : रविलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः। अमृतत्रयसिक्तेन पायसेन विधानवित् अथवा रविसाहस्रं हुनेत्तावच्च तर्पयेत् ॥ ४९ ॥

मन्त्रान्तरम्

कामबीजं हृषीकेशाय हृन्मन्त्रोऽष्टाक्षरः परः।

तथा च : हृषीकेशपदं ङेऽन्तं नमोऽन्तः कामपूर्वकः। अस्य न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् ॥ ५० ॥ लक्ष्मीर्माया कामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदं तथा। स्वाहेति मन्त्रराजोऽयं भजतां सुरपादपः ॥ ५१ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्त पीठमन्त्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥

यथा : शिरसि नारदऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः। हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः ॥ ५२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि एवं क्लां हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ५३ ॥

ततो ध्यानम् : कलायकुसुमश्यामं वृन्दावनगतं हरिम्। गोपगोपीगवावीतं पीतवस्त्रयुगावृतम् ॥ नानालङ्कारसुभगं कौस्तुभोद्भासिवक्षसम्। सनकादिमुनिश्रेष्ठैः संस्तुतः परया मुदा। शङ्खचक्रलसद्बाहुं वेणुहस्तद्वयेरितम्। एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ५४ ॥ ततो वैष्णवोक्त पीठमन्त्वन्तं पीठं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत ॥

यथा : केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च क्लां हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् । तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ५५ ॥ अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः ।

तथा च : ध्यात्वैवं परमात्मानं चतुर्लक्षं मनुं जपेत् । दशांशं जुहुयान्मन्त्री कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ॥ ५६ ॥

मन्त्रान्तरम्

श्रीशक्तिस्मरकृष्णाय गोविन्दाय शिरो मनुः ॥ ५७ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि-पूर्वोक्त पीठमन्वन्तं पीठन्यासं विधाय रत्नाभिषेकवदृष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥ ५८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ यथा : श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । क्लीं मध्यमाभ्यां वषट् । कृष्णाय अनामिकाभ्यां हुं । गोविन्दाय कनिष्ठाभ्यां वौषट् । स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु श्रीं हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ५९ ॥ ततो मूर्तिपञ्जरन्यासं विधाय मुद्रादिदिग्बन्धनं कृत्वा विंशत्यर्णोक्तं ध्यात्वा तद्विधानेन पूजयेत् । विशेषस्तु सृष्टिस्थितिक्रमेण न पूजयेत् । तत्तद्वर्णाभावात् अस्य पुरश्चरणं जपहोमश्च तथा ॥ ६० ॥

मन्त्रान्तरम्

तारं हृद्भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा ।

तथा च : तारो हृद्भगवान् ङेऽन्तो रुक्मिणी वल्लभस्तथा । शिरोऽन्तः षोडशार्णोऽयं रुक्मिणो वल्लभाह्वयः ॥ ६१ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्त पीठमन्वन्तं पीठन्यासं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि नारद ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि रुक्मिणीवल्लभाय देवतायै नमः ॥ ६२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः । नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा । भगवते मध्यमाभ्यां वषट् । रुक्मिणीवल्लभाय अनामिकाभ्यां हुं । स्वाहा कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥ ६३ ॥

ततो ध्यानम् : तापिञ्छच्छविरङ्कगां प्रियतमां स्वर्णप्रभामम्बुजप्रोद्यद्वामभुजां स्ववामभुजयाश्लिष्यन् सचित्तस्मथाम् । श्लिष्यन्तीं स्वयमन्यहस्तविलसत्सौवर्णवेत्रश्चिरं पायान्नं शणसूनपीतवसनो नानाविभूषो हरिः ॥ ६४ ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कृत्वा वैष्णवोक्त पीठमन्वन्तां पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदान पर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत ।

यथा : केशरेषु अग्निनिर्ऋतिवायव्यीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च ॐ हृदयाय नमः । नमः शिरसे स्वाहा । भगवते शिखायै वषट् । रुक्मिणी वल्लभाय कवचाय हुं । स्वाहा अस्त्राय फट् । ततोऽष्टदलेषु पूर्वादि ॐ नारदाय नमः एवं पर्वतं जिष्णुं निशठं उद्धवं दारुकं विश्वक्सेनं शैनेयश्च पूजयेत् । तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : ध्यात्वैवं रुक्मिणीकान्तं जपेल्लक्षममुं मनुन् । अयुतं जुहुयात् पद्मैररुणैर्मधुराप्लुतैः ॥ ६५ ॥

मन्त्रान्तराणि

श्रीशक्तिकामपूर्वोऽङ्गजन्मशक्तिरमान्तिकः । दशाक्षरः एवासौ स्यात् शक्तिरमान्वितः ॥ मन्त्रो विकृतिरव्यर्णावाचक्राद्याङ्कनाविमौ ॥ ६६ ॥ अनयोर्ऋष्यादिपञ्चाङ्गानि दशाक्षरवन्न्यस्त्वा विंशत्यर्णोक्तपूजां कुर्यात् ॥ ६७ ॥

ध्यानस्तु : वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यन्तं स्वाङ्कगे प्रिये । पद्मोत्पल-करे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रगदोज्ज्वलम् ॥ ६८ ॥ अनयोः पुरश्चरणं दश-लक्षजपः । आज्यैस्तावत्सहस्रहोमः ।

तथा च : दशलक्षं जपेदाज्यैर्हुनेत्तावत्सहस्रकम् ॥ ६९ ॥ प्रणवं नमसा युक्तं कृष्णगोविन्दकौ तथा । श्रीपूर्वौ ङेऽन्तावुच्चार्य हुं फट् स्वाहेति कीर्त्यते ॥ ७० ॥ अस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः परमात्मा हरिर्देवता । आचक्राद्यैरङ्गकल्पना । दशाक्षरवदस्य पूजाजपहोमादयः । बीजशक्ती च तत्समे ॥ ७१ ॥

अथ बालगोपालमन्त्राः

चक्री वसुस्वरान्वितः सर्गी । कृः । कृष्णेति द्व्यक्षरः कामकृष्ण । कामकृष्णाय । कृष्णाय नमः । कामः कृष्णाय नमोऽन्तकः । काम कृष्णाय कामः । गोपालाय ठद्वयम् । कामः कृष्णाय स्वाहा । कृष्ण-गोविन्दौ ङेऽन्तौ । कामः कृष्णाय गोविन्दाय । कामः कृष्णगोविन्दौ ङेऽन्तौ कामः । दधिभक्षणाय ठद्वयम् । सुप्रसन्नात्मने हृत् । कामः क्लीं

कामः श्यामलाङ्गाय हृत् । बालवपुषे कृष्णाय वह्निजाया । रमा माया कामः कृष्णाय कामः । बालवपुषे क्लीं कृष्णाय वह्निजाया ।

तथा च निबन्धे : चक्री वसुस्वरयुतः सर्ग्यैकार्णो मनुर्मतः । कृष्णेति द्व्यक्षरः कामपूर्वस्त्र्यर्णः स एव च । स एव चतुर्वर्णः स्यात् ङेऽन्तोऽन्यश्चतुरक्षरः । वक्ष्यते पञ्चवर्णः स्यात् कृष्णाय नम इत्यपि । स एव कामपूर्वश्चेत् षडक्षरमनुर्मतः । कृष्णायेति स्मरद्वन्द्वमध्ये पञ्चाक्षरोऽपरः । गोपालायाग्निजायान्तः षडक्षरमनुर्मतः । कृष्णाय कामबीजाद्यो वह्निजायान्तिकोऽपरः । कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ सप्तार्णो मनुरुत्तमः । कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ कामाद्यश्चाष्टवर्णकः । आद्यन्तकामबीजश्चेत् नवाक्षर उदाहृतः । दधिभक्षणाय वह्निवल्लभान्तोऽष्टवर्णकः । सुप्रसन्नात्मने प्रोक्तो नमः इतापरोऽष्टकः । कामबीजं धराबीजं पुनः कामं समुद्धरेत् । श्यामलाङ्गपदं ङेऽन्तं नमोऽन्तोयं दशाक्षरः । शिरोऽन्तो बालवपुषे कृष्णायान्यो मनुर्मतः । श्रीशक्तिकामकृष्णाय मारः सप्ताक्षरो मनुः । शिरोऽन्तो बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्मृतो बुधैः ॥ १ ॥

एतेषां पूजायन्त्रम : वृत्तमष्टदलं पद्मं भूगृहं चतुर्द्वारं वृत्तमध्यस्थं कामबीजम् (चित्र २४) ।

तथा च गौतमीये : पद्ममष्टपलाशन्तु चतुरस्रं सुलक्षणम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं कामगर्भितकर्णिकम् ॥

एतेषां पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि-वैष्णवोक्तपीठन्यासं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि नारद ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः ॥ २ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः । क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । क्लूं मध्यमाभ्यां वषट् । क्लैं अनामिकाभ्यां हुं । क्लौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । क्लः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु क्लां हृदयाय नमः इत्यादि । ततः पूर्ववन्मुद्रादिकं प्रदर्श्य ध्यायेत् ॥ ३ ॥

ध्यानम् : अव्याद्व्याकोपनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो, बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः । दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधदति-विमलं पायसं विश्ववन्द्यो, गोगोपी-गोपवीतोरुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ४ ॥ ततो वैष्ण-

वोक्तपीठमन्वन्तां पीपूठजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत् ।

यथा : केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च क्लां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्ग सम्पूज्य पत्रेषु नारदादीन् तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ५ ॥ एतेषां पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : ध्यात्वैवमेकमेतेषां लक्षं जप्यान्मनुं ततः । सर्पिःसितोपलोपेतैः पायसैरयुतं हुनेत् ॥

तथा : तर्पयेत्तावदेतेषां मनूनां हुतसंख्यया ॥ ६ ॥

मन्त्रान्तरम्

ऊर्ध्वदन्तयुतः शार्ङ्गी चक्री दक्षिणकर्णयुक् । मांसं नाथाय नत्यन्तो मूलमन्त्रोऽष्टवर्णकः ॥ ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्रीच्छन्दः कृष्णस्तु देवता । वर्णयुग्मैः समस्तेन प्रोक्तं स्यादङ्गपञ्चकम् ॥ ७ ॥

ध्यानस्तु : पञ्चवर्षमतिदृप्तमङ्गने धावमानमतिचञ्चलेक्षणम् । किङ्किणीवलयहारनूपुरैरञ्चितं नमत गोपबालकम् ॥ ८ ॥

ध्यात्वैवं प्रजपेदष्टलक्षं तावत्सहस्रकम् । जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षोत्थसमिद्भिः पायसेन वा ॥ ९ ॥ प्रासादे स्थापितं कृष्णमनुना नित्यमर्चयेत् । द्वारपूजादिपीठान्तं कुर्यात् पूर्वोक्तमार्गतः ॥ मध्येऽर्चयेद्धरिं दिक्षु विदिक्ष्वङ्गानि वै क्रमात् । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः । रुक्मिणी सत्यभामा च लक्षणा जाम्बवत्यपि । दिग्विदिक्ष्वर्चयेदेतान् इन्द्रवज्रादिकान् बहिः ॥ १० ॥ योऽमूं मनुं जपेन्नित्यं विधिनाभ्यर्चयन् हरिम् । स सर्वसम्पत्सम्पूर्णो नित्यं शुद्धंव्रजेत्पदम् ॥ ११ ॥

मन्त्रान्तरम्

कामयोरन्तःकृष्णपदं मन्त्रः सद्यःफलप्रदः ।

तथा च : सद्यःफलप्रदं मन्त्रं वक्ष्येऽन्यं चतुरक्षरम् । संप्रोक्तो मारयुग्मान्तः संस्थकृष्णपदेन तु ॥ १२ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि-वैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं पीठन्यासं विधाय पूर्वदृष्यादिन्यासकराङ्गन्यासौ च कृत्वा ध्यायेत् ॥ १३ ॥

श्रीमत्कल्पद्रुमूलोद्गतकमलल सत्कर्णिकासंस्थितो य स्तच्छाखालम्बिपद्मोदरविसरदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः । हेमाभः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवन-

मखिलं भासयन् वासुदेवः पायाद्वः पायसादोऽनवरतनवनीतामृताशीरसीमः ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं विधाय वैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं पीठं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत । पूर्वंदग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च क्लां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्य पत्रेषु पूर्वादि अष्टनिधीन् तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १४ ॥

अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः ।

तथा च : ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं जुहुयात्ततः । त्रिमध्वक्तैर्बिल्वफलैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ १५ ॥ अस्यमन्त्रस्य कामबीजयोर्लकारयोरन्ते रेफश्चेत्तदा मन्त्रचूडामणिः ।

तथा च निबन्धे : मारयोरस्य मांसाधो रक्तश्चेदपरो मनुः । कामबीजस्य मांसाधो लकारस्याधोभागे रक्तो रेफश्चेत्तदा अयं मनुरित्यर्थः ॥ १६ ॥

अस्य पूजा : पूर्ववदृष्यादिन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

यथा : क्लीं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । क्लीं हृदयाय नमः इत्यादि । अस्य पूजादिकं सर्वं पूर्ववत् ।

ध्याने तु विशेषः : आरक्तोद्यानकल्पद्रुमतलविलसत्स्वर्णदोलाधिरूढं, गोपीभ्यां प्रेक्ष्यमाणं विकसितनवबन्धूकसिन्दूरभासम् । बालं लीलालकान्तं कटितटविलसत्क्षुद्रघण्टाघटाढ्यं, वन्दे शार्दूल-कामांकुशललितगणाकल्पदीप्तं मुकुन्दम् ॥ १८ ॥

ध्यात्वैवं पूर्वरीत्यैनं जप्त्वा रक्तोत्पलैर्नवैः । मधुत्रययुतैर्हुत्वा चार्चयेत् पूर्ववद्धरिम् ॥ १९ ॥

अथ वासुदेवमन्त्रः

प्रणवो हृद्भगवते वासुदेवाय कीर्तितः । प्रधानं वैष्णवे तन्त्रे मन्त्रोऽयं सुरपादपः ॥ १ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिपूर्वोक्त पीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि प्रजापतये ऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि वासुदेवाय देवतायै नमः ॥ २ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः; नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

भगवते मध्यमाभ्यां वषट् । वासुदेवाय अनामिकाभ्यां हुं । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : तारेण हृदयं प्रोक्तं नमसा शिर ईरितम् । चतुर्वर्णैः शिखा प्रोक्ता पञ्चार्णैः कवचं मतम् । समस्तेन भवेदस्त्रमङ्ग-कल्पनमीरितम् ॥ ३ ॥

ततो मन्त्रन्यासः : मूर्ध्नि भाले दृशोरास्ये गले दोर्हृदयाम्बुजे । कुक्षौ नाभौ ध्वजे जानुद्वये पादद्वये तथा । द्वादशाक्षराणि विन्यसेत् । ततो मूर्त्तिपञ्जरं विन्यस्य किरीटमन्त्रेण व्यापकं विधाय ध्यायेत् ॥ ४ ॥

विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदामम्भोजं दधतं सिताजनिलयं कान्त्या जगन्मोहनम् । आबद्धाङ्गदहारकुण्डलमहामौलिं स्फुरत्कङ्कणं, श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ५ ॥ ततो वैष्णवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदान-पर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत । अग्निनिर्ऋतिवायव्यीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च ॐ हृदयाय नमः इत्यादिना पञ्चाङ्गानि पूजयेत् । ततः पूर्वादिदलेषु शान्त्यादिशक्तिसहितान् वासुदेवादीन् केशवादीनिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ६ ॥

अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः ।

तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितो विजितेन्द्रियः । तत्सहस्रं प्रजुहुयात्तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ ७ ॥

अथ लक्ष्मीनारायणमन्त्रः

मायाद्वयं रमाद्वयं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः । प्रणवादिरयं मन्त्रः ।

तथा च निबन्धे : हृल्लेखाबीजयुगलं रमाबीजयुगं पुनः । लक्ष्म्यन्ते वासुदेवाय हृदन्तः प्रणवादिकः । चतुर्दशाक्षरः प्रोक्तो मन्त्रोऽयं सुरपादपः ॥ ८ ॥

अस्य पूजादिकं वासुदेवमन्त्रवत् । ऋष्यादिन्यासे तु लक्ष्मीवासुदेवो देवता ।

कराङ्गन्यासमन्त्रस्तु : ॐ ह्रीं ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ श्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ लक्ष्मी मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ वासुदेवाय अना-मिकाभ्यां हुं । ॐ नमः कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च : हृदयं शक्तिबीजाभ्यां रमाभ्यां शिर ईरितम् । लक्ष्म्या

प्रोक्ता शिखा वर्म वासुदेवाय कीर्त्तितम्। नमसास्त्रं समुद्दिष्टं सर्वं तारादि विन्यसेत्।

ततो ध्यानम् : विद्युच्चन्द्रनिभं वपुः कमलजावैकुण्ठयोरेकतां, प्राप्तं स्नेहरसेन रत्नविलद्भूषाभरालंकृतम्। विद्यापङ्कजदर्पणान्मणिमयं कुम्भं सरोजं गदां शङ्खं चक्रममूनि बिभ्रदमितां दिश्याच्छ्रियं वः सदा ॥ ८ क ॥ अस्य पूजादिकं सर्वं पूर्ववत्। अस्य पुरश्चरणं चतुर्दशलक्षजपः।

तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं सरोरुहैः। होमं कुर्याद्द्विकसितैर्मधुरत्रयसंयुतैः। वर्णलक्षं मन्त्रवर्णसमसंख्यलक्षम् ॥ ९ ॥

अथ दधिवामनमन्त्रः

ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय ठद्वयम्।

तथा च निबन्धे : तारो हृद्विष्णवे पश्चात् ङेऽन्तः सुरपतिर्भवेत्। महाबलाय ठद्वन्द्वं मनुरष्टादशाक्षरः ॥ १० ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इत्यन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि इन्दवे ऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदि दधिवामनाय देवातायै नमः।

तथा च निबन्धे : चन्द्रान्तकल्पिते पीठे प्रागुक्तेन समर्चयेत् ॥११॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा। विष्णवे मध्यमाभ्यां वषट्। सुरपतये अनामिकाभ्यां हुं। महाबलाय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु।

तथा च : हृदेकेन शिरो द्वाभ्यां शिखा त्रिभिरुदाहृता। कवचं पञ्चभिः प्रोक्तं नेत्रं तावद्भिरक्षरैः। द्वाभ्यामस्त्रमिति प्रोक्तं प्रकारोऽङ्गस्य सूरिभिः ॥ १२ ॥

ततो मन्त्रन्यासः : शिरसि भाले चक्षुषोः कर्णयोरोष्ठे तालुके कण्ठे बाहुद्वये उदरे नाभौ गुह्ये ऊरुद्वये जानुद्वये जङ्घाद्वये पादद्वये मन्त्रवर्णान्नमोऽन्तान्न्यसेत्। जङ्घाद्वयादौ द्वयं द्वयं वर्णं ततो मूर्त्तिपञ्जरादिकं विधाय ध्यायेत् ॥ १३ ॥

मुक्तागौरं नवमणिलसद्भूषणं चन्द्रसंस्थं, भृङ्गाकारैरलकनिवहैः शोभिवक्त्रारविन्दम्। हस्ताब्जाभ्यां कनककलसं शुद्धतायाभिपूर्णं, दध्यन्नाढ्यं, कनकचषक धारयन्तं भजामः। एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ १४ ॥

ततश्चन्द्रमण्डलान्तं पीठं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजां कुर्यात् ।

तथा च : चन्द्रान्तं कल्पिते पीठे प्रान्तरे तं समर्चयेत् ।

यथा : अग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च ॐ हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् । ततो दिग्दलेषु वासुदेवादीन् शक्तिसहितान्ध्वजादीन् तदग्रे केशवादीन्सम्पूज्य इन्द्रवज्रादीन् ऐरावतादीन् दिग्गजांश्च पूजयेत् । ॐ ऐरावताय दिग्गजाय नमः इत्यादिक्रमेण पूजयेत् । एवं पुण्डरीकादीन् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १५ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षत्रयजपः ।

तथा च : गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतम् । पायसान्नं प्रजुहुयाद्ध्यन्नम्वा यथाविधि ॥ १६ ॥

अथ हयग्रीवमन्त्राः

ॐ उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर । सर्ववेदमयाचिन्त्य सर्व बोधय बोधय ।

तथा च निबन्धे : उद्गिरत्पदमाभाष्य प्रणवोद्गीथ शब्दतः । सर्ववागीश्वरेत्यन्ते प्रवदेदीश्वरेत्यथ ॥ सर्ववेदमयाचिन्त्य शब्दान्ते सर्वमुच्चरेत् । बोधयद्वितयान्तोऽयं मन्त्रस्तारादिरीरितः ॥ १७ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-वैष्णवोक्त पीठमन्वन्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि श्रीहयग्रीवाय देवतायै नमः ॥ १८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः । उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ तर्जनीभ्यां स्वाहा । सर्ववागीश्वरेश्वर मध्यमाभ्यां वषट् । सर्ववेदमयाचिन्त्य अनामिकाभ्यां हुं । सर्वं बोधय बोधय कनिष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥ १९ ॥

ततो ध्यानम् : शरच्छशाङ्कप्रभमश्ववक्त्रं मुक्तामयैराभरणैः प्रदीप्तम् । रथाङ्गशङ्खाचितबाहुयुग्मं जानुद्वयन्यस्तकरं भजामः ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कृत्वा वैष्णवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा हसूमित्यनेन मूर्त्तिं सङ्कल्पयेत् ॥

तथा च : बीजेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य बीजमुद्धरेत्, यथा । वियद्भृगुस्थ-

मर्घीशबिन्दुमद्वीजमीरितम् । ततः पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत ॥

यथा : केशरेषु चतुर्दिक्षु चतुर्वेदान ऋग्यजुःसामाथर्वान, विदिक्षु अङ्गस्मृतिन्यायसर्वशास्त्राणि पूजयेत् । अर्चयेत्पत्रमध्येषु विधानेनाङ्गदेवताः । तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ २० ॥ अस्य पुरश्चरणं त्रयस्त्रिंशल्लक्षजपः ।

तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं कुन्दपुष्पैर्मधुप्लुतैः । दशांशं वैष्णवे वह्नौ जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ॥ २१ ॥

अथ हयग्रीवैकाक्षरमन्त्रः

स च हकार सकारषष्ठस्वरविन्द्वात्मकः ।

तथा च कल्पे : वियद्भृगुस्थमर्घीशविन्दुमद्वीजमीरितम् । एकाक्षरो मनुः प्रोक्तश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ २२ ॥ अस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः हयग्रीवरूपी विष्णुर्देवता हकारो बीजं ऊकारः कीलकं सकारः शक्तिः । ह्सां ह्सीं ह्सूं ह्सैं ह्सौं ह्सः इति षडङ्गकल्पना ॥ २३ ॥

ध्यानम् : धवलनलिननिष्ठं क्षीरगौरं कराब्जैर्जपवलयसरोजे पुस्तकाभीष्टदाने । दधतममलवस्त्राकल्पजालाभिरामं, तुरगवदनजिष्णुं नौमि विद्याग्रविष्णुम् ।

अन्यच्च : शरच्छशाङ्कप्रभमश्ववक्त्रं, मुक्तामयैराभरणैरुपेतम् । रथाङ्गशङ्खोर्ध्वकरञ्च विद्याव्याख्यान-मुद्राढ्यकरं नमामि ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कृत्वा पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत । तत्राङ्गैः प्रथममावरणम् । प्रज्ञाहय-मेधाहय-स्मृतिहय-विद्याहय-लक्ष्मीहय-वागीशीहय-विद्याविलासहय- नादविमर्दनहयैरष्टाभिर्द्वितीयम् । लक्ष्मी-सरस्वती-रति-प्रीति-कीर्त्ति-कान्ति-तुष्टि-पुष्टिस्तृतीयम् । कुमुदादिभिर्गजैश्चतुर्थम् । इन्द्रादिभिः पञ्चमम् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ २४ ॥ अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः ।

तथा च : वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः । आज्येन दशांशहोमः ॥ २५ ॥

मन्त्रान्तरम्

हयग्रीवैकाक्षरादिचतुर्थ्यन्तहयशिरः शब्दो नमोऽन्तः । तथा च कल्पे—हयशिरःपदं ङेऽन्तं हृदन्तश्च समुद्धरेत् । स्वबीजादिरयं मन्त्र-

श्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ २६ ॥ अस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप्छन्दो हयग्रीवरूपी विष्णुर्देवता अन्यत्सर्वमेकाक्षरवत् ॥ २७ ॥

मन्त्रान्तरम् :

उद्गिरत्प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर। सर्ववेदमयाचिन्त्य सर्वं बोधय बोधय ॥ स्वाहान्तो मनुराख्यातो बीजः प्रणवसम्पुटः ॥ २८ ॥

मन्त्रान्तरम् : विश्वोत्तीर्ण स्वरूपाय चिन्मायानन्दरूपिणे। तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे ॥ स्वाहान्तो मनुराख्यातो हंसेन सम्पुटीकृतः ॥ २९ ॥

एतयोर्मन्त्रयोः पूर्वोक्तहयग्रीवमन्त्रवत्सर्वं ज्ञातव्यम् ॥ ३० ॥

अथ नृसिंहमन्त्रः

निबन्धे : उग्रं वीरं वदेत्पूर्वं महाविष्णुमनन्तरम्। ज्वलन्तं पदमाभाष्य सर्वतोमुखमीरयेत्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं वदेत्ततः। नमाम्यहमिति प्रोक्तो मन्त्रराजः सुरद्रुमः ॥ अयं मन्त्रो मायापुटितो भवति तदा सर्वकामफलप्रदः।

तथा च कल्पे : हृल्लेखापुटितश्चेत् स्यात्सर्वकामफलप्रदः ॥३१॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिवैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि नृसिंहाय देवतायै नमः ॥ ३२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : चतुर्भिर्हृदयं वर्णैः शिरस्तावद्भिरक्षरैः। शिखाष्टाभिः समुद्दिष्टा षड्भिः कवचमीरितम्। तावद्भिर्नयनं प्रोक्तमन्त्रं स्यात्करणाक्षरैः ॥ ३३ ॥

ततो मन्त्रन्यासः : शिरोललाटनेत्रेषु मुखबाह्वंघ्रिसन्धिषु। साग्रेषु कुक्षौ हृदये गले पार्श्वद्वये पुनः। अपराङ्गे च ककुदि न्यसेद्वर्णान्यथाक्रमम् ॥ ३४ ॥

ततो ध्यानम् : माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा संत्रस्तरक्षोगणं, जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम्। बाहुभ्यां धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोग्रवक्त्रोल्लसज्ज्वालाजिह्वमुदग्रकेशनिचयं वन्दे नृसिंहं विभुम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं विधाय वैष्णवोक्तपीठपूजां कृत्वा पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत।

तद्यथा : केशरेष्वग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च अङ्गानि पूजयेत् ।

यथा : उग्रं वीर हृदयाय नमः । महाविष्णुं शिरसे स्वाहा । ज्वलन्तं सर्वतोमुखं शिखायै वषट् । नृसिंहं भीषणं कवचाय हुं । भद्रं मृत्युमृत्युं नेत्रत्रयाय वौषट् । नमाम्यहं अस्त्राय फट् । ततः पूर्वादिदले गरुडं शङ्करं शेषं ब्रह्माणञ्च पूजयेत्, विदिग्दलेषु श्रियं ह्रियं धृतिं पुष्टिञ्च प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् । तद्वहिरिन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्मसमापयेत् ॥३५॥ अस्य पुरश्चरणं द्वात्रिंशल्लक्षजपः ।

तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मंत्रं तत्सहस्रं घृतप्लुतैः । पायसान्नैः प्रजुहुयाद्विधिवत्पूजितेऽनले ॥ ३६ ॥

मन्त्रान्तरम् :

निबन्धे : पाशः शक्तिर्नरहरिरंकुशो वर्म फट् मनुः । षडक्षरो नरहरेः कथितः सर्वकामदः ॥ ३७ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः, हृदि नृसिंहाय देवतायै नमः ॥ ३८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । क्ष्रौं मध्यमाभ्यां वषट् । क्रौं अनामिकाभ्यां हुं । हुं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । फट् करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥ ३९ ॥

ततो ध्यानम् : कोपादालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं सोमसूर्याग्निनेत्रं, पादादानाभिरक्तप्रभमुपरिसितं भिन्नदैत्येन्द्रगात्रम् । शङ्खं चक्रं च पाशांकुशकुलिशगदादारुणान्युद्वहन्तं, भीमं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाकल्पमीडे नृसिंहम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कृत्वा वैष्णवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत ।

तद्यथा : केशरेष्वग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च आं हृदयाय नमः इत्यादिनाषडङ्गानि पूजयेत् । ततः पत्रेषु पूर्वादि शङ्खं चक्रं पाशम् अंकुशं वज्रं गदां खड्गं खेटकञ्च प्रणवादि-नमोऽन्तेन पूजयेत् ।

तथा च निबन्धे : अङ्गावृतेर्वहिश्चक्रं शङ्खं पाशांकुशौ पुनः । वज्रं कौमोदकीं खड्गं खेटं पत्रेषु पूजयेत् । ततः इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् ।

ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४० ॥ अस्य पुरश्चरणं षड्लक्षजपः ।

तथा : ऋतुलक्षं जपेन्मन्त्रं घृतेन जुहुयात्ततः । तत्सहस्रं समिद्धेऽग्नौ तोषयेद्वसुना गुरुम् ॥ ४१ ॥

मन्त्रान्तरम्

क्षकारो वह्निमारूढो मनुविन्दु समन्वितः । एकाक्षरो मनुः प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः ॥ ४२ ॥ अस्य पूजादिकं सर्वं मन्त्रराजवत् । विशेषस्तु अत्रिऋंषिर्गायत्रीच्छन्दोः नृसिंहो देवता क्षकारो बीजं औकारः शक्तिः षड्दीर्घयुक्तबीजेनाङ्गकल्पना ॥ ४३ ॥ अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः ।

तथा च : वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं इत्यादिवचनात् ॥ ४४ ॥

मन्त्रान्तरम्

तथा च कल्पे : जयद्वयं समुच्चार्य श्रीपूर्वोनृसिंहेत्यपि । अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कामदोमणिः ॥ ४५ ॥ अस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो नृसिंहो देवता षड्दीर्घयुक्तबीजेनाङ्गकल्पना । ध्यानार्चनादिकं मन्त्रराजवत् ॥ ४६ ॥ अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः । वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं इत्यादिवचनात् ॥ ४७ ॥

अथ हरिहरमन्त्रः

मन्त्रदेवप्रकाशिन्याम् : तारो माया प्रासादं शङ्करनारायणाय नमः प्रासादं माया तारः ॥ ४८ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि-वैष्णवोक्तं शैवोक्तं वा पीठन्यासं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि नारदऋषये नमः मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः हृदि हरिहराय देवतायै नमः गुह्ये हौं बीजाय नमः पादयोः ह्रीं शक्तये नमः ॥ ४९ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि षड्दीर्घयुक्तबीजेन । एवं हृदयादिषु ॥ ५० ॥

ततो ध्यानम् : शूलं चक्रं पाञ्चजन्यमभीतिं दधतं करैः । स्वस्वभूषाच्छलीलाढ्यदेहं हरहरिं भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ५१ ॥ ततो वैष्णवोक्तां शैवोक्तां वा पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत । केशरेष्वग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् । ततः पत्रेषु

ॐ लक्ष्म्यै नमः एवं सरस्वत्यै नारायण्यै धरायै भूधरायै अम्बिकायै त्र्यम्बकायै गङ्गायै गङ्गाधरायै। तद्बहिरिन्द्रादीन् पूजयेत्। अत्र वस्त्रादिपूजा नास्ति अनुक्तत्वात्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ५२ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। घृतपायसेनायुतहोमः।

तथा च : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः। पायसैर्हवनं कार्यं संस्कृते हव्यवाहने ॥ ५३ ॥

अथ वराहमन्त्रा: : तारो नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय ठद्वयम। अयं मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशदक्षरः।

तथा च निबन्धे : तारो नमो भगवते वराहपदमीरयेत्। रूपाय भूर्भुवः स्वः स्यात् पतये तदनन्तरम्। भूपतित्वं मे पदान्ते देह्यन्ते च ददापय। वह्निजायावधिर्मन्त्रः स्यात्त्रयस्त्रिंशदक्षरः ॥ ५४ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिवैष्णवोक्तपीठमन्त्रान्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासः कुर्यात् ॥ शिरसि भार्गवऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः। हृदि आदिवराहाय देवतायै नमः ॥ ५५ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : एकदंष्ट्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः। व्योमोल्काय तर्जनीभ्यां स्वाहा। तेजोऽधिपतये मध्यमाभ्यां वषट्। विश्वरूपाय अनामिकाभ्यां हुं। महादंष्ट्राय कनिष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु।

तथा च : भार्गवो मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्। देवतादिवराहश्च मन्त्रस्य कथितो बुधैः। एकदंष्ट्राय हृदयं व्योमोल्काय शिरः स्मृतम्। शिखा तेजोऽधिपतये विश्वरूपाय वर्म च। महादंष्ट्राय अस्त्रं स्यात् पञ्चाङ्गमिति कल्पयेत ॥ ५६ ॥

अस्य यन्त्रं प्रपञ्चसारे : अष्टपत्रमथ पद्ममुल्लसत्कर्णिकं विधिवदारचय्य मण्डलम्। रविसहस्रसन्निभं शूकरं यजत तत्र सिद्धये ॥ ५७ ॥
(चित्र २५)

ततो ध्यानम् : आपादं जानुदेशाद्वरकनकनिभं नाभिदेशादधस्तान्मुक्ताभं कण्ठदेशात्तरुणरविनिभं मस्तकान्नीलभासम्। ईडे हस्तैर्दधानं रथचरणदरौ खड्गखेटौ गदाख्यं शक्तिं दानाभये च क्षितिधरणलसद्दंष्ट्रमाद्यं वराहम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनादि-वैष्णवोक्त पीठपूजादि कर्म कृत्वा पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत। केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु दिक्षु (पूर्वादिचतुर्दिक्षु) च

एकदंष्ट्राय हृदयाय नमः। व्योमोल्काय शिरसे स्वाहा। तेजोऽधिपतये शिखायै वषट्। विश्वरूपाय कवचाय हुं। चतुर्दिक्षु (अग्निनिर्ऋतिवायव्यीशानकोणेषु) महादंष्ट्राय अस्त्राय फट्। तद्बहिः पत्रेषु ॐ चक्राय नमः एवं शङ्खाय खड्गाय खेटकाय गदायै शक्तये वराय अभयाय। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ५८ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं मधुरात्तैः सरोरुहैः। जुहुयात्तद्दशांशेन पीठे विष्णुं प्रपूजयेत् ॥ ५६ ॥ विष्णुमन्त्रं रात्रौ न जपेत्।

तथा च : न जपेद्वैष्णवं रात्रौ शैवे शाक्ते न दुष्यति। इति वैशम्पायनसंहितावचनात्। इति विष्णुमन्त्रपरिच्छेदः ॥ ६० ॥

अथ शिवमन्त्राः

उद्दिश्य यं कृतवती गिरिजा तपस्यां यत्पादपङ्कजरजो विबुधा नमन्ति। आशाद्बरं भुजगराजविभूषिताङ्गं, तं चन्द्रमौलिममलं मनसा स्मरामि ॥ १ ॥

अथ वक्ष्ये महेशस्य मन्त्रान् सर्वसमृद्धिदान्। यैः पूर्वमृषयः प्राप्ताः शिवसायुज्यमञ्जसा ॥ २ ॥ सान्तमौकारसंयुक्तं विन्दुभूषितमस्तकम्। प्रासादाख्यो मनुः प्रोक्तो भजतां कामदो मणिः ॥ ३ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय श्रीकण्ठादिन्यासं मातृकास्थानेषु कुर्यात्।

तद्यथा : अं श्रीकण्ठपूर्णोदरीभ्यां नमः। नमः सर्वत्र। आं अनन्तविरजाभ्यां, इं सूक्ष्मशाल्मलीभ्यां, ईं त्रिमूर्तिलोलाक्षीभ्यां, उं अमरेश्वरवर्त्तुलाक्षीभ्यां, ऊं अर्घीशदीर्घघोणाभ्यां, ऋं भारभूत्तिसुदीर्घमुखीभ्यां, ॠं अतिथीशगोमुखीभ्यां, ऌं स्थाणुकदीर्घजिह्वाभ्यां, ॡं हरकुण्डोदरीभ्यां, एं झिण्टीशोर्ध्वमुखीभ्यां, ऐं भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां, ओं सद्योजातज्वालामुखीभ्यां, औं अनुग्रहेश्वरोल्कामुखीभ्यां, अं अक्रूरसुश्रीमुखीभ्यां, अः महासेनविद्यामुखीभ्यां, कं क्रोधीशसर्वसिद्धिमहाकालीभ्यां, खं चण्डेशसर्वसिद्धिसरस्वतीभ्यां, गं पञ्चान्तकगौरीभ्यां, घं शिवोत्तमत्रैलोक्यविद्याभ्यां, ङं एकरुद्रमन्त्रशक्तिभ्यां, चं कूर्मात्मशक्तिभ्यां, छं एकनेत्रभूतमातृकाभ्यां, जं चतुराननलम्बोदरीभ्यां, झं अञ्जेशद्राविणीभ्यां, ञं सर्वनागरीभ्यां, टं सोमेशखेचरीभ्यां, ठं लाङ्गलिमञ्जरीभ्यां, डं दारुकरूपिणीभ्यां, ढं अर्द्धनारीश्वरवीरिणीभ्यां, णं उमाकान्त काकोदरीभ्यां, तं

आषाढिपूतनाभ्यां, थं दण्डिभद्रकालीभ्यां, दं अद्रियोगिनीभ्यां, धं मीनशङ्खिनीभ्यां, नं मेषगर्जिनीभ्यां, पं लोहितकालरात्रिभ्यां, फं शिखिकुब्जिकाभ्यां, बं छगलण्डकपर्दिनीभ्यां, भं द्विरण्डेशवज्राभ्यां, मं महाकालजयाभ्यां, यं त्वगात्मबालिसुमुखेश्वरीभ्यां, रं असृगात्मभुजङ्गेश-रेवतीभ्यां, लं मांसात्मपिनाकीशमाधवीभ्यां, वं मेद-आत्मखड्गीशवारुणी-भ्यां, शं अस्थ्यात्मबकेशवायवीभ्यां, षं मज्जात्मश्वेतरक्षोविदारिणीभ्यां, सं शुक्रात्मभृग्वीशसहजाभ्यां, हं प्राणात्मनकुलीशलक्ष्मीभ्यां, लं जीवात्म-शिवव्यापिनीभ्यां, क्षं क्रोधात्मसंवर्त्तकमायाभ्यां । सर्वत्रनमोऽन्तेन न्यासः । साहित्ये द्विवचनबहुवचने द्वन्द्वसमासो वेति न्यायादविरोधेन एवं वाक्यम् ।

तथा च निबन्धे : श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्त्तिरमरेश्वरः । अर्घीशो भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः । झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः । अक्रूरश्च महासेनः षोडशस्वरमूर्त्तयः । ततः क्रोधीशचण्डेशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः । तथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राः सचतुराननाः । अञ्जेशः शर्वः सोमेशस्तथा लाङ्गलिदारुकौ । अर्द्धनारीश्वरश्चोमाकान्त-श्चाषाढिदण्डिनौ । स्युरद्रिमीनमेषाश्च लोहितश्च शिखी तथा । छगलण्डद्विरण्डेशौ समहाकलवालिनौ । भुजङ्गेशः पिनाकीशः खड्गीश्च बकस्तथा । श्वेतभृग्वीशनकुलिः शिवःसंवर्त्तस्तथा । एते रुद्राः समाख्याता धृतशूलकपालकः ॥ ४ ॥ पूर्णोदरी स्याद्विरजा शाल्मली तदन्तरम् । लोलाक्षी वर्त्तुलाक्षी च दीर्घघोणा समीरिता । सुदीर्घमुखी, गोमुख्यौ दीर्घजिह्वा तथैव च । कुण्डोदर्यूर्ध्वमुख्यौ च तथा विकृतमुख्यपि । ज्वालामुखी ततो ज्ञेया पश्चादुल्कामुखी स्मृता । सुश्रीमुखी च विद्या-मुख्येताः स्युः स्वरशक्तयः । महाकालीसरस्वत्यै सर्वसिद्धिसमन्विते । गौरी त्रैलोक्यविद्या स्यान्मन्त्रशक्तिस्ततः परम् । आत्मशक्तिर्भूतमाता तथा लम्बोदरी मता । द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चापिमञ्जरी । रूपिणी वीरिणी पश्चात् ककोदर्यपि पूतना । स्याद्भद्रकालीयोगिन्यौ शङ्खिनी गर्जिनी तथा । कालरात्रिश्च कुब्जिन्या कर्पादिन्यपि वज्रया । जया च सुमुखेश्वर्या रेवती माधवी ततः । वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चाद्रक्षोविदा-रिणी । ततश्च सहजा लक्ष्मीर्व्यापिनी माययान्विता । एता रुद्राङ्क-पीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः । रक्तोत्पलकपालाभ्यामलंकृतकराम्बुजाः ॥ ५ ॥ ततः सामान्यपूजापद्धत्युक्तपीठन्यासं कृत्वा पीठशक्तिर्न्यसेत् ।

यथा : ॐ वामायै नमः एवं ज्येष्ठायै रौद्रयै काल्यै कलविकरिण्यै बलविकरिण्यै बलप्रथमन्यै सर्वभूतदमन्यै । एता हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु विन्यस्य मध्ये ॐ मनोन्मन्यै नमः, तदुपरि ॐ नमो भगवते सकलगुणात्म शक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः ।

तथा च शारदायाम् : वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलपदादिका विकरिण्याह्वया प्रोक्ता बलादिविकरिण्यथ । बलप्रमथनी पश्चात् सर्वभूत-दमन्यपि । मनोन्मनीति संप्रोक्ता शिवस्य पीठशक्तयः । नमो भगवते पश्चात्सकलादि वदेत्ततः । गुणादिशक्तियुक्ताय ततोऽनन्ताय तत्परम् । योगपीठात्मने भूयो नमोऽन्तरादिको मनुः । अमुना मनुना पश्चादासनं गिरिजापतेः । मूर्त्ति मूलेन सङ्कल्प्य तत्रावाह्य यजेच्छिवम् ।

तत ऋष्यादिन्यासः : शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे पंक्ति-च्छन्दसे नमः, हृदि सदाशिवाय देवतायै नमः ।

शारदायाम् : वामदेवो मुनिश्छन्दः पंक्तिर्देवः सदाशिवः ॥ ६ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि एवं ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि । षड्दीर्घयुक्तहकारेण न्यसेत् ।

तदुक्तम् : षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः । तत ईशानाद्याः पञ्चमूर्त्तीर्न्यसेत् करयोरंगुष्ठाद्यंगुलीषु ॥

यथा : अंगुष्ठयोः ह्रों ईशानाय नमः तर्जन्योः हें तत्पुरुषाय नमः मध्यमयोः हुं अघोराय नमः अनामिकयोः हिं वामदेवाय नमः कनिष्ठयोः हं सद्योजाताय नमः ।

तथा च : ईशानादीन्न्यसेन्मूर्त्तीरंगुष्ठादिषु देशिकः । ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं तदनन्तरम् । वामदेवाह्वयं पश्चात् सद्योजातं क्रमाद्बहिः । ओकाराद्यैः पञ्चह्रस्वैर्विलोमात् संयुतं वियत् । तत्तदंगुलीभिर्भूयस्तत्तद्बी-जादिकान्न्यसेत् । ततस्तत्तदंगुलीभिः ह्रों ईशानाय नमः इत्यादि शिरो-वदनहृद्गुह्यपादेषु पञ्चमूर्त्तीर्न्यसेत् । तत ऊर्ध्वप्रागदक्षिणपश्चिमोत्तरेषु मुखेषु तत्तदंगुलीभिस्तत्तद्बीजैस्तत्तन्मूर्तीर्न्यसेत् । शूद्रस्त्वेतत्पर्यन्तं न्यासं कृत्वा ध्यायेत् अन्यत्रानधिकारात् । तत ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणपश्चिमोत्तरेषु मुखेषु ईशानस्य पञ्चकलाः ब्रह्मऋचः पदादिकाः प्राणवादिनमोऽन्ता न्यसेत् ।

तद्यथा : ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम् ॐ शशिन्यै कलायै नमः । ईश्वरः सर्वभूतानाम् ॐ अङ्गदायै कलायै नमः । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधि-

पतिः ॐ ब्रह्मेष्टदायै कलायै नमः। शिवो मेऽस्तु ॐ मरीच्यै कलायै नमः। सदाशिवोम् ॐ अंशुमालिन्यै कलायै नमः। ततः पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तर वक्त्रेषु तत्पुरुषस्य चतस्रः कला विन्यसेत्।

यथा : ॐ तत्पुरुषाय विद्महे ॐ शान्त्यै कलायै नमः। महादेवाय धीमहि ॐ विद्यायै कलायै नमः। तन्नो रुद्रः ॐ प्रतिष्ठायै कलायै नमः। प्रचोदयात् ॐ निवृत्त्यै कलायै नमः। ततो हृदये ग्रीवयाम् अंसद्वये नाभौ कुक्षौ पृष्ठे वक्षसि अघोरस्याष्टौ कला न्यसेत्।

यथा : ॐ अघोरेभ्यः ॐ उमायै कलायै नमः। अथ घोरेभ्यः मोहायै कलायै नमः। घोर ॐ क्षमायै कलायै नमः। घोरतरेभ्यः ॐ निद्रायै कलायै नमः। सर्वतः सर्व ॐ व्याधये कलायै नमः। सर्वेभ्यः ॐ मृत्यवे कलायै नमः। नमस्तेऽस्तु ॐ क्षुधायै कलायै नमः। रुद्ररूपेभ्यः ॐ तृष्णायै कलायै नमः। ततो गुह्ये अण्डकोषे ऊरुद्वये जानुद्वये जङ्घाद्वये स्फिक्द्वये कट्यां पार्श्वद्वये वामदेवस्य त्रयोदशकला न्यसेत् ॥ ७ ॥

यथा : ॐ वामदेवाय नमः ॐ ऊर्जायै कलायै नमः। ज्येष्ठाय नमः ॐ रक्षायै कलायै नमः ॥ रुद्राय नमः ॐ रत्यै कलायै नमः। कालाय नमः ॐ कपालिन्यै कलायै नमः। कल ॐ कामायै कलायै नमः। विकरणाय नमः ॐ संयमिन्यै कलायै नमः। बल ॐ क्रोधायै (क्रियायै) कलायै नमः। विकरणाय नमः ॐ वृद्धयै कलायै नमः। बल ॐ स्थिरायै कलायै नमः। प्रमथनाय ॐ रात्र्यै कलायै नमः। सर्वभूतदमनाय नमः ॐ भ्रामण्यै कलायै नमः। मन ॐ मोहिन्यै कलायै नमः। उन्मनाय नमः ॐ जरायै कलायै नमः। ततः पार्श्वयोः स्तनयोर्नासिकायां मूर्ध्नि बाहुयुग्मे सद्योजातस्याष्टौ कला न्यसेत्।

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि ॐ सिद्धयै कलायै नमः। सद्योजाताय वै नमः ॐ वृद्धयै कलायै नमः। भवे ॐ मत्यै कलायै नमः। अभवे ॐ लक्ष्मै कलायै नमः। अनादिभवे ॐ मेधायै कलायै नमः। भजस्व मां ॐ प्रज्ञायै कलायै नमः। भव ॐ प्रभायै कलायै नमः। उद्भवाय नमः। ॐ सुधायै कलायै नमः ॥ ८ ॥

ततः पञ्चांगुलीषु ईशानाद्याः पञ्च ऋचो न्यसेत्। ॐ इशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्। ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः

प्रचोदयात् । ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः । ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमः मनोन्मनाय नमः । ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवेऽभवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः । एवं मूर्द्धास्यहृदयगुह्यपादेषु एता ऋचो न्यसेत् । ततोऽङ्गन्यासान्तरं कुर्यात् ।

तद्यथा : ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सर्वज्ञाय हृदयाय नमः । अमृते तेजोज्वालामालिने तृप्तये शिखिब्रह्मणे शिरसे स्वाहा । ज्वलितशिखिशिखाय अनादिबोधाय शिखायै वषट् । वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतन्त्राय कवचाय हुं । शौं चौं ह्रौं परतोऽलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट् । श्लीं पशु हुं फट् अनन्तशक्तये अस्त्राय फट् ।

तथा च यामले : सर्वज्ञतातृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः । अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य एवं विन्यस्य ध्यायेत् ॥ ९ ॥

यथा : मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिस्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् । शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टांकुशान् पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् । अत्र शङ्खनिषेधः । सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना इति ॥ १० ॥

ततः शैवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा मूलेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत् ।

यथा : ऐशान्यां ॐ ईशानाय नमः पूर्वे ॐ तत्पुरुषाय नमः दक्षिणे ॐ अघोराय नमः उत्तरे ॐ वामदेवाय नमः पश्चिमे ॐ सद्योजाताय नमः । ईशानादिकोणेषु ॐ निवृत्त्यै नमः एवं प्रतिष्ठायै विद्यायै शान्त्यै । ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ अनन्ताय नमः एवं सूक्ष्माय शिवोत्तमाय एकनेत्राय एकरुद्राय त्रिमूर्त्तये श्रीकण्ठाय शिखण्डिने तद्बाह्ये उत्तरादिक्रमेण ॐ उमायै नमः एवं चण्डेश्वराय नन्दिने महाबलाय गणेशाय वृषाय भृङ्गरीटाय स्कन्दाय । तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥११॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षं मधुप्लुतैः । प्रसूनैः

करवीरोत्थैर्जुहुयात्तद्दशांशतः ॥ १२ ॥

मन्त्रान्तरम्

भुवनेशो प्रणवं नमः शिवाय भुवनेशी पुनरष्टाक्षरो मनुः ॥१३॥

तथा च निबन्धे : षडक्षरः शक्तिरुद्धः कथितोऽष्टाक्षरो मनुः ।

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-शैवोक्तपीठमन्वन्तं पीठन्यासं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः, मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः, हृदि उमापतये देवतायै नमः ॥ १४ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः । नं तर्जनीभ्यां स्वाहा । मं मध्यमाभ्यां वषट् । शिं अनामिकाभ्यां हुं । वां कनिष्ठाभ्यां वौषट् । यं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥ १५ ॥

ततो ध्यानम् : बन्धूकाभं त्रिनेत्रं शशिशकलधरं स्मेरवक्त्रं वहन्तं, हस्तैः शूलं कपालं वरदमभयदं चारुहासं नमामि । वामोरुस्तम्भगायाः करतलविलसच्चारुरक्तोत्पलाया, हन्तेनाश्लिष्टदेहं मणिमय-विलसद्भूषणायाः प्रियायाः ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कृत्वा शैवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरण-पूजामारभेत् ।

यथा : केशरेष्वग्निनिर्ऋतिवायव्यीशानकोणेषु मध्ये दिक्षु च ॐ हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मं शिखायै वषट्, शिं कवचाय हुं, वां नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट् । ततो पूर्वादिदिक्षु च ॐ हृल्लेखायै नमः, एवं गगनायै रक्तायै करालिकायै महोच्छुष्मायै । ततः पत्रेषु पूर्वादि वृषभादीन्पूजयेत् । ॐ वृषभाय नमः एवं क्षेत्रपालाय चण्डेश्वराय दुर्गायै कार्त्तिकेयाय नन्दिने विघ्ननाशकाय सेनापतये । ततः पूर्ववत्पत्रेषु उमादीन्पूजयेत् । तद्बाह्ये ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्याः । ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही इन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्मीः । तद्बहिरिन्द्रा-दीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १६ ॥

अस्य पुरश्चरणं चतुर्दशलक्षजपः ।

तथा च : मनुलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं यथाविधि । जुहुयान्मधुरा-सिक्तैरारग्वधसमिद्वरैः । आरग्वधः शोणालुः ॥ १७ ॥

मन्त्रान्तरम्

तारो माया प्रासादं नमः शिवायाष्टाक्षरोः मनुः ।

तथा च निबन्धे : तारो माया वियद्विन्दुमनुस्वारसमन्वितम् । पञ्चाक्षरसमायुक्तो वसुवर्णो मनुर्मतः ॥ १८ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिशैवोक्तपीठन्यासान्तं विधाय पूर्वोक्त-ऋष्यादिन्यास-कराङ्गन्यासान्कुर्यात् ॥ १९ ॥

ततो ध्यानम् : वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसं, भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम् । वामोरुन्यस्त-पाणेररुणकुवलयं संदधत्याः प्रियाया, वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रेनिहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तम् ॥ २० ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, अर्घ्यस्थापनादिपीठपूजान्तं विधाय, आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजां कुर्यात् । पूर्व-वदङ्गादि सम्पूज्य पत्रेष्वनन्तादीन्पत्राग्रेषु उमादीन्पूजयेत् । तद्बहि-रिन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ।

अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः ॥

तथा च : अष्टलक्षं जपेदेनं मनुं मन्त्रविदां वरः । तत्सहस्रं प्रजुह-यात्पायसान्नैर्घृतप्लुतैः ॥ २१ ॥

मृत्युञ्जयमन्त्र :

तारं स्थिरा सकर्णेन्दुर्भृगुः सर्गसमन्वितः । त्र्यक्षरात्मा निगदितो मन्त्रो मृत्युञ्जयात्मकः । स्थिरा जकारः कर्णं ऊकारः भृगुः सकारः ॥ २२ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-शैवोक्तं पीठन्यासान्तं विधाय ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात् । शिरसि कहोलऋषये नमः । मुखे देवीगायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि मृत्युञ्जयाय महादेवाय देवतायै नमः ।

तथा च : ऋषिः कहोलो-देव्यादि-गायत्रीच्छन्द ईरितम् । मृत्युञ्जयो महादेवो देवतास्य प्रकीर्त्तिता ॥ २३ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : सां अंगुष्ठाभ्यां नमः । सीं तर्जनीभ्यां स्वाहा सूं मध्यमाभ्यां वषट् । सैं अनामिकाभ्यां हुं । सौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । सः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु षड्दीर्घभाजा सकारेण कुर्यात् ।

तथा च निबन्धे : भृगुणा दीर्घयुक्तेन कुर्यादङ्गक्रियां मनोः ॥२४॥

ततो ध्यानम् : चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं, मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम् । कोटीरेन्दुगलत्सुधा-

प्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनादि-पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा अर्घ्यस्थापनादि-पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजां कुर्यात् ।

तद्यथा : केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च सां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्य, तद्बहिरिन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ २५ ॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षत्रयजपः ॥

तथा च : गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं विशालधीः । जुहुयादमृताखण्डैः शुद्धदुग्धाज्यलोडितैः ॥ २५ क ॥

अथापरमृत्युञ्जयमन्त्रः

मृत्युञ्जय समुद्धृत्य पालयद्वितयं वदेत् । मृत्युञ्जयं समुच्चार्य पुनरेवं विलोमतः । द्वादशार्णोऽयं मन्त्रः स्यान्मृत्युञ्जयाभिधोऽपरः । ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् ॥ २६ ॥

मन्त्रान्तरम् :

प्रणवो हृदयं पश्चात्ततो भगवते पदम् । ङेऽन्ताश्च दक्षिणामूर्त्तिं मह्यं मेधामुदीरयेत् । प्रयच्छ ठद्वयान्तोऽयं द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ॥ २७ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिशैवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि चतुर्मुखाय ऋषये नमः । मुखे देवीगायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि दक्षिणामूर्त्तये देवतायै नमः ॥ २८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ आं ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ईं ॐ तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ ऊं ॐ मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ ऐं ॐ अनामिकाभ्यां हुं । ॐ औं ॐ कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ॐ अः ॐ करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : ताररुद्धैः स्वरैर्दीर्घैः षडभिरङ्गानि कल्पयेत् । अथवा मन्त्रसम्भूतैः पदैर्वा कल्पयेत् क्रमात् ।

तथा च मानसोल्लासे : त्रिभिश्चतुर्भिः षडभिश्च चतुर्भिस्त्रिभिरक्षिभिः । मन्त्रवर्णैर्विभक्तैर्वा कुर्यादङ्गक्रियां मनोरति ॥ २९ ॥

ततो ध्यानम् : वटवृक्षं महोच्छ्रायं पद्मरागफलोज्ज्वलम् । गारुत्मतमयैः पत्रैर्विचित्रैरुपशोभितम् । नवरत्नमहाकल्पैर्लम्बमानैरलंकृतम् ।

विचिन्त्य वटमूलस्थं चिन्तयेल्लोकनायकम् । स्फटिकरजतवर्णं मौक्तिकीम-क्षमालाममृतकलसविद्याज्ञानमुद्राः कराब्जैः । दधतमुरगकक्षं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं, विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥ ३० ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनादिशैवोक्तपीठपूजान्तं विधाय पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय, आवारणपूजां कुर्यात् । केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ॐ आं ॐ हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् । पत्रेषु पूर्वादि ॐ सरस्वत्यै नमः, एवं ब्रह्मणे सनकाय सनन्दाय सनातनाय सनत्कुमाराय शुकाय व्यासाय । तद्बहिः पूर्वादि सिद्धाय गन्धर्वाय योगीन्द्राय विद्याधराय तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं ब्रह्मचारी व्रते स्थितः । जुहुयात् सघृतैः पद्मैर्दशांशं संस्कृतेऽनले ॥ ३१

मन्त्रान्तरम्

अग्निसंवर्तकादित्यरानिलौषष्ठविन्दुमत् । चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्वसमृद्धिदम् ॥

अस्यार्थः : अग्नी रेफः, संवर्त्तकः क्षकारः, आदित्यो मकारः, रः रेफः, अनिलो यकारः, औ स्वरूपं, षष्ठ ऊकारः ॥ ३२ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-शैवोक्तं पीठमन्त्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात् । शिरसि कश्यपऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि अर्द्धनारीश्वराय देवतायै नमः ॥ ३३ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : रं अंगुष्ठाभ्यां नमः । कं तर्जनीभ्यां स्वाहा । यं मध्यमाभ्यां वषट् । मं अनामिकाभ्यां हुं । रं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । यं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : रेफादि-व्यञ्जनैः षड्भिः कुर्यादङ्गानि फट् क्रमात् ॥ ३४ ॥

ततो ध्यानम् : नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं, पाशारुणोत्पल-कपालकशूलहस्तम् । अर्द्धाम्बिकेशमणिशं प्रविभक्तभूषं, बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् । ततः शैवोक्तपीठ-

पूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय, आवरणपूजामारभेत।

तद्यथा : केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च रं हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत्। ततः पत्रेषु पूर्ववद्वृषभादीन्, पत्राग्रेषु ब्राह्मीं माहेश्वरीं कौमारीं वैष्णवीं वाराहीं इन्द्रणीं चामुण्डां महालक्ष्मीश्च पूजयेत्। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादि-विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ३५ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रमित्थं मन्त्री विचिन्तयन्। अयुतं मधुरासिक्तैर्जुहुयात्तिलतण्डुलैः ॥ ३६ ॥

मन्त्रान्तरम्

पार्श्वो वह्निसमारूढस्तारवानाद्यबीजकम्। धान्तो वह्निसमारूढस्तूर्यस्वरसमन्वितः। विन्दुमांस्तु द्वितोयः स्यात् टान्तः सर्गी तृतीयकः।

शारदायाम् : लोहितोऽग्न्यासनः सत्यमिन्दुमान् प्रथमं पुनः। द्वितीया वह्निबीजस्था दीर्घा शान्तीन्दुभूषिता। तृतीयो लाङ्गली सर्गी मन्त्रो बीजत्रयान्वितः। नीलकण्ठात्मको मन्त्रो विषद्वयहरः परः ॥ ३७ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिशैवोक्तपीठन्यासान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि अरुणऋषये नमः। मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः। हृदि नीलकण्ठाय देवतायै नमः ॥ ३८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : यथा : हर हर स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः। कर्पद्दिने स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा। नीलकण्ठाय स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। कालकूटविषभक्षणाय हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं। नीलकण्ठिन स्वाहा कनिष्ठाभ्यां फट्। एवं हृयादिषु।

तथा च निबन्धे : हरद्वयं वह्निजाया हृदयं परिकीर्तितम्। कर्पद्दिने ठद्वयञ्च शिरोमन्त्र उदाहृतः। नोलकण्ठाय ठद्वन्द्वं शिखामन्त्रः समीरितः। कालकूटपदस्यान्ते ङेयुतं विषभक्षणम्। हुं फट् कवचमाख्यातं विद्वद्भिर्नीलकण्ठिने। स्वाहान्तमन्त्रमेतानि पञ्चाङ्गानि मनोर्विदुः ॥

ततो मन्त्रन्यासः : मस्तके प्रों नमः, कण्ठे त्रीं नमः, हृदि ठं नमः।

तथा च : मूर्ध्नि कण्ठे हृदम्भोजे क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत्। ततः समाहितो भूत्वा नीलकण्ठं विचिन्तयेदिति ॥ ३९ ॥

ततो ध्यानम् : बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखंडोज्ज्वलं, नागेद्रैः कृतशेखरं जपवटी शूलं कपालं करैः। खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविल-

सत्पञ्चाननं सुन्दरं, व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, अर्घ्यस्थापनं कृत्वा, शैवोक्तपीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय, आवरणपूजामारभेत । केशरेऽग्न्यादि कोणे मध्ये दिक्षु च हर हर स्वाहा हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत् । ततः इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४० ॥

अस्य पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः ।

तथा च : लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं ससर्पिषा । हविषा जुहुयात्सम्यक्संस्कृते हव्यवाहने ॥ ४१ ॥

मन्त्रान्तरम्

प्रणवो हृन्नीलकण्ठायाष्टाक्षरोऽपरः ॥ १ ॥

कल्पे : तारो हृन्नीलकण्ठाय मन्त्रश्चाष्टाक्षरः परः ॥ २ ॥ अस्य पूजादिकं सर्वं पूर्ववत्, विशेषस्तु ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः नीलकण्ठो देवता ॥ ३ ॥

अथापरमन्त्रः

हृदयं वपरं साक्षि लान्तोऽनन्तान्वितो मरुत् । पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः ॥ ४ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-शैवोक्तपीठमन्वन्तं समाप्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि वामदेवाय ऋषये नमः । मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः, हृदि ईशानाय देवतायै नमः ॥ ५ ॥

ततो मूर्त्तिन्यासः : तर्जन्योः नं तत्पुरुषाय नमः । मध्यमयोः मं अघोराय नमः । कनिष्ठयोः शिं सद्योजाताय नमः । अनामिकयोः वां वामदेवाय नमः । अंगुष्ठयोः यं ईशानाय नमः ।

तथा च निबन्धे : ताः स्युस्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकाः । मन्त्रवर्णादिका न्यसेत्पञ्चमूर्तीर्यथाक्रमम् ॥ तर्जनीमध्यमयोरन्त्यानामिकांगुष्ठके पुनः । एवं वक्त्रे हृदये पादद्वये गुह्ये मूर्ध्नि ता न्यसेत् । एवं प्राग्याम्यवारुणोदीच्यमध्यवक्त्रेषु ता न्यसेत् ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः । नं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि । एवं हृदयादिषु ।

तथा च निबन्धे : षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्रस्य देशिकः ।

ततो गोलकन्यासः : हृदि ॐ नमः, वक्त्रे नं नमः, अंसयोः मं नमः शिं

नमः, ऊर्वो वां नमः यं नमः । एवं कण्ठे नाभौ पार्श्वद्वये पृष्ठे हृदि मूर्ध्नि वदने नेत्रयोः नसोः । एवं करपत्सन्धिषु साग्रेषु । एवं शिरोवदनहृत्कुक्षि ऊरुपादद्वयेषु च । एवं हृदि वक्त्रे टङ्कमृगाभयवरेषु । एवं वक्त्रां-सहृत्पादोरुजठरेषु । ततः पुनरपि मूर्ध्नि भालोदरहृद्गुह्येषु च ताः पञ्चमूर्त्तीर्न्यसेत् ॥ ६ ॥ ततो व्यापकन्यासं कुर्यात् । ॐ नमोऽस्तु भूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने । चतुर्मूर्त्तिवपुश्छायाभासिताङ्गाय शम्भवे । इत्यनेन व्यापकन्यासं कुर्यात् ॥ ७ ॥

ततो ध्यानम् : ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं, रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् । पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं, विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिल-भयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ ८ ॥

ततः शैवोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पा-ञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत् ।

यथा : कर्णिकायां पूर्ववदीशानादि पञ्चमूर्त्तीः सम्पूज्य केशरेषु निवृत्यादिकलां पूर्ववत्पूजयेत् । ततोऽग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ॐ हृदयाय नमः, नं शिरसे स्वाहा, मं शिखायै वषट्, शिं कवचाय हुं, वां नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट् । इति पूजयेत् । ततः पूर्ववदनन्ता-दीन्पूजयेत् । तत उत्तरादिक्रमेण वामावर्त्तेन उमादीन्पूजयेत् । ततो इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । ॥ ९ ॥

अस्य पुरश्चरणं षट्त्रिंशल्लक्षजपः । पायसैराज्यसम्मिश्रैः षट्-त्रिंशत्सहस्रहोमः ।

तथा च : तत्त्वलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितः शैववर्त्मना । तावत्संख्य-सहस्राणि जुहुयात्पायसैः शुभैः ॥ अत्र तत्त्वशब्देन षट्त्रिंशत्तत्त्वमुच्यते अन्तरङ्गत्वात् ॥ १० ॥

मन्त्रान्तरम्

अर्घीशो वह्निशिखरो लान्तस्थो दान्त ईरितः । फडन्तश्चण्डमन्त्रोऽयं त्रिवर्णात्मा समीरितः ॥ ११ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादिशैवोक्तपीठन्यासान्तं विधाय ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि त्रितऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि चण्डेश्वराय देवतायै नमः ।

तथा च निबन्धे : अस्य त्रितो मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् । चण्डेश्वरो देवता इत्यादि ॥ १२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : दीप्त फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः । ज्वल फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा । ज्वालिनि फट् मध्यमाभ्यां वषट् । ज्ञेय फट् अनामिकाभ्यां हुं । हन फट् कनिष्ठाभ्यां वौषट् । सर्वज्वालिनि फट् करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥

तथा च प्रपञ्चसारे : दीप्तज्वलज्वालिनीति ज्ञेयेन तु हनेन च । सर्वज्वालिनिसंयुक्तैः फडन्तैरङ्गमाचरेत् ॥ १३ ॥

ततो ध्यानम् : चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं, रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि । टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां, कमण्डलुं विभ्रतमिन्दुचूडम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ १४ ॥ ततः शैवोक्तपीठपूजां विधाय ठमिति बीजेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं आवरणपूजामारभेत् ।

तद्यथा : अङ्गैः प्रथममावरणं मातृभिर्द्वितीयं इन्द्रादिभिस्तृतीयं वज्रादिभिश्चतुर्थम् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥१५॥ अस्य पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः । तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमः कुर्याद्दशांशतः । मधुरत्रयसंयुक्तैः शुद्धैश्च तिलतण्डुलैः । इति शिवमन्त्राः ॥ १६ ॥

अथ क्षेत्रपालमन्त्रः

मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम् : क्षौमिति बीजादिक्षेत्रपालाय इत्युपेतनमोऽन्तः । अयं प्रणवादिर्वा मन्त्रः ॥

तथा च : वर्णान्त्यमौबिन्दुयुतं क्षेत्रपालाय हृन्मनुः । ताराद्यो वसुवर्णोऽयं । क्षेत्रपालस्य ईरितः ॥ १७ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-प्राणायामान्तं विधाय धर्मादिकल्पितं पीठं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : अस्य ब्रह्म ऋषिरनुष्टुप्छन्दः क्षेत्रपालो देवता क्षौं बीजं आत्मेति शक्तिः षड्दीर्घयुक्तेन बीजेनैवाङ्गन्यासं ॥ १८ ॥

ततो ध्यानम् : भ्राजच्चण्डजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनादिप्रभं, दोर्दण्डात्तगदाकपालमरुणस्रग्गवस्त्रोज्ज्वलम् । घण्टामेखलघर्घरध्वनिमिलज्झङ्कारभीमं विभुं, वन्देऽहं सितसर्पकुण्डलधरं श्रीक्षेत्रपालं सदा ।

एवं ध्यात्वा, मानसैः सम्पूज्य, अर्घ्यस्थापनं कृत्वा, धर्मादिकल्पित-पीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत।

तद्यथा : अङ्गैः प्रथममावरणम्, अनलाक्ष-अग्निकेश-कराल-घण्टारव-महाक्रोध-पिशिताशन-पिङ्गलाक्ष-ऊर्ध्वकेशैरष्टाभिर्द्वितीयम्, ईन्द्रादिभिस्तृतीयं, वज्रादिभिश्चतुर्थम्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १९ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। साज्येन चरुणा दशांशहोमः।

तथा च निबन्धे : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः। चरुणा घृतसिक्तेन ततः क्षेत्रेशमर्चयेत् ॥ २० ॥

मन्त्रदेवप्रकाशिकायान्तु : प्रणवरहितोऽयं मन्त्रः। तस्य पुरश्चरणमयुतसंख्यको जपः ॥ २१ ॥

अथास्य बलिविधानम

रात्रौ गृहाङ्गने स्थण्डिलं कृत्वा, तत्र देवं सपरिवारं सम्पूज्य, देवस्य करस्थितकपाले बलिमन्त्रेण त्रिवारं वलिं दत्त्वा, परिवारेभ्यः स्वस्वनामभिर्बलिं दद्यात् ॥ २२ ॥

वलिमन्त्रस्तु : एह्येहि विदुषि सुरु सुरु भञ्जय भञ्जय तर्जय तर्जय विघ्न विघ्न महाभैरव क्षेत्रपाल वलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

तथा च : पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद्विदुषि स्यात् सुरुद्वयम्। भञ्जयद्वितयं भूयस्तर्जयद्वितयं पुनः ॥ ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरव तत्परम्। क्षेत्रपाल वलिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरी ॥

यद्वा : एह्येहि तुरु तुरु सुरु सुरु जम्भ जम्भ हन हन विघ्नं नाशय नाशय महाबलिं क्षेत्रपाल गृह्ण गृह्ण स्वाहा इति। एष बलिविधिः सर्वग्रहनिवारको विजयश्रीकरश्च भवति ॥ २३ ॥ बलिमपि सोपदंशबृहत्पिण्डेन दद्यात्।

फलन्तु : बलिदानेन सन्तुष्टः क्षेत्रपालः प्रयच्छति। कान्तिमेधाबलारोग्यतेजःपुष्टियशःश्रियः ॥ २४ ॥

अथ वटुकभैरवमन्त्रः

चतुर्थ्यन्तवटुकायेति आपदुद्धारणचतुर्थ्यन्तशब्दोपेत-कुरुद्वयुक्त चतुर्थ्यन्तवटुक-शब्दोपेतहृल्लेखासंपुटितमेकविंशत्यक्षरम्।

तथा च निबन्धे : उद्धरेद्वटुकं ङेऽन्तमापदुद्धरणं तथा। कुरुद्वयं पुनर्ङेऽन्तं वटुकान्तं समुद्धरेत्। एकविंशत्यक्षरात्मा शक्तिरुद्धो महामनुः ॥२५॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय पीठन्यासं कुर्यात् ।

तद्यथा : धर्माद्यनैश्वर्यान्तं देहे विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि बृहदारण्यकऋषये नमः, मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि वटुकभैरवाय देवतायै नमः ॥ २६ ॥

ततो मूर्त्तिन्यासः : ह्रों वों ईशानाय नमः अंगुष्ठयोः । ह्रें वें तत्पुरुषाय नमः तर्जन्योः । ह्रुं वुं अघोराय नमः मध्यमयोः ह्रिं विं वामदेवाय नमः अनामिकयोः । ह्रः वः सद्योजाताय नमः कनिष्ठयोः । पुनस्तत्तदंगुलीभिः शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु तत्तद्बीजादिकास्तन्मूर्त्ती-र्न्यसेत् । तथा ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु च ता न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : अंगुलीदेहवक्त्रेषु मूर्त्तीर्न्यस्येद्यथा पुरा । सत्यादिपञ्चह्रस्वाढ्यशक्तिबोजपुरःसरम् ॥ वकारं पञ्चह्रस्वाढ्यमीशाना-दिषु योजयेदिति ॥ २७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ ह्रां वां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । ॐ ह्रां वां हृदयाय नमः इत्यादि । षड्दीर्घभाजा वीजद्वयेन कुर्यात् ।

तथा च निबन्धे : षड्दीर्घयुक्तया शक्त्या वकारेण तत्तथा । अङ्गानि जातियुक्तानि प्रणवाद्यानि कल्पयेत् ॥ २८ ॥

ततो ध्यानम् : अस्य ध्यानं त्रिधा प्रोक्तं सात्त्विकादिप्रभेदतः ।

तत्र सात्त्विकं यथा : वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुण्डलोद्भासिवक्त्रं, दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किङ्किणीनूपुराद्यैः । दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रं, हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम् ॥ २६ ॥

राजसं यथा : उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजं, स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः । नीलग्रीवमुदारभूषणशतं शीतांशुचूडोज्ज्वलं बन्धूकारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावये ॥ ३० ॥

तामसं यथा : ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तिं शशिशकलधरं मुण्डमालं महेशं, दिग्वस्त्रं पिङ्गलाक्षं डमरुमथ सृणिं खड्गशूलाभयानि । नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं, सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत् किङ्किणीनूपुराढ्यम् ॥ ३१ ॥

सात्त्विकं ध्यानमाख्यातमपमृत्युविनाशनम् । आयुरारोग्यजननमप-वर्गफलप्रदम् ॥३२॥ राजसं ध्यानमाख्यातं धर्मकामार्थसिद्धिदम् । तामसं शत्रुशमनं कृत्याभूतगदापहम् ॥ ३३ ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ ३४ ॥

अस्य पूजायन्त्रम् : धर्माधर्मादिभिः क्लृप्तपीठे पङ्कजशोभिते । षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थे व्योमपङ्कजशोभिते ॥ ३५ ॥ (चित्र २६)

ततो मूलेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य पूर्ववद्ध्यात्वा आवाहनादिकं कुर्यात् ॥

तत्र क्रमः : मूलादिसद्योजातमन्त्रेणावाहनम् । मूलादिवामदेवेन स्थापनम् । मूलेन सान्निध्यम् । अघोरेण सन्निरोधनम् । तत्पुरुषेण योनिमुद्राप्रदर्शनम् । ईशानेन वन्दनमिति विशेषः । कर्णिकायां दिक्षु कोणेषु ईशानादीन्यजेत् । एतत्प्रथमावरणम् । ततो व्योमपङ्कजदलेषु असिताङ्गादीन्भैरवान्यजेत् ॥ ३६ ॥

तद्यथा : असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधश्चोन्मत्तभैरवः । कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टभैरवाः । एतैरष्टाभिर्द्वितीयावरणम् ॥ ३७ ॥ ततः षट्कोणेषु पूर्वादि ॐ ह्रां वां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् ॥ ३८ ॥ ततः पूर्वादितो डाकिनी-राकिनी-लाकिनी-काकिनी-शाकिनी-हाकिनी-मालिनी-देवी-पुत्रान्पूजयेत्, एतत्तृतीयावरणम् । अष्टदिक्षु उमापुत्रान् रुद्रपुत्रान्मातृपुत्रान्दक्षिणतो यजेत् । ऊर्ध्वेऊर्ध्वं-मुखीपुत्रान् अधोऽधोमुखीपुत्रान्पूजयेत्, एतच्चतुर्थावरणम् ।

तथा च शारदायाम् : पूर्वादीशानपर्यन्तं तद्बहिः पूजयेदिमान् । डाकिनीपुत्रकान्पूर्वं राकिणी-पुत्रकांस्ततः । लाकिनीपुत्रकान्पश्चात्का-किनीपुत्रकांस्तथा । शाकिनी-पुत्रकान्भूयो हाकिनीपुत्रकान्पुनः । मालिनी पुत्रकान्पश्चाद्देवीपुत्रांस्ततः परम् । तथोमारुद्रमातॄणां पुत्रान् दक्षिणतो न्यसेत् । ऊर्ध्वमुख्या सुतानूर्ध्वमधोमुखाः सुतानधः । इति सम्पूजयेन्मन्त्री पुत्रवर्गांस्त्रयोदश इति ॥ ३९ ॥

तद्बहिरष्टदलेषु दिक्पालान्वटुकरूपान्पूजयेत् । तद्बहिः पूर्वे ॐ ब्रह्माणी-पुत्राय नमः, एवं ईशाने माहेश्वरीपुत्राय, उत्तरे वैष्णवीपुत्राय, अनिले कौमारीपुत्राय, पश्चिमे इन्द्राणीपुत्राय, नैर्ऋते महालक्ष्मीपुत्राय, याम्ये वाराही पुत्राय, अग्निकोणे चामुण्डापुत्राय, एतत्पञ्चमावरणम् ।

तथा च निबन्धे : ब्रह्माणीपुत्रकं पूर्वे माहेशीपुत्रमैश्वरे । वैष्णवीपुत्रकं सौम्ये कौमारीपुत्रमानिले । इन्द्राणीपुत्रकं भूयः पश्चिमे पूजयेत्ततः । महालक्ष्मीसुतं पश्चाद्रक्षोदिशि समर्चयेत् । वाराहीपुत्रकं याम्ये चामुण्डा-पुत्रमानल । तद्बहिर्दशदिक्षु हेतुकं त्रिपुरान्तकं वेतालं वह्निजिह्वं कालान्तकं करालं एकपादं भीमरूपम् अचलं हाटकेश्वरञ्च पूजयेत् ।

एतत्षष्ठावरणम् । तत ईशानादिनिर्ऋतिषु सकलेश्वरभूम्यन्तरीक्ष-स्वर्लोकनिष्ठान्योगीशान् योगिनीसहितान्पूजयेत् ।

यथा : योगिनीसहितदिव्ययोगीशाय नमः । एवं योगिनीसहितान्तरीक्ष-योगीशाय नमः । योगिनीसहितभूमिष्ठयोगीशाय नमः । एतत्सप्तमावरणम् ॥ ४० ॥

अस्य पुरश्चरणमेकविंशतिलक्षजपः । त्रिमधुराप्लुतैर्दशांशहोमः ।

तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः । तद्दशांशं प्रजुहुयात्तिलैस्त्रिमधुराप्लुतैः ॥ ४१ ॥

अथ बलिदानम् :

पूर्वं विघ्नं दुर्गां समाराध्य बलिं दद्यात् । शाल्यन्नं पललं सर्पिर्लाजचूर्णानि शर्करा । गुडमिक्षुरसापूपैर्मध्वक्तैः परिमिश्रितैः । कृत्वा कवलमाराध्य देवं प्रागुक्तवर्त्मना । रक्तचन्दनपुष्पाद्यैर्निशि तस्मै बलिं हरेत् । ॥ ४२ ॥

यद्वा : अन्यूनाङ्गमजं हत्वा राजसं प्रागुदीरितम् । बलिप्रदानसमये रिपूणां सर्वसैन्यकम् । निवेदयेद्बलित्वेन वटुकाय विशिष्टधीः ॥ ४३ ॥ विदर्भयेच्चक्रनाम्ना बलिमन्त्रमुदारधीः । शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिशितञ्च दिने दिने । भक्षय स्वगणैः सार्द्धं सारमेय-समन्वितः । बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वेषां विजयप्रदः ॥ ४४ ॥ अनेन बलिना तुष्टो वटुकः परसैन्यकम् । सर्वं गणेभ्यो विभजेत्सामिषं क्रुद्धमानसः । एवं कृते परसैन्यं क्षीयते नात्र संशयः ॥ ४५ ॥

अथ भैरवी :

यत्पादपङ्कजरजोऽमरवृन्दवन्द्यं, यद्योगतः परशिवः परमेश्वरोऽभूत् । या सृष्टिपालनलयं तनुते त्रिमूर्त्या, सा शाम्भवी विजयते जगदेकमाता । ॥ ४६ ॥

शारदायाम् : अज्ञानतिमिर-ध्वंसि संसारार्णवतारकम् । आनन्दबीजमवतादतर्क्यं त्रैपुरं महः ॥ ४७ ॥

अथ वक्ष्ये महाविद्यां त्रिपुरामतिगोपिताम् । यां ज्ञात्वा सिद्धिसङ्घानामधिपो जायते नरः ॥ ४८ ॥

अथ त्रिपुरभैरवीमन्त्राः

अथ त्रिपुरायास्त्रैविध्यं बालाभैरवीसुन्दरीभेदेन ।

तथा च ज्ञानार्णवे : त्रिपुरा त्रिविधा देवी त्रिशक्तिः परिगीयते ।

अथ व्युत्पत्तिमाह प्रपञ्चसारे : त्रिमूर्त्तिसर्गाच्च पराभवत्वात्त्रयीमयीत्वाच्च परैव देव्याः । लये त्रैलोक्यामपि पूरणत्वात्प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम ।

तथा च वाराहीतन्त्रे : ब्रह्मविष्णु-महेशाद्यै-स्त्रिदशैरर्चिता पुरा । त्रिपुरेति सदा नाम कथितं देवतैस्तव ॥ ४९ ॥

शारदायाम् : वियद्भृगुहुताशस्थो भौतिको विन्दुशेखरः । वियत्तदादि-केन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिविन्दुमत् । आकाशभृगुवह्निस्थो मनुः सर्गेन्दुखण्डवान् । पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरभैरवी । प्रथमं वाग्भवं कूटं द्वितीयं कामराजकम् । तृतीयं शक्तिकूटञ्च त्रिभिर्बीजैरुदाहृतम् ॥

अस्यार्थः : शिवचन्द्रवह्निवाग्भवम् । शिवचन्द्रकामपृथ्वीवह्निश्चतुर्थस्वरविन्दुमान् । शिवचन्द्ररेफयुक्तचतुर्दशस्वरविन्दुविसर्गः ॥ ४९ क ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि-प्राणायामान्तं विधाय पीठन्यासं कुर्यात् । तत्र विशेषः । पूर्वोक्तक्रमेण आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं विन्यस्य हृत्पद्मस्य पूर्वादि-केशरेषु ॐ इच्छायै नमः एवं ज्ञानायै क्रियायै कामिन्यै कामदायिन्यै रत्यै रतिप्रियायै नन्दायै, मध्ये मनोन्मन्यै, तदुपरि ऐं परायै अपरायै परापरायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः । इति पीठशक्तीः पीठमनुञ्च विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ॥

यथा : शिरसि दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः, मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः, हृदि त्रिपुरभैरव्यै देवतायै नमः, गुह्ये वाग्भवाय बीजाय नमः, पादयोः तार्तीयशक्तये नमः, सर्वाङ्गे कामबीजाय कीलकाय नमः ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् : ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि विन्यसेत् । छन्दः पंक्तिस्तुविज्ञेयं मुखे विन्यस्य देवताम् । हृदये त्रिपुरेशानीं वाग्भवं बीजमुच्यते । शक्तिबीजं शक्तिरेव कामबीजञ्च कीलकम् । ततो नाभ्यादिचरणपर्यन्तं ह्स्रैं नमः, हृदयान्नाभिपर्यन्तं ह्सक्लीं नमः, शिरसो हृदयान्तं ह्सौं नमः, एवं आद्यबीजं दक्षिणकरे, द्वितीयं वामकरे, तृतीयमुभयकरे । ततो मूर्ध्नि मूलधारे हृदि यथासंख्यं त्रीणि बीजानि न्यसेत् ।

तथा च निबन्धे : नाभेराचरणं न्यस्येद्वाग्भवं मन्त्रवित्तमः । हृदयान्नाभिपर्यन्तं कामबीजं प्रविन्यसेत् । शिरसो हृत्प्रदेशान्तं तार्तीयं

विन्यसेत्ततः। आद्यं द्वितीयं करोयोस्तार्तीयमुभयोर्न्यसेत्। मूर्ध्नाधारे हृदि न्यसेत् भूयो बीजत्रयं क्रमात् ॥ ५० ॥

ततो नवयोनिन्यासः : अद्यबीजं दक्षकर्णे, द्वितीयबीजं वामकर्णे, तृतीय बीजं चिबुके। एवं गण्डयोर्वदने नेत्रयोर्नसि अंसयोर्जठरे कूर्परयोः कुक्षौ जानुनोर्लिङ्गाग्रे पादयोर्गुह्ये पार्श्वयोः हृदयाम्बुजे स्तनयो; कण्ठे ॥

तथा च निबन्धे : नवयोन्यात्मकं न्यासं कुर्यात् बीजैस्त्रिभिः क्रमात्। कर्णयोश्चिबुके भूयो गण्डयोर्वदने पुनः। नेत्रयोर्नसि विन्यस्य अंसयोर्जठरे पुनः। ततः कूर्परयो कुक्षौ जानुनोर्ध्वजमूर्द्धनि। पादयोर्गुह्यदेशे च पार्श्वयोर्हृदयाम्बुजे। स्तनद्वये कण्ठदेशे त्रीणि बीजानि विन्यसेत् ॥ ५१ ॥

ततो रत्यादिन्यासः : मूलधारे ऐं रत्यै नमः, हृदि क्लीं प्रीत्यै नमः, भ्रूमध्ये सौः मनोभवायै नमः, पुनर्भ्रूमध्ये सौः अमृतेश्यै नमः, हृदि क्लीं योगेश्यै नमः, मूलाधारे ऐं विश्वयोन्यै नमः।

तथा च निबन्धे : मूले रतिं हृदि प्रीतिं भ्रुवोर्मध्ये मनोभवाम्। बालाबीजैस्त्रिभिर्न्यसेत् स्थानेष्वेतेषुविलोमतः। अमृतेशीश्च योगेशीं विश्वयोनिं क्रमादिमाः। विलोमबीजैर्विन्यस्य मूर्तिन्यासमथाचरेत् ॥ ५२ ॥

अथ मूर्तिन्यासः : मूर्ध्नि स्ह्लों ईशानमनोभवाय नमः, वक्त्रे स्ह्लैं तत्पुरुषमकरध्वजाय नमः, हृदि स्ह्लूं अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः, गुह्ये स्ह्लिं वामदेवमन्मथाय नमः, पादयोः स्ह्लं सद्योजात कामदेवाय नमः। एकमूर्ध्वप्राग्याम्योत्तरपश्चिमेषु मुखेषु ईशानमनोभवादि पञ्चमूर्ती-स्तत्तद्बीजपूर्विका न्यसेत्।

तथा च निबन्धे : स्वस्वबीजादिकं सर्वं मूर्ध्नीशान नमोभवम्। न्यसेद्वक्त्रेतत्पुरुषमकरध्वजमात्मवित्। हृद्यघोरकुमाराख्यं कन्दर्पं तदन्तरम्। गुह्यदेशे प्रविन्यस्येद्वामदेवादि-मन्मथम्। सद्योजातं कामदेवं पादयोर्विन्यसेत्ततः। ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु तान्। प्रविन्यस्येद्यथापूर्वं भृगुव्योमाग्निसंस्थिम्। सत्यादि-पञ्चह्रस्वाढ्यं लीजमेषां प्रकीर्तितम् ॥ ५३ ॥

ततो बाणन्यासः : द्रां द्राविण्यै नमः अंगुष्ठयोः। द्रीं क्षोभिण्यै नमः तर्जन्योः। क्लीं वशीकरण्यै नमः मध्यमयोः। ब्लूं आकर्षिण्यै नमः अनामिकयोः। सः सम्मोहिन्यै नमः कनिष्ठयोः।

तथा च ज्ञानार्णवे : पञ्चबाणान् क्रमेणैव करांगुलीषु विन्यसेत्।

अंगुष्ठादिकनिष्ठान्तं क्रमेण परमेश्वरि ॥ ५४ ॥ ततस्तेषु स्थानेषु यथाक्रमं कामन्यासं कुर्यात् ।

यथा : ह्रीं कामाय नमः, क्लीं मन्मथाय नमः, ऐं कन्दर्पाय नमः, ब्लूं मकरध्वजाय नमः, स्त्रीं मीनकेतनाय नमः । ततो मूर्ध्नि पादे वक्त्रे गुह्ये हृदि पूर्वोक्तबाणान् कामांश्च न्यसेत् ।

तथा ज्ञानार्णवे : थान्तद्वयं समुद्धृत्य वह्निसंस्थं क्रमेण हि । मुखवृत्तेन नेत्रेण वामेन परिमण्डितम् । वाणद्वयमिदं प्रोक्तं मादनं भूमिसंस्थितम् । चतुर्थस्वरविन्द्वाढ्यं नादरूपं वरानने । फान्तं शक्रसमारूढं वामकर्णविभूषितम् । विन्दुनादसमायुक्तं सर्गवांश्चन्द्रमाः प्रिये । पञ्चबाणान् महेशानि नामानि शृणु पार्वति । द्रावणक्षोभणौ वश्यस्तथाकर्षणसंज्ञकः । तथोन्मादः क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि । न्यासे तु सर्वत्र स्त्रिलिङ्गेन प्रयोगः ।

तथा च निबन्धे : द्रामाद्यांद्राविणीं मूर्ध्नि द्रीमाद्यां क्षोभणीं पदे । क्लीं वशीकरणीं वक्त्रे गुह्ये ब्लूं बीजपूर्विकाम् । आकर्षणीं हृदि पुनः सर्गान्तिभृंगुसंयुताम् । सम्मोहनीं क्रमादेवं बाण न्यासोऽयमीरितः । तत्रोन्मादसम्मोहनयोरेकपर्यायत्वम् । कामास्तत्रैव विज्ञेयास्तेषां बीजानि संशृणु । पराबीजं मध्यबाणं वाग्भवं पमेश्वरि । तूर्यबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजञ्च क्रमात् प्रिये । पञ्चकामा इमे देवि नामानि शृणु वल्लभे । काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः । मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमः परिकीर्तितः । पञ्चकामांस्ततो देवि बाणस्थानेषु विन्यसेत् ॥ ५५ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्स्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्स्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्स्रूं मध्यमाभ्यां वषट् । ह्स्रैं अनामिकाभ्यां हुं । ह्स्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ह्स्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु । षड्दीर्घयुक्तेनाद्येन बीजेनाङ्गक्रिया मनोः ॥ ५६ ॥

ततः सुभगादिन्यासः : भाले ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः । भ्रूमध्ये ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः । वदने ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः । कण्ठिकायां ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै नमः । कण्ठे ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः । हृदि ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः । नाभौ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः । लिङ्गमूले ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः ।

तथा च निबन्धे : भाल-भ्रूमध्ये-वदन-कण्ठिकाकण्ठहृत्सु च। नाभ्यधिष्ठानयोः पञ्चताराद्याः सुभगादिकाः। न्यस्तव्या विधिना देव्यो मन्त्रिणा सुभगा भगा। भगसर्पिण्यथ परा भगमालिन्यतः परम्। अनङ्गानङ्गकुसुमा भूयश्चानङ्गमेखला। अनङ्गमदना सर्वा मदविभ्रम-विह्वलाः। वाक्कामबीजं ब्लूं स्त्रीं सस्ताराः पञ्चोदितास्त्वमी॥

ततो भूषणन्यासः। तद्यथा : शिरसि अं नमः। भाले आं नमः। भ्रुवोः इं ईं। कर्णयोः उं ऊं। नेत्रयोः ऋं ॠं। नसि लृं। गण्डयोः ॡं एं। ओष्ठयोः ऐं ओं। अधोदन्ते औं। ऊर्ध्वदन्ते अं। मुखे अः। चिबुके कं। गले खं। कण्ठे गं। पार्श्वयोः घं ङं। स्तनद्वन्द्वे चं छं। दोर्मूलयोः जं झं। कूर्परयोः ञं टं। पाण्योः ठं डं। करपृष्ठयोः ढं णं। नाभौ तं। गुह्ये थं। ऊर्वोः दं धं। जानुनोः नं पं। जङ्घयोः फं बं। स्फिचोः भं मं। पत्तलयोः यं। चरणांगुष्ठयोः रं। काञ्च्यां वं। ग्रीवायां लं। कटके लं। हृदि शं। गुह्ये क्षं। कर्णयोः षं। गण्डयोः सं। मौलौ हं। सर्वत्र नमोऽन्तेन न्यसेत्।

तथा च तन्त्रान्तरे : न्यसेच्छिरसिभालभ्रूकर्णाक्षियुगले नसि। गण्डयोरोष्ठयोर्दन्तपंक्त्योरास्ये न्यसेत्स्वरान्। चिबुके च गले कण्ठे पार्श्वयोः स्तनयुग्मके। दोर्मूलयोः कूर्परयोः पाण्योस्तत्पृष्ठदेशतः। नाभौ गुह्ये पुनश्चोर्वोर्जानुनोर्जङ्घयोस्ततः। स्फिचोः पत्तलयोः पश्चाच्चरणांगुष्ठयोर्द्वयोः। कादिवान्तान्न्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः। काञ्च्यां ग्रैवेयके पश्चात्कटके हृदि गुह्यके। कर्णयोर्गण्डयोर्मौलौ बललान् शक्षषान्सहौ। अष्टाविमान्प्रविन्यसदेवं देशिकसत्तमः॥ ५८॥ ततस्त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा ध्यायेत्।

यथा : उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां, रक्तालिप्तपयोधारां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्। हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्रक्तारविन्दश्रियं देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम्।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं कुर्यात्॥ ५९॥

तत्र आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं सम्पूज्य पूर्वादि केशरेषु मध्ये च—इच्छा ज्ञाना क्रिया पश्चात् कामिनी कामदायिनी। रती रतिप्रिया नन्दा नन्दिनी स्यान्मनोन्मनी। एताः प्रणवादि नमोऽन्ताः पूजयेत्। तत ऐं परायै अपरायै परापरायै ह्सौः सदाशिव-महाप्रेत पद्मासनाय नमः। इति सम्पूज्य प्राग्योनिमध्ययोन्यन्तराले श्रीविद्योक्त-गुरुपंक्तीः पूजयेत्।

निबन्धे वाग्भवं लोहितो रायै श्रीकण्ठो लोहितोऽनलः। दीर्घवान ये परा पश्चादपरायै ह्सौः पुनः। सदाशिवमहाप्रेतं ङेऽन्तं पद्मासनं नमः। अनेन मनुना दद्यादासनं श्रीगुरुक्रमः। प्राङ्मध्ययोन्यन्तराले पूजयेत् कल्पयेत्ततः। पञ्चभिः प्रणवैर्मूर्ति तस्यामावाह्य देवताम्। पूजयेदागमोक्तेन विधानेन समाहितः। तारा वाक्शक्ति कमला ह्स्ख्फ्रें ह्सौः स्मृताः। तदशक्तौ तु ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरु पादुकाभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ आचार्येभ्यो नमः, ॐ आचार्यपादुकाभ्यो नमः ॥ ६० ॥

अस्य पूजायन्त्रस्तु शारदायाम् : पद्ममष्टदलोपेतं नवयोन्याढ्यकर्णिकम्। चतुर्द्वारसमायुक्तं भूगृहं विलिखेत्ततः ॥ ६१ ॥ (चित्र २७)।

ततः ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें ह्सौः इति मन्त्रेण विन्दुचक्रे देव्या मूर्ति सङ्कल्प्य त्रिखण्डमुद्रया पूर्ववद्देवीं ध्यात्वा आवाहयेत्। ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव। पञ्चभिः प्रणवैर्मूर्त्ति तस्यामावाह्य देवताम्। तारा वाक्शक्तिकमला ह्स्ख्फ्रें ह्सौः स्मृताः। इत्यावाह्यावाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत् ॥

तद्यथा : देव्या वामकोणे ऐं रत्यै नमः। दक्षिणकोणे क्लीं प्रीत्यै नमः। अग्निकोणे सौः मनोभवायै नमः। ततः केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च पूर्वोक्ताङ्गमन्त्रेण पूजयेत्।

तथा च ज्ञानार्णवे : अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम्। ततः उत्तरे द्रां द्राविण्यै नमः, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, दक्षिणे क्लीं वशीकरण्यै नमः, ब्लूं आकर्षण्यै नमः। अग्रे सः सम्मोहिन्यै नमः। ततः पञ्चकामान पूजयेत्।

यथा : उत्तरे ह्रीं कामाय नमः, क्लीं मन्मथाय। दक्षिणे ऐं कन्दर्पाय, ब्लूं मकरध्वजाय। अग्रे स्त्रीं मीनकेतवे। नमः सर्वत्र।

तथा च ज्ञानार्णवे : उत्तरस्यां द्वयं देवि दक्षिणस्यां द्वयं दिशि। अग्रे चैकं क्रमेणैव पञ्चबाणान् ततो यजेत्। पञ्चकामांस्तथा देवि बाणवत् परिपूजयेत्।

तथा च तत्रैव : पञ्चकामाः पराबीजं मध्यबाणं वाग्भवं परमेश्वरि।

तूर्यंबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजञ्च क्रमात् प्रिये । पञ्चकामा इमे देवि नामानि शृणु वल्लभे । काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः । मीनकेतुर्महेशानि पञ्चमः परिकीर्तितः । ततोऽष्टयोनिषु पूर्वादिक्रमेण ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः । एवं ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै । ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै । ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै । ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै । ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै । ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै । ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै । नमः सर्वत्र । ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः एवं ॐ रुद्रमाहेश्वरीभ्याम्, ॐ चण्डकौमारीभ्यां, ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां, ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां, ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां, ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां, ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्याम् ।

तथा च निबन्धे : अष्टयोनिष्वष्टशक्तीः पूजयेत् सुभगादिकाः । मातरो भैरवाङ्कस्था मदविभ्रमविह्वलाः । अष्टपत्रेषु सम्पूज्या यथावत् कुसुमादिभिः । ततस्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । किन्तु नैवेद्यानन्तरं श्रीविद्योक्तबलिचतुष्टयमत्र देयमिति ॥ ६२ ॥

अस्य पुरश्चरणं दशलक्षजपः । होमस्तु पलाशकुसुमेन द्वादशसहस्रम् ।

तथा च निबन्धे : दीक्षां प्राप्य जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः । पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षजैः ॥ ६३ ॥

अथ सम्पत्प्रदा-भैरवी

ज्ञानार्णवे : यथेयं त्रिपुरा बाला तथा त्रिपुरभैरवी । सम्पत्प्रदा नाम तस्याः शृणु निर्मलमानसे । शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ वाग्भवं तदनन्तरम् । कामबीजं तथा देवि शिवचंद्रान्वितं ततः । पृथ्वीबीजान्तवह्न्याढ्यं तार्तीयं शृणु वल्लभे । शक्ति बीजे महेशानि शिववह्नी नियोजयेत् । कुमार्याः परमेशानि हित्वा सर्गन्तु बैन्दवम् । त्रिपुराभैरवी देवी महासम्पत्प्रदा मता ॥

अस्यार्थः : त्रिपुराभैरवी विसर्गरहिता चेत् सम्पत्प्रदा भवति ॥ ६४ ॥

तन्त्रान्तरे : सम्पत्प्रदा-भैरवी या तत्र तार्तीय बीजके । सर्गं हित्वा ततो विन्दुं निक्षिपेत् सुरसुन्दरि ॥ ६५ ॥

अस्या ध्यानम् : आताम्रार्कसहस्राभां स्फुरच्चन्द्रकलाजटाम् । किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रितमौक्तिकाम् । स्रवद्रुधिरपङ्काढ्य मुण्डमाला-

विराजिताम् । नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम् । मुक्ताहार-लताराजत्पीनोन्नतघटस्तनीम् । रक्ताम्बर-परीधानां यौवनोन्मत्त-रूपिणीम् । पुस्तकञ्चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम् । वरदानप्रदां नित्यां महासम्पत्प्रदां स्मरेत् । न्यासपूजादिकञ्च पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

अङ्गमन्त्रे तु विशेषः । द्विरुक्तैस्तु त्रिभिर्बीजैः कराङ्गन्यासकल्पना । ॥ ६७ ॥

अस्य पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः ।

ज्ञानार्णवे : बालावदस्याः पूजादि कुर्यात्साधकसत्तमः । गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥ ६८ ॥

तन्त्रान्तरे : न्यासपूजादिकं सर्वं कुमार्या इव सुव्रते । एकलक्षं जपेन्मन्त्रं सिद्धये साधकोत्तमः ॥ इति वचनादेकलक्षजपपुरश्चरणमिति केचित् । सिद्धविद्यात्वात् ॥ ६९ ॥

अथ कौलेशभैरवी

ज्ञानार्णवे : सम्पत्प्रदाभैरवीवद्विद्धि कौलेशभैरवीम् । हसाद्या सैव देवेशि त्रिषु बीजेषु पार्वति । इत्यन्तु सहराद्या स्याद्ध्यानपूजादिकं तथा ।

अस्यार्थः : त्रिकूटे सकारादिश्चेत्तदा कौलेशभैरवी भवति ॥७०॥

अस्याः पूजाध्यानादिकं सम्पत्प्रदाभैरवीवद्बोध्यम् ॥ ७१ ॥

अथ सकलसिद्धिदा-भैरवी

ज्ञानार्णवे : एतस्या एव विद्याया आद्यन्ते रेफवर्जिते । तदेयं परमेशानि नाम्ना सकलसिद्धिदा । सम्पत्प्रदाभैरवीवद्ध्यानपूजादिकं प्रिये ।

अस्यार्थः : कौलेश-भैरवी आद्यन्ते रेफवर्जिता चेत्तदा सकल-सिद्धिदा-भैरवी भवति ध्यानपूजादिकन्तु सम्पत्प्रदावत् ॥ ७२ ॥

अथ भयविध्वंसिनी-भैरवी

सम्पत्प्रदा-भैरवी आद्यन्ते रेफरहिता चेत्, तदा भयविध्वंसिनी भैरवी भवति । दक्षिणामूर्तौ तथा दर्शनात्पूजादिकन्तु सम्पत्प्रदावत् । ॥ ७३ ॥

अथ चैतन्यभैरवी :

ज्ञानार्णवे : वाग्भवं बीजमुच्चार्य जीवप्राणसमन्वितम् । सकला

भुवनेशानी द्वितीयं बीजमुद्धरेत् । जीवं प्राणं वह्निसंस्थं शक्रस्वरविभूषितम् । विसर्गाढ्यं महेशानि विद्या त्रैलोच्यमातृका ॥ ७४ ॥

अस्यार्थः : चन्द्रशिवद्वादशस्वरसंयुक्तं विन्दुनादाढ्यम् इति प्रथमं, चन्द्रकामपृथ्वीमहामाया इति द्वितीयम्, चन्द्र-शिववह्निबीजं चतुर्दशस्वरयुक्तं विसर्गाढ्यञ्च इति तृतीयम् ॥ ७५ ॥

अस्याः पूजायन्त्रं ज्ञानार्णवे : त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं वसुपत्रं वरानने । चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥ ७६ ॥ (चित्र २८) ।

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादिकं विधाय आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं कर्म समाप्य हृत्पद्मस्य पूर्वादिक्रमेण केशरेषु ॐ वामायै नमः एवं ज्येष्ठायै रौद्र्यै अम्बिकायै इच्छाये ज्ञानायै क्रियायै कुब्जिकायै चित्रायै विषघ्निकायै भूचर्यै आनन्दायै मध्ये ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः । सम्पत्प्रदाबालाकौलेशीसकलसिद्धिदाविद्यानां एता वा पीठशक्तयः ज्ञानार्णवोक्तत्वात् ॥ ७७ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः । मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः । हृदि चैतन्य-भैरव्यै देवतायै नमः ॥ ७८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : पूर्वबीजमुच्चार्यं अंगुष्ठाभ्यां नमः । द्वितीयबीजमुच्चार्य तर्जनीभ्यां स्वाहा । तृतीयबीजमुच्चार्य मध्यमाभ्यां वषट् । पुनः प्रथमबीमुच्चार्य अनामिकाभ्यां हुं । द्वितीयबीजमुच्चार्य कनिष्ठाभ्यां वौषट् । तृतीयबीजमुच्चार्य करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

तथा च तत्रैव : द्विरावृत्त्या षडङ्गानि न्यासं सर्वाङ्गरक्षणम् ।

ततो ध्यानम् : उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम् । मुक्काटाग्रलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बरान्विताम् । पाशांकुशधरां नित्यां वामहस्ते कपालिनीम् । वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नत घनस्तनीम् ॥

एवं ध्यात्वा, मानसैः सम्पूज्य, शङ्खस्थापनं कृत्वा, आधारशक्त्यादिपीठपूजां विधाय वामाज्येष्ठादिपीठशक्तीः पीठमनुञ्च पूजयेत् ।

ततो भैरव्युक्त गुरुपंक्तीः सम्पूज्य, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय आवरणपूजामारभेत् ॥ ८० ॥

तद्यथा : अग्निकोणे प्रथमं बीजमुच्चार्य हृदयाय नमः । ईशाने द्वितीयं बीजमुच्चार्य शिरसे स्वाहा । नैर्ऋते तृतीयं बीजमुच्चार्य शिखायै वषट् । वायुकोणे पुनः प्रथमं बीजमुच्चार्य कवचाय हुं । मध्ये द्वितीयं बीजमुच्चार्य नेत्रत्रयाय वौषट् चतुर्दिक तृतीयबीमुच्चार्य अस्त्राय फट् ।

ततः पूर्ववद्रत्यादिकं सम्पूज्य, अग्रे ॐ वसन्ताय नमः, वामे ॐ कामदेवाय नमः, दक्षिणे ॐ चापाय नमः । ततः पूर्ववद्बाणान् पूजयेत् ।

ततः षट्कोणे पूर्वादि ॐ डाकिन्यै नमः । एवं राकिण्यै लाकिन्यै काकिन्यै शाकिन्यै हाकिन्यै इति प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् । ततोऽष्टदलेषु पूर्वादि पूर्वोक्तानङ्गकुसुमादीन् पूजयेत् । पत्राग्रेषु पूर्वादि ॐ परभृताय नमः, एभं सारसाय शुकाय मेघाह्वयाय मेघाय इति वा अपाङ्गाय भ्रूविलासाय हावाय भावाय ।

ततः इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् । अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च ज्ञानार्णवे : लक्ष्यसंख्याकं जपेन्मन्त्रमित्यादि ॥ ८१ ॥

अथ कामेश्वरीभैरवी

ज्ञानार्णवे : कामेश्वरी च रुद्रार्णा पूर्वसिंहासने स्थिता । एतस्या एव विद्याया बीजद्वयमुदाहृतम् । तदन्ते परमेशानि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । एतस्या एव तर्तीयं रुद्रार्णा परमेश्वरी । पूजाध्यानादिकं सर्वं चैतन्या इव पूर्ववत् । त्रिकोणेषु विशेषोऽस्ति कथयामि वरानने । अग्रकोण क्रमेणैव नित्यां क्लिन्नां मदद्रवाम् । षडङ्गावरणं पश्चात् पूजयेत् सर्वसिद्धये ॥ ८२ ॥

अथ षट्कूटाभैरवी

ज्ञानार्णवे : डाकिनी राकिणी बीजे लाकिनी काकिनी युगम् । शाकिनी हाकिनी बीजे आहृत्य सुरसुन्दरि । आद्यमैकारसंयुक्तमन्यदीकारमण्डितम् । शत्रुस्वरान्वितं देवि तार्तीयं बीजमालिखेत् । विन्दुनादकलाक्रान्तं तृतीयं शैलसम्भवे । तृतीयं बीजं सविसर्गमिति केचित् ॥ ८३ ॥

तन्त्रान्तरे : उरौ क्ष्मामादनं बीजं शिवमत्र त्रिधालिखेत् । अर्केण मायाशक्राभ्यां क्रम तन्मण्डितं कुरु । विन्दुनादान्वितश्चाद्ययुग्ममन्त्यं विसर्गवत् ॥ ८४ ॥ ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि सर्वभूतनिकृन्तनम् । बालसूर्यप्रभां देवीं जवाकुसुमसन्निभाम् । मुण्डमालावलीरम्यां बालसूर्यसमांशुकाम् । सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम् । पाशांकुशौ पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम् । दधतीमिति शेषः ॥ ८५ ॥

द्विरावृत्त्या षडङ्गानि विधाय परमेश्वरि । यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि

त्रिकोणं तत्पुटं लिखेत् । वहिरष्टदलं पद्मं रविपत्रं ततो लिखेत् । चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥ ८६ ॥ (चित्र २६)

षडङ्गावरणं देवि पूर्ववत् पूजयेत् शिवे । रत्यादित्रितयं देवि त्रिकोणे परिपूजयेत् । डाकिन्याद्यस्तु षट्कोणे वसुपत्रे ततः परम् । ब्राह्म्यादियुगलं पश्चात् रविपत्रे ततः परम् । बालायाः पीठशक्तिस्तु वामाद्यः पूजयेत् क्रमात् । चतुरस्रे लोकपालान् सायुधान् परमेश्वरि । अनेनैव विधानेन नित्याख्यां भैरवीं यजेत् ॥ ८७ ॥

अथ नित्याभैरवी

ज्ञानार्णवे : एतस्या एव विद्यायः षड्वर्णान् क्रमशः स्थितान् । विपरीतान् प्रौढे विद्येयं भोगमोक्षदा । न्यासपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत् ॥ ८८ ॥

अथ रुद्रभैरवी

ज्ञानार्णवे : शिवचन्द्रो मदनान्तं पान्तं वह्निसमन्वितम् । शक्तिभिन्नं विन्दुनादकलाढ्यं वाग्भवं प्रिये । सम्पत्प्रदायै भैरव्याः कामराजं तदेव हि । सदाशिवस्य बीजन्तु महासिंहासनस्य च । एषा विद्या महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते ।

अस्यार्थः : शिवचन्द्रकान्तपान्तवह्नियुक्तम् एकादशस्वरविशिष्टं विन्दुनादकलान्वितं वाग्भवं बीजम् । शिवचन्द्रकामपृथ्वीवह्निचतुर्थ-स्वरविशिष्टं नादविन्दुकलान्वितं कामराजबीजं प्रेतबीजं शक्तिकूटं तृतीयम् ॥ ८९ ॥

अस्याः पूजायन्त्रम् : त्रिकोणञ्चैव वृत्तञ्च वृत्ताष्टदलपङ्कजम् । वृत्तभूमण्डलञ्चेत्यादि ॥ ९० ॥ (चित्र ३०) ।

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय चैतन्यभैरवीवत् पीठन्यासं कुर्यात् ।

यथा : आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं विन्यस्य, पूर्वादिक्रमेण ॐ वामायै नमः, एवं ज्येष्ठायै रौद्र्यै काल्यै कलविकरिण्यै बलप्रमथिन्यै सर्वभूतदमन्यै, मध्ये ॐ मनोन्मन्यै इति पीठशक्तीर्विन्यस्य पीठमनुं न्यसेत् ।

अत्र पीठमन्त्रस्तु : अघोरे ऐं घोरे ह्रीं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो घोरघोरतरे श्रीं नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ऐं ह्रीं श्रीं ।

तथा च ज्ञानार्णवे : अघोरे वाग्भवं पश्चाद्घोरे तु भुवनेश्वरी। सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो घोर-घोरतरे रमाम्। नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यो देव्या बीजत्रय लिखेत्। त्रिंशद्भिश्च त्रिभिर्वर्णैर्विद्येयं कथिता प्रिये ॥ ९१ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदि रुद्रभैरव्यै देवतायै नमः ॥ ९२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : प्रथमं बीजमुच्चार्य अंगुष्ठाभ्यां नमः। द्वितीयं बीजमुच्चार्य तर्जनीभ्यां स्वाहा। तृतीयं बीजमुच्चार्य मध्यमाभ्यां वषट्। पुनः प्रथमं बीजमुच्चार्य अनामिकाभ्यां हुं। द्वितीयं बीजमुच्चार्य कनिष्ठाभ्यां वौषट्। तृतीयं बीजमुच्चार्यं करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु ॥ ९३ ॥

ततो ध्यानम् : उद्यद्भानुसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम्। नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम्। वमद्रुधिरमुण्डालीकलितां रक्तवाससीम्। त्रिशूलं डमरुं खड्गं तथा खेटकमेव च। पिनाकञ्च शरान् देवीं पाशांकुशयुगं क्रमात्। पुस्तकञ्चाक्षमालाञ्च शिवसिंहासनस्थिताम् ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य पूर्ववत् शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ९४ ॥ ततश्चैतन्यभैरव्युक्तपीठपूजां विधाय, एतन्मन्त्रोक्तपीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य, पुनर्ध्यात्वा आवाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय, आवरणपूजामारभेत।

यथा : अग्निकोणे प्रथमं बीजमुच्चार्य हृदयाय नमः। ईशाने द्वितीयं बीजमुच्चार्य शिरसे स्वाहा। नैर्ऋते तृतीयं बीजमुच्चार्यं शिखायै वषट्। वायौ पुनः प्रथमं बीजमुच्चार्य कवचाय हुम्। मध्ये पुनर्द्वितीयबीजमुच्चार्यं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु पुनस्तृतीयं बीजमुच्चार्य अस्त्राय फट्। ततस्त्रिकोणे रत्नयादिक्रमभ्यर्च्य पत्रमूले अनङ्गकुसुमादिकः। पूजयेत्। पत्रेषु पूर्वादि असिताङ्गब्राह्मयादीन् सम्पूज्य भुगृहे इन्द्रादिलोकपालान् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ९५ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च : लक्षं सम्पूज्य मन्त्रज्ञो मन्त्रं मन्त्रविदां वरः। इति वचनात् ॥ ९६ ॥

अथ भुवनेश्वरीभैरवी

ज्ञानार्णवे : हसाद्यं वाग्भवञ्चाद्यं हसकान्ते सुरेश्वरि। भूबीजं भुवनेशानी द्वितीयं बीजमुद्धृतम ॥ शिवचन्द्रौ महेशानि भुवनेशो च भैरवी।

तथा च त्रिपुरार्णवे : हंसास्त्रयो दन्त्यसकाररूढा वस्वब्धिपंक्तिस्वर-संविभिन्नाः। आदौ सविन्दु परतो विसर्गी मध्यो विरञ्चीन्द्रहराग्नियुक्तः।

अस्यार्थः : शिवचन्द्रवाग्भवमिति प्रथमं वीजम्। शिवचन्द्रकाम-पृथिवीमहामाया इति द्वितीयं बीजम्। शिवचन्द्रचतुर्दशस्वरः सविसर्गं इति तृतीयं बीजम्। अस्याः पूजायन्त्रं चैतन्य-भैरवीवद्बोध्यम् ॥ ९७ ॥

पूजनन्तु : प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय चैतन्यभैरव्युक्त-पीठन्यासं कृत्वा, ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

यथा : शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदि भुवनेश्वरीभैरव्यै देवतायै नमः ॥ ९८ ॥ ततः कराङ्गन्यासौ।

तथा च ज्ञानार्णवे : षड्दीर्घभाजा मध्येन कुर्यादङ्गक्रियां मनोः। तेन षड्दीर्घयुक्तेन मध्यवीजेन कराङ्गन्यासः।

यथा : ह्स्क्ल्ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। एवं ह्स्क्ल्ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादिना न्यसेत्। एवं हृदयादिषु ॥ ९९ ॥

ततो ध्यानम् : जवाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम्। चन्द्ररेखां जटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससीम्। नानलङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्त-नीम्। पाशांकुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां श्रये ॥

अन्यत् सर्वं चैतन्यभैरवीवत् करणीयम् ॥ १०० ॥

भुवनेश्या भेदान्तरम्

भुवनेश्याश्च भैरव्या भेदान्तरमथोयते। सहाद्या सैव देवेशि तदा सा सकलेश्वरी ॥ ध्यानपूजादिकं सर्वमेतस्या एव पूर्ववत्। इयं सहाद्या चेत् सकलेश्वरी। ध्यानपूजादिकन्तु पूर्ववत् ॥ १ ॥

अथ त्रिपुराबाला-मन्त्रः

शारदायाम् : अधरो विन्दुमानाद्यं ब्रह्मेन्द्रस्थः शशीयुतः। द्वितीयं भृगुसर्गाढ्यो मनुस्तार्तीय ईरितः। एषा बालेति विख्याता त्रैलोक्यवश-कारिणी।

अस्यार्थः : वाग्भवं कामबीजं चन्द्रबीजञ्च सविसर्गं चतुर्दशस्वरयुक्तम् ॥ २ ॥

अस्याः पूजादिकन्तु त्रिपुराभैरवीवत्। शारदायामुक्तत्वात्। ज्ञानार्णवे तु विशेष उक्तः। न्यासादिकन्तु एतद्बीजेनैव कर्त्तव्यम्।

यथा : षडङ्गमाचरेद्देवि द्विरावृत्त्या क्रमेण तु ॥ ३ ॥ अस्य पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः।

तथा च ज्ञानार्णवे : वर्गलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं हवनं भवेत् । तर्पणन्तु तथा कुर्यात्सर्वसौभाग्यभाग्भवेत् । इतरेषां लक्षजपः श्रीविद्योक्तत्वात् ॥ ४ ॥

मन्त्रान्तरम् :

ज्ञानार्णवे : सूर्यस्वरं समुच्चार्य विन्दुनादकलात्मकम् । स्वरान्तं पृथिवीसंस्थं तुर्यस्वरसमन्वितम् । विन्दुनादकलाक्रान्तं सर्गवान्भृगुरव्ययः । शक्रस्वरसमायुक्ता विद्येयं त्र्यक्षरी मता ॥ अव्ययो विन्दुः । दक्षिणामूर्त्तिसंहितायामप्येवम् । एषा विसर्गविन्द्वन्ता शप्ता ॥ ५ ॥ एतां विद्यामधिकृत्य सारसमुच्चयादौ शापबोधनात् ।

तद्यथा : विद्यामूलोत्पत्तिरेषा मयोक्ता ज्ञातव्येयं सर्वदा सिद्धिकामैः । देव्या शप्ता येन विद्येयमाद्या पूर्वं तेन प्राणहीना भवेत् सा । इति ॥६॥

मुण्डमालातन्त्रेऽपि : कुमारी या च विद्येयं त्वया शप्ता पतिव्रते । तथाद्येन तु लुप्ताऽसौ मध्यनेन तु कीलिता । अन्तिमेन तु सम्भिन्ना तेन विद्या न सिध्यति । न चैवं शारदोक्तविद्यापि शप्ता स्यादिति वाच्यम् । तस्या ज्ञानार्णवोक्तविन्दुघटितस्य शप्तव्यत्वात् ॥ ७ ॥

शापोद्धारमाह मुण्डमालातन्त्रे : केवलं शिवरूपेण शक्तिरूपेण केवलम् । मया प्रतिष्ठिता विद्या इति । तेन हकारसकारौ वाग्भवे कामराजे च तृतीयबीजे च हकारः । वक्ष्यमाणसारसमुच्चये तथा दर्शनात् ॥ ८ ॥

त्रिपुरासारेऽपि : शिवशक्तिबीजमतएव शम्भुना निहितं तयोरुपरि पूर्वबीजयोः । स्वकुलं परोपरि च मध्यमाधरे दहनं ततः प्रभृति सोऽर्जिताभवत् । मध्यमाधरे मध्यबीजस्य पश्चात् ॥ ९ ॥

रुद्रयामलेऽपि : वाग्भवं प्रथमं देवि कामबीजं द्वितीयकम् । तृतीयं शक्तिबीजन्तु शिवयुक्तं सदा भवेत् ॥ १० ॥ एषा बाला समाख्याता सर्वदोषविवर्जिता । (आदिबीजं भवेन्मध्ये मध्यश्चादौ नियोजयेत् । एवं यो जपते मन्त्रं त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् । साध्यमध्येऽन्तिमं मध्ये मध्यश्चादौ नियोजयेत् । एवं कृत्वा जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।) ॥ ११ ॥

मन्त्रान्तरम् :

श्रीक्रमे : वाग्भवं क्लेदिनीबीजमोकारान्तं पठेत् । शक्तिमोकारसंयुक्तं विसर्गं तदधः पठेत् । विन्दुनादशिखाक्रान्तं बीजं परमदुर्लभम्

॥ १२ ॥ एतद्वीजत्रयं देवि सौः क्लीश्च तदनन्तरम् । इयं पञ्चाक्षरी विद्या कथिता भुवि दुर्लभा ॥ १३ ॥

मन्त्रान्तरं तत्रैव : बालाबीजत्रयं देवि हंसाद्यं वा जपेत्सुधीः । हंसान्तं वा महाभागे सुप्तादिदोषशुद्धये ॥ १४ ॥

अत्रैव : पाशबीजं महेशानि शक्तिशैवं सवह्निकम् । द्वादशस्वरसंयुक्तं नादविन्दुविभूषितम् । कामराजं प्रवक्ष्यामि ह्लींकारं शक्तिशैवकम् । मादनश्चेन्द्रबीजश्च वह्निवामाक्षिविन्दुमत् ॥ शक्तिकूटं महादेवि क्रोङ्कारं शक्तिशैवकम् । वह्निबीजं मनोर्युक्तं नादविन्दुससर्गकम् । चतुर्दशाक्षरी विद्या षोडशीं शृणु चाम्बिके । हंसबीजं ततः पश्चात्षोडशी कथिता मया ॥ १५ ॥

अथ नवकूटाबाला :

तत्रैव : बालाबीजत्रयं देवि कूटत्रयं नवाक्षरी ॥ वियत्कूटत्रयं देवि भैरव्या नवकूटकम् ॥ १६ ॥

मन्त्रान्तरम् श्रीक्रमे : शिवः शक्तिश्च वाग्बीजं नादविन्दुकलान्वितम् । वाग्भवं कथितं देवि कामराजं शृणु प्रिये । शिवशक्तिमादनेन्द्र वह्निमायासमन्वितम् । नादविन्दुकलाक्रान्तं कूटं परमदुर्लभम् । शिवश्चन्द्रश्च सत्यान्तः सर्गविन्दुकलान्वितम् । एषा नवाक्षरी बाला सर्वदोषविवर्जिता ।

अस्यार्थः : शिवश्चन्द्रवाग्भवं प्रथमम्, शिवचन्द्रकामभूवह्नितुर्यस्वरविन्दुयुक्तं द्वितीयम् । शिवचन्द्रचतुर्दशस्वरविन्दुसर्गयुक्तं तृतीयम् । ॥ १७ ॥ अपरा चन्द्रादिः ।

तथा च त्रिपुरासारे : भैरवीयमुदिताऽकुलपूर्वा देशिकैर्यदि भवेत् कुलपूर्वा । सैव शीघ्रफलदा भुवि विद्येत्युच्यते पशुजनेष्वतिगोप्या ।

मन्त्रान्तरम् :

त्रिपुरासारे : शिवाष्टमं केवलमादिबीजं भगस्य पूर्वाष्टमबीजमन्यत् । परं शिवोऽन्तं गणिता त्रिवर्णा सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या ॥ १८ ॥

अस्यार्थः : बाला तु त्रिविधा विन्द्वन्ता विन्दुविसर्गान्ता विसर्गान्ता च ।

अत्र विन्द्वन्तमुद्धरति : शिवाष्टमम् ऐकारः, सम्मोहनाख्यं शिवाष्टममिति । शिव ऊकारः तस्याष्टमम् ऐकारः केवलं विन्दुः के मस्तके वलते इति व्युत्पत्त्या अनुस्वारस्तद्युक्तम् अर्श आदित्वात् । प्रथमबीजम् एतेन

वाग्भवं बीजम्। भग एकारः तस्य पूर्वाष्टमं बीजम् इकारं द्वितीयम्। एवं शिरसि न्यासयोन्यम् ओकारस्तस्यान्ते यत् औकारं तृतीयं बीजं केवलम् एतेन बीजत्रयं विन्दुनादविशिष्टम्।

मन्त्रान्तरं तत्रैव : शक्तिः शिवो वह्निबीजं द्वादशस्वरविन्दुकम्। शक्तिर्महेशः कामश्च इन्द्रो वह्नीन्दु मायया॥ शक्तिः शिवश्च वह्निश्च मनुस्वरविसर्गकः। नादविन्दुकलायुक्तं बीजमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ २० ॥ एतासां यन्त्रध्यानपूजादिकं भैरवीवत्। पुरश्चरणन्तु लक्षजपः। श्रीक्रमादौ तथा दर्शनात् ॥ २१ ॥

एतासां दीपनीविद्या श्रीक्रमे : वदयुग्मं महेशानि वाग्वादिनि ततः परम्। एषा त्वष्टाक्षरी विद्या वाग्भवाद्ये नियोजयेत् ॥ २२ ॥ क्लिन्ने क्लेदिनि देवेशि महामोक्षं ततः कुरु। कामराजं समुच्चार्य प्रणवं तदनन्तरम् ॥ महामोक्षं कुरु पश्चात्शक्तिकूटं तथोच्चरेत्। जपेदादौ जपेत्पश्चात्सप्तवारमनुक्रमात् ॥ २३ ॥

अथान्नपूर्णा-भैरवी :

तारश्च भुवनेशानी श्रीबीजं कामबीजकम्। हृदन्ते भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः। अन्नपूर्णे ठयुगलं विद्येयं विंशदक्षरी ॥ २४ ॥

तथा च कल्पे : कामबीजं विना देवि श्रीबीजपूर्विका यदा। ऊनविंशाक्षरी देवि धनधान्यसमृद्धिदा ॥ २५ ॥

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादि-सामान्पूजापद्धत्युक्तपीठन्यासान्तं विधाय, केशरेषु पूर्वादि ॐ वामायै नमः, एवं ज्येष्ठायै रौद्र्यै काल्यै कलविकरण्यै बलविकरण्यै बलप्रमथन्यै सर्वभूतदमन्यै, मध्ये मनोन्मन्यै। तत्समीपे ॐ जयायै विजयायै अजितायै अपराजितायै नित्यायै विलासिन्यै दोग्ध्र्यै अघोरायै, मध्ये मङ्गलायै, सर्वत्र ॐकारादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। तदुपरि ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ॥ २६ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः, हृदि अन्नपूर्णेश्वर्यै भैरव्यै देवतायै नमः, गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः, पादयोः श्रीं शक्तये नमः, सर्वाङ्गे क्लीं कीलकाय नमः।

तथा च ज्ञानार्णवे : बीजञ्च भुवनेशानी श्रीबीजं शक्तिरुच्यते। कीलकं कामबीजं स्यादित्यादि ॥ २७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, इत्यादिना एवं हृदयादिषु ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना च।

तथा च ज्ञानार्णवे : भुवनेश्या महेशानि षड्दीर्घस्वरयुक्तया। षडङ्गानित्यादि ॥ २८ ॥

ततः पदन्यासः : मूर्ध्नि ॐ नमः। चक्षुषोः ह्रीं नमः श्रीं नमः। कर्णयोः क्लीं नमः नमो नमः। नसोर्भगवति नमः माहेश्वरि नमः। मुखे अन्नपूर्णे नमः। गुह्ये स्वाहा नमः। पुनर्गुह्यादि मूर्द्धान्तं न्यसेत्।

ज्ञानार्णवे : एकं एकं पुनश्चैकं पुनरेकं द्वयं ततः। चतुश्चतुस्तथा द्वाभ्यां पदान्येतानि पार्वति। पदान्येतानि देवेशि नवद्वारेषु विन्यसेत्। गुह्यादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं पदानां नवकं न्यसेत् ॥ २९ ॥ ततो ब्रह्मरन्ध्रमुख-हृदयमूलाधारेषु चतुर्बीजानि विन्यस्य, शेषं भ्रूमध्यनासिकाकण्ठनाभि-लिङ्गेषु पञ्चसु सर्वत्र नमोऽन्तानि न्यसेत् ॥

तदुक्तं तत्रैव : ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयमूलाधारेष्वनुक्रमात्। चतुर्बीजानि विन्यस्य परेष्वन्यांश्च विन्यसेत्। भ्रूमध्यनासिकाकण्ठनाभिलिङ्गेषु पञ्चसु। पूर्ववत्क्रमतो देवि नमः प्रभृतिकं न्यसेत्। ततो मूलेन व्यापकं विन्यस्य ध्यानं कुर्यात् ॥ ३० ॥

तद्यथा : तप्तकाञ्चनवर्णाभां बालेन्दुकृतशेखराम्। नवरत्नप्रभा-दीप्तमुकुटां कुंकुमारुणाम्। चित्रवस्त्रपरीधानां सफराक्षीं त्रिलोचनाम्। सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्। गोक्षीरधामधवलं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्। प्रसन्नवदनं शम्भुं नीलकण्ठविराजितम्। कपर्दिनं स्फुर-त्सर्पभूषणं कुन्दसन्निभम्। नृत्यन्तमनिशं हृष्टं दृष्ट्वानन्दमयीं पराम्। सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यनितम्बिनीम्। अन्नदानरतां नित्यां भूमिश्रीभ्यामलंकृताम्।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ३१ ॥

अस्याः पूजायन्त्रम् : त्रिकोणञ्च चतुःपत्रं वसुपत्रं ततः परम्। कला-पत्रञ्च भूविम्बं चतुर्द्वारं समालिखेत् ॥ ३२ ॥ (चित्र ३१)।

ततः पीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलि-दानपर्यन्तं विधाय, आवरणपूजामारभेत्। कर्णिकायामग्नीशासुरवायु-मध्येषु दिक्षु च ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत्। ततस्त्रिकोणाग्रे ॐ ह्रीं नमः शिवाय नम इति शिवं पूजयेत्। वायुकोणे ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा। इति मन्त्रेण वराहं पूजयेत्।

ज्ञानार्णवे : ॐ नमः पदमाभाष्य ततो भगवते पदम्। ततो वराह-

रूपाय भूर्भुवःस्वःपतिन्तथा। ङेऽन्तश्च भूपतित्वञ्च मे देहीति ददापय। वह्निजायान्वितो मन्त्रो वराहस्य वरानेन। दक्षिण-कोणे ॐ नमो नारायणायेति नारायणं पूजयेत्। ततो दक्षिणे वामे च ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं ग्लौं इत्यनेन भूमि-श्रियौ पूजयेत्। ततश्चतुर्दलेषु पुरत आरभ्य ॐ परविद्यायै नमः ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः श्रीं कमलायै नमः क्लीं सुभगायै नमः।

तथा च ज्ञानार्णवे : तारेण परविद्याञ्च भुवनेशीं तदात्मना। कमलां रमया भद्रे कामेन सुभगां यजेत्। अष्टपत्रेषु पश्चिमादितः ब्राह्म्याद्या मातृः पूजपेत्। षोडशदलेषु पूर्वादि नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः मों मदनायै अन्नपूर्णायै नमः एवं भं तुष्ट्यै गं पुष्ट्यै वं प्रीत्यै तिं रत्यै मां ह्रियै (क्रियायै) हें श्रियै श्वं सुधायै रिं रात्र्यै अं ज्योत्स्नायै न्नं हैमवत्यै पूं छायायै णें पुर्णिमायै स्वां नित्यायै हां अमावस्यायै। एता अन्नपूर्णाशब्दान्ता नमोऽन्ताश्च पूजयेत्॥

तथा च ज्ञानार्णवे : शेषैर्वर्णैः प्रपूज्याश्च अन्नपूर्णान्तशब्दिताः। ततश्चतुरस्रे लोकपालान्पूजयेत्।

तत्रैव : चतुरस्रे लोकपालान्क्रमेण परिपूजयेत्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्॥ ३३ क॥

अस्याः पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च : एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षसंख्यमनन्यधीः। साज्येनान्नेन जुहुयात्तद्दशांशमनन्तरम्॥ ३४॥ इति भैरवीमन्त्राः।

अथ श्रीविद्यामन्त्राः

तत्र मेरुः। ज्ञानार्णवेः भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिःकृष्णाध्वमादनौ। अर्द्धचन्द्रश्च विन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते। महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रा मेरुसमुद्भवा॥ ३५॥

सकला भुवनेशानी कामेशीबीजमुद्धृतम्। अनेन सकलां विद्याः कथयामि वरानने। शक्त्यन्तस्तुर्यवर्णोऽयं कलमध्ये सुलोचने। वाग्भवं पञ्चवर्णाढ्यं कामराजमथोच्यते॥ मादनं शिवचन्द्राढ्यं मीनलोचने। कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णं सर्वमोहनम्॥ शक्तिवीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्वमोहनम्। चतुरक्षररूपन्तु त्र्यक्षरा त्रिपुरा भवेत्॥ एतामुपास्य देवेशि कामः सर्वाङ्गसुन्दरः। कामराजो भवेद्देवि विद्येयं ब्रह्मरूपिणी॥

अस्यार्थः : शक्तिरेकारः, तूर्यं ईकारः तेन ककार-एकार-ईकार-

लकार-महामाया इति वाग्भवकूटम् ॥ ३६ ॥ शिवो हकारः चन्द्रः सकारः तेन हकार सकार-ककार-हकार-लकार-महामाया इति कामराज कूटम् । चन्द्र सकारः तेन सकार-ककार-लकार-महामाया इति शक्तिकूटम् । तेन त्रिभिः कूटैः कामराजविद्येयम् ॥ ३६ क ॥

ज्ञानार्णवे : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोपामुद्राभिधां पराम् । कामराजाख्यविद्यायाः शक्ति तूर्यश्च सुन्दरि । हित्वा मुखे शिवेन्द्वाढ्या लोपामुद्रा प्रकाशिता ॥

अस्यार्थः : कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे एकारं ईकारञ्च हित्वा आदौ हकारं सकारञ्च दद्यात् । अन्यत्समानम् इयमगस्त्योपासिता । अनयोर्भेदमग्रे वक्ष्यामः ॥ ३७ ॥

मन्त्रान्तरम् :

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवेन वरानने । विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शक्तिमादनमध्यगम् । शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु शिवाद्यं कामराजकम् । चन्द्राद्यन्तु तृतीयं स्यात्विद्येयं मनुपूजिता ।

अस्यार्थः : कामस्ततः शिवस्तत एकारस्तत ईकारादित्रयं वाग्भवे कूटे । मध्यकूटं शिवाद्यं तृतीयकूटं चन्द्राद्यम् ।

तथा च चन्द्रपीठे : कशिवौ भगतूर्ये च क्षमामायेति वाग्भवम् । शिवकामौ भगं तूर्यं लपरा शक्तिकूटकम् । मानवीयं समुदिता सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ॥३८॥ सहाद्यं वाग्भवं देवि चंद्राद्यं शिवमध्यगम् । मादनं कामराजे तु शक्तिबीजं सहाननम् । चन्द्राराधितविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा ।

अस्यार्थः : सकारहकारादिकामराजविद्याया वाग्भवं कूटम् अस्या वाग्भवम् । आदौ सकारस्ततो हकारस्ततो मादनं ततः शिवस्तत एकारस्तत ईकारस्तत लकारस्ततो महामाया इति कामराजकूटम् । अस्या वाग्भवकूटमेव शक्तिकूटं विद्येयं चन्द्राराधिता ॥ ३९ ॥ हसाननं वाग्भवन्तु शिवाद्यं सहमध्यगम् । मादनं कामराजे तु तार्त्तीयं शृणु पार्वति । हसाद्यं शक्तिबीजन्तु कुवेरेण प्रपूजिता ।

अस्यार्थः : कामराजाख्यविद्याया वाग्भवं हसाद्यं चेत्तदा अस्य वाग्भवम् । शिवचन्द्रौ ततः कामस्ततः शिवस्तत एकारस्तत ईकारस्ततो लकारस्ततो महामया इति कामराजकूटम् । अस्य वाग्भवकूटमेव शक्तिकूटम् इयं कुबेरपूजिता ॥ ४० ॥ कामराजाख्यविद्यायास्तार्त्तीयं सुरवन्दिते । सहाद्यं शक्तिबीजं स्याद्विद्यागस्त्यप्रपूजिता ।

अस्यार्थः : कामराजाख्यविद्याया यदेव वाग्भवं कूटं कामराज-कूटश्चात्रापि तदेव। शक्तिकूटन्तु सहाद्यमिति शेषः। इयन्तु द्वितीया लोपामुद्रा ॥ ४१ ॥

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यज। चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम्। हित्वा चन्द्रं मुखे कुर्यात् विद्येयं नन्दिपूजिता।

अस्यार्थः : कामराजाख्यविद्यायां वाग्भवे कामं त्यक्त्वा चन्द्रं दद्यात्, कामराजे पुनः शिवान्ते चन्द्रं त्यक्त्वा चन्द्राद्यं कुर्यात्। अन्यत् समानम् ॥ ४२ ॥

कामराजाख्यविद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके। शक्तिबीजे स्थितां देवि चन्द्राधः कुरु तत्र च। तेन शक्तिकूटं चन्देन्द्रकाममहामायात्मकम्। विद्येयमिन्द्रोपासिता। अन्यत् समानम् ॥ ४३ ॥ लोपामुद्राख्यविद्याया द्वितीयाया महेश्वरि। कामराजे भृगुं हित्वा मुखे कुर्यात्तमेव हि। शिवं विना चतुर्थन्तु तार्तीये सकलः शिवः ॥ ४४ ॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाञ्च : सहाद्यमन्त्यसहयोर्मध्ये कः सूर्यपूजितः।

अस्यार्थः : द्वितीयलोपामुद्रायाः कामराजकूटे हकारादधः सकारं त्यक्त्वा तमादौ कृत्वा द्वितीयहकारं त्यजेत्। तृतीयकूटे अन्त्यसकारोपरि ककारं दद्यात्। विद्येयं सूर्यपूजिता ॥ ४५ ॥ लोपामुद्रां द्वितीयान्तु विलिख्य सुरसुन्दरि। पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थपञ्चमे स्थिताम्। हित्वा तु भुवनेशानीमेकोच्चारेण चोच्चरेत्। चतुःकूटा महाविद्या शङ्करेण प्रपूजिता।

अस्यार्थः : द्वितीयां लोपामुद्रां विलिख्य, पुनरपि तामेव विलिख्य, चतुर्थकूटे पञ्चमकूटे च स्थितां भुवनेशीं त्यक्त्वा एकोच्चारणे चोच्चरेत्। उच्चारणन्तु पूर्वं त्रिकूटमुच्चार्य कामैकारतूर्येन्द्र शम्भु-शशाङ्क-कन्दर्प शिवेन्द्र चन्द्र-शिवचन्द्र-कन्द्रर्पेन्द्र-महामाया चोच्चरेत् ॥ ४६ ॥ लोपामुद्रां पुनर्देवि विलिखेत्तदनन्तरम्। नन्दिकेश्वरविद्याञ्च षट्कूटा वैष्णवी भवेत्।

अस्यार्थः : पुनः शब्दस्वरसाद्द्वितीयालोपामुद्रामित्यर्थः। प्रक्रमादिति तन्त्रकौमुदीकारः। वस्तुतस्तु अगस्त्यस्य द्विधाविद्यां विलिख्य नन्दिपूजितामिति दक्षिणामूर्तिवचनात्। कामराजाख्यविद्याया-स्त्रिकुटेषु वरानने। या स्थिता भुवनेशानी द्विधा कुरु महेश्वरि। विन्दुहीना नादहीना दुर्वासःपूजिता भवेत् ॥ ४७ ॥

दक्षिणामूर्तौ च : मायास्थाने हरी वर्णयुगलं च क्रमाल्लिखेत् ।

अस्यार्थः : त्रिकूटस्थभुवनेश्वरीं द्विधा कृत्वा नादबिन्दुहीनां कृत्वोच्चरेत् । इति द्वादशभेदाः । बीजानां पञ्चदशीमाह नवरत्नेश्वरे– माया (ह्रीं) श्री (श्रीं) मदनै (क्लीं) र्देवि श्रीमायामदनैरपि । मदनो मायया श्रीश्च श्रीश्च मदनमायया । मायया मदनः श्रीस्तु कथिता परमेश्वरि । त्रिपुरा वीजसंरूपा गदिता मृत्युनाशिनी । इति पञ्चदशी ॥ ४८ ॥

अथ पारिभषिकीं षोडषी

ज्ञानार्णवे : चन्द्रान्तं दरुणान्तश्च शक्रादिसहितं पृथक् । वामाक्षि- विन्दुनादाढ्यं विश्वमातृकलात्मकम् । विद्यादौ योजयेद्देवि साक्षाद्ब्रह्म- स्वरूपिणी ॥ त्रिकूटाः सकला भेदाः पञ्चकूटा भवन्ति हि । वैष्णवी वसुकूटा स्यात् षट्कूटा शाङ्करी भवेत् ।

अस्यार्थः : चन्द्रान्तं हकारः, वारुणान्तं शकारः, शक्रादी रेफः, वामाक्षि ईकारः । विद्यादौ पूर्वोक्त द्वादशविद्यादौ ॥ ४९ ॥

वेदादिमण्डिता देवि शिवशक्तिमयी यदा । तस्या भेदास्तु सकलाः षट्कूटा परमेश्वरि । वैष्णवी नवकूटा स्यात् सप्तकूटा तु शाङ्करी ।

अस्यार्थः : शिवशक्तिमयी पूर्वोक्तबीजद्वयवती । वेदादिः प्रणवः, मण्डिता आदौ भूषिता ॥ ५० ॥

अथ महाषोडशी

भेदत्रयस्तु कथितं महाविद्यां शृणु प्रिये । आद्यबीजद्वयं भद्रे विपरीतक्रमेण हि । विलिख्य परमेशानि ततोऽन्यानि समुद्धरेत् । अन्तर्मुखी वरारोहे कुमारी त्रिपुरेश्वरी । एभिस्तु पञ्चसंख्याकैर्बीजैः संपुटितां यजेत् । षट्कूटां परमेशानि विद्येयं षोडशाक्षरी । त्रिकूटाः सकला भद्रे षोडशार्णा भवन्ति हि । वैष्णव्येकोनविंशार्णा शैवी सप्तदशाक्षरी ।

अस्यार्थः : आद्यबीजद्वयं माया-रमात्मकं तस्य विपरीतक्रमः आदौ रमा पश्चान्माया अन्तर्मध्ये स्थितं कामबीजं मुखे आदौ यस्याः कुमार्याः । एतैः पञ्चसंख्यकैर्बीजैः षट्कूटां सप्तकूटां नवकूटां वा सम्पुटितां सम्पुटवत् कृतां तेनानुलोमविलोमतः पुटितामित्यर्थः । केचित्तु अनुलोमतः संपुटितामाहुः । तन्न, सर्वतन्त्रविरोधात् ॥ ५१ ॥

तथा च योगिनीतन्त्रे : श्रीबीजमायास्मरयोनिशक्तिस्तारश्च माया

कमलाथ विद्या। शक्त्यादिबीजैश्च विलोमतः सा श्रीषोडशीयञ्च शिवप्रदिष्टा ॥ ५२ ॥

तथा च रुद्रयामले : श्रीर्माया मदनो वाणीपरा तारं शिवप्रिया। हरिप्रिया त्रिकूटा सा परा वाणी मनोभवः। माया लक्ष्मीर्महाविद्या श्रीविद्या षोडशी परा।

दक्षिणामूर्तौ च : द्वितीयस्यादियुग्मन्तु विपरीतं लिखेत् सुधीः। बालाश्चान्तर्मुखीं कृत्वा विलिखेत्तदनन्तरम्। तारं मायां ततो लक्ष्मीं तथा कूटत्रयं लिखेत्। कलया संपुटां कुर्याद्रमाख्यां परमेश्वरि। कलया पूर्वोक्तशक्त्यादिपञ्चकलया। रमाख्यां पूर्वोक्तप्रणवादिषट्कूटाम्। उमाख्यामिति पाठेऽप्ययमेवार्थः ॥ ५४ ॥ केचित्तु कलयास्थाने बालयेति पाठं कुर्वन्तस्तत्र परमेश्वरीमिति च बालया अन्तर्मुख्या संपुटां वदन्ति। रमाख्यां श्रीं परमेश्वरीं ह्रीमिति च। तेनोत्तरदले क्लीं ऐं सौः श्रीं ह्रीमिति वदन्ति, तन्न, सम्पुटशब्दार्थापरिज्ञानात् ॥ ५५ ॥

नवरत्नेश्वरे : मन्त्रमादौ वदेत् सर्वं साध्यसंज्ञमनन्तरम्। विपरीतं पुनश्चान्ते मन्त्रं तत् सम्पुटं स्मृतम्। इति संपुटलक्षणात् अनन्वयापत्तेः सर्वतन्त्रविरोधाच्च ॥ ५६ ॥

तथा च श्रीक्रमसंहितायाम्। श्रीर्माया मदनो वाणी परैतानि मुखे कुरु। वेदादिर्भुवनेशानीं श्रीबीजञ्च त्रिकूटकम्। षट्कूटां संपुटीकुर्यादाद्यैः पञ्चभिरक्षरैः।

मायातन्त्रे च : लक्ष्मीः परा मदनयोनियुता च शक्तिस्तारं परा च कमलाप्यथ मूलविद्या। शक्त्यादिभिश्च विपरीततया प्रदिष्टं श्रीमन्त्रराज-मुदितं परदेवतायाः। एतेनानुलोमतः पञ्चबीजैः संपुटितामिति मतं हेयम् ॥ ५७ ॥

श्रुतौ तु : रमा माया तारः परा लक्ष्मी :कुमारिका विद्या व्यस्ता बाला श्रीपरा तथा। व्यस्ता विपरीता तथेति व्यस्तेत्यर्थः। कुमारी चान्तर्मुखी बोध्या। अत्र कुमारिकानन्तरं तारादित्रिबीज-सम्बन्धः तन्त्रैकवाक्यताबलात्, त्रैपुरीश्रुतिबलाच्च।

तथा च : श्रीमाये मध्यादिबालिका। तारो माया श्रीविद्या परादिपञ्चबीजान्यन्ते चेति ॥ ५८ ॥ श्रीपरा चेति पाठे न केवलं बाला व्यस्ता श्रीपरा चेति। विद्यायाः षोडशबीजानां स्वरूपकथनं वा।

क्रमोक्तत्वाभावात् । एतेन श्रीर्माया तारं माया श्रीबाला त्रिकूटं व्यस्ता बाला रमा मायेति मतञ्च हेयम् ॥ ५९ ॥

कुलामृते : श्रीबीजं शक्तिबीजञ्च कामबीजञ्च वाग्भवम् । बालान्त-संस्थितं बीजं प्रणवञ्च ततः परम् । शक्तिबीजं रमाञ्चैव विद्याञ्च परमेश्वरि । लोपाम्बा कामराजं वा त्रिकूटामथवा पराम् । विन्यस्य पुनरद्यानि पञ्च बीजानि सुन्दरि । विपरीतक्रमेणैव विन्यस्य षोडशी परा । ॥ ६० ॥

यामले च : लक्ष्मी परा मदनवाग्भवशक्तिबीजं, तारञ्च भूतिकमले-ऽप्यथ मूलविद्या । कूटत्रयञ्च विपरीततया नियुक्तं, श्रीषोडशाक्षरमिहा-गमसुप्रसिद्धम् । कूटत्रयं कामादिबालायाः । चकारात् रमां मायाञ्च ॥ ६१ ॥

निबन्धे : सान्तान्तं शिवपूर्वसप्तमयुतं सूक्ष्मान्तमस्तान्वितं, देवीं दक्षिणबाहुशक्रनयनं कामं कलालाञ्छितम् । दन्तास्तोर्ध्वमुखं सशेष-दशनं जीवं मुखेनान्वितं, बीजं पञ्चकमित्थमेवमुदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥ वेदाद्यं त्रिगुणां रमामथ वदेत्कामेन संसेवितां, लोपाम्बा पुनरेव पञ्च-कमथो पूर्वं विलोमक्रमैः । एषा श्रीः परात्परतरा सर्वार्थसिद्धिप्रदा, सारात्सारतमा समस्तजगतामुत्पत्तिभूतापरा । सेयं ब्रह्मस्वरूपा सकल-गुणमयी निर्गुणा निष्प्रपञ्चा, साक्षात्कामदुघा सुरासुरगणैर्वन्दितानन्द-रूपा ॥

अस्यार्थः : स एव अन्तो यस्य तेन सान्तः षकारः स एवान्तो यस्य तेन सान्तान्तः शकारः शिवो हकारः तस्य पूर्वसप्तमो रेफः सूक्ष्मान्त-मीकारः मस्तमनुस्वारः, तेन रमाबीजम् । देवीं मायाम् । दक्षिणबाहुः ककारः, शक्रो लकारः, नयनं मेलनम्, । कामः विन्दुः, कला कामकला ईकारः, तेन कामबीजम् । दन्तान्त ऐकारः ऊर्ध्वमुखं मुखस्योर्ध्वं विन्दुः, तेन वाग्बीजम् । जीवः सकारः शेषदशनमौकारः, मुख विसर्गः, तेन पराबीजम् । वेदाद्यं प्रणवः । त्रिगुणा माया ॥ ६२ ॥

भेदान्तरमाह कुब्जिकातन्त्रे : परा च कमला कामो वाग्भवं शक्ति-रेव च । तारशक्ती च कमला त्रिकूटां योजयेत्ततः । शक्त्याद्यं व्युत्क्रमा-न्न्यस्येत् स्यान्महाषोडशी परा । इमां विद्यां महादेवि योगी भूपोऽथवा जपेत् । भुक्तिमुक्तिप्रदा विद्या अन्ते कैवल्यदायिनी ॥ ६३ ॥ पराद्या भुवनेशानि ज्ञेया भुवनसुन्दरी । कमलाद्या महाविद्या ज्ञेया कमलासुन्दरी ।

कामाद्या च महाविद्या विज्ञेया कामसुन्दरी। वाग्भवाद्या महाविद्या परा वाक्सुन्दरीमता॥ शक्त्याद्या च महाविद्या विज्ञेया शक्तिसुन्दरी। ताराद्या च महाविद्या विज्ञेया तारसुन्दरी ॥ ६४ ॥ आनन्दसुन्दरी विद्या प्रथमा गुप्तरूपिणी। कामराजेन देवेशि लोपया च विशेषतः। स्यान्महा-षोडशीमन्त्रश्चतुराद्यविपर्ययात्।

योगिनीतन्त्रे : श्रीबीजं शक्तिबीजञ्च कामबीजञ्च वाग्भवम्। बाला-न्तसंस्थितंबीजं प्रणवञ्च ततः परम्। शक्तिबीजं रमाञ्चैव विन्यसेत्पर-मेश्वरि। लोपाम्बा कामराजम्बा भैरवीमथवा पराम्। विन्यस्य पुनरा-द्यानि बीजानि पञ्च सुन्दरि। व्युत्क्रमेण समेतानि षोडशी भुवि दुर्लभा॥ तुरीयाया मनुं लक्षं जप्त्वा सिद्धोश्वरो भवेत्। व्युत्क्रमेणेति पञ्चबीजानि विन्यस्य इत्यन्वयः ॥ ६५ ॥

ज्ञानार्णवे : वक्त्रकोटि सहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि। वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी ॥ वैखरी वाच्यभावत्वादशक्ता गुणवर्णने। यतो निरक्षरं वस्तु परा तत्रैव कारणम्। मूकीभूता हि पश्यन्ति मध्यमा मध्यमाभवत्। ब्रह्मविद्यास्वरूपा हि भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। एकोच्चारेण देवेशि वाजपेयस्य कोटयः। अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा॥ काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्द्धकोटित्रयान्विताः। तुलां नार्हन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा॥ एकोच्चारेण गिरिजे किं पुनर्ब्रह्म केवलम्। षोडशार्णा महाविद्या न प्रकाश्या कदाचन॥ गोपनीया त्वया भद्रे स्वयोनिरिव पार्वति ॥ ६६ ॥

बीजावलीषोडशी :

रुद्रयामले : श्रीबीजमाये संलिख्य तथैव च कुमारिकाम्। श्रीबीज-माये कामञ्च वाङ्माया कमलान्तथा। परां कामञ्च वाग्बीजं मायां श्रीबीजमेव च। बीजावली षोडशीयं सर्वतन्त्रेषु गोपिता। राज्यं देयं शिरो देयं न देया बीजषोडशी ॥ ६७ ॥

ब्रह्मयामले : आदौ लक्ष्मीं पराञ्चैव तथैव च कुमारिकाम्। श्री-बीजञ्च पराबीजं कामं वाग्भवमेव च। पराश्रीबालिकाश्चैव लिखेद्व्यु-त्क्रमयोगतः। अन्ते दद्यात्परां श्रीञ्च सम्पूर्णा कथिता त्वयि। बाला-प्रधाना विद्या च सर्वशास्त्रे च गोपिता ॥ ६८ ॥

तन्त्रान्तरे मन्त्रान्तरमाह : आद्या कुण्डलिनी शक्तिः शक्तिराद्या ततः पराः। निवेशयेत्तयोर्मध्ये देवि गोविन्दवल्लभाम्। ततस्तु मन्मथं

बीजं बालाद्यं तदनन्तरम् । हृल्लेखारमयोर्वक्त्रे वेदवक्त्रं विनिक्षिपेत् । ततो लोपां न्यसेद्देवि त्रिकूटामथवा पराम् । आद्यानि पञ्चबीजानि पश्चाद्विन्यस्य सुन्दरि । षोडशीयं सुगोप्या हि स्नेहाद्देवि प्रकाशिता ॥ ६९ ॥ अस्या माहात्म्यमतुलं जिह्वाकोटिशतैरपि । वक्तुं न शक्यते देवि किं पुनः पञ्चभिर्मुखैः ॥ ७० ॥ अपि प्रियतमं देयं सुतदारधनादिकम् । राज्यं देयं शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ॥ ७१ ॥

प्रकारान्तरेण षोडशीमाह सिद्धयामले : कामो माया रमा बाला त्रिकूटा स्त्री भगाङ्कुशौ । कालो कामकला कूर्चं सर्वादौ प्रणवः प्रिये । श्रीमहाषोडशीयश्च या ख्याता भुवनत्रये । ज्ञानेन मृत्युहा विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता । सप्तलक्षमहाविद्यान्तन्त्रादौ कथिताः प्रिये । सारात्सारतराभूता या या विद्याः सुगोपिताः । बहुना किमिहोक्तेन तासां सारा तु षोडशी । प्रकाशिता महादेवि या पृष्टा ते पुनः पुनः ॥ ७२ ॥

रुद्रयामले : लोपामुद्रावाग्भवं तु पृथ्वान्ते शिवयोजनात् । सकारं कामराजादौ लोपा तु षोडशाक्षरी । अनया सदृशी विद्या न विद्यार्णवगोचरे ॥ ७३ ॥

तत्रैव : विद्याराज्ञी वाग्भवे तु कान्तेऽनन्तनियोजनात् । षोडशार्णा महाविद्या चिद्ब्रह्मैक्यमयी शुभा ॥ लोपावाग्भवशक्रान्ते शिवबीजं नियोजयेत् । तथैव शक्तिबीजे तु लोपा सप्तदशाक्षरी ॥ ७४ ॥ लोपायाः शक्तिकूटान्ते हंसबीजयुता यदि । तदा सप्तदशी विद्या साक्षाज्ज्ञानस्वरूपिणी ॥ अस्याः स्मरणमात्रेण शिवो भवति नान्यथा । अणिमाद्यष्टसिद्धीशः साक्षाद्भूमिपुरन्दरः ॥ ७५ ॥

तत्रैवाष्टादशाक्षरी यथा लोपामुद्रामधिकृत्य : अधरं बिन्दुना युक्तं वाग्भवाद्ये नियोजयेत् । मादनं कामराजाद्ये तार्तीयाद्ये महेश्वरि । भृगुः सर्गान्वितो देवि मनुना च समन्वितः । अष्टादशाक्षरी ह्येषा श्रीविद्या भुवि दुर्लभा । श्रीगुरोः कृपया देवि नित्यसिद्धिप्रदायिनि ॥ ७६ ॥ नवलक्षं जपित्वा तु लोपामुद्रां महेश्वरीम् । अष्टादशाक्षरी विद्या पश्चाद्राध्या वरानने । अन्यथा शापमाप्नोति कुलं तस्य विनश्यति ॥ ७७ ॥ सर्वकल्याणदा विद्या सर्वविघ्नविनाशिनी । सर्वसौभाग्यदा देवि सर्वमङ्गलकारिणी ॥ अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्य चातिदुर्लभा ॥७८॥

तत्रैव : कामराजाख्यविद्याया वाग्भवादौ तु वाग्भवम् : भुवनेशीं कामराजे श्रीबीजं शक्तिपूर्वतः ॥ एषाप्यष्टादशी प्रोक्ता सर्वसिद्धि

प्रदायिका । भोगमोक्षप्रदा साक्षात् पुरुषार्थप्रदायिका ॥ ७९ ॥ अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्य चातिदुर्लभा । नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ ८० ॥

मन्त्रान्तरम् : प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ततो वै कुलसुन्दरीम् । कामाक्षरं शक्तिवर्णं पुरन्दरहरौ ततः । भुवनेशीं समुद्धृत्य विलोमां बालिकां ततः । प्रणवं सविसर्गन्तु ततो वै कुलसुन्दरीम् ॥ लोपावाग्भवमुद्धृत्य विलोमं बालिकां ततः । प्रणवं सविसर्गन्तु ततो वै कुलसुन्दरीम् । शक्तिकूटमध्यभागे हकारं योजयेच्छिवे । विलोमां बालिकां तत्र ब्रह्माणं: सविसर्गकः ॥ इति श्रीपरमा विद्या केवला मोक्षदायिनी । अस्या लक्षजपेनैव किं न सिध्यति भूतले । अस्याः स्मरणमात्रेण शिवो भवति नान्यथा । कुलसुन्दरी बाला । ब्रह्मार्णः प्रणवः ॥ ८१ ॥ योगिनीजालन्धरे कामराजविद्यामधिकृत्य : वाङ्मारशक्तिबीजाद्यत्रिकूटाक्रमयोगतः । त्रिपुरामालिनी नाम्ना भवेदष्टादशाक्षरी । वर्णसंख्यार्द्धलक्षेण पुरश्चरणमिष्यते ॥ ८२ ॥

श्रीक्रमे : तां विद्यां शृणु देवेशि काममिन्द्रसमन्वितम् । नादविन्दुकलाभेदत्तुरीयस्वरसंयुतम् ॥ महाश्रीसुन्दरी विद्या महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ८३ ॥ ककारे सर्वमुत्पन्नं कामकैवल्यदायकम् । लकारे सकलैश्वर्यमीकारे सर्वसिद्धिदम् ॥ एवं बीजत्रयं भद्रे विद्यानां सारसंग्रहम् ॥ ८४ ॥ वाग्भवं कामराजश्च शक्तित्वे न नियोजयेत् । एकाक्षरेण कथिता ब्रह्मविद्यैव केवला ॥ ८५ ॥

कामराजलोपामुद्रयोर्विशेषमाह कुलोड्डीशे : श्रीपरावाग्भवाख्यैश्च ईश्वरीतारमन्मथैः । आद्यभूतैर्भिद्यमाना सुन्दरी षड्विधा भवेत् ॥ ८६ ॥ तथा अनयोराद्ये कामो माया श्रीबीजं, मायाश्रीकामबीजं तथा त्रिविधा चाष्टादशाक्षरी ।

तथा च कुलोड्डीशे : काममायारमापूर्वो माया लक्ष्मीः स्मरस्तथा । रमा माया तथा कामो वसुचन्द्राक्षरी त्रिधा ॥ "स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमाद्ये तव मनो" रिति भगवदाचार्येण प्रतिपादितम् ॥८७॥

शक्तिकामराजन्तु श्रीक्रमे : मायाबीजं ततो झिण्टो कामं शक्रं वियत् क्रमात् । जातवेदो नृगाङ्केन लाञ्छितं परमेश्वरी । एतद्वाग्भवकूटश्च पूर्वकं कामराजकम् ॥ तत्रैव शक्तिबीजश्च सुन्दर्येषा प्रकीर्तिता । अत्रापि पूर्ववद्बीजसंयोगः । माया ईकारः । झिण्टी एकारः ॥ ८८ ॥

पुनः शक्तिमाह : एतद्भृगं ततो माया ब्रह्मा शक्रो हरोऽग्निना ।

वामनेत्रेण संयुक्तो नादविन्दुविभूषितः । एतद्वाग्भवमुद्दिष्टं पूर्ववत् कामशक्तिकम् । भग एकारः । अत्रापि पूर्ववद्बीजसंयोगः ॥ ८९ ॥

अत्र विशेषः : ब्रह्मबीजं यदा दद्यात्त्रिकूटेषु वरानने । प्रथमा सुन्दरी देवि द्वितीया ब्रह्मसुन्दरी ॥ शक्तिकूटे महेशानि अनन्तसुन्दरी मता । एषा तु षोडशी विद्या मतभेदेन दर्शिता ॥ ९० ॥

मन्त्रान्तरम् : त्रिकूटान्ते हंसबीजं विन्दुसर्गविभूषितम् । एषा श्रीप्राणसंयुक्ता दारिद्र्यदुःखमोचनी ॥ ९१ ॥

शक्तिलोपामुद्रा तु : शक्तिर्महेशः कामश्चइन्द्रबीजं ततः परम् । महामाया ततः पश्चात्तव स्नेहाद्वदाम्यहम् ॥ पूर्ववत् कामशक्त्याख्यौ वर्णौ निष्कीलितात्मकौ ।इति शाक्ता महाविद्या पश्चिमाम्नाययोजिता ॥ शक्तिः सकारः, पूर्ववत् कामराजविद्यावत् । अत्रापि पूर्ववद्बीज संयोगः ॥ ९२ ॥

मन्त्रान्तरम् : शिवबीजं शक्तिसोमं मादनश्च पुरन्दरम् । व्योम वह्निसमायुक्तं तुरीयस्वरविन्दुकम ॥ पूर्ववत् कामराजन्तु शक्तिबीजं समुद्धरेत् । एषा विद्या महेशानि वर्णितु नैव शक्यते ॥ शक्ति सकारः, सोमः सकारः । पूर्ववत् कामराजविद्यावत् । अत्रापि पूर्ववद्बीजसंयोगः ॥ ९३ ॥ शिवशक्तिर्भुवनेशी वाग्भवं बीजमुत्तमम् । कामं व्योम च देवेशि महामाया ततः परम् । सोमं व्योम महामाया नवार्णा परकीर्तिता । रुद्रशक्तिरियं देवि पूर्वाम्नाये हि नायिका ॥ ९४ ॥

मन्त्रान्तरम् : मादनं गोत्रभित् सास्तो रेफवामाक्षिचन्द्रवान् । नादविन्दुसमायुक्तः कथितः परमेश्वरि ॥ ९५ ॥ ब्रह्मा च गगनं शक्रो नकुलीशोऽनलस्तथा । मायाविन्दुसनादेन कामराजं समुद्धरेत् ॥ शक्ति-मादनशक्रश्च हरो वह्निश्च मायया । नादविन्दुसमाक्रान्तः कथितः कामदो मनुः ॥ एषा विद्या महेशानि कथितैकादशाक्षरी ॥ ९६ ॥

मन्त्रान्तरम् : मादनं पञ्चवक्त्रश्च लोहिता रुद्रयोगिनी । पुरन्दरो महामाया वाग्भवं बीजमुत्तमम् ॥ पूर्ववत् कामशक्त्याख्यमुद्धरेद्देवि सुन्दरीम् । लोहिता क्षकारः, रुद्रयोगिनी मकारः ॥ पूर्ववत् कामराज-विद्यावत् ॥ ९७ ॥ भृग्वीशं गगनं हान्तं कालमिन्द्रं महेश्वरम् । वामाक्षि-वह्निविन्द्वाढ्यं वाग्भवं परमेश्वरि ॥ कामराजं शक्तिकूटं पूर्ववत्तु समुद्धरेत् । भृग्वीशः सकारः, हान्तः क्षकारः, कालो मकारः ॥ पूर्ववत् कामराज-विद्यावत् । सर्वत्र एवं क्रमः ॥ ९८ ॥

मन्त्रान्तरम् : विष्णुरीशस्ततो हान्तः कालेशः पृथिवी ततः ।

भुवनेशी ततः पश्चाद्वाग्भवं कथितं त्वयि ॥ कामराजं शक्तिकूटं पूर्ववत् कथितं प्रिये । विष्णुरीशः अकारयुक्तहकारः कालेशो मकारः ॥ ६६ ॥

सुभगोदयां विद्यामाह श्रीक्रमे : शक्तिः स्वयम्भूः शम्भुश्च शक्रश्च भुवनेश्वरी । शिवो मादनरुद्रेन्द्रमहामायास्ततः परम् । कामः शिवस्ततो ब्रह्मा इन्द्रश्च भुवनेश्वरी ॥ एषा तु परमेशानि सुन्दरी सुभगोदया । त्रिकूटान्ते हंसबीजं तदा सप्तदशी भवेत् ॥ १०० ॥ वाग्बीजं विजया माया ब्रह्मा शक्रश्च पार्वती । मान्मथं शिवशक्ति च मादनं हर इन्द्रकः ॥ महामाया ततः पश्चात्शक्तिर्मनुः ससर्गकः । चन्द्रः प्रजापतिः शक्रो महामाया ततः परा ॥ अष्टादशाक्षरी विद्या महात्रिपुरसुन्दरी । सर्वान्ते हंससंयुक्ता विंशाक्षरी भवेत्तदा ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच : भाषा सृष्टिः स्थितिहृती निराख्या पञ्चसुन्दरीः । कथयस्व प्रभो देव यदि ते रोचते मतिः ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच : शिवो मादन इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी । ब्रह्मा शिवेन्द्रौ शक्तिश्च महामाया ततः परा ॥ मादनेन्द्रौ शक्तिशिवो महामाया तदन्तके । शक्तिः सकारः । एषा भाषा ॥ ३ ॥ शिवश्चन्द्रस्तथा कामः शक्रश्च भुवनेश्वरी । शिवेन्द्रौ कामरुद्रौ च चन्द्रश्च परमेश्वरी ॥ शक्तिः कामश्च शक्रश्च महामाया ततः परा । इयं सृष्टिः ॥ ४ ॥ शिवेन्द्रौ कामशक्तो च महामाया ततः परम् । कामश्चन्द्रौ महेशश्च इन्द्रः शक्तिश्च पार्वती ॥ ब्रह्मा महेश्वरः शक्तिः शक्रश्च भुवनेश्वरी । स्थितिरेषा ॥ ५ ॥ शिवेन्द्रौ कामशक्ती च तत्परा परमेश्वरी । शिवशक्तो मादनेन्द्रौ शिवो वह्नीन्दुमायया ॥ शिवः शक्तिश्च क-ल-हा वह्निमायेन्दुभूषिताः । एषा संहृतिः ॥ ६ ॥ शक्रो ब्रह्मा चन्द्रबीजं महामाया ततः परम् । वाग्भवं कथितञ्चैव कामराजं ततः शृणु ॥ शक्तिः शिवो मादनेन्द्रौ तत्परा परमेश्वरी । शिवः शक्तिश्च सोमश्च शून्यो ब्रह्मा महेश्वरी ॥ एषा निराख्या । शून्यो हकारः ॥ ७ ॥

देव्युवाच : स्वप्नावतीं मधुमतीं कथयस्व मयि प्रभो । इदानीं श्रोतुमिच्छामि यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच : शिवो मादनशक्रौ च शक्तिस्तु भुवनेश्वरी । महेशो ब्रह्मा हंसश्च इन्द्रोऽपि भुवनेश्वरी ॥ महेशः शक्तिः कामश्च पुरन्दरो वियत्तथा । अग्निमायाकलायुक्तं नादबिन्दुविभूषितम् ॥ हंसो हकारः । मायाकला ईकारः । एषा स्वप्नावती ख्याता कला पञ्चदशी च या । एषा स्वप्नावती ॥ ९ ॥

ब्रह्मा महेश इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी । ब्रह्मा वियन्मरुच्छक्रस्तत्परा परमेश्वरी ॥ मादनं सोमचन्द्रौ च शक्रश्च परमेश्वरी । मरुत् यकारः । एषा मधुमती ख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता । एषा मधुमती ॥ १० ॥

श्रीक्रमे : कामकेश्वरीविद्यैव त्रिकूटक्रमपाठिता । सौभाग्यायास्त्रि-कूटेन पञ्चम्याः पञ्चकूटम् ॥ त्रिपुरा या महाविद्या कूटैकादशनिर्मिता । सारात्सारतरा विद्या कथितैकादशाक्षरी ॥ ११ ॥

अथ पञ्चमी :

कामं विष्णुयुतं देवि शक्तिर्मायेन्द्र एव च । महामाया ततः पश्चाद्वा-ग्भवं बीजमुद्धरेत् ॥ विष्णुयुतमकारयुतमित्यर्थः । शक्तिरेकारः, माया ईकारः ॥ १२ ॥

वियच्चन्द्रस्तथा पश्चात्कलौ नकुलि-वह्नि च । मायास्वरेण संयुक्तं नादविन्दुकलान्वितम् ॥ प्रथमं कामराजस्य कूटं परमदुर्लभम् ॥१३॥

वियद्विष्णुयुतं कामो हंसः शक्रस्ततः परम् । महामाया ततः पश्चात् स्वप्नावतीति कथ्यते । एतद्द्वितीयकामराजकूटम् । हंसो हकारः ॥१४॥

मादनं शिवबीजञ्च वायुबीजं ततः परम् । इन्द्रबीजं ततः पश्चा-न्महामायां समुद्धरेत् ॥ इति तृतीयकूटम् । इयं मधुमती ॥ १५ ॥

शिवबीजं ततः कामं इन्द्रं देवीं नियोजयेत् । महामायां ततः पश्चात्शक्तिकूटं समुद्धरेत् ॥ देवी सकारः ॥ १६ ॥

कुलोड्डीशे : वाग्भवं प्रथमं कूटं शक्तिकूटञ्च पञ्चमम् । मध्यकूटत्रयं देवि कामराजं मनोहरम् ॥ कथिता पञ्चमी विद्या त्रैलोक्यसुभगोदया । ॥ १७ ॥

ईश्वर उवाच : शृणु देवि महाभागे शक्तिकूटं सुदुर्लभम् । वाग्भवं प्रथमं कूटं कामराजं त्रिकूटकम् ॥ शक्तिकूटं प्रवक्ष्यामि तव स्नेहा-द्विशेषतः । जीवप्राणौ महेशानि मादनं तदनन्तरम् ॥ इन्द्रबीजं ततः पश्चाद्भुवनेशी तु पञ्चमम् । इति वा शक्तिकूटम् । जीवः सकारः, प्राणो हकारः ॥ १८ ॥

अथवा देवदेवेशि सौभाग्यायाश्च वाग्भवम् । कूटत्रयं कामराजं शक्तिबीजञ्च पूर्ववत् ॥ वामनेत्रादिकूटं वा भगादिकूटमेव वा । अरिहा सिद्धिदा विद्या सर्वदोषविवर्जिता ॥ भग एकारः । एतेनाष्टधा पञ्चमी वाग्भवशक्तिकूटभेदेन ॥ १९ ॥

यामले : द्विविधा पञ्चमी विद्या पञ्चपञ्चाक्षरी परा । मध्ये षडक्षरी

चैव शक्तिश्च चतुरक्षरी ॥ षडिति कामराजविद्यामध्यकूटमित्यर्थः। शक्तिकूटमिति कामराजस्य शक्तिकूटमित्यर्थः ॥ एषा चतुर्द्धा वाग्भव-कूटभेदात् ॥ २० ॥ एतयोरष्टधा-चतुर्द्धा-व्यवस्थितयोः। कामराजस्य तृतीयकूटन्तु तत्रैव ॥ कामराजं महेशानि शिवबीजं ततः परम् । तदधो हंसबीजन्तु इन्द्रबीजं विचिन्तयेत् ॥ महामाया ततः पश्चात्कूटं परम-दुर्लभम् । एषापि पूर्ववदष्टधा अन्या चतुर्द्धा ॥ २१ ॥

तथाच तत्त्वबोधे : कामाकाशपराशक्रःसंस्थानकृतरूपिणी । परा सकारः । संस्थानकृतरूपिणी महामाया ॥ २२ ॥

तथा च तन्त्रे : कामबीजं महेशानि शम्भुबीजं ततः परम् । तदधश्चन्द्रबीजन्तु पृथ्वीबीजं ततो लिखेत् । तदन्ते च महामाया कूटं परमदुर्लभम् । एषा पूर्ववदष्टधा, अन्या चतुर्द्धा, तेन षट्त्रिंशद्रूपिणी पञ्चमी ॥ २३ ॥

श्री क्रमे : एतासाञ्चैव विद्यानां प्राणं शृणु वरानने । रमां मायां हंसबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत् ॥ शक्त्यन्ते महादेवि हंसं मायां रमा-न्तथा । एभिर्युक्तेन देवेशि विद्याजपनमाचरेत् ॥ जपश्च सप्तवारमेव दीपन्यां तथा दर्शनात् । एतासामिति पूर्वोक्तश्रीक्रमोक्तविद्यानाम् । ॥ २४ ॥

पञ्चम्यान्तु विशेषो यथा : रमां मायां हंसबीजं वाग्भवाद्ये नियो-जयेत् । शक्त्यन्ते तु महेशानि हंसं मायां रमान्तथा ॥ कामराजत्रये देवि ककारं शक्रसंयुतम् । मायाविन्द्वीश्वरयुत सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २५ ॥ प्रथमं कामकूटस्य चाद्ये नियोजयेदिदम् । वान्तं वह्निसमायुक्तं वामनेत्र-विभूषितम् ॥ नादविन्दु-समायुक्तं श्रियो बीजमुदाहृतम् । द्वितीयं कामराजन्तु जपेदुक्त्वा च सुन्दरि ॥ गगनं वह्निसंयुक्तं वामनेत्रविभू-षितम् । नादविन्दुसमायुक्तं मायाबीजं प्रकीर्तितम् । मधुमतीं जपेच्चापि सर्वकाम-फलप्रदाम् ॥ २५ क ॥

अथ दीपनी : तारं लक्ष्मीञ्च वाग्बीजं मन्मथं भुवनेश्वरीम् । एतज्जप्त्वा ततः पश्चाद्वाग्भवाख्यं समुच्चरेत् ॥ २६ ॥ प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामञ्च वाग्भवम् । कामराजं ततो जप्त्वात्रैलोक्यक्षोभकारकः ॥ २७ ॥ ॐकारञ्चैव वाग्बीजं रमां मन्मथमायया । स्वप्नावतीं महादेवि जपेत्तत्र समाहितः ॥ २८ ॥ प्रणवं चाधरं कामं रमाञ्च भुवनेश्वरीम् । मधुमतीं ततो जप्त्वा मायां श्रीं कूर्चबीजकम् ॥ २९ ॥ प्रणवाद्यञ्च देवेशि हंसबीज-

पुटीकृतम् । एतद्बीजं समुच्चार्य शक्तिकूटं ततो जपेत् ॥ एषा तु दीपनी विद्या अजपा प्राणरूपिणी ॥ ३० ॥

जपनियमस्तु : जपेदादौ जपेत् पश्चात् सप्तवारमनुक्रमात् । कामराजादिविद्यानां दीपनीश्चैव कारयेत् । वाग्भवे कामराजे तु शक्तिकूटे सुरेश्वरि । अत्र पञ्चमीवद्बोध्या वाग्भवशक्तिकूटयोर्दीपनी ॥ ३१ ॥

कामकूटे पुनः : प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामञ्च वाग्भवम् । दीपनी-मिति । सर्वत्र कूटे स्वरसम्बन्धः ॥ ३२ ॥

तथा च सौभाग्यादिविद्यामधिकृत्य योगिनीहृदये—स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी । सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी । तत्त्वातीत-स्वभावा च विद्येषा भाव्यते सदा । श्रीकण्ठदशकं तद्वदव्यक्तस्य हि वाचकम् । प्राणभूतस्थितो देवि तत्तदेकादशः परः ॥ ३३ ॥

अथ श्रीयन्त्रम् : यथा-विन्दुमत्रास्रमष्टकोणं एतत्त्रितयं संहारचक्रम् ॥ द्वि-दशारं चतुर्दशारम् । स्थितिचक्रमेतत्त्रयम् ॥ अष्टपद्मं षोडशदलं वृत्तत्रयं भूसदनत्रयम् चतुर्द्वारसयुक्तमेतत्सृष्टात्मकम् ॥३४॥ (चित्र ३२) ।

तदुक्तं यामले : विन्दुत्रिकोण-वसुकोण-दशारयुग्म-मन्वस्र नागदल-सङ्गतषोडशारम् । वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः । चक्रराजं सिन्दूरकुंकुमादिना लिखितम् । सुवर्णरजतपञ्च-रत्नस्फटिकताम्राद्युत्कीर्णं वा कुर्यात् ॥ ३४ ॥

श्रीक्रमे : अकृत्वा सुसमां रेखां नालिख्यसुसमं मुखम् । योऽत्र यन्त्रे प्रवर्त्तेत तस्य सर्वं हराम्यहम् ॥ ३५ ॥ यस्या यत्र स्थितिर्देवि तत्र तां नार्चयेद्यदि । तन्मांसरुधिरेणैव पारणा तस्य जायते ॥३६॥ पशोरालोकनं न स्यात्तथा कुरुत यत्नतः । यदि दैवात् पशोरग्रे लिखितं विद्यतेक्वचित् । ममाङ्गक्षतिरेवात्र क्रियते पापबुद्धिना ॥ ३७ ॥

तथा भूतभैरवे : योऽस्मिन्यन्त्रे महेशानि केशराणि प्रकल्पयेत् । योगिनीसहितास्तेषां हिंसां कुर्वन्ति भैरवाः । इति वचनान्नात्र केशराणि ॥ ३८ ॥ न रात्रावङ्कयेद्यन्त्रं साधकश्च कदाचन । प्रमादादङ्किते यन्त्रे शापो भवति तत्क्षणात् ॥ ३९ ॥ तत्रापराजितापुष्पे करवीरे जवासु च । तत्र देवि वसेन्नित्यं तद्यन्त्रे पूजनं मम ॥ ४० ॥

तथा स्वच्छन्दभैरवे : कुर्याच्च स्थण्डिले यन्त्रं हस्तमात्रं सुसुन्दरम् । रत्नादिषु विनिर्मायमानमिच्छावशाद्भवेत् ॥ एकतोलं द्वितोलं वा

त्रितोलं वेदतोलकम् । इतोऽधिकं नरः कृत्वा प्रायश्चित्ती भवेद्ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ रक्तेन रजसापूर्य श्रीचक्रं भुवि पूजयेत् । नश्यन्ति सर्वविघ्नानि प्राप्यते च यथेप्सितम् ॥ ४२ ॥ दशभागं सुवर्णस्य ताम्रस्य द्वादशन्तथा । षड्दशं रजतस्यार्थं त्रैतल्लोहत्रयं भवेत् ॥ चक्रेऽस्मिन् पूजयेद्यो हि स सौभाग्यमवाप्नुयात् । अणिमाद्यष्टसिद्धीनामधिपो जायतेऽचिरात् ॥ ४३ ॥ विद्रुमै रचिते यज्ञे पद्मरागेऽथवा प्रिये । इन्द्रनीलेऽथ वैदूर्ये स्फाटिके मरकतेऽपि वा ॥ धनं पुत्रं तथा दारान् यशांसिलभते ध्रुवम् । ताम्रन्तु कान्तिदं प्रोक्तं सुवर्णं शत्रुनाशनम् ॥ राजतं क्षेमदञ्चैव स्फाटिकं सर्वसिद्धिदम् । एतद्यन्त्रमात्रे ज्ञेयम् ॥ ४४ ॥

अथ श्रीचक्रनाशे प्रायश्चित्तम् : दग्धञ्च स्फुटितं यन्त्रं हृतं चौरेण वा प्रिये । उपवासं प्रकुर्वीत दिनमेकमतन्द्रितः । लक्षमात्रं जपेद्विद्यां होमतर्पणपूर्वकम् । सद्भक्त्या च गुरुं तोष्य ब्राह्मणानपि भोजयेत् । लक्षं जपत्वा दशांशतो होमं तद्दशांशं तर्पणञ्च कुर्यात् । लक्षमयुतमित्येके ॥ ४५ ॥ कदाचिल्लुप्तचिह्नं वा स्फुटितादिविदूषणम् । भग्नं करोति यो मर्त्यो मृत्युस्तस्य ध्रुवं भवेत् ॥ तस्माच्च तीर्थराजे वा गङ्गादिसरितां वरे । समुद्रे वा क्षिपेद्देवि चान्यथा दुःखमाप्नुयात् ॥ इदन्तु यन्त्रमात्र विषयम् ॥ ४६ ॥

अथ श्रीचक्रपादोदकमाहात्म्यम् : गङ्गापुष्करनर्मदासु यमुना-गोदावरी गोमती-गङ्गाद्वार-गया-प्रयागबदरी-वाराणसी-सिन्धुषु । रेवा-सेतु-सरस्वती प्रभृतिषु ब्रह्माण्डभाण्डोदरे तीर्थस्नान-सहस्रकोटिफलदं श्रीचक्र-पादोदकम् ॥ ४७ ॥

अथ श्रीक्रदर्शनफलम् : सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात् । तत्फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ॥ ४८ ॥ षोडशम्वा महादानं कृत्वा यल्लभते फलम् । तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्र-दर्शनम् ॥ ४९ ॥ सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यल्लभते फलम् । तत्फलं लभते भक्त्वा कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम् ॥ ५० ॥

अथ संक्षेपश्रीविद्यापद्धतिः : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : अस्य त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिच्छन्दः त्रिपुरसुन्दरी देवता वाग्भवं बीजं कामराजं कीलकं तार्तीयं शक्तिः पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

तथा च ज्ञानार्णवे : बीजञ्च वाग्भवं शक्तिस्तार्तीयं कीलकं ततः। कामराजं महेशानि वीजन्यासस्ततः परम् ॥

तद्यथा : शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदि त्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये वाग्भवाय बीजाय नमः। पादयोस्तार्तीयाय शक्तये नमः। सर्वाङ्गे कामराजाय कीलकाय नमः।

तथा समयाङ्के : त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तये तथा। ऋषये नमः शिरसि पंक्तये छन्दसे नमः ॥ मुखे त्रिपुरसुन्दर्यै देवायै नमो हृदि। ॥ ५१ ॥

वाग्भवादिस्वरूपं दक्षिणमूर्तौ : निःसरन्ति महामन्त्रा महाग्नेश्च स्फुलिङ्गवत्। तथैव मातृकावर्णा निःसृता वाग्भवात्प्रिये। अतएव तदेवास्या वाग्भवं बीजमुच्यते ॥ ५२ ॥ योषि पुरुषरूपेण स्फुरन्ती विश्वमातृका। महामोहेन देवेशि कीलयन्ति जगत्त्रयम्। अतस्तत्कीलवं देवि तेन सौभाग्यगर्विता पालयन्ती जगत्सर्वं तेनेयं शक्तिरुच्यते ॥ ५३ ॥

अथ वशिन्यादिन्यासः यथा : अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः रवलुं वशिनी-वाग्देवतायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे। कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमो ललाटे। चं छं जं झं ञं नवलीं मोदिनी वाग्देवतायै नमो भ्रूमध्ये। टं ठं डं ढं णं यलूं विमलावाग्देवतायै नमः कण्ठे। तं थं दं धं नं जमलीं अरुणावाग्देवतायै नमो हृदि। पं फं बं भं मं ह स ल व यूं जयिनी वाग्देवतायै नमो नाभौ। यं रं लं वं झ मरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमो मूलाधारे। शं षं सं हं लं क्षं क्षमरीं कौलिनी-वाग्देवतायै नमः सर्वाङ्गे।

तथा च ज्ञानार्णवे : अवर्गान्ते लिखेद्वीजं वह्निफान्तक्षमान्वितम्। वामकर्ण-विभूषाढ्यं विन्दुनादान्तिकं प्रिये। वशिनीं पूजयेद्वाचां देवतां देविसुव्रते। कवर्गान्ते महेशानि कलह्रीं बीजमुत्तमम्। कामेश्वरीं समुच्चार्य वाग्देवीं पूजयेत्ततः। चवर्गान्ते धान्तफान्तक्षमातूर्यस्वरान्वितम्। मोदिनीं पूजयेद्वाचां नादविन्दुविभूषिताम् ॥ ५४ ॥ टवर्गान्ते वायुबीजं भूमिपूर्वं महेश्वरि। वामकर्णेन्दुविन्द्वाढ्यं विमलां वागधीश्वरीम् ॥ तवर्गान्ते जमक्षमान्तं वामनेत्रविभूषितम्। विन्दुनादान्वितं बीजं वाग्देवीमरुणां यजेत् ॥ पवर्गान्ते व्योमचन्द्रक्ष्मातोयानिलसंयुतम्। ऊकारस्वरसंयुक्तं विन्दुनादकलान्वितम् ॥ जयिनीं पूजयेद्वाचां देवतां वीरवन्दिते। यवर्गान्ते जान्तकालरेफवायुसमन्वितम् ॥ वामकर्णेन्दुशोभाढ्यं सर्वेशीं परिपूजयेत्।

क्षमवह्निगतं तूर्यस्वरेण परिवेष्टितम् ॥ नादविन्दुकलाक्रान्तं कौलिनीं वाचमर्चयेत् । शवर्गान्ते महेशानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये ॥ शिरोललाट-भ्रूमध्यकण्ठहृन्नाभिदेशके । आधारे व्यूहके न्यासान्वर्गैरष्टभिराचरेत् । ॥ ५४ क ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : अं मध्यमाभ्यां नमः । आं अनामिकाभ्यां नमः । सौः कनिष्ठाभ्यां नमः । अः अंगुष्ठाभ्यां नमः । आं तर्जनीभ्यां नमः । सौः करतलपृष्ठाभ्यां नमः । एवं ऐं हृदयाय नमः । क्लीं शिरसे स्वाहा । सौः शिखायै वषट् । ऐं कवचाय हुं । क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट् । सौः अस्त्राय फट् । ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेत् ॥ ५५ ॥

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् । पाशांकुशशरांश्चापं धारयंतीं शिवां श्रये । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य आनन्दोऽहमिति विभाव्य शङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ ५६ ॥

यथा : श्रीचक्रपुरतः स्ववामे षट्कोणमध्ये त्रिकोणं विलिख्य, तत्र त्रिपदिकां संस्थाप्य मूलेन षट्कोणं पूजयेत् । ततः फडिति शङ्खं प्राक्षाल्य, तत्र गन्धपुष्पादिकं निक्षिप्य, मूलेन जलेनापूर्य, मण्डलादिकं पूजयेत् । मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, इति त्रिपदिकायाम्, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शङ्खे, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले ।

तथा च निबन्धे : प्रणवस्य त्रिभिर्भागैर्वह्निसूर्येन्दुमण्डलान् । ततो गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु । इति सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य हुमित्यवगुण्ठ्य षडङ्गेन पूजयेत् । ततो धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मूलमष्टधा जप्त्वा तज्जलं किञ्चित्प्रोक्षणीतोये निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मनं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्षयेत् । तद्दक्षिणे पाद्यादिपात्रं संस्थाप्यासनपूजामारभेत् ॥ ५७ ॥

यथा : उपर्युपरि यन्त्रस्थ ॐ आधारशक्तये नमः, एवं प्रकृतये, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, रसाम्बुधये, रत्नद्वीपाय, नन्दनोद्यानाय, रत्नमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय । सर्वत्र ओङ्कारादि-नमोऽन्तेन पूजयेत् । पीठोपरि वैन्दवे चक्रे ह्सौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः । ततो वैन्दवे ह स् रैं, ह स क् ल् रीं, ह्सौं इति मन्त्रेण मूर्त्तिं सङ्कल्प्य, त्रिखण्डां मुद्रां वद्धा पुनर्ध्यात्वा, प्रवहन्नासा-पुटेन तेजोमयं पुष्पाञ्जलावानीय, ॐ महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्द-

विग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि। इति मूर्तौ संस्थाप्य, आवाहनादि यथाशक्त्युपचारेण पूजां विधाय षडङ्गानि पूजयेत् ॥५८॥ अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च वाग्भवकूटमुच्चार्य हृदयाय नमः, कामराजमुच्चार्यं शिरसे स्वाहा, शक्तिकूटमुच्चार्य शिखायै वषट्, पुनर्वाग्भवमुच्चार्य कवचाय हुं, कामराजमुच्चार्यं नेत्रत्रयाय वौषट्, शक्तिकूटमुच्चार्य अस्त्राय फट्।

तथा च ज्ञानार्णवे: 'अथाङ्गावरणं कुर्यात् श्रीविद्यामन्त्रसम्भवम्।' ततो मध्यप्राक्त्र्यस्रमध्ये गुरुपंक्तिपूजयेत्।

यथा: ऐं ह्रीं श्रीं गुरुभ्यो नमः, एवं ऐं ह्रीं श्रीं गुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं आचार्येभ्यो नमः, ऐं ह्रीं श्रीं आचार्यपादुकाभ्यो नमः। सर्वत्र ऐं ह्रीं श्रीमिति बीजत्रयपूर्वकं पूजयेत्। ततश्चतुरस्रस्य प्रथमरेखायां ऐं ह्रीं श्रीं अणिमाद्यष्टसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं मध्यरेखायां ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्माण्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तरेखायां ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। सर्वत्रावरणपूजायां श्रीपादुकापदप्रयोगः।

तथा च ज्ञानार्णवे: श्रीपदं पूर्वमुच्चार्य पादुकापदमुद्धरेत्। पूजयामि नमः पश्चात्पूजयेदङ्गदेवताः॥ चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु, इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत् ॥ ५९ ॥

त्रिपुरापदव्युत्पत्तिस्तु वाराहीये: ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्रिदशैरर्चिता पुरा। त्रिपुरेति तदा नाम कथितं दैवतैरपि ॥ ६० ॥ तर्पणन्तु वामहस्तकृततत्त्वमुद्रया। तथा च स्वतन्त्रे: अंगुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तेन पार्वति। तर्पयेत्सुन्दरीं देवीं समुद्राञ्च सवाहनाम् ॥ ६१ ॥ ततः षोडशपत्रेषु ऐं ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरेशीश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अथ सर्वा-

शापरिपूरके षोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामकर्षिण्याद्या गुप्तयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि पुनर्मूलदेव्यै समर्पयेत्। ततोऽष्टदले ऐं ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमाद्यष्टदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसंक्षोभकरे अष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ततश्चतुर्दशारचक्रे ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनी-चक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षोभिण्यादिशक्तयः सम्प्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। वहिर्दशारचक्रे ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धि-प्रदादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरा श्रीचक्र-नायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वार्थसाधके वहिर्दशारचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदादिदेव्यःकुलकौलिनी-योगिन्या समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। अन्तर्दशारचक्रे ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादिदेवीश्रीपादुकं पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरमालिनी-चक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञाद्या देव्यो निगर्वयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। अष्टारचक्रे ऐं ह्रीं श्रीं वशिन्याद्यष्ट-वाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसिद्धाचक्र-नायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरोगहरागहराष्टारचक्रे त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। तत्रान्तरालत्र्यस्रे मूलषडङ्गानि पूजयेत्। ततोऽग्रकोणे ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। दक्षिणकोणे ऐं ह्रीं श्रीं व्रजेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नम। वामकोणे ऐं ह्रीं श्रीं भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराम्बिका श्रीपादुकां पूजयामि नमः ॥ ६२ ॥ अत्र सर्वसिद्धि-प्रदेत्र्यस्रचक्रे वाणचापपाशाङ्कुशविभूषितान्तराले त्रिपुराम्बिकाचक्र-नायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्याः रहस्यातिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ततो विन्दुमध्ये ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमहात्रिपुर-

सुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति त्रिवारं पूजयेत्। वामे ऐं ह्रीं श्रीं योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वानन्दमये परंब्रह्मस्वरूपिणी वैन्दवे चक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः पूजितास्तर्पिताः सन्तु इति मूलदेव्यै समर्पयेत् ॥ ६२ क ॥ ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च वामकेश्वरतन्त्रे : तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपधृक्। किंशुकैर्हवनं कुर्याद्दशांशञ्च वरानने। कुसुम्भकुसुमैर्वापि मधुरत्रयमिश्रितैः ॥ ६३ ॥

अथ श्रीविद्याविशेषपद्धतिः

यथा : ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय भुक्तस्वापो रात्रिवासः परित्यज्य, गुरुं यथोक्तरूपं ध्यात्वा, ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें हसक्षमल वरयूं सहक्षलवरयीं ह्सौः श्री अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि, स्त्री चेद्गुरुः अमुशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामीति स्मृत्वा, मानसैर्गन्धादिभिः पूजयेत्।

यथा : ऐं ह्रीं श्रीं लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः। इति कनिष्ठाभ्याम्। एवं ऐं ह्रीं श्रीं हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः। इति अंगुष्ठाभ्याम्। ऐं ह्रीं श्रीं यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः। इति तर्जनीभ्याम्। ऐं ह्रीं श्रीं रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः। इति मध्यमाभ्याम्। ऐं ह्रीं श्रीं वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः। इति अनामिकाभ्याम्। ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ताम्बूलं समर्पयामि नमः। इत्यञ्जलिना ताम्बूलम्।

यथा विशुद्धेश्वरे : एवं ध्यात्वा पुनश्चैवं पञ्चभूतात्मकैर्यजेत्। गन्धतत्त्वं पार्थिवञ्च कनिष्ठांगुलियोगतः॥ शब्दमयं महापुष्पं प्रथमांगुलियोगतः। वायव्यात्मकं महाधूपं तर्जनीभ्यां नियोजयेत् ॥ तेजोरूपं महादीपं मध्यमाद्वययोगतः। नमस्कारेणाञ्जलिना ताम्बूले वाग्भवं स्मृतम् ॥ सर्वत्र स्वस्वबीजान्ते नमस्कारेण योजयेत्। प्रथमांगुलिर्वृद्धा। स्वस्वबीजान्ते तत्तद्भूतबीजान्ते ॥ ६४ ॥ ततो योन्यञ्जलिमुद्रे प्रदर्श्य, नमस्कृत्य, स्तुतिं कुर्यात्। अखण्डमंडलाकारमित्यादि। शेष सामान्यपूजापद्धत्युक्तक्रमेण कुर्यात् ॥ ६५ ॥

अथ श्रीविद्यायां विशेषस्नानम् : वैदिकस्नानं विधाय, आचमनं

कृत्वा, षडङ्गानि विधाय, क्रोंमित्यङ्कुशमुद्रया सवितृमण्डलात्तीर्थमावाह्य, मूलविद्याशक्तिबीजमुच्चार्य, योनिमुद्रां तज्जले निक्षिप्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, मूलवाग्भवबीजेन दशवारमभिमन्त्र्य, आनन्दामृतवारिमध्यस्थां देवीं विचिन्त्य, मूलविद्यया सप्तवारमभिमन्त्र्य, तन्मुखारविन्दनिर्गतामृत-धाराबुद्धया मूलेन सप्तवारमात्मानमभिषिच्य, पुनरेकविंशतिवारं मूलविद्यामुच्चरन् तज्जले देवीपादारविन्दाधोगलदमृतधारया त्रिवारं निमज्य, उत्थाय पुनर्योनिमुद्रया सप्तवारं त्रिवारं वा शिरस्यभिषेकं विधाय, तथैवाचम्य तीरमागत्य अनुपहते वाससी परिधाय, मूलमन्त्राभि-मन्त्रितशुद्धयज्ञीयभस्मना त्रिपुण्ड्रं त्रिरेखात्मकमर्द्धचन्द्ररूपं विधाय, पूर्ववत् श्रीगुरुं स्मृत्वा, तान्त्रिकाघमर्षणान्तं कर्म कृत्वा, तर्पणं कुर्यात् ॥ ६६ ॥

तद्यथा : षडङ्गान्यपि विन्यस्य तीर्थमङ्कुशमुद्रया। क्रों-मंत्रेण समाकृष्य ततः सवितृमण्डलात् ॥ शक्तिबीजं समुच्चार्य निक्षिपेद्योनिमुद्रया। धेनुमुद्रां योनिमुद्रां ततस्तत्र प्रदर्शयेत् ॥६७॥ मूलवाग्भवबीजेन मन्त्रयित्वाथ देव-ताम् । आनन्दामृतवारीणां मध्यस्थां परिचिन्तयेत् । मूलेन विद्यया देवि सप्तवाराभिमन्त्रणम् । देवोमुखारविन्दाच्च निर्गतामृतधारया। सप्तकृत्वो जपेद्विद्याम् अभिषिञ्चेत् स्वकां तनूम् ॥ ६८ ॥ एकविंशतिवाराणि जपेद्विद्यामनन्तरम् । देवीपादारविन्दाधो निमज्योत्तीर्य साधकः। योनिना च तथा देवि मूर्ध्निसेकं समाचरेत् । त्रिःसप्त वा तथा वारान्सेच-येत्साधकाग्रणीः ॥ ६९ ॥ ततस्तीरं समासाद्य कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् । उचिते वाससी पश्चात्परिदध्यादनन्तरम् ॥ ७० ॥ आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् । धृत्वा भालतले भस्म पूर्ववत् श्रीगुरुं स्मरेत् ॥७१॥ सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै नमः परम् । अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या च त्रिरुत्क्षिपेत् ॥ यथाशक्ति जपेद्देवीं गायत्रीं तदनन्तरम् ॥ ७२ ॥ तर्पणार्थं समाचम्य प्राणानायम्य साधकः। वसून् रुद्रांस्तथा-दित्यांस्तथैवाङ्गिरसं ततः। देवान् गाश्च ततो ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रहानपि। लोपामुद्रामहल्याञ्चानसूयामृषितीर्थकैः। नक्षत्रराशियोगांश्च करणानि यथाक्रमम। चतुर्थीवह्निजायान्तं देवतीर्थेन तर्पयेत् ॥ ७३ ॥ मरीचिमत्रि पुलहं पुलस्त्यं क्रतुमेव च। वसिष्ठञ्च भरद्वाजं गौतमागस्त्यनामकौ। अग्निष्वात्ता बर्हिषदः स्वपितॄंश्च पितृक्रमात् ॥ त्रिधा ङेऽन्तान् हृदन्तांश्च पितृतीर्थेन तर्पयेत् ॥ ७४ ॥ भैरवान्क्षेत्रपालांश्च कुमारीयोगिनीगणम्।

भूतानि सर्वसत्वानि तृप्यन्त्वन्तानि तर्पयेत् । ततो देवीं तर्पयेत् ॥७५॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम् : तर्पणन्तु शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृपूर्वकम् ॥ ७६ ॥ तस्मिन् जले त्रिकोणवृत्तं चतुरस्रं विभाव्य गणेशवटुकौ चक्रवामदक्षिणतः सन्तर्प्य, त्रिकोण वृत्तचतुरस्रान्तराले ईशानादिवायव्यान्तां वक्ष्यमाण गुरुपंक्ति तर्पयेत् । ततस्त्रिकोणमध्ये साध्यसिद्धासनमन्त्रैर्वक्ष्यमाणैः सन्तर्प्य, जले भगवतीमावाह्य, परमामृतधारया त्रिवारं पूर्वोक्तक्रमेण सन्तर्प्य त्रिकोणेषु कामेश्वर्यादिदेवीत्रयं वक्ष्यमाणसमयविद्यया सन्तर्प्य ॥ चतुरस्रकोणेष्वङ्गदेवतास्तर्पयेत् । तत आवरणदेवतानां तर्पणम् । ततः सूर्यायार्घ्यं दत्वा हंसः सोऽहमित्युपस्थानं कृत्वा, सवितृमण्डले तीर्थं विसृज्य नियतवचनो यागस्थानमागच्छेदिति ॥ ७७ ॥

यागस्थानन्तु कालीकुलसद्भावे : अरण्यं स्वल्पकामानां सिद्ध्यर्थं पूजने हितम् । निष्कामानां मुमुक्षुणां गृहे शस्तं सदार्चनम् । ऋषीणां मुनिमुख्यानां दीक्षितानां द्विजन्मनाम् । गृहेऽपि यजनं शस्तं रसैर्वाक्षेक्षुसम्भवैः ॥ ७८ ॥

कुलार्णवे : एकान्ते निर्जने रम्ये देशे बाधाविवर्जिते । सुखासनसमासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ ७९ ॥ तत्रादौ सूर्यपूजा—तदुक्तं रुद्रयामले—आदित्यं पूजयेदादौ प्रत्यक्षं लोकसाक्षिणम् । अन्यथा नैव सिद्धिः स्यात् कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८० ॥

बृहत्स्तवराजेऽपि : स्नानन्तु विधिवत् सन्ध्यां तर्पणं सूर्यपूजनम् । कृत्वा पूजलाये चात्र पञ्चमीं पूजयाम्यहमिति ॥ ८१ ॥ ततो गृहद्वारि गत्वा ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा । ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा । ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा । इत्याचम्य सामान्यार्घ्यं विधाय द्वारपूजां कुर्यात् ।

तद्यथा : बालया द्वारमभ्युक्ष्य, दक्षिणवामपार्श्वयोरुपर्यधः ऐं ह्रीं श्रीं गां गणपतये नमः । ऐं ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नमः । एवं ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं द्वारश्रियै नमः । ऐं ह्रीं श्रीं देहल्यै नमः । ततो वामपदपुरःसरं गृहं प्रविश्याग्न्यादिकोणेषु ऐं ह्रीं श्रीं गां गणपतये नमः । एवं ऐं ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नमः । ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः । मध्ये ऐं ह्रीं श्रीं रत्नमण्डपाय नमः । दिक्षु ऐं ह्रीं श्रीं कामदेवाय रत्यै नमः । ऐं ह्रीं श्रीं वसन्ताय प्रीत्यै नमः । ऐं ह्रीं श्रीं सां सरस्वत्यै नमः । ऐं ह्रीं श्रीं श्रियै नमः ।

सोमभुजगावल्याम् : सरस्वतीं श्रियं मायां दुर्गाञ्च तदनन्तरम् । भद्रकालीं ततः स्वस्तिं स्वाहाञ्चैव शुभङ्करीम् । गौरीञ्च लोकधात्रीञ्च तथा वागीश्वरीमपि । एताः पूजयेत् ॥ ८१ ॥ ततः ऐं ह्रीं श्रीं रक्तद्वादश-शक्तियुक्ताय दीपनाथाय नमः इति पुष्पाञ्जलित्रयं मुञ्चेत् ।

विश्वसारे : समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले । विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे । इति प्रसाद्य, पृथ्वित्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् । इति आसनं संस्थाप्य ततोऽस्त्रेण, वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान्विघ्नानुत्सार्यां-स्त्रेण जलेनान्तरीक्षगान् श्रीबालान्यस्ततोक्षण दृष्ट्या अवलोकनेन दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य सिद्धार्थाक्षतकुसुमान्यादाय ऐं ह्रीं श्रीं अपसर्पन्तु ते भूता इत्यादिनाक्षिप्त्वाविघ्नानुत्सारयेत् । ततो नैर्ऋत्यां ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्मणे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं वास्त्वधिपतये नमः । ऐं ह्रीं श्रीं आधारशक्ति-कमलासनाय नमः इत्यासनं सम्पूज्य, तत्रोपविश्य, भूतशुद्धिं कुर्यात् । यद्यपि कल्पसूत्रे "वायव्यग्निसलिलात्मकप्राणायामैः, शोषणदहनप्लाव-नञ्च भूतशुद्धिं विधाय त्रिः प्राणानायम्ये" ति तथापि मातृकान्यासानन्तरं प्राणायामो बोद्धव्यः ।

तथा च तन्त्रान्तरे : भूतशुद्धिं विधायेत्थं मातृकान्यासमाचरेत् । प्राणायामत्रयं कृत्वा न्यासानन्यान् समाचरेत् । ततो मातृकान्यासं प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यास कुर्यात् ॥ ८३ ॥

तद्यथा : शिरसि दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः । मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः । हृदि श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः । गुह्ये वाग्बीजाय नमः । पादयोः शक्तिकूटाय शक्तये नमः । सर्वाङ्गे कामराजाय कीलकाय नमः ।

तन्त्रान्तरे : ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्निदेशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे । देवता हृदये चैव बीजन्तु गुह्यदेशके । शक्तिञ्च पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत् ॥ ८४ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ । यथा : ऐं मध्यमाभ्यां नमः । आं अनामिकाभ्यां नमः । सौः कनिष्ठाभ्यां नमः । ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः । आं तर्जनीभ्यां नमः । सौः करतलपृष्ठाभ्यां नमः ।

तथा च : एतद्बीजं द्विरुच्चार्य मध्यमाद्यंगुलिषु च । शुद्धिं करस्य कुर्वीत तलयोः पृष्ठयोरपि । चतुर्थीमतिसंयुक्तनाममन्त्रैः पृथक् पृथक् ॥ ८५ ॥

ततो निवृत्त्यादिन्यासः : गुह्ये क्रां निवृत्त्यै नमः । हृदये क्रीं प्रतिष्ठायै

नमः । कण्ठे ऐं विद्यायै नमः । भ्रूमध्ये ह्रौं शान्त्यै नमः । ब्रह्मरन्ध्रे ह्लौं अमृतायै नमः ।

तथा च कुलामृते भूतशुद्धिमभिधाय : ततो दिव्यशरीरोऽसौ साधकः शीघ्रसिद्धिभाक् । जायते नात्र सन्देहो न्यासांस्तान् प्रवदाम्यहम् । निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथामृता । गुह्यहृत्कण्ठभ्रूमध्य-ब्रह्मरन्ध्रेषु विन्यसेत् । कामाग्निसंयुतौ द्वौ द्वौ आस्यवामदृगन्वितौ । वाणी मनुविसर्गाभ्यां युतं व्योमद्वयं पुनः । द्वितीयाधो भवेदग्निरेवं पञ्च महेश्वरि । अर्द्धचन्द्रेन्दुसर्गानि सर्वाण्येव क्रमेण हि । बीजन्यासं नियोज्यानि पूर्वतः परमेश्वरि । ततो बालां समुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरि । आत्मानं रक्ष रक्ष इति हृदये अञ्जलिं दद्यात् । पुनः ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फडिति दिग्बन्धनं कुर्यात् ।

तथा च : बालाबीजत्रयं पूर्वं महात्रिपुरसुन्दरी । आत्मानं रक्ष रक्षेति कुर्याद्रक्षां हृदि स्पृशन् । तथैवास्त्रेण मुद्रया कुर्याद्दिग्बन्धनं ततः । ततो बालान्ते अमृतार्णवासनाय नमः इति पादयोः । बालान्ते त्रिपुरेश्वरीपोताम्बुजासनाय नमः । इति जानुद्वये ।

तथा च यामले : अमृतार्णवशब्दपूर्वं आसनाय महामनुः । पादयोर्विन्यसेत् पश्चाद्बालान्ते त्रिपुरेश्वरि । पोताम्बुजासनायान्ते नमो जानुनि विन्यसेत् । ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यासनाय नमः, इत्यूरुद्वये ।

तथा च : ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरेत्युक्त्वा सुन्दरीति पदन्ततः । ङेऽन्तं देव्यासनञ्चान्ते नम ऊरुद्वये न्यसेत् । ततो हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः इति स्फिक्द्वये । ह्सैं ह स क्लीं ह्सौः । त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः इति गुह्ये । ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः । इति नाभिदेशे । ह्स्रैं ह्सक्लीं ह्स्रौः त्रिपुराम्बापर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमः इति स्ववक्षसि । त्रिकूटविद्यानां बीजान्ते श्रीमहात्रिपुरभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ब्रह्मरन्ध्रे ।

तथा च यामले : हैं ह्क्लीं ह्सौरन्ते त्रिपुरवासिनीति च । चक्रासनाय नमः इत्यमुना स्फिक्द्वये न्यसेत् । ह्सैं ह्सक्लीं ह्सौश्चेति त्रिपुराश्रीपदन्ततः । सर्वमन्त्रासनायान्ते नमो गुह्ये प्रविन्यसेत् । ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लें ततो दद्यात्त्रिपुरमलिनीति च । साध्यसिद्धासनं ङेऽन्तं नाभिदेशे प्रविन्यसेत् । ह्सैं ह स क्लीं ह्स्रौरन्ते त्रिपुराम्बापदन्ततः । पर्यङ्कशक्तिपीठासनाय नमो वक्षसि विन्यसेत् । त्रिकूटविद्याबीजान्ते महा-

त्रिपुरभैरवी। सदाशिवमहाप्रेतपदात्पद्मासनाय च। नम इत्यमुना ब्रह्मरन्ध्र स्थाने प्रविन्यसेत् ॥ ८६ ॥

अथ षडङ्गन्यासः : ऐं सर्वज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः। क्लीं नित्यसुतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौः अनादिबोधशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्। ऐं स्वतन्त्रशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। क्लीं अलुप्तशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्।

तथा नवरत्नेश्वरे : सर्वज्ञता नित्यसुतृप्तता च अनादिबोधश्च स्वतन्त्रता च। अलुप्तशक्तित्वमनन्तता च षडाहुरङ्गानि शिवयोः शिवाद्याः। बीजान्ते नाम संयोज्य जातियुक्तं षडङ्गकम् ॥ ८७ ॥ ततो वशिन्यादिन्यासः। स च संक्षेपप्रयोग उक्तः। ततो नवयोन्यात्मक-न्यासः।

तथा च : बालायास्त्रिपुरेशान्या नवयोन्यात्मकं न्यसेत्। प्रयोगस्तु भैरवीप्रकरणे उक्तः। पुनर्बालां समुच्चार्य गोलकत्वेन चिन्तयेत्। पुनर्बालां समुच्चार्य चतुरस्रं विचिन्तयेत् ॥ ८८ ॥

अथ पीठतत्त्वन्यासौ :

यथा : मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रीशनाथा-त्मके रुद्रात्मशक्तिश्रीकामेश्वरीदेवी श्रीपादुकायै नमः इति आधारे। द्वितीयकूटमुच्चार्य सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मके विष्ण्वात्म-शक्तिश्रीवज्रेश्वरीदेवीश्रीपादुकायै नमो हृदये। तृतीयकूटमुच्चार्य सोमचक्रे पूर्णागिरिपीठे उड्डीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिश्रीभगमालिनी-देवीश्रीपादुकायै नमो ललाटे। त्रिकूटमुच्चार्य परंब्रह्मचक्रे उड्डीयानपीठे श्रीचर्यानाथात्मके ब्रह्मात्मशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीश्रीपादुकायै नमो ब्रह्मरन्ध्रे।

कलामृते : पीठान् सिद्धिप्रदान्मूलप्रथमं बीजमुच्चरन्। अग्निचक्रे योजयेच्च कामगिर्यालये पुनः। मित्रीशेति ततो नाथात्मके कामेश्वरी पुनः। देवी रुद्रात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि च। नमः पदं द्वितीयञ्च बीजमुच्चार्य पार्वति। सूर्यचक्रे योजयेच्च जालन्धरपदं ततः। पीठे च षष्ठीशनाथात्मके वज्रेश्वरीपदम्। देवी विष्ण्वात्मशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि च। नमः-पदं तृतीयञ्च बीजमुच्चार्य पार्वति। सोमचक्रे योजयेच्च पूर्णागिरपदं ततः। पीठे उड्डीशनाथात्मके भगमालिनीपदम्।

देवी ब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि च । नमः-पदं समस्तञ्च मन्त्र-मुच्चार्य पार्वति । परं ब्रह्मपदं चक्र उड्डीयानपदम् ततः । पीठे पदं योजयित्वा चर्यानाथात्मके पदम् । महात्रिपुरशब्दान्ते सुन्दरीति पदन्ततः । देवीब्रह्मपदात्मान्ते शक्तिश्रीपादुकां ततः । पूजयामि नमश्चान्ते पर्यायः प्रथमः शिवे ।

स्थानानि च : मूलाधारे च हृदये ललाटे ब्रह्मरन्ध्रके ॥ ८९ ॥

ततस्तत्त्वन्यासः ।

यथा : वाग्भवकूटमुच्चार्य आत्मतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुर-सुन्दर्यै नमः आधारे । द्वितीयकूटमुच्चार्य विद्यातत्त्वव्यापिकायै श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दर्यै नमः हृदये । तृतीयकूटमुच्चार्य शिवतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः भ्रूमध्ये । त्रिकूटमुच्चार्य सर्वतत्त्वव्यापिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमो ब्रह्मरन्ध्रे ॥ ८९ क ॥

ततः पञ्चदशीन्यासः ।

तद्यथा : मूलाधारे हृदि चक्षुषोः कर्णयोर्नसोः मुखभुजयुगपृष्ठजानु-युगलनाभिषु प्रत्येकं नमोऽन्तं मूलमन्त्रवर्णं न्यसेत् ॥ ९० ॥

ततः षोडशीन्यासः :

निबन्धे : ब्रह्मरन्ध्रे पूर्णविद्यां रक्तवर्णां विचिन्तयेत् । सौभाग्य-दण्डिनीं मुद्रां वामांसे भ्रामयेत्सुधीः । रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां वामपादतले न्यसेत् । व्यापकान्ते योनिमुद्रां मुखे क्षिप्त्वाभिवन्द्य च । पुनर्ब्रह्मरन्ध्रे मणिबन्धे ललाटे मालिकां तां षोडशवर्णान्न्यसेत् ।

अथ संहारन्यासः :

ततः पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोः कट्यामंगुलिपृष्ठके । नाभौ पार्श्वद्वये चापि स्तनयोरंसयोस्तथा । करयोर्ब्रह्मरन्ध्रे च वदने भ्रुवि पार्वति । ततः कर्णप्रदेशे च करवेष्टनयोः क्रमात् ॥ इति संहारन्यासः ॥ ९१ ॥

अथ स्थितिक्रमः : करयोरंगुलीषु पञ्च ब्रह्मरन्ध्रे मुखे हृदि त्रयम् । नाभ्यादिपादपर्यन्तमेकम् । कण्ठान्नाभिपर्यन्तमेकम् । ब्रह्मरन्ध्रात्कण्ठ-पर्यन्तमेकम् । पादयोरंगुलीषु पञ्च । इति स्थितिन्यासः ॥ ९२ ॥

अथ सृष्टिन्यासः : ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे नेत्रे श्रवणे घ्राणे मस्तके ओष्ठे दन्ताध ऊर्ध्वे जिह्वायां चिबुके पृष्ठे सर्वाङ्गे हृदि स्तनयोः कुक्षौ लिङ्गे च षोडशवर्णान् प्रविन्यसेत् ॥ ९३ ॥

अथ नादन्यासः : शिरसि अविकृन्नादाय नमः, ललाटे शून्यनादाय नमः, भ्रूमध्ये स्पर्शनादाय नमः, नासायां नादनादाय नमः, वदने ध्वनिनादाय नमः, कण्ठे विन्दुनादाय नमः, हृदये शक्तिनादाय नमः, नाभौ जीवनादाय नमः, मूलाधारे अक्षरात्मकनादाय नमः।

तथा च कुलामृते : प्रथमश्चाविकृन्नादं शून्यनादमतः परम्। स्पर्शनादं नादनादं ध्वनिनादमतः परम्। विन्दुनादं शक्तिनादं जीवनादं ततः शिवे। अक्षरात्मकनादश्च नमोऽन्तश्च क्रमेण हि। शिरोललाट-भ्रूमध्य-नासावदनकण्ठके। हृन्नाभिमूलदेशेषु नवनादं न्यसेत्सुधीः ॥९४॥

अथ षोढान्यासः :

ज्ञानार्णवे : गणेशो प्रथमो न्यासो द्वितीयश्च ग्रहैर्मतः। नक्षत्रैस्तु तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः। राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते ॥ ९५ ॥ षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रैषापराजितः।

एवं : योगिन्यस्तस्य गात्रस्थाः स पूज्यः सर्वयोगिभिः। नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखोज्ज्वलः। स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः ॥ ९६ ॥ षोढान्यासविहीनो यः प्रणमेद्देवि पार्वतीम्। सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकञ्च प्रपद्यते ॥ ९७ ॥

बृहदारण्यकऋषिरनुष्टुप्छन्दो गणेशो देवता न्यासकर्मणि जपे विनियोगः ॥ ९८ ॥

ऐं ह्रीं श्रीं अं विघ्नेश्वरश्रीभ्यां नमः इति शिरसि। ३ (ऐं ह्रीं श्रीं) आं विघ्नराजह्रीभ्यां नमः इति मुखे। ३ इं विनायकतुष्टिभ्यां नमः इति दक्षचक्षुषि। ३ ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमः इति वामनेत्रे। ३ उं विघ्नहृत्पुष्टिभ्यां नमो दक्षकर्णे। ३ ऊं विघ्नकर्तृसरस्वतीभ्यां नमो वामकर्णे। ३ ऋं विघ्नराड्रतिभ्यां नमो दक्षनसि। ३ ॠं गणनायक-मेधाभ्यां नमो वामनसि। ३ ऌं एकदन्तकान्तिभ्यां नमो दक्षगण्डे। ३ ॡं द्विदन्त-कामिनीभ्यां नमो वामगण्डे। ३ एं गजवक्त्र-मोहिनीभ्यां नमः ओष्ठे। ३ ऐं निरञ्जनजटाभ्यां नमोऽधरे। ३ ओं कन्दर्पभृत्तीव्राभ्यां नमः ऊर्ध्वदन्ते। ३ औं दीर्घवक्त्रज्वालिनीभ्यां नमोऽधोदन्ते। ३ अं सङ्कर्षणनन्दाभ्यां नमो ब्रह्मरन्ध्रे। ३ अः वृषध्वजसुरसाभ्यां नमो मुखे। ३ कं गणनाथकामरूपिणीभ्यां नमो दक्षस्कन्धे। ३ खं गजेन्द्रशुभाभ्यां नमो दक्षकूर्परे। ३ गं सूर्पकर्णजयिनीभ्यां नमो मणिबन्धे। ३ घं त्रिनेत्रसत्याभ्यां नमोऽङ्गुलिमूले। ङं लम्बोदरविघ्नेशीभ्यां नमोऽङ्गुल्यग्रे।

३ चं महामोदस्वरूपिणीभ्यां नमो वामस्कन्धे। ३ छं चतुर्मूर्त्तिकामदाभ्यां नमो वामकूर्परे। ३ जं सदाशिवमदविह्वलाभ्यां नमो मणिबन्धे। ३ झं आमोदविकटाभ्यां नमोऽङ्गुलिमूले। ३ ञं दुर्मुखघूर्णाभ्यां नमोऽङ्गुल्यग्रे। ३ टं सुमुखभूतिनीभ्यां नमो दक्षकटाधः। ३ ठं प्रमोदभूमिभ्यां नमो दक्षजानुनि। ३ डं एकपादमतिभ्यां नमो गुल्फे। ३ ढं द्विजिह्वरमाभ्यां नमोऽङ्गुल्यधः। ३ णं शूरमानुषीभ्यां नमोऽङ्गुल्यग्रे। ३ तं वोरमकरध्वजाभ्यां नमो वामकट्यधः। ३ थं षण्मूखविकर्णाभ्यां नमो जानुनि। ३ दं वरदभृकुटिभ्यां नमो गुह्ये। ३ धं वामदेवलज्जाभ्यां नमोऽङ्गुल्यधः। ३ नं वक्रतुण्डदीर्घघोणाभ्यां नमः इति अंगुल्यग्रे। ३ पं दिरण्डधनुर्धराभ्यां नमो दक्षपार्श्वे। ३ फं सेनानीयामिनीभ्यां नमो वामपार्श्वे। ३ बं ग्रामणीरात्रिभ्यां नमः पृष्ठे। ३ भं मत्तचन्द्रिकाभ्यां नमो नाभौ। ३ मं विमलशशिप्रभाभ्यां नमः उदरे। ३ यं मत्तवाहनलोलाभ्यां नमो हृदि। ३ रं जटिचपलाक्षिभ्यां नमो दक्षस्कन्धे। ३ लं मुण्डिऋद्धिभ्यां नमः ककुदि। ३ वं खड्गिदुर्भगाभ्यां नमो वामस्कन्धे। ३ शं वरेण्यसुभगाभ्यां नमो हृदादिदक्षहस्ते। ३ षं वृषकेतुशिवाभ्यां नमो हृदादिवामहस्ते। ३ सं भक्ष्यप्रियदुर्गाभ्यां नमो हृदादिदक्षपादे। ३ हं मेघानादकामिनीभ्यां नमो हृदादिवामपादे। ३ लं गजेशकान्यकुब्जाभ्यां नमो हृदाद्युदरे। ३ क्षं गणेशविघ्नहारिणीभ्यां नमो हृदादिमुखे।

तथा च ज्ञानार्णवे : विश्वेश्वरस्तथा श्रीश्च विघ्नराजस्तथा ह्रिया। विनायकस्तथा तुष्टिः शान्तियुक्तः शिवोत्तमः। विघ्नहृत्पुष्टियुक्तश्च विघ्नकर्तृ सरस्वती। विघ्नराड्रतियुक्तश्च मेधा च गणनायकः। एकदन्तश्च कान्तिश्च द्विदन्तः कामिनीयुतः। गजवक्त्रो मोहिनी च निरञ्जनजटैकतः। कन्दर्पभृत्तथा तीव्रा दीर्घवक्त्रस्तथा प्रिये। ज्वालिनीसहितः पश्चात् नन्दासङ्कर्षणौ तथा। वृषध्वजश्च सुरसा गणनाथेन संयुता। कामरूपिणिका पश्चात्गजेन्द्रः शुभया (शुभ्रया) ततः। सूर्पकर्णस्तु जयिनी त्रिनेत्रः सत्यया युतः। लम्बोदरश्च विघ्नेशी महामोदः स्वरूपिणी। चतुर्मूर्त्तिः कामदा च सदाशिवयुता ततः। मदविह्वलनाम्नी च आमोदविकटे तथा। दुर्मुखश्च तथा घूर्णा सुमुखो भूतिनी ततः। प्रमोदश्च तथा भूमिरेकपादस्तथा मतिः द्विजिह्वश्च रमायुक्तः शूरश्चैव तु मानुषी। वीरेणसहिता पश्चात्शैलजे मकरध्वजा॥

यन्मुखश्च विकर्णा च वरदो भृकुटी ततः । वामदेवस्तथा लज्जा वक्रतुण्ड-स्ततः परम् । दीर्घघोणान्वितः पश्चाद्‌द्विरण्डकधनुर्धरे । सेनानीर्यामिनी-युक्ता ग्रामणी रात्रिसंयुतः । मत्तश्च चन्द्रिकायुक्तो विमलश्च शशिप्रभा । मत्तवाहनलोले च जटी च चपलाक्षिणी । मुण्डी ऋद्धियुतः पश्चात्खड्गी दुर्भगया युतः । वरेण्यश्चैव सुभगा वृषकेतुस्तथा शिवा । भक्ष्यप्रियश्च दुर्गा च मेघनादश्च कामिनी । गजेशः कान्यकुब्जा च गणेशो विघ्न-हारिणी । इति गणेशन्यासः ॥ ९९ ॥

अथ ग्रहन्यासः : ३ (ऐं ह्रीं श्रीं) अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं आं आदित्यरुचिभ्यां नमो हृदये । ३ यं रं लं वं सों सोमामराभ्यां नमो भ्रूमध्ये । ३ कं खं गं घं ङं भं अङ्गारकरक्ताभ्यां नमो नेत्रे । ३ चं छं जं झं ञं बुं बुधज्ञानरूपाभ्यां नमो हृदयोपरि । ३ टं ठं डं ढं णं वृं वृहस्पतियशस्विनीभ्यां नमः कण्ठे । ३ तं थं दं धं नं शुं शुक्राह्लादिनीभ्यां नमो गले । ३ पं फं बं भं मं शं शनैश्चरशक्तिभ्यां नमो नाभौ । ३ शं षं सं हं रां राहुकृष्णाभ्यां नमो वक्त्रे । ३ लं क्षं कें केतुवायवीभ्यां नमो गुह्ये ।

तथा च ज्ञानार्णवे : स्वरैरर्कं हृदि न्यसेद्यवर्गेण शशी ततः । भ्रूमध्ये च कवर्गेण भौमं नेत्रत्रये न्यसेत् । चवर्गेण बुधो हृदि टवर्गेण वृहस्पतिः । हृदयोपरि देवेशि तवर्गेण गले भृगुः । पवर्गेण शनिर्नाभौ राहुर्वक्त्रे शवर्गगः । लक्ष्याभ्यान्तु गुदे केतुं न्यसदेवं वरानने ॥ १०० ॥

अथ नक्षत्रन्यासः : ३ (ऐं ह्रीं श्रीं) अं आं अश्विन्यै नमो ललाटे । ३ इं ईं भरण्यै नमो दक्षनेत्रे । ३ उं ऊं कृत्तिकायै नमो वामनेत्रे । ३ ऋं ॠं लृं ॡं रोहिण्यै नमो दक्षकर्णे । ३ एं मृगशिरायै नमो वामकर्णे । ३ ऐं आर्द्रायै नमो दक्षनासायाम । ३ ओं औं पुनर्वसवे नमो वामनासायाम् । ३ कं पुष्यायै नमः कण्ठे । ३ खं गं अश्लेषायै नमो दक्षस्कन्धे । ३ घं ङं मघायै नमो वामस्कन्धे । ३ चं पूर्वफल्गुन्यै नमो दक्षभुजमध्ये । ३ छं जं उत्तरफल्गुन्यै नमो वामभुजमध्ये । ३ झं ञं हस्तायै नमो दक्षमणि-बन्धे । ३ टं ठं चित्रायै नमो वाममणिबन्धे । ३ डं स्वात्यै नमो दक्ष-हस्ततले । ३ ढं णं विशाखायै नमो वामहस्ततले । ३ तं थं दं अनुराधायै नमो नाभौ । ३ धं ज्येष्ठायै नमो दक्षकटिदेशे । ३ नं पं फं मूलायै नमो वामकटिदेशे । ३ वं पूर्वाषाढायै नमो दक्षोरौ । ३ भं उत्तराषाढायै नमो वामोरौ । ३ मं श्रवणायै नमो दक्षजानुनि । ३ यं रं धनिष्ठायै

नमो वामजानुनि। ३ लं शतभिषायै नमो दक्षजङ्घायाम्। ३ वं शं पूर्वभाद्रपदायै नमो वामजङ्घायाम्। ३ षं सं हं उत्तरभाद्रपदायै नमो दक्षपादे। ३ लं क्षं अं अः रेवत्यै नमो वामपादे॥ १॥

अथ योगिनीन्यासः : ३ (ऐं ह्रीं श्रीं) अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं डां डीं डुं ड म ल व र यूं डाकिन्यै मां रक्ष रक्ष त्वगात्मने नमः कण्ठे। ३ कं खं गं घं ङं च छं जं झं ञं टं ठं रां रीं र म ल व र यूं राकिण्यै मां रक्ष रक्षासृगात्मने नमो हृदये। ३ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं नां नीं न म ल व र यूं लाकिन्यै मां रक्ष रक्ष मांसात्मने नमो नाभौ। ३ वं भं मं यं रं लं कां कीं क म ल व र यूं काकिन्यै मां रक्ष रक्ष मेद आत्मने नमः स्वाधिष्ठाने। ३ वं शं षं सं सां सीं स म ल व र यूं शाकिन्यै मां रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मने नमो मूलाधारे। ३ हं लं क्षं हां हीं ह म ल व र यूं हाकिन्यै मां रक्ष रक्ष मज्जात्मने नमो भ्रूमध्ये॥ २॥

अथ राशिन्यासः : ३ (ऐं ह्रीं श्रीं) अं आं इं ईं मेषराशये नमो दक्षगुल्फे। ३ उं ऊं ऋं वृषराशये नमो दक्षजानुनि। ३ ॠं ऌं ॡं मिथुनराशये नमो दक्षवृषणे। ३ एं ऐं कर्कटराशये नमो दक्षकुक्षौ। ३ ओं औं सिंहराशये नमो दक्षस्कन्धे। ३ अं अः शं षं सं हं लं क्षं कन्याराशये नमो दक्षमस्तके। ३ कं खं गं घं ङं तुलाराशये नमो वाममस्तके। ३ चं छं जं झं ञं वृश्चिकराशये नमो वामबाहुमूले। ३ टं ठं डं ढं णं धनुराशये नमो वामकुक्षौ। ३ तं थं दं धं नं मकरराशये नमो वामवृषणे। ३ पं फ बं भ मं कुम्भराशये नमो वामजानुनि। ३ यं रं लं वं मीनराशये नमो वामगुल्फे॥ ३

अथ पीठन्यासः : सितासितारुण-श्याम-हरित्-पीतान्यनुक्रमात्। पुनः पुनः क्रमाद्देवि पञ्चाशत् स्थानसञ्चयः। श्यामान् वराभयकरान् सर्वालङ्कारभूषितान्। एवं ध्यात्वा पीठे न्यसेत्। ३ (ऐं ह्रीं श्रीं) अं कामरूपपीठाय नमः शिरसि। ३ आं वाराणसी पीठाय नमो मुखवृत्ते। ३ इं नेपालपीठाय नमो दक्षचक्षुषि। ३ ईं पौण्ड्रवर्द्धनपीठाय नमो वामचक्षुषि। ३ उं काश्मीरपीठाय नमो दक्षकर्णे। ऊं कान्यकुब्जपीठाय नमो वामकर्णे। ३ ऋं पुरस्थितपीठाय नमो दक्षिणनसि। ॠं चरस्थितपीठाय नमो वामनसि। ३ ऌं पूर्णशैलपीठाय नमो दक्षगण्डे। ३ ॡं अर्बुदपीठाय नमो वामगण्डे। ३ एं आम्रातकेश्वरपीठाय नमः ओष्ठे।

३ ऐं एकाम्रपीठाय नमोऽधरे। ३ ओं त्रिस्रोतःपीठा नमः ऊर्ध्वदन्ते। ३ औं कामकोट्टपीठाय नमोऽधोदन्ते। ३ अं कैलासपीठाय नमो ब्रह्मरन्ध्रे। ३ अः भृगुपीठाय नमो मुखे। ३ कं केदारपीठाय नमो दक्षबाहुमूले। ३ खं चन्द्रपुरपीठाय नमः दक्षकूर्परे। ३ गं श्रीपीठाय नमो दक्षमणिबन्धे। ३ घं ओंकारपीठाय नमः दक्षिणांगुलिमूले। ३ ङं जालन्धरपीठाय नमः दक्षांगुल्यग्रे। ३ चं मानवपीठाय। ३ छं कूपान्तकपीठाय। ३ जं देवीकोट्टीपीठाय। ३ झं गोकर्णपीठाय। ३ ञं मारुतेश्वरपीठाय-वामबाहुमूलसन्ध्यग्रकेषु। ३ टं अट्टहासपीठये नमः दक्षपादमूले। ३ ठं विजयपीठाय नमो दक्षजानुनि। ३ डं राजगृहपीठाय नमोदक्षगुल्फे। ३ ढं कोल्वगिरिपीठाय नमो दक्षपादांगुलिमूले। ३ णं एलापुरपीठाय नमो दक्षपादांगुल्यग्रे। ३ तं कासेश्वरपीठाय नमो वामपादमूले। ३ थं जयन्तीपीठाय नमः वामजानुनि। ३ दं उज्जयिनीपीठाय नमो वामगुल्फे। ३ धं क्षीरिकापीठाय नमो वामपादांगुलिमूले। ३ नं हस्तिनापुरपीठाय नमो वामपादांगुल्यग्रे। ३ पं उडडीशपीठाय नमो दक्षपार्श्वे। ३ फं प्रयोगपीठाय नमो वामपार्श्वे। ३ वं विन्ध्यपीठाय नमः पृष्ठे। ३ भं मायापुरपीठाय नमो नाभौ। ३ मं जलेश्वरपीठाय नमः उदरे। ३ यं मलयपीठाय नमो हृदये। ३ रं श्रीशैलपीठाय नमो दक्षिणस्कन्धे। ३ लं मेरुपीठाय नमः ककुदि। ३ गिरिपीठाय नमो वामस्कन्धे। ३ शं महेन्द्रपीठाय नमो हृदादिदक्षिणकरे। ३ यं वामनपीठाय नमो हृदादिवामकरे। ३ सं हिरण्यपुरपीठाय नमो हृदादिदक्षिणपादे। ३ हं महालक्ष्मीपुरपीठाय नमो हृदादिवामपादे। ३ लं उडडीयानपीठाय नमो हृदादिउदरे। ३ क्षं छायाछत्रपुरपीठाय नमो हृदादिमुखे। सर्वत्र मातृकास्थानेषु नमोऽन्तेन न्यसेत्। अयं षोढान्यासो मातृकायन्यासकाले कर्त्तव्यः इति सम्प्रदायविदः ॥ ४ ॥

अथ त्रिपुरान्यासः। तन्त्रे : त्रिपुरन्यासं ततः कुर्यात् सर्वकामार्थसिद्धये। अस्यास्तु न्यासमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥

यथा : ऐं ह्रीं श्रीं अं कामिनीत्रिपुरायै नमो ललाटे। सर्वत्र एवं क्रमेण त्रिपुरायै नमः इत्यन्तेन मातृकास्थानेषु न्यसेत्। ३ आं मालिनी। इं मदना। ३ ईं उन्मादिनी। ३ उं द्राविणी। ३ ऊं खेचरी। ३ ऋ झटिका। ३ ॠं कलावती। ३ ऌं क्लेदिनी। ३ ॡं शिवदूती। ३ एं सुभगा। ३ ऐं भगावहा। ३ ओं विद्येश्वरी। ३ औं महालक्ष्मी। ३ अं

कौलिनी। ३ अः कालेश्वरी। ३ कं कुलमालिनी। ३ खं व्यापिनी। गं भगा। ३ घं वागीश्वरी। ३ ङं कालिका। ३ चं पिङ्गला। ३ छं भगसर्पिणी। ३ जं सुन्दरी। ३ झं नीलपताका। ३ ञं सिद्धेश्वरी। ३ टं महासिद्धेश्वरी। ३ ठं अघोरा। ३ डं रत्नमाला। ३ ढं मङ्गला। ३ णं भगमालिनी। ३ तं रौद्री। थं योगेश्वरी। ३ दं अम्बिका। ३ धं अट्टहासा। ३ नं व्योमरूपिणी। ३ पं वज्रेश्वरी। ३ फं क्षोभिणी। ३ बं शाकम्भरी। ३ भं अनङ्गा। ३ मं लोकेश्वरी। ३ यं रक्ता। ३ रं सुस्था। ३ लं शुक्रा। ३ वं अपराजिता। ३ शं सम्वर्ता। ३ षं विमला। ३ सं अघोरा। ३ हं भैरवी। ३ लं अघोरा। ३ क्षं सर्वाकर्षिणी। इति पञ्चाशत्त्रिपुरा मातृकास्थानेषु नमोऽन्तेन न्यसेत्॥ ५॥

अथ कामरतिन्यासः। ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं अं कामरतिभ्यां नमः। सर्वत्र ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं। नमोऽन्तेन मातृकास्थानेषु न्यसेत्। ४ आं कामप्रीतिभ्याम्। ४ इं कान्तकामिनीभ्याम्। ४ ईं भ्रान्तमोहिनीभ्याम्। ४ उं कामधुक्कमलाभ्याम्। ४ ऊं कामचारिविलासिनीभ्याम्। ४ ऋं कन्दर्पकल्पलताभ्याम्। ४ ॠं कोमलश्यामलाभ्याम्। ४ ऌं कामवर्द्धकशुचिस्मिताभ्याम्। ४ ॡं कामविजयाभ्याम्। ४ एं रणविशालाक्षोभ्याम्। ४ ऐं रमणलेलिहाभ्याम्। ४ ओं रतिनाथदिगम्बराभ्याम्। ४ ऐं रतिप्रियरमाभ्याम्। ४ अं रात्रिनाथकुब्जिकाभ्यां। ४ अः स्मरकान्ताभ्याम्। ४ कं रमणसत्याभ्याम्। ४ खं निशाचरकल्याणीभ्याम्। ४ गं नन्दनभोगिनीभ्याम्। ४ घं नन्दीशकामदाभ्याम्। ४ ङं मदनसुलोचनाभ्याम्। ४ चं नन्दयितृस्वलावण्याभ्याम्। ४ छं निशाचरमर्दिनोभ्याम्। ४ जं रतिहंसकलहंस-प्रियाभ्याम्। ४ झं पुष्पगधन्वकांक्षिणीभ्याम्। ४ ञं महाधनुःसुखीभ्याम्। ४ टं ग्रामणीनलिनीभ्याम्। ४ ठं भीमजटिनीभ्याम्। ४ डं भ्रामणज्वालिनीभ्याम्। ४ ढं भ्रमणशिखिनी भ्याम्। ४ णं श्याममुग्धाभ्याम्। ४ तं भ्रामणरमाभ्याम्। ४ थं भृगुभ्रमाभ्याम्। ४ दं भ्रान्तकमलाभ्याम्। ४ धं भ्रमावहसुचञ्चलाभ्याम्। ४ नं मोहनदीर्घजिह्वाभ्याम्। ४ पं मेषकमहामतिभ्याम्। ४ फं मुग्धलोलाक्षीभ्याम्। ४ बं मोहवर्द्धकभृङ्गिनीभ्याम्। ४ भं मोहकचपेटाभ्याम्। ४ मं मन्मथनाथाभ्याम्। ४ यं मतङ्गमालिनीभ्याम्। ४ रं भृङ्गीशकलहंसिनीभ्याम्। ४ लं गायकविश्वतोमुखीभ्याम्। ४ वं गीतिगजनन्दिकाभ्याम्। ४ शं नर्तकरञ्जिनीभ्याम्। ४ षं मेषकान्ति-

भ्याम् । ४ सं उन्मत्तकलकण्ठाभ्याम् । ४ हं संवर्तकवृकोदरीभ्याम् । ४ लं मेघश्यामाभ्याम् । ४ क्षं विमलश्रीमतीभ्याम् । मातृकास्थानेष्वेतान्नमोऽन्तान्न्यसेत् ।

ज्ञानार्णवे : न्यसेत्कामरती पश्चात्कामप्रीति महेश्वरि । कान्तश्च कामिनीयुक्तो भ्रान्ता वै मोहिनीयुतः । कामधुक्कमला तद्वत्कामचारो विलासिनी । कन्दर्पः कल्पलतया कोमलश्यामले तथा । कामवर्द्धकसंयुक्ता विज्ञेया तु शुचिस्मिता । कामश्च विजयायुक्तो विशालाक्षीयुतो रणः । रमणो लेलिहायुक्तो रतिनाथदिगम्बरे । रतिप्रियरमे चैव रात्रिनाथश्च कुब्जिका । स्मरेण संयुता कान्ता रमणः सत्यया युतः । निशाचरश्च कल्याणी नन्दनो भोगिनी तथा । नन्दीशः कामदायुक्तो मदनश्च सुलोचना । स्वलावण्यायुतो देवि तथा नन्दयिता प्रिये । निशाचरश्च मदिन्या रतिहंसस्ततः परम् । कलहंसप्रियायुक्तः पुष्पधन्वा च कांक्षिणी । महाधनुश्च सुमुखी ग्रामणीर्नलिनीयुतः । भीमश्च जटिनीयुक्तो भ्रामणो ज्वालिनीयुतः । भ्रामण शिखिनीयुक्तो श्याममुग्धे ततः परम् । भ्रामणो रमया युक्तो भृगुर्भ्रमा ततः परम् । भ्रान्तः कामकलायुक्तो भ्रमावऽसुचञ्चला । मोहनो दीर्घजिह्वा च मेषकश्च महामतिः । तथा मुग्धश्च लोलाक्षी मोहवर्द्धनभृङ्गिनी । मोहकश्च चपेटा च मन्मथो नायया युतः । मतङ्गो मालिनीयुक्तो भृङ्गीशः कलहंसिनी । गायकेन समायुक्तस्ततो वै विश्वतोमुखी । गजनन्दिकया युक्तो गीतिश्च तदनन्तरम् । नर्त्तकः सह रञ्जिन्या मेषः कान्तिसमन्वितः । उन्मत्तः कलकण्ठा च संवर्त्तकवृकोदरी । मेघः श्यामान्वितो देवि विमलः श्रीमती प्रिये । मातृकाणर्न्यसेद्देवि मातृकास्थान एव च ॥ ६ ॥

अथ षोडशनित्यान्यासः ।

ज्ञानार्णवे : प्रथमो सुन्दरी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी । कामेश्वरी समाख्याता तथैव भगमालिनी । नित्यक्लिन्नाः च भेरुण्डा तथैव वह्निवासिनी । वज्रेश्वरी च दूती च त्वरिता कुलसुन्दरी । नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला । ज्वालामाला विचित्रान्ताः पञ्चदश प्रकीर्तिताः ।

एतासां मन्त्रा ज्ञानार्णवे : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्यामन्त्रमनुत्तमम् । बालान्तारश्च हृत्प्रान्ते कामेश्वरिपदं वदेत् । इच्छाकामफलप्रान्ते प्रदे सर्वपदं वदेत् । ततः सत्त्ववशं ब्रूयात्करि सर्वजगत्पदम् । क्षोभणान्ते करि ब्रूयात् हुंकारत्रयमालिखेत् । पञ्च बाणान् समालिख्य संहारेण

कुमारिकाम् । एषा कामेश्वरी नित्या प्रसङ्गात्कथिता शिवे । वाग्भवं भगशब्दान्ते भगे भगिनि चालिखेत् । भगोदरि भगाङ्गे च भगमाले भगावहे । भगगुह्ये भगप्रान्ते योनिप्रान्ते भगान्तिके । निपातिनी च सर्वान्ते ततो भगवशङ्करि । भगरूपे ततो लेख्यं नीरजायतलोचने । नित्यक्लिन्ने भगप्रान्ते स्वरूपे सर्वमालिखेत् । भगानि मे ह्यानयान्ते घरदेऽथ समालिखेत् । रेते सुरेते च भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे ततः । क्लेदय द्रावयाथो च सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि । अमोघे भगविच्छे च क्षुभ क्षोभय सर्वं च । सत्त्वान् भगेश्वरि ब्रूयाद्वाग्भवं ब्लूं जमादिकम् । भें ब्लूं मों हें ब्लूं क्लिन्ने च ततः परम् । सर्वाणि च भगान्यन्ते मे वशश्चानयेति च । स्त्रीं बीजश्च हरप्रान्ते वेदमात्मकमक्षरम् । भुवनेशीं समालिख्य विद्येयं भगमालिनी । पराबीजं समुच्चार्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । अग्निजायान्वितो मन्त्रो नित्यक्लिन्नेयमीरिता । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य तथाङ्कुशयुगं वदेत् । तन्मध्ये विलिखेद्देवि भरोमात्मकमक्षरम् । चवर्गमन्त्यहीनन्तु विलिखेद्वह्निसंस्थितम् । चतुर्दशस्वरोपेतं विन्दुनादान्वितं पृथक् । वह्निजायान्विता विद्या भेरुण्डा देवता भवेत् ॥ ७ ॥ परां विलिख्य वह्न्यन्ते वासिन्यै नम इत्यपि । अष्टार्णोऽयं महेशानि देवता वह्निवासिनी । प्रणवं भुवनेशानीं फरेमात्मकमक्षरम् । सविसर्गः शशी पश्चान्नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । वह्निजायान्विता विद्या सर्वैश्वर्यप्रदायिनी । चतुर्दशाक्षरी विद्या ज्ञेया वज्रेश्वरी तथा । पराबीजं समुच्चार्य शिवदूती च ङेयुता । हृदन्तोऽयं मनुर्देवि दूती सर्वसमृद्धिदा । ॐकारबीजमुच्चार्य परां कवचमालिखेत् । खेचछेक्षं समालिख्य श्रीबीजञ्च समालिखेत् । हूंकारं क्षे परा चास्त्रं विद्येयं त्वरिता भवेत् । सर्वसिंहासनमयी बालैव कुलसुन्दरी । बालया पुटितां कुर्यात्तथा वै नित्यभैरवीम् । पञ्चबाणांश्च देवेशि नित्या शक्राक्षरी भवेत् ।

अथवा : पञ्चाक्षरी बाणबीजैर्नित्येयमपरा भवेत् । प्रणवं भुवनेशानीं फरेमात्मकमक्षरम् । ब्लूमात्मकं द्वितीयन्तु भुवनेश्यंकुशं ततः । नित्यशब्दं समुद्धृत्य सम्बोध्या च मदद्रवा । कवचं चाङ्कुशं माया नित्या नीलपताकिनी । वान्तं कालसमायुक्तं रेफं शक्रस्वरान्वितम् । विन्दुनादाङ्कितं देवि विद्येयं विजया भवेत् ।

यद्वा : वान्तं कालाग्निवायुश्च शक्रस्वरविभूषितः । नादविन्दुकलायुक्तो विद्येयं विजया भवेत् । चन्द्रं वरुणसंयुक्तं तारस्थञ्च समालिखेत् ।

चतुर्थ्यन्तं ततो देवि विलिखेत्सर्वमङ्गलाम् । हृदन्तोऽयं मनुर्देवि नित्येयं सर्वमङ्गला । तारं हृद्भगवत्यन्ते ज्वालामालिनी देवि च । द्विरुच्चार्य च सर्वान्ते भूतसंहारकारिके । जातवेदसि संलिख्य ज्वलन्तिपदयुग्मकम् । ज्वलेति प्रज्वलद्वन्द्वं हुंकारत्रयमालिखेत् । वह्निवीजत्रयं कूर्चमन्त्रं स्वाहान्वितो मनुः । इयं नित्या महादेवि ज्वालामालिनिका परा । कवर्गान्तं स्वरान्तश्च शक्रस्वरविभूषितम् । विन्दुनादकलाक्रान्तं विचित्रा परमेश्वरी । अकारादिषु सर्वेषु स्वरेषु क्रमतो यजेत् । अः स्वरे परमेशानि श्रीविद्यां विश्वमातृकाम् । स्वरवद्विन्यसेद्विद्यां नीरजायतलोचने । एताः षोडशस्वरन्यासस्थानेषु विन्यसेत् ॥ ७ क ॥

मन्त्रो यथा : ऐं ह्रीं श्रीं अं ऐं क्लीं सौः ओं नमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजगत्क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐं कामेश्वरीनित्याकलायै नमः (१) । ऐं ह्रीं श्रीं आं ऐं भगभगे भगिनि भगोदरि भगाङ्गे भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशङ्करि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि अमोघे भगविच्छे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं भें ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लौं ह्रीं भगमालिनीनित्याकलायै नमः (२) । ऐं ह्रीं श्रीं इं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा नित्यक्लिन्नानित्याकलायै नमः (३) । ऐं ह्रीं श्रीं ईं ओं क्रों क्रों द्रौं त्रौं छौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा भेरुण्डानित्याकलायै नमः (४) । ऐं ह्रीं श्रीं उं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः वह्निवासिनी-नित्याकलायै नमः (५) । ऐं ह्रीं श्रीं ऊं ओं ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा वज्रेश्वरीनित्याकलायै नमः (६) । ऐं ह्रीं श्रीं ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः दूतीनित्याकलायै नमः (७) । ऐं ह्रीं श्रीं ॠं ओं ह्रीं हुं खेचछेक्ष स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट् त्वरितानित्याकलायै नमः (८) । ऐं ह्रीं श्रीं लृं ऐं क्लीं सौः कुलसुन्दरीनित्याकलायै नमः (९) । ऐं ह्रीं श्रीं ॡं ऐं क्लीं सौः ह स क र डैं ह स क ल र डीं ह स क ल र डौः द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐं विमलनित्याकलायै नमः । अथवा ऐं ह्रीं श्रीं लृं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः विमलानित्याकलायै नमः (१०) । ऐं ह्रीं श्रीं एं ओं ह्रीं फ्रें ब्लूं आं ह्रीं क्रों नित्ये मदद्रवे हुं क्रों ह्रीं नीलपताकिनी नित्याकलायै नमः (११) ।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ब्म्र्रौं विजयानित्याकलायै नमः।

अथवा : ऐं ह्रीं श्रीं ऐं भ्म्र्यौं विजयेत्यादि (१२)। ऐं ह्रीं श्रीं ओं स्वौं सर्वमङ्गलायै नमः सर्वमङ्गलानित्याकलायै नमः (१३)। ऐं ह्रीं श्रीं ओौं ओं नमो भगवति ज्वालमालिनि देवि ज्वालामालिनि देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वलन्ति ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हुं हुं हुं रं रं रं हुं फट् स्वाहा ज्वालामालिनीनित्याकलायै नमः (१४)। ऐं ह्रीं श्रीं अं चं कौं विचित्रानित्याकलायै नमः (१५)। ऐं ह्रीं श्रीं अः मूलविद्यामुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याकलायै नमः (१६)। यद्वा ऐं ह्रीं श्रीं अः ओं कामेश्वरीनित्याकलायै नमः। इति षोडशनित्या न्यसेत्। अस्मिन् काले वा सृष्टिस्थितिन्यासः। इति षोडशनित्यान्यासः।

अथ प्रकटयोगिनीन्यासः : मूलाधारे ऐं ह्रीं श्रीं प्रकटयोगिनीभ्यो नमः। स्वाधिष्ठाने ३ गुप्तयोगिनीभ्यो नमः। नाभौ ३ गुप्ततरयोगिनीभ्यो नमः। हृदये ३ सम्प्रदाययोगिनीभ्यो नमः। कण्ठे ३ कुलकौलिनी-योगिनीभ्यो नमः। भ्रूमध्ये ३ निगर्वयोगिनीभ्यो नमः। नादे ३ रहस्य-योगिनीभ्यो नमः। नादान्ते ३ अतिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ३ परमातिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः ॥ ८ ॥

अथ आयुधन्यासः : द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां धं सम्मोहनाय कामेश्वरधनुषे नमः। यां ५ द्रां ५ थं सम्मोहनाय कामेश्वरी-धनुषे नमः। एतद्द्वयं स्ववामाधोहस्ते। द्रां ५ यां ५ जं जम्भलेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः। यां ५ द्रां ५ जं जम्भलेभ्यः कामेश्वरी वाणेभ्यो नमः। एतद्द्वयं दक्षिणाधःकरे। द्रां ५ यां ५ आं वशीकरणाय कामेश्वर-पाशाय नमः। द्रां ५ यां ५ ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः। एतद्द्वयं वामोर्ध्वहस्ते। द्रां ५ यां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरा-ङ्कुशाय नमः। द्रां ५ यां ५ सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नमः। एतद्द्वयं दक्षोर्ध्वे। इति तु वक्ष्यमाणक्रमेण कामकला ध्यात्वा न्यसेत्।

तथा च ज्ञानार्णवे : एवं कामकलारूपं देवतामयमात्मनः। वपुर्वि-चिन्त्य शिवयोरायुधन्यासमाचरेत्।

तथा च : द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इत्येते कामबाणाः प्रकीर्तिताः। यां रां लां वां शाम् इदं कामेश्वरीबाणपञ्चकम्। द्रादीनि पश्चाद्यादीनि धं सम्मोहनशब्दतः। ङेऽन्तात्कामेश्वरधनुर्ङेऽन्तं नमोऽन्तमुद्धरेत्। अनेन

च स्ववामाधोहस्ते सन्धारयेद्धनुः। यादिद्रादीनि थं ङेन्तसम्मोहनपदोपरि। कामेश्वरीधनुर्ङेन्तं नमोऽन्तमित्यधःकरे। वामे देव्यास्तथा मन्त्री धारयेदैक्षवं धनुः। द्रादियादीनि जं जम्भलेभ्यः कामेश्वरपदान्तिके। वाणेभ्यो नम इत्यन्तं दक्षिणाधःकरे निजे। शैवान्प्रविन्यसेद्वाणान् पौष्पान्साधकसत्तमः। यादिद्रादीनि जं जम्भलेभ्यः कामेश्वरीपदात्ततः। बाणेभ्योनम इत्येतान् दक्षिणाधः करे निजे। देव्याः प्रविन्यसेद्वाणान् पौष्पानिति च साधकः। द्रादियादीनि भूयोऽपि मुखवृत्तं सविन्दुकम्। स्याद्वशीकरणायेति कामेश्वरपदं ततः। पाशाय नम इत्येवं वामोर्ध्वे विन्यसेत्करे। यादिद्रादीनि गगनं वह्निवामाक्षिविन्दुमत्। स्याद्वशीकरणायेति ततः कामेश्वरीति च। पाशाय नम इत्येवं वामोर्ध्वे विन्यसेत्करे॥ ९॥ द्रादियादीनि क्रों सर्वस्तम्भनाय पदं ततः। कामेश्वरपदात्पश्चादङ्कुशाय नमो लिखेत्। दक्षिणोर्ध्वकरे शैवं विन्यसेदङ्कुशं ततः। यादिद्रादीनि क्रों सर्वस्तम्भनाय ततः परम्। कामेश्वरीपदादूर्ध्वमङ्कुशाय नमो लिखेत्। दक्षिणोर्ध्वकरे देव्या विन्यसेदङ्कुशं ततः॥ ९ क॥ ततो मूलेन व्यापकं नवमुद्राः प्रदर्शयेत्॥

तद्यथा: द्रां सर्वसंक्षोभिणीं द्रीं सर्वद्राविणीं क्लीं आकर्षिणीं ब्लूं सर्ववेशिनीं सः सर्वोन्मादिनीं क्रों महाङ्कुशां ह स ख फ्रें खेचरीं ह्सौः बीजमुद्राम् ऐं योगिनीमुद्राम्॥ १०॥

न्यासकालस्तु योगिनीहृदये: प्रातःकालेऽथवा पूजासमये होमकर्मणि। जपकालेऽपि वा तेषां विनियोगः पृथक्पृथक्। पूजाकाले समस्तं वा कुर्यात्साधकसत्तमः॥ ११॥

ततो ध्यानम्: ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणोज्ज्वलाम्। जवाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम्। पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमारुणसन्निभाम्। स्फुरन्मुकुटमाणिक्य किङ्किणीजालमण्डिताम्। कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम्। प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम्। किञ्चिदर्द्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम्। पिनाकिधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम्। आनन्दमुदितोल्लासलीलान्दोलितलोचनाम्। स्फुरन्मयूखसङ्काशविलसद्धेमकुण्डलाम्। सुगण्डमण्डलाभोग जितेन्द्वमृतमण्डलाम्। विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम्। ताम्रविद्रुमविम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम्। स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम्। अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम्। कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणाललितैर्भुजैः।

रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ॥ रक्ताम्बुजनखज्योतिर्विता-नितनभस्तलाम् । मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् । त्रिवलीवलया-युक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥ १२ ॥ लावण्यसरिदावर्ताकारनाभिविभू-षिताम् । अनर्घरत्नघटिकाञ्चीयुतनितम्बिनीम् । नितम्बबिम्बद्विरद-रोमराजिवराङ्कुशाम् । कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् । लाव-ण्यकुसुमाकारजानुमण्डलबन्धुराम् । लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डि-ताम् । गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् । तनुदीर्घांगुलिस्वच्छनख-राजिविराजिताम् । ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् । शीतांशु-शतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् । लौहित्याजितसिन्दूरजवदाडिम-रूपिणीम् । रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् । रक्तपद्मनिविष्टान्तु रक्ताभरणभूषिताम् । चतुर्भुजां त्रिनेत्रान्तु पञ्चबाणधनुर्धराम् । कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् । महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुण-विग्रहाम् । सर्वशृङ्गारवेशाढ्यं सर्वाभरणभूषिताम् । जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् । जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् । सर्वमन्त्र-मयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् । सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं शिवाम् । एवं रूपमात्मानं ध्यात्वा मानसैः सम्पूजयेत् ॥ १२ क ॥

तद्यथा : हृत्पद्ममध्ये देवीं विभाव्य, कुण्डली पात्र-संस्थेन सहस्रारा-मृतेन पाद्यं देव्याश्चरणे दद्यात् । ततो मनश्चार्घ्यं दत्वा सहस्रदलपद्म-भृङ्गारगलितपरमामृतजलेनाचमनीयं मुखे । चतुर्विंशतितत्त्वेन गन्धञ्च । अहिंसां विज्ञानं क्षमां दयाञ्च अलोभम् अमोहं अमात्सर्यम् अमायाम् अनहङ्कारम् अरागमद्वेषम् इन्द्रियाणि च दशैतानि पुष्पाणि प्रदापयेत् । ततो वायुरूपं धूपं तेजोरूपञ्च दीपं दद्यात् । अम्बरं चामरं सूर्यं दर्पणं चन्द्रं छत्रं पद्मन्तु मेखलाम् आनन्दं हारमुत्तमम् । अनाहतध्वनिमयीं घण्टां निवेदयेत् । ततः सुधारसाम्बुधिं मांसपर्वतं ब्रह्माण्ड पूरितपायसञ्च दत्वा, मनोनर्तकसत्तालैः भृङ्गारादिरसोद्भवैः । नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम् । एवं सम्पूज्याभेदेन जपः कार्यः । ततो बहिःपूजा-मारभेत ततोऽर्घ्यस्थापनम् ॥ १३ ॥

प्रथमं सामान्यार्घ्यम्

तत्र क्रमः : आदौ स्ववामे जलेन चतुरस्रं विधाय तदन्तर्वृत्तमा-लिखेत् । ततः ॐ मण्डलाय नमः इति पुष्पैस्तदभ्यर्च्य, तत्र साधारं पात्रं संस्थाप्य बालया तमभ्यर्च्य शुद्धजलेन तमापूर्य, ऐं सर्वज्ञाशक्ति-

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीहृदयाय नमः इत्यादिक्रमेण षडङ्गानि सम्पूज्य, तदुपरि मूलमष्टधा जप्त्वा विशेषार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ १२ क ॥

तत्पात्रन्तु तन्त्रान्तरे : पात्रं काञ्चनकाचरूप्यजनितं मुक्ताकपालोद्भवं, विश्वामित्रमयञ्च कामदमिदं हैमं प्रियं स्फाटिकम् । ताम्रं प्रीतिदमिष्टसिद्धिजनकं श्रीनारिकेलोद्भवं, कपालं स्फुटमंत्रसिद्धिजनकं मुक्तिप्रदं मौक्तिकम् ॥ १४ ॥

नवरत्नेश्वरे : नरपात्रं महेशानि विज्ञेयञ्चोत्तमोत्तमम् । नारिकेलोद्भवं पात्रं ज्ञेयञ्चोत्तमकल्पकम् । रत्नपात्रञ्च सुश्रोणि ज्ञेयञ्चोत्तममध्यमम् । मध्यमोत्तमगं बैल्वं ब्रह्मवृक्षजमेव च । कल्पं सुमध्यमं प्रोक्तं मृण्मयं कल्पमध्यमम् ॥ १५ ॥ वश्याकर्षणकर्माणि हेमपात्रे सुशोभने । शान्तिके पौष्टिके वापि राजतं कारयेत् प्रिये ॥ १६ ॥ लौहपात्रं विजानीयान्मारणोच्चाटने तथा । स्तम्भकार्येषु पाषाणं विद्वेषे लौहमृण्मयम् ॥ १७ ॥ सर्वकार्येषु कर्त्तव्यं विश्वामित्रञ्च सुव्रते । कुलोत्सादनकार्येषु काचपात्रं विशिष्यते ॥ १८ ॥ काष्ठपत्रं विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि । नरपात्रस्तु गृह्णीयाद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वार्घ्यपात्रं देवेशि ब्रह्माद्या देवताः सदा । नृत्यन्ति सर्वयोगिन्यः प्रीताः सिद्धिं ददत्यपि ॥ २० ॥

सामान्यविशेषार्घ्ययोरावश्यकत्वमाह नवरत्नेश्वर : एकपात्रं न कुर्वीत यदि साक्षान्महेश्वरः । मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति आपदश्च पदे पदे । इहलोके दरिद्रः स्यान्मृते च पशुतां व्रजेत् ॥ २१ ॥ तत आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये सामान्यार्घ्यजलेन त्रिकोणवृत्तषट्कोणचतुरस्रमण्डलं कृत्वा, त्रिकोण-मध्ये मूलविद्यया मध्यं सम्पूज्य, त्रिकोणे प्रत्येककूटैः पूजयेत् । अग्न्यादिकोणक्रमेण षट्कोणे मूलविद्यया द्विरावृत्त्या षडङ्गानि पूजयेत् । तत्र त्रिपदिकां संस्थाप्य, ऐं ह्रीं श्रीं मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने अर्घ्यपात्राधाराय नमः इत्याधारं सम्पूज्य, तत्र वृत्ताकारेण वह्नेर्दशकलाः पूजयेत् ।

तद्यथा : ऐं ह्रीं श्रीं यं धूम्रायै नमः । एवं ३ रं नीलायै । ३ लं कपिलायै । ३ वं विस्फुलिङ्गिन्यै । ३ शं ज्वालिन्यै । ३ यं हैमवत्यै । ३ सं हव्यवाहिन्यै । ३ हं कव्यवाहिन्यै । ३ लं रात्र्यै । ३ क्षं सङ्कर्षिण्यै । इति सम्पूज्य तदुपरि अस्त्रान्तं मूलमुच्चार्य प्रक्षालितमर्घ्यपात्रं संस्थाप्य, पूर्ववत्तत्र मन्त्रमालिख्य, सम्पूज्य, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं अं सूर्यमण्डलाय

द्वादशकलात्मने अर्घ्यपात्राय नमः इति सम्पूज्य वृत्ताकारेण सूर्यस्य द्वादशकलाः पूजयेत् ।

यथा : ऐं ह्रीं श्रीं कं भं तपिन्यै नमः । एवं ३ खं वं तापिन्यै । ३ गं फं धूम्रायै । ३ घं पं विबुधायै । ३ ङं नं बोधिन्यै । ३ चं धं कलिन्यै । ३ छं दं शोषिण्यै । ३ जं थं वरेण्यायै । ३ झं तं आकर्षिण्यै । ३ ञं णं मायायै । ३ टं ढं विवस्वत्यै । ३ ठं डं हेमप्रभायै । नमः सर्वत्र । इति सम्पूज्य, मूलेन जलादिनापूर्य, पूर्ववद्यन्त्रमाख्यि, त्रिकोणे अकथादित्रिरेखां मध्ये हलक्षाणि च चिन्तयेत् । ततः पूर्ववत् सम्पूज्य, सौः ऐं ह्रीं श्रीं उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अर्घ्यपात्रामृताय नमः इति सम्पूज्य, सोमस्य षोडशकला वृत्ताकारेण पूजयेत् ।

यथा : ऐं ह्रीं श्रीं अं अमृतायै नमः । एवं ३ आं मदनायै । ३ इं तुष्टयै । ३ ईं पुष्टयै । ३ उं प्रीत्यै । ३ ऊं रत्यै । ३ ऋं श्रियै । ॠं क्रियायै । ३ ऌं सुधायै । ३ ॡं रात्र्यै । एं ज्योत्स्नायै । ३ ऐं हैमवत्यै । ३ ओं छायायै । ३ औं पूर्णिमायै । अं नित्यायै । ३ अः अमावस्यायै । नमः सर्वत्र । इति सम्पूज्य तीर्थमावाह्य मध्ये हंसात्मने नमः । ततो ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वषट् । ह स क्ष म ल व र यीं सुधादेव्यै वषट् । इति सम्पूज्य, मत्स्यमुद्रया तज्जलमाच्छाद्य मूलविद्यामष्टधा जप्त्वा, धूपदीपौ दत्त्वा, नवमुद्राः प्रदर्श्य, ब्रह्ममयं तज्जलं किञ्चित् पात्रान्तरे प्रक्षिप्य, मूलेनात्मानं पूजाद्रव्याणि च संप्रोक्ष्य, सर्वं ब्रह्ममयं कुर्यात् । पूजासमाप्तिर्यावत् स्यात् तावदर्घ्यं न चालयेत् ॥ २२ ॥

समयाङ्के : सुन्दरीदेवताया अङ्गदेवतापूजनन्त्वर्घ्यस्थापनानन्तरम् ।

तथा च : आत्मानं यागवस्तूनि प्रोक्षयित्वा यथाक्रमम् । चिन्मयं तत् सदा भक्त्या चिन्तयेन्मन्त्रवित्तमः । तस्माच्चक्र-चतुर्दिशिक्रमवशान्निर्मायचक्रं शुभं, सूर्यं हस्तिमुखं परं स्मरहरं गोपालमेवं तथा । ध्यात्वावाह्य च तांस्ततो बहुविधैः पुष्पैश्च पाद्यादिभिर्नानाद्रव्यसुगन्धिमोदकफलैरुद्वासयेत् स्वेहृदि । ततो महाचक्रे ऐं ह्रीं श्रीं अमृताम्भोनिधये नमः । एवं ३ रत्नद्वीपाय । ३ नानावृक्षमहोद्यानाय । ३ सन्तानवाटिकायै । ३ कल्पवृक्षवाटिकायै । ३ हरिचन्दनवाटिकायै । ३ मन्दारवाटिकायै । ३ पारिजातवाटिकायै । ३ कदम्बवन वाटिकायै । ३ पुष्परागरत्नप्राकाराय । ३ पद्मरागरत्नप्राकाराय । ३ गोमेदरत्नप्राकाराय । ३ इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय । ३ वज्ररत्नप्राकाराय । ३ वैदूर्यरत्न-

प्राकाराय। ३ मुक्तारत्नप्राकाराय। ३ विद्रुमरत्नप्राकाराय। ३ माणिक्यरत्नप्राकाराय। ३ माणिक्यमण्डपाय। ३ सहस्रस्तम्भमण्डपाय। ३ अमृतवापिकायै। ३ आनन्दवापिकायै। ३ विमर्षवापिकायै। ३ बालातपोद्गाराय। ३ चन्द्रिकोदराय। ३ महाशृङ्गारपरिखायै। ३ महापद्माटव्यै। ३ चिन्तामणिगृहराजाय। ३ पूर्वाम्नायपूर्वद्वाराय ३ दक्षिणाम्नायदक्षिणद्वाराय। ३ पश्चिमाम्नायपश्चिमद्वाराय। ३ उत्तराम्नायउत्तरद्वाराय। ३ रत्नद्वीपवलयाय। ३ महासिंहासनाय। ३ ब्रह्ममयैकमञ्चपादाय। ३ विष्णुमयैकमञ्चपादाय। ३ रुद्रमयैकमञ्चपादाय। ३ ईश्वरमयैकमञ्चपादाय। ३ सदाशिवमयैकमञ्चफलकाय। ३ हंसतुलतनिनाय। ३ हंसतुलमहोपधानाय। ३ कौसुम्भास्तरणाय। ३ महावितानिकायै। ३ महायमनिकायै। सर्वत्र नमोऽन्तेन पूजयेत्। तदुपरि ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ॥ २२ क ॥

ततः पूर्ववद्ध्यात्वा, त्रिखण्डां मुद्रां कृत्वा तदुपरिशिखरे मातृकायन्त्रे समानीय ऐं ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरसुन्दरीमूर्ति कल्पयामीति विन्दौ कल्पितमूर्तावावाहयेत्। ह्स्रैं हसक्लरीं ह्स्रौं इत्युच्चार्य, ॐ महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि। इति वैन्दवचक्रे परिचितिभावाह्यावाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्तं कर्म विधाय, बाणकोदण्डपाशाङ्कुशादि मुद्राः प्रदर्शयेत्। ततो यथोपचारैः सम्पूज्य त्रिधा सन्तर्पयेत् ॥ २३ ॥

तत्रायं क्रमः : सव्यहस्तानामिकांगुष्ठ-नखाग्रेण धृतश्रीपात्राम्भसा अन्यहस्तक्षिप्तपुष्पाक्षतैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामीति त्रिस्तर्पयेत्।

तदुक्तं स्वतन्त्रे : अंगुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य पार्वति। तर्पयेत् सुन्दरीं देवीं समुद्राञ्च सवाहनाम्। तर्पयामि मुखे देव्यास्त्रिवारं मूलविद्यया। अंगुष्ठानामिकायोगान्नखैर्निर्दिष्टमुद्धृतम्। श्रीपात्रस्योदकं विन्दुं तर्पयेत् कुलनायिकाम्। अंगुष्ठो भैरवो देवि अनामा चण्डिका प्रिये। सव्येन हस्तयोगेन तर्पयेद्वा कुलेश्वरीम् ॥ २४ ॥

विशेषस्तु : अंगुष्ठानामिकाभ्यान्तु वश्यकर्मणि तर्पयेत्। अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यान्तु तर्पयेच्छान्तिकर्मणि। तर्जन्यंगुष्ठयोगेन तर्पयेदभिचारके। कनिष्ठांगुयोगेन स्तम्भने तर्पयेत् प्रिये ॥ २५ ॥ ततोऽग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च देव्या देहे वा षडङ्गानि पूजयेत्।

तद्यथा : ऐं अवंज्ञाशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हृदयाय नमः। क्लीं

नित्यतृप्तिशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिरसे स्वाहा। सौः अनादिबोधशक्ति-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी शिखायै वषट्। ऐं स्वतन्त्रशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कवचाय हुं। क्लीं अलुप्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अनन्तशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अस्त्राय फट्। ततः स्वशरीरे कामकलां भावयेत्।

तथा च: विन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रन्तु तदधस्तात् कुचद्वयम। तदधः सपरार्द्धञ्च चिन्तयेत्तदधोमुखम्। ततस्तिथिनित्यां पूजयेत्। महात्र्यस्रे वामावर्तेन अकारादिपञ्च उकारादिपञ्च एकारादिपञ्च विभाव्य मध्ये विसर्गं तेषु वामावर्तेन शुक्लपक्षे कामेश्वर्यादिविचित्रान्तं कृष्णपक्षे विचित्रादिकामेश्वर्यन्तंपू जयेत्।

तद्यथा: प्रतिपदि अकारे ऐं ह्रीं श्रीं तत्तन्मत्रमुच्चार्य कामश्वरीनित्य-कलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवमाकारे द्वितीयायां ३ भगमालिनीम्। इकारे तृतीयायां ३ नित्यक्लिन्नाम्। ईकारे चतुर्थ्यां ३ भेरुण्डाम्। उकारे पञ्चम्यां ३ वह्निवासिनीम्। ऊंकारे षष्ठ्यां ३ महाविद्धेश्वरीम्। ऋकारे सप्तम्यां ३ शिवदूतीम्। ॠकारे अष्टम्यां ३ त्वरिताम्। ऌकारे नवम्यां ३ कुलसुन्दरीम्। ॡकारे दशम्यां ३ नित्याम्। एकारे एकादश्यां ३ नीलपताकाम्। ऐकारे द्वादश्यां ३ विजयाम्। ओकारे त्रयोदश्यां ३ सर्वमङ्गलाम्। औकारे चतुर्दश्यां ३ ज्वालामालिनीम्। अंकारे पौर्णमास्यां ३ विचित्राम्। विसर्ग ३ त्रिपुरसुन्दरीं पूजयेत्। कृष्णपक्षे विचित्रादिकामेश्वर्यन्तं पूजयेत्॥ २६॥

पूजामन्त्रस्तु तन्त्रान्तरे: श्रीपदं पूर्वमुच्चार्यं पादुकापदमुच्चरेत्। पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः। ततो मध्यप्राक्त्र्यस्रमध्येषु गुरुपंक्ति पूजयेत्। आनन्दनाथशब्दान्ता विज्ञयाः परमेश्वरि। अन्वान्ता गुरवः प्रोक्ताः स्त्रीलिङ्गा वीरवन्दिते।

तद्यथा: ऐं ह्रीं श्रीं परप्रकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं ३ परशिवम्। तथा परशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। एवं ३ कौलेश्वरं शुक्लादेवीम्। ३ परेशानम्। ३ कामेश्वर्यम्बिकाम्। एते दिव्यौधाः। भोगं क्रीडं समयं वेदं सहजं एते सिद्धौधाः। गगनं विश्वं विमलं मदनं भुवनं नीलं आत्मानं प्रियम् एते मानवौधाः। ततो गुरुं परमगुरुं परापरगुरुं परमेष्ठिगुरुं केवलं गुरुं वा। एते कामराजविद्याया-स्तद्घटितायाश्च गुरव.। लोपायास्तद्घटितायास्तु परशिवं कामेश्वर्यम्बां

दिव्यौघं महौघं सर्वानन्दं प्रज्ञादेवीं प्रकाशम् । एते दिव्यौघाः । दिव्यं चित्रं कैवल्यं दिव्याम्बां महोदयम् एते सिद्धौघाः । चिद्विश्वशक्ति ईश्वर-कमलपरमानन्दमनोहरसुखानन्द प्रतिभान् । एते मानवौघाः । इति पूजयेत् । ततः पूर्ववद्गुरुत्रयं एकं वा पूजयेत् । अथवा सामान्यगुरुपंक्ति पूजयेत् ।

तद्यथा : ऐं ह्रीं श्रीं गुरुभ्यो नमः । ३ गुरुपादुकाभ्यो नमः । ३ परमगुरुभ्यो नमः । ३ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः । ३ परापरगुरुभ्यो नमः । ३ परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः । ३ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । ३ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः । ३ आचार्येभ्यो नमः । ३ आचार्यपादुकाभ्यो नमः । ३ सर्वत्रादौ द्वितार्या त्रितार्या वा प्रयोगः ।

तथा च ज्ञानार्णवे : मायालक्ष्मीमयं बीजयुग्मं पूर्वक्रमेण हि । कथितं योजयेद्देवि त्रयं वा परमेश्वरि ।

कल्पसूत्रेऽपि : सर्वत्रादौ त्रितारोप्रयोगः ।

त्रितारी च : वाङ्माया कमला चेति त्रितारी समुदाहृता ॥२८क॥

ततस्त्रैलोक्यमोहनादिसृष्टिचक्रे ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रीं स्ह्रीं श्रीं कलह्रीं पूर्वाम्नाय-उन्मत्तीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः । स्थितिचक्रे ३ ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कूले ह्सौः दक्षिणाम्नाय-भोगिनीदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः । ततः सर्वसौभाग्यादिसंहारात्मकत्रिचक्रे ३ ह स ख फ्रें ह्सौः भगवत्यम्ब ह स ख फ्रें कुब्जिके ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रं अघोरे घोरे घोरमुखि च्रां च्रीं च्रूं किलि किलि विलोमतः पूर्वोक्तानि पञ्च-बीजानि पश्चिमाम्नायकुब्जिकादेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सर्व चक्रे ३ ह स ख फ्रें महाचंडयोगेश्वरि उत्तराम्नायकालिकादेवी श्रीपा० पू० । वैन्दवचक्रे ३ हसैं हसकलरीं ह्सौः ऊर्ध्वाम्नाय सकलसिद्धिदादेवी श्रीपा० पू० । ततोऽग्नीशासुर वायव्यमध्ये दिक्षु च मूलेन षडङ्गानि पूजयेत् ।

तथा च ज्ञानार्णवे : अथाङ्गवरणं कुर्यात् श्रीविद्यामनुसम्भवम् । अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम् । ततो बाह्यचतुरस्रे पश्चिमादि-द्वारचतुष्टयेषु अणिमाद्यष्टसिद्धीः पूजयेत् ॥ २६ क ॥

पश्चिमादिदिङ्नियमस्तु गुप्तार्णवे : यदाशाभिमुखो मन्त्री त्रिपुरां परिपूजयेत् । देवीपश्चात्तदा प्राची प्रतीची त्रिपुरापुरः ।

विशुद्धेश्वरे च : उत्तराभिमुखो मन्त्री यदि चक्रं प्रपूजयेत् । उत्तराशा तदा देवी पूर्वाशैव न संशयः । दक्षिणं पश्चिमं प्रोक्तं देव्या दक्षे

तथोत्तरम् । तद्वामं दक्षिणन्तु स्यात् सर्वत्र नियमः स्मृतः । ईशानकोणं देवेशि तदाग्नेयं न संशयः ॥ २७ ॥

ऐं ह्रीं श्रीं अणिमासिद्धिश्रीपा० पू० । एवं ३ लघिमासिद्धिश्रीपा० पू० । ३ महिमासिद्धिश्रीपा० पू० । ३ ईशित्वसिद्धिश्रीपा० पू० । वायव्यादिकोणचतुष्टयेषु ३ वशित्वसिद्धिश्रीपा० पू० । ३ प्राकाम्यसिद्धिश्रीपा० पू० । ३ इच्छासिद्धिश्रीपा० पू० । ३ भुक्तिसिद्धिश्रीपा० पू० । अधः ३ प्राप्तिसिद्धिश्रीपा० पू० । ऊर्ध्वे ३ सर्वज्ञानसिद्धिश्रीपा० पू० । मध्यचतुरस्रस्य पश्चिमादिद्वारचतुष्टयेषु ३ आं ब्रह्माणीश्रीपा० पू० । एवं ३ ईं माहेश्वरीश्रीपा० पू० । ३ ऊं कौमारीश्रीपा० पू० । ३ ॠं वैष्णवीश्रीपा० पू० । वायव्यादि चतुष्कोणेषु ३ लॄं वाराहीश्रीपा० पू० । ३ ऐं इन्द्रणीश्रीपा० पू० । ३ औं चामुण्डाश्रीपा० पू० । ३ अः महालक्ष्मीश्रीपा० पू० । अभ्यन्तर चतुरस्रस्य पश्चिमादिद्वारचतुष्टयेषु ३ द्रां सर्वसंक्षोभिणी मुद्राश्रीपा० पू० ॥ २८ ॥ एवं ३ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपा० पू० । ३ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपा० पू० । ३ ब्लू सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपा० पू० । वायव्यादिकोणचतुष्टयेषु ३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपा० पू० । ३ क्रों महाङ्कुशामुद्राश्रीपा० पू० । ३ ह स ख फ्रें खेचरीमुद्राश्रीपा० पू० । ३ ह्सौः सबीजमुद्राश्रीपा० पू० । अधः ३ ऐं योनिमुद्राश्रीपा० पू० । ऊर्ध्वे ३ औं त्रिखण्डामुद्राश्रीपा० पू० । चक्राग्रे सम्पूर्णचक्रे ३ त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्राय नमः । ३ अं आं सौः त्रिपुराश्रीपा० पू० । एतस्या दक्षिणे ३ द्रां सर्वसंक्षोभिणी मुद्राश्रीपा० पू० । देव्या वामे ३ अः अणिमादिसिद्धिश्रीपा० पू० । ३ चार्वाकदर्शनाय नमः । अत्र त्रैलोक्यमोहनचतुरस्रचक्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटयोगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु इत्यर्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत् ॥ २८ क ॥

ततो द्रामिति सर्वसंक्षोभिणी मुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा । क्लीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा । सौः शिवतत्त्वाय स्वाहा । इति त्रिवारमर्घ्योदकेन तर्पयेत् ॥ २९ ॥

ततः षोडशदलेषु पश्चिमदलादारभ्य वामावर्तेन ३ अं कामाकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा० पू० । ३ आं बुद्ध्याकर्षिणीनित्याकलाश्रीपा० पू० । एवं सर्वत्र नित्यकलाश्रीपादुकां पूजयामीति पदप्रयोगः ।

तथा च नवरत्नेश्वरे : विलोमेन यजेदेताः क्रमान्नित्याकलाः पुनः ।

३ (ऐं ह्रीं श्रीं) अहङ्काराकर्षिणी । ३ ईं शब्दाकर्षिणी । ३ उं स्पर्शाकर्षिणी । ३ ऊं रूपाकर्षिणी । ॠं रसाकर्षिणी । ३ ॠं गंधाकर्षिणी । ३ ऌं चित्ताकर्षिणी । ३ ॡं धैर्याकर्षिणी । ३ एं स्मृत्याकर्षिणी । ३ ऐं नामाकर्षिणी । ३ ओं बीजाकर्षिणी । ३ औं आत्माकर्षिणी । ३ अं अमृताकर्षिणी । ३ अः शरीराकर्षिणी । चक्राग्रे ३ सर्वाशापरिपुरक-षोडदलचक्राय नमः । ३ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरीचक्रनायिका श्रीपा० पू० । सर्वत्रान्ते श्रीपादुकां पूजयामि, आदौ ऐं ह्रीं श्रीं । एतस्या दक्षिणे ३ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्रीपा० पू० । वामे ३ लघिमा-सिद्धिश्रीपा० पू० । वौद्धदर्शनाय नमः । अत्र सर्वाशापरिपूरक-षोडशदलचक्रे त्रिपुरेश्वरी चक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामाकर्षिण्याद्याः गुप्तयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत् । द्रीमिति सर्वविद्राविणी मुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ३० ॥

अष्टदलचक्रे पूर्वादिचतुर्दलेषु वामावर्तेन ३ कं ५ अनङ्गकुसुमादेवी-श्रीपा० पू० । ३ चं ५ अनङ्गमेखलादेवीश्रीपा० पू० । ३ टं ५ अनङ्ग-मदनादेवी श्रीपा० पू० । ३ तं ५ अनङ्गमदनातुरादेवीश्रीपा० पू० । अग्नेयादिदलेषु ३ पं ५ अनङ्गरेखादेवीश्रीपा० पू० । ३ यं ४ अनङ्ग-वेगिनीदेवीश्रीपा० पू० । ३ शं षं सं हं अनङ्गाङ्कुशादेवीश्रीपा० पू० । ३ लं क्षं अनङ्गमालिनीदेवीश्रीपा० पू० । चक्राग्रे ३ सर्वसंक्षोभणाष्ट-दलचक्राय नमः । ३ ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपा० पू० । एतस्या दक्षिणे ३ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्रीपा० पू० । वामे ३ महिमा-सिद्धिश्रीपा० पू० । जिनेन्द्रदर्शनाय नमः । अत्र सर्वसंक्षोभणाष्टदलचक्रे श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततर-योगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत् । क्लीमिति सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्शयेत् । ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेत्यादि पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

चतुर्दशारचक्राग्रात्समारभ्य वामावर्तेन पश्चिमादिदक्षिणान्तं यावत् ३ सर्वसंक्षोभिणीशक्तिश्रीपा० पू० । ३ सर्वविद्राविणी । ३ सर्वाकर्षिणी । ३ सर्वाह्लादिनी । ३ सर्वसम्मोहनी । ३ सर्वस्तम्भिनी । ३ सर्वजृम्भणी । ३ सर्वसत्त्ववशङ्करी । ३ सर्वरञ्जनी । ३ सर्वोन्मादिनी । ३ सर्वार्थ-साधिनी । ३ सर्वसम्पत्तिपूरणी । ३ सर्वमन्त्रमयी । ३ सर्वदुःख-क्षयङ्करी । सर्वत्र शक्तिश्रीपादुकापदप्रयोगः । चक्राग्रे ३ सर्वसौभाग्यदायकचतु-र्दशारचक्राय नमः । हैं ह क्लीं हसौः त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपा०

पू०। एतस्या दक्षिणे ३ ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राश्रीपा० पू०। वामे ३ ईशित्वादिसिद्धिश्रीपा० पू०। सांख्यमीमांसान्यायदर्शनेभ्यो नमः। अत्र सर्वसौभाग्यदायकचतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षोभिण्याद्याः शक्तयः सम्प्रदाययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्रां प्रदर्श्य ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेत्यादि पूर्ववत् ॥ ३२॥ बहिर्दशारचक्राग्रात्समारभ्य वामावर्तेन पश्चिमादृक्षिणान्तं। ३ सर्वसिद्धिप्रदादेवीश्रीपा० पू०। एवं सर्वत्र देवीश्रीपा० पू०। ३ सर्वसम्पत्प्रदा। ३ सर्वप्रियङ्करी। ३ सर्वमङ्गलकरी। ३ सर्वकामप्रदा। ३ सर्वदुःखविमोचिनी। ३ सर्वमृत्युप्रशमिनी। ३ सर्वविघ्ननिवारिणी। ३ सर्वाङ्गसुन्दरी। ३ सर्वसौभाग्यदायिनी। चक्राग्रे सर्वार्थसाधकबहिर्दशारचक्राय नमः। ३ हसैं ह स क्लीं ह्सौः त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपा० पू०। एतस्या दक्षिणे ३ सः सर्वोन्मादिनीमुद्राश्रीपा० पू०। वामे ३ वशित्वादिसिद्धि श्रीपा० पू०। ब्राह्मवैद्यकदर्शनाय नमः ॥ ३३॥

अथ सर्वार्थसाधके बहिर्दशारचक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदा देव्यः कुलकौलिनीयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ततः सः सर्वोन्मादिनीं मुद्रां प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ३३ क॥ अन्तर्दशारचक्राच्च समारभ्य पश्चिमादृक्षिणान्तं यावत् ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादेवीश्रीपा० पू०। एवं सर्वत्रदेवीश्रीपा० पू०। ३ सर्वशक्तिमयी। ३ सर्वैश्वर्यप्रदायिनी। ३ सर्वज्ञानमयी। ३ सर्वव्याधिविनाशिनी। ३ सर्वाधारस्वरूपिणी। ३ सर्वपापहरा। ३ सर्वानन्दमयी। सर्वरक्षास्वरूपिणी। ३ सर्वप्सितफलप्रदा। चक्राग्रे ३ सर्वरक्षाकरान्तदशारचक्राय नमः। ह्रीं क्लीं ब्लूं त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपा० पू०। एतस्या दक्षिणे ३ क्रों महाङ्कुशमुद्राश्रीपा० पू०। वामे ३ ३ प्राकाम्यसिद्धिश्रीप्रा० पू०। ३ सौरदर्शनाय नमः।

अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रे त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञाद्या देव्यो निगर्भयोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। क्रों महाङ्कुशमुद्रां प्रदर्श्य ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पूर्ववत्। ॥ ३४॥

ततोऽष्टारचक्राग्राच्च समारभ्य पश्चिमादृक्षिणान्तं यावत्। ३ अं १६ वरलुं वशिनीवाग्देवताश्रीपा० पू०। एवं ३ वाग्देवताश्रीपा० पू०। एवं सर्वत्र। ३ कं ५ क ल ह्रीं कामेश्वरी। ३ चं ५ न व लीं

मोदिनी। ३ टं ५ ब्लूं विमला। ३ तं ५ ज म रीं अरुणा। ३ पं ५ ह स ल व यूं जयिनी। ३ यं ४ झ म र यूं सर्वेश्वरी। ३ शं षं सं हं लं क्षमरौं कौलिनीवाग्देवताश्रीपा० पू०। चक्राग्रे सर्वरोगहराष्टारचक्राय नमः। ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरासिद्धानित्याश्रीपा० पू०। एतस्या दक्षिणे ३ ह स ख फ्रें खेचरीमुद्राश्रीपा० पू०। वामे भुक्तिसिद्धश्रीपा० पू०। वैष्णव दर्शनाय नमः। अत्र सर्वरोगहरे अष्टारचक्रे त्रिपुरासिद्धाचक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या योगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ३ ह स ख फ्रें खेचरीमुद्रां प्रदर्श्य ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पूर्ववत्। ॥ ३५ ॥

त्रिकोणबाह्ये अग्रतः वामावर्तेन पश्चिमादिदक्षिणान्तं यावत्। ३ द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां शां कामेश्वरकामेश्वरीजम्भणबाणेभ्यो नमः। ३ द्रां ५ यां ५ धं थं सर्वसम्मोहनाय कामेश्वरकामेश्वरीधनुषे नमः ३ द्रां ५ यां ५ आं ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरकामेश्वरीपाशाय नमः। ३ द्रां ५ यां ५ क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरकामेश्वर्यङ्कुशाय नमः। ततस्त्रिकोणाग्रदक्षिणवामेषु मूलवाग्भवमुच्चार्याग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रीशनाथात्मके रुद्रात्मशक्तिकामेश्वरीदेवीश्रीपा० पू०। कामराजमुच्चार्य सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मके विष्णवात्मकशक्तिवज्रेश्वरीदेवीश्रीपा० पू०। शक्तिकूटमुच्चार्य सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मके ब्रह्मात्मशक्तिभगमालिनीदेवीश्रीपा० पू०। चक्राग्रे ३ सर्वसिद्धिप्रदाद्यचक्राय नमः। ह्स्रैं ह्स्क्लरीं ह्स्रौः त्रिपुराम्बानित्याश्रीपा० पू०। एतस्या दक्षिणे ३ ह्सौः बीजमुद्राश्रीपा० पू०। वामे ३ इच्छासिद्धिश्रीपा०। ३ शक्तिदर्शनाय नमः। अत्र सर्वसिद्धिप्रदाद्यचक्रे बाणचापपाशाङ्कुशभूषितान्तराले त्रिपुराम्बाचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादि मूलदेव्यै समर्पयेत्। ह्सौः बीजमुद्रां प्रदर्श्य ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

ततो बैन्दवचक्रे मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपा० पू०। इति त्रिः सम्पूज्य चक्राग्रे सर्वानन्दमयबैन्दवचक्राय नमः। मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपा० पू०। एतस्या दक्षिणे ऐं योनिमुद्राश्रीपा० पू०। वामे ३ प्राप्तिसिद्धिश्रीपा० पू०। ३ मोक्षसिद्धिश्रीपा० पू०। ३ शैवदर्शनाय नमः॥

कुलोड्डीशे यथा : ततो मूलं समुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीम्। पूजयेद्देवतारूपां विन्दौ चक्रेश्वरीं पुनः।

यद्वा नवरत्नेश्वरे : बौद्धं ब्राह्मं तथा सौरं शैवं वैष्णवमेव च। शाक्तं षष्ठन्तु विज्ञेयं चक्रं षड्दर्शनात्मकम् ॥ ३७ ॥

रुद्रयामलेऽपि : चतुरस्रं बौद्धभेदं ब्रह्मं वै षोडशच्छदम् वैष्णवं शैवभेदश्च मन्वस्रं सौरमुच्यते। अष्टास्रं द्विदशारन्तु मध्यं शाक्तं समीरितम्। इत्युक्तस्थाने तत्तदर्शनं पूज्यम्। अत्र सर्वानन्दमये वैन्दवचक्रे परब्रह्मस्वरूपिणी परापरशक्तिमहात्रिपुरसुन्दरीसमस्तचक्र-नायिकासम्वित्तिरूपचक्रनायिकाधिष्ठिते त्रैलोक्यमोहनसर्वाशा-परिपूरक-सर्वसंक्षोभकारक-सर्वसौभाग्यदायक-सर्वार्थसाधक - सर्वरक्षाकर-सर्वरोग-हर-सर्वसिद्धिप्रद-(सर्वानन्दमय) - श्रीचक्रसमुन्मीलितसमस्तप्रकट-गुप्त-गुप्ततरसम्प्रदाय - कुलकौलिनी-निगर्भ रहस्यातिरहस्य - परापररहस्य-समस्तयोगिनीपरिवृत्त-श्रीत्रिपुरा-त्रिपुरेशी-त्रिपुरसुन्दरी - त्रिपुरवासिनी-त्रिपुरा-श्रीत्रिपुरमालिनी-त्रिपुरसिद्धा-त्रिपुराम्बा तत्तचक्रनायिका-वन्दितचरणकमल-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्यादेवी सर्वचक्रेश्वरी-सर्वमन्त्रे-श्वरी-सर्वविद्येश्वरी-सर्वपीठेश्वरी-सर्वकामेश्वरी-सर्वतत्त्वेश्वरी-सर्ववीरेश्वरी त्रैलोक्यमोहिनी-जगदुत्पत्तिमातृका - सर्वचक्रमयी - तच्चक्रनायिकासहिताः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दरी-परापरया सपर्यया पूजितास्तर्पिताः सन्तु। इति विशेषा-र्घ्योदकाक्षतकुसुमैः प्रधानदेव्या वामहस्ते समर्पयेत्। ततो नवमुद्राः प्रदर्श्य, ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहेत्यादि त्रिरर्घ्योदकेन पूर्ववत्तर्पयेत् ॥३७क॥

ततो गन्धपुष्पदूर्वाक्षतमालादीन् दत्त्वा, ऐं इत्युक्त्वा घण्टां वादयन्, मूलमुच्चार्य, ॐ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। इति धूपं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य : ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सवाह्याभ्यन्तरं ज्योति-र्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। इति दीपं दद्यात्। ततो मूलमुच्चार्य श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दर्यै नैवेद्यं कल्पयामि नमः। इति नैवेद्यं दद्यात्। ततो नित्यहोमं कुर्यात्।

तद्यथा : परिषिच्य भूमौ मूलमुच्चार्य ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा। षडङ्गेनापि आहुतिषट्कं दद्यात्।

तथा च : परिषिच्य ततो भूमौ नित्यहोमं समाचरेत् । मूलमन्त्रेण देवेशि हुनेत्पञ्चाहुतीं क्रमात् । प्राणापानौ तथा व्यान उदानश्च समानकः । एतत्स्वरूपं जानीयादाहुतीनाञ्च पञ्चकम् । षडाहुतीः षडङ्गेषु नित्यहोमोऽयमीरितः ।

ततः स्ववामे त्रिकोणवृत्तं चतुरस्रं कृत्वा ऐं ह्रीं श्रीं व्यापकमण्डलाय नमः इति सम्पूज्य, अर्द्धान्नपूर्णसलिलं स्थापयेत्तत्र भाजनम् । त्रिधा पठन् कलावर्णमनुं दद्याद्बलिं ततः । ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यः हूं स्वाहा इति सामान्यार्घ्योदकेन दत्त्वा तत्त्वमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ३८ क ॥ ततो बटुकादिभ्यो बलिं दद्यात् । ईशाने वायु-निर्ऋति अग्निकोणेषु त्रिकोणवृत्तमण्डलानि कृत्वा तेषु वां वटुकाय नमः । यां योगिनीभ्यो नमः । गां गणपतये नमः । क्षां क्षेत्रपालाय नमः । इति पाद्यदिभिः सम्पूज्य तेषु द्रव्यभरितपात्राणि निक्षिप्य बलिं दद्यात् ।

तदुक्तम् : वामादिवटुकं ङेऽन्तं नमोऽन्तो मनुरीरितः । पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य बलिं दद्यादनेन तु । एवमन्यत्रापि । एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वरत्रिनेत्र ज्वालमुख सर्वविघ्नान्नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा इत्यनेन मन्त्रेण वटुकाय बलिं दद्यात् । वामांगुष्ठानामायोगेन मुद्रां प्रदर्शयेत् । ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा, पाताले वा तले वा पवनसलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा । क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन, प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः । यां योगिनीभ्यः स्वाहा, सर्वयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा इत्यनेन बलिं दद्यात् । वामहस्तांगुष्ठतर्जनीमध्यमानामाभिर्योन्याकारेण मुद्राः प्रदर्शयेत् । क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रस्थाने क्षेत्रपाल धूपादिसहितबलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा, इत्यनेन क्षेत्रपालबलिं हरेत् । वाममुष्टेस्तर्जनीं सरलां कृत्वा मुद्रां प्रदर्शयेत् । गां गीं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा इत्यनेन गणपतये बलिं हरेत् । वाममुष्टेर्मध्य-मांगुलिं दण्डवत् कृत्वा मुद्रां प्रदर्शयेत् । भैरवीविद्याया अपि एतद्बलि-चतुष्टयं कर्त्तव्यम् । सर्वान्ते वा सर्वभूतबलिं दद्यात् ।

तन्त्रे बलिमधिकृत्य : अदत्त्वा वटुकादीनां यः पूजयति चण्डिकाम् । पूजा च विफला तस्य देवीशापः प्रजायते । ततो मूलदेव्यै आचमनीयादिकं दत्त्वा सुवासितताम्बूलं दद्यात् ॥ ३९ ॥ ततः आरात्रिकं दद्यात् ।

यथा : कांसादिभाजने कुङ्कुमादिना बालायाश्चक्रं विलिख्य, तत्र कर्पूरगर्भिण्या वर्त्या घृतपूरितानष्टयोनिष्वष्टप्रदीपान् निधाय मध्ये पिष्टकादिरचितमस्तकोपरि महादीपं संस्थाप्य, श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं, म्लूं, प्लूं, ह्लूं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण चाभ्यर्च्य, तत्पात्रं मस्तकान्तं समुद्धृत्य नववारं नीराजयेत् ।

तथा च ज्ञानार्णवे : आरात्रिकमतः कुर्यात्सर्वकामार्थसिद्धये । सौवर्णे राजते कांस्ये स्थानके परमेश्वरि । कुङ्कुमेन लिखेद्यन्त्रं नवकोणं मनोहरम् । चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा तन्मध्ये मस्तके शिवे । दीपमेकं विनिक्षिप्य वसुकोणेऽष्टदीपकान् । यवगोधूममुद्गादिरचितान् शर्करा-युतान् । चषकाहितशोभाभिः शोभितान् घृतपूरितान् । अभिमन्त्र्य महेशानि रत्नेश्वर्यास्ततः परम् । श्रीबीजञ्च पराबीजं संलिख्य वरवर्णिनि । गसौ च मपलाः पश्चादिन्द्रस्थाः क्रमतः प्रिये । वामकर्णसमायुक्ता नादबिन्दुविभूषिताः । बीजपञ्चकमेतत्तु, पञ्चरत्नानि सुन्दरि । पूर्वबीज-विलोमेन रत्नेशीयं नवाक्षरी ॥ ४० ॥

ततो मूलमुच्चार्य : समस्तचक्रचक्रेशि शुभे देवि नवात्मिके आरात्रि-कमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये । ततश्चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत् । आरात्रिके महादेवि चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत् । ततो विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ।

इति श्रीविद्याप्रकरणम् ॥ ४१ ॥

अथ प्रचण्डचण्डिकामन्त्राः

प्रचण्डचण्डिकां वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् । यस्याः प्रसादमात्रेण सदाशिवो भवेन्नरः ॥ १ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान् भवेत् । कवित्वञ्च सुपाण्डित्यं लभते नात्र संशयः ॥ २ ॥

विश्वसारे यामले च : लक्ष्मीं लज्जां ततो मायां मात्रां द्वादशिकामपि । वज्रवैरोचनीये द्वे माये फट् स्वाहयायुतः ॥ ३ ॥ लक्ष्मीबीजं यदाद्यं स्यात्तदा श्रीः सर्वतोमुखी । लज्जाबीजेन चाद्येन वश्यतां यान्ति योषितः । मायाबीजेन चाद्येन महापातकनाशनम् । मात्रां द्वादशिकां बीजमाद्यं स्यान्मुक्तिदायकम् ॥ ४ ॥ भैरवोऽस्य ऋषिर्देवि सम्राट उदीरितम् । छिन्नमस्ता स्मृता देवि बीजं कूर्चद्वयं पुनः । स्वाहा शक्तिरभीष्टार्थे विनियोग उदाहृतः । अत्र लज्जापदं कामबीजपरम् ॥ ५ ॥

तथा च : अत्र लज्जापदे देवि कामबीजं वितन्यते । महाकालमतं

ज्ञेयं मन्त्रोद्धारं शुभावहम् । पूर्वंमायापदेति पाठे मायायाः पूर्वं लज्जाबीजं तस्मिन्नित्यर्थः ।

तथा च : पूर्वंमायापदेन लज्जाबीजमुच्यते अन्यथा तापिन्यादि-विरोधः ।

तथा च : कामाद्यं वाग्भवाद्यां वा मायाद्यो वा जपेत् सुधीः । लक्ष्म्याद्यां वा जपेद्विद्यां चतुर्वर्गफलप्रदाम् । अन्येषाञ्च मुनीनां मते सर्वत्र मायापदं कूर्चपरम् ॥ ६ ॥

तत्रव वान्तं वह्निसमायुक्तं रतिविन्दुसमन्वितम् । लक्ष्मीबीजमिदं प्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम् । वामाक्षिवह्निसंयुक्तं विन्दुनादविभूषितम् । शिवबीजं महेशानि लज्जाबीजमुदाहृतम् । ईशानमुद्धृत्य पुरारिबीजं, सविन्दुकं नादविभूषितञ्च । सवामकर्णं परितः प्रकल्प्य, मायां वदन्तीह मनीषिणस्ताम् । द्वादशस्वरवर्णं स्यान्नादविन्दुविभूषितम् । वाग्भवं बीजमित्युक्तं सर्ववाक्यविशुद्धये । इति मन्त्रचतुर्बीजव्याख्यानात् । अयन्तु समीचीनः ॥ ७ ॥

भैरवमते तु माया भुवनेश्वर्येव । लक्ष्मीः प्रथमबीजऽस्ति लज्जाबीजे मनोभवः । तृतीयेऽस्मिन् सदा देवी महापातकनाशिनी । चतुर्थे तु गुणा-तीता मुक्तिविद्याप्रदायिका । वकारे वरुणः साक्षाज्जकारे तु सुराधिपः । रेफे हुताशनो देवो वकारे वसुधाधिपः । ऐकारे त्रिपुरादेवी रेफे त्रिपुर-सुन्दरी । त्रैलोक्यविजया देवि सदैवौकारसंस्थिता ॥ ८ ॥ चकारे चन्द्रमा देवी नकारे हि विनायकः । ईकारे कमला साक्षात् येकारे च सरस्वती । मायायुग्मे सदा देवी प्रकृत्या सह सङ्गता । वैखरी चैव फट्कारे स्वाकारे कुसुमायुधः । हाकारे च रतिस्तिष्ठेदेवं मन्त्रसमुच्चयः । इति व्याख्यानञ्च ॥ ८क ॥

अथ पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा मन्त्राचमनं कुर्यात् ।

यथा : लक्ष्मीमायाकूर्चबीजैस्त्रिभिः पीत्वाम्बु साधकः । वाग्भवेनोष्ठौ संमृज्य मायाभ्याञ्च द्विरुन्मृजेत् । कूर्चेन क्षालयेत् पाणी एभिर्मन्त्रैश्च विन्यसेत् । श्रीमायाकूर्चवाक्कामत्रिपुटाभगवर्णकैः । कामकलाङ्कुशाभ्याञ्च वक्त्रनासाक्षिश्रोत्रयोः । नाभिहृन्मस्तकञ्चांसौ स्पृष्ट्वाशम्भुर्भवेत् क्षणात् । आचम्यैवं छिन्नमस्तां वत्सरात्तां प्रपश्यति ॥ ९ ॥ ततः प्राणायामान्तं विधाय षोढान्यासं कुर्यात् । मन्त्रषोढां ततः कुर्यात् त्रैलोक्यवश-

कारिणीम् । श्रीबालात्रिपुटायोनिप्रासादप्रणवैस्तथा । कालीवध्वङ्कुशैः कामकलाकूर्चास्त्रकैः क्रमात् । षोडशीमनुवर्णैश्च पृथगष्टदशाक्षरैः । एभिर्बीजैर्मातृकार्णान् स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत् । एषा ब्रह्मस्वरूपा हि बीजषोढा प्रकीर्तिता ॥ १० ॥ अस्याश्च न्यसनात्सर्वे वज्रदेहा भवन्ति हि । सर्वैश्वर्ययुतास्ते हि जीवन्मुक्ता दशाब्दतः ॥ ११ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् : अस्य मन्त्रस्य भैरव-ऋषिः सम्राट छन्दश्छिन्नमस्ता देवता हूङ्कारद्वयं बीजं स्वाहा शक्तिरभीष्टार्थसिद्धये विनियोगः ।

यथा : शिरसि भैरवाय ऋषये नमः । मुखे सम्राट्छन्दसे नमः । हृदि छिन्नमस्तायै देवतायै नमः । गुह्ये हूं हूं बीजाय नमः । पादयोः स्वाहा शक्तये नमः ॥ १२ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इति कनीयसि । ॐ ईं सुखड्गाय शिरसे स्वाहा इति अनामा-पवित्रांगुल्योः । ॐ ऊं सुवज्राय शिखायै स्वाहा इति मध्यमयोः । ॐ ऐं पाशाय कवचाय स्वाहा इति तर्जन्योः । ॐ औं क्रों नेत्रत्रयाय स्वाहा इति अंगुष्ठयोः । ॐ अः सुरक्षासुरक्षायास्त्राय फट् । इति करतलपृष्ठयोः । एवं हृदयादिषु ।

तदुक्तं भैरवतन्त्रे : उच्चरेत् पूर्वमाकारं विन्दुलाञ्छितमस्तकम् । खड्गाय हृदयायेति स्वाहा युक्तं कनीयसि । ईकारञ्च ततो देवि चन्द्रकोटिसमप्रभम् । सुखड्गाय ततो वाच्यं शिरसे तदनन्तरम् । स्वाहायुक्तं ततो वाच्यं पवित्रांगुलिसंयुतम् । ऊकारञ्च ततो वाच्यं विन्दुलाञ्छितमस्तकम् । सुवज्राय ततो वाच्यं शिखायै तदनन्तरम् । स्वाहान्तं मध्यमायाञ्च विन्यसेत्तदनन्तरम् । मात्रां द्वादशिकां देवीं विन्यसेच्च ततः परम् । पाशायेति समुच्चार्य प्रवदेत् कवचाय च । स्वाहान्तं विन्यसेन्मन्त्रं तर्जन्यां तदनन्तरम् । औङ्कारञ्चततो देवि चांकुशं तदनन्तरम् । नेत्रत्रयाय स्वाहान्तमंगुष्ठे करयोर्द्वयोः । अकारञ्च विसर्गान्तं सुरक्षाक्षरसंयुतम् । असुरक्षाय संयुक्तं अस्त्रायेति ततः परम् । कडक्षर-समायुक्तं विन्यसेत् करयोर्द्वयोः ।

अङ्गन्यासस्य प्रमाणम् : हृदि मूर्ध्निशिखायाञ्च कवचे नेत्रमण्डले । यावदस्त्रं चतुर्दिक्षु विदिक्षु च यथाक्रमम् ।

त्रिशक्तितन्त्रे भैरववाक्यम् : उच्चरेत्प्रणवं पूर्वमाकारं विन्दुसंयुतम् । इत्यादिवाक्यात्कराङ्गेषु प्रणवसंवलितो न्यासः ॥ १३ ॥

ततो मूलेन मस्तकादिपादपर्यन्तं पादादिमस्तकान्तं वारत्रयं न्यसेत् ॥ १४ ॥

ततो ध्यानम् : स्वनाभौ नीरजं ध्यायेच्छुद्धं विकसितं सितम् । तत्पद्मकोषमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः । जवाकुसुमसङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभम् । रजःसत्त्वतमोरेखायोनिमण्डलमण्डितम् । मध्ये तु तां महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् । छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् । ॥ १५ ॥ प्रसारितमुखीं भीमां लेलिहानोग्रजिह्विकाम् । पिबन्तीं रौधिरीं धारां निजकण्ठविनिर्गताम् । विकीर्णकेशपाशाञ्च नानापुष्पसमन्विताम् । दक्षिणे च करे कर्त्रीं मुण्डमालाविभूषिताम् । दिगम्बरीं महाघोरं प्रत्यालीढपदे स्थिताम् । अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् । रतिकामोपविष्टाञ्च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिणः । सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् । विपरीतरतासक्तौ ध्यायेद्रतिमनोभवौ । डाकिनीवर्णिनीयुक्तां वामदक्षिणयोगतः । देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम्। वर्णिनीं लोहितां सौम्यां मुक्तकेशीं दिगम्बरीम् । कपालकर्त्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः । नगयज्ञोपवीताढ्यां ज्वलत्तेजोमयीमिव । प्रत्यालीढपदां दिव्यां नानालङ्कारभूषिताम् । सदा द्वादशवर्षीयामस्थिमालाविभूषिताम् । डाकिनीं वामपार्श्वस्थां कल्पसूर्यानलोपमाम् । विद्युज्जटां त्रिनयनां दन्तपंक्तिबलाकिनीम् । दंष्ट्राकरालवदनां पीनोन्नतपयोधराम् । महादेवीं महाघोरां मुक्तकेशीं दिगम्बरीम् । लेलिहानमहाजिह्वां मुण्डमालाविभूषिताम् । कपालकर्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः । देवीगलोच्छद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् । करस्थितकपालेन भीषणेनातिभीषणाम् । आभ्यां निषेव्यमाणां तां ध्यायेद्देवीं विचक्षणः । पिबन्तीमिति तेन मुखेनेति शेषः ।

तथा च : स्वमस्तकं सखर्परं रक्तधाराभिपूरितम् । ललजिह्वं महाभीमं धृतं वामभुजे तथा । इति भैरवतन्त्रे पाठः ॥ १५ क ॥

ध्यानस्यावश्यकत्वमाह तन्त्रे : प्रचण्डचण्डिकामेवमध्यात्वा यस्तु पूजयेत् । सद्यस्तस्य शिरश्छित्त्वा देवी पिबति शोणितम् ॥ १६ ॥

अस्याः पूजायन्त्रम् । तत्रैव : सितं कुर्याद्दलं पूर्वमाग्नेयां रक्तवर्णकम् । याम्यं कृष्णमतः पीतं शुक्लं रक्तं सितासितम् । ततः पीतां प्रकुर्वीत कर्णिकां तस्य मध्यगाम् । तन्मध्ये तु प्रकुर्वीत मण्डलं चण्डरोचिषः । रजः सत्त्वतमोरेखा रक्तशुक्लासिताः क्रमात् । मायायुग्मं

ततो न्यस्य फडक्षरसमन्वितम् । वाह्यं तस्य च चक्रस्य कुर्यात्प्राकार-वेष्टितम् । पूर्वं रक्तं ततः कृष्णं सितं पीतं यथाक्रमात् । चतुर्द्वारसमायुक्तं क्षेत्रपालैरधिष्ठितम् । इत्यस्याः पूजायन्त्रम् ॥ १७ ॥

अथवा : त्रिकोणं विन्यसेदादौ तन्मध्ये मण्डलत्रयम् । तन्मध्ये विन्यसेद्योनिं द्वारत्रयसमन्वितम् । वहिरष्टदलं पद्मं भूविम्बत्रितयं पुनः । कूर्चबीजं लिखेन्मध्ये त्रिकोणे फट्समन्वितम् । (चित्र ३३) ।

यथा च : अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि यथाक्रमम् । स्वनाभौ नीरजं ध्यायेद्भानुमण्डलसन्निभम् । योनिचक्रसमायुक्तां गुणत्रितय-संश्रितम् । तत्र मध्ये महादेवीं छिन्नमस्तां स्मरेद्यतिः । प्रदीपकलिकाकारामद्वितीयव्यवस्थिताम् । योनिमुद्रासमायुक्तं हृदयस्थितलोचनाम् । ध्येयमेतद्-यतीनाञ्च गृहस्थानं निशामय ॥ १८ ॥

यथा : अन्तरे स्वशरीरस्य नाभिनीरजसङ्गताम् । निर्लेपां निर्गुणां सूक्ष्मां वा बालचन्द्रसमप्रभाम् । समाधिनात्रगम्यान्तु गुणत्रितयवेष्टिताम् । कलातीतां गुणातीतां मुक्तिमात्रप्रदायिनीम् । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य तारिणीवच्छङ्खस्थापनं कुर्यात् ॥ १९ ॥

ततः पीठपूजा : आधारशक्तये, प्रकृतये, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, रत्नद्वीपाय, कल्पवृक्षाय, तदधः स्वर्णसिंहासनाय, आनन्द-कन्दाय सम्विन्नालाय, सर्वतत्त्वात्मकपद्माय, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने । नमः सर्वत्र । पद्ममध्ये रतिकामाभ्याम् ॥ २० ॥

भैरवमते तु : आधारशक्तिं कूर्मञ्च नागराजमतःपरम् । पद्मनालञ्च पद्मञ्च पूजयेन्मन्त्रविन्नरः । मण्डलं चतुरस्रञ्च रजः सत्त्वं तमस्तथा । रतिकामौ च सम्पूज्य शक्तिपूजां समाचरेत् । इति रतिकामोपरि वज्रवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि गृह्ण गृह्ण स्वाहा मम सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् मारय मारय करालिके हुँ फट् स्वाहा इति पीठमन्त्रः । सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् । ततः पुनर्ध्यात्वा आवाहयेत् ॥ २१ ॥

यथा सर्वसिद्धिवर्णिनीये सर्वसिद्धिडाकिनीये वज्रवैरोचनीये इहावह पुनस्तन्मन्त्रमुच्चार्य इह तिष्ठ तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व इत्यनेनावाह्य आं ह्रीं क्रों हंसः इत्यनेन प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इत्यादिना षडङ्गं विन्यस्य यथाशक्ति पूजां कृत्वा बलिं दद्यात् ।

यथा : वज्रवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि गृह्ण गृह्ण इमं बलिं मम सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् मारय मारय करालिके हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रेण ॥ २२ ॥ ततो देव्या दक्षिणे वर्णिन्यै नमः। वामे ॐ डाकिन्यै नमः। ततो देव्यङ्गे षडङ्गं सम्पूज्य, दक्षिणे ॐ शङ्खनिधये नमः, वामे ॐ पद्मनिधये नमः। पूर्वादिदिक्षु लक्ष्मीं लज्जां मायां वाणीञ्च पूजयेत्। विदिक्षु ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरान्। मध्ये सदाशिवम्। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। ततः पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा आवरणान् पूजयेत्। अग्नी-शासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ह्रीं काल्यै नमः, एवं वर्णिन्यै डाकिन्यै भैरव्यै महाभैरव्यै इन्द्राक्ष्यै पिङ्गाक्ष्यै संहारिण्यै; सर्वत्रैव प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् ॥ २३ ॥

यथा : एकां नामाभिधां कालीं वर्णिनीं डाकिनीं तथा। भैरवीञ्च महापूर्वां भैरवीं तदनन्तरम्। इन्द्राक्षीञ्च सपिङ्गाक्षीं ततः संहार-कारिणीम्। पूर्वादिके दले पूज्याः शक्तयश्च यथाक्रमम्। प्रणवादिनमो-ऽन्तेन लज्जाबीजं समुच्चरन्। पद्ममध्ये हुं फट् नमः। स्वाहायै नमः। देव्या दक्षिणे सम्राट्छन्दसे नमः। देव्या उत्तरे सर्ववर्णेभ्यो नमः। पुनर्दक्षिणे बीजशक्तिभ्यां नमः। पत्राग्रेषु पूर्वादिक्रमेण ब्राह्म्यै माहेश्वर्यै कौमार्यै वैष्णव्यै वाराह्यै इन्द्राण्यै चामुण्डायै महालक्ष्म्यै। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। ततश्चतुर्दिक्षु द्वारेषु ॐ करालाय नमः। ॐ विकरालाय एवं अतिकरालाय महाकरालाय।

यथा भैरवीये : पूर्वद्वारे करालञ्च विकरालञ्च दक्षिणे। पश्चिमेऽति करालञ्च महाकरालमुत्तरे। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्।

विजसर्जने त्वयं विशेषः : संहारमुद्रां प्रदर्श्य अञ्जलावारोप्य वाम-नासापुटेन, योनिमुद्रासमारूढां प्रदीपकलिकोज्ज्वलाम्। कृष्णपक्षे विधुमिव क्रमेण क्षीणतां गताम्। इमं मन्त्रं समुच्चार्य चण्डरश्मौ निवेशयेत्।

मन्त्रस्तु : उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनी। ब्रह्मयोनि समुत्पन्ने गच्छ देवि ममान्तरम् ॥ २४ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। सिद्धविद्या-त्वात् ॥ २५ ॥

बलिदाने तु भैरवीये : रात्रौ बलिः प्रदातव्यो मत्स्यमांससुरादिभिः। अथवा मधुपानाद्यैर्मधुरैर्विभवक्रमैः ॥ २६ ॥

मन्त्रस्तु : उच्चरेत्प्रणवं पूर्वं सर्वसिद्धिप्रदेऽन्वितम् । वर्णिनीये ततो वाच्यं सर्वसिद्धिप्रदे ततः । डाकिनीये ततो वाच्यं देवीनाम ततःपरम् । एह्येहीति ततो वाच्यम् इमं बलिमनन्तरम् । गृह्ण गृह्ण ततः प्रोक्त्वा मम सिद्धिमनन्तरम् । देहि देहीति माये च ततः फट् स्वाहया युतः । बलिमन्त्रः समाख्यातः पूजितोऽयं सुरेश्वरीति ॥ २७ ॥

मन्त्रान्तरम् :

भुवनेशी कामबीजं कूर्चबीजञ्च वाग्भवम् । भुवनेशी कूर्चबोजं वाग्भवं तदनन्तरम् । वज्रवैरोचनीये च हूं फट् स्वाहा ततः परम् ॥२८॥

अस्य पूजाप्रयोगः : न्यासपूजादिकं षोडशीवत्कार्यम् ॥ २९ ॥ हृल्लेखा मादनं लक्ष्मीं वाग्भवं कूर्चमेव च । अस्त्रान्ता छिन्नमस्ता या महाविद्या प्रकीर्तिता । अस्यास्तु सदृशी विद्या जगत्स्वपि न विद्यते । षड्वर्णोऽयं मनुः साक्षान्मोक्षदो नात्र संशयः ॥ ३० ॥ अस्या ध्यानमहं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने । प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्तृकां, दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा । नागावद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालंकृतां, रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेज्जवा-सन्निभाम् । दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्री तथा खर्परं, हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवा नाम्नापि वर्णिनी । देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धारां पिबन्ती मुदा, नागावद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरैः । वामे कृष्णतनूस्तथैव दधती खड्गं तथा खर्परं, प्रत्यालीढपदा कबन्ध-विगलद्रक्तं पिबन्ती मुदा । सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी, शक्तिः सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी । इति ध्यानम् । अस्याः पूजादिकं सर्वं षोडशीवत्कार्यम् ॥ ३१ ॥

मन्त्रान्तरम् :

तारं लज्जाद्वयं वज्रवैरोचनीये हूं फट् स्वाहा । अस्यापि ध्यान-पूजादिकं सर्वं षोडशीवत्कार्यम् ॥ ३२ ॥ वियत्सूत्रयुतं विन्दुनादयुक्तं ततः प्रिये । एकाक्षरी महाविद्या त्रैलोक्यवशकारिणी । सूत्रं दीर्घं ऊकारः । ठठान्तैषा महाविद्या त्रैलोक्यमोहकारिणी । ताराद्यान्ता भवत्येषा चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ३३ ॥

वज्रवैरोचनीये च कूर्चयुग्मं सफट् ठठः । तारान्द्यैषा महाविद्या सर्वतेजोऽपहारिणी । त्रैलोक्याकर्षिणी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा । ध्यान-पूजादिकं सर्वं षोडशीवत्समाचरेत् ॥ ३४ ॥

इदानीं षोडशीविद्याप्रशंसामाह : तथा सर्वप्रयत्नेन सर्वोपास्या च षोडशी। लक्ष्मीबीजादिका सैव सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥ ३५ ॥ लज्जाद्या स्वर्गभूनागयोषिदाकर्षिणी परा। कूर्चाद्या सर्वजन्तूनां महापातकनाशिनी ॥ ३६ ॥ वाग्भवाद्या यदा देवी वागीशत्वप्रदायिनी। एषा तु षोडशी-विद्या त्रेद्या सप्तदशाक्षरी ॥ ३७ ॥ श्रीबीजपुटिता सा तु लक्ष्मीवृद्धिकरी सदा। लज्जया पुटिता विद्या त्रैलोक्याकर्षिणी परा ॥ ३८ ॥ कूर्चेन पुटिता सर्वपापिनां पापहारिणी। वाग्बीजपुटिता चैषा वागीशत्व-प्रदायिनी ॥ ३९ ॥ चतुर्विधेति विद्यैषा प्रिये सप्तदशाक्षरी। ताराद्या षोडशी चान्या भवेत् सप्तदशाक्षरी। एषा विद्या महाविद्या भुक्तिमुक्ति-करी सदा ॥ ४० ॥ कमला भुवनेशानी कूर्चबीजं सरस्वती। वज्रवैरोच-नीये च पूर्वबीजानि चोच्चरेत्। फट् स्वाहा च महाविद्या वसुचन्द्राक्षरी परा। ताराद्येकोनविंशार्णा ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी। एते विद्योत्तमे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदे शुभे ॥ ४१ ॥ लक्ष्म्यादिपुटिता पूर्वा रन्ध्रचन्द्राक्षरी भवेत्। चतुर्द्धा च महाविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा। प्रणवाद्या यथा चैषा भोगमोक्षकरी सदा ॥ ४२ ॥

मन्त्रान्तरम् :

विद्यान्तरं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय। हृल्लेखाकूर्चवाग्बीजवज्र-वैरोचनीये हूं। अस्त्रं स्वाहा। महाविद्या चतुर्दशाक्षरी मता। सर्वैश्वर्य-प्रदा चैषा सर्वमोहनकारिणी ॥ ४३ ॥ भुवनेशीत्रितत्त्वश्च वाग्बीजं प्रणवं ततः। वज्रवैरोचनीये च फट् स्वाहा च तथा परा। चतुर्दशाक्षरी चैषा चतुर्वर्गफलप्रदा। एषा विद्या महाविद्या जन्ममृत्युविनाशिनी। ॥ ४४ ॥

तन्त्रान्तरे : रमा कामस्तथा लज्जा वाग्भवं वज्र वै पदम्। रोचनीये लज्जाद्वन्द्वमन्त्रं स्वाहासमन्वितम्। इयं सा षोडशी प्रोक्ता सर्वकामफल-प्रदा ॥ ४५ ॥ कथिताः सकला विद्याः सारात्सारतराः शुभाः। आसां ऋषिर्भैरवोऽहं नाम्ना तु क्रोधभूपतिः। सम्राट्छन्दो देवता च छिन्नमस्ता प्रकीर्तिता। षड्दीर्घभाक्स्वरेणैव प्रणवाद्येन सुन्दरि। खङ्गाद्येन ठठान्तानि षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥ नारदोषादिकश्चासां ताः सुसिद्धाः सुरासुरैः। सकलेषु च वर्णेषु सकलेष्वाश्रमेषु च। अन्तिमेषु च वर्णेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायिका। प्राणवाद्याश्च या विद्याः शूद्रादौ न समीरिताः। अस्याश्चैव विशेषोऽयं योषिच्चेत्समुपासयेत्। डाकिनी सा भवत्येव

डाकिनीभिः प्रजायते। पतिहीना पुत्रहीना यथा स्यात् सिद्धयोगिनी। इति ते कथितं तत्त्वं रहस्यमखिलं प्रिये। अति स्नेहतरङ्गेन भक्त्या दासोऽस्मि ते प्रिये ॥ ४८ ॥

एतासां ध्यानपूजादिकं षोडशीवत्कार्यम् ॥ ४९ ॥

नाभौ शुद्धारविन्दं तदुपरि कमलं मण्डलं चण्डरश्मेः, संसारस्यैकसारां त्रिभुवनजननीं धर्मकामोदयाढ्याम्। तस्मिन्मध्ये त्रिकोणे त्रितयतनुधरां छिन्नमस्तां प्रशस्तां, तां वन्दे ज्ञानरूपां निखिलभयहरां योगिनीं योगमुद्राम् ॥ ५० ॥ इति छिन्नमस्ताप्रकरणम् ॥

अथ श्यामाप्रकरणम् :

भैरवतन्त्रे : अथ वक्ष्ये महाविद्याः कालिकायाः सुदुर्लभाः। यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १ ॥ नात्र चिन्ताविशुद्धिः स्यान्न वा मित्रादिदूषणम्। न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम्। न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च ॥ २ ॥ य एनां चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामसमृद्धिदाम्। तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः ॥ ३ ॥ गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते। तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ॥ ४ ॥ राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः।

दिवारात्रिव्यत्ययश्च वशीकर्तुं क्षमो भवेत्। अन्ते च लभते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः ॥ ५ ॥

अथ श्यामामन्त्राः :

तत्र कालीतन्त्रे : कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिविन्दुविभूषितम्। कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम्। दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्। अन्ते वह्निवधूं दद्याद्विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थमाह यामले : ककाराज्जलरूपत्वात्केवलं मोक्षदायिनी। ज्वलनार्णसमायोगात्सर्वतेजोमयी शुभा ॥ ७ ॥ मायात्रयेण देवेशि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। विन्दुना निष्फलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी ॥ ८ ॥ बीजत्रया शाम्भवी सा केवलं ज्ञानचित्कला। शब्दबीजद्वयेनैव शब्दराशिप्रबोधिनी ॥ ९ ॥ लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी। स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ १० ॥

अस्याः पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा मन्त्राचमनं कुर्यात्।

यथा : कालिकाभिस्त्रिभिः पीत्वा काल्यादिभिरुपस्पृशेत्। द्वाभ्या-

मोष्ठौ द्विरुन्मृज्य चैकेन क्षालयेत्करौ ॥ ११ ॥ मुखघ्राणेक्षणश्रोत्रनाभ्युरस्कं भुजौ क्रमात् । आचम्यैवं भवेत्कालो वत्सरात्तां प्रपश्यति । कं शिरः ।

तद्यथा : क्रीमिति त्रिराचमेत् । ॐ काल्यै नमः ॐ कपालिन्यै नमः इति ओष्ठौ द्विरुन्मृजेत् । ॐ कुल्वायै नमः इति करं क्षालयेत् । ॐ कुरुकुल्वायै नमः इति मुखे । ॐ विरोधिन्यै नमः इति दक्षिणनासायाम् । ॐ विप्रचित्तायै नमः इति वामनासायाम् । ॐ उग्रायै नमः ॐ उग्रप्रभायै नमः इति नेत्रयोः । ॐ दीप्तायै नमः ॐ नीलायै नमः इति श्रोत्रयोः । ॐ घनायै नमः इति नाभौ । ॐ बलाकायै नमः इति वक्षसि । ॐ मात्रायै नमः इति शिरसि । ॐ मुद्रायै नमः ॐ मितायै नमः इत्यंसयोः । इति मन्त्राचमनम् ॥ ११ क ॥ ततो भूतशुद्ध्यन्तं विधाय मायाबीजेन यथाविधि प्रणायामं कुर्यात् ॥ १२ ॥ ततः ऋष्यादिन्यासः ।

यथा : अस्य मन्त्रस्य भैरवऋषिरुष्णिक् छन्दो दक्षिणकालिका देवात ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

तथा च कालीक्रमे : कीलकं चाद्यबीजं स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदम् । शिरसि भैरवऋषये नमः । मुखे उष्णिक्छन्दसे नमः । हृदि दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः । गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः । पादयोः हूं शक्तये नमः । सर्वाङ्गे क्रीं कीलकाय नमः ॥ १३ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ । तदुक्तं कालीतन्त्रे : अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते । भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम् । देवात कालिका प्रोक्ता लज्जा-बीजन्तु बीजकम् । कीलकं चाद्यबीजं स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदम् । शक्तिश्च कूर्चबीजं स्यादनिरुद्धा सरस्वती । कवित्वार्थे नियोगः । स्यादित्यादि । तेन मायया षडङ्गन्यासः । षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ।

वीरतन्त्रे : दीर्घषट्कयुताद्येन प्राणवाद्येन कल्पयेत् इति वा ।

तद्यथा : ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं । ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ॐ ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु । ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि । ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिना वा ॥ १४ ॥

ततो वर्णन्यासः : अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः इति हृदये । एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः इति दक्षिणबाहौ । ङं चं छं जं झं

ञं टं ठं डं ढं नमः इति वामबाहौ। णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः इति दक्षिणपादे। मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमः इति वामपादे। विरूपाक्षमते सविन्दुरयं न्यासः।

यथा वीरतन्त्रे: अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं वै हृदये न्यसेदित्यादि। कालीतन्त्रे पुनर्निर्विन्दुः।

यथा: अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ वै हृदयं स्पृशेदित्यादि। किन्तु सविन्दून् वा न्यसेदेतान् निर्विन्दून वाथ वर्णकानित्याचार्यं परिगृहीतमैरवीयवाक्यादुभयमेव युक्तम् ॥ १५ ॥

अथ षोढान्यासः। तदुक्तं वीरतन्त्रे: केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसंपुटाम्। मातृकापुटितं तारं न्यसेत साधकसत्तमः। श्रीबीजपुटितां तान्तु मातृकापुटितन्तु तत्। कामेन पुटितां देवीं तत्पुटं काममेव च। शक्त्या च पुटितां देवीं शक्तिञ्च तत्पुटां न्यसेत्। क्रीं द्वन्द्वञ्च पुनर्न्यस्त्वा ऋ-ॠ-ऌ-ॡश्च पूर्ववत्। मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च। अनुलोम विलोमेन न्यस्य मन्त्रं यथाविधि। मूलेनाष्टशतं कुर्याद्व्यापकं तदनन्तरम्।

यथा: ॐ अं ॐ एवं मातृकापुटितं तारम्। एवं श्रीबीजपुटितां ताम्। तत्पुटितं श्रीबीजम्। एवं कामेन पुटितां मातृकाम्। मातृकापुटितं कामम्। एवं शक्त्या पुटितां मातृकाम्। मातृकापुटितां शक्तिं न्यसेत्। तथा क्रीं द्वन्द्वञ्च ऋ ॠ ऌ ॡश्च पूर्ववत्। तत्पुटितां मातृकां मातृकापुटितञ्च तन्न्यसेत्। मन्त्रपुटितां मातृकां तत्पुटितं मनुम्। पुनरनुलोमविलोमेन केवलं मन्त्रं मातृकास्थाने न्यस्य मूलेनाष्टशतेन व्यापकं कुर्यात् ॥ १६ ॥ अयं न्यासस्ताराया अपि कार्यः। इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोढा प्रकीर्तिता। तारायाः कालिकायाश्च उन्मुख्याश्च तथा परा। कृतेऽस्मिन्न्यासवर्ये तु सर्वं पापं प्रणश्यति ॥ १७ ॥

ततस्तत्त्वन्यासः। यथा: मूलं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहेति पादादि-नाभिपर्यन्तम्। द्वितीयखण्डान्ते ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहेति नाभ्यादि-हृदयान्तम्। तृतीयखण्डान्ते ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहेति हृदयादिशिवःपर्यन्तं न्यसेत्।

तदुक्तं स्वतन्त्रे: मूलविद्यात्रिखण्डान्ते प्रणवाद्यैर्यथाविधि। आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैस्तत्त्वन्यासं समाचरेत् ॥ १८ ॥

अथ बीजन्यासः। तदुक्तं कुमारीकल्पे: ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके। गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्न्यसेत्।

तद्यथा : आद्यबीजं ब्रह्मरन्ध्रे। द्वितीयबीजं भ्रूमध्ये। तृतीयबीजं ललाटे। चतुर्थबीजं नाभौ। पञ्चमबीजं गुह्ये। षष्ठबीजं वक्त्रे। सप्तबीजं सर्वाङ्गे। एतत्त्रयं काम्यम् ॥ १९ ॥ ततो मूलेन सप्तधा व्यापकं कृत्वा यथाविधि मुद्रां प्रदर्श्य ध्यायेत् ॥ २० ॥

तद्यथा कालीतन्त्रे : करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्। सद्यश्छिन्नशिरःखड्ग-वामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्। अभयं वरदञ्चैव दक्षिणोर्ध्वाधः पाणिकाम्। महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्। कण्ठावसक्तमुण्डाली-गलद्रुधिरचर्चिताम्। कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्। घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्। शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्। सृक्वद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥ २१ ॥ घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्। बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्वि-ताम्। दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्। शवरूपमहादेवहृदयो-परिसंस्थिताम्। शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्। महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्। सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्। एवं संचिन्तयेत् कालीं सर्वकामसमृद्धिदाम्। शवयुग्मेति घोरवाणावतंसेति प्रेतकर्णावतंसेति च। शकुन्तपक्षसंयुक्तवामकर्णविभूषिताम्। विगतासु-किशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीमिति दर्शनादुभयमेव पाठः ॥ २१ क ॥

ध्यानान्तरं स्वतन्त्रे : अञ्जनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम्। मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्। महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्। विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शिवैः सह। नागयज्ञोप-वीताढ्यां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्। सर्वालङ्कारसंयुक्तां मुण्डमालाविभूषि-ताम्। शवहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगंशुकाम्। शिवकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्। रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रमत्तिकाम्। वह्न्यर्कशशिनेत्राञ्च रक्तविस्फुरिताननाम्। विगतासुकिशोराभ्यां कृतवर्णावतंसिनीम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्। श्मशान-वह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशववन्दिताम्। सद्यःकृत्तशिरः खड्गवराभीति-कराम्बुजाम्।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ २२ ॥

तद्यथा : स्ववामे भूमौ हूंकारगर्भं त्रिकोणं विलिख्यार्घ्यपात्रं संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलादिना शङ्खादिपात्रमापूर्य, गन्धादिकं दत्त्वा, ॐ गङ्गे

चेत्यादिना तीर्थमावाह्य, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इत्याधारं, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शङ्खम्, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जलं सम्पूज्य, ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं, इत्यग्नीशासुर-वायुषु। अग्र ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। इत्यभ्यर्च्य तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य मूलं दशधा जप्त्वा धेनुमुद्रयामृती-कृत्यास्त्रेण संरक्ष्य, भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, तज्जलं किञ्चित्प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य, मूलेन तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य, पीठपूजामा-रभेत् ॥ २३ ॥

अस्याः पूजायन्त्रम् : आदौ विन्दुं स्वबीजं भुवनेशीञ्च विलिख्य, ततस्त्रिकोणं तद्बाह्ये त्रिकोणचतुष्टयं वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनर्वृत्तं चतुर्द्वारात्मकं भूगृहं लिखेत्। (चित्र ३४-क)।

तदुक्तं कालीतन्त्रे : आदौ त्रिकोणमालिख्य त्रिकोणं तद्बहिर्लिखेत्। ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्। ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः। वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककमम्।

तथा कुमारीकल्पे : मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितमिति। ॥ २४ ॥

अथ विशेषाधारो मुण्डमालायाम् : ताम्रपात्रे कपाले वा श्मशान-काष्ठनिर्मिते। शनिभौमदिने वापि शरीरे मृतसम्भवे। स्वर्णे रौप्येऽथ लौहे वा चक्रं कार्यं विधानतः ॥ २५ ॥

यन्त्रान्तरमाह तन्त्रे : शक्त्याग्निभ्याञ्च षट्कोणं शक्तिभिश्च नवा-त्मकम्। पद्मे वसुदले भूमिपूश्चतुर्द्वार-संयुते इति ॥ २६ ॥ (चित्र ३४-ख)

ततः पीठपूजा। कुमारीकल्पे : पीठपूजां ततः कुर्यादाधारशक्ति-पूर्वकम्। प्रकृतिं कमठं चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च। सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा। श्मशानं पारिजातञ्च तन्मूले रत्नवेदिकाम्। तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः। चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाश्चैव समुण्डकाः। धर्माद्यधर्मादींश्चेत्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। इत्यन्तं सम्पूज्य, केशरेषु पूर्वादिक्रमेण पूजयेत्। इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी। रतीरतिप्रिया नन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। तदुपरि ह्सौः सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासनाय नमः। पीठस्योत्तरे गुरुपंक्तिपूजा ॥ २७ ॥

ततः पुनर्ध्यात्वा, पुष्पाञ्जलावानीय, मूलमन्त्रकल्पितमूर्तावावाहयेत्। ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव। ततो मूलमुच्चार्यामुकि देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ तिष्ठ इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निहिता भव। ततो हुमित्यवगुण्ठ्याङ्गमन्त्रैः सकलीकृत्य, धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य, भूतिन्याकर्षिणीयोनिमुद्राः प्रदर्श्य, प्राणप्रतिष्ठां विधाय, मूलेन पाद्यादिभिः पूजयेत् ॥ २८ ॥

तत्र क्रमः : आदौ मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं अमुकदेवतायै नमः। एवमर्घ्यं स्वाहा। इदमाचमनीयं स्वधा। स्नानीयं निवेदयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः। एतानि पुष्पाणि वौषट्। ततो मूलेन पञ्चपुष्पाञ्जलिं दत्त्वा धूपदीपौ दद्यात्। वनस्पतीत्यादि पठन्मूलमुच्चार्य एष धूपो नमः।

दीपमन्त्रस्तु : सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। मूलमुच्चार्य एष दीपो नमः। तत ॐ जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहेति घण्टां सम्पूज्य, वामहस्तेन वादयन्, नीचैर्धूपं दत्त्वा दृष्टिपर्यन्तं दीपं दद्यात्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा यथोपपन्नं नैवेद्यं दद्यात् ॥ २९ ॥

तत आवरणपूजां कुर्यात्। श्रीअमुकि देवि आवरणं ते पूजयामि इत्याज्ञां गृहीत्वा, केशरेषु अग्न्यादिकोणेषु ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ईशाने ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋते ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। वायौ ॐ ह्रैं कवचाय हुं। अग्रे ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। ततः वहिः षट्कोणे ॐ काल्यै नमः। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। एवं कपालिन्यै कुल्वायै कुरुकुल्वायै विरोधिन्यै विप्रचित्तायै। प्रथमत्र्यस्रे उग्रायै, उग्रप्रभायै, दीप्तायै,। द्वितीयत्र्यस्रे ॐ नीलायै एवं घनायै वलाकयै। तृतीयत्र्यस्रे एवं मात्रायै, मुद्रायै, मितायै।

तथा च : कालीं कपालिनीं कुल्वां कुरुकुल्वां विरोधिनीम्। विप्रचित्तां पूजयेच्च वहिःषट्कोणके बुधः उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तन्मध्ये च त्रिकोणके। नीलां घनां बलाकाञ्च मध्ये त्रिकोणके यजेत्। मात्रां मुद्रां मिताञ्चैव पूजयेदपरे त्रिके। इति। सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः। तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः। दिगम्बरा हसन्मुख्यं स्वस्ववाहनभूषिताः। एवं ध्यात्वा अर्चयेत्।

ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ब्राह्म्यै नमः, एवं नारायण्यै, माहेश्वर्यै, चामुण्डायै, कौमार्यै, अपराजितायै, वाराह्यै, नारसिंह्यै। एता गन्धादिभिः पूजयेत्। पत्राग्रे असिताङ्गादिभैवरान्पूजयेत्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा पाद्यादिना देव्या दक्षिणे महाकालं पूजयेत्। ॥ ३० ॥

तस्य ध्यानम् : महाकालं यजेद्देव्या दक्षिणे धूम्रवर्णकम्। बिभ्रतं दण्डखट्वाङ्गौ दंष्ट्राभीममुखं शिशुम्। व्याघ्रचर्मावृतकटिं तुन्दिलं रक्तवाससम्। त्रिनेत्रमूर्ध्वकेशञ्च मुण्डमालाविभूषितम्। जटाभारलसच्चन्द्रखण्डमुग्रं ज्वलन्निभम् ॥ ३१ ॥

तथा च कुमारीकल्पे : देव्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालं प्रपूजयेत्। हूं क्ष्रौं यां रां लां वां आं क्रों महाकालभैरवं सर्वविघ्नान्नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा। इत्यनेन पाद्यादिभिराराध्य त्रिस्तर्पयित्वा मूलेन देवीं पञ्चापचोरैः पूजयेत् ॥ ३२ ॥

तथा च कालीतन्त्रे : महाकालं यजेद्यत्नात्पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत्।

कालोकल्पे : कवचं क्ष्रौं समुद्धृत्य यां रां लां वां आं क्रोन्ततः। महाकालभैरवेति सर्वविघ्नान्नाशयेति च। नाशयेति पुनः प्रोच्य मायां लक्ष्मीं समुद्धरेत्। फट्स्वाहया समायुक्तो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ३३ ॥ ततो देव्या अस्त्रं पूजयेत्।

तथा च कालीहृदये : देवोवामोर्ध्वाधोहस्ते खड्गं मुण्डञ्च पूजयेत्। देव्या दक्षहस्तोर्ध्वाधः पूजयेदभयं वरम्। ततो देवीं ध्यात्वा यथाशक्ति जप्त्वागुह्यातीत्यादिना देव्या वामहस्ते जपं समर्प्य आत्मसमर्पणं कुर्यात् ॥

तथा च स्वतन्त्रे : ततः पुनर्मूलदेवीं मुद्रातर्पणपूजनैः अर्चयित्वा जपं कृत्वा नत्वा विसर्जयेद्हृदि। ततः स्तुत्वा, प्रदक्षिणीकृत्याष्टाङ्गप्रणामं कृत्वा, श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं पठेत्। तत आवरणदेवता देव्या अङ्गे विलाप्य, संहारमुद्रया अमुकि देवि क्षमस्व इति विसृज्य, तत्तेजः पुष्पेण समं स्वहृद्यारोपयेत्।

ॐ उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनि। ब्रह्मयोनिसमुत्पन्ने गच्छ देवि ममान्तरमिति मन्त्रेण ॥ ३४ ॥

ततस्तन्नैवेद्यं किञ्चिदुच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः इत्यैशान्यां दिशि

दत्त्वा, शेषमिष्टेभ्यो दत्त्वा, किञ्चित् स्वीकृत्य, पादोदकं पीत्वा, निर्माल्यं शिरसि विधृत्य, यथेच्छं विहरेदिति ॥ ३५ ॥

ततो यन्त्रलेपं वामहस्ते कृत्वा सव्यहस्तकनिष्ठया मायाबीजं विलिख्य तया तिलकं कुर्यात् ।

तथा च : वामे कृत्वा यन्त्रलेपं मायां सव्यकनिष्ठया । विलिख्य तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणानेन साधकः । ॐ यं यं स्पृशामि पादाभ्यां यो मां पश्यति चक्षुषा । स एव दासतां यातु राजानो दुष्टदस्यवः । जपकाले च कर्पूरयुक्ता जिह्वा कार्या ।

तथा च : कर्पूराढ्या सदा जिह्वा कर्त्तव्या जपकर्मणि, इति विश्वसारवचनात् । इदं काम्यजप एवेति ॥ ३६ ॥ ततो मूलेनाष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं पुष्पं चन्दनञ्च धृत्वा त्रलोक्यं वशमानयेत् । सर्वसिद्धियुतो भूत्वा भैरवो वत्सराद्भवेत् ॥ ३७ ॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः ।

तथा च कालीतन्त्रे : लक्षमेकं जपेन्मत्री हविष्याशी दिवा शुचिः । रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।

व्यवस्थामाह स्वतन्त्रे : दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः । ततस्तत्तद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये ॥ ३८ ॥

अत्राङ्गस्य कालान्तरमाह नीलसारस्वते : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः । अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च । दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् । इति साम्प्रदायिकाः ।

वस्तुतस्तु कुमारीकल्पे : लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः । रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ॥ ३९ ॥ एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित् । अयुतं होमयेद्देवि दिवारात्रिविभेदतः । तेन दिवा लक्षं जप्त्वा तद्दशांशं होमं कुर्यात् ॥ ४० ॥ रात्रौ लक्षं जप्त्वा रात्रौ तद्दशांशं होमं कुर्यादिति रहस्यार्थः ॥ ४० क ॥

रात्रिजपे तु कालो मुण्डमालायाम् : गते तु प्रथमे यामे तृतीय प्रहरावधि । निशायान्तु प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न हि । अस्य पुरश्चरणं लक्षजपश्च पूर्णानन्दमतेन । अत्रेदं बोध्यं विप्राणान्तु दिवा लक्षजपमात्रेणव पुरश्चरणम् ।

तथा च फेत्कारीये : द्विजातीनाञ्च सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते । शूद्राणाञ्च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम् ॥ ४१ ॥

कालीरहस्येऽपि : दिवैव प्रजपेन्मन्त्रं लक्षमेकं शुचिर्द्विजः। पूर्णानन्दमतेन लक्षजपे पुरश्चरणं तत् सन्दिग्धमत्तं, नानातन्त्रे लक्षद्वयदर्शनात् लक्षद्वयेनैव पुरश्चरणं सिद्धमिति।

अन्यत्र च : दिवैव प्रजपेन्मन्त्रं न तु रात्रौ कदाचन। श्यामायाः पुरश्चरणाङ्गब्राह्मणभोजनं हविष्यान्नेन कारयितव्यम् ॥ ४२ ॥

तथा च विश्वसारे : लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवाशुचिः। ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्धविषा प्रिये। तर्पयेत्तद्दशांशेन तीर्थतोयेन पार्वतीम्। मधुना वा सितामिश्रतोयेन परमेश्वरि। देवीश्चाभिषिञ्चेत्तोयै-स्तर्पणस्य दशांशतः। तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भक्तितो भोजयेद्द्विजाम्। कालीमन्त्रविदो मन्त्री दक्षिणां गुरवे दिशेत्। पाशवं कथितं कल्पं शृणु वीरं ततः प्रिये। रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः। जप्त्वा समाहितो मन्त्री होमयेत् कल्पितानले।

कालीकूलार्णवे : पाशवेन तु कल्पेन लक्षं जप्यात् समाहितः। दिव्यगुरुमुखाल्लब्ध्वा कालिकां दिव्यरूपिणीम्। लक्षं जप्यात्सदा मन्त्री वीरकल्पेन साधकः।

विश्वसारे : प्रजपेत् परया भक्त्या लक्षमेकं दिवानिशम्।

यत्त कुमारीकल्पे : लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः। रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः।

(एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित्। इति वचनात् लक्षद्वयस्य विशिष्टस्य पुरश्चरणमिति। तन्न, पूर्वोक्तवचनविरोधात्। एतद्वचनस्य पुरश्चरणद्वये तात्पर्यम् ॥ ४२ क ॥)

अथ मन्त्रभेदाः : वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुविभूषितम्। एकाक्षरो महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ॥ ४३ ॥ त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्र-प्रबोधिनी ॥ ४४ ॥

अनयोः पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय, पूर्वोक्त ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य, वर्णन्यासं कृत्वा, कराङ्गन्यासौ कुर्यात्।

यथा : ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। एवं ॐ क्रां हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ४५ ॥

तथा च वीरतन्त्रे : दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत्। षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तेन देशिकः। अन्यत् सर्वं पूर्ववत् कार्यम् ॥ ४६ ॥

एकाक्षरस्य ध्यानं सिद्धेश्वरतन्त्रे : शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम्। हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्तृकाकराम्। मुक्तकेशीं ललज्जिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः। चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत् ॥ ४७ ॥

अनयोः पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च सिद्धेश्वरतन्त्रे : एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः। तद्दशांशविधानेन होमयेत् साधकोत्तमः ॥ ४८ ॥

कुलचूडमणौ : एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः। लक्षं रात्रौ तथा लक्षं महाशौचपरायणः ॥ ४९ ॥ रात्रौ जपैकमात्रेण दक्षिणा सिद्धिदा भवेत् ॥ ५० ॥

मन्त्रान्तरम्

कालीतन्त्रे : विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने। मायाद्वयं कूर्चयुग्मैन्द्रान्तं मादनत्रयम्। मायाविन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम्। संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत्। एकविंशाक्षरो ज्ञेयस्ताराद्यः कालिकामनुः। इन्द्रस्य समीपं ऐन्द्रं रेफः ॥ ५१ ॥

तथा च तन्त्रे : माये क्रोधौ त्रयः कामा वह्न्यन्ते रतिसंयुताः। विन्दुयुक्ता महेशानि सम्वोधनपदद्वयम्। सप्तबीजानि संहारैः स्वाहान्तः प्रणवादिकः ॥ ५२ ॥ इत्यत्र स्फुटमाह।

तथा च : प्रणवं मायाद्वयं कूर्चद्वयं निजबीजत्रयं दक्षिणे कालिके निजबीजत्रयम्। कूर्चद्वयं मायाद्वयम् इत्येकविंशाक्षरः। अस्याः पूजादिकं दक्षिणावत् कार्यम्। पुरश्चरणन्तु लक्षजपः तन्त्रोक्तत्वात्। होमस्तु तद्दशांशतः ॥ ५३ ॥

विश्वसारे : स्वाहान्तश्च त्रयोविंशत्यक्षरो मन्त्रराजकः। विना प्रणवं देवेशि द्वाविंशत्यक्षरी भवेत्। स्वाहां विना चैकविंशत्यक्षरः कामदो मनुः। विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता। ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥ ५४ ॥

भैरवतन्त्रे : कामबीजद्वयं देवि दीर्घहूङ्कारमेव च। त्र्यक्षरी सा महाविद्या चामुण्डा कालिका स्मृता ॥ ५५ ॥

तन्त्रे : अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धविद्यां महोदयाम्। भैरवेण पुरा

प्रोक्ता कालीहृदयसंज्ञिता। अस्या ज्ञानप्रभावेण कलयामि जगत्त्रयम् ॥ ५६ ॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्। रतिबीजं समुद्धृत्य प-पञ्चम-भगान्वितम्। ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता। रतिबीजं निजबीजम्।

तथा च चामुण्डातन्त्रे : रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षर-रूपिणी। इति चामुण्डातन्त्रस्थ-कवचप्रतिपादनात्। तेन प्रणवो माया-बीजं निजबीजं प-पञ्चमो मकारः भग एकारः वह्निवल्लभा ॥ ५७ ॥

अस्य पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कर्म विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

यथा : अस्य मन्त्रस्य भैरवऋषिर्विराट्छन्दः सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी देवता निजबीजं बीजं लज्जाबीजं शक्तिः। वर्णन्यासकराङ्ग-न्यासौ च दक्षिणावत् ॥ ५८ ॥

ध्यानन्तु : खड्गाद्भिन्नेन्दुखण्डस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा, सव्ये पाणौ कपालाद् गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिबन्ती। दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता, दीप्तजिह्वा, पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा। एवं ध्यात्वा दक्षिणावत् सर्वं कार्यम् ॥ ५९ ॥ पुरश्चरणन्तु एकविंशतिसहस्रजपः।

तदुक्तं कालीतन्त्रे : जपेद्विंशतिसाहस्र्यं सहस्रैकेन संयुतम्। होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित् ॥ ६० ॥

मन्त्रान्तरम्

विश्वसारे : मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम्। महाविद्या महाकाल्या महाकालेन भाषिता ॥ ६१ ॥ वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिविन्दु-समन्वितम्। एतत्त्रयं वह्निवल्लभा ॥ ६२ ॥ निजबीजत्रयं फट् वह्निवल्लभा ॥ ६३ ॥ निजबीजत्रयं कूर्चं लज्जा पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा ॥ ६४ ॥ वाग्भवं नमो मूलबीजं पुनस्तदेव कालिकायै वह्निवल्लभा ॥ ६५ ॥

एतासां पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यदि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

यथा दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कालिका देवाता। शिरसि दक्षिणामूर्त्तिऋषये नमः। मुखे पंक्तिच्छन्दसे नमः। हृदि कालिकायै देवतायै नमः ॥ ६६ ॥

ततो ध्यानम् : चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता । खड्गञ्च दक्षिणे पाणौ बिभ्रतीन्दीवरद्वयम् । कर्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रती । द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रती शिरसा स्वयम् । मुण्डमाला-धरा शीर्षे ग्रीवायामथ चापरम् । वक्षसा नागहारञ्चबिभ्रती रक्तलोचना । कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता । वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् । विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम् । साट्टहासा महाघोररावयुक्ता सुभीषणा ।

एवं ध्यात्वा अन्यत् सर्वं दक्षिणावत् कुर्यात् । पूर्वोक्तानां मन्त्राणां सर्वं दक्षिणावत् कार्यम् ॥ ६७ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः । अन्यासां मन्त्रवर्णसंख्यलक्षजपः ॥ ६८ ॥ निजबीजद्वयं मायाद्वयं दक्षिण-कालिके वह्निवल्लभा ॥ ६९ ॥ निजं कूर्चं लज्जा दक्षिणे कालिके फट् ॥ ७० ॥ मूलबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं दक्षिणे कालिके पूर्वषड्बीजानि वह्निवल्लभा ॥ ७१ ॥

एतासां पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात् । एतासां दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः दक्षिणकालिका देवता । अन्यत् सर्वं दक्षिणावत् ॥ ७२ ॥ निजबीजं वह्निवल्लभा । भैरवोऽस्य ऋषिः ॥ ७३ ॥ निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जायुगं वह्निवल्लभा ॥ ७४ ॥ निजबीजं कूर्चं लज्जा वह्निवल्लभा । अस्य पञ्चवक्त्र ऋषिः ॥ ७५ ॥ मूलत्रयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं वह्निवल्लभा ॥ ७६ ॥ मूलबीजं दक्षिणे कालिके वह्निवल्लभा ॥ ७७ ॥ निजबीजं कूर्चद्वयं मायां पुनस्तानि वह्निवल्लभा ॥ ७८ ॥ मूलद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा ॥ ७९ ॥ निजबीजत्रयं लज्जाद्वयं कूर्चद्वयं पुनस्तान्येव वह्निवल्लभा ॥ ८० ॥ हृदयं वाग्भवं मूलद्वयं कालिकायै ठद्वयम् ॥ ८१ ॥ हृदयं पाशद्वयं अंकुशद्वयं फट् स्वाहा कालिके कूर्चम् ॥ ८२ ॥ एतासां ऋष्यादिकं पूजादिकञ्च दक्षिणावत् । पुरश्चरणं लक्षजपः ॥ ८३ ॥

एतासां विद्यानां प्रमाणं विश्वसारे : अथ पञ्चाक्षरीं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने । प्रजापतिं समुद्धृत्य वह्न्यारूढं ततः प्रिये । चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादविन्दुविभूषितम् । बीजमत्रयं क्रमेणैव तदन्ते वह्निसुन्दरी । पञ्चाक्षरी महाविद्या कथिता पद्मयोनिना । षडक्षरीं महाकालीं वक्ष्यामि शृणु पार्वति । बीजत्रयं समुद्धृत्य अस्त्रमन्त्रं समुद्धरेत् । वह्निजायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी । अष्टाक्षरी महाविद्या कथ्यते परमेश्वरि । बीजत्रयं

क्रमेणैव पुनर्बीजत्रयं सुधीः । स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा । एकादशाक्षरी विद्या कथ्यते परमेश्वरि । वाग्भवं हृदयं पश्चाद्वह्न्यारूढं प्रजापतिम् । चतुर्थस्वरसंयुक्तं विन्दुनादविभूषितम् । द्विगुणञ्च ततः कृत्वा ङेऽन्तञ्च कालिकापदम् । स्वाहान्ता कथिता विद्या प्रिये एकादशाक्षरी । ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिश्छन्दः पंक्तिरुदाहृतम् । परात्परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता । एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा । लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि । अन्यासां वर्णलक्षं स्यात् कथितं पद्मयोनिना । अन्यासामुक्तपञ्चाक्षरीप्रभृतीनाम् ।

अस्या ध्यानम् : चतुर्भुजां कृष्णवर्णामित्यादि ॥ ८४ ॥ मूलबीजं ततो मायां लज्जाबीजं ततः परम् । दक्षिणे कालिके चेति तदन्ते वह्नि-सुन्दरी । एकादशाक्षरी काली चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ८५ ॥ दशाक्षरी महाविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा । कवचं मूलबीजाद्यं तदन्ते भुवनेश्वरी । दक्षिणे कालिके चेति अस्त्रान्ता समुदीरिता ॥ ८६ ॥ अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णिकाम् । यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद्भूमिपुरन्दरः । मूलबीजद्वयं ब्रूयात्ततः कूर्चद्वयं वदेत् । लज्जाद्वयं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्त-पदद्वयम् । पूर्ववत्षट् तथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरी ॥ ८७ ॥ ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिः पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् । देवता कथिता सद्भिः काली दक्षिणपूर्विका ॥ ८८ ॥ अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् । निजबीजं समुद्धृत्य तदन्ते वह्निसुन्दरी । भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः सर्वतन्त्रसमन्वितः ॥ ८९ ॥ अष्टाक्षरी तु या प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता । निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्व-कामफलप्रदा ॥ ९० ॥ निजं कूर्चं तथा लज्जा तदन्ते वह्निसुन्दरी । पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्त्रऋषिः स्मृतः ॥ ९१ ॥ नवाक्षरीं महाविद्यां शृणुष्व कमलानने । निजबीजत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वसम्पत्करी मता ॥ ९२ ॥ अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां ताञ्च नवाक्षरीम् । मूलबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्धयन्तपदद्वयम् । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वशत्रुक्षयङ्करी ॥ ९३ ॥

अथ चाष्टाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने । निजबीजं ततः कूर्चं ततो मायां समुद्धरेत् । पुनस्तानि समुद्धृत्य स्वाहान्ता मोक्षदायिनी । अथापरां प्रवक्ष्यामि दशतत्त्वसमन्विताम् । मूलद्वयं कूर्चयुग्मं तथा लज्जाद्वयं ततः ॥ ९४ ॥ पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी । चतुर्दशाक्षरी विद्या

चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ६५ ॥ ब्रह्मत्रयं समुद्धृत्य रतिवह्नि-समन्वितम् । नाद-विन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्चद्वयं ततः । पुनः क्रमेण चोद्धृत्य वह्निजायावधि-र्मनुः । षोडशीयं समाख्याता विद्या कल्पद्रुमोपमा ॥ ६६ ॥

मायातन्त्रे : हृदयं वाग्भवं देवि निजबीजयुगं ततः । कालिकायै पदं चोक्त्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥ ६७ ॥

तन्त्रान्तरे : नमः पाशाङ्कुशौ द्वेधा फट् स्वाहा कालि कालिके । दीर्घतनुच्छदं कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ॥ ६८ ॥ एतासां पूजनं देवि दक्षिणावत्सुरेश्वरि । लक्षसंख्यं जपं कुर्यात्पुरश्चरणसिद्धये ॥ ६९ ॥

एतासां पूजायन्त्रं कालीतन्त्रे : आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् । ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् । ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः । वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककम् ।

कुमारीकल्पे : मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम् ॥१००॥

अथ गुह्यकाली :

विश्वसारे : अथ वक्ष्ये महेशानि विद्यां सर्वफलप्रदाम् । चतुर्वर्गप्रदां साक्षान्महापातकनाशिनीम् । सर्वसिद्धिप्रदां नित्यां भुक्तिमुक्तिप्रदा-यिनीम् । गुह्यकालीं महाविद्यां त्रैलोक्ये चातिदुर्लभाम् ॥१॥ इन्द्रादिरूढं वर्गाद्यं रतिविन्दुसमन्वितम् । त्रिगुणञ्च ततः कृत्वा ईशानञ्च समुद्धरेत् । षष्ठस्वरसमायुक्तं नादविन्दुकलान्वितम् । द्विगुणञ्च ततः कृत्वा ईशान-द्वयमुद्धरेत् । वामाक्षिवह्निसंयुक्तं नादविन्दुकलायुतम् । तद्गृह्ये कालिके प्रोक्त्वा चाथवा दक्षिणे वदेत् । सप्तबीजं ततः पूर्वक्रमेण योजयेत्ततः । वह्नि-जायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी । अथवेत्थं गुह्ये कालिके बीजद्वयं दक्षिणे कालिके वा मन्त्रः ॥ २ ॥ कामबीजं ततः कूर्चं तदन्ते भुवनेश्वरी । गुह्ये च कालिके चेति तथा बीजद्वयं भवेत् । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता । एषा तु षोडशी प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा (गुह्य-काल्यादि यन्त्रम् चित्र ३५) ।

अस्यार्थः : आदौ निजबीजं ततः कूर्चं माया ततः सम्बोधनपदद्वयम् । ततो निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निवल्लभा । कामबीजद्वयं हित्वा भवेविद्या चतुर्दशी । अस्य मन्त्रस्येति शेषः ॥३॥ सप्तबीजं पुरा प्रोक्तं गुह्ये-ऽन्ते कालिके पुनः । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता । एषापि चतुर्दशाक्षरी । अस्या नामादिपदं हित्वा चेत्तदा दक्षिणे पञ्चदशाक्षरी । तथा च : दक्षिणे पदमाभाष्य भवेत् पञ्चदशाक्षरी ॥ ४ ॥

तथा : कामबीजं परित्यज्य अथवा षोडशाक्षरी ॥ ४ ॥ एतेन षोडशाक्षर विद्यायाः कामबीजाभावेन पञ्चदशाक्षरी भवति ॥ ५ ॥ कामबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम् । पुनः कामं तदन्ते च दद्याद्वह्निश्च सुन्दरीम् । एषा नवाक्षरी विद्या गुह्यकाल्याः समीरिता । दक्षिणे पदमाभाष्य भवेद्विद्या दशाक्षरी ॥ ६ ॥ एतासां पूजनन्तु तत्रैव । पूर्ववन्न्यासवर्गन्तु पूर्ववत्पूजयेच्छिवाम् । पूर्ववच्च जपेद्विद्यां सर्वं-पूर्ववदेव हि । बलिदानं पूर्ववत्परिकल्पयेत् ॥ ७ ॥

बलिमन्त्रस्तु : एह्येहि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु हूं हूं ह्लीं ह्लीं फट् फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा ।

यद्वा, गुह्यकाल्या अयं बलिमन्त्रः : एह्येहि गुह्यकालि मम बलिं गृह्ण गृह्ण मम शत्रून नाशय नाशय खादय खादय स्फुर स्फुर छिन्दि छिन्दि सिद्धिं देहि हूं फट् स्वाहा ।

तथायं वा आसनमन्त्रः : ॐ सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः ॥ ९ ॥

भद्रकालीमन्त्राः : भद्रकाल्यादयो विद्याः कथ्यन्ते शृणु पार्वति । कामबीजादिकं बीजं सर्वं पूर्वापरे यजेत् । भद्रकालीं तथा ङेऽन्तां बीजमध्ये नियोजयेत् । स्वाहान्ता कथिता विद्या विंशद्वर्णात्मिका परा । चतुर्वर्गप्रदा विद्या भद्रकाली शुभावहा ॥ १० ॥ सप्तबीजं समुद्धृत्य श्मशानकालि चेत्तथा । पुनर्बीजं क्रमेणैव स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा । विंशत्येकाधिका विद्या श्मशानकालिका मता ॥ ११ ॥ बीजानि चोच्चरेत्पूर्वं महाकालिपदं ततः । तदन्ते सप्तबीजानि स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा । विंशत्यर्णा महाविद्या महाकाल्याः प्रकीर्तिता ॥ १२ ॥ एतासां पूजनं जपश्च दक्षिणावत् । विशेषस्तु भूपुरे इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत् । भूपुरस्य पूर्वादि चतुर्द्वारे ॐ विष्णवे नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ सूर्याय नमः, ॐ गणेशाय नमः इति पूजयेत् ।

तद्यथा, : भूगृहे लोकपालांश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः । भूपुरे च चतुर्दिक्षु पूजयेत् क्रमतः सुधीः । विष्णुं शिवं तथा सूर्यं गणेशं पूजयेत्ततः ॥ १३ ॥

पूजा यन्त्रम् : त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं नवकोणं मनोहरम् । त्रिवृत्तं साष्टपत्रञ्च सकिञ्जल्कसमन्वितम् । भूपुरत्रितयारूढं योनिमण्डलमण्डितम् ।

त्रिपञ्चारमिदं प्रोक्तं सर्वतन्त्रे प्रकीर्तितम् । त्रिकोणं त्रिकोणाकारमित्यर्थः ॥ १४ ॥ (चित्र ३५) ।

ध्यानन्तु : महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायिनीम् । लोलजिह्वां घोरदंष्ट्रां कोटराक्षीं हसन्मुखीम् । नागहारलतोपेतां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् । द्यां लिखन्तीं जटामेकां लेलिहानासवं स्वयम् । नागयज्ञोपवीताङ्गीं नागशय्यानिषेदुषीम् । पञ्चाशन्मुण्डसंयुक्तवनमालां महोदरीम् । सहस्रफण संयुक्तमनन्तं शिरसोपरि । चतुर्दिक्षु नागफणावेष्टितां गुह्यकालिकाम् । तक्षकसर्पराजेन वामकङ्कणभूषिताम् । अनंतनागराजेन कृतदक्षिणकङ्कणाम् । नागेन रशनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम् । वामे शिवस्वरूपन्तत्कल्पितं वत्सरूपम् । द्विभुजां चिन्तयेद्देवीं नागज्ञोपवीतिनीम् । नरदेहसमाबद्धकुण्डलश्रुतिमंडिताम् । प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम् ॥ १५ ॥ नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां शिवमोहिनीम् । अट्टहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम् । द्यां लिखन्तीं जटामेकां इति धारयन्तीमिति शेषः । अनन्तं शिरसोपरि दधतीमिति शेषः । गुह्येत्युपलक्षणम् ॥ १५ क ॥ इति श्यामाप्रकरणम् ॥

अथ तारामन्त्राः :

अथ मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि तारिण्याः सर्वसिद्धिदान् । येषां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥ १ ॥ कवितां लभते शुद्धामनर्गलविजृम्भिणीम् । पाण्डित्यं सर्वशास्त्रेषु धनैर्धनपतिर्भवेत् ॥ २ ॥ राजद्वारे सभायाञ्च विवादे व्यवहारके । सर्वत्र जयमाप्नोति बृहस्पतिरिवापरः ॥ ३ ॥ मायाबीजं समुद्धृत्य तकारं वह्निसंयुतम् । मायाविन्द्वीश्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धृतम् । कूर्चबीजं तृतीयं स्यात् फट्कारस्तदनन्तरम् । सम्पूर्णसिद्धमन्त्रस्तु रश्मिपञ्चक संयुतः । रश्मिपञ्चकं वर्णपञ्चकमित्यर्थः ॥ ४ ॥

तथा : लीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती । तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी । उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥

तारार्णवे : वसिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः । अतस्तेनापि मूनिना शापो दत्तः सुदारुणः । ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित् ॥ ६ ॥

शापोद्धारमाह : चन्द्रबीजं त्रपान्तस्थबीजोपरि नियोजितम् । ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी । फलिनी सर्वविद्यानां जयिन जय-

कांक्षिणाम् । विषक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी । मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते ॥ ७ ॥

एकवीराकल्पे : लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजं तथा हि फट् । एवं पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी । वधूबीजं स्त्रींकारः ।

तथा च विश्वसारे : सतरीञ्च महेशानि वधूबीजं प्रकीर्तितम् ॥८॥

तथा एकवीराकल्पे : षोडशव्यञ्जनं वह्निवामाक्षिविन्दुभूषितम् । चन्द्रबीजसमारूढं वधूबीजमिदं स्मृतम् । चन्द्रः सकारः ॥ ९ ॥

नीलतन्त्रे : ताराद्या पञ्चवर्णेयं तथा नीलसरस्वती । सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ॥ १० ॥

तारार्णवे : अणूत्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरमतःपरम् । प-पञ्चमसमारूढं पञ्चरश्मिप्रकीर्तितम् । जीवनीमध्यगा पश्चादेकाक्षरी तदनन्तरम् । उग्रदर्पं ततो दद्यादस्त्रं देवि प्रकाशितम् । एकाक्षी स्त्रीं तेन सर्वत्र शापोद्धारः । ॥ ११ ॥

पञ्चाक्षरीमधिकृत्य तन्त्रे : श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी । एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा । वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी । वितारैकजटा चैषा महामुक्तिकरी सताम् । तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती । कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता । जीवनीमध्यगा माया ॥ १२ ॥

यथा सङ्केतचन्द्रोदये : हृल्लेखा भुवनेश्वरी च भुवना देवीश्वरी ह्रीं महामाया जीवनमध्यगा त्रिजगतां धात्री परेशी परा इति । एषा क्रमागता प्राप्ता मतभेदादनेकधा । एषा पञ्चाक्षरी ॥ १३ ॥

तदेवाह : पञ्चाक्षरी एकजटा ताराभावे महेश्वरी । ताराद्या तु भवेद्देवि श्रीमन्नीलसरस्वती । उग्रतारा त्र्यक्षरी च महानीलसरस्वती । अन्यासां विद्यानां एकजटैव देवथा प्रकृतित्वात् ॥ १४ ॥

एतासां विद्यानां साधनस्थानं नीलतन्त्रे महाफेत्कारीये च : एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे । शवस्योपरि मुण्डे वा जले वाकण्ठपूरिते । संग्रामभूमौ यानौ वा स्थले वा विजने वने । तत्रस्थः साधयेद्योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १५ ॥

तत्रैव : पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते । तदेव लिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा ॥ १६ ॥

अन्यत्रापि उज्जटे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे। देवागारे च शून्ये च निर्जनैकान्तवेश्मनि ॥ १७ ॥

वीरतन्त्रेऽपि : शून्यागारे श्मशाने यदि जपति जडस्त्वेकलिङ्गे तडागे, गङ्गागर्भे गिरौ वा शुचिरमलमतिः सर्वदा भक्तियुतः। विद्यां श्रीनीलबाण्या भुवनजनपतिः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता, देहान्ते योगिमुख्यः परमसुखपदं ब्रह्मनिर्वाणमेति ॥ १८ ॥

अथ ताराचमनम्। भैरवतन्त्रे : ताराभेदैस्त्रिभिः पीत्वा मायया क्षालयेत्करम्। स्त्रीं हूमोष्ठौ द्विरुन्मृज्य फट्कारैः क्षालयेत्करम्। आस्य-नासेक्षण-श्रोत्र-नाभिवक्षःशिरोभुजान्। वैरोचनादिभिः स्पृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। आचम्य भैरवो भूत्वा वत्सरात्तां प्रपश्यति। ताराभेदैरिति उग्रतारैकजटानीलसरस्वतीभेदैः ॥ १९ ॥

वैरोचनादयस्तु : वैरोचन-शङ्ख-पाण्डव-पद्मनाभामिताभ-नामक-मामक-तावक-(पाण्डर-असिताभ)-पद्मान्तक-यमान्तक-विघ्नान्तक-नरा-न्तकाः। सचतुर्थीप्रणवादिनमोऽन्तकाः ॥ २० ॥

अथास्याः पूजाप्रयोगः। प्रातःकृत्यादिस्नानान्तं समाप्य यागस्थानं गत्वा, ॐ वज्रोदके हू फट् स्वाहेतिमन्त्रेण जलमधिष्ठाय, तज्जलं पूजार्थं विधाय, किञ्चिदन्यजले निःक्षिप्य, तेनैव वारिणा ॐ ह्रीं विशुद्धसर्व-पापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हू फट् स्वाहेति हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य कुलकुशान्सुवर्णरजतरूपान्यथाक्रमं तर्जन्यनामासु दत्त्वा ॐ ह्रीं स्वाहे-त्याचम्य, पीठं चिन्तयेत् ॥

विशेषः कुमारीतन्त्रे : स्नानाच्च तीरं उत्थाय वस्त्रे द्वे परिधाय च। तिलकं कुलवत्कृत्वा आचम्यैवं सुरेश्वरि। तथा : जलशङ्खं करे कृत्वा गत्वा द्वारि महेश्वरि। क्षालयद्धस्तपादौ च वक्ष्यमाणेन वर्त्मना।

मत्स्यसूक्ते : तारं वज्रोदके हू फट् स्वाहा जलमधिष्ठितम् ॥

तथा : तारं लज्जाविशुद्धान्ते सर्वपापानि चैव हि। शमयान्ते स्वशेषान्ते विकल्पपदमुच्चरेत्। अपनयान्ते धर्म फट् स्वाहा पदविशुद्धये। तारं माया च वह्निजाया स्मृतमाचमने मनुः।

कुलकुशास्तु : सुवर्णं रजतश्चैव जपपूजादिकर्मसु। कुशकार्यकरं प्रोक्तं न तु वन्याः कुशाः कुशाः। तर्जन्या रजतं धार्यं स्वर्णं धार्य-मनामया।

पीठं यथा : श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्। तन्मूले मणिपीठञ्च नाना-मणिविभूषितम्। नानालङ्कारभूषाढ्यं मुनिदेवैश्च भूषितम्। शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः। चतुर्दिक्षु शव-मुण्डचिताङ्गारास्थिभूषितम्। तन्मध्ये भावयेद्देवं यथोक्तध्यानयोगतः। इति ध्यात्वा ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा इति शिखां बध्नीयात्। ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहेति जलसेकाद्भूमिं शोधयेत्। ॐ सर्वान् विघ्नानुत्सारय हूं फट् स्वाहेति नाराचमुद्रया अक्षतप्रक्षेपेण त्रिविधविघ्नान्। दिव्यान्तरीक्षभौमानुत्सारयेत्। ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं फट् स्वाहा इति भूमिमभिमन्त्र्य तत्र कम्बलकोमल-विष्टराद्यासनानि यथा साधनान्यास्तीर्य, ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूं फट् स्वाहेति पुष्पादिना तदभ्यर्च्य, स्वस्तिकादिक्रमेण तत्रोपविशेत् ॥२१॥

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते : मृदुकोमलमासीनश्चान्येषु कम्बलेषु च। विष्टरं वा समासीनः साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम्।

कोमलादिलक्षणमाह श्रीक्रमे : पञ्चवर्णान्तरं यावन्मृतं बालम-चूडकम्। षण्मासानन्तरं यावद्दशमासाच्च पूर्वतः। गर्भच्युतं मृतं बालं गर्भाष्टमपुरःसरम्। एतत्कोमलमित्याहुर्विष्टरेषु कुशेषु वा।

तथा च नीलतन्त्रे : निवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः पुमान्। यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः। पञ्चमे वर्षे पञ्चमवर्षपूर्णे।

आसनपरिमाणमाह : एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरस्रं समन्ततः। विशुद्धे आसने कुर्यात्संस्कारं पूजनं ततः। कृष्णसारव्याघ्राद्यजिनमप्या-सनम्।

तदुक्तं तन्त्रे : कृष्णसारद्वीपिचर्म अचूडमित्यादि। विष्टरेष्वित्यादि। कुशपत्रशतेन वटुकं निर्माय तत्र शवप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।

तथा : ओङ्कारम् आः सुरेखे वज्ररेखे ततः परम्। हूं फट् स्वाहेति कुर्यात्तु मण्डलन्तु शवासने। वीरासनेनोपविश्य सम्पूज्यासनमेव च। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्। ततः ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा इति वस्त्रान्ते रक्षाग्रन्थिं बन्धयेत्। ॐ आः हूं फट् स्वाहा इति व्यापकतया कायवाक्चित्तं शोधयेत्। ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक्सम्बन्धाय ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते। पुष्पचयावकीर्णे हूं फट् स्वाहेति पुष्पमभिमन्त्रयेत्। ततः सुवर्णादिपीठे गोरोचनाकुंकुमादिलिप्ते ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूं

फट् स्वाहेति मन्त्रेणाधोमुखत्रिकोणगर्भाष्टदलपद्मं वृत्तं चतुरस्रं चतुर्द्वारयुक्तं यन्त्रमुद्धरेत्। पद्मस्य पूर्वादिदले मन्त्राक्षराणि लिखेत्। ॥ २१ क ॥ (चित्र ३६)।

तथा च कुलचुडामणौ : ततः कुलरसेनैव पीठं निर्माय यत्नतः। आः सुरेखे वज्ररेखे हुं-फट् स्वाहासमन्वितम्। मन्त्रेणानेन संलिख्य वसुपत्रं मनोरमम्। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्। कुलरसेन स्वयम्भूरसेन ॥ २१ ख ॥

वर्णलिखनप्रकारमाह-फेत्कारीये : स्वयोनिं चन्दनेनाष्टदलं वृत्तं लिखेत्ततः। मृद्वासनं समासाद्य मायां पूर्वदले लिखेत्। मध्यबीजं द्वितीये फमुत्तरे पश्चिमे तु टम्। मध्ये बीजं लिखेत्तारं भूतशुद्धिमथाचरेत्। द्वितीये दक्षिणे तारं हूकारं ताराप्रणवत्वात्। टं पश्चिमे भागे कूर्चं पत्रान्ते भूपुरद्वयमिति। भैरवीयवाक्याच्च। मध्ये षट्कोणान्वितपद्ममिति केचित्।

तदुक्तम् : षट्कोणान्तर्गतं पद्मं भूविम्बद्वित्तयं पुनः। चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं वा यन्त्रमालिखेत्। बीजलिखनन्तु पूर्ववत् ॥ २२ ॥

नीलतन्त्रेऽपि सारस्वतार्थिनां विशेषयन्त्रमाह : व्योमेन्द्वौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरं, वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमतीगेहेन सवेष्टितम। ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद्दिक्कोणसंशोभितं, यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥ २३ ॥ एवं वा यन्त्रं विलिख्य पीठमर्चयेत्। (चित्र ३७)

तथा च कुमारीकल्पे : ततोऽर्घ्यपात्रं विन्यस्य द्वारपालान् समर्चयेत्। गांबीजाद्यं गणेशानं वामाद्यं वटुकं तथा। क्षामाद्यं क्षेत्रपालञ्च यामाद्यां योगिनीं तथा। पूर्वे पश्चिमे दक्षिणे उत्तरे पूजयेत् सुधीः। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् ॥ २४ ॥

तन्त्रे : ते सर्वे ध्रुवदीर्घाढ्याः शक्तिबीजपुरःसराः।

यथा : पीठस्य पूर्वद्वारे ॐ ह्रीं गां गणेशाय नमः, पीठस्य दक्षिणे ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः, पीठस्य पश्चिमे ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः। पीठस्योत्तरे ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः। मध्ये ॐ श्मशानाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः। तन्मूले मणिपीठाय नमः। एवं नानालङ्कारेभ्यो नमः। नाना मुनिभ्यः, नानादेवेभ्यः, वहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यः। चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यः। ततोऽग्न्याद्यष्टदलेषु ॐ लक्ष्म्यै

नमः एवं सरस्वत्यै रत्यै प्रीत्यै कीर्त्यै शान्त्यै तुष्ट्यै पुष्ट्यै; मध्ये ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।

तदुक्तं सिद्धसारस्वते : लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च। कीर्तिः शान्तिश्च तुष्टिश्च पुष्टिरित्यष्टशक्तयः। देव्या नीलसरस्वत्याः पठीशक्तय ईरिताः।

वीरतन्त्रे : तन्मध्ये पूजयेद्देव्या वाहनं शवमेव च ॥ २५ ॥ ततो भूतशुद्धिं कुर्यात्।

तद्यथा : स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हंस इति मन्त्रेण कुलकुण्डलिनीं जीवात्मानं वैलोम्येन चतुर्विंशतितत्त्वानि सुषुम्नावर्त्मना शिरोऽवस्थित परमात्मनि परमशिवे संयोज्य, ह्रींकारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यायन, पूरकेण तस्य षोडशवारजपेन तदुद्भूतेनाग्निना लिङ्गशरीरं संदह्य, स्त्रींकारं, पीतवर्णं हृदि विचिन्त्य, कुम्भकेन तस्य चतुःषष्टिवारजपेन तदुद्भूतेन वायुना भस्म प्रोत्सार्य, हूंकारं श्वेतवर्णं शिरसि विचिन्त्य, रेचकेण तस्य द्वात्रिंद्वारजपेन तदुद्भूतेनामृतेन तदस्थि प्लावितं कृत्वा, समस्तमपगतव्यथं विश्वं शरीरमाप्लावयेत्।

तथा च श्रुतिः : षट्त्रिंशत्तत्त्वानि शरीरमिति। तत आत्मानमपगतव्यथं निर्मलं देवताऽभेदेन विचिन्तयेत्। तस्मिन् विश्वव्यापके वारिणि आःकाराद्रक्तपङ्कजं तदुपरि टाङ्कारात्श्वेतपङ्कजं तदुपरि नीलसन्निभं हूंकारं ध्यात्वा तदुपरि हूंकारभूषितां कर्तृकां ध्यायेत् ॥ २६ ॥ तदुपरि देवतां ध्यात्वा, आं ह्रीं क्रों स्वाहेत्येकादशवारं जपन् प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत।

तदुक्तं फेत्कारीये : मायां नाभौ रक्तवर्णं ध्यात्वा तज्जातवह्निना। शुक्लं कर्मात्मकं देहं दग्धं सञ्चिन्तयेत्ततः। स्त्रीङ्कारं हृदि पीताभं तदुद्भूतेन वायुना। भस्म प्रोत्सारितं कृत्वा ललाटे चिन्तयेत्ततः। कूर्चं तुषारवर्णाभं तदुद्भूतामृतेन च। तदस्थि प्लावितं कृत्वा तदात्मानं विचिन्तयेत्। सर्वव्यथाविनिर्मुक्तं निर्मलं देवतामयम्। भूतशुद्धिं विधायेत्थं शून्यं विश्वं विचिन्तयेत्। निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम्। अन्तरीक्षे ततो ध्यायेदाःकाराद्रक्तपङ्कजम्। भूयस्तस्योपरि ध्यायेत् टाङ्कारात् श्वेतपङ्कजम्। तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् हूंकारं नीलसन्निभम्। ततो हूंकारजां पश्येत् कर्तृकां बीजभूषिताम्। कर्तृकोपरि ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ॥ २६ क ॥

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमाला-विभूषिताम् । खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ । नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् । चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् । खड्गकर्तृसमायुक्त सव्येतरभुजद्वयाम् । कपालोत्पल-संयुक्त-सव्यपाणि-युगान्विताम् । पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् । बालार्कमण्डलाकार लोचनत्रयभूषिताम् । ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्रां करालिनीम् । सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम् । विश्वव्यापकतोयान्तःश्वेत-पद्मोपरि स्थिताम् । अक्षोभ्यो देवीमूर्द्धन्यस्त्रिमूर्त्तिनागरूपधृक् । पञ्चमुद्रा-विभूषितामिति ललाटे श्वेतास्थि-पट्टिकाचतुष्टयान्वित-कपालपञ्चक भूषितामित्यर्थः । श्वेतास्थिपट्टिकायुक्त-कपालपञ्चशोभितामिति तन्त्र-चूडामणौ ।

श्रीशङ्कराचार्येणाप्युक्तम् : विचित्रास्थिमालां ललाटे करालां कपालञ्च पञ्चान्वितं धारयन्तीमिति ॥ २७ ॥

ततः प्राणायामः : वामनासपुटे मूलं चतुर्वारं जप्त्वा वायुं पूरयेत् । तदनु नासापुटौ धृत्वा षोडशवारेण कुम्भयेत् । तदनु दक्षिणनासापुटेन वाराष्टकावर्तेन रेचयेत् । पुनर्दक्षिणेनापूर्य कुम्भयित्वा वामेन रेचयेत् । पुनर्वामेनापूर्य कुम्भयित्वा दक्षिणेन रेचयेत् । इति प्राणायामत्रयं भवति ॥ २८ ॥

ततः ऋष्यादिन्यासः : शिरसि अक्षोभ्यऋषये नमः । मुखे बृहती-च्छन्दसे नमः । हृदि श्रीमदेकजटायै नमः । मूलाधारे हूं बीजाय नमः । पादयोः फट् शक्तये नमः । शेषाण्यक्षराण्युच्चार्य सर्वाङ्गे कीलकाय नमः ।

तथा च वीरतन्त्रे : अक्षोभ्यऋषिरेतस्या बृहतीच्छन्द ईरितम् । नीलसरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता । हूं बीजं मन्त्रशक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ २९ ॥ ततः कालीतन्त्रोक्तमातृकान्यासः ।

तथा चोक्तम् : यथा काली तथा नीला तत्क्रमान्मातृकां न्यसेत् ।

तद्यथा : अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमो हृदि । एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमो दक्षभुजे । ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वामभुजे । णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षिणजङ्घायाम् । मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमो वामजङ्घायाम् ॥ ३० ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अंगुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं

अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां हूं। ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। अंगुलिनियमस्तु पूर्वं एवोक्तः। अयन्तु नीलसरस्वतीपक्षे।

तथा च तामधिकृत्य सिद्धसारस्वते: अखिलवाग्रूपिणीं प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत्। वाग्रूपिणीति शिरसे वह्निवल्लभा। ब्रह्मवाग्रूपिणीमुक्त्वा शिखायै वषडित्यपि। विष्णुवाग्रूपिणीं प्रोच्य कवचाय हूमुच्चरेत्। रुद्रवाग्रूपिणीं नेत्रत्रयाय वौषडित्यपि। सर्व-वाग्रूपिणीमुक्त्वा अस्त्राय फडिति स्मरेत्॥ ३१॥ षड्दीर्घभाजबीजान्ते ङेऽन्तं नामाभियोजयेत्। अयन्तु नीलसरस्वतीपक्षे। अन्यत्र तु ह्रां एकजटायै अंगुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हूम्। ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु।

तथा च एकजटामधिकृत्य नीलतन्त्रे: बीजान्ते एकजटायै हृदयं परिकीर्तितम्। तारिण्यै शिरसे तद्वद्वज्रोदके शिखा तथा। उग्रजटे तु कवचं महाप्रतिसरे तथा। पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रास्त्रे परिकीर्तिते। षड्दीर्घभाजबीजान्ते ङेऽन्तं नामाभियोजयेत्॥ ३१ क॥ अनुक्तत्वादत्र पीठन्यासमातृकान्यासौ न लिखितौ।

तथा च फेत्कारीये: अत्रोक्तमाचरेत् सम्यक् नान्यत् सञ्चारयेद्बुधः। ततः फलार्थिना ताराषोढान्यासः कर्त्तव्यः ३२॥ ताराषोढां प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपिताम्। सर्वविघ्नोपशमनीं सर्वपापप्रणाशिनीम्॥ ३३॥ महादारिद्र्यशमनीं सर्वसम्पत्प्रदायिनीम्। सर्वकामप्रदां नित्यं सर्वसाम्राज्यदायिनीम्॥३४॥ शिष्याय भक्तियुक्ताय विनीताय महात्मने। वदान्याय कुलीनाय शुद्धाचाररताय च॥ ३५॥ एवं विधाय देवेशि साधकाय प्रकाशयेत्॥ ३६॥ अन्यथा सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा शङ्करैः कृता॥ ३७॥ रुद्रैस्तु प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः। लोकपालै-स्तृतीयः स्याच्छिवशक्त्या चतुर्थकः। तारादिभिः पञ्चमः स्यात् षष्ठः पीठैर्निगद्यते। एकेन सहिता रुद्राः पञ्चाशत् परिकीर्तिताः॥ ३८॥ विन्दुयुक्तैर्मातृकार्णैस्त्र्यक्षरीबीजपूर्वकैः। ङेन्तैर्नमोऽन्तैर्देवेशि विन्यसेत्तान् क्रमात् सुधीः। तारिणी त्र्यक्षरी प्रोक्ता भवबन्धविनाशिनी। नीलवर्णा

त्रिनयनां शवासनसमायुताम् । बिभ्रतीं विविधां भूषां मौलावक्षोभ्य-भूषिताम् । एवं ध्यात्वा तारिणीन्तु समाहितमनाश्चिरम् ॥ ३९ ॥

अथ रुद्रन्यासः : ह्रीं स्त्रीं हूं अं श्रीकण्ठेशाय नमः । इत्यादिना मातृकान्यसेत् । ह्रीं स्त्रीं हूं आं अनन्तेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हूं इं सूक्ष्मेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हूं ईं त्रिमूर्तीशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हूं उं अमरेशाय नमः । ह्रीं स्त्रीं हूं ऊं अर्घीशाय नमः । एवं ३ ऋं भारभूतीशाय, ३ ॠं अतिथीशाय, ३ ऌं स्थाणुकेशाय, ३ ॡं हरेशाय, ३ एं झिण्टीशाय, ३ ऐं भौतिकेशाय, ३ ओं सद्योजातेशाय, ३ औं अनुग्रहेशाय, ३ अं अक्रूरेशाय, ३ अः महासेनेशाय, ३ कं क्रोधीशाय, ३ खं चण्डेशाय, ३ गं पञ्चान्तकेशाय, ३ घं शिवोत्तमेशाय, ३ ङं एकरुद्रेशाय, ३ चं कूर्मेशाय, ३ छं एकनेत्रेशाय, ३ जं चतुराननेशाय, ३ झं अजेशाय, ३ ञं सर्वेशाय, ३ टं सोमेशाय, ३ ठं लाङ्गलीशाय, ३ डं दारुकेशाय, ३ ढं अर्द्धनारीश्वरेशाय, ३ णं उमाकान्तेशाय, ३ तं आषाढीशाय, ३ थं दण्डीशाय, ३ दं अद्रीशाय, ३ धं मीनेशाय, ३ नं मेषेशाय, ३ पं लोहितेशाय, ३ फं शिखीशाय, ३ बं छगलण्डेशाय, ३ भं द्विरण्डेशाय, ३ मं महाकालेशाय, ३ यं बालीशाय, ३ रं भुजङ्गेशाय, ३ लं पिनाकीशाय, ३ वं खड्गीशाय, ३ शं वकेशाय, ३ षं श्वेतेशाय, ३ सं भृग्वीशाय, ३ हं नकुलीशाय, ३ ळं शिवेशाय, ३ क्षं संवर्तकेशाय । इति रुद्रन्यासः ॥ ४० ॥

अथ ग्रहन्यासः : स्वरैर्हृदिन्यसेदर्कं रक्तं त्र्यक्षरपूर्वकैः । भ्रुवोर्मध्ये अवगण सोमं शुक्लन्तु विन्यसेत् । नेत्रत्रये कवर्गेण लोहितं मङ्गलं न्यसेत् । हृन्मण्डले तथा श्यामं चवर्गेण बुधं न्यसेत् । कण्ठकूपे पीतवर्णं टवर्गेण बृहस्पतिम् । पाण्डाराभं तवर्गेण शुक्रन्तु गलदेशके । नाभिदेशे नीलवर्णं पवर्गेण शनैश्चरम् । यवर्गेण धूम्रवर्णं राहुं वक्त्रेन्यसेत्ततः । लक्षाभ्यां गुददेशे च केतुं धूम्रं वरानने ॥ ४१ ॥

प्रयोगस्तु : हृदि रक्तवर्णं सूर्यं ध्यात्वा ह्रीं स्त्रीं हूं अं १६ सूर्याय नमः । भ्रूमध्ये शुक्लवर्णं सोमं ध्यात्वा ३ यं रं लं वं सोमाय नमः । नेत्रत्रये लोहितं मङ्गलं ध्यात्वा ३ कं खं गं घं ङं मङ्गलाय नमः । हृदयमण्डले श्यामं बुधं ध्यात्वा ३ चं ५ बुधाय नमः । कण्ठकूपे पीतवर्णं बृहस्पतिं ध्यात्वा ३ टं ५ बृहस्पतये नमः । गलदेशे पाण्डरं शुक्रं ध्यात्वा ३ तं ५ शुक्राय नमः । नाभिदेशे नीलवर्णं शनैश्चरं ध्यात्वा ३ पं ५ शनैश्चराय नमः । मुखे धूम्रवर्णं राहुं ध्यात्वा ३ यं रं लं वं शं षं

सं हं राहवे नमः । गुदे धूम्रवर्णं केतुं ध्यात्वा ३ लं क्षं केतवे नमः । इति ग्रहन्यासः ॥ ४१ क ॥

अथ लोकपालन्यासः इन्द्रमग्निं यमं रक्षो वरुणं पवनं विभुम् । ईशानमात्मनो मूर्ध्नि दिक्षु चाष्टास्वनुक्रमात् । अधोऽनन्तमूर्ध्वदेशे ब्रह्माणञ्च ततो न्यसेत् । ह्रस्वदीर्घस्वरैश्चाष्टवर्गैस्त्र्यक्षरपूर्वकैः । आत्मनो मूर्ध्नि देशेऽष्टदिक्ष्वध-ऊर्ध्वञ्च विन्यसेदित्यर्थः ।

तत्र प्रयोगः : ह्रीं स्त्रीं हूं अं आं कं ५ इन्द्राय नमः । नमः सर्वत्र । ३ इं ईं चं ५ अग्नये । ३ उं ऊं टं ५ यमाय । ३ ऋं ॠं तं ५ नैर्ऋताय । ३ ऌं ॡं पं ५ वरुणाय । एं ऐं यं रं लं वं वायवे । ३ ओं औं शं षं सं हं कुबेराय । ३ अं अः लं क्षं ईशानाय । ३ अधः अनन्ताय । ३ उर्ध्वं ब्रह्मणे । इति लोकपालन्यासः ॥ ४२ ॥

अथ शिवशक्तिन्यासः : ब्रह्मा विष्णुश्चरुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । ततः परशिवो देवि षट्शिवाः परिकीर्तिताः ॥ ४३ ॥ मूलाधारे तु ब्रह्माणं डाकिनीसहितं न्यसेत् । सर्वत्र त्र्यक्षरीमुक्त्वा वादिसान्तं सविन्दुकम् ॥ ४४ ॥ स्वाधिष्ठानाख्यचक्रेण सविष्णुराकिणीं तथा । वादिलान्तं प्रविन्यस्य नाभौ तु मणिपूरके ॥ ४५ ॥ डादिफान्तार्णसहितं रुद्रञ्च लाकिनीन्तथा । अनाहते कादिठान्तम् ईश्वरं काकिनीं न्यसेत् । ॥ ४६ ॥ विशुद्धाख्यमहाचक्रे षोडशस्वरसंयुतम् । सदाशिवं शाकिनीन्तु विन्यसेत्पूर्ववत्ततः ॥ ४७ ॥ आज्ञाचक्रे तु देवेशि हक्षवर्ण-समन्वितम् । परं शिवं ब्रह्मरूपं हाकिनीसहितं न्यसेत् ॥ ४८ ॥

अथ प्रयोगः : मूलाधारे ह्रीं स्त्रीं हूं वं शं षं सं डाकिनीसहितब्रह्मणे नमः । स्वाधिष्ठाने ३ वं भं मं यं रं लं वं राकिणीसहितविष्णवे नमः । मणिपूरे ३ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहितरुद्राय नमः । अनाहते ३ कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीसहितेश्वराय नमः । विशुद्धाख्ये ३ अं १६ शाकिनीसहितसदाशिवाय नमः । अज्ञाचक्रे ३ हं क्षं हाकिनीसहितपरशिवाय नमः । इति शिवशक्तिन्यासः ॥ ४९ ॥

अथ तारादिन्यासः : तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा काली सरस्वती । कामेश्वरी च चामुण्डा इत्यष्टौ तारिणी मता । सर्वादौ तारिणीवर्णं समुच्चार्य क्रमेण तु । स्वरादिवसुवर्गेण भूषितेन च विन्दुना । ङेऽन्ता नमोऽन्ता न्यस्तव्यास्ताराद्या ध्यानपूर्विकाः । ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठगह्वरे । हृदये नाभिदेशे च लिङ्गे चाधारके न्यसेत् ।

प्रयोगस्तु : ब्रह्मरन्ध्रे ह्रीं स्त्रीं हूं अं १६ तारायै नमः। ललाटे ३ कं ५ उग्रायै नमः। भ्रूमध्ये ३ चं ५ महोग्रायै नमः। कण्ठगह्वरे ३ टं ५ वज्रायै नमः। हृदये ३ तं ५ काल्यै नमः। नाभिदेशे ३ पं ५ सरस्वत्यै नमः। लिङ्गे ३ यं रं लं वं कामेश्वर्यै नमः। मूलाधारे ३ शं षं सं हं लं क्षं चामुण्डायै नमः। इति तारादिन्यासः ॥ ५० ॥

अथ पीठन्यासः : मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरं तथा। ललाटे पूर्णगिर्याख्यं उड्डीयानं तदूर्ध्वके। वाराणसीं भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्तीं लोचनत्रये। मायावतीं मुखवृत्ते कण्ठे मधुपुरीं ततः। अयोध्यां नाभिदेशे च कट्यां काञ्चीं विनिर्दिशेत्। दशैतानि प्रधानानि पीठानि क्रमशो विदुः। ह्रस्वदीर्घस्वरैर्भिन्नैर्नमोऽन्तैः क्रमतो न्यसेत्।

अथ प्रयोगः : मूलाधारे ह्रीं स्त्रीं हूं अं आं कं ५ कामरूपीठाय नमः। हृदि ३ इं ईं चं जालन्धरपीठाय नमः। ललाटे ३ उं ऊं टं ५ पूर्णगिरिपीठाय नमः। ललाटोर्ध्वे ३ ऋं ॠं तं ५ उड्डीयानपीठाय नमः। भ्रुवोर्मध्ये ३ ऌं ॡं पं ५ वाराणसीपीठाय नमः। लोचनत्रये ३ एं ऐं यं रं लं वं ज्वलन्तीपीठाय नमः। मुखवृत्ते ३ ओं औं शं षं सं हं मायावतीपीठाय नमः। कण्ठे ३ अं अः लं क्षं मधुपुरीपीठाय नमः। नाभिदेशे ३ अयोध्यापीठाय नमः। कट्यां ३ काञ्चीपीठाय नमः ॥ ५१ ॥ इति षोढा प्रकथिता तारायाः सर्वसिद्धिदा। अक्षोभ्यः सर्वजन्तूनां न्यासस्यास्य प्रसादतः ॥ ५२ ॥ इति रुद्रयामले तारोषोढा समाप्ता।

प्रकारान्तरम्। कालीतन्त्रे : मन्त्रेणान्तरितान्कृत्वा षड्धा च मातृकां न्यसेत्। क्रमोत्क्रमाद्वरारोहे ताराषोढा प्रकीर्तिता ॥ ५३ ॥ कृतेऽस्मिन्न्यासवर्ये च सर्वं पापं प्रणश्यति। योगिनीनां भवेत्पूज्यः न देवो स तु मानुषः ॥ ५४ ॥ यं नमन्ति महेशानि षोढापुटितविग्रहाः। अल्पायुः स भवेत्सद्यो देवता कम्पते भिया। नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखोज्ज्वलः ॥ ५५ ॥

तदुक्तं तन्त्रान्तरे : न्यसेत्सर्गान्वितां सृष्ट्या हृत्या विन्द्वन्तिकां न्यसेत्। विन्दुसर्गान्वितां न्यस्येत् डाद्यर्णान् स्थितिवर्त्मना ॥ ५६ ॥ संहृतेर्दोषसंहारः सृष्टेस्तु सुतपुष्टयः। स्थितेस्तु शान्तिविन्यासस्तस्मात्कार्यस्त्रिधा मतः ॥ ५७ ॥ न्यासः संहारान्तो मस्करिवैखानसेषु विहितोऽयम्। स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्ट्यन्तो वर्णिमामिति प्राहुः ॥ ५८ ॥

वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारान्तं केचिदाहुराचार्यः। सहजानौ वनवासिनि स्थितिश्च विद्यार्थिनां सृष्टिम् ॥ ५९ ॥ एतेन सृष्टिस्थितिसंहृतिक्रमेण कर्त्तव्यम्। षडधा चेति सृष्टिस्थितित्याद्युत्क्रमेणेत्यर्थः। सृष्टिरकारादि-क्षकारान्तः। स्थितिर्डादिठान्तः। संहृतिः क्षकाराद्यकारान्तः ॥ ६० ॥

अथ षोढान्तरम्। तदुक्तं यामले : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यषोढा-त्वियं प्रिये। न प्रकाश्यमिदं क्वापि मन्त्रिणः कायशोधने। प्रणवं मातृकावर्णैः पुटितं मातृकास्थले ॥ ६१ ॥ तेनैव पुटितं वर्णं न्यसेत्तत्रैव पार्वति। मायाबीजं तथा देवि विन्यस्तव्यं प्रयत्नतः ॥ ६२ ॥ वधूबीजं तथा चैव विन्यसेत्सुसमाहितः। कूर्चबीजं तथा देवि न्यसनीयमशेषतः ॥६३॥ अस्त्रं चैव तथा न्यस्त्वा सकलं तदनन्तरम्। गुह्यषोढा त्वियं देवि न प्रकाश्या कदाचन। अवश्यं प्रत्यहं कार्या न पूजा न जपस्तथा ॥ ६४ ॥ अथवा कालीषोढा कर्तव्या।

तदुक्तं यामले : गुह्यषोढा सदा कार्या तारिण्या मन्त्रसिद्धये। कालीषोढाथवा देवि न पूजा न जपस्तथा ॥ ६५ ॥ ततो मूलमुच्चार्य शिर-आदि पादपर्यन्तं पादादि शिरोऽन्तं हृदादि मुखपर्यन्तं व्यापकत्रयं न्यसेत्। अथवा प्रणवपुटितमूलेन व्यापकन्यासं सप्तधा पञ्चधा वा कुर्यात्।

तदुक्तं फेत्कारीये : ओंकारपुटितं कृत्वा मनुना व्यापकं न्यसेत्। ॥ ६६ ॥

ततोऽर्घ्यस्थापनम्। यथा : स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा तत्र साधारं पात्रं निधाय मूलविद्यया जलादिनापूर्य जलमन्त्रेण जल-मधिष्ठाय रक्तचन्दनबिल्वपत्रादीन्निक्षिप्य अर्घ्यस्याग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादिना ह्रां एकजटायै इत्यादिना वा षडङ्गानि विन्यस्य अर्घ्यपात्रं मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य मूलं दशधा जपेत्।

तथा च कालीतन्त्रे : दशकृत्वो जपेद्विद्यां देवताभावसिद्धये। ततोऽस्त्रेण संरक्ष्य धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तेजोमयं तज्जलं विभाव्य किञ्चित्प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य पूजामारभेत्। भूतशुद्ध्यनन्तरं वा।

तथा च फेत्कारीये : भूतशुद्धिं विधायाथ अर्घ्यादिस्थापनञ्चरेत्। प्राणायामं ततः कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत्। ततः पुष्पाञ्जलिं विरच्यात्माभेदेन देवतां ध्यायेत् ॥ ६७ ॥

यथा : प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रि-शवहृद्घोराट्टहासा परा, खड्गेन्दीवरकर्तृखर्परभुजा हूङ्कारबीजोद्भवा। खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता, जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥ ६८ ॥

एवं विभाव्य करकलितदूर्वाक्षतरक्तचन्दनमिलितदिनकरकिरणारुणकुसुमाञ्जलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयान्मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यमयीं षट्चक्रभेदेन शिरःस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राम्य तदमृतलोलीभूतां चैतन्यानन्दमयीं तां प्रवहन्नासापुटादानीय मूलेन कल्पितमूर्तावावाहयेत्।

तथा च तन्त्रान्तरे : देवीं सुषुम्नामार्गेण चानीय ब्रह्मरन्ध्रकम्। वहन्नासापुटे ध्यात्वा निर्यान्तीं स्वाञ्जलिस्थिताम्। पुष्पे आरोप्य तत्पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत्। ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवार-समन्विते। यावत्त्वं पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव। पूर्वोक्तक्रमेण आवाहनादिकं कृत्वा योन्यादिपञ्चमुद्रा बीजसहिता दर्शयेत्। आवाहनादिमुद्राभिः पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत्। इति भैरवीये आह। तास्तु मुद्राप्रकरणे अनुसन्धेयाः ॥ ६९ ॥ आं ह्रीं क्रों स्वाहेति प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा मूलमुच्चार्य श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहेति षोडशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत्।

अस्याः प्रयोगस्तु : आदौ मूलं तत एतन्मन्त्रमुच्चार्य इदं द्रव्यममुकदेवतायै नमः।

तथा च फेत्कारिण्याम् : श्रीमदेकजटे उक्त्वा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ च। तारादिवह्निजायान्तमुदीर्य यजनं चरेत्। तारः कूर्चं तदादि हूं फडित्यर्थः। स च वह्निजायान्तश्चेति। कस्याञ्चित् प्राचीनपद्धतौ ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हूं फट् स्वाहा पाद्यं नमः। ॐ तारिणि ह्रीं इदमाचमनीयं स्वधा। ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा। ॐ ह्रीं कपालिके मधुपर्कः स्वधा। श्रीमदेकजटे इदमाचमनीयं सुगन्धिजलं नमः।

गन्धपुष्पयोर्विशेषस्त्वयं : ॐ परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि। श्रीमदेकजटे एष गन्धो नमः। एवं ॐ तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम्। आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि। इयं वचोरचना विद्याधराचार्यसम्मता ॥ ७० ॥

तारिणीनिर्णये : प्रणवं भगवत्येकजटे माया ततः परम् । विशुद्धधर्मगात्रितः सर्वपापानि तत्परम् । शमय सर्वविकल्पानपनय हूं फट् शिरः । अयं पाद्यमनुर्देवि आचमनीयमनुं शृणु । तारं वज्रिणि मायेति तारो माया ततः परम् । मणिधरि वज्रिणीति महाप्रतिसरे मनुः । माया कपालिके मन्त्रो मधुपर्के सुरेश्वरि । ततो योनिमुद्रां प्रदर्श्य देवि आज्ञापय भवत्याः परिवारान् पूजयामीति प्रार्थ्यावरणान पूजयेत् ।

तद्यथा : केशरेष्वग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च षडङ्गानि पूजयेत् ।

यथा : ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः । ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा । हूं वज्रोदके शिखायै वषट् । ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं । ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट् । चतुर्दिक्षु ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट् । नीलसरस्वतीपक्षे तु ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्य देव्या मौलौ अक्षोभ्यवज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहेति मन्त्रेणाक्षोभ्यं पूजयेत् । ततः पीठस्योत्तरे वायव्यादीशान पर्यन्तं गुरुपंक्तिः पूजयेत् ।

यथा : ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हूं फट् स्वाहेति ।

तथा चोक्तं फेत्कारीये : वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हूं फट् स्वाहेति मन्त्रतः । एकन्मन्त्रे नाममात्रं भिन्नश्चैव न संशयः । अनेन मनुना सर्वान् परिवारान् समर्चयेत् ।

एवं व्योमकेशानन्दनाथ-नीलकण्ठानन्दनाथ-वृषध्वजानन्दनाथान् पूजयेत् । एते दिव्यौघाः । वसिष्ठानन्दनाथ-कूर्मनाथानन्दनाथ-मीननाथानन्दनाथ-महेश्वरानन्दनाथ-हरिनाथानन्दनाथान् पूजयेत् । एते सिद्धौघाः ।

एवं तारावत्यम्बा-भानुमत्यम्बा-जयाम्बा - विद्याम्बा - महोदर्यम्बा-सुखानन्दनाथ-परानन्दनाथ-पारिजातानन्दनाथ-कुलेश्वरानन्दनाथ -विरूपाक्षानन्दनाथ-फेरव्यम्बाः पूजयेत् । एते मानवौघाः ॥ ७० क ॥

तथा च तारातन्त्रे : अथ तारागुरून् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान् । ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो वृषध्वजः । दिव्यौघाः सिद्धिदा वत्स सिद्धौघान् शृणु तत्त्वतः । वसिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः । हरिनाथो मानवौघान् शृणु वक्ष्यामि तद्गुरून् । तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी । सुखानन्दः परानन्दः पारिजातः कुलेश्वरः ।

विरूपाक्षः फेरवो च कथितं तारिणीकुलम् । आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः सर्वसिद्धिदाः । स्त्रियोऽपि गुरुरूपास्तु अम्बान्ताः परिकीर्तिताः । अशक्तश्चेदक्षोभ्यमात्रं पूजयेत् । मम मौलिस्थितं देवमवश्यं परिपूजयेत् । इति फेत्कारीये देवीवाक्यात् ।

ततः पूर्वादिदले : महाकाल्यथ रुद्राणी उमा भीमा तथैव च । घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी । अष्टमी भैरवी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् । ततः पूर्वादि चतुर्दले वामावर्तेन वैरोचन-शङ्ख-पाण्डव-पद्मनाभानसिताभान् पूजयेत् । अग्न्यादिकोणदलेषु नामकमामक-पाण्डव-तारकान् पूजयेत् । पूर्वादिद्वारचतुष्टयेषु वामावर्तेन पद्मान्तक-यमान्तक विघ्नान्तक-नरान्तकान् वज्रपुष्पेत्यादिना पूजयेत् ।

तथा च सिद्धसारस्वते : वैरोचनं तथा शङ्खं पाण्डवं पद्मनाभकम् । असिताभं यजेन्मन्त्री दिक्ष्विन्द्रतश्चचतुर्दले । नामकं मामकञ्चैव पाण्डवं तारकं तथा । वह्न्यादिकचतुष्कोणे मन्त्रैः स्वैः क्रमाद्यजेत् ।

नीलतन्त्रे : वामावर्तक्रमेणैव पूजयेदङ्गदेवताः । द्वारपूर्वादितस्तद्वं पद्मान्तकयमान्तकौ । विघ्नान्तकमथाभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकमिति ॥ ७० ख ॥

ततो बलिदानम् । तदुक्तं फेत्कारीये : पूजान्ते भोजनादौ च बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥ ७१ ॥

तत्र क्रमः : स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा पुष्पैस्तमभ्यर्च्य तत्र विहितबलिद्रव्यभरितं साधारं पात्रं निधाय तद्वामांगुष्ठानामिकाभ्यां धृत्वा ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्ति कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा इति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात् ॥ ७२ ॥

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते : इति सम्पूज्य वामे च व्यापकं मण्डलं लिखेत् । कुसुमैरर्चयेत्तत्तु तत्र पात्रं निधाय च । पात्रे विनिहितं द्रव्यं निधाय साधकोत्तमः । अंगुष्ठानामिकाभ्यान्तु बलिं दद्यात् प्रयत्नतः । इति ।

तथा च सिद्धसारस्वते : प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाञ्च ततःपरम् । एकजटे पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् । यक्षाधिपदमाभाष्य पतये पदतो मया । उपनीतं पदं चोक्त्वा बलिं गृह्णेति च द्विधा । गृह्णापय द्विधा प्रोक्त्वा मम सर्वपदं तथा । शान्ति कुरु पदद्वन्द्वं परविद्यामनन्तरम् ।

द्विधाकृष्येति च ब्रूयात् त्रुट छिन्धीति च द्विधा। सर्वादि च ततो जगद्वशमानय शब्दतः। मायया स्वाहया युक्तो मन्त्रो बलिविधौ स्मृतः ततो रहस्यमालया निगदेनोपांशुना मानसेन वा अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जपेत्।

तथा च : अष्टोत्तरशतं जाप्यं यावज्जीवितसंख्यया। सहस्रं वा जपेद्देवि नित्यपूजाविधौ पुनः। अशक्तश्चेद्विंशत्या न्यूनं न जपेत्।

तथा च : सहस्रं शतं विंशं वा जपेद्रहस्यमालया ॥ ७४ ॥

तत्र जपरहस्यम् यथा : मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकेषु यथाक्रमं बीजत्रयव्याप्तिं तडित्कोटिभास्वरां परस्परानुस्यूतां विभाव्य सर्वतेजोमयं फट्कारं विश्रान्तिमयं हृदि ध्यात्वा उच्चरेत्।

तथा नीलतन्त्रे : मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि जपात् सार्वज्ञदायकम्। मन्त्रध्यानान्महेशानि शुध्यते ब्रह्महा यतः। मूलचक्रे तु हृल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम्। स्वाधिष्ठाने पीतवर्णं द्वितीयन्तु विभावयेत्। नाभौ जीमूतसङ्काशं कूर्चबीजं महाप्रभम्। अस्त्रवीबोजं हृदि ध्यायेत् कालाग्निसदृशप्रभम्। मूलादिब्रह्मरन्ध्रे तु सर्वां विद्यां विभावयेत्। सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्विकाम्। एवं यथाशक्ति जप्त्वा जपसमर्पणादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ७५ ॥

जपसमर्पणक्रमस्तु फेत्कारीये : ततश्चार्घ्योदकेनैव देव्याश्च वामहस्तके। जपं समर्पयेद्धीमान् गुह्यातिगुह्यमन्त्रकैः ॥ ७६ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षमनन्यधीः।

तथा : रहस्यमालामादाय लक्षमेकं सदा जपेत् ॥ ७७ ॥

रहस्यमाला यथा : अकस्माद्विहिता सिद्धिर्महाशङ्खाख्यमालया। पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा।

तथा : कान्तेन रचिता सिद्धिर्महाशङ्खाख्यमालया। महाशङ्खाभावे स्फाटिकी माला कर्त्तव्या।

तथा च : महाशङ्खेऽप्यशक्तश्चेत् स्फाटिकीमालया जपेत् ॥७८॥

महाशङ्खस्तु तन्त्रान्तरे : नृललाटास्थिखण्डेन रचिता जपमालिका। महाशङ्खमयीमाला ताराविद्याजपेप्रिया। कर्णनेत्रान्तरस्थास्थि महाशङ्खः प्रकीर्तितः। तुलसीगोमयस्पृष्टं तथा गङ्गोदकेन च। अस्पृश्यं तच्च जानीयात् शालग्रामशिलादिभिः। तारामन्त्रेषु कुल्लुकाज्ञानमावश्यकम्।

तथा च मत्स्यसूक्ते : कुल्लुकां यो न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः। पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत् ॥ ७९ ॥

मायातन्त्रे : कुल्लुकां धारयेच्छीर्षे लिखित्वा भूर्जपत्रके। राजद्वारे सभायाश्च विजयी भवति ध्रुवमिति ॥ ८० ॥ एवमुक्तेन जप्त्वा तु तद्दशांशेन होमयेत्। तर्पणश्चाभिषेकश्च दशांशं विप्रभोजनम् ॥ ८१ ॥ तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते ॥ ८२ ॥

तथा च सिद्धसारस्वते : एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोपलैः। आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्पणम् ॥ ७३ ॥

तत्रैव : एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोपलैः। आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री विल्वैर्वा जुहुयात्ततः। कालागुरुद्रवोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः। तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते ॥ ८४ ॥ जले चावाह्य विधिवत् पाद्याद्यैरुदकात्मकैः। सन्तर्प्य विधिवद्देवीं परिवारान्पृथक्पृथक् ॥८५॥

अभिषेको यथा : देवीबुद्ध्या स्वमात्मानं सम्पूज्य साधकोत्तमः। वारिणीं सिञ्चयामीति जलं मूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ॥ ८६ ॥

अथ मन्त्रभेदाः :

एकवीराकल्पे : लिखेत् खं कूर्चसंयुक्तं रौद्रं त्रैगुण्यमेव च। विधिविष्णुमहेशानां स्वशक्त्या क्रमयोगतः। एषा विद्या महाविद्या सर्वसिद्धिप्रदा मता।

अस्यार्थः, : खं खस्वरूपं न त्वाकाशबीजम्।

तथा च तन्त्रे : ऋद्धिसंज्ञं समुद्धृत्य विन्दुनादविभूषितमिति वचनात्। रौद्रं प्रासादं, त्रैगुण्यं प्रणवं, विधिशक्तिर्वाग्भवं विष्णुशक्ती रमाबीजं महेशशक्तिर्भुवनेशीबीजम्। ध्यानार्चन प्रकारश्च तारिण्याः पूर्ववद्भवेत् ॥ ८७ ॥ प्रणवं भुवनेश्वरीं ह्रां कूर्चबीजं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय प्रणवयुग्मं वह्निजाया।

तथा च नीलतन्त्रे : प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्। गगनं दोषसंयुक्तं विन्दुनादविभूषितम्। कूर्चबीजञ्च हृदयं तारायै च समुद्धरेत्। सकलदुस्तरं तारय तारयेति ततः पुनः। तारयुग्मं वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत्समुपाचरेत् ॥ ८८ ॥

अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः।

तदुक्तं तत्रैव : चतुर्लक्षजपेनास्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥८९॥

मायातन्त्रे : श्रीभगवानुवाच । तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा काली सरस्वती । कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृता ॥ ९० ॥

एतासां मन्त्रमाह : उष्मवर्णगतोऽजीवो निगमस्वरसंयुतः । नादविन्दुसमाक्रान्तस्तत्त्वरश्मिसमन्वितः । कपिलो वामकर्णस्थो नादाढ्यो विन्दुशेखरः । पार्श्वान्तिश्च तथा ञान्तं शरान्तं परिकीर्तितम् ॥ ९१ ॥ मध्यादिमायाकवचं द्वितीयं मन्त्रमुद्धृतम् ॥ ९२ ॥ विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं कूर्चाद्यश्च तुरीयकम् ॥ ९३ ॥ मायादिकवचान्तश्च पञ्चमं परिकीर्तितम् ॥ ९४ ॥ मायामध्यगतं षष्ठं द्वितीयान्तश्च सप्तमम् ॥ ९५ ॥ अष्टमं कवचं मध्यमेकं भेदाष्टकं भवेत् ॥ ९६ ॥

अस्यार्थः : उष्मवर्णो रेफः, अजीवो हकारः, निगमस्वर ईकारः, तत्त्वरश्मिर्वधूबीजं, कपिलो हकारः, पार्श्वः पकारः, तस्यान्तः फकारः, ञान्तष्टकारः, शरान्तं फडन्तं तेन पञ्चाक्षरः प्रकृतिः । मध्यादीति तेन वधूर्माया कूर्चं फट् । विपरीतमितो आद्यन्तबीजयोर्वैपरीत्यमत्र । तेन कूर्चं वधूर्माया फट् । कूर्चेति कूर्चं माया वधूः फट् । मायादीति । तेन माया वधूः फट् कूर्चम् । मायेति तेन वधूर्माया फट् कूर्चम् । द्वितीयेति तेन माया कूर्चं वधूः फट् । अष्टमेति वधूः कूर्चं माया फट् ॥ ९७ ॥

ऋषि स्यादष्टकश्छन्दोऽनुष्टुप च देवता तथा । शम्भुपत्नी महेशानि चतुर्वर्गेषु योजयेत् ॥ ९८ ॥ काललक्षं जपेन्मन्त्रमेवमुक्तेन वर्त्मना ॥ ९९ ॥ ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत्समुपाचरेत् ॥ १०० ॥ त्र्यक्षरस्यैव भदोऽयं फटौ यत्र न तत्र वै । जप्ये तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं न्यासे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

मन्त्रान्तरम् : प्रणवं तारे तु तारे तत्ता वह्निवल्लभा ।

तदुक्तं गान्धर्वे : प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारे तु तारे तथा । तत्ता स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदाहृतः ॥ २ ॥

अस्या ध्यानं स्वतन्त्रतन्त्रे : श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां वरपङ्कजे । दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृताम् । शक्तिभिः स्मेरवदनां स्मेरमौक्तिकभूषणाम् । रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत् ॥ ३ ॥ अस्य पूजादिकं पूर्ववत्कार्यम् । पुरश्चरणन्तु दशलक्षजपः ।

तदुक्तं तत्रैव : वर्णलक्षं जपेद्धीमान्नियमेन यथाविधि । दशांशं जुहुयान्मन्त्री घृताक्तैः रक्तपुष्पकैः ॥ ४ ॥ वाग्भवं भुवनेशानी प्रणवं पुनर्वाग्भवः भुवनेश्वरी फट् स्वाहा ।

तदुक्तं मातृकार्णवे : वाग्भवं कुलदेवीश्च तारकं वाग्भवं तथा ।

हृल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः। अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तौ वेदमातुरनुत्तमः ॥ ५ ॥ पञ्चाङ्गान्यस्य मन्त्रस्य पञ्चबीजैः प्रकल्पयेत्। अस्त्रं शेषाक्षरैर्न्यस्य कृतकृत्यो भवेन्नरः। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् ॥ ६ ॥

मत्स्यसूक्ते : प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पद्म-युग्मं तथैव च। महापद्मे पद्मं ब्रूयात्पद्मावति पदं ततः। मायै स्वाहेति मन्त्रोऽयं प्रोक्तः सप्तदशाक्षरः ॥ ७ ॥ पूर्ववदुद्दिष्टा अर्द्धरात्रे चतुष्पथे। जपमस्याश्चरेद्यस्तु स स्यादद्भुत-कविस्तथा ॥ ८ ॥ हंसः प्रणवं माया वधूबीजं कूर्चबीजं हंसः।

तदुक्तं स्वच्छन्दसंग्रहे : शिवबीजं महेशानि शक्तिबीजं ततः परम्। विन्दुसर्गसमायुक्तं वेदाद्यं तदधः क्रमात्। माया स्त्री वर्मबीजान्ते हंसबीजमुदाहृतम्। एषा अष्टाक्षरी विद्या कथिता भुवि दुर्लभा ॥ ९ ॥ पञ्चाक्षरी च या विद्या हिंसाद्यन्ता महोदया। केवलं त्वत्प्रसादेन तव स्नेहात् प्रकीर्तिता। अनयोर्जपपूजादीन् पञ्चाक्षरीवदाचरेत् ॥ १० ॥

तन्त्रान्तरे : लज्जायुगं वधूबीजं ततो दीर्घतनुच्छदम्। सारस्वतोऽपरो मन्त्रः संप्रोक्तश्चतुरक्षरः। तदन्ते यदि फट्कारो मनुः पञ्चाक्षरो भवेत् ॥ ११ ॥

तथा : तारशक्तिवधूबीजान्यन्ते दीर्घतनुच्छदम्। अस्त्रमग्निवधूरन्ते मनुः सप्ताक्षरो भवेत्। मन्त्रमात्रेष्वयं प्रोक्तस्तथा दीर्घेण वर्मणा। पुटितश्च वधूबीजमपरोऽसौ गुणाक्षरः ॥ १२ ॥

रहस्यपुरश्चरणम्। यथा : अशक्तानाञ्च मे देव पुरश्चरणमुच्यताम्। अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ॥ १३ ॥ कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्। पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने ॥१४॥ तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानतः। एकाकी प्रजपेन्मन्त्री स भवेत् कल्पपादपः ॥ १५ ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। शवमानीय तद्वारे तेनैव परिखन्यते। तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम्। स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि। सूर्योदयं समारभ्य यावत्। सूर्योदयान्तरम्। तावज्ज-प्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धिश्वरो भवेत् ॥१७॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरण-मिष्यते। शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं विशेषतः। भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत् सहस्रकम्। जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये।

अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ॥ १८ ॥

मुण्डमालतन्त्रे : कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णाष्टमी भवेत् । सहस्र-संख्यजप्तेन पुरश्चरणमिष्यते ॥ १९ ॥ कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे अष्टमी-नवमीरात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः ॥ २० ॥ दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्यमांसादिभिर्युतम् । षटसहस्रं जपेन्नित्यं भक्तिभाव-परायणः ॥ २१ ॥ चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी । तावज्जप्ते महेशानि पुरश्चरणमिष्यते । केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ॥ २२ ॥ सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योऽस्तगो । भवेत्तावज्जप्त्वामहेशानि पुरश्चरणमिष्यते ॥ २३ ॥

अथ वीरसाधनम्

तदुक्तं वीरतन्त्रे : अष्टम्याश्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि । कृष्णपक्षे विशेषेण साधयेद्वीरसाधनम् ॥ २४ ॥ तत्सार्द्धप्रहरे यामे गते च सुरसुन्दरि । शवं वापि चितां वापि नीत्वा गत्वा यथासुखम् । साधयेत् स्वहितं मन्त्री मन्त्रध्यानपरायणः ॥ २५ ॥ भयं नैव तु कर्तव्यं हास्यं तत्र विवर्जयेत् । चतुर्दशिं न वीक्षेत मन्त्रमेव समभ्यसेत् ॥ २६ ॥

अथ पूजाद्रव्यम् : सामिषान्नं गुडं छागं सुरापायसपिष्टकम् । नानाफलञ्च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसाधितम् ॥ २७ ॥ चिन्तास्थानं समानीय सुहृद्भिः शस्त्रपाणिभिः । समामगुणसम्पन्नैः साधयेद्वीतभीः स्वयम् ॥ २८ ॥

तथा च योगिनीहृदये : बल्यर्थं सामिषान्नञ्च गुडं छागं तथा मधु । पिष्टकं परमान्नञ्च पयो मूलं फलं तथा ॥ २९ ॥ सप्तपात्रं बलिं कृत्वा चतुःपात्रं चतुर्दिशि । पात्रत्रयं सदा मध्ये स्थापयेन्मनुनामुना । गुरुं वा भ्रातरं वापि ब्राह्मणान् वापि सुव्रतान् । अन्यानपि च रक्षार्थं किञ्चिद्दूरे निवेशयेत् ॥ ३० ॥

चितालक्षणम् । यथा : असंस्कृता चिता ग्राह्या न तु संस्कार-संस्कृता । चाण्डालादिषु संप्राप्ता केवलं शीघ्रसिद्धिदा ॥ ३१ ॥

अथाधिकारिलक्षणम् यथा : महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः । महास्वच्छो दयावांश्च सर्वभूतहिते रतः ॥ ३२ ॥ ततः सामान्यार्घ्यं विधाय स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात् ।

यथा : ओमद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकमन्त्रसिद्धि-कामः श्मशानसाधनमहं करिष्ये । इति संङ्कल्प्य—वस्त्रालङ्कार-

भूषणाद्यैर्भूषितः पूर्वादिङ्मुखः । अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण प्रोक्षणं यागभूमिषु । मूलमन्त्रेण फट्कारान्तेनेत्यर्थः । गुरुपादरजो ध्यात्वा गणेशं वटुकं तथा । योगिनीं मातृकाश्चैव वामपादपुरःसरम् ।

तथा च : गणेशादिकं सम्पूज्य अस्त्रमन्त्रेणात्मानं संरक्ष्य ।

तथा च : अस्त्रमन्त्रेण मन्त्रज्ञो रक्षामात्मनि कारयेत् । ततः पुष्पाञ्जलित्रयं चितायां क्षिपेत् ।

तदुक्तं वीरतन्त्रेण : ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः । पिशाचाः सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः । योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरा स्त्रियः । सिद्धिदास्ता भवन्त्यत्र तथा च मम रक्षकाः । प्रणम्य मनुनानेन पुष्पाञ्जलित्रयं क्षिपेत् ॥ ३३ ॥ श्मशानाधिपतिं पश्चाद्भैरवं कालभैरवम् । महाकालं यजेत् पश्चात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये । शब्दबीजं ततः पश्चात् श्मशानाधिप तत्परम् । इममन्ते सामिषान्नबलिं गृह्ण ततः परम् । गृह्ण गृह्णापयद्वन्द्वं विघ्ननिवारणं ततः । कुरु सिद्धिं ममान्तश्च प्रयच्छ स्वाहयान्वितम् । प्रणवाद्येन मनुना प्रथमो बलिरोरितः । (१) मायास्ते भैरवात् पश्चाद्भयानक ततः परम् । पूर्ववद्बलिमुद्धृत्य दक्षिणे बलिमाहरेत् । (२) पश्चिमे कालदेवाय प्रणवाद्येन कल्पयेत् । शषान्ते कालशब्दान्ते भैरवेति ततः परम् । श्मशानाधिप इत्येवं पूर्ववच्चोत्तरे हरेत् ॥ (३) हूमन्ते च महाकालात्पश्चात् पूर्ववदुच्चरेत् । श्मशानाधिप इत्येवः पूर्ववद्बलिमाहरेत् (४) । पाद्यादिभिश्च मन्त्रज्ञो बलिं पश्चान्निवेदयेत् ।

तद्यथा : श्मशानाधिपतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्यानेन मन्त्रेण बलिं दद्यात् ।

तद्यथा : ॐ हूं श्मशानाधिप इमं सामिषान्नबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा । ततो भैरवं पूर्ववत् सम्पूज्य दक्षिणस्यां ह्रीं भैरव भयानक इमं सामिषान्नबलिमित्यादि । ततः पश्चिमे कालभैरवं सम्पूज्य हूं कालभैरव श्मशानाधिप इमं सामिषान्नबलिमित्यादि । उत्तरे महाकालमभ्यर्च्य हूं महाकाल श्मशानाधिप इमं सामिषान्नबलिमित्यादि । चितामध्ये ततो दद्याद्बलित्रयमनुत्तमम् । कालरात्रि महाकालि कालिके घोरनिःस्वने । गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम् । कालिकायै बलिं दत्त्वा भूतनाथाय दापयेत् । शब्दान्ते भूतनाथान्ते श्मशानाधिप इत्यपि । प्रणवाद्येन

मनुना दापयेद्बलिमुत्तमम् । शब्दान्ते तु सर्वगणनाथान्ते चाधिपाय च । श्मशानमस्तके दत्त्वा पूर्ववच्च समुद्धरेत् । ताराद्येन बलिं दत्त्वा पञ्चगव्येन सुन्दरि । अद्भिश्च प्रोक्षणं कृत्वा पीतवस्त्रं न्यसेत्ततः । भूर्जे वा वटपत्रे वा तत्र पीठमनुं न्यसेत् । पीठमास्तीर्य तस्मिन् वै बद्धवीरासनस्ततः । वीरार्दनेन मनुना रक्षां दिक्षु प्रकल्पयेत् ।

अस्यार्थः : श्मशानास्थ्यादिकं पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य, भूर्जपत्रादौ तत्तत्कल्पोक्तपीठमन्त्रं लिखित्वा तत्र व्याघ्रचर्मादिपीठमास्तीर्य तत्र वीरासनक्रमेणोपविश्य, वीरार्दनेन मन्त्रेणचतुर्दिक्षु रक्षां कुर्यात् ॥ ३४ ॥

वीरार्दनमन्त्रस्तु : हूं हूं ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शव-शरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूं फडिति । अनेन मन्त्रितं लोष्ट्रं दशदिक्षु विनिक्षिपेत् । तन्मध्ये भैरवो देवो न विघ्नैः परिभूयते ।

नीलतन्त्रे : कूर्चद्वयं ततो देवि मायायुग्मं ततः परम् । कालिके घोरदंष्ट्रे च प्रचण्डे चण्डनायिके । दानवान् दारयेत्युक्त्वा हनेति द्वितयं पुनः । शवशरीरे महाविघ्नं छेदयं द्वितयं पुनः । द्विठान्तो वर्म चास्त्रान्तो वीरार्दनमनुर्मतः ॥ ३४ क ॥ यदि प्रमादाद्देवेशि साधको भयविह्वलः । ततस्तैस्तैः सुहृद्वर्गैं रक्षितो नाभिभूयते ॥ ३५ ॥ सितार्ककर्पूरसितवाट्याल-कतूलैर्वर्त्तिकां निर्माय, तत्र प्रदीपं संस्थाप्य, देव्यस्त्रेभ्यो नमः इत्यस्त्रं सम्पूज्य, अधस्थात्ज्वलत्प्रदीपं निखनेत् ।

तथा च : अर्केन्दुसितवाट्यालतूलैर्निर्मितवर्तिकाम् । प्रदीपं तत्र संस्थाप्य अस्त्रं तत्र प्रपूजयेत् । हते तस्मिन् महादीपे विघ्नैश्च परिभूयते । तदधश्चास्त्रमन्त्रेण निखनेत्कुलदीपकम् ॥ ३६ ॥ ततस्तत्कल्पोक्तभूत-शुद्धयादिन्यासजालं विधाय इष्टदेवतां सम्पूज्य, सङ्कल्पमन्त्रं जपेत् ।

सङ्कल्पस्तु : अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुदेवशर्मा अमुकमन्त्र-सिद्धिकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यकजपमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, देवताध्यानपुरःसरं मन्त्रं जपेत् ॥

तथा च : तत्तत्कल्पविधानेन भूतशुद्धयादिकं चरेत् । षोढां वा तारकं वापि विन्यस्य पूजयेत्ततः मन्त्रध्यानपरो भूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ ३७ ॥

जपनियमस्तु : एकाक्षरी यदि भवेद्दिक्सहस्रं ततो जपेत् । द्व्यक्षरेऽष्टसहस्रं स्यात्त्र्यक्षरे चायुतार्द्धकम् । अतःपरन्तु मन्त्रज्ञो गजान्तक-

सहस्रकम् । निशायां वा समारभ्य उदयान्तं समाचरेत् । गजान्तकमिति अष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः ॥ ३८ ॥ यद्यसह्यभयं जायते कर्णं नेत्रे वस्त्रेण वन्धयेत् । ततोऽर्द्धरात्रिपर्यन्तं यदि किञ्चिन्न लक्ष्यते । जयदुर्गाख्यमनुना तेनैव सर्षपान् क्षिपेत् ।

जयदुर्गामन्त्रस्तु : ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा । ॐ तिलोऽसि सोम-देवत्यो गोसवस्तृप्तिकारकः । पितृणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः । भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः । इति पठित्वा ईशानादि-चतुर्दिक्षु तिलांश्च निक्षिपेत् । ततः सप्तपदं गत्वा तत्रैव संविशेत् । पुनर्देवता सम्पूज्य जपेत् ॥ ३९ ॥ ततो यदि वरं वरयेति वदेत्तदा सत्यं कारयेत् ।

तथा च : वरं वरय चेत्युक्ते साधकः स्थिरमानसः । सत्यन्तु कार-यित्वा च वरयेद्वरमुत्तमम् ॥ ४० ॥ जपादौ तु बलिं दत्त्वा पश्चादपि बलिं हरेत् । जपान्ते जपमध्ये वा देहि देहीति भाषिते । तदापि च बलिं दद्यान्महिषं वापि छागलम् । बलिश्च यवापिष्टमयेन ॥ ४१ ॥ यदा बलिं प्रार्थयते नरं कुञ्जरमेव वा । दिनान्तरेऽपि दास्यामि स्वीकृत्य स्वगृहं व्रजेत् ॥ ४२ ॥ अपरेऽह्नि ततो दद्यात्पिष्टेन नरकुञ्जरान् । पिष्टेनेति यवधान्योद्भवेनेत्यर्थः ॥ ४३ ॥

तथा च तन्त्रान्तरे : यवक्षोदमयं वापि शालिक्षोदमयन्तथा । चन्द्र-हासेन विधिवत्तत्तन्मन्त्रेण घातयेत् ॥ ४४ ॥

योगिनीहृदये : जपान्ते तु बलिं दद्याद्देवतायै यथाविधि । महिषं छागलं वापि गृहीत्वा वरमेव च । गृहं गच्छेत्स्वसुहृदा सार्द्धं संहृष्ट-मानसः । ततो दक्षिणां दद्यात् । समाप्य साधनं देवि दक्षिणां विभवा-वधि । गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा निवेदयेत् ॥ ४५ ॥

अथ शवसाधनम् :

तत्र स्थाननियममाह भावचूडामणौ : शून्यागारे नदीतीरे पर्वते निर्जनेऽपि वा । विल्वमूले श्मशाने वा तत्समीपे वनस्थले ॥ ४६ ॥ अष्टम्याश्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि । भौमवारे तमिस्रायां साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ४७ ॥ माषभक्तश्च बल्यर्थं धूपदीपादिकन्तथा । तिलाः कुशाः सर्षपाश्च स्थापनीयाः प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥ ततः पूर्वोक्तान्यतमस्थानं गत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय, पूर्वमुखो मूलान्ते फट्कारं दत्त्वा, यागभूमिं सम्प्रोक्ष्य, गुरुं गणेशं वटुकं योगिनीश्च चतुर्दिक्षु पूर्वादितः सम्पूज्य,

पूर्वोक्तवीरार्दनमन्त्रं भूमौ विलिख्य, ये चात्रेत्यादि-पूर्वोक्त-क्रमेण पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणम्य श्मशानाधिपतिभ्यः पूर्वोक्तक्रमेण पूर्ववद्बलिं दत्वा अघोरमन्त्रेण शिखाबन्धनं विधाय, सुदर्शनमन्त्रान्ते आत्मानं रक्ष रक्षेति हृदि हस्तं दत्त्वा, आत्मरक्षां कुर्यात् ।

अघोरसुदर्शनमन्त्रौ तु : ॐ ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हूं फट् ॐ सहस्रारे हूं फट् ॥ ४९ ॥ ततः पूर्वोक्तक्रमेण भूतशुद्धि न्यासजालञ्च विधाय, जयदुर्गा मन्त्रेण दिक्षु सर्षपान्विकीर्य तिलोऽसीति मन्त्रेण तिलांश्च विकीर्य, विहितशवसमीपं गच्छेत् ॥५०॥

विहितशवो यथा भावचूडामणौ : यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं जले मृतम् । वज्रविद्धं सर्पदष्टं चाण्डालश्चाभिभूतकम् । तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्ज्वलम् । पलायनविशून्यन्तु सम्मुखे रणवर्त्तिनाम् ॥५१॥

भैरवतन्त्रेऽपि : यष्टिप्रभृतिविद्धं वा चाभिभूतं जले मृतम् । शवमानीय कर्तव्यं नाहरेत्स्वेच्छाया मृतम् । स्त्रीवश्यं पतितास्पृश्यं नयवर्जं हि तूवरम् अव्यक्तलिङ्गं कुष्ठि वा वृद्धभिन्नं शवं हरेत् । न दुर्भिक्षमृतश्चापि न पर्युषितमेव वा । स्त्रीजनश्चेदृशं रूपं सर्वथा परिवर्जयेत् । ॥ ५२ ॥

कालीतन्त्रेऽपि : ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम् । महाशवाः प्रशस्ता स्युः प्रधाने वीरसाधने । क्षुद्रप्रयोगकर्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धये ॥ ५३ ॥ एवमुक्तं शवं गृहीत्वा मूलमन्त्रेण पूजास्थानमानयेत् । तत्समीपं गत्वा ॐ फट् इति शवमभ्युक्ष्य ॐ हूं मातृकाय नमः फडिति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा शवं स्पृष्ट्वा प्रणमेत् ।

तदुक्तं भावचूडामणौ : प्रणवाद्यस्त्रमन्त्रेण शवस्य प्रोक्षणञ्चरेत् । प्रणवं कूर्चबीजञ्च मृतकाय नमश्च फट् । पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् स्पर्शपूर्वकम् ॥ ५४ ॥

प्रणाममन्त्रस्तु : वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर । आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्कशङ्कर । वीरोऽहं (शिवोऽहं) त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्चने । अनेन शवमन्त्रेण प्रणम्य क्षालयेत्शवम् । ॐ हूं मृतकाय नमः अनेन क्षालयित्वा, सुगन्धिजलेन स्नापयित्वा, वाससा जलमुत्तोल्य, धूपैर्धूपयित्वा चन्दनादिना शवं प्रलिप्य, शवस्य कटिदेशं धृत्वा, पूजास्थानं समानयेत् ।

तदुक्तं कालीतन्त्रे : तारं शब्दं मृतकाय नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चरेत् । शवस्य स्नानमन्त्रोऽयमित्यादि ।

भावचूडामणौ : धूपेन धूपितं कृत्वा गन्धादिना विलिप्य च । रक्ताक्तो यदि देवेशि भक्षयेत्कुलसाधकम् ॥ ५५ ॥ ततः कुशशय्यां कृत्वा पूर्वशिरसं कृत्वा शवं स्थापयेत् ।

तदुक्तं तत्रैव : कुशशय्यां परिष्कृत्य तत्र संस्थापयेच्छवम् । तत— एला-लवङ्ग-कर्पूर-जाती-खादिरामार्द्रकम् । ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा शवं कुर्यादधोमुखम् । तत्पृष्ठ चन्दनेनापि विलिप्य प्रयतः सुधीः । बाहुमूलादि-कट्यन्तं चतुरस्रं विधाय च । मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम् । पीठमन्त्रं लिखेन्मध्ये तत्तत्कल्पविधानतः । ततः ॐ ह्रीं फडिति मन्त्रेण तत्तत्कल्पोक्तपीठमन्त्रं लिखेत्तदुपरि कम्बलाद्यासनं न्यसेत् ।

तन्त्रान्तरे : गत्वा शवस्य सान्निध्यं धारयेत्कटिदेशतः । यद्युपद्रावये-त्तस्य दद्यान्निष्ठीवनं शवे । पुनः प्रक्षालनं कृत्वा जपस्थाने समानयेत् । ॥ ५६ ॥ ततो द्वादशांगुल-यज्ञकाष्ठानि दशदिक्षु पूर्ववत् संस्थाप्य, इन्द्रादिदशदेवताः सम्पूज्य सामिषान्नेन बलिं दद्यात् ।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे : द्वादशांगुलमानानि यज्ञकाष्ठानि दिक्षु च । संस्थाप्य पूजयेत्तत्र क्रमादिन्द्रादिदेवताः ॥ ५६ क ॥

तत्रायं क्रमः : ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावत वाहनाय वज्रहस्ताय सशक्तिपारिषदाय सपरिवाराय नमः, इति पाद्यादिभिः सम्पूज्य बलिं दद्यात् । बीजमिन्द्राय संलिख्य सुराधिपतये ततः । इमं बलिं गृह्ण-युग्मं गृह्णापय युगं ततः । विघ्ननिवारणं कृत्वा सिद्धं प्रयच्छ ठद्वयम् । अनेन मनुना पूर्वं बलिं दद्याच्च सामिषम् । स्वस्वनामादिकं कृत्वा पूर्ववद्बलिमाहरेत् । सर्वेषां लोकपालानां ततः साधकसत्तमः । ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्ननिवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा । एष माषभक्तबलिः ॐ लां इन्द्राय स्वाहा । ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये मेषवाहनाय सपरिवाराय शक्तिहस्ताय सायुधाय नमः । इति सम्पूज्य ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये इत्यादिना बलिं दद्यात् । ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सायुधायेत्यादिना सम्पूज्य ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये बलिं दद्यात् । ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये असिहस्ताय सवाहनाय सपरिवाराय इत्यादिना सम्पूज्य, ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये

इत्यादिना बलिं दद्यात् । ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सायुधाय इत्यादिना सम्पूज्य, ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये इत्यादिना बलिं दद्यात् । ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये हरिणवाहनायांकुशहस्ताय इत्यादिना सम्पूज्य, ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये इत्यादिना बलिं दद्यात् । ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय इत्यादिना सम्पूज्य, ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये इत्यादिना बलिं दद्यात् । ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवाराय इत्यादिना पूर्ववत् सम्पूज्य, ॐ हां ईशानाय भूताधिपतये इत्यादिना बलिं दद्यात् । इन्द्रेशानयोर्मध्ये ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय इत्यादिना सम्पूज्य, ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय इत्यादिना बलिं दद्यात् । नैर्ऋतवरुणयोर्मध्ये ॐ अं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय इत्यादिना सम्पूज्य, ॐ अं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय इत्यादिना सम्पूज्य बलिं दद्यात् । ततः सर्वभूतबलि दद्यात् । सवत्र सामिषान्नेन ।

ततः : अधिष्ठातृदेवताभ्यो बलिञ्च स्मारयेत्ततः । चतुःषष्टियोगिनीभ्यो डाकिनीभ्योऽपि संदिशेत् ॥ ५७ ॥

अथ पूजासामग्रीं समीपे दूरे चोत्तरसाधकं संस्थाप्य, मूलान्ते ह्रीं फट् शवासनाय नमः इति शव सम्पूज्य, ह्रीं फडन्तमूलमुच्चार्य, अश्वारोहणक्रमेण शवोपर्युपविश्य, स्वपदतले कुशान्दत्त्वा शवकेशान् प्रसार्य, जुटिकां बद्ध्वा, गुरुं गणपतिं देवञ्च नमस्कृत्य प्राणायामषडङ्गन्यासौ कृत्वा, पूर्ववत् वीरार्दनमन्त्रेण दशदिक्षु लोष्ट्रान्निक्षिप्य सङ्कल्पं कुर्यात् । अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुदेवशर्मा अमुकदेवतायाः सन्दर्शनकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनं सम्पूज्य, स्ववामतः शवसमीपे अर्घ्यपात्रादिकं संस्थाप्य, शवजुटिकायां पीठपूजां कृत्वा, षोडशोचारैर्दशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा देवीं सम्पूज्य, शवमुखे देवीं गन्धादिना सन्तर्पयेत् । ततः शवादुत्थाय सम्मुखे गत्वा मन्त्रं पठेत् । "ॐ वशो मे भव देवेश मम वीरसिद्धिं देहि देहि महाभाग कृताश्रयपरायण ।"

ततः शवचरणौ पट्टसूत्रेण बद्ध्वा मूलेन दृढं बन्धयेत् । "ॐ मद्वशो भव देवेश वीरसिद्धिकृतास्पद । भीम भीरुभयाभाव भवमोचन भावुक । त्राहि मां देवदेवेश शूराणामधिपाधिप ।"

इत्यनेन शवस्य पादमूले त्रिकोणं यन्त्रं लिखेत् । ततः शवोपर्युपविश्य हस्तद्वयं पार्श्वयोः प्रसार्य, तदुपरि कुशान् दत्त्वा, तत्र स्वपादौ निधाय पुनः प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि गुरुं विभाव्य, हृदये देवीं ध्यात्वा, ओष्ठौ सम्पुटौ कृत्वा, विहितमालया मौनी भूत्वा विगतभीर्जपेत् । अत्र श्मशानसाधनक्रमेण जपः कार्यः ॥ ५८ ॥ यद्यर्द्धरात्रपर्यन्त किञ्चिन्न लक्ष्यते, तदा पूर्ववत्सर्षपतिलविकिरणं सप्तपदगमनञ्च कृत्वा जपं कुर्यात् । भये जाते सति एवं पठेत् ॥ ५८ क ॥ चलच्छवाद्भूयं नास्ति भये जाते वदेत्ततः । यत्प्रार्थय बलित्वेन दातव्यं कुञ्जरादिकम् । दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे । इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयश्च पुनर्जपेत् ततश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं मधुरं ततः । ततः सत्यं करयित्वा वरञ्च प्रार्थयेत्ततः । यदि सत्यं न कुरुते वरं वा न प्रयच्छति । तदा पुनर्जपे-द्धीमानेकाग्रमानसस्तथा ।

अस्यार्थः ः यदि जपकाले आकाशगत्या कुञ्जरादिकं प्रार्थयते तदा दिनान्तरे दास्यामि मम स्थाने स्वनाम कथय इत्युक्त्वा पुनर्जपेत् । यदि स्वनाम मधुरं कथयति, तदा त्वं अमुक इति सत्यं कुरु । कृते सत्ये वरं प्रार्थयेत् । यदि कदाचिदपि सत्यं न करोति वरं वा न प्रयच्छति, तदा पुनर्जपेत् ।

तथा च : सत्ये कृते वरं लब्ध्वा संत्यजेच्चजपादिकम् । फलं जात-मिति ज्ञात्वा जुटिकां मोचयेत्ततः । शवं प्राक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत्पाद-बन्धनम् । पादचक्रं मोचयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत् । शवं जले तु गर्त्ते वा निक्षिप्य स्नानमाचरेत् ॥ ६० ॥ ततस्तु स्वगृहं गत्वा बलिं दद्या-द्दिनान्तरे ।

बलिमन्त्रस्तु : अग्रिमरात्रौ येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्त्विमं बलिम् । अथ यैर्याचितानश्वान् नरकुञ्जरशूकरान् । दत्त्वा पिष्ठमयानन्ते कर्तव्यं समुपोषणम् ॥ ६१ ॥ ततः परेऽह्नि नित्यक्रियां कृत्वा पञ्चगव्यं पिवेत् । पञ्चविंशतिसंख्यकानपि ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ ६२ ॥

यथा : परेऽह्नि नित्यमाचर्य पञ्चगव्यं पिवेत्ततः । ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चविंशति संख्यकान् । सप्तपञ्चविहीनान् वा क्रमेणैव दशावधि । ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमस्थले ॥ ६३ ॥ यदि न स्याद्विप्रभोज्यं तदा निर्धनतां व्रजेत् । तेन चेन्निर्धनत्वं स्यात्तदा

देवी प्रकुप्यति। त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं नवरात्रन्तु गोपयेत् ॥ ६४ ॥ स्त्रीशय्यां यदि गच्छेत्तु तदा व्याधिं विनिर्दिशेत्। गीतं श्रुत्वा च बधिरो निश्चक्षुर्नृत्यदर्शनात्। यदि वक्ति दिने वाक्यं तदास्य मूकता भवेत् ॥ ६५ ॥ पञ्चदशदिनं यावद्देहे देवस्य संस्थितिः। न स्वीकार्यं गन्धपुष्पे वहिर्याति यदा तदा। तदा वस्त्रं परित्यज्य गृह्णीयाद्वसनान्तरम् ॥ ६६ ॥ गोब्राह्मणविनिन्दाञ्च न कुर्याच्च कदाचन। दुर्जनं पतितं क्लीवं न स्पृशेच्च कदाचन ॥ ६७ ॥ देवगोब्राह्मणादींश्च प्रत्यहं संस्पृशेच्छुचिः। प्रातर्नित्यक्रियान्ते च विल्वपत्रोदकं पिबेत् ॥ ६८ ॥ ततः स्नात्वा तु गङ्गायां प्राप्ते षोडशवासरे। स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य तर्पणान्ते नमः पदम्। एवं शतत्रयादूर्ध्वं देवान् सन्तर्पयेज्जलैः। स्नानतर्पणशून्यस्य न स्याद्देवस्य तर्पणम्। इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति साधकः। इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते याति हरेः पदम्। ततो दक्षिणां दत्त्वाच्छिद्रावधारणं कुर्यात् ॥ ६९ ॥ इति शवसाधनम्।

चण्डोग्रशूलपाणिमन्त्राः

अथ विद्याभेदाः।

कुब्जिकातन्त्रे : प्रणवञ्च ततो मायां कूर्चबीजं समुद्धरेत्। शिवायेति फडन्तञ्च चण्डोग्रोऽयं महामनुः। चण्डोग्रशूलपाणेश्च मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ७० ॥ अस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो माया बीजं देवश्चण्डोग्र ईरितः। षड्दीर्घभाजा बीजेन ताराद्येन षडङ्गकम् ॥ ७१ ॥

ध्यानन्तु : शुद्धस्फटिकसङ्काशं चतुर्बाहुं किरीटिनम्। शूलं कपालं दक्षे तु वामे तु पाशमंकुशम्। सुरापानरसाविष्टं साधकाभीष्टदायकम्। ॥ ७२ ॥

ध्यात्वा सम्पूज्य देवेशं पञ्चसहस्रं जपेन्मनुम। दशांशं संस्कृते वह्नौ हुनेद्रक्तोत्पलेन च ॥ ७३ ॥

अथात्र प्रयोगः : त्रिमध्वक्तेन लभते कवितां धनभाग्भवेत्। रक्तपद्मस्य होमेन महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ७३ ॥ पायसेन तु होमेन शत्रून् नाशयतेऽचिरात्। कुसुम्भतैलहोमेन रिपून् हन्यान्न संशयः ॥ ७५ ॥ करवीरस्य होमेन वाकस्तम्भो जायते ध्रुवम्। शुक्लपद्मस्य होमेन मोहयेदखिलं जगत् ॥ ७६ ॥ षट्कोणाष्टदलं पद्मं मध्ये मूलं प्रपूजयेत्। केवलं शुद्धभावेन हविष्याशी दिवा जपेत् ॥ ७७ ॥ अस्य पुरश्चरणमात्रेण न च विघ्नैर्विलिप्यते। अस्यैव जपमात्रेण सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥ ७८ ॥

(चण्डोग्रशूलपाणियन्त्रम् चित्र ३८)।

इति चण्डोग्रशूलपाणिप्रकरणम्

अथ मातङ्गीमन्त्रः

वामकेश्वरतन्त्रे : अथ वक्ष्ये महादेवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम्। अस्योपासनमात्रेण वाक्सिद्धिं लभतेऽचिरात् ॥ ७९ ॥ प्रणवञ्च ततो मायां कामबीजञ्च कूर्चकम्। मातङ्गी ङेयुता चास्त्रं वह्निजायावधिर्मनुः ॥८०॥ ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्त्तिर्विराटछन्दः प्रकीर्तितम्। मातङ्गी देवता देवी सर्वकार्यप्रदायिनी ॥ ८१ ॥ अङ्गन्यासकरन्यासौ कुर्यान्मन्त्री समाहितः। षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥ ८२ ॥

अस्या यन्त्रं यथा : षट्कोणाष्टदलं पद्मं लिखेद्यन्त्रं मनोहरम्। तत्र पूजा प्रकर्तव्या जवापुष्पेण मन्त्रवित्। अष्टशक्तीश्चाष्टदले पूजयेत् सुसमाहितः। रतिः प्रीतिर्मनोभवा क्रिया श्रद्धा च शक्तयः। अनंगकुसुमानङ्गमदना मदनालसा। इत्यष्टशक्तीः सम्पूज्य उपहारसमन्वितः। ततो देवीं परां ध्यायेत् साधकः स्थिरमानसः ॥ ८३ ॥ (चित्र ३८)

तद्यथा : श्यामाङ्गीं शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासनस्थिताम्। वेदैर्बाहुदण्डैरसिखेटकपाशांकुशधराम् ॥ ८४ ॥ एवं ध्यात्वा महादेवीं गन्धपुष्पैर्मनोरमैः। नैवेद्यन्तु महादेव्यै पायसं शर्करान्वितम्। पुरश्चरणकाले तु षट्सहस्रं मनुं जपेत्। तद्दशांशं हुनेदाज्यैः शर्करामधुभिः सह। ब्रह्मवृक्षोद्भवैः काष्ठैः साधकः शक्तिभिः सह। एवं पुरस्क्रियां कृत्वा प्रयोगविधिमाचरेत् ॥८५॥ चतुष्पथे श्मशाने वा कलामध्ये च मान्त्रिकः। मत्स्यं मांसं पायसञ्च दद्याद्धूपञ्च गुग्गुलुम्। रात्रियोगेन कर्तव्यं सदा पूर्णश्च साधकः ॥ ८६ ॥ एवं प्रयोगमात्रेण कविता जायते ध्रुवम्। अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं वाक्स्तम्भम् कारयेद् ध्रुवम्। मन्त्री जयति शत्रूंश्च ताक्ष्यों भोगिकुलं यथा। शास्त्रे वादे कवित्वे च वृहस्पतिरिवापरः ॥८७॥ अनेनैव विधानेन मातङ्गी सिद्धिदायिनी। नूनं तद्गृहमागत्य कुबेरैर्दीयते वसु। विना मत्स्यैर्विना मांसैर्नार्चयेत् परदेवताम् ॥ ८८ ॥

अथ उच्छिष्टचाण्डालिनी-मन्त्राः

उच्छिष्टचाण्डालिनी सुमुखी देवी महापिशाचिनी लज्जाबीजं ठः ठः ठः।

तदुक्तं फेत्कारिण्याम् : उक्त्वा उच्छिष्टशब्दन्तु तथा चाण्डालिनीति च। सुमुखी तु ततो देवीं कीर्तयेत्तदनन्तरम्। महापिशाचिनीं पश्चाल्लज्जा

बीजं ततः परम् । नादविन्दुसमाक्रान्तं ठकारत्रितयं पुनः । सविसर्गं महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ८९ ॥

मन्त्रान्तरम् : उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि नमः स्वाहा ।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे अथवोच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गिपदमीरयेत् । ततः सर्ववशं चान्ते करि हृद्वह्निवल्लभा । एकोनविंशत्यर्णोऽयं सर्वाभीष्टकरो भवेत् ॥ ९० ॥

मन्त्रान्तरम् : मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम्—वाग्भवं माया कामः सौः ऐं ज्येष्ठमातङ्गि नमामि उच्छिष्टचाण्डालि त्रैलोक्यवशंकरि स्वाहा । इमां विद्यां महेशानि चापरां हूं-समन्विताम् । इयं विद्या महाविद्या सर्व-पापाहारिणी । सुखदा मोक्षदा चैव राज्यसौभाग्यदायिका । यां यां प्रार्थयते सिद्धिं हठात्तां तामवाप्नुयात् ॥ ९१ ॥ विधानञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि वरानने । भोजनानन्तरं देवि विनैवाचमनं कृते । बलिं दद्यात् प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः । ततो मन्त्रं जपेद्ध्यात्वा देवीं तामिष्टसिद्धये । वलिमपि उच्छिष्टेन ॥ ९२ ॥

तथा च : न तिथिन च नक्षत्रं न चाङ्गन्यासमेव च । नारिदोषे न वा विघ्नं नाशौचं नियमो न च । यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयं न च विघ्नैः स वाध्यते ॥ ९३ ॥

ध्यानस्तु : शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम् । रक्तालङ्का-रसंयुक्तां गुञ्जाहारविभूषिताम् । षोडशाब्दाञ्च युवतीं पीनोन्नतपयो-धराम् । कपालकर्तृकाहस्तां परां ज्योतिःस्वरूपिणीम् । वामदक्षिणयोगेन ध्यायेन्मन्त्रविदुत्तमः ॥ ९४ ॥ उच्छिष्टेन बलिं दत्त्वा जपेत्तद्गतमानसः । उच्छिष्टेन तु कर्तव्यो जपोऽस्याः सिद्धिमिच्छता । उच्छिष्टे जपमानस्य जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ९५ ॥ अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि फलप्रदम् । होमञ्च तर्पणञ्चैव सर्वकामार्थसिद्धये । स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं समन्ततः । पूजयेन्मण्डलं देवि मूलमन्त्रेण साधकः । ततो मूलमुच्चार्य मण्डलाय नमः इति मन्त्रेण वह्निस्वरूपां देवतां ध्यात्वा होमयेत् ।

तथा च : ततो देवीं समाधाय वह्निस्वरूपां व्यवस्थिताम् । देवीं ध्यात्वा चरेद्धोमं दधिसिद्धार्थतण्डुलैः । सहस्रमात्रहोमेन राजा च वशगो भवेत् । मार्जारस्य तु मांसेन देव्या होमं समाचरेत् । स प्राप्नोति परां विद्यां सर्वशास्त्रवशीकृताम् । कुर्याच्छागस्य मांसेन होमं मधुसमन्वितम् । सहस्रैकविधानेन भवन्ति कुलसिद्धयः ॥ ९६ ॥ विद्याकामश्चरेद्धोमं

शर्करायुतपायसैः। नूनं तस्य भवन्त्येव सद्यो विद्याश्चतुर्दश ॥ ९७ ॥ बिल्वपत्रैस्त्रिमध्वक्तैर्मासमेकं समाहितः। वन्ध्यापि लभते पुत्रं चिरजीविनमुत्तमम् ॥ ९८ ॥ कर्कन्धुकुसुमं हुत्वा छागरक्तसमन्वितम्। दुर्भगाया हठाद्देवि सौभाग्यं शुभदायकम् ॥ ९९ ॥ रजस्वलाया वस्त्रेण मधुना पायसेन च। होमं कृत्वा महादेवि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥१००॥ इत्येषा कथिता देवि सर्वपापप्रणाशिनी। मन्त्रस्योच्चारणाद्देवि सर्वपापप्रणाशिनी। उच्छिष्टदूषणं त्यक्त्वा स पवित्रो जपेद् ध्रुवम् ॥१॥ अस्य यद्यपि पुरश्चरणं नोक्तं तथापि अष्टोत्तरसहस्रजपः। तद्दशांशेन होमादिकं बोध्यम्।

तथा च : येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः। तेषामष्टसहस्रन्तु संख्या स्याज्जपहोमयोः। इत्यभिधानात्। अष्टसहस्रमष्टोत्तरसहस्रमिति सम्प्रदायः। वस्तुवस्तु आसां सिद्धविद्यत्वात् पुरश्चरणं नास्तीति निबन्धकाराः ॥ २ ॥

अथ धूमावती मन्त्राः

फेत्कारिण्याम् : दान्तावर्घीशविन्द्वन्तौ बीजं धूमावती द्विठः। धूमावतीमनुः प्रोक्तो वैरिनिग्रहकारकः ॥ ३ ॥

अस्याः पूजा : प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा भूतशुद्ध्यादि-प्राणायामौ च कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

यथा : शिरसि पिप्पलादऋषये नमः, मुखे निवृच्छन्दसे नमः, हृदि धूमावत्यै देवतायै नमः ॥ ४ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : धां अंगुष्ठाभ्यां नमः, धीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। एवं धां हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ५ ॥

ततो ध्यानम् : विवर्णा चञ्चला रुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा। विवर्णकुन्तला रुक्षा विधवा विरलद्विजा। काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा। सूर्पहस्तातिरुक्षाक्षी धूतहस्ता वरान्विता। प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा। क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहप्रिया। विरलद्विजा विरलदन्ता ॥ ६ ॥ जपेत् कृष्णचतुर्दश्यां पुरश्चरणसिद्धये। उपवासरतो मन्त्री शून्यागारे दिवानिशम्। श्मशाने विपिने वापि जपेल्लक्षश्च वाग्यतः। सोष्णीष आर्द्रवासाश्च पुरश्चरणकर्मणि। आख्योपरि लिखेन्मन्त्रं तस्मिन् स्थाप्य शिवं यजेत्।

तथा च : अवष्टभ्य शिवं शत्रुनाम्ना तु प्रजपेन्मनुम्। सहस्रस्यार्द्धतः शत्रुर्ज्वरेण परिगृह्यते। पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्ज्वरस्य पयसापि वा।

ततः पूर्ववत् पञ्चोपचारैः सम्पूज्य जपेत् ॥ ७ ॥

तथा : कृत्वा मन्त्रे रिपोराख्यामारण्ये यामिनीदले । उत्सादो जायते शत्रोर्मनोरयुतजापतः । दग्ध्वा काकं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रितम् । विरोधिनामष्टाशासु सद्य उच्चाटनं रिपोः । मन्त्रितमित्यष्टोत्तरशतमिति । अष्टाशासु क्षिपेदित्यर्थः ॥ ७ क ॥ श्मशानभस्मना कृत्वा शिवं तस्योपरि न्यसेत् । विरोधिनामसंरुद्धं कृष्णपक्षे समर्चयेत् । महिषीक्षीरधूपश्च यद्यच्छक्रविपत्करम् । महिषीरूपमासाद्य स्वप्ने शत्रुं विनाशयेत् । मन्त्रेणानेन विखनेत्तद्भस्म रिपुमन्दिरे । शत्रूनुच्चाटयेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा ॥ ८ ॥ श्मशानभस्मना लिङ्गं कृत्वा पुष्पादिनार्चयेत् । भगवन्निति समाभाष्य मनसा कर्म चिन्तयन् । निम्बकाकच्छदावेकीकृत्य चाष्टशतं जपेत् । दद्याद्धूपं साध्यनाम्ना सद्यो विद्वेषयेदरीन् ।

अस्यार्थः : निम्बकाकच्छदावेकीकृत्य तदुपरि अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तेन द्रव्येणामुकं द्वेषय द्वेषय । मूलमुच्चार्य धूपं दद्यात् ।

तथा च : चितिकाष्ठानले क्षीरहोमाच्छान्तिः सदा भवेत् ।

तथा च : रजोधूपप्रदानेन गृध्ररूपेण कालिका । मारयत्यरिमागत्य शान्तिर्निर्माल्यधूपतः । वराहकर्णधूपेन हन्याच्छूकररूपिणी । अश्वत्थपत्रधूपेन शान्तिर्भवति नान्यथा । शान्तिः सर्वाभिचारस्य पञ्चगव्येन जायते । क्षीरेण वापि देवेशि मधुरत्रितयेन वा । कीले क्षीरतरोर्विदर्भ्य विलिखेन्मन्त्रेण नामाक्षरं, जप्त्वालिख्य पदद्वये तु निखनेदुच्चाटनं विद्विषाम् । तत्पादद्वयधूलिकीर्णहविषा दद्याद्द्विजेभ्यो बलिं, तज्जप्त्वा चितिभस्मकीलितमरेर्गेहे तदुच्चाटनमित्यादि प्रयोगः ॥ ९ ॥

अथ भद्रकालीमन्त्रः

प्रासादबीजमुद्धृत्य कालीतिपदमुद्धरेत् । महाकालि-पदं चोक्त्वा किलियुग्ममतः परम् । अस्त्रमग्निप्रियान्तोऽयं भद्रकालीमहामनुः ॥ १० ॥ आराध्य प्रजपेन्नित्यमष्टोत्तरशतं जपेत् । जपमाला विधातव्या अष्टोत्तरशतेन च । ध्यातव्येयं महादेवी भद्रकाली भयापहा । आराध्येति भूतशुद्ध्यादिप्राणायामौ कृत्वा पञ्चोपचारैः शिवलिङ्गे सम्पूज्येत्यर्थः ॥ ११ ॥

ध्यानं यथा : क्षुत्क्षामा कोटराक्षरी मसिमलिनमुखी मुक्तकेशी रुदन्ती नाहं तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदं ग्रासमेकं करोमि । हस्ताभ्यां

धारयन्ती ज्वलदनलशिखासन्निभं पाशयुग्मं दन्तैर्जम्बुफलाद्यैः परिहरतु भयं पातु मां भद्रकाली ॥ १२ ॥ प्रयोगमात्रं कर्तव्यं वैरिनिग्रहकारकम् । इयं देवी महादेवी शत्रुनिग्रहकारिणी । यथेष्टचिन्तया चिन्त्या धर्मकामार्थ-सिद्धिदा ॥ १३ ॥ अस्य पुरश्चरणादिकं दक्षिणकालीमन्त्रवदिति केचित्, वस्तुवस्तु पुरश्चरणमष्टोत्तरसहस्रजपः ॥ १४ ॥

अथ उच्छिष्टगणेशमन्त्रः

ॐ हस्तिपिशाचि लिखे ठद्वयम् ।

तन्त्रान्तरे : हस्तिपदं समुच्चार्य पिशाचीतिपदं ततः । देवराजं सनेत्रञ्च कान्तमीशस्त्रसान्वितम् । वह्निजायावधिर्मन्त्रस्ताराद्यः सर्व-कामदः । प्रणवस्थाने गमिति केचित् । हस्तिपिशाचि लिखेऽग्निवनिता गं तदादित इति तत्त्वबोधात् ॥ १५ ॥

तथा : सारभूतमिदं मन्त्रं न देयं यस्य कस्यचित् । गुह्यं सर्वागमेष्वेव हितबुद्धया प्रकाशितम् ॥ १६ ॥

तथा च : न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते । यथेष्टचिन्तया मन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ॥ १७ ॥

अस्या पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादि-न्यासं कुर्यात् । शिरसि सुधीरऋषये नमः, मुखे निवृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि उच्छिष्टगणपतये देवतायै नमः । ततः प्रणवेन कराङ्गन्यासौ कृत्वा ध्यायेत् ॥ १८ ॥

ध्यानं यथा : रक्तमूर्त्तिं गणेशञ्च सर्वाभरणभूषितम् । रक्तवस्त्रं त्रिनेत्रञ्च रक्तपद्मासने स्थितम् । चतुर्भुजं महाकालं द्विदन्तं सस्मिता-ननम् । इष्टञ्च दक्षिणे हस्ते दन्तञ्च तदधःकरे । पाशांकुशौ च हस्ताभ्यां जटामण्डलवेष्टितम् । ललाटचन्द्ररेखाढ्यं सर्वालङ्कारभूषितम् । एवं ध्यात्वा करस्थपुष्पैर्मूलेन शिरसि सम्पूज्य बहिःपूजामारभेत् ॥ १९ ॥ (अष्टदलपद्मं लिखित्वा पूजयेत् ।) तत्र प्रथमं मूलेनार्घ्यं संस्थाप्य दशधा मूलं प्रजप्य, तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य, पुनर्ध्यात्वा, अष्ट-दलपद्ममध्ये स्थापयेत् । ततः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पत्रेषु पूर्वादि ॐ वक्रतुण्डाय स्वाहा । एवं एकदन्ताय स्वाहा, लम्बोदराय विकटाय विघ्नेशाय गजवक्त्राय विनायकाय गणपतये, मध्ये हस्तिमुखाय । सर्वत्र स्वाहान्तता । पुनरेवं त्रिः सम्पूज्य, यथाशक्ति जपं कृत्वा समर्प्य, बलिरूपनैवेद्यमुपनीय, ॐ उच्छिष्टगणेशाय महाकालाय एष बलिर्नमः

इति बलिं दत्त्वा, आचमनीयादिकं दद्यात्। विशेषफलाकांक्षिभिः पुनः ॐ ह्रां ह्रीं ह्रैं ह्रूं फट् स्वाहा इत्यनेन बलिं दद्यात्। ततः पुष्पमेकं दक्षिणदिशि क्षिप्त्वा क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥२०॥ (उच्छिष्ट गणेशयन्त्रम् चित्र ३९)

अस्य पुरश्चरणं षोडशसहस्रजपः।

तथा च : कृष्णां चतुर्थीमारभ्य यावच्छुक्लचतुर्थिका। सहस्रं हि जपेन्नित्यं योषिन्नियमपूर्वकम्। स्नापयेन्मधुना नित्यं नैवेद्यं गुडपायसम्। भुक्तोच्छिष्टो जपेन्नित्यं गणेशोऽहं सदा प्रियः। श्वेतार्केणाकृतिं कृत्वा रक्तचन्दनकेन वा। अंगुष्ठमात्रं प्रतिष्ठाप्य द्विजाग्निगुरुसन्निधौ। जप्त्वा षोडशसाहस्र्यं सिद्धमन्त्रो भवेद्ध्रुवम्। योषिदिति योषिदुपगमने नियमपुरःसरमित्यर्थः न तु त्यागनियमः। अप्रसङ्गादनौचित्यादनाचान्त इति दर्शनात् ॥ २१ ॥ उच्छिष्टश्चाशुचिर्भूत्वा जपपूजनमाचरेत्। अनुच्छिष्टे न सिध्येत तस्मादेवं समाचरेत्। इति तन्त्रान्तरवचनाच्च। केषाञ्चिन्मते पूजा नास्ति मनसा जपेत्। केषाञ्चिन्मते कराङ्गन्यासौ न स्तः गणेशोऽहमिति। पूर्वोक्तं चिन्तयेत्। गर्गमते विजने वने स्थित्वा रक्तचन्दनानुलिप्तताम्बूलमुखोच्छिष्ट-मुखो जपेत्। केषाञ्चिन्मते सर्वालङ्कारभूषितः सर्वावस्थानु जपेत्। अन्यमते सम्पूज्य मोदकं चर्वयन्, भृगुमते फलमश्नन्। विभीषणमते मांसनैवेद्यं दत्त्वा तदेव खादन्। ॥ २२ ॥

अथ विशेष प्रयोगः : राजद्वारे तथारण्ये सभायां गोत्रसंसदि। विवादे व्यवहारे च संग्रामे शत्रुसङ्कटे। नौकायां विपिने वापि द्यूते च च व्यसने तथा। ग्रामदाहे चौरविद्धे सिंहव्याघ्रादिसङ्कटे। स्मरणादेव देवस्य सर्वं वै विद्रुतं भवेत्। तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं सूर्येणेव तमो यथा। ॥ २३ ॥

तथा : सद्योच्छिष्टगणेशानो यक्षराजेन धीमता। आराधितं सोपहारैः सम्यगिष्टफलप्रदः। एवं कृत्वा व्ययस्थान्तु तद्धनेश्वरतां गतः ॥ २४ ॥ अपामार्गसमिद्धोमे सौभाग्यं लभते ध्रुवम्। अष्टोत्तरशतैर्मन्त्री मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ २५ ॥

तथा : वानरास्थिसमुद्भूतं कीलकञ्चाभिमन्त्रितम्। निखनेन्मन्दिरे यस्य भवेदुच्चाटनं परम् ॥ २६ ॥ अथ वीथ्यां खनेद्यस्य क्रयविक्रयणं हरेत्। निखनेच्छौण्डिकागारे तन्मद्यं विकृतं भवेत् ॥ २७ ॥ वेश्यागृहे तु निखनेद्ग्राहकं लभते न सा। कन्यागृहे तु निखनेन्न विवाहो भवेद्ध्रुवम्

॥ २८ ॥ मनुषास्थिसमुद्भूतं कीलकञ्चाभिमन्त्रितम् । निखनेन्मन्दिरे यस्य मरणं तस्य निश्चितम् ॥ २९ ॥ उद्धृते तु भवेत्स्वास्थ्यमिति सर्वस्व सम्मतम् । यस्य नाम्ना जपेन्मन्त्रं सहस्रं स वशो भवेत् ॥ ३० ॥ पञ्च-सहस्रहोमेन उद्वहेत वरां स्त्रियम् । सहस्रदशहोमेन राजा सद्यो वशो भवेत् ॥ ३१ ॥ लक्षजापेन राजैव द्विलक्षे राजपंक्तयः । दशलक्षेण तद्राष्ट्रं वश्यं तस्य च सर्वथा ॥ ३२ ॥ अणिमादिमहासिद्धिः कोटिजपान्न संशयः । खेचरत्वं भवेन्नित्यं सर्वज्ञत्वञ्च जायते ॥ ३३ ॥ मन्त्रं लिखित्वा शिरसि कण्ठे वा धारयेद्यदि । सौभाग्यं सर्वरक्षा च भवेत्तत्र सुनिश्चितम् ॥ ३४ ॥

अथ धनदामन्त्रः :

तु-तूर्यं विन्दुसंयुक्तं लज्जाबीजं समुद्धरेत् । लक्ष्मीबीजं ततो देवि सम्बोध्या च रतिप्रिया । वह्निजायावधिः प्रोक्तो मन्त्रराजोत्तमोत्तमः । ॥ ३५ ॥

तन्त्रान्तरे : तु-तूर्यं विन्दुसंयुक्तं लक्ष्मीप्रणवमेव च । मायाबीजं समुद्धृत्य सम्बोध्या च रतिप्रिया । वह्निजायावधिः प्रोक्तो मन्त्रराजो-त्तमोत्तमः । लक्ष्मीप्रणवं श्रीबीजं कुबेरानुमतोऽयं मन्त्रः ॥ ३६ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि कुबेरऋषये नमः, मुखे पंक्तिछन्दसे नमः, हृदिधनदायै देवतायै नमः ॥ ३७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां स्वाहा इत्यादि । एवं हृदयादिषु ॥ ३८ ॥

ततो ध्यानम् : कुंकुमोदर-गर्भाभां किञ्चिद्यौवनशालिनीम् । मृणालकोमलभुजां केयूराङ्गभूषणाम् । तुलाकोटिपरिभ्रान्तपादपद्मद्वया-न्विताम् । माणिक्यहारमुकुटकुण्डलादिविभूषिताम् । नीलोत्पलदृशं किञ्चिदुद्यत्कुचविराजिताम् । कराभ्यां भ्राम्यत्कमलां रक्तवस्त्राङ्गरागि-णीम् । हेमप्राकारमध्यस्थां रत्नसिंहासनोपरि । ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले देवतां धनदायिकाम् । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य वहिःपूजामारभेत् । ॥ ३९ ॥

पूजायन्त्रम् : नवयोन्यात्मकं चक्रं विलिखेत्कर्णिकोपरि । दिग्दलं पद्ममालिख्य चतुरस्रं लिखेद्वहिः । कोणेषु वज्रान संलिख्य मध्ये बीजं समुल्लिखेत् ॥ ४० ॥ (चित्र ४०)

ततोऽर्घ्यस्थापनम् : फडिति पात्रं प्रक्षाल्य, नमः इत्यनेन जलेनापूर्य, तत्र प्रणवेन गन्धपुष्पे निक्षिप्य, तीर्थमावाह्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, तदुपरि

मूलं दशधा जप्त्वा तज्जलं किञ्चित् प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य, तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्च मूलेन त्रिरभ्युक्ष्य, आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं पीठपूजां विधाय, ॐ पद्मासनाय नमः इति मध्ये सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् ॥ ४१ ॥ ततो योनिमुद्रां प्रदर्श्य, केशरेष्वग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गेन पूजयेत् । ततो दलेषु पूर्वादि ॐ लक्ष्म्यै नमः, एवं पद्मायै पद्मालयायै श्रियै हरिप्रियायै तारायै कमलायै चञ्चलायै अजायै लोलायै, मध्ये देवीञ्च पुनः पूजयेत् । ततो यथाशक्ति जप्त्वा जपं समर्प्य, क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥ ४१ क ॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

तथा च : प्रजपेदक्षसूत्रेण रत्नादिकृतकेन तु । लक्षे जप्ते मन्त्रसिद्धिं पुरश्चर्यां समाचरेत् ॥ ४२ ॥ विनियोगान् यथा कुर्यात्साधकः सुमनोहरान् । रात्रौ चेज्जप्यते चाष्टसहस्रं सप्तवासरान् । एतेनैव सुसिद्धः स्यात् पुरश्चर्यादिको विधिः ॥ ४३ ॥ किमिह दुर्लभं देवि साधयेद्यदि मानवः । भुक्त्वा वाप्यथवाभुक्त्वा पायसान्नं प्रदाय च । दशकृत्वोऽथवा शौचमकृत्वा वा कुचेलताम् । यः स्मरेद्देवि विद्यां तां दारिद्र्यैर्नाभिभूयते ॥४४॥ कामदेवं यजेत् पार्श्वे देव्याः प्रत्यहमादरात् । तेन देव्यां महाप्रीतिर्वाञ्छितार्थं ददाति च ॥ ४५ ॥ पूजान्ते च समायाति रात्रौ देवी धनेश्वरी । सर्वालङ्कारमुत्सृज्य दत्त्वा याति निजालयम् ॥ ४६ ॥ धनञ्च विपुलं दत्त्वा साधकस्य मनोरथान् । पुरयित्वा महेशानि वशगा जायते शुभा ॥ ४७ ॥ यद्वा भक्त्या महेशानि चन्दनेनानुलेपनम् । दातव्यं सर्वदा तस्मै नित्यं दारिद्र्यशान्तये ॥ ४८ ॥ पूजा कार्या महादेव्याश्चन्दनेनानुलेपिता । नैवेद्यञ्च प्रदातव्यं नित्यं दारिद्र्यशान्तये ॥ ४९ ॥ यक्षिणी स्वयमाहेति यो मां स्मरति मानवः । तस्य दारिद्र्यसंन्यासं दासीवत् करवाण्यहम् ॥ ५० ॥ सहस्रं सप्तभियवित् पुरश्चरणमिष्यते । तथा घृतेन खण्डेन मधुना च दशांशतः । होमोऽपि च विधातव्यः क्षणाद्दारिद्र्यशान्तये ॥ ५१ ॥ पूजा कार्या महादेव्याश्चन्दनेनानुलपिते । ताम्रपात्रे तथा कार्यं मण्डलं सुमनोहरम् ॥ ५२ ॥ तत्र पूजा विधातव्या देव्या एवं मनीषिणा । कुतो दारिद्र्यशङ्कास्य स हि कोटीश्वरो भवेत् ॥ ५३ ॥ अङ्गन्यासकरन्यासौ चाङ्गे त्रैवास्य देवता । कुबेरस्य मतेनास्याः पूजादि क्रियते सदा ॥ ५४ ॥

अथ श्मशानकालीमन्त्रः

कालीतन्त्रे : वाणीं मायां ततो लक्ष्मीं कामबीजमतः परम् । कालिके संपुटत्वेन चतुष्कं बीजमालिखेत् । एकादशार्णा देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥ ५५ ॥ (श्मशानकाली यन्त्रम् चित्र ४१)

अस्यायन्त्रम् : पद्ममष्टदलं वृत्तं तद्बाह्ये धरणीतलम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं मध्ये मूलं समालिखेत् । दलेष्वष्टसु विलिखेत् कवर्गाद्यष्टवर्गकम् । धरण्यां विलेखेदाद्यं चतुष्कञ्च चतुष्कके । पूर्वादि-उत्तरान्तश्च मध्ये देवीं प्रपूजयेत् ॥ ५६ ॥

पूजाक्रमः : प्रातःकृत्यादि प्रणायामायान्तं कर्म कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । शिरसि भृगुऋषये नमः, मुखे निवृच्छन्दसे नमः, हृदि श्मशान-कालिकायै देवतायै नमः, गुह्ये वाग्बीजाय नमः, पादयोः ह्रीं शक्तये नमः, सर्वाङ्गे कामबीजकीलकाय नमः ॥ ५७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, श्रीं मध्यमाभ्यां वषट्, क्लीं अनामिकाभ्यां हूं, कालिके कनिष्ठाभ्यां वौषट् । क्लीं आदिवाग्भवान्तं करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ॥ ५८ ॥

ततो ध्यानम् : अञ्जनाद्रिनिभां देवीं श्मशानालयवासिनीम् । रक्तनेत्रां मुक्तकेशीं शुष्कमांसातिभैरवाम् । पिङ्गाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णं समांसकम् । सद्यःकृत्तशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् । स्मितवक्त्रां सदा चाममांसचर्वणतत्पराम् । नानालङ्कारभूषाङ्गीं नग्नां मत्तां सदासवैः ॥ ५९ ॥ एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं श्मशाने तु विशेषतः । गृहे वापि गृहस्थोऽपि मत्स्यमांससुभोजनैः । नग्नो भूत्वा महापूजां कुर्याद्रात्रौ विशेषतः ॥ ६० ॥

पूजनन्तु : ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् । पुनर्ध्यात्वा पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, पत्रेषु ब्राह्म्यादिकाः पूजयेत् । तद्बहिरसिताङ्गादि-भैरवान् पूजयेत् ॥ ६१ ॥

अस्याः पुरश्चरणं एकादशलक्षजपः ।

तथा च : वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशेन होमयेत् ॥ ६२ ॥

मन्त्रान्तरं तत्रैव : कामबीजं समालिख्य कालिकायै समालिखेत् । नमोऽन्तेन च देवेशि सप्तार्णो मनुरुत्तमः । षडङ्गं कालिकादेव्या अन्यत् सर्वन्तु पूर्ववत् । कालिका देव्या इति निजबीजेन इत्यर्थः ॥ ६३ ॥

बगलामुखीमन्त्रः :

तदुक्तं तन्त्रान्तरे : ब्रह्मास्त्रं संप्रवक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम्। साधकानां हितार्थाय स्तम्भनाय च वैरिणाम्। यस्याः स्मरणमात्रेण पवनोऽपि स्थिरायते ॥ ६४ ॥ प्रणवं स्थिरमायाञ्च ततश्च बगलामुखि। तदन्ते सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्। स्तम्भयेति ततो जिह्वां कीलयेति पदद्वयम्। बुद्धिं नाशय पश्चात्तु स्थिरमायां समालिखेत्। लिखेच्च पुनरोङ्कारं स्वाहेति च पदन्ततः। षट्त्रिंशदक्षरी विद्या सर्वसम्पत्प्रदायिनी। स्थिरयमायां ह्लीं।

तथा च : वह्निहीनेन्द्रयुङ्माया स्थिरमाया प्रकीर्त्तिता ॥ ६५ ॥

तन्त्रान्तरे : वह्निहीनेन्द्रयुङ्माया बगलामुखि सर्वयुक्। दुष्टानां वाचमित्युक्त्वा मुखं स्तम्भय कीर्तयेत्। जिह्वां कीलय बुद्धिन्तु विनाशय-पदं वदेत्। पुनर्बीजं ततस्तारं वह्निजायावधिर्भवेत्। तारादिका चतुस्त्रिंशदक्षरा बगलामुखी। इत्यपि मन्त्रान्तरम् ॥ ६६ ॥

अनयोः पूजा : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्।

यथा : शिरसि नारदऋषये नमः, मुखे तृष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि बगलामुख्यै देवतायै नमः, गुह्ये ह्लीं बीजाय नमः, पादयोः स्वाहा शक्तये नमः। नारदोऽस्य ऋषिर्मूर्ध्नि तृष्टुप्छन्दश्च तन्मुखे। श्रीबगलामुखीं देवीं हृदये विन्यसेत्ततः। ह्लीं बीजं गुह्यदेशे तु स्वाहाशक्तिस्तु पादयोः ॥ ६७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ॐ ह्लीं अंगुष्ठाभ्यां नम, बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा, सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्, वाचं मुखं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुं, जिह्वां कीलय कीलय कनिष्ठाभ्यां वौषट्, बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु।

तथा च दिव्यतन्त्रे : युग्मबाणेषुसप्ताहिशेषार्णश्च मनुद्भवैः। करशाखासु तलयोः कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥ ६८ ॥ ततो मूलान्ते आत्मतत्त्वव्यापिनीबगलामुखी श्रीपादुकां पूजयामि इति मूलाधारे। मूलान्ते विद्यातत्त्वव्यापिनीबगलमुखी श्रीपादुकां पूजयामि इति शिरसि। मूलान्ते सर्वतत्त्वव्यापिनी बगलामुखी श्रीपादुकां पूजयामि इति सर्वाङ्गे।

तथा च : मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे गंडयोर्नसयोः पुनः। ओष्ठयोर्मुखवृत्ते च दक्षिणांसे च कूर्परे। मणिबन्धेऽगुलेमूले गले च कुचयोर्हृदि। नाभौ

कट्यां गुह्यदेशे वामांसे कूर्परे तथा। मणिबन्धेऽंगुलेर्मूले ततश्च विन्यसेत्पुनः। दक्षवामे चोरुजान्वोर्गुल्फे चांगुलिमूलके। क्रमेण मन्त्रवर्णांस्तु न्यस्य ध्यायेद्यथाविधि ॥ ६९ ॥

ततो ध्यानम् : मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदीसिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्। पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्। जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून्परिपीडयन्तीम्, गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य बहिःपूजामारभेत् ॥७०॥ तत्र प्रथमतोऽर्घ्यस्थापनम्।

यथा : अष्टांगुलं चतुरस्र विधाय ईशानादिकोणेषु पूर्वादिदिक्षु च कुसुमाक्षतरक्तचन्दनैः ग्लौं गणपतये नमः इत्यनेन गजदानेन सम्पूज्य तेन मधुना वा अर्घ्यपात्रमापूरयेत्। ततो वारत्रयं मूलविद्यया सम्पूज्याङ्गानि विन्यसेत्। ततो धेनुयोनिमुद्रां प्रदर्श्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्षयेत् ॥ ७१ ॥

अस्या यन्त्रम् : त्र्यस्रं षडस्रं वृत्तमष्टदलपद्मं भूपुरान्वितम् ॥ ७२ ॥ ततो मूलमुच्चार्य ॐ आधारशक्तिकमलासनाय नमः एवं शक्तिपद्मासनाय नमः। ततः पूर्ववद्ध्यात्वा पीठे आवाह्य षडङ्गानि विन्यसेत्। ततो मुद्राः प्रदर्श्य, पुरतः षडङ्गेन मण्डलं यजेत्। ततो मूलेन मन्त्रयित्वा धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैर्विन्दुत्रयं मुखे क्षिप्त्वा तर्जन्यांगुष्ठयोगेन साङ्गावरणां बगलामुखी तर्पयेत् ॥ ७३ ॥ ततो यथासम्भवमुपचारैः सम्पूज्यावरणपूजामारभेत्। षट्कोणेषु पूर्वे ॐ सुभगायै नमः, एवमग्निकोणे भगसर्पिण्यै, ईशाने भगवहायै, पश्चिमे भगसिद्धायै, नैर्ऋते भगनिपातिन्यै, वायौ भगमालिन्यै। ततोऽष्टदलपत्रेषु ब्राह्मयद्याः पूज्याः पत्राग्रेषु। ॐ जयायै नमः एवं विजयायै अजितायै अपराजितायै स्ताम्भन्यै जम्भिन्यै मोहिन्यै आकर्षिण्यै। ततो द्वारेषु ॐ भैरवाय नमः। तद्बाह्ये इन्द्रादीन्वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिकं दत्त्वा यथाशक्ति जपं विधाय, त्रिशूलमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा, देव्यै योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्। ततो भैरवाय बलिं दद्यात्। ततो विसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ७३ क ॥ (बगलामुखी यन्त्रम् चित्र ४२)

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः।

तथा च : पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाभिमुखसंस्थितः। लक्षमेकं

जपेन्मन्मन्त्रं हरिद्राग्रन्थिमालया। ब्रह्मचर्यरतो नित्यं प्रयतो ध्यानतत्परः। प्रियंगुकुसुमेनापि पीतपुष्पैश्च होमयेत् ॥ ७४ ॥ द्वितीयमन्त्रे न्यासादिकं सर्वं पूर्ववत्।

ध्यानस्तु : गम्भीराञ्च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्। चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्। मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वाञ्च वज्रकम्। पीताम्बरधरां देवीं दृढपीनपयोधराम्। हेमकुण्डलभूषाञ्च पीतचन्द्रार्द्धशेखराम्। पीतभूषणभूषाञ्च रत्नसिंहासने स्थिताम् ॥७५॥

अथ प्रयोगः : कुरुते वाग्गतिस्तम्भं दुष्टानां बुद्धिनाशनम्। जपहोमप्रयोगे च मन्त्रं चाप्ययुतं जपेत् ॥ ७६ ॥ हरिद्राहरितालाभ्यां लवणं जुहुयान्निशि। स्तम्भयेत्परसैन्यानि नात्र कार्या विचारण ॥ ७७ ॥ अथवा पीतपुष्पैश्च त्रिमध्वक्तैश्च होमयेत्। स्तम्भनेषु च सर्वेषु प्रयोगः प्रत्ययावहः ॥ ७८ ॥

यन्त्रस्तु : ॐकारयोः सम्मुखयोरूर्ध्वाधः शिरसो लिखेत्। मध्यगं नाम साध्यस्य तद्वाह्ये चाक्षरत्रयम्। बीजं द्वितीयवर्गस्य तृतीयं विन्दुभूषिताम्। चतुर्दशस्वरोपेतं संलिखेत्पृथिवीगतम्। ठकारेण समावेष्ट्य चतुष्कोणपुटं वहिः। तत्कोणरेखासंसक्तैः शून्यैर्वज्राष्टकं लिखेत्। त्रिशूलमध्यरेखायाः पृथिवीबीजानि पार्श्वयोः। अष्टस्वपि च कोणेषु तद्वहिर्वगलां लिखेत्। पृथिव्यन्तरितं वाह्ये मातृकापरिमण्डलम्। आवेष्ट्य चाष्टधा पश्चात्तद्वाह्ये स्थिरमायया। निरुद्धांकुशबीजेन नादसम्मिलितांघ्रिणा। लिखेत्पूर्ववदावेष्ट्य पश्चाच्च वगलमुखीम्। पट्टे पाषाणपट्टे वा हरिद्रोन्मत्ततालकैः। दिव्यस्तम्भे मुखस्तम्भे लिखित्वा गाढमाक्रमेत्। विवादे यन्त्रमालिख्य भूर्जे तैरेव वस्तुभिः। कुम्भकारस्य चक्रस्य भ्रमतो विपरीततः। मृत्तिकां समुपादाय वृषभं कारयेत्ततः। यन्त्रं तस्योपरि न्यस्य तालकेन विलिप्य च। तन्नासायां विनिक्षिप्य पीतरज्जुं निजे गृहे। अर्चयेत्तं चतुष्कोणं नित्यं पीतोपचारतः। दुष्टस्य स्तम्भत्येव मुखं वाचस्पतेरपि ॥ ७९ ॥ (वगलामुखी धारणयन्त्रम् चित्र ४३)

विश्वसारे : काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी। भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा। वगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका। एता दश महाविद्या सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥८०॥

इति कृष्णानन्दभट्टाचार्यविरचिते तन्त्रसारे
द्वितीयः परिच्छेदः ॥

तृतीयः परिच्छेदः
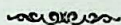
अथ कर्णपिशाची मन्त्रः

तदुक्तं तन्त्रान्तरे : कर्णास्येक्षणलोहितोरकगतोऽनंतश्चिकारोवदातीतानागतशब्दयुक्तभुवनेशोवह्निजायान्विता। ताराद्यो मनुरेष लक्षजपतो व्यासेन संसेवितः, सार्वज्ञं लभतेऽचिरेण नियतं पैशाचिकी भक्तितः ॥ १ ॥

मन्त्रान्तरम् : कहयुग्मं कालिके च गृह्णयुग्मं तथैव च। पिण्डं पिशाचि स्वाहेति नृपार्णः कथितः प्रिये ॥ २ ॥

ध्यानं यथा : कृष्णां रक्तविलोचनां त्रिनयनां खर्वाञ्च लम्बोदरीं, बन्धूकारुणजिह्विकां वरकराभोयुक्करामुन्मुखीम्। धूमार्चिर्जटिलां कपालविलसत्पाणिद्वयां चञ्चलां, सर्वज्ञां शवहृत्कृताधिवसतीं पैशाचिकीं तां नुमः ॥ ३ ॥

अथ पूजा : निशायामर्द्धरात्रौ च हृदि न्यस्य पिशाचिकोम्। दग्धमीनं बलिं दत्त्वा रात्रौ सम्पूज्य संजपेत् ॥४॥ ॐ कर्णपिशाचि दग्धमीनबलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहेति दग्धमीनबलिं दद्यात् ॥ ५ ॥ रक्तचंदनबन्धूकजवापुष्पादिकञ्च यत्। अमृतं कुरु देवेशि स्वाहेति प्रोक्षयेज्जलैः ॥ ६ ॥ पूर्वाह्ने किञ्चिज्जप्त्वा मध्याह्ने एकभक्तं निरामिषं भुक्त्वा रात्रावपि तत्संख्यं जपेत्। अन्यत्किञ्चिन्न भोक्तव्यं ताम्बूलकादिकं विना। जपस्य दशांशं तर्पणम्। ॐ कर्णपिशाचीं तर्पयामि ह्रीं स्वाहा। एवं क्रमेण लक्षमेकं पुरश्चरणं कृत्वा दशांश होमयेत्। तदभावे दशांशं तर्पणं कृत्वा वरं प्रार्थयेत्। मूलं रक्तचन्दनेन लिखित्वा यन्त्रोपरि इष्टदेवतां पूजयेत् ॥ ७ ॥

अथ सिद्धिलक्षणमुच्यते : गगने हूंकारादिश्रवणदीर्घाग्निशिखारूपसन्दर्शनात्सिद्धिर्भविष्यतीति ज्ञात्वा तथाविधमाचरेत् ॥ ८ ॥

मन्त्रान्तरम् : प्रणवं माया कर्णपिशाचि मे कर्णे कथय हूं फट् स्वाहेति। प्रदीपतैलं पादयोर्दत्त्वा रात्रौ लक्षं जपेत्। ततः सर्वज्ञो भवति नास्य पूजाध्यानम् ॥ ९ ॥

तथा : तारं कामबीजं जयादेवि स्वाहा। अस्यापि ऋष्यादिन्यासा-

देरभावः पूर्वं लक्षं जप्त्वा गृहगोधिकां निपात्य तदुपरि जयादेवीं यथाशक्ति सम्पूज्य तावज्जपेद्यावत्सा जीवति, ततः सिध्यति। सिद्धिस्तु मानसादिप्रश्ने कृते सा आयाति, ततस्तस्याः पृष्ठे सर्वं भूतभविष्यादिकं पश्यति ॥ १० ॥

अथ मञ्जुघोषमन्त्राः :

जाड्यौघतिमिरध्वंसी संसारार्णवतारकः। श्रीमञ्जुघोषो जयतां साधकानां सुखावहः ॥ ११ ॥

तत्र आगमोत्तरे : मातृकादिं समुद्धृत्य वह्निबीजं समुद्धरेत्। वामांशं कूर्मसंज्ञञ्च ततो मेघेसमुद्धरेत्। मीनेशञ्च ततः कुर्याद्वामनेत्रेन्दु-संयुतम्। षडक्षरो मनुः प्रोक्तो मञ्जुघोषस्य शम्भुना। मातृकादिरकारः वामांशोऽन्तस्थचतुर्थः कूर्मश्चकारः मेषेशो लकारः मीनेशो धकारः। ईयन्तु दीपनी प्रोक्ता मूलमन्त्रस्तु कथ्यते ॥ १२ ॥

अंकुशं शक्ति बीजञ्च रमाबीजं ततः प्रिये। बीजत्रयात्मको मन्त्रो जाड्यौघध्वान्तनाशनः। शक्तिबीजं रमाबीजं कामबीजं ततः प्रिये। विद्या श्रुतिधरी प्रोक्ता एषा वर्णत्रयात्मिका ॥ १३ ॥ हकारो वह्निमारूढो वामनेत्रेन्दुभूषितः। प्रोक्ता सर्वज्ञविद्येयमेकर्णात्मिका प्रिये ॥ १४ ॥ सिद्धः साध्यः सुसिद्धो वा साधकस्य रिपूश्च वा। तदा मन्त्रो भवेद्भक्त्या शुभदो बुद्धिदो भवेत् ॥ १५ ॥ मध्याह्ने सलिले चैव भोजने-भाजने तथा। गोमये तु वह्हिर्देशे मैथुने रमणीकूचे। गोष्ठे च निशि गोमुण्डे यन्त्रं डमरुसन्निभम्। विलिख्य मन्त्रवर्णांश्च त्रिश ऊर्ध्वे अथस्तथा। लिखेच्चन्दन-लेखन्या प्रयत्नात् साधकोत्तमः ॥ १६ ॥ उच्चाटने लिखेद्यन्त्रं (मन्त्रं) गोचर्मणि विशेषतः। सलिले विजयी नित्यं भोजने च महेश्वरः गोमये वावदूकः स्याद्गोष्ठे सर्वज्ञतां व्रजेत्। कुचे श्रुतिधरो नित्यं गोमुण्डे च महाकविः ॥ १७ ॥ गोमूत्रं बदरीमूलं चन्दनं पांशुमेव च। एकीकृत्याष्टधा जप्त्वा तिलकं धारयेत्सदा। नमस्कृत्य वरं श्रेष्ठं प्रार्थयेद्भक्तितत्परः। वरं प्राप्य च तस्माद्वै विहरेत्तु यथासुखम् ॥ १८ ॥ नान्यदेवार्चनं स्नानं प्रणवोच्चारणं न तु। वस्त्राञ्चलेन दन्तानां शोधनं लवणेन वा रात्रिवासो न मुञ्चेत न शुचिः स्यात्कदाचन। एवं कृत्वा प्रयत्नेन ज्ञात्वा गुरुमुखात् सुधीः। मासैकेन कवीन्द्रः स्याद्द्विमासेनैव ईश्वरः। त्रिभिर्मासैर्भवेन्मर्त्यः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १९ ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी विपुलं धनम् आयुरारोग्यकामस्तु सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ २० ॥ (चित्र ४४)

ततः कराङ्गन्यासौ : क्षां शां अंगुष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिषु ।

तथा च तन्त्रे : संवर्त्तको वकेशश्च द्वौ वर्णौ कथितौ प्रिये। षड्दीर्घभाग्भ्यामेताभ्यां षडङ्गानि समाचरेत् संवर्त्तकः क्षकारः । वकेशः शकारः ॥ १ ॥

ध्यानम् : शशधरमिव शुभ्रं खड्गपुस्तांगपाणिं, सुरुचिरमतिशान्तं पञ्चचूडं कुमारम् । पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं, कुमतिदहनदक्षं मञ्जुघोषं नमामि ॥ २ ॥

पीठपूजां ततः कुर्यादाधाराद्यादिशक्तित । भूतप्रेतादिभिः कुर्यात् पीठासनमनन्तरम् । ज्ञानदात्रे नमः पाद्यं बुद्धिकर्त्रे तथाचमम् । जाड्यानाशाय गन्धः स्यादर्घ्यं यक्षाधिपाय वै । सर्वसिद्धि प्रदायेति पुष्पं दद्याद्विचक्षणः ॥ ३ ॥ कुन्दपुष्पं समादाय भैरवान् पूजयेत्ततः । असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध-उन्मत्तसंज्ञकः । कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः ॥ ४ ॥ ततो धूपादिकं दत्त्वा प्रसूनानि विसर्जयेत् । तैः पुष्पैः पूजयेदष्टौ यक्षिणीश्च वि॰षतः । सुरादिसुन्दरी चैव मनोहारिण्यनन्तरम् । कनकावती तथा कामेश्वरी च रतिवर्यथ । पद्मिनी च नटी चैव अनुरागिण्यनन्तरम् । पूजा एतास्तु योगिन्यो ह्रल्लेखाबीजपूर्विकाः ॥ ५ ॥ एवं सम्पूज्य देवेशं लक्षषट्कं जपेन्मनुम् । धृताक्तकुन्दपुष्पैश्च एकादशशतानि च । जुहुयादेधिते वह्नौ कान्तारे पितृवेश्मनि । एवं सिद्धमनुर्मन्त्री महायोगीश्वरो भवेत् ॥ ६ ॥

कुक्कुटेश्वरतन्त्रे : मेरुपृष्ठे सुखासीनं देवदेव जगद्गुरुम् । शंकरं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥ ७ ॥

श्रीपार्वत्युवाच : भगवान् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु । वाञ्छितार्थप्रदंलोके मञ्जुघोषं ब्रवीहि मे ॥ ८ ॥ विशेषतोऽपि जप्त्वा किं कवित्वपदं नृणाम् । सर्वकामप्रदं चैव मनःसिद्धिप्रदन्तथा । भक्तानां कामदं मन्त्रं कल्पवृक्षमिवापरम् ॥ ९ ॥

श्रीशंकर उवाच : शृणु देवी महामन्त्रं साधकानां सुखावहम् । यज्ज्ञात्वा जडधीः प्रायो वाचस्पति समोभवेत् ॥१०॥ अङ्गन्यासकरन्यासवाह्न्यासससमन्वितम् । जपात्सिद्धिप्रदं मन्त्रं विना होमार्चनादिभिः ॥ ११ ॥ जपेद्वा जापयेद्वापि साधको विधिपूर्वकम् । सर्वज्ञत्वमवाप्नोति सत्यं सत्यं हि पार्वती ॥ १२ ॥ कार्त्तिकेयमुखं यावत्तावल्लक्षं जपेन्मनुम् । सर्वशास्त्रेषु

सोऽप्युच्चैर्बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ १३ ॥

श्रीपार्वत्युवाच : कोऽप्यत्रापि ऋषिश्छन्दः पूज्यते कात्र देवता। ध्येयः को वात्र तत्सर्वं ब्रूहि मे भक्तवत्सल ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच : बृहदारण्यको नामर्षिर्विराट्छन्दः एव च। स एव मंजुघोषाख्यो भक्तिदानेन मुक्तिदः ॥ १५ ॥ ध्यात्वा भैरवरूपेण जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। तदा मुक्तिप्रदो मन्त्रो नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ ध्यानं तत्र प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः। यथा ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तन्मे निगदतः शृणु ॥ १७ ॥ सात्विकं राजसञ्चैव तामसं तदनन्तरम्। ध्यानं वक्ष्ये महेशानि क्रमेण हितकाम्यया ॥ १८ ॥ सद्यः सिद्धिकरं रूपं ध्यात्वा जपेच्च सात्विकम्। सिद्धिप्रदं साधकानां भक्तानां चिन्तितप्रदम् ॥ १९ ॥ मन्त्रोद्धारमिमं देवि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्। अप्रकाश्यं परं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥२०॥ मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं प्रिये। विष्णवग्निपाशिशशियुक्-चलधीस्वरूपष-ड्वर्णमन्त्र उदितो जगतां सुखाय। सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते वेदान्तवेदनिरतस्य वसुप्रदः स्यात्। ॥ २१ ॥ आद्यमन्त्रं जपेन्मन्त्री अयुतं यदि साधकः। बलिनैवेद्यभुक् साक्षाद्बृहस्पतिरिवापरः ॥ २२ ॥ मासमात्रेण यः कुर्यात्पुरश्चरणवान्नरः। तस्यापि वदनाद्वाणी निःसरेद्रसवर्तिनी। मासत्रयेण सततं कविरेव न संशयः ॥ २३ ॥ गोमुण्डे गवि पृष्ठे च चक्रे वापि च गोमये। यन्त्रे मन्त्रं लिखेदादौ पश्चान्मन्त्रं जपेत्पुनः ॥ २४ ॥ ध्यानमात्रं विधायादौ भावयित्वा चिरं सुधीः। निर्जनं स्थानमागत्य जपेन्मन्त्रमधोमुखः ॥ २५ ॥ पौर्णमासीं समारभ्य कुन्दस्य कुसुमैः शतैः। अष्टाधिकैश्च संपूज्य जपेन्मन्त्रं चतुष्पथे ॥ २६ ॥ त्रिमुण्डारोहणं कृत्वा निशीथे मुक्तकुन्तलः। षण्मासमात्रं हि जपेद्यदि कृत्वा विधानवित्। बृहस्पतिसमो वक्ता नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥ कुक्कुरस्य च मुण्डैकं मुण्डं क्रोष्टुर्वृषस्य च। त्रिमुण्डमेतद्विख्यातं साधकानां सुखावहम् ॥ २८ ॥ आसनञ्चैव गोमुण्डे वामे कुक्कुरमुण्डकम्। दक्षिणे च शिवामुण्डं कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥२९॥ अर्द्धचन्द्राकृतिं साक्षाद्बालचन्द्रोपमं स्फुटम्। यन्त्रं लिखेत्तत्र पूजा कुन्दस्य कुसुमेन च ॥ ३० ॥ (चित्र ४५) सव्येन पाणिकमलेन जपादिपूजां शृङ्गारशीलनविधौ खलु दक्षिणेन। राकासुधाकरतुषारमरीचिगौरं, ध्यात्वा चतुष्पथतटे वृषमस्तकस्थः ॥ ३१ ॥ सञ्चिन्त्य कुक्कुरशिवाशिरसाधिरूढः, कुन्देन साधकतमो जपतिप्रकामम्। गोचर्मणा विरचितं

रसकोणमात्रं, चक्रं ततोऽपि नवकुंकुमरोचनाभिः ॥ ३२ ॥ निर्माय सव्यविधिना विजने श्मशाने, सम्पूजयेद्वनभवैश्च नवैः पलाशैः । सम्पूर्ण-मण्डलतुषारमरीचिमध्ये, बालं विचिन्त्य धवलं वरखड्गहस्तम् ॥ ३३ ॥ उद्दामकेशनिवहं वरपुस्तकाढ्यं नग्नं जपेत् क्षतजपद्मदलायताक्षम् । अरिष्टगेहे निशि तैलमेवमादाय यत्नात्करपल्लवेन ॥ ३४ ॥ तेनाञ्चितं काञ्चनपुष्पमेव, निवेद्य तस्यै जपति प्रकामम् । आकिंशुकाक्षोडतरोश्चमूले, विलिप्य पादौ वदनामृतेन ॥ ३५ ॥ त्रिमुण्डमात्राश्रित एव रात्रौ, जपेद्यथाशक्ति तु पौर्णमास्याम् । लकुचतरुतलस्थो मुण्डमात्रैकरूढो, हिमकरकरगौरं चिन्तयित्वा निशीथे । यदि जपति जडो वा मन्त्रमेनं त्रिलक्षं, भवति जगति साक्षाद्गीष्पतिर्नात्र चित्रम् ॥ ३६ ॥ भुक्तान्नशेष-कदलीतरुमूलसंस्थ आस्तीर्णपुष्परचितासनसन्निविष्टः । एकाविधूद्गम-मुपेत्य करोति पूजां, यः सोऽप्यजेय इह वाक्पतिरीश्वरः स्यात् ॥ ३७ ॥ जिह्वां विमृज्य निजपाणिसरोरुहाभ्यां रास्नाप्रसूनशतकैः परिपूज्यगोष्ठे । यो वै जपेदनुदिनं रसलक्षमात्रम् ईशं जयेत् किमुत वाक्पतिमेव चित्रम् ॥ ३८ ॥ स्थित्वा निशीथसमये रजकस्य काष्ठे, खड्गान्वितो जपति यद्यपि पौर्णमास्याम् । सम्पूर्णमासमथवा तरसापि तस्य, वक्त्राद्विनिःसरति गीरमृतायमाना ॥ ३९ ॥ यो दन्तधावनकरश्च करञ्जकाष्ठैस्तस्यापि गीष्पतिवचो नियतं सुलभ्यम् ॥ ४० ॥ तिलतैलेन मतिमान् कुन्दकैरव-पुष्पकैः । जुहुयाद्यत्नतो मन्त्री सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४१ मञ्जिष्ठतोयद-वचासितभानुमूलैः स्वीयाङ्गशोणितयुतैः समकुष्ठकैश्च । कृत्वा ललाटफलके तिलकं जपस्थो, विद्याप्रबोधविषये नवगीष्पतिः स्यात् ॥ ४२ ॥

भैरवतन्त्रेऽपि : मंजुघोषाख्यममलं मन्त्रमाकर्णय प्रिये। धनवंशप्रदं रम्यं सार्वज्ञवाग्मिताप्रदम् ॥ ४३ ॥ अदोषकवितामूलं सर्वत्र प्रतिभाप्रदम् ॥ ४४ ॥

देव्युवाच : भगवान् गिरिजानाथ कथयस्व यथोचितम् । मंजुघोषः स कः कीदृक्तस्यानुष्ठानमेव हि ॥ ४५ ॥

ईश्वर उवाच : श्रूयतां देवि मे वाक्यं नात्र कार्या विचारणा । मंजुघोषस्तु यो देवः सोऽहं देवि न संशयः ॥ ४६ ॥ एकोऽहंशङ्करो देवि नानामूर्तिधरः स्वयम् । तस्यानुष्ठानमधुना श्रूयतां मम तत्त्वतः ॥ ४७ ॥ मन्त्रः षडक्षरः सारः सद्यः कुमतिनाशनः । रसलक्षावधिस्तस्य जाप्य एव सुरेप्सित. ॥ ४८ ॥ त्रिपक्षजपनाद्देवि वाग्मी भवति मानव. ।

सुकवित्वं भवेत्तस्य प्रतिभा विश्वजित्वरी ॥ ४६ ॥ मासत्रयं जपेद्यस्तु पण्डितोऽपण्डितो यदि । षण्मासं यस्तुजपति स सर्वज्ञः कुशाग्रधीः ॥५०॥ अब्देन सिद्धयः सर्वा भवन्ति सत्यमीश्वरि । आहारोऽस्य नृणांवर्चो नैवेद्यं चक्षुषोर्मलम् । मूत्रैः पाद्यं ददेत्तस्य गन्धो विट्खदिरोद्भवः । आरण्यकस्य पत्राणि पुष्पाण्यैव सुनिश्चितम् । एरण्डमूलैः कार्पासबीजमर्घ्यं प्रचक्षते । तुण्डकीनालदानेन भवेदाचमनीयकम् ॥ ५१ ॥ ध्यानं वक्ष्ये महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् । शशधरमिव शुभ्रं खड्गपुस्ताङ्कपाणिं सुरुचिरमतिशान्तं पञ्चचूडं कुमारम् । पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं, कुमति दहनदक्षं मंजुघोषं नमामि ॥ ५२ ॥ मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि नमस्कारोपदेशतः । शृणु देवि महाभागे कलौ सद्यः फलप्रदम् ॥ ५३ ॥ मन्त्रं सर्वार्थदं सारं वशीकरणरूपकम् । अमलं निर्गुणं सारं गुणिनं सर्वकामदम् । तं नमामि हितं नाथं मंजुघोषं नमाम्यहम् ॥ ५४ ॥ रवीशं परमं सारं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः । रक्तं रजोगुणैर्युक्तं मंजुघोषं नमाम्यहम् ॥ ५५ ॥ वचनेन न जानन्ति न कायेन च कोविदाः । तं शान्तं तमसायुक्तं पीतवस्त्रं नमाम्यहम् ॥ ५६ ॥ चरणे पतिता देवा दैत्यानां जयहेतवे । चरणे पतितो जीवो बुद्धये तं नमाम्यहम् ॥ ५७ ॥ न जानन्ति सुरा यस्य तत्त्वं सत्त्वगुणेन वै । हृष्टं समस्तसारञ्च मंजुघोषं नमाम्यहम् ॥ ५८ ॥ धीशं विश्वेश्वरञ्चैव प्रतिपत्त्यादिहेतुकम् । सकलं निष्फलञ्चैव तं नमामि हितप्रदम् ॥ ५९ ॥ ऋषिः कण्वो भवेत् पंक्तिश्छन्दोऽङ्गानि षडक्षरैः । दक्षिणां शक्तितो दद्याद्गुरुतुष्टिर्यथा भवेत् ॥ ६० ॥ गुरुसन्तोषमात्रेण सिद्धिर्भवति निश्चितम् । पिता गुरुर्न कार्यो वै दीक्षाकर्मणि पार्वति । यावत् कालं सुतो दुःखी पिता तु नरकं व्रजेत् ॥ ६१ ॥

अथ तारिणी कल्पः

तारिणीतन्त्रे : ईश्वर उवाच श्रूयतां शैलतनये जाड्यनाशकरी परा । चतुर्वर्गफला विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिका ॥ ६२ ॥ वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं वामाक्षिपरिभूषितम् । नादविन्दुसमायुक्तं वसुसिद्धिप्रदायकम् । पूनश्चतुर्मुखं देवि लकारेण विभूषितम् । स्वरेणैव चतुर्थेन चन्द्रखण्डेन च प्रिये । लाञ्छितं वै महाबीजं चतुर्वर्गफलप्रदम् । ततः कृष्णपदं चोक्त्वा ततो देविपदं स्मृतम् । ह्रींकारञ्च ततो दद्यात् खपूर्वमुद्धरेत्ततः । ईकारेण च रेफेण मकारेण विभूषितम् । ततो वाग्भवमुच्चार्य मन्त्रमेनं समुद्धरेत् । नवाक्षरो मनुर्देवि तारिण्याः समुदीरितः ॥ ६३ ॥ ईयमेव

महाविद्या स्वर्गे मर्त्ये च दुर्लभा ॥ अष्टसिद्धिप्रदा देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥६४॥ अनया सदृशी विद्या अनेन सदृशो मनुः । अनया सदृशी सिद्धिर्न भूता न भविष्यति ॥ ६५ ॥ यो विद्यां लभते देवि किं नु तस्य न जायते । अचिराल्लभते वाणीं गद्यपद्यप्रमोदिनीम् । ज्ञानमात्रेण विद्यायाः क्षिप्रं द्रुतकविर्भवेत् । बिना छन्दो बिना शिक्षां बिनाभ्यासेन पार्वति ॥ ६६ ॥ बिना ज्ञानं बिना यत्नं बिनालापं कवेरपि । जिह्वायां जायते तस्य कवित्वं रसनिर्मितम् ॥ ६७ ॥

तत्र पूजाप्रयोगः : प्रथमं जलमादाय पादप्रक्षालनं स्मृतम् । द्विराचम्य शिखां बद्धा ततो भूमिविशोधनम् ॥ ६८ ॥ विघ्नानुत्सारणं कृत्वा ततः पुष्पविशोधनम् । करौ संशोध्य देवेशि चास्त्रमन्त्रेण तत्परम् ॥ ६९ ॥ गुरून् गणपतिं नत्वा भूतशुद्धिं समाचरेत् । स्वाधिष्ठाने स्थितं बीजं वाग्भवं सर्वसिद्धिदम् । तदुद्भूताग्निबलिभिः शरीरं दह्यते बुधैः ॥ ७० ॥ तद्भस्मपुञ्जमुत्सार्य ह्रीं समुद्भूतवायुना । ललाटे कामबीजन्तु तदुद्भूतामृतेन च । तदस्थि प्लावितं कृत्वा दृढीभूतं चरेत्ततः । निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम् । सर्वपापविनिर्मुक्तं देहं सञ्चिन्त्य साधकः । शरीरस्य विशोधेन प्राणायामं चरेत्ततः ॥७१॥ आद्येन मूलबीजेन प्राणायामत्रयञ्चरेत् । मन्त्रन्यासस्ततो देवि श्रूयतां मन्त्रसिद्धिदः ॥ ७२ ॥ शंकरोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहतीच्छन्द ईरितम् । तारिणी देवता प्रोक्ता ह्रींकारं बीजमुच्यते । वाग्भवं शक्तिरित्युक्तमिति ऋष्यादिकं न्यसेत् ।

प्रयोगः : शिरसि शंकरऋषये नमः । मुखे बृहतीच्छन्दसे नमः । हृदि तारिण्यै देवतायै नमः । गुह्ये ह्रीं बीजायः नमः । पादयोः वाग्भवशक्तये नमः ॥ ७३ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : श्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः, क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, कृष्णदेवि मध्यमाभ्यां वषट्, ह्रीं अनामिकाभ्यां हुं, श्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ऐं करतलपृष्ठाभ्यां फट्, एवं हृदयादिषु ।

तथा बीजेन तु षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ ७४ ॥

धर्मादि विन्यसेद्देवि ततोऽधर्मादि विन्यसेत् । उपर्युपरि मध्ये च क्रमेणैतान्न्यसेत्ततः । कल्पवृक्षं समुच्चार्य मणिपीठं ततः स्मरेत् । शवमुच्चारयित्वा तु तत्रोपरि कपालकम् । चतुर्दिक्षु न्यसेद्देवि चितामग्निसमन्विताम् । हृत्पद्माष्टदले तत्र चाष्टशक्तीर्न्यसेत्ततः । दुर्गा जया ततो मेधा विजया सुप्रभा मता । काली गौरी शिवा चैव इत्यष्टौ शक्तयः स्मृताः

॥ ७५ ॥ तत एव स्वदेहेषु पञ्चयोनिं न्यसेद्बुधः । केशान्ते दक्षिणे भागे योनवीरां न्यसेत्ततः । केशान्ते वामभागे च योनिविश्वां ततो न्यसेत् । नासामूले च देवेशि योनिरूपां विभागतः । योनिकामां योनिहारां नेत्रयोः सव्यवामयोः । योनिरूपां न्यसेदोष्ठे सर्वकामार्थसिद्धये । मुखकोणे च देवेशि दक्षवामादिभेदतः । चिबुके च महादेवो विन्यसेत् साधकोत्तमः । योनिच्छायां योनिकामां योनिरूपां तत परम् । बाहुमूले तथा वामे हृदि चैव वरानने । योनिचिन्तां योनिनित्यां योनिरूपां स्मरेद्बुधः । स्तनयोर्नाभिदेशे च योनिस्थानं सदा स्मरेत् । योनिसिद्धां योनिविद्धां योनिरूपां न्यसेद्बुध. । एताः स्मृताश्चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्ताश्च विचक्षणैः । देहपीठे ततो देवीं ध्यायेत्सुस्थिरमानसः ॥ ७६ ॥

ध्यानमाह : कृष्णां लम्बोदरीं भीमां नागकुण्डलशोभिताम् । रक्तमुखीं ललज्जिह्वां रक्ताम्बरधरां कटौ । पीनोन्नतस्तनीमुग्रां महानागेन वेष्टिताम् । शवस्योपरि देवशि तस्योपरि कपालके । नासाग्रध्याननिरतां महाघोरां वरप्रदाम् । चतुर्भुजां दीर्घकेशीं दक्षिणस्योर्ध्वबाहुना । बिभ्रतीं नलिनीमेकां वामोर्ध्वे पानपात्रकम् । वराभयधरां देवीमधस्ता-द्दक्षवामयोः । पिबन्तीं रौधिरीं धारां पानपात्रे सदाशिवे । सर्वसिद्धिप्रदां देवीं नित्यां गिरिनिवासिनीम् । लोचनत्रयसंयुक्तां नागयज्ञोपवीतिनीम् । दीर्घनासां दीर्घजङ्घां दीर्घाङ्गी दीर्घजिह्विकाम् । चन्द्रसूर्याग्निभेदेन त्रिलोचन-समन्विताम् ॥ ७७ ॥ शत्रुनाशकरीं देवीं महाभीमां वरप्रदाम् व्याघ्रचर्मशिरोवद्धां जगत्त्रयविभाविनीम् । साधकानां सुखं कर्त्रीं सर्वलोकभयङ्करीम् । एवं भूतां महादेवीं तारिणीं प्रणमाम्यहम् ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं तारावत्कुर्यात् ॥ ७७ क ॥

अस्याः पूजायन्त्रम् : यन्त्रं निर्माय देवेशि स्थापयेन्मन्त्रमध्यतः । रक्तमलयजेनापि वसुपत्रं लिखेत्ततः । तद्बाह्ये वसुपत्राणि लिखेत्साधक-सत्तमः । वह्निमण्डलयुग्मश्च यन्त्रमध्ये लिखेत्ततः । पूर्वदले च देवेशि आद्यं बीजं लिखेत्ततः । द्वितीयं दक्षिणे तृतीयं पश्चिमे दले । उत्तरे च दले देवि फट् वाणोश्च ततो लिखेत् । चतुर्द्वारसमायुक्तं अष्टवज्र-समन्वितम् ॥ ७८ ॥ तत्र पूर्वोक्तमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य, पूर्ववद्ध्यात्वा तत्रावाह्य महेशानीं यजेद्वै मन्त्रमुच्चरन् । (चित्र ४६)

षडङ्गेनैव देवेशि पूजयित्वा तु पार्वतीम् । क्षेत्रपालं भैरवञ्च गणनाथं महान्तकम् । एतच्चतुष्टयं देवि यजेद्द्वारचतुष्टये । पूर्वाद्यष्टदले देवि एताः

सम्पूज्य साधकः। अणिमानङ्गमदना लघिमा मदनातुरा। अनङ्गकुसुमा देवि ततोऽष्टकर्णिका तथा। कपालिका च देवेशि ततोऽष्टयोगिनीस्तथा। तथा षोडशपत्रेषु पूजयेत्परिचारिकाः। सुखदां मोक्षदां तत्र भुक्तिदां भोगदां तदा। मुक्तिदां सिद्धिदां चैव कामदां धनदां तथा। क्षेमदां शिवदां वापि वरदामात्मदां तथा। योगदां भोगदां देवि भक्तिदां सर्वसिद्धिदाम्। अणिमाद्यष्टसिद्धीश्च पूर्वद्वारे यजेत्ततः। वह्नेर्दशकला देवि द्वारे च दक्षिणे तथा। पाश्चात्यद्वारे देवेशि कलाश्चन्द्रस्य पूजयेत्। उत्तरे च तथा देवि रवेरपि कलास्ततः। षडङ्गेन यजेद्देवि ततश्चास्त्राणि पूजयेत्। एतास्तु देवदेवेशि चतुर्थ्यन्ताः समीरिताः। नमोऽन्ताश्च महादेवि प्रोक्ताः सकलसिद्धिदाः। पुष्पैर्बहुविधैश्चैव रक्तचन्दनचर्चितैः। रक्तपुष्पैर्महादेवि नानागन्धसमन्वितैः ॥ ७९ ॥ बिल्वपत्रैस्तथा गन्धैर्जवा-पुष्पैर्विशेषतः। श्वेतरक्तपलाशैश्च करवीरैर्मरूवकैः। बिल्वपुष्पैः कुन्द-पुष्पैर्लवङ्गकुसुमैः शुभैः। अपराजितापुष्पैश्च चम्पकैः केशरैस्तथा। एभिः पुष्पैर्महादेवि पूजयेन्नित्यतारिणीम्। मालतीवकपुष्पैश्च सदूर्वैर्वना-र्चयेत्तथा। कदम्बैः श्वेतकुसुमैः कुंकुमैः काञ्चनैस्तथा। एवं सम्पूजयित्वा तु एभिर्द्रव्यैर्महेश्वरि। लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥७९क॥

अथ सारस्वतकल्पः :

नारद उवाच : केनोपायेन देवेश विद्योत्पत्तिर्भवेन्नृणाम्। वेद-विद्याप्रकाशस्तु तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥ ८० ॥

ब्रह्मोवाच : साधु साधु त्वया पृष्टं लोकानां हितकारकम्। एतदेव पुरा पृष्टं कल्पादौ विष्णवे मया ॥ ८१ ॥ ब्रह्मशब्दस्वरूपेण प्रसन्नेनान्त-रात्मना। यत्प्रोक्तं तेन मे ब्रह्मन् तत्ते वक्ष्यामि यत्नतः ॥ ८२ ॥

भगवानुवाच : शृणु ब्रह्मन् परं गुह्यं कल्पं सारस्वतं मम। यस्या विज्ञानमात्रेण जाड्यापहरणं भवेत् ॥ ८३ ॥ सर्वशास्त्र प्रकाशश्च सर्वज्ञो जायतेऽचिरात्। अभ्यासाच्च भवेद्यस्य वाचश्चित्रा भवन्ति हि ॥ ८४ ॥ अवापुस्त्रिदशा व्याप्ति वागीशत्वं बृहस्पतिः। द्वैपायनोऽपि यं ज्ञात्वा वेदव्यासोऽभवन्मुनिः ॥ ८५ ॥ मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि साङ्गावरण-पूजनैः। अनन्त विन्दुना युक्तं वामगण्डान्तभूषितम्। जपेद्द्वादशलक्षन्तु मूकोऽपि वाक्पतिर्भवेत् ॥ ८६ ॥ नाभौ शुद्धारविन्दञ्च ध्यायेद्दशदलं सुधीः। तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री मण्डलानान्त्रयं चिरम्। रत्नसिंहासनं ध्यायेद्वर्णं ज्योत्स्नामयं पुनः। तस्योपरि पुनर्ध्यायेद्देवीं वागीश्वरीं ततः

॥ ८७ ॥ मुक्ताकान्तिनिभां देवीं ज्योत्स्नाजालविकाशिनीम् । मुक्ताहरयुतां शुभ्रां शशिखण्ड विमण्डिताम् । विभ्रतीं दक्षहस्ताभ्यां व्याख्यां वर्णस्य मालिकाम् । अमृतेन तथा पूर्णं घटं दिव्यञ्च पुस्तकम् । दधतीं वामहस्ताभ्यां पीनस्तनभरान्विताम् । मध्ये क्षीणां तथा स्वच्छां नानारत्नविभूषिताम् । आत्माभेदेन ध्यात्वैवं ततः सम्पूजयेत्क्रमात् ॥ ८८ ॥ आद्येन दीर्घयुक्तेन कुर्यादङ्गानि हस्तयोः । हृदयादौ तथा कुर्याद्बीजेनाङ्गक्रियां पुनः । भ्रुवोर्मध्ये तथा नाभौ गुह्ये च देशिकस्तथा । न्यसेद्बीजं पुनर्वस्तौ व्यापकं विन्यसेत्ततः । पीठन्यासं तनौ कुर्याद्देवताभाव-सिद्धये । मातृकायास्तु यत्प्रोक्तं पीठमभ्यर्च्य यत्नतः । वर्णाब्जेनासनं कुर्यान्मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् । आवाह्य पूजयेत्तस्यां देवीं वागीश्वरीं ततः ॥ ८९ ॥ अङ्गैः प्रथमा वृत्तिः स्याद्द्वितीया शक्तिभिस्ततः । दलाग्रेषु समभ्यर्च्य ब्रह्माण्याद्या यथाविधि । लोकपाला वहिः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्वहिः । एवं सम्पूजयेन्मन्त्री जपपूजारतः सदा ॥ ९० ॥ कवित्वं लभते वाग्मी लक्षैर्द्वादशभिर्ध्रुवम् । प्रातर्जप्त्वा सहस्रन्तु पिवेद्ब्राह्मीं वचान्विताम् । न विस्मरति मेधावी श्रुतान् वेदागमानपि ॥ ९१ ॥

कण्ठमात्रोदके स्थित्वा ध्यायेन्मार्त्तण्डमण्डले । ज्योतिःपुञ्जनिभां देवीं परिवारसमन्विताम् । वराभययुतां हस्ते मुद्रापुस्तकधारिणीम् । जपन् सहस्रमानेन षण्मासं विजितेन्द्रियः । भोमां संप्राप्य वाक्सिद्धिं कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥ ९२ ॥

अथ प्रयोगं वक्ष्यामि जाड्यनाशकरं परम् । रात्रिशेषे समुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः । शुद्धभावेन चात्मानं गुरुञ्च परिकल्पयेत् । तत्प्रभापटलं व्याप्तं जगत्सर्वं विचिन्तयेत् ॥ ९३ ॥ मूलाधारे स्थितां देवीं कुण्डलीं परदेवताम् । सुप्तां प्रोत्थाप्य तां शक्त्या क्रमाच्चक्राणि भेदयेत् । ततः परशिवे नीत्वा सौधीञ्च प्रापयेत्ततः । ऊर्ध्वग्रन्थिं विनिर्भिद्य जित्वा दीपस्वरूपिणीम् । वीजरूपस्वशक्त्या तु प्रोल्लसन्तीं परात्मिकाम् । शब्दब्रह्मस्वरूपाञ्च निश्चलां चिन्तयेत्ततः । तत्प्रभापटलव्याप्तं शरीरं चिन्तयेत्ततः । नित्यं सहस्रमानेन जपेत्संवत्सरं यदि । ततः संजायते मन्त्री वाचस्पतिरिवापरः । छन्दोऽलंकार-तर्कादि-नानाशास्त्रार्थवि-द्भवेत् । कवित्वं ज्ञानशक्त्या तु पाण्डित्यमधिकं भवेत् ॥ ९४ ॥

अथापरं प्रवक्ष्यामि योगं भुवि सुदुर्लभम् । नाभिचक्रे स्थितां सौम्यां रक्ताकारां विचिन्तयेत् । क्षौमावद्धनितम्बाञ्च रक्ताभरणभूषिताम् ।

पाशांकुशधरां दिव्यां वराभययुतां पुनः । दृष्ट्या चामृतवर्षिण्या पूरयन्तीं मनोरथान् । एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं मनुजो विहितं ततः । होमं कुर्यात्त्रि-मध्वक्तं रक्तोत्पलयुतैर्द्विजः । ततः संतर्पयेद्देवीं दुग्धयुक्तेन सर्पिषा । पायसेन बलिं दद्याद्दधिपिष्टैर्मधुप्लुतैः । एवं कृत्वा विधानन्तु साक्षाद्वै-श्रवणो भवेत् ॥ ९६ ॥ सिद्धार्थैस्त्रिमधुपेतैर्हुत्वा जगद्वशं नयेत् । पद्महोमेन महतीं प्राप्नुयाच्छ्रियमुर्जिताम् ॥ ९६ ॥ देवीहृदयविद्याया नास्ति किञ्चित्सुदुर्लभम् । स्नेह भावेन सम्प्रोक्तं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ९७ ॥ एतत्ते कथितं गुह्यं विद्योत्पत्तेश्च कारणम् । विष्णुना दत्तमस्मभ्यं मया तुभ्यं द्विजोत्तम ॥ ९८ ॥ सिद्धमन्त्रो यदा मन्त्री बालीशस्यापि मूर्ध्नि । हस्तं दत्त्वा स्पृशेत् सोऽपि सौधीं वाचमनर्गलाम् । गद्यपद्यमयीं ब्राह्मीं सिद्धविद्याप्रसादतः ॥ ९९ ॥ इति स्वायम्भुवमातृकातन्त्रे सारस्वतः पटलः ।

कात्यायनीकल्पः :

भगवानुवाच : अतिगुह्यतरं मन्त्रं पृष्टवत्यसि पार्वति । भक्तिभावेन ते देवि कथयामि शुचिस्मिते ॥ १०० ॥ प्रसन्नतां यदा याति देवि कात्यायनी तदा । कवितामतुलैश्वर्यं ददाति पदमुत्तमम् ॥ १ ॥ स्त्रीणामाकर्षणञ्चैव मारणोच्चाटने रिपोः । नृपाणां वश्यता चैव जायते च तथा प्रिये ॥ २ ॥ कथयामि तथा सर्वं भक्त्यां कलय मद्वचः । आदौ शृणु महामन्त्रं वाग्भवादि-नमोऽन्तकम् । वह्न्यासनं शिवं वान्तं विन्दु-शान्तिविभूषितम् । चकारं विन्दुना युक्तं चतुर्दशस्वरान्वितम् । ङेयुता चण्डिका चैव मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः ॥ ३ ॥ चिन्तामणिरिति ख्यातो मायाद्यापि विचिन्त्यते । देवता चण्डिका छन्दो गायत्री कपिलो मुनिः । लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः । मातृकोक्ते यजेत्पीठे बीजेनाङ्ग-क्रिया मता । आदावङ्गानि सम्पूज्य शस्त्रपूजा ततःपरम् ॥ ४ ॥ लोकपालास्ततः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः । डाकिनी-योगिनी चैव खेचरी शाकिनी तथा । दिक्षु पूज्या इमा देव्यः सुसिद्धाः फलदायिकाः । ॥ ५ ॥

ततो ध्यानम् : सव्यपादसरोजेनालंकृतोरुमृगाधिपाम् । वामपादा-ग्रदलितमहिषासुरनिर्भराम् । सुप्रसन्नां सुवदनां चारुनेत्रत्रयान्विताम् । हारनूपुरकेयूरजटामुकुटमण्डिताम् । विचित्रपट्टवसनामर्द्धचन्द्रविभूषि-ताम् । खड्गखेटकवज्राणि त्रिशूलं विशिखं तथा । धारयन्तीं धनुः पाशं

शङ्खं घण्टां सरोरुहम् । बाहुभिर्ललितैर्देवीं कोटिचन्द्र-समप्रभाम् । समावृतैर्दिविषदैर्देवैराकाशसंस्थितैः । स्तूयमानां मोदमानैर्लोकपालादिभिः सदा । एवं सञ्चिन्तयेद्देवीं जायते नरपुङ्गवः ॥ ६ ॥ क्षत्रियेषु यथा रामो देवेषु च पुरन्दरः । भुजङ्गेषु यथा तार्क्ष्यः क्रूरकार्यो यथा शनिः ॥ ७ ॥ शकुन्तेषु यथा श्येनो मन्त्रज्ञो बलवांस्तथा । इदन्त परमं गुह्यं संक्षेपात्कथितं मया ॥ ८ ॥ इदानीं जपहोमानां विधानञ्च शृणु प्रिये । मन्त्रोऽयं चिन्त्यते देवि सभायां पुरतो यदि । कोटिसूर्यप्रतीकाशो दृश्यते वादिभिस्तथा । पलायन्ते महादेवि साध्वसेन क्षणात्ततः ॥ ९ ॥ इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामारभेज्जपम् । सहस्रं प्रत्यहं कृत्वा सम्प्राप्य नवमीं सिताम् । विजयं खड्गमादाय पूजयित्वा यथाविधि । अर्द्धरात्रे बलिं दत्त्वा प्रातर्यात्रां समाचरेत् । रणभूमिं समासाद्य सहस्रं प्रजपेन्मनुम् । तं दृष्ट्वा पुरुषं देवि हृत्क्षोभो जायते रिपोः ॥ १० ॥ सदूतं यममायातं मन्यमाना नराधिपाः । पलायन्ते महादेवि नात्र कार्या विचारणा ॥११॥ शुक्लाम्बरधरो मौनी ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः । शुक्लवर्णां महादेवीं ध्यात्वा शुक्लविभूषणाम् । सहस्रं मासमेकन्तु जपेन्नित्यं यथाविधि । मालती-बकुलैः कुन्दैर्मन्त्री मधुरसंयुतैः । सहस्रत्रितयं हुत्वा वागीशो जायतेऽचिरात् ॥ १२ ॥ हेलया कवितां देवि विशदां कुरुते द्रुतम् । जपं वा कुरुते नित्यं शतशो वत्सरावधि । बन्ध्यापि लभते पुत्रः कार्त्तिकेयपराक्रमम् । दुर्भगा च भवेत्पत्युः सुभगातिमनोरमा ॥ १३ ॥ रूपं विचिन्त्य पूर्वोक्तं लक्षं जप्त्वायुतं ततः । नालोत्पलैः सरोजैर्वा हुत्वा वैश्रवणायते ॥ १४ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानां मुण्डमालाविभूषिताम् । रक्तवर्तुलभीमाक्षीं जिह्वया लोलयासुरान् । चर्वयन्तीं महाकालीं कालरात्रिमिवापराम् । क्षोभयन्तीं जगत्सर्वं ससुरासुरपर्वतम् । एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं श्मशाने वा चतुष्पथे । सप्ताहं त्रिशतं कृत्वा व्रतस्थः स्थिरमानसः जपेत् यो नियतं देवि स रिपून्नाशयेद्ध्रुवम् ॥ १५ ॥

अनेनैव विधानेन बलिं दद्याच्चतुष्पथे । दग्धमत्स्यं सरक्तान्नं पिण्डीकृत्य समाहितः । आममांसं हरिद्राक्तं यं विचिन्त्य प्रदापयेत् । सप्ताहाल्लभते शत्रुर्यमसद्म न संशयः । हरिर्वा शंकरो वापि न शक्तो रक्षितुं क्वचित् ॥ १६ ॥

बलिमन्त्रस्तु : उमाबीजयुगञ्चादौ चामुण्डाबीजयुग्मकम् । कालि-कालि पदञ्चोक्त्वा खादय द्वितयं ततः । वशीकुरु महासत्त्वानादिद्वन्द्वं

पुनर्वदेत् । वह्निजायां ततः प्रोक्त्वा बलिमन्त्रः शुभावहः । उमाबीजं हृल्लेखाबीजं चामुण्डाबीजं श्यामाबीजम् ॥ १७ ॥ एणाजिनं परिधाय उपविश्य निजाङ्गने । आत्मानं घोररूपञ्च चिन्तयित्वा समाहितः । अङ्गारकदिने चैव निन्दितासु तिथिष्वपि । पूजितं खड्गमादाय निशीथे बलिमाहरेत् । प्रहारशोणितश्चास्य दद्याद्देव्यै यथाविधि । अच्छेद्या-भेद्यकायः स्यात्रिपूर्णां नात्र संशयः ॥ १८ ॥ मायाबीजं समुद्धृत्य रमाबीजं ततः परम् । कत्यायनोपदं ङेऽन्तं वह्नेर्भार्या ततः परम् । अष्टाक्षरी महाविद्या सर्वकामफलप्रदा । ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् । इति कात्यायनीकल्पः ॥ १९ ॥

अथ दुर्गामन्त्राः :

विश्वसारे : अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने । यस्याः प्रसाद-मात्रेण भवेद्गङ्गाधरः स्वयम् ॥ २० ॥ थान्तबीजं समुद्धृत्य वामकर्णाभि-भूषितम् । इन्दुविन्दुसमायुक्तं बीजं परमदुर्लभम् । चतुर्वर्गप्रदं साक्षान्महा-पातकनाशनम् । एकाक्षरीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये ॥ २१ ॥ विना गन्धैर्बिना पुष्पैर्विना होमपुरःसरैः । विनायासैर्महादेवि जपमात्रेण सिद्धिदा ॥ २२ ॥ मन्त्रस्यास्य ऋषिर्देवि नारदः परिकीर्त्तितः । गायत्रीच्छन्दः आख्यातं जगद्धात्री च देवता । चतुर्वर्गप्रदा दुर्गा सर्वसत्त्वेषु संस्थिता ॥ २३ ॥ विविधा सा महाविद्या तत्शृणुष्व गणेश्वरि । कूर्चाद्यां वा जपेद्विद्यां तदन्ते वह्निसुन्दरी । लज्जाद्यां वा जपेद्विद्यां फडन्तां वा जपेत्सुधीः । वधूबीजयुतां वापि स्वाहान्तां वा जपेत्पुनः । लक्ष्म्याद्यां वा जपेद्विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये । वाग्भवाद्यां जपेद्वापि प्रणवाद्यां जपेत्पुनः । कामबीजादिकं वापि फडन्तां वा जपेत्सुधीः । त्र्यक्षरो विविधा विद्या कथिता ब्रह्मणा पुरा ॥ २४ ॥ दीर्घस्वरसमायुक्तनिजबीजानि पार्वति । विन्यसेदात्मनो देहे हृदयादिषु पूर्ववत् । पूर्ववन्न्यासवर्गन्तु पूर्ववत्कर्म चाचरेत् । कालीवदाचरेद्विद्या जपेद्विद्यामहर्निशम् ॥ २५ ॥ लक्षैर्द्वादशकै-र्देवि पुरश्चरणमीरितम् । यथास्थाने यथाकाले यथाचारविधानतः । प्रजपेत्परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ २६ ॥ मत्स्यमांसैः सूपपूपैर्मृगैः शशकशल्लकैः । पूजयेत्परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिहारिणीम् ॥ २७ ॥ स्वयम्भूकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः । जवायावकसिन्दूरैः रक्तचन्दनसंयुतैः । नानामांसैर्नानाद्रव्यैः पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ २८ ॥ काकैः शुकैश्च महिषैश्छागैर्मेषैर्नरैस्तथा । गजैरुष्ट्रैः खरैर्गृध्रैः पूजये-

द्विधिनामुना। तदा भवेन्महासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥

ध्यानन्तु : सिंहस्कन्धाधिरूढां नानालंकारभूषिताम्। चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्। शंखशार्ङ्ग-समायुक्तवामपाणिद्वयान्विताम्। चक्रञ्च पञ्चबाणांश्च धारयन्तीञ्च दक्षिणे। रक्त वस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीतनुम्। नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवसुन्दरीम्। त्रिवलीवलयोपेत-नाभिनाल-मृणालिनीम्। रत्नद्वीप-मयद्वीपे सिंहासन-समन्विते। प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम् ॥ ३० ॥

दुर्गायन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणुस्व हरवल्लभे। त्रिकोणं विन्यसेत्पूर्वं नवकोणसमन्वितम्। त्रिबिम्ब-सहितं कार्यं अष्टपत्रसमन्वितम्। त्रिरेखासहितं कार्यं रुद्रभूपुरसंयुतम्। समीकृत्य यथोक्तेन विलिखेद्विधिनामुना। नानास्त्रसंयुतं लेख्यं चक्रं मन्त्रसमन्वितम्। तत्र तां पूजयेद्देवीं मूलप्रकृतिरूपिणीम्। पद्मस्थां पूजयेद्दुर्गां सिंहपृष्ठनिषेदुषीम्। प्रभाद्याः शक्तयः पूज्या गन्धाद्यैर्नवकोणके ॥ ३१ ॥ प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः। सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नव शक्तयः ॥ ३२ ॥ ह्रीमाद्याः पूजयेत्तास्तु गन्धचन्दनवारिणा। ॐकारं पूर्वमुच्चार्य ह्रींकारं तदनन्तरम्। यथा पदं चतुर्थ्यन्तं पूजयेत्क्रमतः प्रिये। शंखपद्मनिधी देव्या वामदक्षिणयोगतः। पूजयेत्परया भक्त्या रक्तचन्दनपूर्वकैः। अर्घ्यदानं सदा कुर्यात् पूजान्ते पर्वतात्मजे। अङ्गावृत्तिः पुनः पूज्याः पत्रकोणेषु-मातरः। वज्राद्यायुधसंयुक्ता भूपुरे लोकपालकाः ॥ ३३ ॥ (चित्र ४७)।

इति दुर्गामन्त्राः

अथ विशालाक्षीमन्त्राः

आदियामले : ईश्वर उवाचः ध्रुवमाद्यं समुद्धृत्य मायाबीजं समुद्धरेत्। विशालाक्षीपदं ङेऽन्तं हृदन्तं मन्त्रमुद्धरेत्। अष्टाक्षरी महाविद्या अष्टसिद्धिप्रदा शिवे। प्रसङ्गात् कथिता विद्या त्रैलोक्यदुर्लभा प्रिये ॥ ३४ ॥ ऋषिरस्य महेशानि सदाशिवो महाप्रभुः पंक्तिच्छन्दश्च कथितं विशालाक्षी च देवता। शक्तिः प्रणवमित्युक्तं लज्जाबीजञ्च बीजकम्। धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥ अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते। षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्। वाक्यन्तु ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ३६ ॥ मूलेन व्यापकं न्यस्य ध्यायेद्देवीं परां शिवाम्। ध्यायेद्देवीं विशालाक्षीं तप्तजाम्बुनदप्रभाम्। द्विभुजाम्बिकां

चण्डीं खड्गखेटकधारिणीम् । नानालंकारसुभगां रक्ताम्बरधरां शुभाम् । सदा षोडशवर्षीयां प्रसन्नास्यां त्रिलोचनाम् । मुण्डमालावलीरम्यां पीनोन्नतपयोधराम् । शवोपरि महादेवीं जटामुकुटमण्डिताम् । शत्रुक्षयकरीं देवीं साधकाभीष्टदायिकम् । सर्वसौभाग्यजननीं महासम्पत्प्रदां स्मरेत् । एवं ध्यात्वा महादेवीमुपचारैः प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥ पुरश्चरणकाले तु वर्णलक्षं जपेत्सुधीः । यन्त्रमध्ये समावाह्य प्रतिष्ठां कारयेत्ततः । त्रिकोणं चाष्टपत्रञ्च ततो वृत्तं समालिखेत् । चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् । तत्रावाह्य यजेद्देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् । विशालाक्षीं विशालास्यां यथाविधि प्रपूजयेत् । त्रिकोणान्तर्महादेवीं सम्पूज्य मातरः क्रमात् । पङ्कजाक्षी विरूपाक्षी रक्ताक्षी च सुलोचना । एकनेत्रा द्विनेत्रा च कोटराक्षी त्रिलोचना । एताः पूज्या महेशानी पत्राग्रेऽष्टयोगिनीः । पश्चिमादिक्रमेणैव अष्टसिद्धिस्वरूपिणीः । चतुरस्रे महादेवी लोकपालान् समर्चयेत् । तद्बहिश्चैव वज्राद्यान् पूजयेद्भाग्यहेतवे । ततो यथाशक्ति जप्त्वा पूर्ववच्च समाचरेदिति ॥ ३८ ॥ (विशालाक्षीयन्त्रम् चित्र ४८) ।

अथ गौरीमन्त्राः

तन्त्रे : ह्रीं गौरी रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्म फट् । द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदाहृत ॥ ३९ ॥

अस्या पूजा : प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कर्म समाप्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि पर्वतऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि श्रीगौर्यै देवतायै नमः ।

ततः कराङ्गन्यासः : ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ४० ॥

ततो ध्यानम : हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने । पाशांकुशौ सर्व भूषां तां गौरीं सर्वदा भजे । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, शंखस्थापनादि पीठमन्वन्तं सम्पूज्य, पुनर्ध्यात्वावाह्य, देवीं पूजयेत् ॥ ४१ ॥ ततोऽग्न्यादिकोणेषु ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् । पत्रेषु पूर्वादि ॐ सुभगायै नमः एवं रति-कामिनी-कामदायिनी-पाशांकुशदर्पणाञ्जनशलाकाः पूजयेत् । तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ ४२ ॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। आज्येन दशांशहोमः।

तथा च: लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः। दशांशं होमयेदाज्यैः पुरश्चरणसिद्धये ॥ ४३ ॥

फलन्तु: गन्धपुष्पाञ्जनभक्ष्यचन्दनादिकं मूलमन्त्राभिमन्त्रितं यस्मै कस्मै दीयते स वश्यो भवति निश्चितम् ॥ ४४ ॥ यथा रात्रौ हरिद्रया वामोरुमध्ये प्रियस्त्रीनामाभिलिख्य, वामकरेण पिधाय, शतं सहस्रं वा जपन्निष्टां स्त्रियमाकर्षयति। एतत्पूजादिकं सौभाग्यवश्यसर्वसम्पत्करम् ॥ ४५ ॥

अथ ब्रह्मश्रीमन्त्रः:

स च मन्त्रदेवप्रकाशिन्याम्: हृल्लेखा नमस्कारादि ब्रह्मश्रीः राजिते राजपूजिते जये-विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुयुद्धदुर्घोरां ह्रीं स्वाहा ॥ ४६ ॥

अङ्गन्यासश्च: राजिते राजपूजिते अंगुष्ठाभ्यां नमः। जये विजये गौरि गान्धारि तर्जनीभ्यां स्वाहा। त्रिभुवनवशंकरि मध्यमाभ्यां वषट्। सर्वलोकवशङ्करि अनामिकाभ्यां हूं। सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि कनिष्ठाभ्यां वौषट्। सुयुद्धदुर्घोरारावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्। राजिते राजपूजिते हृदयाय नमः। जये विजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा। त्रिभुवनवशंकरि शिखायै वषट्। सर्वलोकवशंकरि कवचाय हुं। सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि नेत्रत्रयाय वौषट्। सुयुद्धदुर्घोरारावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ४७ ॥

ततो ध्यानम्: अविकलशशिराजन्मौलिरावद्धपाशांकुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी। अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणलेपांशुकुसुमयुता स्यात्सम्पदे पार्वती वः। अस्याङ्गैर्लोकपालैर्मातृकाभिस्त्रोण्यावरणानि ॥ ४८ ॥

तस्या पुरश्चरणमयुतजपः। पायसेन दशांशहोमः। मधुत्रययुतैस्तिलतण्डुलैर्लवणैर्वा दिनत्रयं सहस्रहोमः शीघ्रवशंकरः। प्रातःकाले सूर्यमण्डलस्थां देवीं सम्पूज्य अष्टोत्तरशतं जपन्त्रिभुवनवश्यकरः ॥ ४९ ॥

अथ राजमुखीमन्त्रः:

स च द्विचत्वारिंशदक्षरः अङ्गन्यासे विविच्यते।

यथा: ॐ राजमुखि हृदयाय नमः। वश्यमुखि ह्रीं ह्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा। देवि देवि शिखायै वषट्। महादेवि कवचाय हुं।

देवाधिदेवि नेत्रत्रयाय वौषट् । सर्वंजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् । सर्वं श्रीमनोरिव । जपादौ सर्वजनस्थाने साध्यनाम देयमिति ॥ ५० ॥

अथ इन्द्रमन्त्र: :

मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम् : इं इन्द्राय हृत् । अस्य ब्रह्मार्ऋषि पंक्तिश्छन्द इन्द्रो देवता इं बीजं आयेति शक्तिः ।

बीजेनाङ्गन्यासः । यथा : इं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । इं हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ५१ ॥

ततो ध्यानम् : पीतवर्णं सहस्राक्षं वज्रपद्मकरं विभुम् । सर्वालंकारसंयुक्तं नौमीन्द्रं दिक्पतीश्वरम् । एवं ध्यात्वावाह्य पूजयेत् ॥ ५२ ॥ ततोऽग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च इं हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत् । ततः पत्रेषु पूर्वादि कं कार्त्तिकेयाय नमः एवं रं अग्नये, यं यमाय, क्षं निर्ऋतये, वं वरुणाय, यं वायवे, सं सोमाय, ईं ईशानाय । ततो वज्रादीन्पूजयेत् ॥ ५३ ॥ अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः । आज्येन तिलैरयुतहोमः ॥ ५४ ॥

अथ प्रयोगः : चतुष्कोणस्थपद्मे नववस्त्रवेष्टितं जलकुम्भं-स्थापयित्वा, गन्धोदकेन सम्पूर्य, तत्र सपरिवारमिन्द्रमाराध्य, सहस्रं जप्त्वा तज्जलाभिषेकेण भ्रष्टराज्यस्य राज्यप्राप्तिरन्येषां परमा श्रीर्भवति ॥ ५५ ॥

अथ गरुडमन्त्रः :

निबन्धे : संवर्त्तको नेत्रयुतः पार्श्वस्तारोऽग्निसुन्दरी । गारुडो मनुराख्यातो विषद्वयविनाशकः । स्मरन्गरुडमात्मानं मन्त्रमेनं जपेन्नरः । विषमालोकनेनैव हन्यान्नागकुलोद्भवम् ॥ ५६ ॥

अस्य पूजा : प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि रुद्रऋषये नमः, मुखे पंक्तिच्छन्दसे नम, हृदि पक्षीन्द्राय देवतायै नमः । प्रणवो बीजं, स्वाहा शक्तिः ॥ ५७ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ : ज्वल ज्वल महामते स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः, गरुडचूडामणे स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा, गरुडशिखिशिखे स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्, गरुड प्रभञ्जन प्रभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन विद्रावय विद्रावय विमर्द्दय स्वाहा अनामिकाभ्यां हूं, ॐ उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषय भीषय स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट्, सर्वं दह दह भस्मीकुरु स्वाहा

करतलपृष्ठाभ्यां फट्। हृदयादिष्वेवम् ॥ ५८॥ ततः करद्वयांगुष्ठादि-कनिष्ठांगुलिषु मन्त्रवर्णान्विन्यस्य पादकटिहृदयवक्त्रमूर्द्धसु पञ्चवर्णान्न्यसेत् ॥ ५९ ॥

ततो ध्यानम् : वर्मान्तर्वह्नियुग्माक्षरकमलगतं पञ्चभूताद्यवर्णं, क्लृप्ताकल्पं फणीन्द्रैरभयवरकरं पद्मनेत्रं सुवक्त्रम्। दुष्टाहिच्छेदितुण्डं स्मरदखिलविषप्रोषणं प्राणभूतं, प्राणाग्रण्यं त्रिवेदोत्तनुममृतमयं पक्षिराजं भजेऽहम्।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, शङ्खस्थापनं कृत्वा, वैष्णवोक्तं पीठमन्वन्तं पीठं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाह्य, रेफद्वयं हुङ्कारमध्यस्थं क्षकारेकार-विन्द्वात्मकबीजयुक्त-कर्णिकं स्वरद्वन्द्वाष्टकेशरे कचटतपय-शलाष्टवर्गयुक्ताष्टदले मातृकापद्मे पक्षिराजं पूजयेत् ॥ ६० ॥ अङ्गैः प्रथमावरणं अनन्तवासुकि-तक्षक-कर्कोटक-पद्म-महापद्म-शङ्ख-कुलिकाष्ट-नागैर्द्वितीयम्, इन्द्रादिभिस्तृतीयम्। अस्या पुरश्चरणं पञ्चलक्ष-जपः। अथवा पुरश्चरणार्थं मूलमयुतं प्रत्येकमक्षरसंख्यसहस्रं मालामन्त्रं जपेत्। घृताक्तैः कृष्णपुष्पैर्दशांशहोमः ॥ ६१ ॥

मालामन्त्र उच्यते, : ॐ नमो भगवते गरुडाय कालाग्निवर्णाय एह्येहि कालानललोल-जिह्वाय पातय पातय मोहय मोहय विद्रावय विद्रावय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय हन हन दह दह पच पच हूं फट् स्वाहा ॥ ६२ ॥

क्षीराब्धिमध्ये तत्रोत्पन्न-पूर्वोक्त-मातृकाक्षरमयममृतात्मकं श्वेतवर्णं विचिन्त्य, तत्पद्मे दष्टं विचिन्त्य, दष्टस्य मूर्द्ध-वक्त्र-हृदय-नाभिषु रं हं ठं वमिति बीजचतुष्टयं अमृतस्रावित्वेन संचिन्त्य, दष्टशिरस उपरिचन्द्रकान्त-वर्णं सुधामयं गरुडं ध्यात्वा, तद्धस्तस्थितामृतपूरितशंखनिर्गलदमृतधारया दष्टं प्लावयन्तं गरुडं ध्यायन् मन्त्रं जपेत्। (चित्र ४९)

एवं ध्यानमात्रेण दष्टो निर्विषः समुत्थाय चिरं जीवेत् ॥ ६३ ॥ ॐ नमो भगवते गरुडाय महेन्द्ररूपाय पर्वतशिखराकाररूपाय संहर संहर मोचय मोचय चालय चालय पातय पातय निर्विष निर्विष विषमप्यमृतं चाहारसदृशं रूपमिदं प्रज्ञापयामि स्वाहा नमः नल नल वर वर दुन दुन क्षिप क्षिप हर हर स्वाहा। अनेन गरुडमन्त्रेण मन्त्री गरुडो भूत्वा अभिमन्त्रितं स्थावरविषं भक्षितमप्यमृतं भवति किमुतान्नपानादिकमिति ॥ ६४ ॥ इति गरुडमन्त्रः।

अथ गरुडस्तवः : सुपर्णं वैनतेयञ्च नागारिं नागभीषणम् । जितान्तकं विषारिञ्च अजितं विश्वरूपिणम् । गरुत्मन्तं खगश्रेष्ठं तार्क्ष्यं कश्यपनन्दनम् । द्वादशैतानि नामानि गरुडस्य महात्मनः । यः पठेत्प्रातरुत्थाय स्नाने वा शयनेऽपि वा । विषं नाक्रामते तस्य न च हिंसन्ति हिंसकाः । संग्रामे व्यवहारे च विजयस्तस्य जायते । बन्धनान्मुक्तिमाप्नोति यात्रायां सिद्धिरेव च । इति गरुडस्तोत्रम् ॥ ६५ ॥

अथ हनूमत्कल्पः :

देव्युवाच : शैवानि गाणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च । साधनानि च सौराणि चान्यानि यानि तानि च । श्रुतानि तानि देवेश त्वद्वक्त्रान्निःसृतानि च । किञ्चिदन्यत्तु देवानां साधनं यदि कथ्यताम् ॥ ६६ ॥

शङ्कर उवाच : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय । हनूमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम् । एतद्गुह्यतमं लोके शीघ्रसिद्धिकरं परम् । जयो यस्य प्रसादेन लोकत्रयजितोऽभवत् । तत्साधनविधिं वक्ष्ये नृणां सिद्धिकरं द्रुतम् ॥ ६७ ॥ वियत्सनरकं हनूमते तदनन्तरम् । रुद्रात्मकाय कवचं फडिति द्वादशाक्षरः । एतन्मन्त्रं मयाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः । तव स्नेहेन भक्त्या च दासोऽस्मि तव सुन्दरि । एतन्मन्त्रमर्जुनाय प्रदत्तं हरिणा पुरा । जयेन साधनं कृत्वा जितं सर्वं चराचरम् ॥ ६८ ॥ नदीकूले विष्णुगृहे निर्जने पर्वते वने । एकाग्रचित्तमाधाय साधयेत्साधनं महत् ॥ ६९ ॥

ध्यानमाह : महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति । तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोररावत्समुत्सृजन् । लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम् । ज्वलदग्निलसन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् । अङ्गदाद्यैर्महादेवीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम् । एवं रूपं हनूमन्तं ध्यात्वा यः प्रजपेत्मनुम् । लक्षजपात्प्रसन्नः स्यात्सत्यं ते कथितं मया ॥ ७० ॥ ध्यानैकमात्रतः पुंसां सिद्धिरेव न संशयः । प्रातः स्नात्वा नदीतीरे उपविश्य कुशासने । प्राणायामं षडङ्गञ्च मूलेन सकलञ्चरेत् । पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा ध्यात्वा रामं ससीतकम् । ताम्रपात्रे ततः पद्ममष्टपत्रं सकेशरम् । रक्तचन्दनघृष्टेन लिखेत्तस्य शलाकया । कर्णिकायां लिखेन्मत्रं तत्रावाह्य कपिप्रभुम् । कर्णिकायाः हनूमन्तं ध्यात्वा पादादिकं ततः । (चित्र ५०)

गन्धपुष्पादिकश्चैव निवेद्य मूलमन्त्रतः। सुग्रीवं लक्ष्मणश्चैव अङ्गदं नलनीलकम्। जाम्बवन्तश्च कुमुदं केशरिणं दले दले। पूर्वादिक्रमतो देवि पूजयेद्गन्धचन्दनैः। पवनश्चाञ्जनाश्चैव पूजयेद्दक्षवामतः। दलाग्रेषु कपिभ्योऽपि पुष्पाञ्जल्यष्टकं ततः। ध्यात्वा तु मन्त्रराजं वै लक्षं यावत्तु साधकः। लक्षान्तदिवसं प्राप्य कुर्याच्च पूजनं महत्। एकाग्रचित्तमनसा तस्मिन्पवननन्दने। दिवारात्रौ जपं कुर्याद्यावत्सन्दर्शनं भवेत् ॥ ७१ ॥ सुदृढं साधकं मत्वा निशीथे पवनात्मजः। सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा प्रयाति साधकाग्रतः ॥७२॥ यथेप्सितं वरं दत्त्वा साधकाय कपिप्रभुः। वरं लब्ध्वा साधकेन्द्रो विहरेदात्मनः सुखम् ॥ ७३ ॥ एतद्धि साधनं पुण्यं देवानामपि दुर्लभम्। तव स्नेहान्मयाख्यातं भक्तासि मयि पार्वति। इति गरुडतन्त्रे देवीश्वरसंवादे हनूमत्साधनम् ॥ ७४ ॥

अथ वीरसाधनम् : हनूमतोऽतिगुह्यन्तु लिख्यते वीरसाधनम्। ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय कृतनित्यक्रियो द्विजः। गत्वा नदीं ततः स्नात्वा तीर्थमावाह्य चाष्टधा। मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा सिञ्चेदादित्यसंख्यया ॥७५॥ ततो वाससी परिधाय गङ्गा तीरे पर्वते वा उपविश्य, हां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हां हृदयाय नमः इत्यादिना च कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ॥ ७६ ॥

ततः प्राणायामः : अकारादिवर्णान् उच्चार्य वामनासापुटेन वायुं पूरयेत्। पञ्चवर्गानुच्चार्य वायुं कुम्भयेत् यकारादिवर्णान् उच्चार्य दक्षिणनासापुटेन वायुं रेचयेत्। एवं वारत्रयं कृत्वा मन्त्रवर्णैरङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत् ॥ ७७ ॥

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कोटिकपिसमन्वितम्। धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्। लक्ष्मणञ्च महावीरं पतितं रणभूतले। गुरुञ्च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम्। हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्। आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्। इति ध्यात्वा षट्सहस्रं जपेत् ॥ ७८ ॥

अस्य मन्त्रः : स्वबीजं पूर्वमुच्चार्य पवनश्च ततो वदेत्। नन्दनश्च ततो देयं ङेऽवसानेऽनलप्रिया। दशार्णोऽयं मनुः प्रोक्तो नराणां सुरपादपः ॥ ७९ ॥ सप्तमदिवसे दिवारात्रिं व्याप्य जपेत्, ततो महाभयं दत्त्वा त्रिभागशेषासु निशासु नियतमागच्छति। साधको यदि मायां तरति तदेप्सितं वरं प्राप्नोति ॥ ८० ॥ विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्। तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ॥ ८१ ॥

इति हनूमत्कल्पः ।

अथ विषहराग्निमन्त्रः

स च विसर्गविन्दुयुक्तः खकारद्वयस्वरूपः ॥ ८२ ॥

अथ पूजाप्रयोगः : प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि अग्नये ऋषये नमः । मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः । हृदि अग्नये देवतायै नमः । गुह्ये खं बीजाय नमः । पादयोः विन्दुशक्तये नमः ॥ ८३ ॥ षड्दीर्घयुक्तखकारेण कराङ्गन्यासकल्पना । ध्यानचिने शारदोक्तवैश्वानरमन्त्रवत् ॥ ८४ ॥ अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः आज्येन दशांशहोमः ॥ ८५ ॥ स्ववामहस्ततले पञ्चदलं श्वेतपद्मं ध्यात्वा, तत्कर्णिकायां सविसर्गं खकारं तत्पञ्चदलेषु सानुस्वारं खकारञ्च ध्यात्वा, रक्तवर्णामृतमयं विचिन्त्य, तत्स्पर्शनात् सर्वं विषं नाशयेत् । इत्थम्भूतकरेण विषरोगग्रस्तं स्पृष्ट्वा अष्टोत्तरशतं जपेत् । सर्ववृश्चिकादि-विषज्वराजीर्ण-विसर्पदन्तादिशूलनेत्ररोग-सर्ववेदनाञ्च नाशयेत् ॥ ८६ ॥

अथ वृश्चिकादिविषहरमन्त्रः

स च ॐ स व ह स्फुः ॐ हिलि मिलि चिलि हस्फुः, ॐ हिलि हिलि चिलि चिलि हस्फुः । ब्रह्मणे फुः विष्णवे फुः इन्द्राय फुः सर्वेभ्यो देवेभ्यो स्फुः । एते वृश्चिकविषहरा. ।

ॐ गेरि ठः । इति मूषिकविषहरमन्त्रः ॥ ८७ ॥

ॐ सरणे स्फुः ॐ असरणे स्फुः ॐ विषहरणे स्फुः । एतन्मन्त्रं जप्त्वा श्वेतसर्षपविक्षेपेण मूषिकविनाशनम् । इति मूषिकविनाशनमन्त्रः ॥ ८८ ॥

ॐ ह्रां ह्रीं हूं हूं ॐ स्वाहा गरुड हूं फट् । इति दुर्गामन्त्रो लूताविषहरः ॥ ८९ ॥

ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हूं फट् स्वाहा । इति विष्णुमन्त्रः सर्वकीटजातिविषहरः ॥ ९० ॥

अथार्द्रपटी : प्रणवो हृदयं भगवति चामुण्डे रक्तवाससे अप्रतिहत-रूपपराक्रमे अमुकवधाय विचेतसे वह्निवल्लभा । आर्द्ररक्तपटेनावृतः समुद्रगामि-नदीतीरे ऊषरभूमौ वा दक्षिणामुख ऊर्ध्वबाहुर्जपेत् । यावत्पटः शुष्यति, तावत्प्राणा शुष्यन्ति शत्रोः । इत्यार्द्रपटी ॥ ९१ ॥

अथ श्मशानभैरवीमन्त्रः

श्मशानभैरवि नररुधिरास्थिरसभक्षिणि सिद्धिं मे देही मम

मनोरथान् पूरय हूं फट् स्वाहा ॥ ९२ ॥

अथ महाकालीमन्त्रः

ॐ फ्रें फ्रं क्रों क्रों पशून् गृहाण हुं फट् स्वाहा । श्मशानभैरवीमन्त्रेण यावत्क्रूरकर्मणि प्रयोगः कर्त्तव्यः ॥ ९३ ॥

अथ महाकालीमन्त्रप्रयोगः

तत्र न न्यासादिकं कर्त्तव्यम् । तथा च : न्यासशुद्धयादिकं किञ्चिन्नात्र कार्या विचारणा ॥ ९४ ॥ कृष्णतोयैश्च सम्पूर्णे कृष्णकुम्भेऽथ कालिकाम् । पूजयेत् कृष्णपुष्पेण श्मशाने दक्षिणामुखः । पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रत्रिलोचनाम् । शक्तिशूलधनुर्बाण-खड्गखेटवराभयान् । दक्षादक्षभुजैर्देवीं बिभ्राणां भूरिभूषणाम् । ध्यात्वैवं साधकः साध्यं साधयेन्मनसि स्थितम् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथा चैन्द्री चामुण्डा चण्डिकाष्टमी । पूर्वादीशान पर्यन्तं कुम्भस्थाने स्थिता इमाः ॥ ९६ ॥

तत्र क्रमः : देवीं ध्यात्वा यथाविध्युपचारेण सम्पूज्य ब्राह्मयाद्यष्टशक्तीः पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् ॥ ९७ ॥

तथा : नामोच्चारणसंरब्धं वह्नौ प्रज्वलितेऽम्बरे । जुहुयाद्वैरिणां शुद्धौ देवीमन्त्रं जपस्तथा । समिधः पिचुमर्द्दस्य तथा विभीतकाष्ठिका । गृहधूमं श्मशानान्त विभीताङ्गारहोमतः । सप्ताहाद्वैरिणं हन्ति काली-मन्त्रप्रयोगतः ॥ ९८ ॥ ऊच्चाटनं चापराह्णे सन्ध्यायां मारणं तथा । दक्षिणस्यां दिशि स्थित्वा ग्रामादेर्दक्षिणामुखः ॥ ९९ ॥

अथ ज्वालामालिनी-मन्त्रः

ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते हूं फट् स्वाहा ।

तत्र प्रयोगः । तत्राङ्गन्यासः : ॐ नमो हृदयं प्रोक्तं भगवतीति शिरः स्मृतम् । ज्वालामालिनी च शिखा गृध्रगणपरिवृते ततः । वर्म स्वाहास्त्रमित्युक्तं जातियुक्तं न्यसेत्तनौ ।

प्रयोगस्तु : ॐ नमो हृदयाय नमः इत्यादि ॥ १०० ॥ अभुक्त्वा नियतं चैव जपेन्मन्त्रं जपाज्यी । जपेदष्टसहस्रन्तु त्रयोविंशतिवासरान् । प्रत्यहं साधनं सिद्धि ददाति च न संशयः । स्मृतिमात्रेण वै मन्त्री रिपून सर्वान् विनाशयेत् ॥ १ ॥

प्रयोगान्तरम् : फेत्कारीयेः ॐ ठं ठां ठिं ठीं ठुं ठूं ठें ठैं ठों ठौं ठं ठः । अमुकं गृह्ण गृह्ण हूं हूं ठः ठः । अनेन मन्त्रेण श्रृगालास्थिमयं कीलकं

पञ्चांगुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गेहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत् , स उन्मत्तो भवति ॥ २ ॥

ॐ डं डां डि डीं डुं डूं डें डैं डों डौं डं डः अमुकं गृह्ण गृह्ण हूं हूं ठः ठः। अनेन मन्त्रेण मनुष्यास्थिमयं कोलकं वितस्तिप्रमाणं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गृहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत् तस्य समस्तपरिवारा नश्यन्ति ॥ ३ ॥ उद्धृते खलु शान्तिः।

शान्तिमन्त्रो यथा : ॐ सः सं सं हः अमुकस्य शान्तिर्भवतु स्वाहा। अनेन मन्त्रेण घृतमधुसिक्तं क्षीर हुनेत्। तेन शान्तिर्भवति ॥ ४ ॥ ॐ ढं ढां ढि ढीं ढुं ढूं ढें ढैं ढों ढौं ढं ढः अमुकं मारय मारय ठः ठः। अनेन मन्त्रेण गर्द्दभास्थिमयं कीलकं त्रयोदशांगुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गेहे निखनेत्, स ज्वरेण विनश्यति ॥ ५ ॥

ॐ णं णां णिं णीं णुं णूं णें णें णों णौं णं णः अनेन खदिरकाष्ठमयं कीलकं षडंगुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गृहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत्, तस्य सर्वान्नाशयति ॥ ६ ॥

अथ निगडबन्धनमोक्षणम्

ॐ नमः निर्ऋते निर्ऋते तिग्मतेजो यन्मयं विव्रेता बन्धमेत यमेन दत्तं तस्य सम्विदा नोत्तमे नाके अधोरोह वैरम् ॥ ७ ॥

अस्य निगडभञ्जनमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्निर्ऋतिर्देवता तृष्टुप्छन्दो बन्धनादिव्यसनपरिहारे विनियोगः ॥ ८ ॥ एवं ऋष्यादिकं नयस्य अयुतं प्रजपेत्सुधीः। ततो बन्धनाद्व्यसनाच्च मुक्तो भवति नान्यथा ॥ ९ ॥

अथ चिटिमन्त्रः

तारं चिटिद्वयं ब्रूयाच्चाण्डालि च ततः परम्। महदाद्यां ततो ब्रूयादमुकं मे ततः परम्। वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्रः उदाहृतः। सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनामुना ॥ १० ॥

विधिमाह : विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम्। निक्षिप्य क्षीरसंमिश्रे जले तत्क्वाथयेन्निशि। वश्यो भवति साध्यश्च नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ तालपत्रे लिखित्वैनं भद्रकाली गृहे खनेत्। वश्याय सर्वजन्तुनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥ १२ ॥

अथ त्र्यम्बकमन्त्रः

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो-

र्मुक्षीयमामृतात् ॥ १३ ॥ वसिष्ठोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुवुदाहृतम् । देवतास्य समुद्दिष्टा त्र्यम्बकः पार्वतीपतिः । विभक्तैर्मन्त्रवर्णैश्च षडङ्गानाञ्च कल्पनम् ॥ १४ ॥

तत्र प्रयोगः : भूतशुद्ध्यादिपीठन्यासान्तं कर्म समाप्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् ।

यथा : शिरसि वसिष्ठऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि त्र्यम्बकाय देवतायै नमः । अमुकस्यामुकशान्तये विनियोगः ॥ १५ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ । यथा : त्र्यम्बकं अंगुष्ठाभ्यां नमः, यजामहे तर्जनीभ्यां स्वाहा, सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनं मध्यमाभ्यां वषट्, उर्वारुकमिव बन्धनात् अनामिकाभ्यां हुं, मृत्योर्मुक्षीय कनिष्ठाभ्यां वौषट्, मामृतात्करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु ।

यथा : त्रिभिस्तु वर्णैर्हृदयं शिरश्चतुर्भिरीरितम् । अष्टाभिश्च शिखा प्रोक्ता नवार्णैः कवचं तथा । तथाक्षि पञ्चाक्षरैस्त्र्यक्षरं करतले स्मृतम् । ततः पूर्वपाश्चात्ययाम्योत्तरवक्त्रेषु तदनन्तरम् । उरोगलास्येषु पुनर्नाभिहृत्पृष्ठकुक्षिषु । लिङ्गपायूरुमूलान्तर्जानुजङ्घायुगेषु तत्परम् । तद्वृत्तयुग्मे स्तनयोः पार्श्वयोः पादयोः पुनः । पाण्योर्नासिकयोः शीर्षे मन्त्रवर्णान्न्यसेत्क्रमात् ॥ १६ ॥ ततः पदान्येकादश न्यसेत् । शिरोभ्रूयुगलाक्षिषु वक्त्रे गण्डद्वये भूयो हृदये जठरे पुनः । गुह्योरुजानुपदेषु न्यासमेवं समाचरेत् ॥ १७ ॥

ततो ध्यानम् : हस्ताभ्यां कलसद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् । अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं, स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे । एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् ॥ १८ ॥ ततः शैवोक्तपीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय, आवरणपूजामारभेत् । अग्न्यादिकोणे केशरेषु मध्ये दिक्षु च त्र्यम्बकं हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गैः पूजयेत् । ततोऽष्टपत्रेषु ॐ अर्काय नमः, एवं इन्दवे वसुधायै: जलाय वह्नये वायवे वियते यजमानाय ॥ १९ ॥ तद्बाह्ये पूर्वादि : रमा राका प्रभा ज्योत्स्ना पूर्णा पूषा पूरणी सुधा । वाक्यन्तु : रमायै नमः इत्यादि । तद्बाह्ये : विश्वा विद्या सिता प्रज्ञा सारा सन्ध्या शिवा निशा । तद्बाह्ये : आर्द्रा प्रज्ञा प्रभा मेधा कान्तिः शान्तिर्धृतिर्मतिः । तद्बाह्ये : परा उमा पावनी पद्मा शान्ता

अमोघा जया अमला एताः पूजयेत् । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ॥ १९ क ॥

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ॥

तथा च शारदायाम् : जपेन्मन्त्रमिमं लक्षमेवं ध्यायञ्जितेन्द्रियः । जुहुयाद्दशभिर्द्रव्यैरयुतं घृतसंप्लुतैः । बिल्वं पलाशं खदिरं वटश्च तिल-सर्षपौ । दौग्धं दुग्धं दधि पुनर्दूर्वास्तानि विदुर्बुधाः ॥ २० ॥

प्रयोगस्तु : शनैश्चरदिने अन्यदिवसे वा अश्वत्थमूलं स्पृष्ट्वा सहस्रं जपेत् ।

तथा च : शनिवारे दिनेऽश्वत्थमूलं संस्पृश्य यो जपेत् । साक्षान्मृत्यो-र्विमुच्येत किमन्याः क्षुद्रिकाः क्रियाः ॥ २१ ॥ तथा : स्नात्वा सहस्रं प्रजपेदादित्याभिमुखो मनुम् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवा-प्नुयात् ॥ २२ ॥ प्रत्यहं जुहुयान्मन्त्री दूर्वयाष्टोत्तरं शतम् । आमयान-खिलाञ्जित्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ २३ ॥ वटवृक्षस्य समिधो जुहुयाद-युतावधि । धनधान्यसमृद्धिः स्यादचिरेणैव सिध्यति ॥ २४ ॥

अथ अमृतसञ्जीवनी :

आदौ प्रासादबीजं तदनु मृतिहरं तारकं व्याहृतिश्च, प्रोच्चार्य त्र्यम्बकं यो जपति च सततं सम्पुटं चानुलोमात् । मृतिहरं त्र्यक्षरमृत्यु-ञ्जयमन्त्रम् । ॐ जूं सः । अस्य जपात्सर्वसिद्धिर्भवति ॥ २५ ॥

अथ शुक्रोपासिता मृतसञ्जीवनी विद्या गायत्र्याः प्रथमः पादस्त्र्यम्बक-पादैकं तथा । गायत्र्याः द्वितीयः पादः त्र्यम्बकस्य द्वितीयः पादः । गायत्र्याः तृतीयः पादः त्र्यम्बकशेषपादः ।

मन्त्रो यथा : ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं भर्गो देवस्य धीमहि उर्वारुकमिवबन्धनात् धियो यो नः प्रचोदयात् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ २६ ॥

ध्यानम् : स्वच्छं स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ द्वाभ्यामेणाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ । द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां चामृतैः प्लावयन्तं, देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजालः श्रियं वः । एवं ध्यात्वावाह्य त्र्यम्बकाय महारुद्राय नमः इत्यनेन पूजयेत् । अस्य जपात्सर्वसिद्धिर्भवति ॥ २७ ॥

अथाकर्षणम् :

आकर्षणविधानानि कथयामि समासतः । यद्दृष्टं त्रिपुरातन्त्रे

यद्दृष्टं भूतडामरे ॥ २८ ॥ श्रीबीजं मान्मथं बीजं लज्जाबीजं समुद्धरेत् । प्रथमं प्रणवं दत्त्वा त्रिपुरादेविपदं ततः । अमुकीमिति पदद्वन्द्वं आकर्षय द्विधा पदम् । स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य जपेद्दशसहस्रकम् ॥ २९ ॥ षट्कोणञ्च समालिख्य रक्तचन्दनकुंकुमैः । षडङ्गं कारयेन्मन्त्री लज्जाबीजसमन्वितम् । षड्दीर्घभाक्स्वरेणैव नादविन्दुविभूषितम् । रक्तपुष्पाक्षतधूपादिनैवेद्यैः परिपूज्यताम् । भावयश्चेतसा देवीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् । बालार्क-किरणप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहाम् । पद्मञ्च दक्षिणे पाणौ जपमालाञ्च वामके । मन्त्रस्यास्य प्रसादेन रम्भामपि तथोर्वशीम् । आकर्षयेन्न सन्देहः किं पुनर्मानुषीमिह ॥ ३० ॥ भूर्जपत्रे समालिख्य कुंकुमालक्तवारिणा । काश्मीरागुरुकस्तूरीरोचनामिलितेन तु । अनामारक्तमिश्रेण कमलाक्षी-मनुं जपेत् । "ॐ श्रीं कमलाक्षि अमुकीमाकर्षयाकर्षय ॐ फट् ।" इमं मन्त्रं जपेदादौ सहस्रैकं ततः पुनः । भूर्जपत्रे समादाय गुलिकां कारये-त्सुधीः । तेनैव साध्यपादोत्थं मृत्तिकापङ्कवेष्टिताम् । शोषितां तेजसा भानोर्वेष्टयेत्त्रिकटुकैः पुनः । प्रतिमां स्त्रीनिभां कृत्वा तस्याः क्षिपेत्तयो-दरे । गुलिकां पातयेत्पात्रे प्रतिमां साध्यरूपिणीम् । तादृशाभिमुखो भूत्वा निर्जने निशि साधकः । यावद्गच्छति चित्तञ्च तावद्रूपं जपेन्मनुम् । यावदायाति सन्त्रस्ता मदनालसविग्रहा ॥ ३१ ॥

अथ वशीकरणम्

तत्र चामुण्डामन्त्रः : तारं चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमान-यामुकं स्वाहा ॥ ३२ ॥

ध्यानम् : दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता, खट्वाङ्गाशनिगूढदक्षिणकरा वामेन पाशं शिरः । श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता, चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः ॥ ३३ ॥ लक्षं जप्त्वा दशांशं किंशुककुसुमैर्वह्निमध्ये च देवी । चामुण्डा साधकानां भवति च फलदा नाममात्रेण शीघ्रम् ॥ ३४ ॥

अथ विद्वेषणम्

अन्योन्यसमसंरम्भात्रोषितौ समरे युतौ । तदीयनखरोड्डीन-धूलिमादाय साधकः । धूलिना तेन विद्वेषस्ताडनादभिजायते । परस्परं रिपोर्वैरं मित्रेण सह निश्चितम् । महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेण समा-लिखेत् । ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विद्वेषश्च परस्परम् ॥ ३५ ॥ रक्तेन महिषाश्वेन श्मशानवस्त्रके लिखेत् । यस्य नाम भवेत्तस्य विद्वेषश्च

परस्परम् ॥ ३६ ॥ षट्कोणचक्रमध्ये तु रिपोर्नामसमन्वितम् । मन्त्रन्तु संप्रवक्ष्यामि महाभैरवसंज्ञकम् ॥ ३७ ॥

ॐ नमो महाभैरवाय श्मशानवासिने अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु हूं फट् ।

एतन्मन्त्रं लिखेत्तत्र विद्वेषो जायते ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

अन्ययोगमहं वक्ष्ये दुर्लभं वसुधातले । ज्ञानमात्रेण शत्रूणां विद्वेषो जायते ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुकं विद्वेषय विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ हूं फट् स्वाहा ।

अमुना मन्त्रराजेन होमयेत् प्रयतः सुधीः । वह्निकुण्डे निम्बपत्रेण कटुतैलान्वितेन च । प्रज्वाल्य खादिरं वह्निं श्मशानजं ततः पुनः । दशसाहस्रसंयुक्तं तिलयवाक्षतान्वितम् । भावयन् कालिकां देवीं इन्द्रनीलसमप्रभाम् । व्योमनीलां महाचण्डां सुरासुरविमर्द्दिनीम् । त्रिलोचनां महारावां सर्वाभरणभूषिताम् । कपालकर्त्तृकाहस्तां चन्द्रसूर्योपरि स्थिताम् । शरजालगतां चैव प्रेतभैरववेष्टिताम् । वसन्तीं पितृकान्तारे सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् । होमयेद्विविधैः पुष्पैर्बलिच्छागोपहारकैः । पूजयित्वा महेशानीं भक्तियुक्तेन चेतसा । तद्भस्म च समादाय धारयेदभिमन्त्रितम् । भस्मना तेन यं हन्याद्विद्वेषस्तद्भवेन्नृणाम् ॥ ४० ॥ वह्निः शीतलतां याति पतेद्भूमौ यदा रविः । यदा शुष्यति पाथोधिश्चन्द्रमाः पतते यदि । यदा मिथ्या भवेद्देवि योगराजः सुदुर्लभः ॥ ४१ ॥ षट्कोणं चक्रराजन्तु शत्रूणां नामटङ्कितम् । पूर्वद्रव्येण विद्वेषं कारयेदथ साधकः ॥ ४२ ॥

ॐ द्रां विद्वेषिणि अमुकामुकयोः परस्परं विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा । यन्त्रबाह्ये लिखेन्मन्त्रमिमं पूर्वोक्तवस्तुभिः । परस्परं भवेद्द्वेषो योगोऽयं कुब्जिकामते ॥ ४३ ॥

अथा उच्चाटनम् :

उच्चाटनविधिं वक्ष्ये यथोक्तं श्रीमतोत्तरे । निम्बपत्रे लिखेन्नाम महिषाश्वपुरीषकैः । ॐ नमः काकतुण्डि धवलामुखि अमुकमुच्चाटय हूं फट् । एतन्मन्त्रं समभ्यर्च्य लिखित्वा पूर्ववस्तुभिः । निम्बवृक्षस्थितं सर्वं काकालयं हुनेदथ । श्मशानवह्निमानीय धुस्तुरकाष्ठदीपितम् । वह्निं हुत्वा महातैलैरथवा कटुवस्तुभिः । पूर्वोक्तमगुना तस्य पत्रं राजिकटुप्लुतम् । सम्पूज्य धवलामुखीं पञ्चोपचारपूजया । तद्भस्म प्रक्षिपेच्छत्रोर्मन्दिरोपरि मन्त्रवित् । ध्यानयुक्तेन मनसा शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥ ४४ ॥

धूम्रवर्णां महादेवीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम् । जटाजूटसमायुक्तां व्याघ्रचर्मपरिच्छदाम् । कृशाङ्गीमस्थिमालाढ्यकर्त्तृकाढ्यकराम्बुजाम् । कोटराक्षीं सुदंष्ट्राञ्च पातालसन्निभोदराम् । एवंविधं धिया भाव्यं कार्यमुच्चाटनं रिपोः ॥ ४५ ॥ एष योगविधि प्रोक्तो वीरतन्त्रे महेश्वरि । गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ॥ ४६ ॥

तथा : सौरारयोर्दिने ग्राह्यं नरास्थिचतुरंगुलम् । निशारसेन संलिख्य प्रधानभवने क्षिपेत् । सप्ताहाभ्यन्तरे शत्रोरुच्चाटनकरं भवेत् ।

मन्त्रस्तु : हूं अमुकस्य उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा । हूं अमुकं हन हन स्वाहा ॥ ४७ ॥

रिपुमल-रोधनम् :

रिपोर्मलं वृश्चिकञ्च खनित्वा भुवि निक्षिपेत् । म्रियते मलरोधेन उद्धृते च सुखावहम् । मन्त्रस्तु—ॐ स्तम्भिनि अमुकस्य मलं स्तम्भय स्तम्भय हूं फट् ॥ ४८ ॥

अथ अभिचारः :

ॐ विरुद्धे रूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा । इति खड्गमभिमन्त्र्य खड्गमन्त्रांश्च पठित्वा खड्गं सम्पूज्य छागादिकममुकोऽसि इति वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य, रक्तसूत्रेण त्रिधा मुखं बद्धा, वैरिनाम्ना प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम् । विनाशय महादेवि स्फें स्फें खादय खादय इति पठित्वा, बलिशिरसि पुष्पं दत्त्वा, बलिमन्त्रं पठित्वा बलिं सम्पूज्य, अद्याश्विने मासि महानवम्यां अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकशत्रुं नाशय इमं छागं महिषं वा अमुकदैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे । इत्युत्सृज्य आं हूं फट् इति छित्त्वा, मूलं पठित्वा, एतद्रुधिरं दुर्गायै नमः इति रक्तं शिरश्च दत्त्वा, अष्टाङ्गमांसैर्होमं मूलमन्त्रेण कुर्यादिति ॥ ४९ ॥

अथ सुखप्रसवमन्त्रः :

ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा । ॐ मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ता सूर्येण रश्मयः । मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मारीच स्वाहा । एतदन्यतरेणाष्टवारं जलमभिमन्त्र्य पेयम् । ततः सुखप्रसवोभवति ॥ ५० ॥

अथ अदर्शन-प्रकारः :

अर्कशाल्मलिकापासिपट्टपङ्कज-तन्तुभिः । पञ्चभिर्वर्त्तिकाभिश्च नृकपा-

लेषु पञ्चसु। नरतैलेन दीपाः स्युः कज्जलं नृकपालकैः। ग्राहयेत् पञ्च-भिर्यत्नात्पूर्ववच्च शिवालये। पञ्चस्थानीय-जायन्तु एकीकुर्याच्च तं पुनः। मन्त्रयित्वाञ्जयेन्नेत्रे देवैरपि न दृश्यते ॥ ५१ ॥

मन्त्रस्तु : ॐ हूं फट् कालि कालि महाकालि मांसशोणितं खादय खादय देवि मा पश्यतु मानुषेति हूं फट् स्वाहेति मन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्रजप्तेन मन्त्रयेत्। अथ मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्राभिमन्त्रितम् कृत्वा, तत्कज्जलं नेत्रे दत्त्वा, त्रैलोक्यादृश्यो भवति ॥ ५२ ॥

अथ योगिनीसाधनम् :

भूतडामरे : अथातः सम्प्रवक्ष्यामि योगिनीसाधनोत्तमम्। सर्वार्थ-साधनं नाम देहिनां सर्वसिद्धिदम्। अतिगुह्या महाविद्या देवानामपि दुर्लभा ॥ ५३ ॥ यासामभ्यर्चनं कृत्वा यक्षेशोऽभूद्धनाधिपः। तासामाद्यां प्रवक्ष्यामि सुराणां सुन्दरीं प्रिये। अस्या अभ्यर्चनेनैव राजत्वं लभते नरः ॥ ५४ ॥ अथ प्रातः समुत्थाय कृत्वा स्नानादिकं शुभम्। प्रासादश्च समासाद्य कुर्यादाचमनं ततः। प्रणवान्ते सहस्रार हूं फट् दिग्बन्धनञ्चरेत्। प्राणायामं ततः कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। षडङ्गं मायया कुर्यात्पद्म-मष्टदलं लिखेत्। तस्मिन् पद्मे महामन्त्रं जीवन्यासं समाचयेत्। पीठ-देवीः समावाह्य ध्यायेद्देवीं जगत्प्रियाम्। पूर्णचन्द्रनिभां गौरीं विचित्रा-म्बरधारिणीम्। पीनोत्तुङ्गकुचां वामां सर्वेषामभयप्रदाम्। इति ध्यात्वा च मूलेन दद्यात्पाद्यादिकं शुभम्। पुनर्धूपं निवेद्यैव नैवेद्यं मूलमन्त्रतः। गन्धचन्दनताम्बूलं सकर्पूरं सुशोभनम्। प्रणवान्ते भुवनेशीमागच्छ सुरसुन्दरि। वह्नेर्भार्या जपेन्मन्त्रं त्रिसन्ध्यञ्च दिने दिने। सहस्रैकप्रमाणेन ध्यात्वा देवीं सदा बुधः। मासान्ते दिवसं व्याप्य बलिपूजां सुशोभनाम्। कृत्वा च प्रजपेन्मन्त्रं निशीथे याति सुन्दरी ॥ ५५ ॥ सुदृढं साधकं मत्वा याति सा साधकालये। सुप्रसन्ना साधकाग्रे सदा स्मेरमुखी ततः। दृष्ट्वा देवीं साधकेन्द्रो दद्यात्पाद्यादिकं शुभम्। सुचन्दनं सुमनसो दत्त्वा-भिलषितं वदेत् ॥ ५६ ॥ मातरं भगिनीं वापि भार्यां वा भक्तिभावतः। यदि माता सदा वित्तं द्रव्यञ्च सुमनोहरम्। भूपतित्वं प्रार्थितं यत्तद्ददाति दिने दिने ॥५७॥ पुत्रवत्पालित लोके सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्। स्वसा ददाति द्रव्यञ्च दिव्यवस्त्रं तथैव च। दिव्यकन्यां समानीय नागकन्यां दिने दिने। यद्यत्प्रार्थयते सर्वं सा ददाति दिने दिने। भ्रातृ-वत्पालितं लोके कामनाभिर्मनोगतैः ॥ ५८ ॥ भार्या स्याद्यदि सा देवी

साधकस्य मनोहरा। राजेन्द्रः सर्वराजानां संसारे साधकोत्तमः। यद्यद्भवति भूतश्च भविष्यतीति यत्पुनः। तत्सर्वं साधकेन्द्राय निवेदयति निश्चितम् ॥ ५६ ॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिः सर्वत्र निश्चितम्। यद्यद्ददाति सा देवी कथितुं नैव शक्यते। तथा सार्द्धञ्च सम्भोगं करोति साधकोत्तमः। अन्यस्त्रीगमनं त्यक्त्वा अन्यथा नश्यति ध्रुवम् ॥ ६० ॥

ततोऽन्यत्साधनं वक्ष्ये निर्मितं ब्रह्मणा पुरा। नदीतीरं समासाद्य कुर्यात्स्नानादिकं ततः। पूर्ववत्सकलकार्यं चन्दनैर्मण्डलं लिखेत् ॥६१॥ स्वमन्त्रं तत्र संलिख्यावाह्य ध्यायेन्मनोहराम्। कुरङ्गनेत्रां शरविन्दुवक्त्रां विम्बाधरां चन्दनगन्धलिप्ताम्। चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदा कामदुघां विचित्राम्। एवं ध्यात्वा जपेद्देवीमगुरुधूपदीपकैः। गन्धं पुष्परसञ्चैव ताम्बूलादींश्च मूलतः ॥ ६२ ॥ तारं माया गच्छ मनोहरे पावकवल्लभा। कृत्वायुतं प्रतिदिनं जपेन्मन्त्रं प्रसन्नधीः। मासान्ते व्याप्य दिवसं कुर्याच्च जपमुत्तमम्। आनिशीथं जपेन्मन्त्रं ज्ञात्वा च साधकं दृढम्। गत्वा च साधकाभ्यासे सुप्रसन्ना मनोहरा। वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ६३ ॥ साधकेन्द्रोऽपि तां ध्यात्वा पाद्याद्यैरर्चयेन्मुदा। प्राणायामं षडङ्गञ्च मायया च समाचरेत् ॥ ६४ ॥ सद्योमांसं बलिं दत्त्वा पूजयेच्च समाहितः। चन्दनोदकपुष्पेण फलेन च मनोहराम्। ततोऽर्चिता प्रसन्ना स पुष्णाति प्रार्थितञ्च यत् ॥ ६५ ॥ स्वर्णशतं साधकाय ददाति सा दिने-दिने। स चाशेषं व्ययं कुर्यात्स्थिते ततुन दास्यति ॥ ६६ ॥ अन्यस्त्रीगमनन्तस्य न भवेत्सत्यमीरितम्। अव्याहतगतिस्तस्य भवतीति न संशयः ॥ ६७ ॥ इयं ते कथिता विद्या सुगोप्या या सुरासुरैः। तव स्नेहेन भक्त्या च बद्धोऽहं परमेश्वरि ॥ ६८ ॥

ततोऽन्यात्साधनं वक्ष्ये शृणुष्वैकमनाः प्रिये। गत्वा वटतलं देवीं पूजयेत्साधकोत्तमः। प्राणायामं षडङ्गञ्च माययाथ समाचरेत् ॥६९॥ सद्योमांसं बलिं दत्त्वा पूजयेत्तां समाहितः। अर्घ्यमुच्छिष्टरक्तेन दद्यात्तस्यै दिने-दिने ॥७०॥ प्रचण्डवदनां देवीं पक्वविम्बाधरं प्रिये। रक्ताम्बरधरां बालां सर्वकामप्रदां शुभाम्। एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतं साधकोत्तमः। सप्तदिनं समभ्यर्च्य चाष्टमे विधिवच्चरेत्। कायेन मनसा वाचा पूजयेच्च दिने-दिने ॥ ७१ ॥ तारं माया तथा कूर्चं रक्ष कर्मणि तद्बहिः। आगच्छ कनकान्ते तु वति स्वाहा महामनुः। आनिशीथं जपेन्मन्त्रं बलिं दत्त्वा मनोहरम् ॥ ७२ ॥ साधकेन्द्रं दृढं मत्वा आयाति साधकालये। साधकेन्द्रोऽपि तां

दृष्ट्वा दद्यादर्घ्यादिकं ततः ॥ ७३ ॥ ततः सपरिवारेण भार्या स्यात् कामभोजनैः । वस्त्रभूषादिकं त्यक्त्वा याति सा निजमन्दिरम् ॥ ७४ ॥ एवं भार्या भवेन्नित्यं साधकाज्ञानुरूपतः । आत्मभार्यां परित्यज्य भजेत्ताञ्च विचक्षणः ॥ ७५ ॥

कामेश्वरी : ततः कामेश्वरीं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् । प्रणवं भुवनेशानीं चागच्छ कामेश्वरि ततः । वह्निभार्या महामन्त्रः साधकानां सुखावहः ॥ ७६ ॥ पूर्ववत्सकलं कृत्वा भूर्जपत्रे सुशोभने गोरोचनाभिः प्रतिमां विनिर्माय स्वलंकृताम् । शय्यामारुह्य प्रजपेन्मन्त्रमेकमनास्ततः । सहस्रैकप्रमाणेन मासमेकं जपेद्बुधः । घृतेन मधुना दीपं दद्याच्च सुसमाहितः । कामेश्वरीं शशाङ्कास्यां खेलत्खञ्जनलोचनाम् । सदा लोलगतिं कान्तां कुसुमास्त्रशिलीमुखीम् । एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं निशीथे याति सा तदा ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वा तु साधकश्रेष्ठमाज्ञां देहीति तं वदेत् । स्त्रीभावेन तदा तस्यै दद्यात्पाद्यादिकं ततः ॥ ७८ ॥ सुप्रसन्ना मुदा देवी साधकं तोषयेत्सदा । अन्नाद्यै रतिभोगेन पतिवत्पालयेत सदा ॥ ७९ ॥ नीत्वा रात्रौ सुखैश्वर्यं दत्त्वा च विपुलं धनम् । वस्त्रालङ्कारद्रव्यादीन्प्रभाते याति निश्चितम् । एवं प्रतिदिनम् तस्य सिद्धिः स्यात्कामरूपतः ॥ ८० ॥

रतिसुन्दरी : ततः पटे विनिर्माय पुत्तलीं ध्यानरूपतः सुवर्णवर्णां गौराङ्गीं सर्वालंङ्कारभूषिताम् । नूपुराङ्गदहाराढ्यां रम्याञ्च पुष्करेक्षणाम् । एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं दत्त्वा च पाद्यमुत्तमम् । सचन्दनेन पुष्पेण जातीपुष्पेण साधकः । गुग्गुलु-धूपदीपौ च दद्यान्मूलेन साधकः ।

मन्त्रन्तु : तारं माया तथागच्छ रतिसुन्दरी पदं ततः । वह्निजायाष्टसहस्रं जपेन्मन्त्रं दिने-दिने ॥ ८१ ॥ मासान्ते दिवसं व्याप्य कुर्यात् पूजादिकं शुभम् । घृतदीपं तथा गन्धं पुष्पताम्बूलमेव च । तावन्मन्त्रं जपेद्विद्वान् यावदायाति सुन्दरी । ज्ञात्वा दृढं साधकेन्द्रं निशीथे याति निश्चितम् ॥ ८२ ॥ ततस्तामर्चयेद्भक्त्या जातीकुसुममालया । सुसन्तुष्टा साधकेन्द्रं तोषयेद्रतिभोजनैः ॥ ८३ ॥ भूत्वा भार्या च सा तस्मै ददाति वाञ्छितं वरम् । भूषादिकम् परित्यज्य प्रभाते याति सा ध्रुवम् । साधकाज्ञानुरूपेण प्रयाति सा दिने-दिने । निर्जने प्रान्तरे देवि सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः । त्यक्त्वा भार्यां भजेताञ्च अन्यथा नश्यति ध्रुवम् ॥ ८४ ॥

पद्मिनी : ततोऽन्यत्साधनं वक्ष्ये स्वगृहे शिवसन्निधौ । वेदाद्यं

भुवनेशीश्चागच्छ पद्मिनि वल्लभा। पावकस्य महामन्त्रं पूर्ववत्सकलं ततः। मण्डलं चन्दनैः कृत्वा मूलमन्त्रं लिखेत्ततः। पद्मासनां श्यामवर्णां पीनोत्तुङ्गपयोधराम्। कोमलाङ्गीं स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणाम्। एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने। मासान्ते पूर्णिमां प्राप्य विधिवत्पूजयेत्सदा। आनिशीथं जपेन्मन्त्रं दृढाभ्यासेन साधकः। सर्वत्र कुशलं ज्ञात्वा याति सा साधकालयम् ॥ ७५ ॥ भूत्वा भार्या साधकं हि साधयेद्विविधैरपि। भोज्यैर्दिव्यैर्भूषणाद्यैः पद्मिनी सा दिने दिने। पतिवत्पालितं लोके नित्यं स्वर्गं च सर्वदा। त्यक्त्वा भार्यां भजेत्ताञ्च साधकेन्द्रः सदा प्रिये ॥ ८६ ॥

नटिनी : ततो वक्ष्ये महाविद्यां विश्वामित्रेण धीमता। ज्ञात्वा यां साधिता विद्या बला चातिबला प्रिये ॥ ८७ ॥

मन्त्रस्तु : प्रणवान्ते महामाया नटिनि पावकप्रिया। महाविद्येति कथितां गोपनीया प्रयत्नतः ॥ ८८ ॥ अशोकस्य तटं गत्वा स्नानं पूर्ववदाचरेत्। मूलमन्त्रेण सकलं कुर्याच्च सुसमाहितः ॥ ८९ ॥ त्रैलोक्यमोहिनीं गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम्। विचित्रालंकृतां रम्यां नर्त्तकीवेशधारिणीम्। एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने ॥९०॥ मांसोपहारैः सम्पूज्य धूपदीपौ निवेदयेत्। गन्धचन्दनताम्बूलं दद्यात्तस्यै सदा बुधः ॥ ९१ ॥ मासमेकन्तु तां भक्त्या पूजयेत्साधकोत्तमः। मासान्ते दिवसं प्राप्य कुर्याच्च पूजनं महत्। अर्द्धरात्रौ भयं दत्त्वा किञ्चित् साधकसत्तमे। सुदृढं साधकं मत्वा याति सा साधकालयम् ॥ ९२ ॥ विद्याभिः सकलाभिश्च किञ्चित्स्मेरमुखी ततः। वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते। तत्श्रुत्वा साधकश्रेष्ठो भावयेन्मनसा धिया। मातरं भगिनीं वापि भार्यां वा प्रीतिभावतः। कृत्वा सन्तोषयेद्भक्त्या नटिनी ततत्करोत्यलम् ॥ ९३ ॥ माता स्याद्यदि सा देवी पुत्रवत्पालितं मुदा। स्वर्णशतं सिद्धिद्रव्यं ददाति सा दिने दिने ॥ ९४ ॥ भगिनी यदि सा कन्यां देवस्य नागकन्यकाम्। राजकन्यां समानीय ददाति सा दिने दिने। अतीतानागतां वार्त्तां सर्वां जानाति साधकः ॥ ९५ ॥ अन्नाद्यैरुपचारैस्तु ददाति कामभोजनम्। स्वर्णशतं सदा तस्मै ददाति सा ध्रुवं प्रिये। यद्यद्वाञ्छति तत्सर्वं ददाति नात्र संशयः ॥ ९६ ॥

अथ मधुमती : महाविद्यां प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय। कुंकुमेन समालिख्य भूर्जपत्रे स्त्रियं मुदा। ततोऽष्टदलमालिख्य कुर्यान्न्यासादिकं

प्रिये। जीवन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्तत्र प्रसन्नधीः॥ ९७॥ शुद्धस्फटिक-सङ्काशां नानालङ्कारभूषिताम्। मञ्जीरहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम्। एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रन्तु दिने दिने॥ ९८॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य पूजयेत् कुसुमादिभिः। धूपदीपविधानैश्च त्रिसन्ध्यं पूजयेन्मुदा॥ ९९॥ पूर्णिमां प्राप्य गन्धाद्यैः पूजयेत्साधकोत्तमः। घृतदीपं तथा धूपं नैवेद्यञ्च मनोरमम्। रात्रौ च दिवसे जाप्यं कुर्याच्च सुसमाहितः। प्रभातसमये याति साधकस्यान्तिकं ध्रुवम्॥ १००॥ प्रसन्नवदना भूत्वा तोषयेद्रति-भोजनैः। देवदानवगन्धर्वविद्याधृग्यक्षरक्षसाम्। कन्याभी रत्नभूषाभिः साधकेन्द्रं मुहुर्मुहुः। चर्व्यं चोष्यादिकं द्रव्यं दिव्यं ददाति सा ध्रुवम्॥ १॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले यद्वस्तु विद्यते प्रिये। आनीय दीयते सत्यं साधकाशानुरूपतः॥ २॥ स्वर्णशतं सदा तस्मै ददाति सा दिने दिने। साधकाय वरं दत्वा याति सा निजमन्दिरम्॥ ३॥ तस्या वरप्रसादेन चिरजीवी निरामयः। सर्वज्ञः सुन्दरः श्रीमान् सर्वगो भवति ध्रुवम्। रेमे सार्द्धं तया देवी साधकेन्द्रो दिने दिने॥ ४॥

मन्त्रस्तु : तारं माया तथा गच्छानुरागिणि मैथुन प्रिये। वह्निभार्या मनुः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः॥ ५॥ एषा मधुमती तु स्यात्सर्वसिद्धि-प्रदा प्रिये। गुह्याद्गुह्य ह्येषा तव स्नेहात्प्रकीर्तिता॥ ६॥

योगिनी साधनस्य कालपात्रस्थानादिनिर्णयः।

देव्युवाच : श्रुतञ्च साधनं पुण्यं यक्षिणीनां सुखप्रदम्। कस्मिन् काले प्रकर्त्तव्यं विधिना केन वा प्रभो। अथाधिकारिणः के वा समासेन वद प्रभो॥ ७॥

ईश्वर उवाच : वसन्ते साधयेद्धीमान् हविष्याशी जितेन्द्रियः। सदा ध्यानपरो भूत्वा तद्दर्शनमहोत्सुकः॥ ८॥ उज्जटे प्रान्तरे वापि कामरूपे विशेषतः। स्थानेष्वेकतमं प्राप्य साधयेत्सुसमाहितः। अनेन विधिना साक्षाद्भविष्यति न संशयः॥ ९॥ देव्याश्च सेवकाः सर्वे परं चात्राधि-कारिणः। तारकब्रह्मणो भृत्यं विनाप्यत्राधिकारिणः। इति योगिनी-साधन प्रकरणम्॥ १०॥

अथ पूजाधारनिरूपणम् :

तत्र नारदीये : आपोऽग्निर्हृदयं चक्रं विष्णोः क्षेत्रसमुद्भवम्। यन्त्रञ्च प्रतिमास्थानमर्चने सर्वदा हरेः॥ ११॥

गौतमीये : शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमामण्डलेषु वा। नित्यं पूजा

हरेः कार्या न तु केवलभूतले ॥ १२ ॥ शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटि-जन्माघनाशनम्। किं पुनश्चार्चनं तत्र हरिसान्निध्यकारणम्॥ १३ ॥ बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि कृष्णां शिलां लभेत्। गोष्पदेनैव चिह्नेन तेन जन्म समाप्यते। एतेन विष्णुपूजायां शिलाया अपि प्राधान्यम्। मण्डला-दीनान्तु सर्वसाधारणत्वात्॥ १४ ॥

योगिनीतन्त्रे : लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं पुस्तकस्थां तथैव च। मण्डलस्थां महामायां यन्त्रस्थां प्रतिमासु च। जलस्थां वा शिलास्थां वा पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥ १५ ॥

कौलावलीये : यत्रापराजितापुष्पं जवापुष्पञ्च विद्यते। करवीरे शुक्लरक्ते द्रोणं वा यत्र तिष्ठति। तत्र देवी वसेन्नित्यं तद्यन्त्रे चण्डिका-र्चनम्। एतत्सर्वं यन्त्राभावे ॥ १६ ॥

तथा च : यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रं वा देवतेति च। देहात्मनो यथा भेदो यन्त्रदेवतयोस्तथा। तथादौ विलिखेद्यन्त्रं देवतायाश्च विग्रहम् ॥ १७ ॥ कामक्रोधादि दोषोत्थं सर्वदुखःनियन्त्रणात्। यन्त्रमित्याहुरे-तस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः ॥ १८ ॥ विना यन्त्रेण देवता न प्रसीदति। दुःखनियन्त्रणाद्यन्त्रमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः। इति यन्त्रस्य पूजयां प्राधान्य-मिति ॥ १९ ॥

अथ यन्त्रसंस्कारः :

वामकेश्वरतन्त्रे : भैरव्युवाच। चक्रभेदं महादेव त्वत्प्रसादान्मया श्रुतम्। इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाकर्मनिर्णयम् ॥ २० ॥

श्रीशङ्कर उवाच। शृणु देवि महाभागे जगत्कारिणी कौलिनि। तस्योद्यापनकर्माङ्गं सर्ववर्णविनिर्णयम् ॥ २१ ॥ स्नात्वा संकल्पयेन्मन्त्री गुरोरर्चनमाचरेत्। पञ्चगव्यं ततः कृत्वा शिवमन्त्रेण मन्त्रितम्। तत्र चक्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन समाकुलम्। तदुद्धृत्य ततश्चक्रं स्थापयेत्स्वर्णपात्रके। पञ्चामृतेन दुग्धेन शीतलेन जलेन च। चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुंकुमेन च। पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात्। तोयधूपान्तरैः कुर्यात्पञ्चामृत-विधिं बुधः ॥ २२ ॥ हाटकैः कलसैर्दन्तीमष्टाभिर्वारिपूरितैः। कषायजल-सम्पूर्णैः कारयेत्स्नानमुत्तमम् ॥ २३ ॥ स्नानं समाप्य तां देवीं स्थापयेत् स्वर्णपीठके। यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्। स्पृष्ट्वा यन्त्रं कुशाग्रेण गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्। अष्टोत्तरशतं देवि देवताभावसिद्धये ॥ २४ ॥ आत्मशुद्धिं ततः कृत्वा षडङ्गैर्देवतां

यजेत् । तत्रावाह्य यजेद्देवीं जीवन्यासं समाचरेत् । उपचारैः षोडशभिर्महामुद्रादिभिः सदा । फलताम्बूलनैवेद्यैर्देवीं तत्र समर्चयेत् ॥ २५ ॥ पट्टसूत्रादिकं दद्याद्वस्त्रालङ्कारमेव च । मुद्‌गरं चामरं घण्टां यथायोग्यं महेश्वरि । सर्वमेतत्प्रयत्नेन दद्यादात्महिते रतः ॥ २६ ॥ ततो जपेत् सहस्रन्तु सकलेप्सितसिद्धये । बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेद्यन्त्रराजकम् ॥ २७ ॥ अष्टोत्तरशतं हुत्वा सम्पाताज्यं विनिक्षिपेत् । होमकर्मण्यशक्तश्चेद्द्विगुणं जपमाचरेत् ॥ २८ ॥ धेनुमेकां समानीय स्वर्णशृङ्गाद्यलंकृताम् । गुरवे दक्षिणां दद्यात्ततो देव्या विसर्जनम् ॥ २९ ॥

तन्त्रप्रदीपे : फले भित्तौ तथा पट्टे स्थापयेद्यन्त्रमीश्वरि । धनधान्यपुत्र-पौत्र-यश-आयूंषि मुञ्चति ॥ ३० ॥

अन्यत्रापि : न भित्तौ स्थापयेद्यन्त्रं न पटे फलके तथा । यस्य वै ममता देवि पुत्र-पौत्रगृहादिषु ॥ ३१ ॥

अथ यन्त्रसंस्कार प्रयोगः :

कृतनित्यक्रियः स्वास्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात् : अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवतायाः प्रीत्यर्थं यन्त्रसंस्कारमहं करिष्ये इति संकल्प्य पञ्चगव्यमानीय ह्रौमिति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य प्रणवेन तत्र यन्त्रं निक्षिपेत् । तत उत्तोल्य स्वर्णादिपात्रे स्थापयेत् । ततः शीतलजल-चन्दन-गन्धकस्तूरीकुंकुमैः । स्नापयित्वा पञ्चामृतमानीय ह्रौमिति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य पूर्ववत्शोधयित्वा स्नापयेत् ॥ ३२ ॥

तत्र क्रमः : प्रथमं क्षीरेण स्नापयित्वा पुनर्जलेन स्नापयित्वा धूपं दद्यात् । एवं दध्ना घृतेन मधुना शर्करया च । ततो दुग्धेन शीतलजलेन (सुगन्धेन चन्दनेन कस्तूरीकुंकुमेन च) स्नापयेत् । ततो हाटकैरष्टभिः कलसैः कुंकुम-रोचना-मिश्रितैस्तोयैः स्नापयेत् । सर्वत्र स्नानं मूलमन्त्रेण ॥ ३३ ॥ ततो यन्त्रमुत्तोल्य पात्रान्तरे स्थापयित्वा कुशाग्रेण यन्त्रं स्पृष्ट्वा यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात् । इति गायत्र्या चाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ॥ ३४ ॥

विश्वसारतन्त्रे : प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य देवता ब्राह्मणादयः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ऋषयः परिकीर्त्तिताः । ततः ऋग्-यजुः सामानि छन्दांसि च तदाचरेत् । अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः । ऋग्-

यजुः सामानि छन्दांसि चैतन्यं देवता प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः ॥ ३५ ॥

तद्यथा : आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः अमुकदेवताया प्राणा इह प्राणाः, एवं आमित्यादि अमुकदेवताया जीव इह स्थितः, एवं आमित्यादि अमुकदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि, एवं आमित्यादि अमुकदेवताया वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्र-घ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य तत्र देवतामावाह्यषोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् ॥ ३५ क ॥

तथ च भैरवतन्त्रे : मूर्त्ति मूलेन संकल्प्य जीवन्यासं समाचरेत्। मायां पाशाङ्कुशाद्यन्तां यादीन्सप्त सविन्दुकान्। वियत्सत्येन्दुसंयुक्तं तदन्ते हंस उच्चरेत्। अस्याः प्राणा इह प्राणाः पुनर्जीव इह स्थितः। पुनरुच्चार्य्य तस्या वै सर्वेन्द्रियाणि पुनर्वदेत्। तस्याश्च वाङ्मनश्चक्षुः-श्रोत्रघ्राणपदान्यपि। प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम्। इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य देवीमावाह्येत्ततः ॥ ३६ ॥ ततः षडङ्गानि पूजयेत्। ततः पट्टसूत्रादिकं दत्त्वा अष्टोत्तरसहस्रं जप्त्वा शक्तश्चेद्बलिं दद्यात्। ततोऽष्टोत्तरशतं हुत्वा प्रत्याहुतिसम्पातं दद्यात्। होमाभावे द्विगुणजपः कार्यः। ततो दक्षिणां दत्त्वा अच्छिद्रावधारणं कुर्यात् ॥ ३७ ॥ इति यन्त्रसंस्कारविधिः :

इति महामहोपाध्याय श्रीकृष्णानन्द भट्टाचार्यविरचिते तन्त्रसारे तृतीयः परिच्छेदः।

चतुर्थः परिच्छेदः

अथ प्रकीर्णकम्।

तत्र पूजायां दिग्विधानम्।

विष्णुविषये नारदीये : स्नातः शुक्लाम्बरधरश्चाचान्तः पूर्वदिङ्मुखः। शुद्धासनं समासाद्य भूतोत्सारणमाचरेत् ॥ १ ॥

अन्यत्र तु निबन्धे : उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः। बद्धपद्मासनो मन्त्री समाहितजितेन्द्रियः ॥ २ ॥

सारसमुच्चयेऽपि : प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथ वापीति। रात्रौ पूजने नायं नियमः ॥ ३ ॥

तथा च स्मृतिः : रात्रावुदङ्मुखः कुर्यात् देवकार्यं सदैव हि। शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ॥ ४ ॥

अथ पूजायां विहितनिषिद्धानि :

यन्त्रतन्त्रप्रकाशे : लिङ्गद्वयं तथा नार्च्यं गणेशद्वयमेव च। शक्तिद्वयं तथा सूर्यद्वयमेकत्र नार्चयेत् ॥ ५ ॥ द्वे चक्रे द्वारकायान्तु शालग्रामशिलाद्वयम्। एतेषामर्चनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्गृही ॥ ६ ॥

लैङ्गे : एकीकृत्य च लिङ्गानि दशपञ्चशतानि च। प्रत्येकेनाथवा देवि विल्वपत्रैः प्रपूजयेत् ॥ ७ ॥ एकं पाशुपतं लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम्। शालग्रामशिलामेकां गृहस्थोऽपि प्रपूजयेत् ॥ ८ ॥

यामले : नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या विनायकम्। न दूर्वया यजेद्दुर्गां बिल्वपत्रैर्दिवाकरम् ॥ ९ ॥ उन्मत्तमर्कपुष्पञ्च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः ॥ १० ॥

गौतमीये : न रक्तचन्दनं जातु गृह्णीयाद्रक्तपुष्पकम्। विल्वपत्रैस्तत्प्रसूनैर्नार्चयेद्देवकीसुतम् ॥ ११ ॥

यत्तु तत्रैव : कमले करवीरे द्वे तुलस्यौ जातिकेतके। नागकेशरपावन्ती कह्लारं चम्पकोत्पले। नान्द्यावर्त्तञ्च यूथी च मल्लिका नवमल्लिका। कुन्दं मन्दारकञ्चैव सौगन्धिकञ्च केशरम्। कुरुण्टाशोकसर्जानि बिल्वञ्च मुनिपुष्पकम्। पत्रमामलकं शुद्धं कर्णिकारं पलाशजम्। एतान्यन्यानि

पुष्पाणि यथालाभं समर्चयेत्। इति यद्विल्वविधानं तद्विहितपुष्पाभावे ॥ १२ ॥

तन्त्रान्तरे : देवीनामर्क-मन्दारावादित्ये तगरं तथा। गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्पमतिप्रियम्। शिवे कुन्दं मदन्तीश्च यूथीं बन्धूककेतके। रक्तां जवां त्रिसन्ध्यो द्वे मालतीं केतकीन्तथा। घुसृणं कुमुदं रक्तं हयारिश्च विसर्जयेत् ॥ १३ ॥

तथा : उग्रगन्धमगन्धश्च कृमिकेशादिदूषितम्। वासोभिः संभृतं नीतं मतिमान्नार्चयेच्छिवे ॥ १४ ॥ कलिकाभिस्तथा नार्च्यं विना चम्पकपद्मकैः। शुष्कैश्च नार्चयेद्विष्णुं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि। स्नात्वानीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः। स्वयं विकसितैः पुष्पैः स्वयश्च पतितै-र्भुवि। वर्जयेद्बृहतीपुष्पमगन्धश्च विशेषतः। स्वयं विकसितैरिति पुरुषेण स्वयं विकासितैरित्यर्थः ॥ १५ ॥ त्रिपत्रन्यूनकुसुमैर्नार्चयेत्तु कदाचन। भूगतश्चाङ्गसंस्पृष्टं केशकीटादिदूषितम्। कुमुदं पाटलश्चैव शिरीषं परिवर्जयेत्। भूगतं वर्जयेत्पुष्पं शेफालीं वकुलं विना ॥ १६ ॥

तथा : बिल्वस्य खादिरस्यैव तथा धात्रीदलस्य च। तमालस्य च पद्मस्य छिन्नभिन्ने न दूष्यति ॥ १७ ॥

गौतमीये : मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषितम्। पर्युषितानि पुष्पानि वर्जयेद्देवतार्चने। तिष्ठेद्दिनद्वयं शुद्धं पद्ममामलकं तथा। तुलसी सर्वदा शुद्धा तथा बिल्वदलानि च। दिनैकं करवीराणि योग्यानि च तपोधन ॥ १८ ॥

ज्ञानार्णवे : पुष्पैः पर्य्युषितैर्देवि, नार्चयेत्स्वर्णजैरपि। निर्माल्यभूतैः कुसुमैरुच्छिष्टैः परमेश्वरि ॥ १९ ॥

त्रिपुरामधिकृत्य वाराहीये : पलाशकाशकुसुमैर्नार्चयेद्दूरतस्त्यजेत्। धात्रीतमालजैः पत्रैस्तुलसीद्विसयैस्तथा। पूजनात्पातको तु स्याल्लग्ने-श्चापि श्रियं हरेत्। त्रिपुरापूजने वर्ज्या तुलसी सर्वदा बुधैः। तुलसी-घ्राणमात्रेण क्रुद्धा भवति सुन्दरी ॥ २० ॥

कौलावलीये : रक्तमार्घ्यं श्वेतदूर्वा नीलकण्ठंकुरुण्टकम् न दद्यात्तु महादेव्यै यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥ २१ ॥

योगिनीतन्त्रेऽपि : देवीमधिकृत्य : झिण्टीपुष्पेण पीतेन-श्वेतेन तगरेण च। श्वेतोड्रेण च पुष्पेण वर्जयेत्पूजनं सदा। तुलस्यौ द्वे च मन्दार-कह्लारज-तमालजैः। नार्चयेत्तु महादेवीं कुशकाशोद्भवेन च ॥२२॥

तथा सर्वमधिकृत्य : बकुलस्य त्वशोकस्य अर्जुनस्य महेश्वरी। पूजयेद्वृन्तवर्ज्येन सवृन्तेन च वर्जयेत्। विष्णुक्रान्ता जवा नागकेशरं नागवल्लभम्। वन्धूकञ्चव मन्दारं सवृन्तेन समर्चयेत्। न स्पृशेदहस्त-वर्जञ्च भूगतञ्च न संस्पृशेत्। शेफालिबकुले भद्रे भूगतेऽपि समर्चयेत्। मालूरं भूगतं देयं तस्य काष्ठस्य चन्दनम्। बिल्वस्य मूलकं वर्ज्यं कदल्या पत्रकं तथा।

तथा : बिल्वपत्रञ्च माघ्यञ्च तमालामलकीदलम्। कह्लारं तुलसी-ञ्चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम्। एतत्पर्युषितं स्याद्यच्चान्यत्कलिकात्मकम्। नीरजस्य च बिल्वस्य तुलस्या दलमेव च। न दूष्येच्छिन्न-भिन्नञ्च जातीपुष्पञ्च शङ्करि॥ २३॥

तथा नक्षत्रविद्यादौमत्स्यसूक्ते : पुष्पं श्रेष्ठं रक्तकोकं बन्धूकं शतपत्र-कम्। वर्वराद्वितरञ्चैव कर्णिकाद्वयन्तथा। वकमन्दारचूतानि करवीराणि शस्यते। मल्लिकाद्वितयं जाती क्षौमपुष्पं जयन्तिका। बिल्वपत्रं कुरुवकं मुनिपुष्पञ्च केशरम्। वासन्तीद्वितञ्चैव काशपुष्पं मरूवकम्। मदनञ्च लवङ्गञ्च यूथीं शेफालिकान्तथा। सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेद्दलैः। बिल्वैर्मरूवकाद्यैश्च तुलसीदलवर्जितैः॥ २४॥

यद्यपि : तुलसीवर्जिता पूजा न जातु फलदा भवेत्। इति तथापि तन्नियमस्तु न त्रिपुरादौ॥ २५॥

तथा च : सुन्दरी भैरवी-काली-ब्रह्मविघ्न-विवस्वताम्। तुलसी-वर्जिता पूजा सा पूजा विफला भवेत्। इति अविफला सफला इत्यर्थः। तेन भैरव्यादिपूजायां तुलसी सदैव त्याज्या पूर्ववचनात्। इतरासान्तु पूजायां तदसत्त्वे सत्त्वे वा न दोषः॥ २६॥ नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं इति पुष्पाभावेऽतिदेशप्राप्तस्य तण्डुलस्य निषेधपरम्॥ २७॥

तथा हि : पुष्पाभावे जलेनापि दूर्वया तण्डुलेन वा। नित्यं पूजा प्रकर्त्तव्या पुष्पाभावेन सुन्दरि। न त्वर्घ्यादिनिषेधपरम्॥ २८॥

तथा च : गन्ध-पुष्पाक्षत-यव-कुशाग्र-तिलसर्षपैः। सदूर्वैः सर्वदेवा-नामेतदर्घ्यमुदाहृतम्। एवं न दूर्वया यजेद्दुर्गामित्यादि॥ २९॥ विना वै दूर्वया देवि पूजा नास्तीह कर्हिचित्। तस्माद्दूर्वा ग्रहीतव्या सर्वपुष्पमयी शिवे। इति श्रीक्रमीयवाक्यात्॥ ३०॥

तथा च राघवभट्टः : सर्वैः पुष्पैः सदा पूज्या विहिताविहितैरपि। कर्तव्या सर्वदेवानां भक्तियोगोऽत्र कारणम्॥ ३१॥

तथा तन्त्रान्तरे : देवीपूजा सदा कार्या जलजैः स्थलजैरपि। विहितैरविहितैर्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा। इदन्तु विहितपुष्पाभावे अत्यन्त भक्तिविषयम् ॥ ३२ ॥

तथा कालीतन्त्रे : अपामार्गैश्च भृङ्गैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः ॥ ३३ ॥

मुण्डमालातन्त्रे : धुस्तूराशोकबकुलश्वेतकृष्णापराजिता। इत्यादि पुष्पनियमो बोद्धव्यः ॥ ३४ ॥

अथ जपविशेषः :

तत्र सेतुं विना जपस्य व्यर्थत्वात्तन्निरूप्यते ॥ ३५ ॥

तत्र कालिकापुराणे : शास्त्राणां प्रणवः सेतुर्मन्त्राणां प्रणवः स्मृतः। स्रवत्यनोंकृतः पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति। निःसेतुसलिलं यद्वत्क्षणान्निम्नं प्रगच्छति। मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ॥ ३६ ॥ चतुर्दशः स्वरो योऽसौ सेतुरौकारसंज्ञकः। स चानुस्वारनादाभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते ॥ ३७ ॥

अथ पञ्चाङ्गशुद्धिः :

पञ्चाङ्गशुद्धिं बिना पूजाया निष्फलत्वात्तन्निरूप्यते।

तत्र कुलार्णवे : आत्म-स्थान-मन्त्र-द्रव्य-देवशुद्धिस्तु पञ्चमी। यावन्न कुरुते देवि तस्य देवार्चनं कुतः। पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ॥ ३८ ॥ सुस्नातैर्भूतशुद्धया च प्राणायामादिभिस्तथा। षडङ्गाद्यखिलन्यासैरात्मशुद्धिरुदीरिता ॥ ३९ ॥ सम्मार्जनानुलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत् शुभम्। वितान-धूप-दीपादि-पुष्पमाल्यादिशोभितम्। पञ्चवर्णरजोभिश्च स्थानशुद्धिरितीरिता ॥ ४० ॥ ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च। क्रमोत्क्रमाद्द्विरावृत्त्या मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥४१॥ पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य मूलास्त्रैश्च विधानतः। दर्शयेद्धेनुमुद्रादीन् द्रव्यशुद्धिः प्रकीर्त्तिता ॥ ४२ ॥ पीठे देवीं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित्। मूलमन्त्रेण माल्यादीन् धूपादीनुदकेन च। त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देवशुद्धिरितीरिता। पञ्चशुद्धिं विधायेत्थं पश्चात्पूजां समाचरेत् ॥ ४३ ॥

अथमन्त्रसिद्धेरुपायः :

तदुक्तं गौतमीये : सम्यगनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धिर्न जायते। पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ पुनरनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते। पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो न संशयः ॥ ४५ ॥ पुनः सोऽनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते। उपायास्तत्र कर्त्तव्याः

सप्त शंकरभाषिताः ॥ ४६ ॥ भ्रामणं रोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणे। दहनान्तं क्रमात्कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥ ४७ ॥ भ्रामणं वायुबीजेन ग्रथनं क्रमयोगतः । तन्मन्त्रं यन्त्रे त्वालिख्य शिह्लकर्पूरकुंकुमैः। उशीरचन्दनाभ्यान्तु मन्त्रं संग्रथितं लिखेत् ॥ ४८ ॥ क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तल्लिखितं भवेत्। पूजनाज्जपनाद्धोमात्भ्रामितः सिद्धिदो भवेत् ॥ ४९ ॥ भ्रामितो यदि न सिद्धयेद्रोधनं तस्य कारयेत्। सारस्वतेन बीजेन संपुटीकृत्य संजपेत्। एवं रुद्धो भवेत्सिद्धो न चेदेतद्वशीकुरु ॥ ५० ॥ अलक्तं चन्दनं कुष्ठं हरिद्रा मादनं शिला। एतैस्तु मन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने। धार्यं कण्ठे भवेत्सिद्धिः पीडनं वास्य कारयेत् ॥ ५१ ॥ अधोरोत्तरयोगेन पदानि परिजप्य वै। ध्यायेच्च देवता तद्वद्धरोत्तर रूपिणीम्। विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चांघ्रिणा। तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने-दिने। पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत् ॥ ५२ ॥ बालायाः त्रितयं बीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत्। गोक्षीरमधुनालिख्य विद्यांपाणौ विभावयेत्। पोषितोऽयं भवेत् सिद्धो नचेत्कुर्वीत शोषणम् ॥ ३५ ॥ द्वाभ्यान्तु वायुबीजाभ्यां मन्त्रः कुर्याद्-विदर्भितम्। एषा विद्या गले धार्या लिखित्वा वरभस्मना। शोषित-श्चाप्यसिद्धश्चेद्दहनीयोऽग्निबीजतः ॥ ५४ ॥ आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रेष्वेकैकमक्षरम्। आद्यन्तमध-ऊर्ध्वंञ्च योजयेद्दाहकर्मणि। ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत्। कण्ठदेशे ततो मन्त्रः सिद्धः स्याच्छङ्करो-दितम् ॥ ५५ ॥

शिवउवाचः इत्येवं कथितं सम्यक्केवलं तव भक्तितः। एकेनैव कृतार्थः स्याद्बहुभिः किमु सुव्रते ॥५६॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धेस्तु कारणम्। मातृकापुटितं कृत्वा मन्त्रञ्च प्रजपेत् सुधीः। क्रमोत्क्रमाच्छता-वृत्या तदन्ते केवलं मनुम्। एवन्तु प्रत्यहं कुर्यात्यावल्लक्ष समाप्यते। निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ॥ ५७ ॥

अथ सिद्धिलक्षणम् :

मनोरथानामक्लेश : सिद्धिरुत्तम-लक्षणम्। मृत्युनां हरणं तद्वद्देवता-दर्शनन्तथा। प्रयोगोऽस्याक्लेशसिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणं परम् ॥ ५८ ॥ परकायप्रवेशश्च पुरप्रवेशनं तथा। ऊर्ध्वोत्क्रमणमेवं हि चराचरपुरे गतिः। खेचरीमेलनञ्चैव तत्कथाश्रवणादिकम्। भूच्छिद्राणि प्रपश्यत्तु तदुत्तमस्य लक्षणम्। ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्। नृपाणां

तद्गणानाञ्च वशीकरणमुत्तमम् । सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरः सुखी । रोगापहरणं दृष्ट्या विषापहरणन्तथा । पाण्डित्यं लभते मन्त्री चतुर्विधमयत्नतः । वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता । अष्टाङ्गयोगाभ्यासनं भोगेच्छापरिवर्जनम् । सर्वभूतेष्वनुकम्पा सार्वज्ञादिगुणोदयः । इत्यादिगुणसम्पत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम् ॥ ५९ ॥ ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् । नृपाणां तद्गणानाञ्च वात्सल्यं लोकवश्यता । महैश्वर्यं धनित्वञ्च पुत्रदारादिसम्पदः । अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मन्त्रिणां प्रथमभूमिका । सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात् स शिवो नात्र संशयः ॥ ६० ॥

मन्त्राणां दोषाः :

मुण्डमालातन्त्रे शङ्कर उवाच : भुवनेशी महाविद्या देवराजेन वै पुरा । आराधिता महाविद्या वीर्यहीनाभवत्तदा ॥ ६१ ॥ एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्वलीकृता । कामराजाख्यविद्या या विद्या सा पुष्पधन्वना । शरेण पीडिता पूर्वं भुवनेश्याः प्रतिष्ठिता ॥ ६२ ॥ कुमारी या च विद्येयं त्वया शप्ता पतिव्रते । केवलं शिवरूपेण शक्तिरूपेण केवलम् । मया प्रतिष्ठिता विद्या तारा चन्द्रस्वरूपिणी ॥ ६३ ॥

भैरव्यादिविद्यामधिकृत्य : सुप्ता दग्धा कीलिता च सैव संहाररूपिणी । मदोन्मत्ता मूर्च्छिता च हीनवीर्या च स्तम्भिता । छिन्ना रुद्धा च वृद्धा च निर्वीजा शक्तिहीनका ॥ ६४ ॥

तथा विश्वसारे : छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनः पराङ्मुखः उदीरितः । वधिरो नेत्रहीनश्च कीलितः स्तम्भितस्तथा । दग्धः स्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः । भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः । हृतवीर्यश्च हीनश्च प्रध्वस्तो बालकः पुनः । कुमारस्तु युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा । निर्वीजः सिद्धिहीनश्च मन्दः कूटस्तथा पुनः । निरंशकः सत्त्वहीनः केकरो जीवहीनकः । धूमितालिङ्गितौ स्यातां मोहितश्च क्षुधार्त्तकः । अतिदृप्तोऽङ्गहीनः स्यादतिक्रुद्धः समीरितः । अतिकूरश्च सव्रीडः शान्तमानस एव च । स्थानभ्रष्टश्च विकलो निःस्नेहः परिकीर्त्तित. । अतिवृद्धः पीडितश्च वक्ष्याम्येषाञ्च लक्षणम् ॥ ६५ ॥

मनोर्यस्यादिमध्यान्तेष्वानिलं बीजमुच्यते । संयुक्तं वा वियुक्तं वा स्वराक्रान्तं त्रिधा पुनः । चतुर्द्धा पञ्चधा वापि स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः ॥ ६६ ॥ आदिमध्यावसाने तु भूबीजद्वयलाञ्छितः । रुद्धमन्त्रः स विज्ञेयो

भूक्तिमुक्तिविवर्जितः ॥ ६७ ॥ मायात्रितत्त्वश्रीबीजरावहीनश्च यो मनुः । शक्तिहीनः स कथितो यस्य मध्ये न वर्त्तते ॥ ६८ ॥ कामबीजं मुखे माया शिरस्यंकुशमेव च । असौ पराङ्मुखः प्रोक्तो हकारो विन्दुसंयुतः ॥ ६९ ॥ आद्यन्तमध्येष्विन्दुर्वा स भवेद्बधिरः स्मृतः । पञ्चवर्णो मनुर्यः स्याद्रेफार्कन्दुविवर्जितः । नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःख शोकामयप्रदः ॥७०॥ आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासादवाग्भवौ । हकारो विन्दुमाञ्जीवो रावश्चापि चतुष्फलः । माया नमामि च पदं नास्ति यस्मिन् स कीलितः ॥ १७ ॥ एकं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रपुरन्दरौ । न विद्येते स मन्त्रस्तु स्तम्भितः सिद्धिवर्जितः ॥ ७२ ॥ वह्निवायुसमायुक्तौ यस्य मन्त्रस्य मूर्ध्नि । सप्तधा दृश्यते तन्तु दग्धमन्त्रं प्रचक्षते ॥ ७३ ॥ अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिःषड्भिरष्टभिर्दृश्यतोऽक्षरैः । स्रस्तः स कथितो मन्त्रः सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥ ७४ ॥ यस्य मुखे नास्ति माया प्रणवो वा विधानतः । शिवो वा शक्तिरथवा भीताख्यः स प्रकीर्त्तितः ॥ ७५ ॥ आदौ मध्ये तथा चान्ते यस्य मार्णचतुष्टयम् । स एव मलिनो मन्त्रः सर्वविघ्नसमन्वितः ॥ ७६ ॥ यस्य मध्ये दकारो वा कवचं मूर्ध्नि द्विधा । अस्त्रं तिष्ठति मन्त्रः स तिरस्कृत उदाहृतः ॥ ७७ ॥ द्योद्वयं हृदये शीर्षे वषट् वौषट् च मध्यतः । स एव भेदितो मन्त्रः सर्वशास्त्रविवर्जितः ॥ ७८ ॥ त्रिवर्णो हंसहीनो यः सुषुप्त उदाहृतः ॥ ७९ ॥ मन्त्रो वाप्यथवा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरः । फट्कारपञ्चकादिर्यो मदोन्मत्त उदाहृतः । तद्वदस्त्रं स्थितं मध्ये यस्य मन्त्रः स मूर्च्छितः ॥ ८० ॥ विरामेऽङ्गस्य ये मन्त्रो हृतवीर्यं स उच्यते ॥ ८१ ॥ आदौ मध्ये तथा चान्ते चतुरस्त्रयुतो मनुः । ज्ञातव्यो भीम इत्येव यः स्यादष्टादशाक्षरः ॥ ८२ ॥ एकोनविंशत्यर्णो वा यो मन्त्रस्तारसंयुतः । हृल्लेखांकुशबीजाढ्यः प्रध्वस्तस्तं प्रचक्षते ॥ ८३ ॥ सप्तवर्णः स्मृतो बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः । षोडशार्णो युवा प्रौढश्चत्वारिंशल्लिपिर्मनुः ॥ ८४ ॥ त्रिंशदर्णश्चतुःषष्टिवर्णो मन्त्रः शताक्षरः । चतुःशताक्षरश्चपि वृद्धः स परिकीर्त्तितः ॥ ८५ ॥ नवाक्षरो ध्रुवयुतो मनुर्निस्त्रिंश ईरितः । यस्यावसाने हृदयं शिरोमन्त्रो च मध्यतः । शिखा वर्म च न स्यातां वोषट् फट्कार एव वा । शिवशक्त्यर्णहीनो वा स निर्बीज उदाहृतः ॥ ८६ ॥ एषु स्थानेषु फट्कारः प्रौढा यस्मिन्प्रदृश्यते । स मन्त्रः सिद्धिहीनः स्यात्मन्दः पंक्त्यक्षरो मनुः ॥ ८७ ॥ कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवोक्तो निरंशकः । द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्याच्चतुर्वर्णस्तु केकरः ॥ ८८ ॥ षडक्षरो जीवहीनः सार्द्धसप्ताक्षरो मनुः । सार्द्धद्वादशवर्णोऽपि

धूमितः स तु निन्दितः ॥ ८९ ॥ सार्द्धबीजद्वयं तद्वत् एकविंशतिवर्णकः । विंशत्यर्णस्त्रिंशदर्णो यः स्यादालिङ्गितः स्मृतः ॥ ९० ॥ द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मोहितः परिकीर्त्तितः । द्वात्रिंशद्वर्णो मन्त्रो यः सप्तविंशतिवर्णकः । क्षुधार्त्तः स तु विज्ञेयो चतुर्विंशतिवर्णकः ॥ ९१ ॥ एकादशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिवर्णकः । त्रयोविंशतिवर्णो वा मन्त्रो दृप्त उदाहृतः ॥ ९२ ॥ षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रोः षट्त्रिंशदर्णकस्तथा । त्रिंशदेकोनवर्णो वा त्वङ्गहीनः स एव हि ॥ ९३ ॥ अष्टाविंशदक्षरो वा एकत्रिंशदथापि वा । अतिक्रुद्धः स विज्ञेयो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥ ९४ ॥ त्रिंशदक्षरको मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशदथापि वा । अतिक्रूरः स विज्ञेयो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥ ९५ ॥ चत्वारिंशतमारभ्य त्रिषष्टिर्यावता भवेत् । तावत्संख्या निगदिता मन्त्राः सव्रीडसंज्ञकाः ॥ ९६ ॥ पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः । एकोनशतपर्यन्तं पञ्चषष्ट्यक्षरादितः । ते सर्वे कथिता मन्त्राः स्थानभ्रष्टा न शोभनाः ॥ ९७ ॥ त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः । ते सर्वे विकला ज्ञेयाः शतं सार्द्धं शतन्तथा ॥ ९८ ॥ शतद्वयं द्विनवतिरेकहीना तथापि वा । यावत्शतत्रयं संख्या निःस्नेहास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ९९ ॥ चतुःशतमथारभ्य यावद्वर्ण-सहस्रकम् । अतिवृद्धः स मन्त्रस्तु सर्वशास्त्रविवर्जितः ॥ १०० ॥ सहस्रार्णाधिका मन्त्रा दण्डकाः पीडिताह्वयाः । द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः खण्डशः सप्तधा कृताः । ज्ञातव्याः स्तोत्ररूपास्ते मन्त्रा एते यथा स्थिताः । तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः सर्वकर्मसु । दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रं भजते बुधः । सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥ १ ॥

अथ मन्त्राणां दोषशान्तिः :

तत्रैव : छिन्नादिदुष्टा ये मन्त्रास्तन्त्रे तन्त्रे निरूपिताः । ते सर्वे सिद्धिमायान्ति मातृकार्णप्रभावतः ॥ २ ॥ मातृकार्णैः पुटिकृत्य मन्त्रं विद्यां विशेषतः । शतमष्टोत्तरं पूर्वं प्रजपेत्फलसिद्धये । तदा मन्त्रो महाविद्या यथोक्तफलदा भवेत् ॥ ३ ॥ मातृकापुटितं कृत्वा मध्ये वर्णं निधाय च । मन्त्रवर्णास्ततः कुर्यात्शोधनः तन्त्रसम्मतम् ॥ ४ ॥ बद्ध्वा च योनिमुद्रां तां सङ्कोच्याधारपङ्कजम् । तदुत्पन्नान्मन्त्रवर्णान् कुर्वतश्च गतागतान् । ब्रह्मरन्ध्रावधि ध्यात्वा वायुमापूर्य कुम्भयेत् । सहस्रं प्रजपेन्मन्त्री मन्त्रदोषप्रशान्तये ॥ ५ ॥

तथा : एषु दोषेषु पत्रेषु मायां काममथापि वा । क्षिप्त्वा चादौ

श्रियश्चैव तद्दूषणविमुक्तये ॥ ६ ॥

तथा : तारसम्पुटितो वापि दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति । यस्य यत्र भवेद्भक्तः सोऽपि मन्त्रोऽस्य सिध्यति ॥ ७ ॥

तथा : प्रणवो मातृका देवी ह्रल्लेखेत्यमृतत्रयम् । अमृतत्रयसंयोगाद्दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥ ८ ॥

अथ होमार्थं कुण्डनियमः :

तत्र कुण्डपदव्युत्पत्तिमाह सारावलीधृतविश्वसारे : कौ पृथिव्यां विलं देवि दृश्यते सुमनोहरम् । तस्मात्कुण्डं समाख्यातं साधकानां हिताय वै । बिलं गर्त्तम् । सुमनोहर-मेखलायोन्यादिविशिष्टमित्यर्थः ॥ १ ॥

तत्र तावत्गृहनिर्णयः । तत्रापि प्रथमं भूमिनिर्णयः :

गौतमीये : भूमेः परिग्रहं कुर्याद्यावदायतनं भवेत् ॥ २ ॥ शुक्लमृत्स्ना तु या भूमिर्ब्राह्मी सा परिकीर्त्तिता । क्षत्रियां रक्तमद्भूमिर्हरिद्वैश्या प्रकीर्त्तिता । कृष्णाभूमिर्भवेत्शूद्रा चतुर्द्धा भूःप्रकीर्त्तिता । ब्राह्मी सर्वार्थसिद्धिः स्यात्क्षत्रिया राज्यदा मता । धन्यधान्यकरीं वैश्या शूद्रा तु निन्दिता भवेत् ॥ ३ ॥

गणेशविमर्षिण्याम् : आदौ भूमिं परीक्षेत वास्तुशास्त्रविशारदः । शल्यादिशोधनं कुर्यात्पौरुषं वा खनेत्ततः ॥ ४ ॥ वास्तोः संयोज्य पूर्वस्याम् ऐशान्यामुत्तरेऽपि वा । दिशि सङ्कल्पयेन्मन्त्री मण्डपञ्च विभागतः ॥ ५ ॥ नवहस्तप्रमाणं वा सप्तहस्तमथापि वा । पञ्चहस्तप्रमाणं वा चतुरस्रं समन्ततः । पञ्चहस्तन्तु एककुण्डपक्षे ॥ ६ ॥

तदुक्तं तत्रैव : एककुण्डमतेनान्यत्पञ्चहस्तगृहं भवेत् । तदेककुण्डं गृहस्योत्तरभागे प्रशस्तम् ॥ ७ ॥

यथा : अथोत्तरे तथा कुण्डमेकं वेदास्रमुद्धरेत् । लक्षहोमे तु तत्कुर्यात् गृहमध्ये न दूषणम् ॥ ८ ॥

तथा वसिष्ठसंहितायाम् : वास्तोरीशानभागे तु मण्डलं रचयेत्सुधीः । षड्द्वादशाष्टभिर्हस्तैः षोडशैर्वा समन्ततः चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलंकृतम् ॥ ९ ॥

निबन्धे : तत्त्रिभागमिते क्षेत्रेऽरत्निमात्रसमुन्नतम् । चतुरस्रां ततो वेदीं मण्डलाय प्रकल्पयेत् ॥ १० ॥

अथ प्रसङ्गान्नवकुण्डानि :

तत्र शारदायाम् : प्राक्प्रोक्ते मण्डपे विद्वान्वेदिकाया वहिस्त्रिधा ।

क्षेत्रं विभज्य मध्येऽशे पूर्वादि परिकल्पयेत् ॥ १ ॥ अष्टाशास्वष्टकुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात् ॥ २ ॥

तथा च वसिष्ठसंहितायाम् : अष्टकुण्डप्रकारमाह । चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्त्तुलम् । षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामतः ॥ ३ ॥ (कुण्डप्रकाराणिः चित्र ५१)

आचार्यकुण्ड मध्ये स्याद्गौरीपतिमहेन्द्रयोः । हस्तमात्रमितां भूमिं पूर्ववत्परिसूत्रयेत् । समन्तात्कुण्डमेतत्तु चतुरस्रं शुभावहम् ॥ ४ ॥ चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं पञ्चधा विभजेत्सुधीः । न्यसेत्पुरस्तादेकांशं कोणार्द्धार्द्धप्रमाणतः ॥ ५ ॥ भ्रामयेत्तेन मानेन तथान्यदपि मन्त्रवित् । सूत्रयुग्मं ततो दद्यात्कुण्डं योनिनिभं भवेत् ॥ ६ ॥ चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेत्सुधीः । एकमेकं त्यजेदंशं अध ऊर्ध्वञ्च तन्त्रवित् । ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानाद्भ्रामयेत्ततः । अर्द्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत् ॥ ७ ॥ अग्रे सम्मुखे प्रक्षिप्त-शरधनुर्वदिति भट्टव्याख्यानात् ।

तथा च : ज्यासूत्रं पातयेदग्रे शरावार्द्धतया यतः ॥ ८ ॥ चतुर्द्धा भेदिते क्षेत्रे न्यसेदुभयपार्श्वयोः । एकैकमंशं तन्मानादग्रतो लाञ्छयेत्ततः । सूत्रत्रयं बुधः कुर्यात् त्र्यस्रं कुण्डमुदाहृतम् ॥ ९ ॥ अष्टादशांशो क्षेत्रेऽशं न्यसेदेकं वहिर्बुधः । भ्रामयेत्तेन मानेन वृत्तं कुण्डमुदाहृतम् ॥ १० ॥ अष्टधा विभजेत्क्षेत्रं मध्ये सूत्रस्य पार्श्वयोः । भागं न्यसेदेकमेकं मानेनानेन मध्यतः ॥ ११ ॥ कुर्यात्पार्श्वद्वये मत्स्यचतुष्कं मन्त्रवित्तमः । सूत्रषट्कं ततो दद्यात्षडस्रं कुण्डमीरितम् ॥ १२ ॥ चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं विभज्याष्टादशांशतः । एकं भागं वहिर्न्यस्य भ्रामयेत्तेन वर्त्तुलम् ॥ १३ ॥ वृत्तानि कर्णिकादीनां वहिस्त्रीणि प्रकल्पयेत् । पद्मकुण्डमिति प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् । वहिरिति मध्ये, वहिःशब्दो मध्यवाचकः अव्ययानामनेकार्थत्वादिति गुरवः । कर्णिकादीनां वृत्तानि वहिर्वहिः कुर्यादिति भट्टः । अन्यथा मानाधिक्यापद्येः ॥१४॥ चतुरस्रेऽष्टवा भक्ते कुर्याद्वृत्तचतुष्टयम् । कर्णिकाकेशरौ मध्ये तृतीये पत्रकाण्यथ । तदग्राणि चतुर्थे स्युर्वृत्तान्येवं प्रकल्पयेदिति भट्टः ॥ १५ ॥ पूर्वोक्तं विभजेत्क्षेत्रं चतुर्विंशतिभागतः । एकं भागं वहिर्न्यस्य चतुरस्रं प्रकल्पयेत् । अन्तःस्थचतुरस्रस्य कोणार्द्धार्द्धप्रमाणतः । वाह्यस्य चतुरस्रस्य कोणाभ्यां परिकल्पयेत् । दिशं प्रति यथान्यायमष्टौ सूत्राणि पातयेत् । अष्टास्रं कुण्डमेतद्धि तन्त्रविद्भिरुदीरितम् ॥ १६ ॥ यावान्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदेव हि । कुण्डानां

यादृशं रूपं मेखलानाञ्च तादृशम् । कुण्डानां मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रेण ताः क्रमात् । एवं प्रोक्तानि कुण्डानि कथ्येते स्रुक्स्रुवौ ततः ॥१७॥ प्रकल्पयेत्स्रुवं यागे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना । श्रीपर्णी-शिंशपा-क्षीर-शाखिष्वेकतमं गुरुः ॥ १८ ॥ गृहीत्वा विभजेद्धस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुनः । हस्तमात्रं बाहुमात्रम् ॥ १९ ॥

तथागस्त्योः स्रुचं बाहुप्रमाणेन होमार्थं विदधीत वै । विंशत्यंशैर्भवेद्दण्डो वेदी तैरष्टाभिर्भवेत् ॥ २० ॥ एकांशेन मितः कण्ठः सप्तांशेन मितं मुखम् । वेदीत्र्यंशेन विस्तारः कण्ठस्य परिकीर्त्तितः ॥ २१ ॥ मुखं कण्ठप्रमाणं स्यात्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत् । कनिष्ठांगुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय च ॥ २२ ॥ वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका । विदधीत बहिस्तस्या एकांशेनाभितोऽवटम् ॥ २३ ॥ तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्द्धांशतो वहिः । अंशेनैकेन परितो दलानि परिकल्पयेत् ॥ २४ ॥ मेखला मुखवेद्योः स्यात्परितोऽर्द्धांशमानतः । दण्डमूलाग्रयोः कुम्भौ गुणवेदांगुलैः क्रमात् ॥ २५ ॥ गण्डीयुग्मं समांशं स्याद्दण्डस्यानाह ईरितः । षड्भिरंशैः पृष्ठभागो वेद्याः कूर्माकृतिर्भवेत् ॥ २६ ॥ हंसस्य वा हस्तिनो वा पौत्रिणो वा मुखं लिखेत् । मुखस्य पृष्ठभागेऽस्याः सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः ॥ २७ ॥ स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैरारचयेत् स्रुवम् । द्वाविंशत्या दण्डमानम् अंशैरेतस्य कीर्त्तितम् ॥ २८ ॥ चतुर्भिरंशैरानाहः कर्षाज्यग्राहि-तच्छिरः । अंशद्वयेन विलिखेत्पङ्के मृगपदाकृतिम् ॥ २९ ॥ दण्डमूलाग्रयोर्गण्डो भवेत्कङ्कणभूषिता । स्रुवस्य विधिराख्यातः सर्वतन्त्रसमन्वितः । गण्डी कुम्भः कङ्कणश्च । गण्डी कङ्कण-कुम्भयोरिति भागुरिः ॥ ३० ॥

तयोरभावे तु वसिष्ठेः पलाशपत्रे निश्छिद्रेरुचिरे स्रुक्स्रुवौ ततः । विदध्यात्वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणित ॥ ३१ ॥

अथ कुण्डानां विशेषफलानि :

निबन्धे : सर्वसिद्धिकरं पुंसां चतुरस्रमुदाहृतम् । पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभं शुभप्रदम् ॥ ३२ ॥ शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्त्तुलं शान्तिकर्मणि । छेदमारणयोः कुण्डं षडस्रं पद्मसन्निभम् । दृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम् ॥ ३३ ॥

अथ काम्य-होमार्थं कुण्डनिर्णयः :

तदुक्तं सिद्धसारस्वते : शान्तौ पुष्टौ तथारोग्ये कुण्डञ्च चतुरस्रकम् ।

आकर्षणे त्रिकोणं स्यादुच्चाटे वर्त्तुलं तथा । मारणे च तथा योज्यं वर्त्तुलं मन्त्रिभिः सदा ॥ ३४ ॥

तन्त्रान्तरे : उदीच्यां पौष्टिके कुण्डं वारुणे शान्तिकादिषु । उच्चाटे चानिले कुण्डं याम्ये च मारणं भवेत् ॥ ३५ ॥

तथा च : विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते । वैश्यानामर्द्ध-चन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम् ॥ ३६ ॥ चतुरस्रन्तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः । चतुरस्रे महेशानि सर्वकर्माणि साधयेत् ।

तथा : सर्वाधिकारिकं कुण्डं सर्वदं चतुरस्रकम् ॥ ३७ ॥

गृहादिकरणे हस्तनियमः :

गौतमीये : रथादिदोलिका चैव पोतं शकटमेव च । मानांगुलेन कर्त्तव्यं नान्येनापि कदाचन ॥ ३८ ॥ मुष्ट्यरत्निप्रमाणानि यत्किञ्चित् कथितानि च । यजमानस्य कर्त्तव्यं नान्यस्यापि कदाचन ॥३६॥

तथा : मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि । मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेव निर्णयः ॥ ४० ॥ चतुर्विंशत्यंगुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः । कर्त्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमांगुलिपर्वणः । मध्यस्व दैर्घ्यमानेन मानांगुलमुदाहृतम् ॥ ४१ ॥

तन्त्रान्तरे : कर्मकर्त्तुर्निजांगुष्ठतिर्यङ्मानेन मध्यमम् । प्रमाणांगुष्ठ-मेतत्तु सर्वकर्मणि चापरे ॥ ४२ ॥ यजमानासन्निधाने पुनः । यवानां तण्डुलैरेकमंगुलं चाष्टभिर्भवेत् । अदीर्घयोजितैर्हस्तश्चतुर्विंशतिभिर्भवेत् ॥ ४३ ॥

वययोऽनुक्रमे पुनः : अष्टभिस्तैर्भवेज्ज्येष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः । कन्यसं षड्भिरुद्दिष्टमंगुलं मुनिसत्तमैः ॥ ४४ ॥ सहस्रे खलु होतव्ये कुर्यात्कुण्डं करात्मकम् । द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम् ॥ ४५ ॥ षट्करे वेदलक्षश्चाष्टकरे दशलक्षकम् । दशहस्तन्तु कोट्यां वै हस्तसंख्या व्यवस्थिता । दशहस्तात्परं कुण्डं नास्ति होमे महीतले ॥ ४६ ॥

शारदायाम् : कोट्यामष्टकरं स्मृतमिति द्रव्यस्य गुरुत्वाऽगुरुत्वेन बोद्धव्यम् ।

तथा च : एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते । अत्राप्याज्यहोमे मधु-घृत-दूर्वा-करवीरादिहोमे च बोद्धव्यम् ॥ ४७ ॥

तथा : मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्द्धे च प्रचक्षते । शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्रके । द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदाहृतम् । दशलक्षे

तु षडहस्तं कोट्यामष्टकरं स्मृतम् । एकहस्तमिते कुण्डे लक्षमेकं विधीयते । लक्षाणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्द्धयेत् ॥ ४८ ॥

द्विहस्तादिकुण्डमानं तु गौतमीये : पूर्वपूर्वस्य कुण्डस्य कोणसूत्रन्तु यद्भवेत् । उत्तरोत्तरकुण्डानां मानं तत्परिकीर्त्तितम् । कर्णसूत्रप्रमाणेन द्विहस्तं कुण्डमाहरेत् । सर्वकुण्डेषु सर्वत्र वर्द्धयेद्विधिनामुना ॥ ४९ ॥

कुण्डप्रकरणे विशेषमाह गौतमीये : ततः कुण्डं खनेन्मन्त्री यथा शास्त्रविधानतः । त्यक्त्वा सर्पस्य गात्रञ्च शिरोदेशं प्रयत्नतः । शिरोघाते भवेन्मृत्युः पिण्डेषु पिण्डघातनम् । पुच्छे तु दुखसम्भूतिः क्रोडे सर्वार्थसाधनम् ॥ ५१ ॥

नागशिर-आदि-निर्णयो यथा : वास्तुप्रमाणेन तु गात्रकेण, वमेन शेते खलु नित्यकालम् । त्रिभिस्तु मासैः परिवृत्य भूमौ, तं वास्तुनागं प्रवदन्ति सिद्धाः ॥ ५२ ॥ भाद्रादिके वासवदिक्शिराः स्यात्, मार्गादिकेषु त्रिषु याम्यमूर्द्धा । प्रत्यक्शिराः स्यात्खलु फाल्गुनादौ, ज्येष्ठादिकौवेर-शिराः स नागः ॥ ५३ ॥ यावान्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदिष्यते । खाताधिके भवेद्रोगी खातहीने धनक्षयः ॥ ५४ ॥ वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले । मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंक्षयः ॥ ५५ ॥ भार्याविनाशकं प्रोक्तं कुण्डं योन्या विना कृतम् । अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं कण्ठविवर्जितम् ॥ ५६ ॥ सात्विकी मेखला पूर्वा द्वितीया राजसी स्मृता । तृतीया तामसी प्रोक्ता मेखलानां विनिर्णयः ॥ ५७ ॥ कुण्डानां मेखलास्त्रिस्रो मुष्टिमात्रे तु ताः क्रमात् । उत्सेधायामतो ज्ञेया त्वेकार्द्धांगुलि सम्मिता ॥ ५८ ॥ अरत्निमात्रकुण्डे तु तास्त्रिद्व्येकांगुला-त्मिकाः । हस्तमात्रमिते कुण्डे वेदाग्निनयनांगुलाः ॥ ५९ ॥ कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेदगुणांगुलाः । चतुर्हस्ते तु ता ज्ञेया वसुतर्कयु-गांगुलाः ॥६०॥ कुण्डे रसकरे तास्तु पंक्त्यष्टत्वंगुलाः क्रमात् । वसुहस्त-मिते कुण्डे भानुपंक्त्यष्टकांगुलाः । दश हस्तमिते कुण्डे मनुभानुदशांगुलाः । विस्तारोत्सेधतो ज्ञेया मेखलाः सर्वतो बुधैः ॥ ६२ ॥ होतुरग्रे योनिरासा-मुपर्यश्वत्थपत्रवत् । मेखलानां भवेदन्तः परितो नेमिरंगुला ॥ ६३ ॥ एक हस्तस्य कुण्डस्य वर्द्धयेत् ताः क्रमात्सुधीः । दशहस्तान्तमन्येषा-मर्द्धांगुलवशात्पृथक् । एकहस्तस्य एकहस्तान्तस्य । नाभियोन्योरेकमानस्य दृष्टत्वात् ॥ ६४ ॥

गौतमीये : प्रथमे मेखले योनिं कुण्डोष्ठीं होतुरग्रतः । कुर्यात्

गजोष्ठवृत्तान्तु कुण्डवित्सर्वलक्षणाम् ॥ ६५ ॥ मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता । षट्-चतुर्द्व्यंगुलायामविस्तारोन्नतिशालिनी ॥ ६६ ॥ एकांगुलन्तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् । एकैकांगुलतो योनिं कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् । यवद्वयप्रमाणेन योन्यग्रमपि वर्द्धयेत् ॥ ६७ ॥

गणेशविमर्षिण्याम् : मेखलानां वहिःस्थानं स्थलमित्यभिधीयते । चतुरस्रस्थलारब्धं नालं मध्ये सरन्ध्रकम् । स्थूलमूलन्तु सूक्ष्माग्रं तन्नालं स्यान्मनोहरम् । वाह्यस्थमेखलावाह्यस्थलादारभ्य कारयेत् ॥६८॥

तथा : स्थलादारभ्य नालं स्यात्योन्या मध्येसरन्ध्रकम् । सरन्ध्रक-मित्युभयत्र संवध्यते ॥ ६९ ॥

तदुक्तं गौतमीये : स्थलादारभ्य नालं स्यात्सरन्ध्रं योनिमध्यतः । सूक्ष्माग्रं स्थलमूलञ्च सरन्ध्रं नालमिष्यते । योन्या मध्ये विलं कुर्यात्त-दाज्यग्राहिसंज्ञकम् । मध्यतो मध्यपर्यन्तमित्यर्थः ॥ ७० ॥

तथा वसिष्ठे : पृष्ठोन्नता गजोष्ठीव सच्छिद्रा मध्यमोन्नता । सरन्ध्र-मिति मध्यमेखलायामित्यर्थः ।

तथा च : नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनाय च । रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान् द्वितीयमेखलोपरि ॥ ७१ ॥

परिधिस्तु : बाहुमात्राः परिधय ऋजवः सत्वचोऽव्रणाः । त्रयो भवन्त्यशीर्णाग्रा एकेषान्तु चतुर्दिशम् । मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेक-भावतः । नेत्रवेदांगुलोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् । यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः । योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिञ्च वर्जयेत् । नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम् । वहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्प-येत् ॥ ७२ ॥

नवकुण्डपक्षे योनिनियममाह सिद्धान्तशेखरे : इन्द्राग्नियम-दिक्कुण्डे योनिः सौम्यमुखी स्थिता । योनिः पुर्वमुखान्येषु पुर्वेशामुत्तरा मता । हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि । अंगुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः । आदाय दक्षिणे पाणौ स्रुवं त्रिमधुरः हविः । प्राङ्मुखो वह्निजायान्ते जुहुयाद्युञ्जपाणिना । नमोऽन्ते न नमो दद्यात् स्वाहान्ते द्विठमेव च । पूजायामाहुतौ चैव सर्वत्रायं विधिः स्मृतः । नमोऽन्त इति पौराणिकमन्त्रपरम् ॥ ७३ ॥

तथा च ब्रह्मपुराणम् : ओङ्कारादिसमायुक्तं नमस्कारान्त-कीर्त्तितम् । स्वनाम सर्वसत्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ।

यथा : इदं पाद्यं ॐ आदित्याय नमः । इदमर्घ्यं ॐ आदित्याय नमः इत्यादि । द्रव्यादीनि समुल्लिख्य पश्चादुल्लेखयेत्सुरानित्यादिवचनात् । न तु ॐ आदित्याय नमः, एतत् पाद्यं सूर्याय नमः इत्यादि ॥ ७४ ॥ तान्त्रिके नायं नियमः, अर्घ्यादौ वैषम्यं स्यात् । मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने जुहुयात् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम् । ओङ्कारपूतेनेत्यादि इदमपि वैदिकमन्त्रपरम् । अन्यथा मन्त्रान्तरप्रसङ्गः । तेनस्वाहान्तमन्त्रे स्वाहान्तरं न वक्तव्यम् ॥ ७५ ॥ स्रुवस्य पश्चांगुलं त्यक्त्वा शंखमुद्रया धारणम् ।

तदाह : पश्चांगुलं वहिस्त्यक्त्वा धारयेत्शङ्खमुद्रयेति ॥ ७६ ॥ यत्र होमसंख्या नोक्ता तत्र च : संख्याऽनुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिषु । अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते ॥ ७७ ॥

अथ नित्यहोमः :

तदुक्तं सोमभुजगावल्याम् : नाजप्तः सिध्यते मन्त्रो नाहुतश्च फलप्रदः । नानिष्टो यच्छते कामान् तस्मात्त्रितयमर्चयेत् । पूजया लभते पूजां जपात्सिद्धिर्न संशय । विभूतिश्चाग्निकार्येण सर्वसिद्धिश्च विन्दति ॥ ७८ ॥

नीलतन्त्रेऽपि : नित्यहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वार्थं येन विन्दति । सपर्यां सम्यगापाद्य बलिपूर्वं चरेद्विधिम् । ततो होमं तर्पणञ्च चरेत्साधक-सत्तमः । बलिवैश्यादिकञ्चैव ब्राह्मणः समुपाचरेत् ॥ ७९ ॥ अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य तिस्रो रेखाः समालिखेत् । विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नमस्तथा । मूलमन्त्रं समुच्चार्य कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा । भूमौ वा संस्तरेद्वह्नि व्याहृतित्रितयेन च । स्वाहान्तेन त्रिधा हुत्वा षडङ्गहवनं चरेत् । ततो देवीं समावाह्य मूलेन षोडशाहुतिम् । हुत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य विसृजेदिन्दुमण्डले ॥ ८० ॥

श्यामादौ विशेषः : भैरवांश्च हुनेदष्टौ आज्यान्विततिलैः शुभैः । पूर्वादिदिक्क्रमेणैव ततो होमं समाचरेत् ॥ ८१ ॥

अथ संक्षेपहोमप्रयोगः :

कुण्डे वा स्थण्डिले वापि वीक्षणादिभिः संस्कृते ॥ १ ॥

तथा च : वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण ताडनं मतम् । तेनैव प्रोक्षणं प्रोक्तं वर्मणाभ्युक्षणं मतम् ॥ २ ॥ प्रागग्रा उदगग्राश्च तिस्रो रेखाः

समालिखेत्। ततो मूलमुच्चार्य ॐ कुण्डाय नमः इति सम्पूज्य प्रागग्रा उदगग्रास्तिस्रस्तिस्रो रेखाः कर्त्तव्याः। प्रागग्रेषु मुकुन्देशपुरन्दरान् प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य उदगग्रेषु ब्रह्मवैवस्वतेन्दून्पूजयेत् ॥ ३ ॥ सुन्दरी-पक्षे तु सर्वत्र षट्तारीप्रयोगः।

षट्तारी च : ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः। एवं क्रमेण पूजयेत् ॥ ४ ॥

तथा ब्रह्मसंहितायां होमकाण्डे : ऐशान्यां वेदिकां हस्तविस्तारोन्न-तिशालिनीम्। कृत्वास्मिन् स्थापयेत्कुम्भं यथोक्तक्रमयोगतः। ततः सम्पूज्यदेवं यथाविध्युपचारकैः। ततो होमं प्रकुर्वीत देवतासन्निधानतः ॥ ५ ॥ ततः कुण्डमध्ये षट्कोणवृत्त-त्रिकोणं तद्बहिरष्टदलपद्मं तद्बहिश्च-तुरस्रं चतुर्द्वारसमेतं लिखित्वा तदुपरि मूलेन पुष्पाञ्जलीन् दद्यात्, सुन्दरी पक्षे तु बालया ॥ ६ ॥ ततः सर्वाणि प्रणवेनाभ्युक्ष्य वह्नेर्योग-पीठमर्चयेत्।

तद्यथा : कर्णिकोपर्याधारशक्त्यादीन् सम्पूज्याग्न्यादिकोणचतुष्केषु ॐ धर्माय नमः एवं ज्ञानाय वैराग्याय ऐश्वर्याय। पूर्वादिदिक्षु अधर्माय अज्ञानाय अवैराग्याय अनैश्वर्याय। मध्ये ॐ अनन्ताय एवं पद्माय अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, रं वह्निमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः। ततः केशरेषु पूर्वादिमध्ये च ॐ पीतायै नमः एवं श्वेतायै नमः अरुणायै नमः कृष्णायै धूम्रायै तीव्रायै स्फुलिङ्गिन्यै रुचिरायै ज्वालिन्यै। ततो रं वह्न्यासनाय नमः ॥ ७ ॥

ततो वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम्। वागीश्वरेण संयुक्ताम् इति ध्यात्वा ॐ ह्रीं वागीश्वराय नमः ॐ ह्रीं वागीश्वर्यै नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य सूर्यकान्तादिसंभूतं श्रोत्रियगेहजं वा वह्निमानयेत्। सुन्दरी पक्षे तु कामेश्वरं कामेश्वरीं पूजयेत् ॥ ८ ॥

गौतमीये : पाषाणभवमग्निञ्च यदि वाऽरुणिसम्भवम्। श्रोत्रियाणां गेहजञ्च वनस्थं वाथवा हरेत् ॥ ९ ॥ निरग्निब्राह्मणाल्लब्धो ह्यर्द्धलाभकरो भवेत्। क्षत्रबन्धोश्चतुर्थांशं फलं दद्याद्धुताशनः। वैश्याच्छूद्राच्च विफलं जायते होमकर्मणि। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वह्निमुक्तं समाहरेत् ॥ १० ॥

तन्त्रान्तरे : द्विजातिभवनाद्वापि वह्निमानीय साधकः। वौषडन्तेन मूलेन मन्त्रितं तं विलोकयेत्। अग्निमावाहयेदस्त्रमन्त्रेण तदनन्तरम्।

हुं-फडन्तेन मूलेन क्रव्यादांशं परित्यजेत् ॥ ११ ॥ ततः ॐ वह्नेर्योगपीठाय नमः। चतुर्दिक्षु ॐ वामायै नमः। एवं ज्येष्ठायै रौद्र्यै अम्बिकायै। ततो मूलमूच्चार्य अमुकदेवताकुण्डाय नमः इति कुण्डं सम्पूज्य तदधो वागीश्वरीं तत्तदेवतारूपाम् ऋतुमतीं ध्यात्वा यथोक्तं वह्निमानीय वीक्षणादिभिः संस्कृत्य रमिति तस्माद्वह्निमुद्धृत्य मूलमुच्चार्य हुं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा इत्यनेन क्रव्यादांशं परित्यज्य वह्निमन्त्रेण संरक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य बाहुभ्यां समुद्धृत्य कुण्डोपरि त्रिः परिभ्राम्य जानुस्पृष्टमहीतलः शिवबीजबुद्धया आत्मनोऽभिमुखं देव्या योनावेनं क्षिपेत् ॥ १२ ॥ ततो ह्रीं वह्निमूर्तये नमः इत्यभ्यर्च्य रं वह्निचैतन्याय नमः इति चैतन्यं संयोज्य ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा ज्वालयेत्।

ततः : अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् इत्युपतिष्ठेत् ॥१३॥ ततोऽग्ने त्वममुकदेवतानामासि इति नाम कृत्वा ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। अनेनार्घ्यादिभिः सम्पूज्य ॐ अग्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः। ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः इत्यादि अग्निषडङ्गेभ्यो नमः। ॐ अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्त्तिभ्यो नमः, तद्वाह्ये ॐ ब्राह्म्याद्यष्ट शक्तिभ्यो नमः, तद्बहिः ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः, तद्वाह्ये ॐ इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः, तद्वाह्ये ॐ वज्राद्यस्त्रेभ्यो नमः ॥ १४ ॥ ततः प्रादेशमात्रं कुशपत्रद्वयं घृतमध्ये निक्षिप्य सव्यापसव्यमध्यभागेषु इडां पिङ्गलां सुषुम्नां ध्यात्वा होमं कुर्यात्। स्रुवेण दक्षिण भागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्वाहेति अग्नेर्दक्षिणनेत्रे जुहुयात्। तथा वामभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ सोमाय स्वाहा इति वामनेत्रे जुहुयात्। ततो मध्यभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेत्यग्नेर्ललाटनेत्रे जुहुयात्। पुनर्दक्षिणतः ॐ नमः इति घृतं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहेति अग्निमुखे ॥ १५ ॥

ततो महाव्याहृतिहोमः : ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा। ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहेत्यनेन त्रिवारं जुहुयात्। ततोऽग्नौ मूलेन पीठपूर्वकं देवतां सम्पूज्य तन्मुखे घृतेन मूलमन्त्रेण पञ्चविंशतिवारं जुहुयात्। आत्मना सह वह्निदेवतयोरैक्यं विभाव्य मूलमन्त्रेनैकादशाहुतीर्जुहुयात्। ततो

मूलमन्त्रस्याङ्गदेवताभ्यः स्वाहा एवं आवरणदेवताभ्यः स्वाहा । शक्तश्चेत् प्रत्येकमेकैकाहुतिं जुहुयात् । ततः संकल्पं विधाय तत्तत्कल्पोक्तद्रव्येण होमं कुर्यात् ॥ १६ ॥ ततो मूलमन्त्रेण पूर्णाहुतिं दत्त्वा संहारमुद्रया स्वेष्टदेवतां हृदये समानीय क्षमस्वेति विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा अच्छिद्राव-धारणं कुर्यात् । इति संक्षेपहोमविधिः ॥ १७ ॥

अथ वृहद्धोमपद्धतिः :

आचार्योऽलंकृतो यागमण्डपद्वारमागत्य सामान्यार्घ्यं विधाय द्वारपूजां कृत्वा गृहं प्रविश्य तत्तत्कल्पोक्तदेवताम् सम्पूज्य ऐशान्यं दिशि हस्तप्रमाणां वेदिकां विधाय तदुपरि घटं संस्थाप्य यथाशक्ति सम्पूज्य वीक्षणादिभिः कुण्डं संस्कुर्यात् ।

एतदुक्तं ब्रह्मसंहितायां होमकाण्डे : ऐशान्यां वेदिकां हस्तविस्ता-रोन्नतिशालिनीम् । कृत्वास्मिन् स्थापयेत्कुम्भं यथोक्त क्रमयोगतः । तत्र सम्पूजयेद्देवं यथाविध्युपचारकैः । ततो होमं प्रकुर्वीत देवतासन्निधानतः ॥ १ ॥ वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण ताडनं मतम् । तेनैव प्रोक्षणं दर्भैर्वर्मणा-भ्युक्षणं मतम् । अस्त्रेण रक्षणं कृत्वा ततः संस्कारमारभेत् । ततो मूलमुच्चार्य ॐ कुण्डाय नमः इति कुण्डं सम्पूजयेत् ॥ २ ॥ तारादौ तु तत्तद्देवतानामोच्चार्य कुण्डाय नमः इति वदेत् । ततः कुण्डमध्ये प्रागग्रा उदगग्रास्तिस्रस्तिस्रो रेखा विलिखेत् । ततः संक्षेपहोमपद्धत्युक्तक्रमेण सर्वं करणीयम् ।

तन्त्रे : द्विजातिभवनाद्वापि वह्निमानीय साधकः । वौषडन्तेन मूलेन मन्त्रितं तं विलोकयेत् । अग्निमावाहयेदस्त्रमन्त्रेण तदनन्तरम् । हुंफडन्तेन मूलेन क्रव्यादांशं परित्यजेत् ॥ ३ ॥ ततोऽग्निं वीक्षणादिभिः संस्कृत्य औदर्यवैन्दवाग्निभ्यां भौमस्य वह्नेरैक्यं विभाव्य रं वह्निचैतन्यं कल्पयामीति पावके चैतन्यं विधाय ओंकारेणाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य धेनु-मुद्रया अमृतीकृत्य फडिति संप्रोक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य रं वह्निमूर्त्तये नमः इति गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य कुण्डस्योपरि त्रिः परिभ्राम्य प्रणवोच्चारण पूर्वकं जानुस्पृष्टमहीतलः शिवबीज-बुद्धया आत्मनोऽभिमुखं देव्या योनावेनं क्षिपेत् ।

ततो वागीश्वरवागीश्वरीभ्यां आचमनीयादिकं दत्त्वा : तथा गर्भे धृतां ध्यायेत्वह्निरूपान्त वेवताम् । पश्चाद्गर्भस्य रक्षार्थं प्रदद्याद्दर्भ-कंकणम् । चित्पिङ्गल हन हन पच पच दह दह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा

इति मन्त्रेण वह्निं ज्वालयेत् ॥ ४ ॥

ततो बद्धाञ्जलिः सन् : ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् । इत्यनेन वह्नि-मुपतिष्ठेत् ॥ ५ ॥ ततो स्वदेहे वह्नेर्जिह्वान्यासं कुर्यात् । तद्यथा : लिङ्गे सरयूं हिरण्यायै नमः । पायौ षरयूं कनकायै नमः । मूर्ध्नि शरयूं रक्तायै नमः । वक्त्रे वरयूं कृष्णायै नमः । घ्राणे लरयूं सुप्रभायै नमः । नेत्रे ररयूं बहुरूपायै नमः । सर्वगात्रे यरयूं अतिरक्तायै नमः । एताः सात्त्विकयागकर्मणि ॥ ६ ॥ काम्यकर्मणि तु उक्तबीजेन सह पद्मरागा सुवर्णा भद्रलोहिता रोहिता श्वेता धूमिनी करालिका एता राजस्यः । क्रूरकर्मणि तु पूर्वबीजेन सह विश्वमूर्त्तिः स्फुलिङ्गिनी धूम्रवर्णा मनोजवा लोहिता कराला कालो एतस्तामस्यः । न्यासन्तु बीजयोगेन पूर्ववत्कर्मभेदेन सर्वत्र बोद्धव्यः ॥ ७ ॥

तथा च शारदायाम् : लिङ्गपायुशिरोवक्त्रघ्राणनेत्रेषु सर्वतः । वह्नियार्घीशसंयुक्ताः सादियान्ताः सबिन्दवः । वह्निमन्त्राः समुद्दिष्टा जिह्वानां सप्तदेशिकैः ॥ ८ ॥

ततः कराङ्गन्यासौ यथा : सहस्रार्चिषे अंगुष्ठाभ्यां नमः स्वस्तिपूर्णाय तर्जनीभ्यां स्वाहा उत्तिष्ठपुरुषाय मध्यमाभ्यां वषट् धूमव्यापिने अनामिकाभ्यां हुं सप्तजिह्वाय कनिष्ठाभ्यां वौषट् धनुर्द्धराय करतलपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिषु सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः इत्यादि ॥ ९ ॥

ततो मूर्त्तिन्यासः यथाः : मूर्ध्नि ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, दक्षांसे ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, दक्षपार्श्वे ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, दक्षकट्यां ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, लिङ्गे ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, वामकट्यां ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, वामपार्श्वे ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, वामांसे ॐ अग्नये देवमुखाय नमः । सर्वत्र आदौ प्रणवः ॥ १० ॥

तथा च : मूर्त्तीरष्टौ ततो न्यस्येद्देशिको जातवेदसः । मूर्द्धांसपार्श्व-कट्यन्धुकटिपार्श्वांसकेषु च । जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः । अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः । कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः । ताराद्यग्निपदाद्याः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्त्तयः ॥ ११ ॥

ततो रं वह्न्यासनाय नमः इति वह्नेरासनं कल्पयित्वा मूर्त्ति तत्र विचिन्तयेत् । इष्टं शक्ति स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं

जवाभम् । होमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ॥ १२ ॥ ततो मेखलानामुपरि बालया विशुद्धैस्तोयैः परिषिच्य मेखलायां गर्भशून्यैर्दर्भैरग्रेण मूलमाच्छादयन् त्रिस्त्रिः परिवेष्टयेत् । तत प्राचीवर्ज्यं दिक्षु परिधीन् विनिक्षिप्य तत्र प्रादक्षिण्येन ब्रह्मादिदेवताः पूज्याः ॥ १३ ॥ पुनर्वह्निं ध्यात्वा तत्र पीठे आवाह्यानेन मन्त्रेण गन्धादिभिः पूजयेत् । ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्मणि साधय स्वाहा इदं पाद्यं अग्नेय नमः इत्यादिक्रमेण । मेखलायां वामां ज्येष्ठां रौद्रीं अम्बिकाञ्च पूजयेत् । मध्ये षट्कोणे सरयूं हिरण्यायै नमः षरयूं कनकायै नमः शरयूं रक्तायै नमः वरयूं कृष्णायै नमः लरयूं सुप्रभायै नमः ररयूं बहुरूपायै नमः यरयूं अतिरक्तायै नमः । एतासामधिष्ठातृ-देवतास्तन्त्रान्तरे—अमर्त्यपितृगन्धर्वयक्षनागपिशवकाः । राक्षसः सप्तजिह्वानामीरिता अधिदेवताः । एवं काम्ये सरयूं पद्मरागायै नमः इत्यादि । क्रूरे सरयूं विश्वमूर्त्तये नमः इत्यादि ॥ १४ ॥

यदा गणेशविमर्षिण्याम् : हिरण्या सप्तहेमाभा शूलपाणेर्दिशि स्थिता । वैदूर्यवर्णा कनका प्राच्यां दिशि समाश्रिता । तरुणादित्यसंकाशा रक्ता जिह्वाग्निसंस्थिता । कृष्णानीलाभ्रसंकाशा नैर्ऋत्यां दिशि संस्थिता । सुप्रभा पद्मरागाभा वारुण्यां दिशि संस्थिता । अतिरक्ता जवाभा सा वायव्यां दिशि संस्थिता । बहुरूपा यथाख्याता दक्षिणोत्तर संस्थिता ॥ १५ ॥

ततः केशरेषु अग्नयादिकोणे मध्ये दिक्षु च ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्द्धराय अस्त्राय फट् । ततः पूर्वादिदलेषु ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देवमुखाय नमः । इति वह्निमूर्त्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः सम्पूज्य लोकपालान् स्वस्वदिक्षु पूजयेत् ॥ १६ ॥

ततो हस्ताभ्यां स्रुक्स्रुवौ गृहीत्वा अधोमुखौ कृत्वा वह्नौ त्रिवारं प्रतप्य दर्भानादाय यथाक्रमं तदग्रमूलमध्यानि शोधयित्वा दक्षिणहस्तेन सम्प्रोक्ष्य पुनः प्रतप्य दर्भानग्नौ प्रक्षिप्य आत्मनो दक्षिणभागे कुशान्तरे

स्थापयेत् ॥ १७ ॥

ततः आज्यस्थालीमात्मसम्मुखमानीय अस्त्रजप्तेन वारिणा तां संशोध्य तस्यामाज्यं निक्षिप्य वीक्षणादिभिस्तत्तत् संस्कुर्यात् ॥१८॥

ततो वायव्यङ्गारमुद्धृत्य तेषु नमः इति मन्त्रेणाज्यस्थालीं निवेशयेत्। ततो दर्भयुग्मं संदीप्याज्ये क्षिप्त्वा अनेन निक्षिपेत्। नमः इति मन्त्रेण दीप्तदर्भयुग्मेनाज्यं नीराज्य तद्दर्भयुग्मं अग्नौ विसर्जयेत्। ॥ १९ ॥

ततः फडिति मन्त्रेण घृते प्रज्वलितान्दर्भान् प्रदर्श्य तानग्नौ क्षिपेत्। ततो घृतं गृहीत्वा पुनरङ्गारं वह्नौ संयोज्य जलं स्पृष्ट्वा दक्षिणहस्तोपरिभावेनाधोमुखेनांगुष्ठोपकनिष्ठाभ्यां प्रादेशसम्मितौ दर्भौ धृत्वा अस्त्रेण घृतं पवित्रीकृत्य नमः इति मन्त्रेण तत्कुशाभ्यां आत्मसम्मुखे घृतसम्प्लवं कुर्यात् ॥ २० ॥ ततः प्रादेशमात्रं सग्रन्थिदर्भयुग्मं घृतान्तरे क्षिप्त्वा द्वौ भागौ कृत्वा शुक्लकृष्णपक्षौ स्मरेत्। ततो वामे इडानाडी दक्षिणे पिङ्गलां मध्ये सुषुम्नां ध्यात्वा होमं कुर्यात् ॥ २१ ॥

तद्यथा : नमः इति मन्त्रेण स्रुवेणदक्षिणभागादाज्यमादाय अग्नेर्दक्षिणलोचने ॐ अग्नये स्वाहा इति जुहुयात्। तद्वद्वामतः आज्यमादाय ॐ सोमाय स्वाहा इति अग्नेर्वामलोचने जुहुयात्। तन्मध्यभागादाज्यमादाय अग्नेर्भाललोचने ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इति जुहुयात्। ततो नमः इति मन्त्रेण स्रुवेणाज्यं दक्षिणभागादादाय वह्निमुखे ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा इति जुहुयात्। सर्वत्राहुतिसम्पातः पात्रान्तरे ॥ २२ ॥

ततो महाव्याहृतिहोमः : ॐ भूं स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा। ततो वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा, इत्यनेन त्रिवारं हुत्वा अग्नेर्गर्भाधानादिक्रियाः सम्पादयेत्। ॥ २३ ॥

तद्यथा : गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामकरणं निष्क्रमणं अन्नप्राशनं चूडाकरणम् उपनयनं महाव्रतम् उपनिषत्स्नानं गोदानं उद्वाहाख्यम्। क्रूरकर्माणि माराणन्तम्। तथा च : शुभेषु स्युर्ध्विवाहान्ता मृत्व्यन्तोः क्रूरकर्मसु ॥ २४ ॥

तत्र क्रमः : ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा। इति प्रतिकर्माणि क्रमेणाज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ २५ ॥ सुन्दरोपक्षे तु ॐ अग्नेर्गर्भा-

धानं कल्पयामि ऐं नमः। इत्येकैकाहुतिं दद्यात्, इति कल्पसूत्रप्रतिपादितम् ॥ २६ ॥

नामकरणे तु मूलदेवीं समभ्यर्च्य तन्नामकरणाय च। हुनेत्पञ्चमबाणेन आहुतीनां त्रयं तथा। कामाग्निस्तवं हुताशनेति नाम कुर्यादनन्तरम्। ततो वह्नेः पितरौ (वागीश्वरवागीशश्वर्यौ) सम्पूज्यात्मनि योजयित्वा मूलाग्रमध्येषु घृतप्लुताः समिधः पञ्च मनसा ध्यात्वा जुहुयात् ॥ २७ ॥

ततो वह्नेः पूर्वोक्तजिह्वाङ्गमूर्त्तीनाम् एकैकाहुतिं दत्त्वा स्रुवेण चतुर्वारमाज्यमादाय स्रुचि निधाय स्रुवेण तां पिधाय उत्तिष्ठन् ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। वौषडित्यनेन जुहुयात् ॥ २८ ॥

ततो विघ्नेश्वरमन्त्रेण दशाहुतीर्जुहुयात्।

तद्यथा : ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर-वरद स्वाहा। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर-वरद सर्वजनं स्वाहा। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

तथा च प्रपञ्चसारे : ताराद्यैर्दशभिर्देवि पूर्वपूर्वसमन्वितैः। मनुना गाणपत्येन हुनेत्पूर्वं दशाहुतीः ॥ २९ ॥ ततो देवतायाः पीठं वह्नौ समभ्यर्च्य वह्निरूपां तां विचिन्त्य पञ्चोपचारादिभिः पूजयेत् ॥ ३० ॥ सुन्दरीपक्षे तु षडाननमन्त्रेण अङ्गमन्त्रेण च सम्पूज्य ॐ ह्रीं श्रीं समस्तप्रटकगुप्ततरसम्प्रदायकुलकौलिनि -गर्भ-रहस्यातिरहस्यपरमातिरहस्ययोगिनीचक्र-श्रीपादुकां पूजयामीति विशेषः ॥ ३१ ॥ तारादौ तु ब्राह्म्यादि-लक्ष्म्यादि-इन्द्रादि-वज्रादींश्च पूजयेत् इति विशेषः ॥३२॥

ततो वह्निमुखे मूलमन्त्रेण घृतेन पञ्चविंशाहुतीर्जुहुयात्।

ततो वह्निदेवतयोरात्मना सह ऐक्यं विभाव्य मूलेनाज्येन एकादशाहुतीर्जुहुयात्। ततस्तत्तद्देवताया आवरणदेवतानां प्रत्येकैकाहुतीर्जुहुयात् ॥ ३३ ॥

ततः सङ्कल्पिततत्तत्कल्पोक्तविहितद्रव्यैर्होमं कुर्यात्।

तद्यथा ; बहुरूपाख्यजिह्वायां जुहुयात्सर्वकर्मणि। यतः समस्त-

सिद्धीनां सावित्री बहुरूपिकेति ॥ ३४ ॥

यामले : कुण्डमध्ये हिरण्याख्या वश्याकर्षण कर्मणि । कनकाख्या स्तम्भनादौ रक्ताख्या द्वेषणे तथा । कृष्णाख्या मारणे शस्ता सुप्रभा शान्तिकर्मणि । उच्चाटनेऽतिरक्ताख्या बहुरूपा सुसिद्धिदा ॥ ३५ ॥ ॐ भूरग्नये पृथिव्यै महते च स्वाहा । ॐ भूवो वायवे अन्तरीक्षाय च दिवे महते च स्वाहा । ॐ स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा ॥ ३६ ॥

काम्यहोमे अंगुलिनियमस्तु : तर्जन्यंगुष्ठयोगात्तु शान्त्यर्थं जुहुयान्नरः । दाहज्वराभिचाराणामनामांगुष्ठमुद्रया । विद्वेषोच्चाटने चैव मारणे च प्रशस्यते । प्रदेशिनीमध्यमाभ्यां वधोपशमनं भवेत् । वपुर्मेधा तथा कान्तिर्नीतिपुष्ट्यादिके तथा । आकर्षणानि सर्वाणि दूरादर्थगतानि च । तर्जन्यनामिकायोगात्सद्य एव भवन्ति हि । मोहनं वश्यकामश्च प्रीति-संवर्द्धनन्तथा । प्रदेशिनी कनिष्ठाभ्यां सर्वमेतत्प्रसिध्यति । मोहनाकर्षण-श्चैव क्षोभणोच्चाटनं तथा । कनिष्ठामध्यमांगुष्ठसंयोगेन तु लीलया । विधियुक्तेन होमेन तथा द्रव्यानुयोगतः । सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति मुद्रा-मन्त्रप्रयोगतः ॥ ३७ ॥

ततो होमद्रव्याणि स्रुवेण स्रुचि निधाय, तेनाच्छाद्य, तौ नाभौ (नाभिसमीपे) संस्थाप्य, इतः पूर्वमित्यादिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण च पूर्णाहुतिं दत्वा संहारमुद्रया आत्मन्युद्वास्य पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा, अग्नेर्जिह्वाङ्गमूर्त्तीनामेकैकाहुतिं दद्यात् ॥ ३८ ॥

ततः पूर्ववन्मेखलोपरि अद्भिः परिषिच्यात्मनि संहारमुद्रया पावकं योजयित्वा परिधीन्सपरिस्तरान् अग्नौ क्षिपेत् । विशेषस्तु नैमित्तिके कर्मणि एतान्दहेत् । नित्ये कर्मणि न दहेत् ।

तथा च शारदायाम् : नैमित्तिके दहेन्मन्त्री नित्ये न तु दहेदिमान् । ॥ ३९ ॥

ततो दक्षिणां दद्यात् ।

तथा च ज्ञानमालायाम् : सुवर्णमयुते दद्यात्लक्ष्ये दशसुवर्णकम् । दक्षिणा तु प्रदातव्या यथा होमे तथा जपे । अलाभे दक्षिणा ज्ञेया गुरुसन्तोषकारिणीति ॥ ४० ॥

यदि दीक्षाङ्गहोमस्तदा देवताया आवरणदेवतायाश्च होमानन्तरम् । आज्यान्वितैस्तिलैः कल्पविहितैर्द्रव्यैर्वा देवताया अष्टोत्तर सहस्रं शतं वा यजुहुात् ॥ ४१ ॥

ततः सुधौतदन्ताढ्यं शिष्यं स्नातं कुण्डान्तिकमानीय दिव्यदृष्ट्या तं विलोक्य- तच्चैतन्यं गुरुरात्मनि संयोज्य, अध्वविशोधनं कुर्यात्।

तद्यथा : कुशगुच्छेन शिष्यस्य पादं स्पृशन् ॐ शोधयामि कलाध्वनि स्वाहेति आज्यान्वितैस्तिलैरष्टाहुतीर्जुहुयात्। एवमन्धुं (पायुं) स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि तत्त्वाध्वानं स्वाहा। नाभिं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि भुवनाध्वानं स्वाहा। हृदयं स्पृष्ट्वा शोधयामि वर्णाध्वनं स्वाहा। भालं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि पदाध्वानं स्वाहा। मूर्द्धानं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि मन्त्राध्वानं स्वाहा। सर्वत्राष्टाहुतीर्जुहुयात्। एवं क्रमेण तत् परशिवे संहृत्य, पुनः सृष्टिवर्त्मना तत्तदाहुतिभिः क्रमेण जनयेत्।

तद्यथा : मन्त्राध्वनं पदाध्वा पदाध्वनो वर्णाध्वा वर्णाध्वनो भुवनाध्वा भुवनाध्वनस्तत्त्वाध्वा तत्त्वाध्वनः कलाध्वा। एवं क्रमेण जुहुयात्। ततो दिव्यदृष्ट्या तं शिष्यं विलोकयन् आत्मस्थितं तच्चैतन्यं शिष्ये नियोजयेत्। ततः स्रुवा पूर्णाहुतिदनादि कर्म समाप्य, पूर्वोक्त, क्रमेण दीक्षां कारयेत्। इति बृहद्धोमपद्धतिः ॥ ४२ ॥

अथ होमद्रव्याणां परिमाणम् :

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयःस्मृतम्। उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः। तत्समं मधुदुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्। दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः। पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः शक्तयोऽपि तथोदिताः। गुडपलार्द्धमानं स्यात्शर्करापि तथा स्मृता। ग्रासार्द्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः। एकैकं पत्रपुष्पाणि तथा पूपानि कल्पयेत्। कदलीफलनारङ्गं फलान्येकैकशो विदुः। मातुलुङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा कृतम् ॥ ४३ ॥ अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः। त्रिधाकृतं फलं बिल्वं कपित्थं खण्डितं द्विधा। उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा। फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशांगुलाः। दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरंगुला व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्‌गा माषा यवा अपि। तण्डुलाः स्युस्तदर्द्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः। गोधूमा रक्तकमला विहिता मुष्टिमानतः। तिलाश्चुलुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणतः। शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः। पुरं (गुग्गुलु) वदरमानं स्याद्रामठं (हिंगु) तत्समं स्मृतम्। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमानि च। तिन्तिडीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः ॥ ४३ क ॥

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत्समिद्धोमेषु देशिकः। शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषवस्तुषु ॥ ४४ ॥ अस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेर्विपश्चित्सर्वकर्मसु। कर्णहोमे भवेद्व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वं समीरितम्। नासिकायां मनःपीडामस्तके धनसंशयः ॥ ४५ ॥ यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतो धूमोऽत्र नासिका। यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यतोऽङ्गारस्ततः शिरः। यत्र प्रज्वलिता ज्वाला सा जिह्वा जातवेदसः ॥ ४६ ॥ स्वर्णसिन्दूरबालार्ककुंकुमक्षौद्रसन्निभः। सुवर्णरेतसो वर्णः शोभनः परिकीर्त्तितः ॥ ४७ ॥ भेरीवारिदहस्तीन्द्र-निनादोऽग्निः शुभावहः। नाशचम्पकपुन्नागपाटलायूथिकानिभः। पद्मे-न्दीवरकह्लारसर्पिर्गुग्गुलुसन्निभः। पावकस्य शुभो गन्ध इत्युक्तस्तन्त्र-वेदिभिः ॥ ४८ ॥ प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभाः शिखिनः शिखाः। सुखदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ॥४९॥ कुन्देन्दुधवलो धूमो वह्नेः प्रोक्तः शुभावहः। कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत्। श्वेतो राज्यं निहन्त्याशु वायसस्वरसन्निभः। खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत्। पूतिगन्धो हुतभुज्यो होतुर्दुःखप्रदो भवेत् ॥ ५० ॥ छिन्ना वृत्ता शिखा कुर्यात्मृत्युं धनपरिक्षयम्। शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः। हानिं तुरगजातीनां गवाश्व कुरुतेऽचिरात्। एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः। मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतीः। इति होमप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ षट्कर्मलक्षणम् :

शारदायाम् : अथाभिधास्ये तन्त्रेऽस्मिन्सम्यक् षट्कर्मलक्षणम्। सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिद्धिदम् ॥ १ ॥ शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने ततः। मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः॥ २ ॥ रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता। वश्यं जनानां सर्वषां विधेयत्वमुदीरितम् ॥ ३ ॥ प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं तदुदीरितम्। स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ॥ ४ ॥ उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकोर्त्तितम्। प्राणिनां प्राणहरणं मारणं तदुदाहृतम्। स्वदेवता-दिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥ ५ ॥ रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथाक्रमम्। षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥

कालीभद्रकाली। ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिवायव्यग्नानां दिशो मताः। सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात्। ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं

दिने दिने। बसन्तग्रीष्मवर्षाख्य-शरद्धेमन्तशैशिराः ॥ ७ ॥

अत्र घटिका दण्डाः। यद्वा अर्द्धरात्रं शरत्कालो हेमन्तश्च प्रभातकः। पूर्वाह्णो वै बसन्तः स्यात्मध्याह्नो ग्रीष्म एव च। प्रावृट्कालोऽपराह्णः स्यात्प्रदोषः शिशिर स्मृतः ॥ ८ ॥

अथवा : ऊषायोगे च हेमन्तः प्रभाते शिशिरागमः। प्रहरार्द्धे बसन्तः स्यात्ग्रीष्मो मध्यन्दिनागमे। तुर्ययामे च वर्षाख्यः शरदस्तं गते रवौ ॥ ९ ॥ हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो बसन्तो वश्यकर्मणि। शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः। प्रावृडुच्चाटने ज्ञेय शरन्मारणकर्मणि ॥ १० ॥

अथ तिथिनियमः :

पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा। बुध्येज्यवारसंयुक्ता विज्ञेया शान्ति कर्मणि। गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी। नवमी पौष्टिके शस्ता चाष्टमी नवमी तथा। दशम्येकादशो चैव भानुशुक्र-दिनान्विता। आकर्षणे त्वमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा। पौर्णमासी मन्दभानौ विज्ञेया द्वेषकर्मणि ॥ ११ ॥ कृष्णा चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्द-वारकाः। उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे च विशेषतः ॥ १२ ॥ चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च। मन्द भौमदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ॥ १३ ॥ बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी सिता। पौर्णमासी तु विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि ॥ १४ ॥ शुभग्रहोदये कुर्यात् शुभानि च शुभोदये। रौद्रकर्मणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम् ॥ १५ ॥

चामुण्डा तन्त्रे : जपेत्पूर्वमुखो वश्ये दक्षिणस्याभिचारके। पश्चिमे स्तम्भनं विद्यादुत्तरे शान्तिकं भवेत् ॥ १६ ॥ आकर्षणमथाग्नेये नैर्ऋते मारणं तथा। उच्चाटनन्तु वायव्ये ऐशान्यां मोक्षदायकम्। तथाभिचारे कार्या च दक्षिणप्लवना मही ॥ १७ ॥ बसनं लोहितं प्रोक्तं ऊष्णीषं लोहितं स्मृतम्। भूषणं लौहद्रव्येण वामेन पूजनादिकम् ॥ १८ ॥ नरस्नायुविशेषेण मारणे रज्जुरीरिता। मृतस्य युद्धशून्यस्य दन्तेन गर्दभस्य वा। कृत्वाक्षमालां जप्तव्यं शत्रूणां वधमिच्छता। भग्नेभदन्त-मणिभिर्जपेदाकर्षकर्मणि। साध्यकेशसूत्रप्रोतैस्तुरङ्गदशनोद्भवैः। अक्ष-मालां समालोक्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ॥ १९ ॥

अथ आसनादिकथनम् :

पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः। वज्रं भद्रकमित्या-

हुरासनानि मनीषिणः ॥ २० ॥ पद्मासनन्तु संयोज्य जानूर्वोरन्तरे करौ। निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम्।

अन्यानि वक्तव्यानि ॥ २१ ॥ षण्मुद्राः क्रमतो ज्ञेयाः पद्मपाश गदाह्वयाः। मूषलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु ॥ २२ ॥ जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निरुदीरितः। स्तम्भने पृथिवीशस्ता विद्वेषे व्योम कीर्त्तितम्। उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूयोऽग्निर्मारणे स्मृतः ॥ २३ ॥ तत्तद्भूतोदये सम्यक्तत्तन्मण्डलसंयुतम्। तत्तत्कर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निश्चितात्मना ॥ २४ ॥ शीतांशुसलिल-क्षौणी-व्योम-वायु-हविर्भुजाम्। वर्णाः स्युर्मन्त्र बीजानि षट्कर्मसु यथाक्रमम् ॥ २५ ॥ ग्रथनश्च विदर्भश्च संपुटो रोधनन्तथा। योगः पल्लव इत्येते विन्यासाः षट्सु कर्मसु ॥ २६ ॥ मन्त्रेणान्तरितान् कुर्यान्नामवर्णान् यथाविधि। ग्रथनं तद्विजानीयात्प्रशस्तं शान्तिकर्मणि ॥ २७ ॥ मन्त्रार्णद्वयमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत्। विदर्भ एव विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि ॥ २८ ॥ आदावन्ते च मन्त्रः स्यान्नाम्नोऽसौ संपुटः स्मृतः। एष स्यात्स्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः ॥ २९ ॥ नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं मतम्। विद्वेषणविधानेषु प्रशस्तमिदमुत्तमम् ॥ ३० ॥ मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योगः प्रोच्चाटने मतः। अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रः पल्लवो मारणे मतः ॥ ३१ ॥ सितरक्तपीतमिश्रकृष्णधूम्राः प्रकीर्त्तिताः। वर्णतो मन्त्रसंप्रोक्ता देवताः षट्सु कर्मसु ॥ ३२ ॥ मन्त्राणां लेखनद्रव्यं चन्दनं रोचनं निशा। गृह-धूमश्चिताङ्गारो मारणेऽष्टविषाणि च। श्येनाग्नि लोणपित्तानि धुस्तूर-करसः शुभः। गृह धूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम् ॥ ३३ ॥ देवता कालमुद्रादीन् सम्यक् ज्ञात्वा विचक्षणः। षट्कर्माणि प्रयुञ्जयीत यथोक्तफलसिद्धये ॥ ३४ ॥

कुलार्णवे : उच्चाटने वषट्प्रोक्तं हूं फडन्तश्च मारणे। स्तम्भने च नमः प्रोक्तं स्वाहा शान्तिकपौष्टिके ॥ ३५ ॥ होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः। मन्त्रान्ते योजयेन्मत्री जपकाले यथास्थिति।

अस्यार्थः : एतानि तत्तत्कर्माणि जपकाले मन्त्रान्ते योजयित्वा मन्त्रं जपेत्। होमादिषु नायं नियमः। इत्याह होमे नेति इति केचित्। तन्न। अग्निकार्ये जपेत्स्वाहा नमः सर्वत्र चार्चने। शान्ति-पुष्टि वशद्वेषाकर्षो-च्चाटनमारणे। स्वाहा स्वधा वषट् हुश्च वौषट् फट् योजयेत्क्रमात्। वश्याकर्षणसन्तापज्वरे स्वाहा प्रकीर्त्तिता। क्रोधोपशमने शान्तौ प्रीतौ

योज्यं नमो बुधैः। वौषट् सम्मोहनोद्दीप-पुष्टि-मृत्युञ्जयेषु च। हुङ्कारं प्रीतिनाशे च मारणेच्छेदने तथा। उच्चाटने च विद्वेषे वौषट्पंगुकृतौ वषट्। मन्त्रोद्दीपन कार्येषु लाभालाभे वषट् स्मृतः। इति विशेषवचना-द्धोमेऽप्ययं विधिः ॥ ३६ ॥

शान्तिकादौ मन्त्रलिखने पात्रादिनियमस्तु तत्रैव: शान्तिके राजतं ताम्रं भूर्जपत्रन्तु वश्यके। सर्वकार्येषु सौवर्णं क्रूरे स्यात्प्रेतकर्पटम् ॥ ३७ ॥ त्रिगन्धं शान्तिके प्रोक्तं पञ्चगव्यन्तु वश्यके। सर्वकार्येऽष्टगन्धः स्यात्क्रूरे चाष्टविषाणि च ॥ ३८ ॥ शान्तिके लेखनीदूर्वा वश्यादौ शिखिपुच्छिका। हेम्ना सर्वाणि कार्याणि क्रूरे स्यात्काकपुच्छिका ॥ ३९ ॥ गृहेषु शान्किर्म स्यात्वश्यञ्च चण्डिकागृहे। देवालये च सर्वाणि श्मशाने क्रूरकर्म च। ॥ ४० ॥

अथ भूतानामुदयः :

दण्डकारा गतिर्भूमेः पुटयोरुभयोरपि। तोयस्यपावकस्योर्ध्वं गात-स्तिर्यक् नभस्वतः। गतिर्व्योम्नो भवेन्मध्ये भूतानामुदयः स्मृतः। धरणेरुदये कुर्यात्स्तम्भनं वशमात्मवित्। शान्तिकं पौष्टिकं कर्म तोयस्य समये वसोः। मारणादीनि मरुतो विपक्षोच्चाटनादिकम्। क्ष्वेडादिनाशनं शस्तमुदये च विहायसः ॥ ४१ ॥

अथ भूतानां मण्डलानि :

वृत्तं दिवस्तत्षड्विन्दुलाञ्छितं मातरिश्वनः। त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वह्नेरर्द्धेन्दुसंयुतम्। अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्रं सवज्रकम्। तत्तद्भूत-समाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः। वर्णैः स्वै रञ्जितान्याहुः स्वस्वना-मावृतान्यपि। स्वच्छं वियत्मरुत्कृष्णो रक्तोऽग्निर्विशदं पयः। पीता भूमिरित्यादि ॥ ४२ ॥

प्रयोगान्तरं कुलार्णवे : एकलक्षं जपेन्मन्त्रं ध्यानन्याससमन्वितः। प्रयोगदोष शान्त्यर्थमात्मरक्षार्थकारणम्। नचेत्फलञ्च नाप्नोति देवता-शापमाप्नुयात् ॥ ४३ ॥

यत्तु : न कुर्यात्मारणं कर्म कुर्याचेदयुतं जपेत्। तत्तु प्रायश्चित्त-परमिति।

अथ स्तवकवचानि

वाराहीतन्त्रे : प्रणवश्चादिमे जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत् । अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपुरुषः । एवं सर्वत्र विज्ञेयमन्यथा विफलं भवेत् ॥ ४५ ॥

अथादौ भुवनेश्वरीस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच : अथानन्दमयीं साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् । ईडे सकलसम्पत्त्यै जगत्कारणमम्बिकाम् ॥ १ ॥ आद्यामशेषजननीमरविन्द-योनेर्विष्णोः शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम् । सृष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणां, स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम् ॥ २ ॥ पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुतां वरेण होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाजः । देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ताहेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि ॥ ३ ॥ त्रिस्रोतसः सकलदेवसमर्चितायाः वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः । त्वत्पाद-पङ्कजपरागपवित्रितासु शम्भोर्जटासु नियतं परिवर्तनं यत् ॥ ४ ॥ आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिपः कलानां नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा । एकस्य मोदनविधौ परमेक ईष्टे त्वं तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या ॥ ५ ॥ आद्याप्यशेषजगतां नव यौवनासि शैलाधिराजतनयाप्यतिकोम-लासि । त्रय्याः प्रसूरपि यथा न समीक्षितासि ध्येयासि गौरि मनसो न पथि स्थितासि ॥ ६ ॥ आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् । नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ये त्वां निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ॥ ७ ॥ कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुजातगन्धैः । आराधयन्ति हि भवानि समुत्सु-कास्त्वां ते खल्वशेषभुवनादिभुवः प्रथन्ते ॥ ८ ॥ आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् । विद्युल्लतावलयविभ्रम-मुद्वहन्ती पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ॥ ९ ॥ तन्निर्गतामृतरसैः परिषिक्तगात्रमार्गेण तेन निलयं पुनरप्यवाप्ता । येषां हृदि स्फुरसि जातु न ते भवेयुर्मातर्महेश्वरकुटुम्बिनि गर्भभाजः ॥ १० ॥ आलम्बि-कुण्डलभराममभिरामवक्त्रामापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम् । चिन्ताक्ष-

सूत्रकलसां लिखिताढ्यहस्तामावर्तयामि मनसा तव गौरि मूर्तिम् ॥११॥ आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषट्कमाबध्य चेन्द्रियगणं मनसि प्रसन्ने। पाशांकुशाभयवराढ्यकरां सुवक्त्रामालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् ॥ १२ ॥ उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भिरावर्जितामृतघटैरभिषिच्य-माना। हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती पद्मापि साभयवरा भवसि त्वमेव ॥ १३ ॥ अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभिर्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम्। दूर्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षान्न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गा ॥ १४ ॥ आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रां गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम्। पीतांशुकामसितकान्तिमनङ्गतन्द्रामाद्यां पुलिन्द-तरुणीमसकृत्स्मरामि ॥ १५ ॥ हंसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरकृष्टै मूर्तैरिवाप्त-वचनैरनुगम्यमानौ। पद्माविवोर्ध्व मुखरूढसुजातनालौ श्रीकण्ठपत्नि शिरसा विदधे तवांघ्री ॥ १६ ॥ द्वाभ्यां समीक्षितुमतृप्तिमतेव दृग्भ्यामु-त्पाटय भालनयनं वृषकेतनेन। सान्द्रानुरागतरलेन निरीक्ष्यमाणे जङ्घे शुभे अपि भवानि तवानतोस्मि ॥ १७ ॥ ऊरू स्मरामि जितहस्तिकरा-वलेपौ स्थौल्येन मार्द्दवतया परिभूतरम्भौ। श्रोणीभरस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौ स्तम्भाविवाम्बरवसा तव मध्यमेन ॥ १८ ॥ श्रोण्यौ स्तनौ च युगपत्प्रथरिष्यतोच्चैर्बाल्यात्परेण वयसा परिहृष्टसारः। रोमा-वलीविलसितेन विभाव्य मूर्ति मध्यं तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥ १९ ॥ सख्यः स्मरस्य हरनेत्रहुताशभीरोलवर्ण्यवारिभरितं नवयौवनेन। आपाद्य दत्तमित्र पल्लवमप्रविष्यं नाभि कदापि तव देवि न विस्मरेयम् ॥ २० ॥ ईशोपि गेहपिशुनं भसितं दधाने काश्मरी कर्द्दममनुस्तनपङ्कजे ते। स्नातोत्थितस्य करिणः क्षणलक्ष्यफेनौ सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भौ ॥ २१ ॥ कण्ठातिरिक्तगलदुज्वलकान्ति-धाराशोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन। कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ मातर्मम स्मृतिपथं न विलङ्घयेताम् ॥ २२ ॥ नात्यायतं रचितकम्बुविलासचौर्यं भूषाभरेण विविधेन विराजमानम्। कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ॥ २३ ॥ अत्यायताक्षमभिजातललाटपट्टं मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोल-रेखम्। बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः ॥ २४ ॥ आविस्तुषारकरलेखमनल्पगन्धपुष्पोपरिभ्रमदलिव्रज-निर्विशेषम्। यश्चेतसा कलयते तव केशपाशं तस्य स्वयं गलति देवि

पुराणपाठ्यः ॥ २५ ॥ श्रुतिसुरचितपाकं धीमतां स्तोत्रमेतत्पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा । स भवति पदमुच्चैः सम्पदं पादनम्रक्षितिप-मुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय ॥ २६ ॥

इति भुवनेश्वरीस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ भुवनेश्वरीकवचम् ।

श्रीदेव्युवाच : भुवनेश्वर्याश्च देवेश या या विद्याः प्रकाशिताः । श्रुताश्चाधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ १ ॥ त्रलोक्यमङ्गलं नाम कवचं यत्पुरोदितम् । कथयस्व महादेव प्रीतिकरं परम् ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच : शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानावधारय । त्रैलोक्य-मङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥ ३ ॥ सिद्धविद्यामयं देवि सर्वैश्वर्यं समन्वितम् । पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ॥ ४ ॥

त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः । छन्दो विराट् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ५ ॥

ह्रीं बीजं मे शिरः पातु भुवनेशो ललाटकम् । ऐं पातु दक्षनेत्रं मे ह्रीं पातु वामलोचनम् ॥ १ ॥ श्रीं पातु दक्षकर्णं मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी । वामकर्णं सदा पातु ऐं घ्राणं पातु मे सर्वदा ॥ २ ॥ ह्रीं पातु वदनं देवि ऐं पातु रसनां मम । वाक्पुटा च त्रिवर्णात्मा कण्ठं पातु परात्मिका ॥३॥ श्रीं स्कन्धौ पातु नित्यं ह्रीं भुजौ पातु सर्वदा । क्लीं करौ त्रिपुटेशानी त्रिपुरैश्वर्यदायिनी ॥ ४ ॥ ओं पातु हृदयं ह्रीं मे मध्यदेशं सदावतु । क्रौं पातु नाभिदेशं मे त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ॥ ५ ॥ सर्वबीजं सदा पृष्ठं पातु सर्ववशंकरी । ह्रीं पातु गुह्यदेशं मे नमोभगवति कटिम् ॥ ६ ॥ माहेश्वरी सदा पातु सक्थिनी जानुयुग्मकम् । अन्नपूर्णा सदा पातु स्वाहा पातु पदद्वयम् ॥ ७ ॥ सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णाखिलं वपुः । तारं माया रमा कामः षोडशार्णास्ततः परम् ॥ ८ ॥ शिरःस्था सर्वदा पातु विंश-त्यर्णात्मिका परा । तारंदुर्गेयुगंरक्षणीस्वाहेति च दशाक्षरी ॥९॥ जयदुर्गा घनश्यामा पातु मां सर्वतो मुदा । मायाबीजादिका चैषा दशार्णा च ततः परा ॥ १० ॥ उत्तप्तकाञ्चनाभासा जयदुर्गाऽनलेऽवतु । तारं ह्रीं दुं च दुर्गायै नमोऽष्टार्णात्मिका परा ॥ ११ ॥ शङ्खचक्रधनुर्बाणधरा मां दक्षिणे-

ऽवतु। महिषमर्दिनि स्वाहा वसुवर्णात्मिका परा ॥ १२ ॥ नैर्ऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुरनाशिनी। माया पद्मावती स्वाहा सप्तार्णा परिकीर्तिता ॥ १३ ॥ पद्मावती पद्मसंस्था पश्चिमे मां सदाऽवतु। पाशांकुशपुटा मायेहि परमेश्वरि स्वाहा ॥ १४ ॥ त्रयोदशार्णा ताराद्या साश्वारूढाऽनलेऽवतु। सरस्वति पंचस्वरे नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॥१५॥ स्वाहा वस्वक्षरी विद्या मामुत्तरे सदाऽवतु। तारं माया तु कवचं खे रक्षेत्सततं वधूः ॥ १६ ॥ हूं क्षें ह्रीं फट् महाविद्या द्वादशार्णाखिलप्रदा। त्वरिताष्टाहिभिः पायाच्छिवकोणे सदा च माम् ॥ १७ ॥ ऐं क्लीं सौः सततं बाला मूर्द्धदेशे ततोऽवतु। बिंद्वन्ता भैरवी बाला भूमौ मां सर्वदाऽवतु ॥ १८ ॥

इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यमङ्गलं परम्। सारात्साररतरं पुण्यं महाविद्यौघविग्रहम् ॥ १९ ॥ अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोपि धनेश्वरः। इन्द्राद्याः सकला देवा धारणात्पठनाद्यतः। सर्वसिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः। पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वामूलेनैव सकृत्पठेत् ॥ २० ॥ संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात्। प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे ॥ २१ ॥ वाणी च निवसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः। यो धारयति पुण्यात्मा त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ॥ २२ ॥ कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः। सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥२३॥ पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा। बहुपुत्रवती भूयाद्वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ २४ ॥ ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तं जनम्। एतत्कवचमज्ञात्वा यो भजेद्भुवनेश्वरीम् ॥ २५ ॥ दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥ २७ ॥

इति श्रीरुद्रयामले देवीश्वरसंवादे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम भुवनेश्वरीकवचं समाप्तम्।

अथ अन्नपूर्णास्तोत्रम्।

ॐ नमः कल्याणदे देवि नमः शङ्करवल्लभे। नमो भक्तिप्रिये देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ नमो मायागृहीताङ्गी नमः शङ्करवल्लभे। माहेश्वरि नमस्तुभ्यमन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ अन्नपूर्णे हव्यवाहपत्नीरूपे हरप्रिये। कलाकाष्ठास्वरूपे च ह्यन्नपूर्ण नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ उद्यद्भानुसहस्राभे नयनत्रयभूषिते। चन्द्रचूडे महादेवि ह्यन्नपूर्ण नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ विचित्रवसने देवि त्वन्नदानरतेऽनधे। शिवनृत्यकृतामोदे ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥ षट्कोणपद्ममध्यस्थे षडङ्गयुवतीमये। ब्रह्माण्यादिस्वरूपे च

ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ देवि चन्द्रकलापीठे सर्वसाम्राज्यदायिनी । सर्वानन्दकरे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥७॥ साधकाभीष्टदे देवि भवदुःख विनाशिनि । कुचभारनते देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥ इन्द्राद्यर्चित पादाब्जे रुद्रादिरूपधारिणि । सर्वसम्पत्प्रदे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

पूजाकाले पठेद्यस्तु स्तोत्रमेतत्समाहितः । तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः ॥ १० ॥ प्रातःकाले पठेद्यस्तु मन्त्रजापपुरःसरम् । तस्यैवान्नसमृद्धिः स्याद्वर्द्धमाना दिने दिने ॥ ११ ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन । प्रकाशात्सिद्धिहानिस्तद्गोपायेद्यत्नतः सुधीः ॥ १२ ॥

इत्यन्नपूर्णास्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ अन्नपूर्णाकवचम् ।

श्री देव्युवाच : कथिताश्चान्नपूर्णाया या या विद्याः सुदुर्लभाः । कृपया कथिताः सर्वाः श्रुताश्चाधिगता मया ॥ १ ॥ साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत्पुरोदितम् । त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच : शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानवधारय (त्रैलोक्यमङ्गलं नामकवचं ब्रह्मनामकम्) । ब्रह्मविद्यास्वरूपञ्च महदैश्वर्यदायकम् । पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ॥ ३ ॥ त्रैलोक्य-रक्षणस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः । छन्दो विराडन्नपूर्णा देवता सर्वसिद्धिदा । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ४ ॥

ह्रीं नमो भगवत्यन्ते माहेश्वरि पदं ततः ॥ ५ ॥ अन्नपूर्णे ततः स्वाहा चैषा सप्तदशाक्षरी । पातु मामन्नपूर्णा सा या ख्याता भुवनत्रये ॥ ६ ॥ विमाया प्रणवाद्यैषा तथा सप्तदशाक्षरी । पात्वन्नपूर्णा सर्वाङ्गं रत्नकुम्भान्नपात्रदा ॥ ७ ॥ श्रीबीजाद्या तथैवैषा द्विरन्ध्रार्णा तथा मुखम् । प्रणवाद्या भ्रुवौ पातु कण्ठं वाग्बीजपूर्विका ॥८॥ कामबीजादिका चैषा हृदयं तु महेश्वरी । तारं श्रीं ह्रीं च नमोन्ते च भगवतीपदं ततः ॥९॥ माहेश्वरीपदं चान्नपूर्णे स्वाहेति पातु मे । नाभिमेकार्णविंशर्णा पायान्माहेश्वरी सदा ॥ १० ॥ तारं माया रमा कामः षोडशार्णास्ततः परम् । शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा ॥ ११ ॥ करौ पादौ सदा पातु रमा कामो ध्रुवस्तथा । ध्वजञ्च सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका च या ॥१२॥

अन्नपूर्णा महाविद्या ह्रीं पातुभुवनेश्वरी। शिरः श्रीं ह्रीं तथा क्लीं च त्रिपुटा पातु मे गुदम् ॥ १३ ॥ षट्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि पुनन्तु माम्। इन्द्रो मां पातु पूर्वे च वह्निकोणेऽनलोऽवतु ॥१४॥ यमो मां दक्षिणे पातु नैऋत्यां निर्ऋतिस्तथा। पश्चिमे वरुणः पातुवायव्यां पवनोऽवतुस्तथा ॥ १५ ॥ कुबेरश्चोत्तरे पातु मामैशान्यं शङ्करोऽवतु। ऊर्ध्वाधः पातु सततं ब्रह्मानन्तो यथाक्रमात् ॥ १६ ॥ पान्तु वज्राद्ययुधानि दशदिक्षु यथाक्रमात्।

इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यरक्षणं परम् ॥ १७ ॥ यद्धृत्वा पठनाद्देवाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च धारणात्पठनाद्यतः ॥ १८ ॥ सृजत्यवति कल्पे-कल्पे पृथक्पृथक्। पुष्पाञ्जल्यष्टकं देव्यै मूलेनैव समर्पयेत् ॥ १९ ॥ कवचस्यास्य पठनात्पूजायाः फलमाप्नुयात्। वाणी वक्त्रे वसेत्तस्य सत्यंसत्यं न संशयः ॥ २० ॥ अष्टोत्तरशतं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः। भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥ २१ ॥ कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोपि पुण्यवतां वरः। ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रं प्राप्य पार्वति। माल्यानि कुसुमान्येव सुखदानि भवन्ति हि ॥२२॥

इति भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे अन्नपूर्णा कवचं समाप्तम्।

अथ त्रिपुटास्तोत्रम् :

वाराभीतिहस्तं द्विबाहुं प्रसन्नं, शिवं सुप्रसन्नं स्वशक्त्योपविष्टम्। प्रसन्नास्यविम्बं प्रकाशस्वरूपं शिरः पद्ममध्ये गुरुं भावयामि ॥ १ ॥ वकं वह्निसंस्थं त्रिमूर्त्या प्रजुष्टं, शशाङ्केन युक्तं तवाद्यं स्वबीजम्। सुवर्णप्रभं ये जपन्ति त्रिशक्ते, श्रियं सौभगत्वं लभन्ते नरास्ते ॥ २ ॥ नभोवायुमित्रं ततो वामनेत्रं, सुधाधामविम्बं नियोज्यैकवक्त्रम्। द्वितीयं स्वबीजं सुरश्रेणिवन्द्यं त्वदीयं विभाव्य श्रियं प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥ विरिञ्चिं क्षितिस्थं ततो वामनेत्रं विधुं नादयुक्तं दिनेशाभबीजम्। विभाव्यैव सम्मोहयन्ति त्रिलोकीं जपादीश्वरत्वं लभन्ते नरेन्द्राः ॥ ४ ॥ त्रयं सन्नियोज्य स्मरारिप्रिये ये, त्रिसन्ध्यं जपन्ति त्वदङ्गं विभाव्य। न तेषां रिपुर्वाक्प्रयोग करोति, स्मरास्तेऽङ्गनानां गृहे श्रीस्तु तेषाम् ॥ ५ ॥ मुखे भारती गद्यपद्यप्रबन्धा, न हिंसन्ति हिंस्राः सुरास्तान्नमन्ति। तदंघ्रिद्वयं भूषणं मूर्ध्नि राज्ञां करे सिद्धयो दुर्ग्रहास्तांस्त्यजन्ति ॥६॥ वने पारिजातद्रुमाणां पृथिव्यां सुवर्णप्रभायां मणिव्यूहगेहे। स्मरेद्वेदिकायां लसद्रत्नसिंहासने पद्ममष्टारकं संविचिन्त्य ॥ ७ ॥ स्फुरत्कर्णिकायां परं

योनियुग्मं तदन्तर्गतामुच्चहेमप्रभां याम् । लसत्कुण्डलामिन्दुवक्त्रां त्रिनेत्रां स्फुरत्कम्बुकण्ठां सुवक्षोजनम्राम् ॥ ८ ॥ महारत्नवज्रोल्लसद्बाहुवृन्दैः सुपद्मद्वयं पाशकं कार्मुकञ्च । सुवर्णांकुशं पुष्पबाणान् । दधानां बृहद्रत्न-भूषां सुमध्यां सुकाञ्चीम् ॥ ९ ॥ तुलाकोटिरस्यस्फुरत्पादपद्मां किरीटाद्य-लंकारयुक्तां प्रसन्नाम् । सिते चामरे दर्पणं तत्करण्डं समुद्गं सुकर्पूरपूर्णं धृताभिः ॥ १० ॥ त्रिलोकीविधात्रीं जगत्तापहर्त्रीं, जगत्क्षोभकर्त्रीम् जगल्लोकधात्रीम् । सदानन्दपूर्णां हकारार्द्धवर्णां त्रिविन्दुस्वरूपां त्रिशक्ति भजामि, ॥ ११ ॥ चिरं चिन्तयित्वा तदेतत्स्वरूपां, पूरो यन्त्रमध्ये समावाह्य भक्त्या । स्वयम्भूप्रसूनादिभिः पूजयित्वा, चतुर्वर्गसिद्धि लभेत् पामरोऽपि ॥ १२ ॥ श्रियं श्रीपतिं पार्वतीमोश्वरञ्च, रतिं कामदेवं षडङ्गेन सार्द्धम् । स्वयोनौ तथा मन्त्रमुक्त्वा भवानीं क्रमात्पूजयित्वा नरेन्द्रो भवेत् सः ॥१३॥ निधी द्वौ च पार्श्वद्वये संविभाव्य, प्रपूज्या महिष्यस्ततो लोकपालाः । तदस्त्राणि तत्तद्दलाग्रे प्रपूज्य, भवस्याष्टसिद्धि लभेन्मान-वोऽपि ॥ १४ ॥ क्षितिस्त्वं विधात्री जगत्सृष्टिकर्त्री, त्वमापोऽपि विष्णु र्जगत्पालिका च । त्वमग्निस्तु रुद्रौ जगत्क्षोभकर्त्री, त्वमैश्वर्ययुक्ता जगद्वायुरूपा ॥ १५ ॥ त्वमाद्या शिवे शम्भुकान्ते शरण्ये, जगद्ब्रह्मरन्ध्रे सदारं भ्रमीषि । निराधारगम्या भवस्यैकपूण्या, त्वमाकाशकल्पा भवानि प्रसीद ॥ १६ ॥ भवाम्भोधिमध्ये निपात्यैव सर्वं, मुनीनाञ्च गर्वं सुखर्वं करोषि । अतस्त्वां न जाने चिदानन्दरूपे, प्रकाशस्वरूपे भवानि प्रसीद ॥ १७ ॥ जपित्वा भक्त्या जनो मन्दचेता, जपन्नेकलक्षं कवित्वं करोति । विचिन्त्य स्वरूपं त्वदीयं त्रिलोक्यां, लभेद्दुर्लभत्वं भवानि प्रसीद ॥ १८ ॥ त्वमाधारशक्तिस्त्वमाधेयरूपा, जगद्व्यापिका त्वं जगद्व्याप्यरूपा । अभावस्त्वमेका गुणातीतरूपा त्वमेवासि भावो भवानि प्रसीद ॥ १९ ॥ अणुस्त्वं विभुस्त्वं त्वमेवासि विश्वं, स्तुतिः का भवत्या जगत्यां विभाति । तथापि त्वदीया गुणा मां दिशन्ति, स्तुतिं कर्त्तुमेवं भवानि प्रसीद ॥ २० ॥ इदं स्तोत्रमत्यन्तगुह्यं नरा ये, पठन्ति त्रिसन्ध्यं कुलान्ते जपित्वा । न तेषामसाध्यं त्रिलोकीजनानां, लभन्ते स्वरूपं भवानि प्रसीद ॥ २१ ॥

इति त्रिपुटास्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ त्रिपुटाकवचम् :

श्रीदेव्युवाच : भगवन्-सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग । त्रिशक्तिरूप-

लक्ष्म्याश्च कवचं यत्प्रकाशितम् । सर्वार्थसाधनं नाम कथयस्व मयि प्रभो ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् । सर्वार्थसाधनं नाम त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम् ॥ २ ॥ सर्वसिद्धिमयं देवि सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ॥ ३ ॥ सर्वार्थसाधनस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः । छन्दो विराट् त्रिशक्तिः श्रीजंगद्धात्री च देवता । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तित ॥ ४ ॥ श्रीं बीजं मे शिरः पातु लक्ष्मीरूपा ललाटकम् । ह्रीं पातु दक्षनेत्रं मे वामनेत्रं सुरेश्वरी ॥ ५ ॥ क्लीं पातुदक्षपार्श्वं मे वामं कामेश्वरी तथा । लक्ष्मीर्घ्राणं सदा पातु वदनं पातु केशवः ॥ ६ ॥ गौरी तु रसनां पातु कण्ठं पातु महेश्वरः । स्कन्धदेश रतिः पातु भुजौ तु मकरध्वजः ॥ ७ ॥ शंखनिधिः करौ पातु वक्ष. पद्मनिधिस्तथा । ब्राह्मी कुक्षि सदा पातु नाभि पातु महेश्वरी ॥ ८ ॥ कौमारी पृष्ठदेशं मे गुह्यं रक्ष तु वैष्णवी । वाराही सक्थिनी पातु ऐन्द्री पातु पदद्वयम् ॥ ९ ॥ भार्यां रक्षतु चामुण्डा लक्ष्मी रक्षतु पुत्रकान् । इन्द्रः पूर्वे सदा पातु आग्नेयामग्नि-देवता ॥ १० ॥ याम्ये यमः सदा पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिस्तथा । पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यां वायुदेवता ॥ ११ ॥ सौम्ये सोमः सदा पातु ऐशान्यामीश्वरोऽवतु । ऊर्ध्वं प्रजापतिः पातु अधश्चानन्तदेवता ॥ १२ ॥ राजद्वारे श्मशाने च अरण्ये प्रान्तरे तथा । जले स्थले चान्तरीक्षे शत्रूणां निचये तथा ॥ १३ ॥ एताभिः सहिता देवी त्रिबीजात्मा महेश्वरी । त्रिशक्तिश्च महालक्ष्मीः सर्वत्र मां सदावतु ॥ १४ ॥ इति ते कथितं देवि सारात्सारतर परम् । सर्वार्थसाधनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥ १५ ॥ अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः । इन्द्राद्याः सकला देवा धारणात् पठनाद्यतः । सर्वसिद्धिश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ १६ ॥ पुष्पाञ्जल्यष्टकं दद्यान्मूलेनैव पठेत्सकृत् । संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे । वाणी च निवसद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १८ ॥ यो धारयति पुण्यात्मा सर्वार्थसाधनाभिधम् । कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः । सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ ९ ॥ पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा । बहुपुत्रवती भूत्वा बन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ २० ॥ ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तत्तनुम् । एतत्कवचमज्ञात्वा यो

जपेत्परमेश्वरीम् । दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥२॥

इति रुद्रयामले त्रिशक्त्याः सर्वार्थसाधनं नाम कवचं समाप्तम् ।

अथ दुर्गायाः शतनामस्तोत्रम् ।

ईश्वर उवाच : शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने । अस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥ १ ॥ ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानि भवमोचिनी । आर्या दुर्गा जया आद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ २ ॥ पिनाकधारिणी चित्रा चन्द्रघण्टा महातपाः । मनोबुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥ ३ ॥ सर्वमन्त्रमयी सत्या सत्यानन्दस्वरूपिणी । अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याऽभव्या सदागतिः ॥ ४ ॥ शम्भुपत्नी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा । सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ ५ ॥ अपर्णा चैकवर्णा च पाटला पाटलावती । पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥ ६ ॥ अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी कुलसुन्दरी ॥ वनदुर्गा च मतङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥ ७ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा । चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥ ८ ॥ विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया सत्या च वाक्प्रदा । बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥ ९ ॥ निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी । मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १० ॥ सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी । सर्वशास्त्रमयी विद्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥ ११ ॥ अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी । कुमारी चैक कन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥ १२ ॥ अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा । महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाफला ॥ १३ ॥ अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ॥ १४ ॥ नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥ १५ ॥ शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी । कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥ १६ ॥

य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् । नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥ १७ ॥ धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिमेव च । चतुरङ्गं तथा चान्ते लाभेन्मुक्तिश्च शाश्वतीम् ॥ १८ ॥ कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् । पूजयेत्परया भक्त्या पठन्नामशताष्टकम् ॥ १९ ॥ तस्या सिद्धिर्भवेद्देव सर्वैः सुरवरैरपि । राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ गोरोचनालक्तककुकुमेन, सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण । विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो, भवेत्सदा धारयते पुरारिः

॥ २१ ॥ भौमावास्यानिशाभागे चन्द्रे शतभिषां गते। विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत्सम्पदां प्रदम् ॥ २२ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे दुर्गानामस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीदुर्गाकवचम् ।

ईश्वर उवाच : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिदम् । पठित्वा धारयित्वा च नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥ १ ॥ अज्ञात्वा कवचं देवि दुर्गामन्त्रश्च यो जपेत् । स नाप्नोति फलं तस्य परे च नरकं व्रजेत् ॥ २ ॥ इदं गुह्यतमं देवि कवचं तव कथ्यते । गोपनीयं प्रयत्नेन सावधानावधारय ॥ ३ ॥ उमा देवी शिरः पातु ललाटं शूलधारिणीं । चक्षुषी खेचरी पातु कर्णौ चत्वरवासिनि ॥ ४ ॥ सुगन्धा नासिके पातु वदनं सर्वसाधिनी । जिह्वां च चण्डिका पातु ग्रीवां सौभद्रिका तथा ॥ ५ ॥ अशोकवासिनी चेतो द्वौ बाहू वज्रधारिणी । कण्ठं पातु महावाणी जगन्माता स्तनद्वयम् ॥ ६ ॥ हृदयं ललिता देवी उदरं सिंहवाहिनी । कटिं भगवती देवी द्वावूरू विन्ध्यवासिनी ॥ ७ ॥ महाबला च जंघे द्वे पादौ भूतलवासिनी । एवं स्थितासि देवि त्वं त्रैलोक्य रक्षणात्मिके रक्ष मां सर्वगात्रेषु दुर्गे देवि नमोस्तु ते ॥८॥ इत्येतत्कवचं देवि महाविद्याफलप्रदम् । यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ ९ ॥ यो न्यसेत्कवचं देहे तस्य विघ्नं न कुत्रचित् । भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयन्तस्य न विद्यते ॥ १० ॥ रणे राजकुले वापि सर्वत्र विजयी भवेत् । सर्वत्र पूजामाप्नोति देवीपुत्र इव क्षितौ ॥ ११ ॥

इति कुब्जिका तन्त्रे दुर्गाकवचं समाप्तम् ॥

अथ महिषमर्दिनीस्तोत्रम् ।

भैरव उवाच : मच्चित्ते चर चण्डि चूर्णितदुराचारप्रचण्डासुरे, स्वैरं दारय भूरिदुर्द्दरदरद्रोहोर्मिमर्मापदः । तेनायं निरुपद्रुतो निरुपमश्रीपादपद्माटवी प्राप्तानन्तरसार्णवे मम मनोहंसश्चिरं नन्दतु ॥ १ ॥ हित्वा चण्डि हिरण्यदारण पटुप्रोद्दामहस्तांगुलिस्फायत्कम्रसुमेरुसोदरशटाटोपं नृसिंहं सुराः । मातस्त्वत्पशुपाशपेषणपटु-श्रीपादसंसेविनं, सवन्ते करिवैरिण किमरिभिर्भीतिर्भवत्सेविनाम् ॥ २ ॥ चण्डि त्वद्विषयान्तराक्षरपदं श्रोत्रान्तरश्चेद्गतं, तत्तत्वं पुरुषप्रकृत्यनुगतं ब्रह्मादिभिर्गीयते । तस्माद्देवि समस्तदैवतसुधासारैकधामस्फुरत्-श्रीमत्पाद-

पयोजचुम्बनपरं मामद्य सम्भावय ॥ ३ ॥ मन्निन्दा यदि वास्तु ते कुलपथाचाराद्दूरं मास्तु वा, कीर्त्तिः केशवकौशिकार्चनचरी नैवास्तु मत्सन्निधिः। मातर्ब्रह्महरिस्मरारि हुतभुग्दैत्यारिसेवास्पदं, श्रीमत्पाद-पयोजचिन्तनविधौ चित्तं सदैवास्तु नः ॥ ४ ॥ निर्दिष्टोऽस्मि यदि तदीयपदयुक्पूर्वापरीभावने, निर्द्दिष्टस्य तदा ममापि विरलं किं वास्तु सिद्धास्पदम्। तस्माद्देवि कृपाभराश्चिततरं श्रीपादपद्मद्वयं, मच्चित्तेऽक्षत-सम्पदं प्रसरतु क्षेमङ्करि क्षम्यताम् ॥ ५ ॥ स्वात्मानं परिरभ्य भूतपति-रप्युन्मादमासादितः, स्फारं जीवनरक्षणे स च कृती नैवाभविष्यत् प्रभुः। दैवाद्विच्युतचन्द्रचन्दनरस प्रागल्भ्यगर्भस्रवन्माध्वीपूर्णभवत्पदैक-कमलामोदेन नास्वादितः ॥ ६ ॥ हाहा मातरनादि-मोहजलधिव्या-हारसिद्धाखिलब्रह्मानन्दरसाभिषेक विलसत्स्वान्तोदरे मादृशि। युष्माकं सुरवृन्दनिर्भरमनस्तापाभिभूतिक्षमः श्रीमद्भक्तिरसातिदुर्द्दिन-परीवाहः सदा सर्पतु ॥ ७ ॥ तत्पादस्फुरदंशुजालजठराच्चण्डांशुकोटि स्खलद्ध्वान्तस्वान्तविसारिनिर्मलचिदानन्दत्रयं दैवतम्। सर्गं संसृजति स्थितिं वितनुते सृष्टिं पुनर्लुम्पति, प्रोद्भिन्नाञ्जन नीलनीरदमहश्चित्ते सदैवास्तु नः ॥ ८ ॥ या शश्वन्महिषच्छलस्फुटमिलद्गर्जद्द्विधावत्-स्खलद्वक्त्रान्तः प्रसरत्तमस्तमशिरोदैत्यं समालम्बते। सा दुर्गा भयदुर्ग-दुर्गतिहरा लक्षान्तरत्रासिनी, दृष्यद्दैवतवैरिदारणपटुर्जीयाज्जयाह्लादिनी ॥ ९ ॥ नृत्यत्खेटकचामराञ्चलचलच्छक्राद्यखर्वावरस्फायत्सैन्यशिली-मुखोच्छलदनल्पाजिह्मताम्राम्बुधौ। झञ्झावातविसर्पिनर्त्तितशिरः-साटोपदुष्टासुरक्रव्यत्-खण्डविखण्डिताखिलशकुन्तक्षुत्पिपासोज्ज्वले ॥ १० ॥ चञ्चत्कक्रविरामकालकालतीव्रास्फालसम्पादकोन्माद्यन्माहिषतिर्यगानत-शिरः-शृङ्गान्तराले स्थले। वस्वर्णैर्वसुपत्रमध्यकलितैर्बद्धा श्रुतीर्मातृभिः सेव्ये चारुरणाङ्गने रणमुदा घूर्णायमानां स्मरेत् ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वाधः क्रमसव्यवामकरयोश्चक्रं दरं कर्तृकां, खेटं बाणधनुस्त्रिशूलभयहृन्मुद्रां दधानां शिवाम्। श्यामां नीलघनोच्चकुन्तलचयप्रोन्नद्धजूटां स्खलद्घोरा-स्फाललसत्करालवदनां घोराट्टहासोद्भटाम् ॥ १२ ॥ एवं ये तव देवि मूर्त्तिमनघां ध्यायन्ति दुर्गादिभिः शक्राद्यैरभिपूजितां परपुरक्षोभादिकं कुर्वते। राज्यं शत्रुजयः सदर्थधीषणा काव्यामृतादर्शनस्तम्भोच्चाटन-मारणादिकृतिनां तेषां स्वयं जायते ॥ १३ ॥ स्तोत्रं ते चरणारविन्द-युगलध्यानावधानात्मया मन्त्रोद्धारकुलोपचारचरितं गूढोपदिष्टं यदि।

ये शृण्वन्ति पठन्ति देवि तरसा श्रीमोक्षकामादयस्तेषां हस्तगता भवन्ति जगतां मातर्नमस्ते जयः ॥ १४ ॥

इति महिषमर्द्दिनीस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ महिषमर्द्दिनीकवचम् ।

ईश्वर उवाच : अथवक्ष्ये महेशानि कवचं सर्वकामदम् । यस्य प्रसादमासाद्य भवेत्साक्षात्सदाशिवः ॥ १ ॥ ॐकारं पूर्वमुच्चार्य मन्त्री मन्त्रस्य सिद्धये । प्रपठेत्कवचं नित्यं मन्त्रवर्णस्य सिद्धये ॥ २ ॥ महिषमर्द्दिन्याः कवचस्य भगवान्महाकाल-ऋषिरनुष्टुप्छन्दः । आद्याशक्तिर्देवता चतुर्वर्गफलप्राप्तये विनियोगः ॥ ३ ॥ क्लीं पातु मस्तके देवी कामिनी कामदायिनी । मकारः पातु मां देवी चक्षुर्युग्मे महेश्वरी ॥ ४ ॥ हिकारः पातु वदनं हिंगुलासुरनायिका । षकारः पातु मां श्वेता जिह्वायाश्चापराजिता ॥५॥ मकारः पातु मां देवी मर्द्दिनी सुरनायिका । र्द्दिकारः पातु मां देवी सावित्री कालनाशिनी ॥ ६ ॥ निकारः पातु मां नित्या हृदये बाहुपार्श्वयोः । नाभौ लिङ्गे गुदे कण्ठे कर्णयोः पृष्ठस्तथा शिखायां कवचे पादे मुखे जङ्घायुगे तथा ॥ ७ ॥ सर्वाङ्गे पातु मां स्वाहा सर्वशक्ति समन्विता । कामाद्या पातु मां स्वाहा सर्वाङ्गे मर्द्दिनी शिरः ॥ ८ ॥ दशाक्षरी महाविद्या सर्वाङ्गे पातु मर्द्दिनी । मर्द्दिनी पातु सततं मर्द्दिनी रक्षयेत्सदा ॥ ९ ॥ राजस्थाने तथा दुर्गे सिंहव्याघ्रभयादिषु । श्मशाने प्रान्तरे दुर्गे नौकायां वह्निमध्यतः । मर्द्दिनी पातु सततं मर्द्दिनी रक्षयेत्सदा ॥ १० ॥ दुर्गा पातु सदा देवी आर्या पातु सदा मम । प्रभा पातु महेशानि कनका सर्वदावतु ॥ ११ ॥ कृत्तिका पातु सततं अभया सर्वदावतु । प्रभा पातु महामाया माया पातु सदा मम् ॥ १२ ॥ प्रभा पातु महेशानि विमला पातु सर्वदा । नन्दिनी पातु सततं सुप्रभा सर्वदावतु ॥ १३ ॥ विजया पातु सर्वत्र देव्यङ्गे नवशक्तयः । शक्तयः पान्तु सततं मुद्रां पान्तु सदा मम् ॥ १४ ॥ जया पातु सदा सूक्ष्मा विशुद्धा पातु सर्वदा । योगिन्यः पान्तु सततं खेचर्यः पान्तु सर्वदा ॥१५॥ डाकिन्यः पान्तु सततं सिद्धाः पान्तु सदा मम् । सर्वत्र सर्वदा पातु देवी महिषमर्द्दिनी ॥ १६ ॥ इति ते कथितं दिव्यं कवचं सर्वकामदम् । यत्र तत्र न वक्तव्यं गोपितव्यं प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ गोपितं सर्वतन्त्रेषु विश्वसारे प्रकीर्त्तितम् । सर्वत्र सुलभा विद्या कवचं दुर्लभं महत् ॥ १८ ॥ शठाय भक्तिहीनाय निन्दकाय महेश्वरि । न्यूनाङ्गे अतिरिक्तांगे क्रूरेमिथ्याभि-

भाषणे। न स्तवं दर्शयेद्दिव्यं कवचं सुरदुर्लभम् ॥ १९ ॥ यत्र तत्र न वक्तव्यं शङ्करेण च भाषितम्। दत्त्वा तेभ्यो महेशानि नश्यन्ति सिद्धयः क्रमात् ॥ २० ॥ मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम्। अशुभश्च भवेत्तस्य तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥ २१ ॥ गोरोचना कुंकुमेन भूर्जपत्रे महेश्वरि। लिखित्वा शुभयोगे च ब्रह्मेन्द्रे वैधृतौ तथा ॥ २२ ॥ आयुष्मत् सिद्धियोगे वा ववे वा कौलवे तथा। वणिजे श्रवणायाश्च रेवत्यां वा पुनर्वसौ ॥ २३ ॥ उत्तरात्रययोगे हि तथा पूर्वात्रयेषु च। अश्विन्यां वा रोहिण्यां वा तृतीयानवमीतिथौ ॥ २४ ॥ अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां षष्ठ्यां वा पञ्चमीतिथौ। कुह्वां वा पूर्णिमायां वा निशायां प्रान्तरे तथा ॥ २५ ॥ एकलिंगे श्मशाने च शून्यागारे शिवालये। गुरुणा वैष्णवौर्वापि स्वयम्भूकुसुमैस्तथा ॥ २६ ॥ शुक्लैर्वा रक्तकुसुमैश्चन्दनैः रक्तसंयुतैः। शवाङ्गारैश्चितावस्त्रे लिखित्वा धारयेत्पुनः। तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याच्छङ्करेण च भाषितम्। कुमारीं पूजयित्वा तु देवो सूक्तं निवेद्य च। पठित्वा भोजयेद्विप्रान् प्रवरान्वेदपारगान्। आखेटकमुपाख्यानं कुर्याच्चैव दिनत्रयम्। तदा धरेन्महारक्षां कवचं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥ नाधयो व्याधयस्तस्य दुःखशोकभयं क्वचित्। वादी मूको भवेद्दृष्ट्वा राजा च सेवकायते ॥ १९ ॥ मासमेकं पठेद्यस्तु प्रत्यहं नियतः शुचिः। दिवा भवेद्धविष्याशी रात्रौ शक्तिपरायणः। षटसहस्रप्रमाणेन प्रत्यहं प्रजपेत्सदा। षण्मासैर्वा त्रिभिर्मासैः खेचरो भवति ध्रुवम् ॥ ३० ॥ अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान्भवेत्। अरोगी बलवांश्चैव राजा च दासतामियात् ॥ ३१ ॥ रजस्वलाभगे नित्यं जपेद्विद्यां विशेषतः। य एवं कुरुते धीमान् स एव श्रीसदाशिवः ॥३२॥

इति विश्वसारतन्त्रे महिषमर्द्दिनीकवचं समाप्तम्।

अथ लक्ष्मीस्तोत्रम्।

ईश्वर उवाच : त्रैलोक्यपूजिते देवि कमले विष्णुवल्लभे। यथा त्वमचला कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा ॥१॥ ईश्वरी कमला चञ्चला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरिप्रिया। पद्मा पद्मालया सम्पदुच्चैः श्रीपद्मधारिणी ॥ २ ॥ द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत्। स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत्तस्य पुत्रदारादिभिः सह ॥ ३ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे लक्ष्मीस्तोत्रं समाप्तम्।

अथ लक्ष्मीकवचम् ।

ईश्वर उवाच : अथ वक्ष्ये महेशानि कवचं सर्वकामदम् । यस्य विज्ञानमात्रेण भवेत्साक्षात्सदाशिवः ॥ १ ॥ नार्चनं तस्य देवेशि मन्त्रमात्रं जपेन्नरः । स भवेत्पार्वतीपुत्रः सर्वशास्त्रपुरस्कृतः ॥ २ ॥ विद्यार्थिनां सदा सेव्या धनदात्री विशेषतः । विद्यार्थिभिस्सदा सेव्या कमला विष्णुवल्लभा ॥ ३ ॥

अस्याश्चतुरक्षरीविष्णुवनितायाः कवचस्य श्रीभगवान् शिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वाग्भवो देवता वाग्भवं बीजं लज्जा शक्तिः रमा कीलकं कामबीजात्मकं कवचं मम सुकवित्वसुपाण्डित्यसर्वसिद्धिसमृद्धये विनियोगः ।

ऐंकारो मस्तके पातु वाग्भवो सर्वसिद्धिदा । ह्रीं पातु चक्षुषोर्मध्ये चक्षुर्युग्मे च शाङ्करी ॥ ४ ॥ जिह्वायां मुखवृत्ते च कर्णयोर्गण्डयोर्नसि । ओष्ठाधारे दन्तपंक्तौ तालुमूले हनौ पुनः ॥ ५ ॥ पातु मां विष्णुवनिता लक्ष्मीः श्रीवर्णरूपिणी । कर्णयुग्मे भुजद्वन्द्वे स्तनद्वन्द्वे च पार्वती ॥ ६ ॥ हृदये मणिबन्धे च ग्रीवायां पार्श्वयोर्द्वयोः पुनः । पृष्ठदेशे तथा गुह्ये वामे च दक्षिणे तथा ॥ ७ ॥ उपस्थे च नितम्बे च नाभौ जङ्घाद्वये पुनः । जानुचक्रे पदद्वन्द्वे घुटिकेंगुलिमूलके ॥ ८ ॥ स्वधा तु प्राणशक्त्यां वा सीमन्यां मस्तके तथा । सर्वांगे पातु कामेशी महादेवी समुन्नतिः ॥ ९ ॥ पुष्टिः पातु महामाया उत्कृष्टः सर्वदाऽवतु । ऋद्धिः पातु सदा देवि सर्वत्र शम्भुवल्लभा ॥ १० ॥ वाग्भवी सर्वदा पातु पातु मां हरगेहिनी । रमा पातु महादेवी पातु माया स्वराट् स्वयम् ॥ ११ ॥ सर्वांगे पातु मां लक्ष्मीर्विष्णुमाया सुरेश्वरी । विजया पातु भवने जया पातु सदा मम ॥ १२ ॥ शिवदूती सदा पातु सुन्दरी पातु सर्वदा । भैरवी पातु सर्वत्र भेरुण्डा सर्वदाऽवतु ॥ १३ ॥ त्वरिता पातु मां नित्यमुग्रतारा सदाऽवतु । पातु मां कालिका नित्यं कालरात्रिः सदाऽवतु ॥ १४ ॥ नवदुर्गा सदा पातु कामाख्या सर्वदाऽवतु । योगिन्यः सर्वदा पान्तु मुद्राः पान्तु सदा मम ॥ १५ ॥ मात्राः पान्तु सदा देव्यश्चक्रस्था योगिनीगणाः । सर्वत्र सर्वकार्येषु सर्वकर्मसु सर्वदा ॥ १६ ॥ पातु मां देवदेवी च लक्ष्मीः सर्वसमृद्धिदा ।

इति ते कथितं दिव्यं कवचं सर्वसिद्धये ॥ १७ ॥ यत्र तत्र न वक्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् । शठाय भक्तिहीनाय निन्दकाय महेश्वरि ॥१८॥ न्यूनांगेह्यतिरिक्तांगे दर्शयेन्न कदाचन । न स्तवं दर्शयेद्दिव्यं दर्शनाच्छि-

वहा भवेत् ॥ १६ ॥ कुलीनाय महेच्छाय दुर्गाभक्तिपराय च । वैष्णवाय विशुद्धाय दद्यात्कवचमुत्तमम् ॥२०॥ निजशिष्याय शान्ताय धनिने ज्ञानिने तथा । दद्यात्कवचमित्युक्तं सर्वतन्त्रसमन्वितम् ॥ २१ ॥ शनौ मङ्गलवारे च रक्तचन्दनकैस्तथा । यावकेन लिखेन्मन्त्रं सर्वचक्रसमन्वितम् ॥ २२ ॥ विलिखेत्कवचं दिव्यं स्वयम्भुकुसुमैः शुभैः । स्वशुक्रैः परशुक्रैश्च नानागन्धसमन्वितैः ॥ २३ ॥ गोरोचना कुंकुमेन रक्तचन्दनकेन वा । सुतिथौ शुभयोगे वा श्रवणायां रवेर्दिने ॥ २४ ॥ अश्विन्यां कृत्तिकायां वा फल्गुन्यां वा मघासु च । पूर्वभाद्रपदायोगे स्वात्यां मङ्गलवासरे ॥ २५ ॥ विलिखेत्प्रपठेत्स्तोत्रं शुभयोगे सुरालये । आयुष्मत्प्रीतियोगे च ब्रह्मयोगे विशेषतः ॥२६॥ इन्द्रयोगे शुभे योगे शुक्रयोगे तथैव च । कौलवे बालवे चैव वणिजे चैव सत्तमः ॥ २७ ॥ शून्यागारे श्मशाने वा विजने च विशेषतः । कुमारीं पूजयित्वा च यजेद्देवीं सनातनीम् ॥२८॥ मत्स्यैर्मांसैः शाकपूपैः पूजयेत्परदेवताम् । घृताद्यैः सोपकरणैः पुष्पधूपैर्विशेषतः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा च पूजयेत्परमेश्वरीम् । आखेटकमुपाख्यानं तत्र कुर्याद्दिनत्रयम् ॥ ३० ॥ तदा कुर्यान्महारक्षां शङ्करेण प्रभाषितम् । मारणद्वेषणादीनि लभते नात्र संशयः । स भवेत्पार्वतीपुत्रः सर्वशास्त्रपुरस्कृतः ॥ ३१ ॥ गुरुर्देवो हरः साक्षात्पत्नी तस्य हरप्रिया । अभेदेन यजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः ॥ ३२ ॥

पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा जपफलमनुमेवं लक्ष्यते यद्विशेषम् । स भवति पदमुच्चैः सम्पदा पादनम्रक्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय ॥ ३३ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे लक्ष्मीकवचं समाप्तम् ।

अथ सरस्वतीस्तोत्रम् ।

ब्रह्मोवाच : ह्रीं ह्रीं हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमलाकल्पविस्पष्टशोभे भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्यांघ्रिपद्मे । पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि प्रोत्प्लुष्टाज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे ॥ २ ॥ ऐं ऐं ऐं इष्टमन्त्रे कमलभवमुखाम्भोजभूतिस्वरूपे रूपारूपप्रकारे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे । न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविषये नापि विज्ञाततत्त्वे विश्वं विश्वान्तराले सुरवरनमिते निष्कले नित्यशुद्धे ॥ ३ ॥ ह्रीं ह्रीं ह्रीं जापतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते मातर्मातर्नमस्ते दहदह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम् । विद्ये वेदान्तगीते

श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे मार्गातीतप्रभावे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे ॥ ४ ॥ ध्रीं ध्रीं ध्रीं धारणाख्ये धृतिमतिनुतिभिर्नामभिः कीर्तनीये नित्येऽनित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे। पुण्ये पुण्यप्रभावे हरिहरनमिते वर्णशुद्धे सुवर्णे मात्रे मात्रार्द्धतत्त्वे मतिमति मतिदे माधवप्रीतिनादे ॥ ५ ॥ ह्रीं क्ष्रीं धीं ह्रीं स्वरूपे दहदह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते सन्तुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जम्भनिस्तम्भविद्ये। मोहे मुग्धप्रवाहे मम कुरु सुमतिं ध्वान्तविध्वंसनित्ये गीर्गौर्वाग्भारती त्वं कविवृषरसना सिद्धिदा सिद्धविद्या ॥ ६ ॥ सौं सौं सौं शक्तिबीजे कमलभवमुखाम्भोजभूतस्वरूपे रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे। न स्थूले नैव सूक्ष्मेप्यविदितविभवे जाप्यविज्ञानतत्त्वे विश्वे विश्वान्तराले सुरगणनमिते निष्कले नित्यशुद्धे ॥ ७ ॥ स्तौमि त्वां त्वां च वन्दे भज मम रसनां मा कदाचित्त्यजेथाः मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु न च मनो देवि मे यातु पापम्। मा मे दुःखं कदाचिद्विपदि च समयेऽप्यस्तु मे नाकुलत्वं शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदाचित् ॥ ८ ॥

इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो वाणीं वाचस्पतेरप्यभिमतविभवो वाक्पटुर्नष्टपङ्कः। स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिवसततं पाति तं सा च देवी सौभाग्यं तस्य लोके प्रसरति कविता विघ्नमस्तं प्रयाति ॥ ९ ॥ ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिषः। सारस्वतो नरः पाठात्स स्यादिष्टार्थलाभवान् ॥ १० ॥ पक्षद्वयेपि यो भक्त्या त्रयोदश्येकविंशतिम्। अविच्छेदं पठेद्धीमान्ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम् ॥ ११ ॥ शुक्लाम्बरधरां देवीं शुक्लाभरणभूषिताम्। वाञ्छितं फलमाप्नोति स लोके नात्र संशयः ॥ १२ ॥ इति ब्रह्मा स्वयं प्राह सरस्वत्याः स्तवं शुभम्। प्रयत्नेन पठेन्नित्यं सोऽमृतत्वं प्रयच्छति ॥ १३ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ब्रह्मणा कृतं सरस्वत्याः स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

अथ गणेशस्तोत्रम्।

ॐ कारमाद्यं प्रवदन्ति सन्तो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति। गजाननं देवगणानतांघ्रिं भजेऽहमर्द्धेन्दुकृतावतंसम् ॥ १ ॥ पादारविन्दार्चनतत्पराणां संसारदावानलभङ्गदक्षम्। निरन्तरं निर्गतदानतोयैस्तं नौमि विघ्नेश्वरमम्बुजाभम् ॥ २ ॥ कृताङ्गरागं नवकुंकुमेन मत्तालि-

मालं मदपङ्कलग्नाम् । निवारयन्तं निजकर्णतालैः को विस्मरेत्पुत्रमनङ्ग-शत्रोः ॥ ३ ॥ शम्भोर्जटाजूटनिवासिगङ्गाजलं समानीय कराम्बुजेन । लीलाभिराराच्छिवमर्चयन्तं गजाननं भक्तियुता भजन्ति ॥ ४ ॥ कुमार-भुक्तौ पुनरात्महेतोः पयोधरौ पर्वतराजपुत्र्याः । प्रक्षालयन्तं करशीकरेण मौग्ध्येन तं नागमुखं भजामि ॥ ५ ॥ त्वया समुद्धृतगजास्यहस्ताद्ये शीकराः पुष्कररन्ध्रमुक्ताः । व्योमाङ्गने ते विचरन्ति ताराः कालात्मना मौक्तिकतुल्यभासः ॥६॥ क्रीडारते वारिनिधौ गजास्ये वेलामतिक्रामति वारिपूरे । कल्पावसानं परिचिन्त्य देवाः कैलाशनाथं श्रुतिभिः स्तुवन्ति ॥ ७ ॥ नागानने नागकृतोत्तरीये क्रीडारते देवकुमारसंघैः । त्वयि क्षणं कालगतिं विहाय तौ प्रापतुः कन्दुकतामिनेन्दु ॥ ८ ॥ मदोल्लसत्पञ्च-मुखैरजस्रमध्यापयन्तं सकलागमार्थान् । देवानृषीन्भक्तजनैकमित्रं हेरम्बम-र्करुणमाश्रयामि ॥ ९ ॥ पादाम्बुजाभ्यामतिकोमलाभ्यां कृतार्थयन्तं कृपया धरित्रीम् । अकारणं कारणमाप्तवाचां तन्नागवक्त्रं न जहाति चेतः ॥ १० ॥ येनार्पितं सत्यवतीसुताय पुराणमालिख्य विषाणकोट्या । तं चन्द्रमौलेस्तनयं तपोभिराराध्यमानन्दघनं भजामि ॥ ११ ॥ पदं श्रुतो-नामपदं स्तुतीनां लीलावतारं परमात्ममूर्तेः । नागात्मको वा पुरुषात्मको वेत्यभेद्यमाद्यं भज विघ्नराजम् ॥ १२ ॥ पाशांकुशौ भग्नरदं त्वभीष्टं करैर्दधानं कररन्ध्रमुक्तैः । मुक्ताफलाभैः पृथुशीकरौघैः सिञ्चन्तमङ्गं शिवयोर्भजामि ॥ १३ ॥ अनेकमेकं गजमेकदन्तं चैतन्यरूपं जगदादि-बीजम् । ब्रह्मेति यं वेदविदो वदन्ति तं शम्भुसूनुं सततं भजामि ॥ १४ ॥ स्वाङ्केस्थिताया निजवल्लभाया मुखाम्बुजालोकनलोलनेत्रम् । स्मेरान-नाब्जं मदवैभवेन रुद्धं भजे विश्वविमोहनं तम् ॥ १५ ॥ ये पूर्वमाराध्य गजानन त्वां सर्वाणि शास्त्राणि पठन्ति तेषाम् । त्वत्तो न चान्यत्प्रति-पाद्यमेतैस्तदास्ति चेत्सर्वमसत्यकल्पम् ॥ १६ ॥ हिरण्यवर्णं जगदीशितारं कविं पुराणं रविमण्डलस्थम् । गजाननं यं प्रविशन्ति सन्तस्तत्काल-योगैस्तमहं प्रपद्ये ॥ १७ ॥ वेदान्तगीतं पुरुषं भजेऽहमात्मानमानन्दघनं हृदिस्थम् । गजाननं यन्महसा जनानां विघ्नान्धकारो विलयं प्रयाति ॥ १८ ॥ शम्भोः समालोक्य जटाकलापं शशाङ्कखण्ड निजपुष्करेण । स्वभग्नदन्तं प्रविचिन्त्य मौग्ध्यादाकष्टुकामः श्रियमातनोतु ॥ १९ ॥ विघ्नार्गलानां विनिपातनार्थं यं नारिकेलैः कदलीफलाद्यैः । प्रभावयन्तो मदवारणास्यं प्रभुं सदाभीष्टमहं भजेयम् ॥ २० ॥

यज्ञैरनेकैर्बहुभिस्तपोभिराराध्यमाद्यं गजराजवक्त्रम् स्तुत्यानया ये विधिवत्स्तुवन्ति ते सर्वलक्ष्मीनिधयो भवन्ति ॥ २१ ॥

इति गणेशस्तवराजः समाप्तः ।

अथ हरिद्रागणेशकवचम् ।

ईश्वर उवाच : शृणु वक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिकरं प्रिये । पठित्वा पाठयित्वा च नरो मुच्यते सर्वसङ्कटात् ॥१॥ अज्ञात्वा कवचं देवि गणेशस्य मनुं जपेत् । सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥ २ ॥

ॐ आमोदश्च शिरः पातु प्रमोदश्च शिखोपरि । सम्मोदो भ्रूयुगे पातु भ्रूमध्ये च गणाधिपः ॥ ३ ॥ गणाक्रीडो नेत्रयुग्मं नासायां गणनायकः । गणक्रीडान्वितः पातु वदने सर्वसिद्धये ॥ ४ ॥ जिह्वायां सुमुखः पातु ग्रीवायां दुर्मुखः सदा । विघ्नेशो हृदये पातु विघ्ननाशश्च वक्षसि ॥ ५ ॥ गणानां नायकः पातु बाहुयुग्मं सदा मम । विघ्नकर्ता च उदरे विघ्नकर्ता च लिङ्गके ॥ ६ ॥ गजवक्त्रः कटीदेशे एकदन्तो नितम्बके । लम्बोदरः सदा पातु गुह्यदेशे ममारुणः ॥ ७ ॥ व्यालयज्ञोपवीती मां पातु पादयुगे तथा । जापकः सर्वदा पातु जानुजङ्घे गणाधिपः ॥ ८ ॥ हारिद्रः सर्वदा पातु सर्वाङ्गे गणनायकः ।

य इदं प्रपठेन्नित्यं गणेशस्य महेश्वरि ॥ ९ ॥ कवचं सर्वसिद्धाख्यं सर्वविघ्नविनाशनम् । सर्वसिद्धिकरं साक्षात्सर्वपापविमोचनम् ॥ १० ॥ सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात्सर्वपापविमोक्षणम् । सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात्सर्वशत्रुक्षयं करम् ॥ ११ ॥ ग्रहपीडा ज्वरो रोगो ये चान्ये गुह्यकादयः । पठनाद्धारणादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात् ॥ १२ ॥ धनधान्यकरं देवि कवचं सुरपूजितम् । समं नास्ति महेशानि त्रैलोक्ये गणपस्य च ॥ १३ ॥ हारिद्रस्य महेशानि कवचस्य च भूतले । किमन्यैरसदालापैर्यत्रायुर्व्ययतामियात् ॥ १४ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे हरिद्रागणेशकवचं समाप्तम् ।

अथ श्रीसूर्यकवचम् ।

श्री सूर्य उवाच : साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु मे कवचं शुभम् । त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१॥ यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित्सम्यक् फलमाप्नोति निश्चितम् । यद्धृत्वा च महादेवो गणनामधिपोऽभवत् ॥ २ ॥ पठनाद्धारणाद्विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा । एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ ३ ॥

कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् । श्रीसूर्योदेवता चात्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ४ ॥ आरोग्ययशोमोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।

प्रणवो मे शिरः पातु घृणिर्मे पातु भालकम् ॥ ५ ॥ सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम् । अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥६॥ ह्रीं बीजं मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी । चन्द्रबीजं विसर्गाढ्यं पातु मे गुह्यदेशकम् ॥ ७ ॥ त्र्यक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः । शिवो वह्निसमायुक्तो वामाक्षिविन्दुभूषितः ॥ ८ ॥ एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्त्तितः । गुह्याद्‌गुह्यतरो मन्त्रो वांछाचिन्तामणिः स्मृतः ॥ ९ ॥ शीर्षादिपादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः ।

इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १० ॥ श्रीप्रदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्यविवर्धनम् । कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम् ॥ ११ ॥ त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान्भवेत् । बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ॥ १२ ॥ तत्तत्सर्वं भवत्येव कवचस्य च धारणात् । भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥ १३ ॥ ब्रह्मराक्षसवेताला नैव-द्रष्टुमपि क्षमाः । दूरादेव पलायन्ते तस्य संकीर्तनादपि ॥ १४ ॥ भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागुरुकुंकुमैः । रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्याश्च विशेषतः ॥ १५ ॥ धारयेत्साधकश्रेष्ठस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् । त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद्दक्षिणे भुजे ॥ १६ ॥ शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशयः । इति ते कथितं साम्ब त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ॥ १७ ॥ कवचं दुर्लभं लोके तव स्नेहात्प्रकाशितम् । अज्ञात्वा कवचं दिव्यं यो जपेत्सूर्यमनूत्तमम् । सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥ १८ ॥

इति ब्रह्मयामले त्रैलोक्यमङ्गलं नाम सूर्यकवचं समाप्तम् ।

अथ श्रीविष्णुस्तवः ।

ॐ आदाय वेदान्सकलान्समुद्रान्निहत्य शङ्खं रिपुमत्युदग्रम् । दत्ताः पुरा येन पितामहाय विष्णुं तमाद्यं भज मत्स्यरूपम् ॥ १ ॥ दिव्यामृतार्थं मथिते महाब्धौ देवासुरैर्वासुकिमन्दराद्यैः । भूमेर्महावेगविघूर्णितायास्तं कूर्ममाधारगतं स्मरामि ॥ २ ॥ समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुन्धरा मेरुकिरीटभारा । दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥ भक्तार्तिभङ्गक्षमया धिया यः स्तम्भान्तरालादुदितो नृसिंहः । रिपुं सुराणां निशितैर्नखाग्रैर्विदारयन्तं न च विस्मरामि ॥ ४ ॥

चतुस्समुद्राभरणा धरित्री न्यासाय नालं चरणस्य यस्य। एकस्य नान्यस्य पदं सुराणां त्रिविक्रमं सर्वगतं नमामि ॥ ५ ॥ त्रिःसप्तकृत्वो नृपतीन्निहत्य यस्तर्पणं रक्तमयं पितृभ्यः। चकार दोर्दण्डबलेन सम्यक् तमादिशूरं प्रणमामि रामम् ॥ ६ ॥ कुले रघूणां समवाप्य जन्म विधाय सेतुं जलधेर्जलान्तः। लङ्केश्वरं यः समयाञ्चकार सीतापतिं तं प्रणमामि भक्त्या ॥ ७ ॥ हलेन सर्वानसुरान्निकृष्य चकार चूर्णं मुसलप्रहारैः। यः कृष्णमासाद्य बलं बलीयान्, भक्त्या भजे तं बलभद्ररामम् ॥ ८ ॥ पुरा सुराणामसुरान्विजेतुं सम्भावयञ्छीवरचिह्नवेशम्। चकार यः शास्त्रममोघकल्पं तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम् ॥ ९ ॥ कल्पावसाने निखिलैः सुरैः स्वैः सङ्घट्टयामास निमेषमात्रात्। यस्तेजसा स्वेन ददाह भीमो विष्णवात्मकं तं तुरगं भजामः ॥ १० ॥ शङ्खं सुचक्रं सुगदां सरोजं दोर्भिर्दधानं गरुडाधिरुढम्। श्रीवत्सचिह्नं जगदादिमूलं तमालनीलं हृदि विष्णुमीडे ॥ ११ ॥ क्षीराम्बुधौ शेषविशेषकल्पे शयानमन्तः स्मितशोभिवक्त्रम्। उत्फुल्लनेत्राम्बुजमम्बुदाभमाद्यं श्रुतीनामसकृत्स्मरामि ॥ १२ ॥

प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम्। धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥ १३ ॥

इति श्रीविष्णुस्तवः समाप्तः।

अथ श्रीरामस्तोत्रम्।

श्रीहनूमानुवाच : तिरश्चामपि राजेति समवायं समीयुषाम्। यथा सुग्रीवमुख्यानां यस्तमुग्रं नमाम्यहम् ॥ १ ॥ सकृदेव प्रपन्नाय विशिष्टामैरयाच्छ्रियम्। विभीषणायाब्धितटे यस्तं वीरं नमाम्यहम् ॥२॥ यो महान पूजितो व्यापी महाब्धेः करुणामृतम्। स्तुतं जटायुना येन महाविष्णुं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥ तेजसाप्यायिता यस्य ज्वलन्ति ज्वलनादयः। प्रकाशते स्वतन्त्रो यस्तं ज्वलन्तं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥ सर्वतो मुखतो येन लीलया दर्शिता रणे। राक्षसेश्वरयोधानां तं वन्दे सर्वतोमुखम् ॥ ५ ॥ नृभावं यः प्रपन्नानां हिनस्ति च तथा नृषु। सिंहः सत्त्वेष्विवोत्कृष्टस्तं नृसिंहं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥ यस्माद्बिभ्यति वातार्कज्वलनेन्द्राः समृत्यवः। भियं तिनोति पापानां भीषणं तत् नमाम्यहम् ॥ ७ ॥ परस्य योग्यतापेक्षारहितो नित्यमङ्गलम्। ददात्येव निजौदार्याद्यस्तं भद्रं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥ यो मृत्युं निजदासानां मारयत्यखिलेष्टदः। तत्रोदाहृतयो बह्वयो

मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ ९ ॥ यत्पादपद्मप्रणतो भवेदुत्तमपुरुषः । तमीशं सर्वदेवानां नमनीयं नमाम्यहम् ॥ १० ॥ आत्मभागं समुत्क्षिप्य दास्येनैव रघूद्वहम् । भजेऽहं प्रत्यहं रामं ससीतं सहलक्ष्मणम् ॥ ११ ॥ नित्यं श्रीरामभद्रस्य किङ्करा यमकिङ्कराः । शिवमयो दिशस्तस्य सिद्धयस्तस्य दासिकाः ॥१२॥ इमं हनूमता प्रोक्तं मन्त्रराजात्मकं स्तवम् । पठेदनुदिनं यस्तु स रामे भक्तिमान् भवेत् ॥ १३ ॥

इति श्रीहनूमत्कल्पे मन्त्रराजात्मकं श्रीरामस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ रामाष्टशतकं नाम स्तोत्रम् ।

वेदव्यास उवाच : शृणु गाङ्गेय वक्ष्यामि रामस्याद्भुतकर्मणः । नामाष्टशतकं पुण्यं महापातकनाशनम् । नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १ ॥ कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नविभूषिते । एकाग्रप्रयतो भूत्वा विष्णुमाराध्य भक्तितः । उपविष्टस्ततो भोक्तुं पार्वतीं शङ्करोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ पार्वत्येहि मया सार्द्धं भोक्तुं भुवनवन्दिते । तमाह पार्वती देवी जप्त्वा नामसहस्रकम् । ततो भोक्ष्याम्यहं देव भुज्यतां भवता प्रभो ॥ ३ ॥ ततस्तां पार्वती प्राह प्रहसन् परमेश्वरः । धन्यानि कृतपुण्यासि विष्णुभक्तासि पार्वति ॥ ४ ॥ दुर्लभा वैष्णवी भक्तिर्भागधेयं विनेश्वरि । रकारादीनि नामामि शृण्वतो मम पार्वति ॥ ५ ॥ मनः प्रसन्नतामेति रामनामाभिशङ्कया । रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ ६ ॥ राम रामेति रमे रामे मनोरमे । सहस्रनाममध्ये तु रामनाम वरानने । रामेत्युक्त्वा महादेवि भुंक्ष्ण सार्द्धं मयाधुना ॥ ७ ॥ ततो रामेति नामोक्त्वा सहभुक्त्वा च पार्वती । ततो भुक्त्वा महादेवी पतिना सह संस्थिता ॥ ८ ॥ पप्रच्छ श्रीमहादेवं प्रीतिप्रवणमनसा । सहस्रनामभिस्तुल्यं राम नाम त्वयोदितम् । तस्यान्यान्यपि नामानि सन्ति चेद्रावणद्विषः । कथ्यतां मम देवेश तत्र मे प्रीतिरुत्तमा ॥ ९ ॥

श्रीशङ्कर उवाच : शृणु नामानि वक्ष्यामि रामचन्द्रस्य पार्वति । लौकिका वैदिकाः शब्दा ये केचित्सन्ति पार्वति । नामानि रामभद्रस्य सहस्रन्तेषु चाधिकम् ॥ १० ॥ तेषु चात्यन्तमुख्यं हि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । विष्णोरेकैकनामानि सर्ववेदाधिकं फलम् ॥ ११ ॥ तादृङ्नामसहस्रेषु राम नाम परं मतम् । जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति । तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥१२॥ अथ श्रीरामाष्टोत्तरशत-

नामस्तोत्रस्य ईश्वर-ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीरामचन्द्रो देवता श्रीरामचन्द्र-प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥१३॥ ॐ श्रीरामो रामभद्रश्च रामचंद्रश्च शाश्वतः। राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रो रघुपुङ्गवः ॥ १४ ॥ जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः। विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरणत्राणतत्परः ॥१५॥ बालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक्सत्यविक्रमः। सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनूमदाश्रयः ॥१६॥ कौशलेयः खरध्वंसी विराधवधपंडितः। विभीषणपरित्राता दशग्रीवाशिरोहरः ॥१७॥ सप्ततालप्रभेत्ता च हरकोदण्डखण्डनः। जामदग्न्यमहादर्पज्वलनस्ताडकान्तकः ॥१८॥ वेदान्तसारोऽमेयात्मा भववैद्यश्च भेषजः। दूषणत्रिशिरोहन्ता त्रिमूर्त्तिस्त्रिगुणस्त्रयी ॥१९॥ त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारीति कीर्तनः। त्रिलोकीरक्षको धन्वी दण्डाकारण्यपुण्यकृत् ॥२०॥ अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः। जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलोभो जगद्गुरुः ॥२१॥ ऋक्षवानरसङ्घाती चित्रकूटसमाश्रयः। जयन्तत्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः ॥२२॥ सर्वदेवाधिदेवेश्च मृतबालकजीवनः। मायामारीचहन्ता च महाभोगो महाभुजः ॥ २३ ॥ सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसंस्तुतः। महायोगी महोदारः सुग्रीवेप्सितराज्यदः ॥ २४ ॥ सर्वपुण्याधिकफलस्तीर्थः सर्वाघनाशनः। आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा ॥२५॥ पुण्योदयो दयासारः पुराणः पुरुषोत्तमः। स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्णभाषी च राघवः ॥ २६ ॥ अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तरः। मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः ॥ २७ ॥ सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः। श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्द्धरः ॥ २८ ॥ सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः। शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः ॥ २९ ॥ परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः। परं ज्योतिः परं धाम पराकाष्ठा परात्परः ॥ ३० ॥ परेशः परागः पारः सर्वदेवात्मकः शिवः। इत्येतद्रामभद्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥३१॥ गुह्याद्गुह्यतरं देवि तव प्रीत्या प्रकीर्त्तितम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा। स सर्वैर्मुच्यते पापैः कल्पकोटिशताद्भवैः ॥ ३२ ॥ जलानि स्थलतां यान्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम्। राजानो दासतां यान्ति वह्नयो यान्ति सौम्यताम् ॥ ३३ ॥ आनुकूल्यञ्च भूतानि स्थैर्यं यान्ति चलाः श्रियः। अनुग्रहं ग्रहा यान्ति नाशमायान्त्युपद्रवाः ॥ ३४ ॥ पठतो भक्तिभावेन जनस्य गिरिसम्भवे। यः पठेत्परया भक्त्या तस्य वश्यं जगत्त्रयम्। यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति कीर्तनात्। यः पठेद्रामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्। ज्ञानेनापि च कुर्वाणो न स पापेन

लिप्यते ॥ ३६ ॥ सर्ववेदेषु तीर्थेषु दानेषु च तपःसु च । तत्फलं कोटिगुणितं स्तवेनानेन लभ्यते ॥३७॥ पुण्यकालेषु सर्वेषु पठन्नानन्त्यमश्नुते । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । वैकुण्ठे वासमाप्नोति दशपूर्वैर्दशापरैः ॥ ३८ ॥ रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् । स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥ ३९ ॥ रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ ४० ॥ इमं मंत्रं महेशानि जपन्नेव दिवानिशम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ इत्येतद्रामचन्द्रस्य माहात्म्यं वेदसम्मतम् । कथितं तव गाङ्गेय यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः ॥ ४२ ॥ वन्दामहे महेशानं हरकोदण्डखण्डनम् । जानकीहृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम् ॥ ४३ ॥

इति पद्मपुराणे पार्वतीश्वरसंवादे श्रीरामचन्द्रस्तवराजः समाप्तः ।

अथ श्रीरामकवचम् ।

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् । सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम् । स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ १ ॥ रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ॥ २ ॥ अस्य श्रीरामकवचस्य बुधकौशिक ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीरामचन्द्रो देवता श्रीरामचन्द्र प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥ ३ ॥ ॐ शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः । कौशलेयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ॥ ४ ॥ घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः । जिह्वां विद्यानिधिं पातु कण्ठं भरतवन्दितः ॥ ५ ॥ स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः । करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ॥ ६ ॥ वक्षः पातु कबन्धारिः स्तनौ गीर्वाणवन्दितः । पार्श्वौ कुलपतिः पातु कुक्षिमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥ ७ ॥ मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः । गुह्यं जितेन्द्रियः पातु पृष्ठं पातु रघूत्तमः ॥ ८ ॥ सुग्रीवेशः कटीं पातु सक्थिनी हनूमत्प्रभुः । ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ॥ ९ ॥ जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः । पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ॥ १० ॥ एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥ ११ ॥ पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥ १२ ॥ रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो

न लिप्यते पापैर्भुक्ति मुक्तिश्च विन्दति ॥१३॥ जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम् । यः करे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥ १४ ॥ भूर्जपत्रे त्विमां विद्यां गन्धचन्दनचर्चिताम् । कृत्वा वै धारयेद्यस्तु सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥ १५ ॥ काकबन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् । बह्वपत्या जीववत्सा सा भवेन्नात्र संशयः ॥ १६ ॥ वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं पठेत् । अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥ १७ ॥ आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरिः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥ १८ ॥ धन्विनौ बद्धनिस्त्रिंशौ काकपक्षधरौ शुभौ । वीरौ मां पथि रक्षेतां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥ तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥ २० ॥ फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामक्ष्मणौ ॥ २१ ॥ शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां वो रघूत्तमौ ॥ २२ ॥ आत्तसज्यधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ । रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥ २३ ॥ सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा । यच्छन्मनोरथश्चास्मान् रामः पातु सलक्ष्मणः ॥ २४ ॥ अग्रतस्तु नृसिंहो मे पृष्ठतो गरुडध्वजः पार्श्वयोस्तु । धनुष्मन्तौ सशरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २५ ॥ रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौशलेयो रघूत्तमः ॥ २६ ॥ वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणः पुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ २७ ॥ दक्षिणे लक्ष्मणो धन्वी वामे च जानकी शुभा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं नमामि रघूत्तमम् ॥ २८ ॥ आपदामपहन्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् । गुणाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ २९ ॥ एतानि मम नामानि मद्भक्तो यः सदा पठेत् । अश्वमेधायुतं पुण्य स प्राप्नोति न संशयः ॥३०॥

इति पद्मपुराणे वेदव्यासकृतौ भगवद्वसिष्ठश्रीबुधकौशिकप्रणीतं वज्रपञ्जरं नाम श्रीरामकवचं समाप्तम् ।

अथ श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

प्रसीद भगवन् मह्यमज्ञानात्कुण्ठितात्मने । तवांघ्रिपङ्कजरजोरागिणीं भक्तिमुत्तमाम् ॥ १ ॥ अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर । अप्रमेय प्रसीदास्मद्दुःखहन् पुरुषोत्तम ॥ २ ॥ स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय । अचिन्त्यसार विश्वात्मन् प्रसीद परमेश्वर ॥ ३ ॥ प्रसीद तुङ्ग

तुङ्गानां प्रसीद शिवशोभन। प्रसीद गुणगम्भीर गम्भीराणां महाद्युते ॥ ४ ॥ प्रसीदाव्यक्तविस्तीर्ण विस्तीर्णानामगोचर। प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदान्तान्तयायिनाम् ॥५॥ गुरोर्गरीयान् सर्वेश प्रसीदानन्त देहिनाम्। जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शङ्खभृत् ॥ ६ ॥ जय शङ्खधर श्रीमन् जय नन्दकनन्दन्। जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन ॥ ७ ॥ जय रत्नवरावद्धकिरीटाक्रान्तमस्तक। जय पक्षिपतिच्छायानिरुद्धार्ककरारुण ॥ ८ ॥ नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन। नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक ॥ ९ ॥ नमः पापहरेशान नमः सर्वभयापह। नमः सम्भृतसर्वात्मन् नमः सम्भृतकौस्तुभ ॥ १० ॥ नमस्ते नयनातीत नमस्ते भयहारक। नमो विभिन्नवेशाय नमः श्रुतिपथातिग ॥ ११ ॥ नमस्त्रि-मूर्तिभेदेन स्वर्गस्थित्यन्तहेतवे। विष्णवे त्रिदशारातिजिष्णवे परमात्मने ॥ १२ ॥ चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रबन्धवे। विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्तिने ॥ १३ ॥ नमोऽस्तु योगिध्येयाय नमोऽस्त्वध्यात्म-रूपिणे। भक्तिप्रियाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने ॥ १४ ॥ पूजनं हवनं चेष्टा ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया। देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव ॥ १५ ॥ इति हवनजपार्चाभेदतो विष्णुपूजानिरतो हृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय। स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा जननमृति-विमुक्तामुत्तमां मुक्तिमेति ॥ १६ ॥ गागोपगोपिकावीतं गोपालं गोषु गो-प्रदम्। गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नौमि गोकुलनायकम् ॥ १७ ॥ प्रोणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम्। धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥

इति कृष्णस्त्रोत्रं समाप्तम्।

अथ गोपालस्त्रोत्रम्।

नारद उवाच: नवीननीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। वल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥ १ ॥ स्फुरद्बर्हदलाद्बद्धनीलकुञ्चितमूर्द्धजम्। कदम्बकुसुमोद्बद्धवनमालाविभूषितम् ॥२॥ गण्डमण्डलसंसर्गिचलत्काञ्चन-कुण्डलम्। स्थूलमुक्ताफलोदारहारद्योतितवक्षसम् ॥ ३ ॥ हेमाङ्गदतुला-कोटिकिरीटोज्वलविग्रहम्। मन्दमारुतसंक्षोभवलितताम्बरसञ्चयम् ॥४॥ रुचिरौष्ठपुटन्यस्त-वंशीमधुरनिःस्वनैः। लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥ वल्लवीवदनाम्भोजमधुपानमधुव्रतम। क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥ ६ ॥ यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः

परस्परम् । विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥ ७ ॥ प्रभिन्नाञ्जन-कालिन्दीजलकेलिकलोत्सुकम् । योधयन्तं क्वचिद्गोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥ ८ ॥ कालिन्दीजलसंसर्गिशीतलानिलसेविते । कदम्बपाद-पच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥ ९ ॥ रत्नभूधरसंलग्नरत्नासन-परिग्रहम् । कल्पपादमध्यस्थहेममण्डपिकागतम् ॥१०॥ वसन्तकुसुमामोद-सुरभीकृतदिङ्मुखे । गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥ ११ ॥ सव्यहस्ततलन्यस्त-गिरिवर्यातपत्रकम् । खण्डिताखण्डतोन्मुक्तमुक्ता-सारघनाघनम् ॥ १२ ॥ वेणुवाद्यमहोल्लास-कृतहुङ्कारनिःस्वनैः । सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥ १३ ॥ कृष्णमेवानुगायद्भि-स्तच्चेष्टावशवर्तिभिः । दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥ १४ ॥ नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥ १५ ॥ य एवं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः । त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥ १६ ॥ राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः । अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥ १७ ॥

इति गौतमीय तन्त्रे श्रीगोपालस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीकृष्णकवचम् ।

पुलस्त्य उवाच : भगवन्सर्वधर्मज्ञ कवचं यत्प्रकाशितम् । त्रैलोक्य-मङ्गलं नाम कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच । शृणु विप्रेन्द्र वक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् । नारायणेन कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥२॥ ब्रह्मणा कथितं मह्यं परं स्नेहाद्वदामि ते । अतिगुह्यतरं तत्त्वं ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥ ३ ॥ यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् । यद्धृत्वा पठनात्पाति महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम् ॥ ४ ॥ पठनाद्धारणाच्छंभुः संहर्ता सर्वतत्त्ववित् । त्रैलोक्यजननी दुर्गा महिषादिमहासुरान् ॥ ५ ॥ वरद्दप्तान् जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः । एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यम-वाप्नुयुः ॥ ६ ॥ इदं कवचमत्यन्तं गुप्तं कुत्रापि नो वदेत् । शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ॥ ७ ॥ शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् । त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥ ८ ॥ ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम् । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥ प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च । भालं मे नेत्रयुगलमष्टार्णो भुक्तिमुक्तिदः ॥१०॥ क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मं

चैकाक्षरसर्वमोहनः। क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम् ॥११॥ गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहाऽऽननं मम। अष्टादशाक्षरो महामन्त्रः कण्ठं पातु दशाक्षरः ॥ १२ ॥ गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम्। क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः स्कन्धौ दशाक्षरः ॥ १३ ॥ क्लीं कृष्ण. क्लीं करौ पायात् क्लीं कृष्णायाङ्गजोऽवतु। हृदयं भुवनेशानी क्लीं कृष्णाय करौ स्तनौ मम ॥ १४ ॥ गोपालायाग्निजायान्तं कुक्षियुग्मं सदाऽवतु। क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्मं मनूत्तमः ॥ १५ ॥ कृष्ण-गोविन्दकौ पातु स्मराद्यो ङेयुतो मनुः। अष्टाक्षरः पातु नाभिं कृष्णेति द्व्यक्षरोऽवतु ॥ १६ ॥ पृष्ठं क्लीं कृष्णकङ्कालं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः। सक्थिनी सततं पातु श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णठद्वयम् ॥ १७ ॥ ऊरू सप्ताक्षरः पायात्त्रयोदशाक्षरोऽवतु। श्रीं ह्रीं क्लीं पदतो गोपीजनवल्लभपदं ततः ॥ १८ ॥ भाय स्वाहेति पायुं वै क्लीं ह्रीं श्रीं स दशार्णकः। जानुनी च साद पातु ह्रीं श्रीं क्लीं च दशाक्षरः ॥ १९ ॥ त्रयोदशाक्षरः पातु जङ्घे चक्राद्युदायुधः। अष्टादशाक्षरो ह्रीं-श्रीं-पूर्वको विंशदर्णकः ॥ २० ॥ सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको बली। नमो भगवते पश्चाद्वासुदेवाय तत्परम् ॥ २१ ॥ ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु। श्रीं ह्रीं क्लीं च दशार्णस्तु क्लीं ह्रीं श्रीं षोडशार्णकः ॥ २२ ॥ गदाद्युदायुधो विष्णुर्मामग्नेर्दिशि रक्षतु। ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥ २३ ॥ तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च। स्वाहेति षोडशार्णोऽयं नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु ॥ २४ ॥ क्लीं हृषीकपदेशाय नमो मां वरुणोऽवतु। अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्ये मां सदाऽवतु ॥ २५ ॥ श्रीं मायाकामकृष्णाय गोविन्दाय द्विठो मनुः। द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदाऽवतु ॥ २६ ॥ वाग्भवं कामकृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय ततः परम्। श्रीं गोपीजनवल्लभान्ते भाय स्वाहा करौ ततः ॥ २७ ॥ द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदाऽवतु। कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ॥ २८ ॥ नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्। द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदाऽवतु ॥ २९ ॥ कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयादेषा मां पातु चोर्ध्वतः ॥ ३० ॥ इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवच ब्रह्मरूपकम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणा कथितं पूर्वं नारायणमुखाच्छ्रुतम्। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ ३२ ॥ गुरुं प्रणम्य विधिवत्कवचं प्रपठेत्ततः। सकृद्द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं स हि सर्वतपोमयः

॥ ३३ ॥ मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः । शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ ३४ ॥ हवनादिदशांशेन कृत्वा तत्साधयेद्ध्रुवम् । यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेत्स्वयम् ॥ ३५ ॥ मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य पुरश्चर्याविधानतः । स्पर्धामुद्धूय सततं लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥ ३६ ॥ पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् । दशवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥ ३८ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥ ३९ ॥ कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चारणात्ततः । कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ४० ॥ त्रैलोक्यं क्षोभयेत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत् । इदं कवचमज्ञात्वा यजेद्यः पुरुषोत्तमम् ॥ ४१ ॥ शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रस्तस्य सिद्ध्यति ॥ ४२ ॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम
श्रीकृष्णकवचं समाप्तम् ।

अथ नृसिंहकवचम् ।

नारद उवाच : इन्द्रादिदेववृन्देश ईड्येश्वर जगत्पते । महाविष्णोर्नृसिंहस्य कवचं ब्रूहि मे प्रभो ॥ १ ॥ यस्य प्रपठनाद्विद्वांस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।

ब्रह्मोवाच : शृणु नारद वक्ष्यामि पुत्रश्रेष्ठ तपोधन । कवचं नरसिंहस्य त्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥ २ ॥ यस्य पठनाद्वाग्मी त्रैलोक्यविजयी भवेत् । स्रष्टाहं जगतां वत्स पठनाद्धारणाद्यतः ॥३॥ लक्ष्मीर्जगत्त्रयं पाति संहर्ता च महेश्वरः । पठनाद्धारणाद्देवा बभूवुश्च दिगीश्वराः ॥ ४ ॥ ब्रह्ममन्त्रमयं वक्ष्ये भ्रान्तादिविनिवारकम् । यस्य प्रसादाद्दुर्वासास्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ ५ ॥ पठनाद्धारणाद्यस्य शास्ता च क्रोधभैरवः ।

त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री नृसिंहो देवता विभुः ॥ ६ ॥ क्ष्रौं बीजं मे शिरः पातु चन्द्रवर्णो महामनुः ॥ ७ ॥ 'ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥' द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मन्त्रराजः सुरद्रुमः । कण्ठं पातु ध्रुवं क्ष्रौं हृद्भगवते चक्षुषी मम ॥ ९ ॥ नरसिंहाय च ज्वालामालिने पातु कर्णकम् । दीप्तदंष्ट्राय च तथाग्निनेत्राय च नासिकाम् ॥ १० ॥ सर्वरक्षोघ्नाय च तथा सर्वभूतहिताय च । सर्वज्वरविनाशाय

दहदह पदद्वयम् ॥ ११ ॥ रक्षरक्ष वर्ममन्त्रः स्वाहा पातु मुखं मम । तारादिरामचन्द्राय नमः पातु हृदं मम ॥ १२ ॥ क्लीं पायात्पार्श्वयुग्मं च तारो नमः पदं ततः । नारायणाय नाभिं च आं ह्रींक्रौंक्ष्रौं च हुं फट् ॥ १३ ॥ षडक्षरः कटिं पातु ॐ नमो भगवते पदम् । वासुदेवाय च पृष्ठं क्लीं कृष्णाय ऊरुद्वयम् ॥ १४ ॥ क्लीं कृष्णाय सदा पातु जानुनी च मनूत्तमः । क्ली ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः पायात्पदद्वयम् ॥ १५ ॥ क्ष्रौं नृसिंहाय क्ष्रौं च सर्वाङ्गे मे सदाऽवतु ।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥ १६ ॥ तव स्नेहान्मया ख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् । गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात्कवचं ततः ॥ १७ ॥ सर्वपुण्ययुतो भूत्वा सर्वसिद्धियुतो भवेत् । शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ १८ ॥ हवनादीन्दशांशेन कृत्वा साधकसत्तमः । ततस्तु सिद्धकवचः पुण्यात्मा मदनोपमः ॥ १९ ॥ स्पर्द्धामुद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः । पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ॥ २० ॥ अपि वर्षसहस्राणां पूजायां फलमाप्नुयात् । भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥ ३१ ॥ कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ नरसिंहो भवेत्स्वयम् । योषिद्वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे करे ॥ २२ ॥ बिभृयात्कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् । काकवन्ध्या च या नारो मृतवत्सा च या भवेत् ॥ २३ ॥ जन्मवन्ध्या नष्टपुत्रा बहुपुत्रवती भवेत् । कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २४ ॥ त्रैलोक्यं क्षोभयत्येवं त्रैलोक्यविजयी भवेत् । भूतप्रेतपिशाचाश्च राक्षसा दानवाश्च ये ॥ २५ ॥ तं दृष्ट्वा प्रपलायन्ते देशाद्देशान्तरं ध्रुवम् । यस्मिन्गृहे च कवचं ग्रामे वा यदि तिष्ठति । तद्देशं तु परित्यज्य प्रयान्ति ह्यतिदूरतः ॥ २६ ॥

इति ब्रह्मसंहितायां त्रैलोक्यमंगलं नाम नृसिंहकवचं समाप्तम् ।

अथ शिवस्तोत्रम् ।

धरापोग्निमरुद्व्योममखेशेन्द्वर्कमूर्तये । सर्वभूतान्तरस्थाय शङ्कराय नमो नमः ॥ १ ॥ श्रुत्यन्तःकृतवासाय श्रुतये श्रुतिजन्मने । अतीन्द्रियाय महसे शाश्वताय नमोनमः ॥ २ ॥ स्थूलसूक्ष्मविभागाभ्यामनिर्देश्याय शम्भवे । भवाय भवसम्भूतदुःखहन्त्रे नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ तर्कमार्गातिभूताय तपसां फलदायिने । चतुर्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमोनमः ॥ ४ ॥ आदिमध्यान्तशून्याय निरस्ताशेषभीतये । योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमोनमः ॥ ५ ॥ विश्वात्मनेऽविचिन्त्याय विलसच्चन्द्रमौलये । कन्दर्प-

दर्पनाशाय कालहन्त्रे नमोऽस्तु ॥६॥ विषाशनाय विहरद्वृषस्कन्धमुपेयुषे। सरिद्वासससमाबद्धकपर्दाय नमोनमः ॥ ७ ॥ शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामन्तरात्मने। पुरान्तकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमोनमः ॥ ८ ॥ भक्ताय निजभक्तानां भूक्तिमुक्तिप्रदायिने। विवाससेऽविवासाय विश्वेन शास्त्रे नमोनमः ॥ ९ ॥ त्रिमूर्त्तिमूलभूताय त्रिनेत्राय नमोनमः। त्रिधाम्ना धामरूपाय जन्मघ्नाय नमोनमः ॥ १० ॥ देवासुरशिरोरत्नकिरणारुणितांघ्रये। कान्ताय निजकान्तायै दत्तार्द्धाय नमोनमः ॥ ११ ॥ स्तोत्रेणानेन पूजायां प्रीणयेज्जगतः पतिम्। भक्तिमुक्तिप्रदं भक्त्या सर्वज्ञं परमेश्वरम् ॥ १२ ॥ तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि वर्त्तते। ऐहिकं किं फलं तत्र मुक्तिरेव करे स्थिता ॥ १३ ॥

इति शिवस्तोत्रं समाप्तम्।

अथ शिवस्यकवचम्।

श्रीदेव्युवाच : भगवन् देवदेवेश सर्वाम्नाय प्रपूजित। सर्वं मे कथितं देव कवचं न प्रकाशितम् ॥ १ ॥ प्रासादाख्यस्य मन्त्रस्य कवचं मे प्रकाशय। सर्वरक्षाकरं देव यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ २ ॥

श्री भगवानुवाच : प्रासादमन्त्रकवचस्य वामदेवऋषिः स्मृतः। पंक्तिश्छन्दश्च देवेशि सदाशिवोऽत्र देवता। साधकाभीष्टसिद्धौ च विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥ ॐ शिरो मे सर्वदा पातु प्रासादाख्य सदाशिवः ॥ ४ ॥ षडक्षरस्वरूपो मे वदनन्तु महेश्वरः। अष्टाक्षरः शक्तिरुद्रश्चक्षुषी मे सदावतु ॥ ५ ॥ पञ्चाक्षरात्मा भगवान्भुजौ मे परिरक्षतु। मृत्युञ्जयस्त्रिबीजात्मा आयु रक्षतु मे सदा ॥ ६ ॥ वटमूलसमासीनो दक्षिणामूर्त्तिरव्ययः। सदा मां सर्वतः पातु षट्त्रिंशार्णस्वरूपधृक् ॥ ७ ॥ द्वाविंशार्णात्मको रुद्रः कुक्षिं मे परिरक्षतु। त्रिवर्णात्मा नीलकण्ठः कण्ठं रक्षतु सर्वदा ॥ ८ ॥ चिन्तामणिर्बीजरूपो अर्द्धनारीश्वरो हरः। सदा रक्षतु मे गुह्यं सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥ ९ ॥ एकाक्षरस्वरूपात्मा कूटरूपी महेश्वरः मार्तण्डभैरवो नित्यं पादौ मे परिरक्षतु ॥ १० ॥ तुम्बुराख्यो महाबीजस्वरूपस्त्रिपुरान्तकः। सदा मां रणभूमौ च रक्षतु त्रिदशाधिपः ॥ ११ ॥ ऊर्द्धमूर्द्धानमीशानो मम रक्षतु सर्वदा। दक्षिणस्यां तत्पुरुषोऽव्यान्मे गिरिविनायकः ॥ १२ ॥ अघोराख्यो महादेवः पूर्वस्यां परिरक्षतु। महादेवः पश्चिमस्यां सदा मे परिरक्षतु। उत्तरस्यां सदा पातु सद्योजातस्वरूपधृक् ॥ १३ ॥ इत्थं रक्षाकरं देवि कवचं

देवदुर्लभम् । प्रातःकाले पठेद्यस्तु सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥ १४ ॥ पूजाकाले पठेद्यस्तु कवचं साधकोत्तमः । कीर्तिश्रीकान्तिमेधायुर्वृत्-हितो भवति ध्रुवम् ॥ १५ ॥ कण्ठे यो धारयेदेतत्कवचं मतस्त्ररूपम् । युद्धे बिजयमाप्नोति द्यूते वादे च साधकः ॥ १६ ॥ कवचं धारयेद्यस्तु साधको दक्षिणे भुजे । देवा मनुष्या गन्धर्वा वश्यास्तस्य न संशयः ॥१७॥ कवचं शिरसा यस्तु धारयेद्यतमानसः । करस्तास्तस्य देवेशि अणिमाद्यष्टसिद्धयः ॥ १८ ॥ भूर्जपत्रे त्विमां विद्यां शुक्लपट्टेन वेष्टिताम् । रजतोदरसंदिष्टां कृत्वा च धारयेत्सुधीः ॥ १९ ॥ सम्प्राप्य महतीं लक्ष्मी-मन्ते मद्देहपरूधृक् । यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ॥ २० ॥ शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् । अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् सत्यमेतन्मनोरमे ॥ २१ ॥ तव स्नेहान्महादेवि कथितं कवचं शुभम् । न देयं कस्यचित् भद्रे यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ २२ ॥ योऽर्चयेत्गन्धपुष्पाद्यैः कवचं मन्मुखोदितम् । तेनार्चिता महादेवि सर्वे देवा न संशयः ॥२३॥

इति भैरवतन्त्रे श्रीसदाशिव-कवचं समाप्तम् ।

अथ वटुकभैरवस्तोत्रम् ।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् । शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥ १ ॥

श्रीपार्वत्युवाच : भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु । आपदु-द्धारणं मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥ २ ॥ सर्वेषाञ्चैव भूतानां हितार्थं वाञ्छितं मया । विशेषतस्तु राज्ञां वै शान्तिपुष्टिप्रसाधनम् ॥ ३ ॥ अङ्गन्यास-करन्यास-बीजन्याससमन्वितम् । वक्तुमर्हसि देवेश मम हर्षविवर्द्धनम् ॥ ४ ॥

श्री भगवानुवाच : शृणु देवि महामन्त्रमापदुद्धारहेतुकम् । सर्व-दुःखप्रशमनं सर्वशत्रुनिवर्द्धनम् ॥ ५ ॥ अपस्मारादिरोगाणां ज्वरादीनां विशेषतः । नाशनं स्मृतिमात्रेण मन्त्रराजमिमं प्रिये ॥ ६ ॥ ग्रहराज-भयानाञ्च नाशनं सुखवर्द्धनम् । स्नेहाद्वक्ष्यामि ते मन्त्रं सर्वसारमिदं प्रिये ॥ ७ ॥ सर्वकामार्थदं मन्त्रं राज्यभोगप्रदं नृणाम् । आपददुद्धारणं मन्त्रं वक्ष्यामीति विशेषतः ॥ ८ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य देवीप्रणवमुद्धरेत् । वटुकायेति वै पश्चादापदुद्धरणाय च ॥ ९ ॥ कुरुद्वयं ततः पश्चाद्वटुकाय पुनः क्षिपेत् । देवीप्रणवमुद्धृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये ॥ १० ॥ मन्त्रोद्धार-मिमं देवि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् । अप्रकाश्यमिमं मन्त्रं सर्वशक्ति-

समन्वितम ॥ ११ ॥ स्मरणादेव मन्त्रस्य भूतप्रेतपिशाचकाः । विद्रवन्ति भयार्त्ता वै कलेरुद्रादिव प्रजाः ॥१२॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् । नाग्निचौरभयं वापि ग्रहराजभयं तथा ॥१३॥ न च मारीभयस्तस्य सर्वत्र सुखवान्भवेत् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिसम्पदः । भवन्ति सततं तस्य पुस्तकस्यापि पूजनात् ॥ १४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच : य एष भैरवो नाम आपदुद्धारको मतः । त्वया च कथितो देव भैरवः कल्प उत्तमः । तस्य नामसहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च । सारमुद्धृत्य तेषां वै नामाष्टशतकं वद ॥ १६ ॥

श्री भगवानुवाच : यस्तु संकीर्त्तयेदेतत्सर्वदुष्टनिवर्हणम् । सर्वान् कामनवाप्नोति साधकः सिद्धिमेव च ॥ १७ ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः । आपदुद्धारकस्येह नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ १८ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम् । सर्वकामार्थदं देवि साधकानां सुखावहम् ॥ १९ ॥ देहाङ्गन्यासनश्चैव पूर्वं कुर्यात्समाहितः । भैरवं मूर्ध्नि विन्यस्य ललाटे भीमदर्शनम् । अक्ष्णोर्भूताश्रयं न्यस्य वदने तीक्ष्णदर्शनम् । क्षेत्रपं कर्णयोर्मध्ये क्षेत्रपालं हृदि न्यसेत् । क्षेत्राख्यं नाभिदेशे तु कट्यां सर्वाघनाशनम् । त्रिनेत्रमूर्वोर्विन्यस्य जङ्घयो रक्तपाणिकम् । पादयोर्देवदेवेशं सर्वाङ्गे वटुकं न्यसेत् ॥ २० ॥ एवं न्यासविधिं कृत्वा तदनन्तरमुत्तमम् । पठेदेकमनाः स्तोत्रं नामाष्टशतसंज्ञकम् । नामाष्टशतकस्यापि छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् । बृहदारण्यको नाम ऋषिश्च परिकीर्त्तितः । देवता कथिता चेत्सद्भिर्वटुकभैरवः । सर्वकामार्थसिद्धार्थं विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥२१॥ भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मना भूतभावनः । क्षेत्रदः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रज्ञः क्षत्रियो विराट् ॥ १ ॥ श्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी मखान्तकृत् । रक्तपः प्राणपः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ॥२॥ करालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः । त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गललोचनः ॥३॥ शूलपाणिः खड्गपाणिः कङ्काली धूम्रलोचनः । अभीरुभैरवो भीमो भूतपो योगिनीपतिः ॥ ४ ॥ धनदो धनहारी च धनदः प्रतिभाववान् । नागहारो नागकेशो व्योमकेशः कपालभृत् ॥ ५ ॥ कालः कपालमाली च कामनीयः कलानिधिः । त्रिलोचनो ज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोकपात् ॥ ६ ॥ त्रिवृत्तनयनो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः । वटुको वटुकेशश्च खट्वाङ्गवरधारकः ॥ ७ ॥ भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः । धूर्तो दिगम्बरः शौरिर्हरिणः पाण्डुलोचनः ॥ ८ ॥ प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शङ्करः प्रियबान्धवः । अष्टमूर्त्तिनिधीशश्च ज्ञानचक्षुस्त-

सोमयः ॥ ९ ॥ अष्टाधारः सर्पयुक्तः शशी विषधरः शिवः। भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मकः ॥ १० ॥ कङ्कालधारी मुण्डी च नागयज्ञोपवीतवान्। जृम्भणो मोहनः स्तम्भी मारणः क्षोभणस्तथा ॥ ११ ॥ शुद्धनीलाञ्जनप्रख्यदेहो मुण्डविभूषितः। बालभुग्बलिभूतात्मा कामी कामपराक्रमः ॥ १२ ॥ सर्वापत्तारको दुर्गो दुष्टभूतनिषेवितः। कालो कलानिधिः कान्तः कामिनीवशकृद्वशी। सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभविष्णुः प्रभाववान् ॥ १३ ॥ अष्टोत्तरशतं नाम भैरवस्य महात्मनः। मया ते कथितं देवि रहस्यं सर्वकामदम् ॥ १४ ॥ य इदं पठति स्तोत्रं नामाष्टशतमुत्तमम्। न तस्य दुरितं किञ्चिन्न रोगेभ्यो भयं तथा ॥ १५ ॥ न शत्रुभ्यो भयं किञ्चित्प्राप्नोति मानव क्वचित् ॥ १६ ॥ पातकानां भयं नैव पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः। मारीभये राजभये तथा चौराग्निजे भये ॥ १७ ॥ औत्पातिके महाघोरे तथा दुःखस्वप्नजे भये। बन्धने च महाघोरे पठेत्स्तोत्रं समाहितः ॥ १८ ॥ सर्वे प्रशमनं यान्ति भयाद्भैरवकीर्तनात्। एकादश सहस्रन्तु पुरश्चरणमिष्यते ॥ १९ ॥ त्रिसन्ध्यं य पठेद्देवि संवत्सरमतन्द्रितः। स सिद्धि प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानुषः ॥ २० ॥ षण्मासान्भूमिकामस्तु स जप्त्वा लभते महीम। राजा शत्रुविनाशाय जपेन्मासाष्टकं पुनः ॥ २१ ॥ रात्रौ वारत्रयश्चैव नाशयत्येव शात्रवान्। जपेन्मासत्रयं रात्रौ राजानं वशमानयेत् ॥ २२ ॥ धनार्थी च सुतार्थी च दारार्थी यस्तु मानवः। पठेद्वारत्रयं यद्वा वारमेकं तथा निशि ॥ २३ ॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान् प्राप्नूयान्नात्र संशयः ॥ २४ ॥ भीतो भयात्प्रमुच्येत देवि सत्यं न संशयः। यान्यान्समीहते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति नित्यशः ॥ २५ ॥ अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित्। सुकुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिते। दद्यात्स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ २६ ॥

ध्यानं वक्ष्यामि देवस्य यथा ध्यात्वा पठेन्नरः।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं सहस्रादित्यवर्चसम्। अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकम्। भुजङ्गमेखलं देवमग्निवर्णशिरोरुहम् ॥ २७ ॥ दिगम्बरं कुमारीशं वटुकाख्यं महाबलम्। खट्वाङ्गमसिपाशञ्च शूलञ्चैव तथा पुनः ॥ २८ ॥ डमरुञ्च कपालञ्च वरदं भुजगंन्तथा। नीलजीमुतसङ्काशं नीलाञ्जनचयप्रभम् ॥ २९ ॥ दंष्ट्राकरालवदनं नूपुराङ्गदसंकुलम्। आत्मवर्णसमोपतं सारमेयसमन्वितम् ॥ ३० ॥

ध्यात्वा जपेत्सुसंहृष्टः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ ॐ करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिस्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती । क्रतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहर्ता जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥ ३२ ॥

एतच्छ्रुत्वा ततो देवी नामाष्टशतमुत्तमम् । भैरवाय प्रहृष्टाभूत् स्वयञ्चैव महेश्वरी ॥ ३३ ॥

इति विश्वसारे आपदुद्धारकल्पे वटुकभैरवस्तवराज समाप्तः ।

अथ भैरवीस्तोत्रम् ।

स्तुत्यानया त्वां त्रिपुरे स्तोष्येऽभीष्टफलाप्तये । यया व्रजन्ति तां लक्ष्मीं मनुजाः सुरपूजिताम् ॥ १ ॥

ब्रह्मादयः श्रुतिशतैरपि सूक्ष्मरूपां, जानन्ति नैव जगदादिमनादिमूर्तिम् । तस्माद्वयं कुचलतां नव कुंकुमाभां स्थूलां स्तुमः सकलवाङ्मयमातृभूताम् ॥ १ ॥ सद्यः समुद्यतसहस्रदिवाकराभां विद्याक्षसूत्रवरदाभयचिह्नहस्ताम् । नेत्रोत्पलैस्त्रिभिरलंकृतवक्त्रपद्मां त्वां तारहाररुचिरां त्रिपुरे भजामः ॥ २ ॥ सिन्दूरपूररुचिरं कुचभारनम्रं जन्मान्तरेषु कृतपुण्यफलैकगम्यम् । अन्योन्यभेदकलहाकुलमानसास्ते जानन्ति किं जडधियस्तवरूपमम्ब ॥ ३ ॥ स्थूलां वदन्ति मुनयः श्रुतयो गृणन्ति सूक्ष्मां वदन्ति वचसामधिवासमन्ये । त्वां मूलमाहुरपरे जगतां भवानि मन्यामहे वयमपारकृपाम्बुराशिम् ॥ ४ ॥ चन्द्रावतंसकलितां शरदिन्दुशुभ्रां पञ्चाशदक्षरमयीं हृदि भावयन्ति । त्वां पुस्तकं जपवटीममृताम्बुकुम्भं व्याख्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्राम् ॥ ५ ॥ शम्भुस्त्वमद्रितनया कलितार्द्धभागो विष्णुस्त्वमम्ब कमलापरिरब्धदेहः । पद्मोद्भवस्त्वमपि वागधिवासभूमिस्तेषां क्रियाश्च जगति त्रिपुरे त्वमेव ॥ ६ ॥ आश्रित्य वाग्भवांश्चतुरः परादीन भावान्पदेषु विहितान्समुदीरयन्तीम् । कण्ठादिभिश्च करणैः परदेवतां त्वां सच्चिन्मयीं हृदि कदापि न विस्मरामि ॥ ७ ॥ आकुञ्च्य वायुमवजित्य च वैरिषट्कमालोक्य निश्चलधिया निजनासिकाग्रम् । ध्यायन्ति मूर्ध्नि कलितेन्दुकलावतंसं त्वद्रूपमम्ब कृतिनस्तरुणार्कमित्रम् ॥ ८ ॥ त्वं प्राप्य मन्मथरिपोर्वपुरर्द्धभागं सृष्टिं करोषि जगतामिति वेदवादः । सत्यं तदद्रितनये जगदेकमातर्नो चेदशेषजगतः स्थितिरेव न स्यात् ॥ ९ ॥ पूजां विधाय कुसुमैः सुरपादपानां पीठे तवाम्ब कनकाचलगह्वरेषु । गायन्ति सिद्धवनिताः सह किन्नरीभिरा-

स्वादितासवरसारुणनेत्रपद्मा: ॥ १० ॥ विद्युद्विलासवपुशः श्रियमुद्वहन्तीं यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम् । सौषुम्नवर्त्मकमलानि विकासयन्तीं देवीं भजे हृदि परामृतसिक्तगात्रीम् ॥ ११ ॥ आनन्दजन्मभवनं भवनं श्रुतीनां चैतन्यमात्रतनुमम्ब तवाश्रयामि । ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां सौभाग्यजन्मवसतिं त्रिपुरे यथावत् ॥ १२ ॥ शब्दार्थभावि भुवनं सृजतीन्दुरूपा या तद्बिभर्ति पुनरर्कतनुं स्वशक्त्या । वह्न्यात्मिका हरति तत्सकलं युगान्ते तां शारदां मनसि जातु न विस्मरामि ॥ १३ ॥ नारायणीति नरकार्णवतारिणीति गौरीति खेदशमनीति सरस्वतीति । ज्ञानप्रदेति नयनत्रयभूषितेति त्वामद्रिराजतनये बहुधा भजन्ति ॥ १४ ॥ ये स्तुवन्ति जगन्मातः श्लोकैर्द्वादशभिः क्रमात् । त्वामनुप्राप्य वाक्सिद्धिं प्राप्नुयुस्ते नराः श्रियम् ॥ १५ ॥

इति भैरवीतन्त्रे भैरवीस्तवराजः समाप्तम् ।

अथ भैरवीकवचम् ।

श्रीदेव्युवाच : भैरव्याः सकला विद्याः श्रुताश्चाधिगता मया । साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत्पुरोदितम् ॥ १ ॥ त्रैलोक्यविजयं नाम शस्त्रास्त्रविनिवारकम् । त्वत्तः परतरो नाथ कः कृपां कर्तुमर्हति ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच : शृणु पार्वति वक्ष्यामि सुन्दरि प्राणवल्लभे । त्रैलोक्यविजयं नाम शस्त्रास्त्र कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥ ३ ॥ पठित्वा धारयित्वेदं त्रैलोक्यविजयी भवेत् । जघान सकलान्दैत्यान् यद्धृत्वा मधुसूदनः ॥ ४ ॥ ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते यद्धृत्वाभीष्टदायकः । धनाधिपः कुबेरोऽपि वासवस्त्रिदशेश्वरः ॥ ५ ॥ यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी विभुः । न देयं परशिष्येभ्योऽसाधकेभ्यः कदाचन ॥६॥ पुत्रेभ्यः किमुतान्येभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् । भैरव्याः कवचस्यास्य ऋषिर्दक्षिणामूर्तिरेव च ॥७॥ विराट् छन्दो जगद्धात्री देवता बालभैरवी । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥ अधरो विन्दुमानाद्यः कामः शक्तीशशीयुतः भृगुर्मनुस्वरयुतः सर्गो बीजत्रयात्मकः ॥ ९ ॥ बालैषा मे शिरः पातु विन्दुनादयुतापि सा । भालं पातु कुमारी च सर्गहीना कुमारिका ॥१०॥ दृशौ पातु च वाग्बीजं कर्णयुग्मं सदावतु । कामबीजं सदा पातु घ्राणयुग्मं सदावतु ॥ ११ ॥ सरस्वतीप्रदा बाला जिह्वां पातु शुचिप्रभा । हसैं कण्ठं हसकलरीं स्कन्धौ पातु हसौर्भुजौ ॥ १२ ॥ पञ्चमी भैरवी पातु करौ हसैं सदावतु । हृदयं

हसकलरीं वक्षः पातु हसरोः स्तनौ ॥ १३ ॥ पातु मां भैरवी देवी चैतन्यरूपिणी मम । हसैं पातु सदा पार्श्वयुग्मं हसकलरीं सदा ॥ १४ ॥ कुक्षि पातु हसौर्मध्यं भैरवी भुवि दुर्लभा । ऐं ईं ॐ मे मध्यदेशं बीजविद्या सदावतु ॥ १५ ॥ हसैं पृष्ठं सदा पातु नाभिं हसकलरीं तथा । पातु हसौः कटीदेशं षट्कुटा भैरवी मम ॥ १६ ॥ हसरैं सक्थिनी पातु हसकलरीं सदावतु । गुह्यदेशं हसौः पातु जानुनी भैरवी मम ॥ १७ ॥ सम्पत्प्रदा सदा पातु हसैं जंघे हसरीं पदम् । पातु हसौः सर्वदेहं भैरवी सर्वदावतु ॥१८॥ हसैं मामवतु प्राच्यां हसकलरीं पावकेऽवतु । हसौः मे दक्षिणे पातु भैरवी चक्रमास्थिता ॥ १९ ॥ ह्रौं क्लीं ब्लूं मां सदा पातु नैर्ऋत्यां चक्रभैरवी । हसैं हसकलह्रीं हसरौः पश्चिमे पातु भैरवी ॥२०॥ क्रीं क्रीं क्रीं पातु वायव्यां हूं हूं पातु सदोत्तरे । ह्रीं ह्रीं पातु सदैशान्ये दक्षिणे कालिकेऽवतु ॥ २१ ॥ ऊर्ध्वं प्रागुक्तबीजानि रक्षन्तु ममधःस्थले । दिग्विदिक्षु स्वाहा कालिका खड्गधारिणी ॥ २२ ॥ ॐ ह्रीं स्त्रीं फट् सा तारा सर्वत्र मां सदावतु । संग्रामे कानने दुर्गे तोये तरङ्गदुस्तरे ॥ २३ ॥ खड्गकर्तृधरा सोग्रा सदा मां परिरक्षतु ।

इति ते कथितं देवि सारात्सारतरं महत् । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥ २४ ॥ यः पठेत्प्रयतो भूत्वा पूजायाः फलमाप्नुयात् । स्पर्द्धामूद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥ २५ ॥ यः शत्रुभीतो रणकातरो वा, भीतो वने वा सलिलालये वा । वादे सभायां प्रतिवादिनो वा राज्ञः प्रकोपाद्ग्रहसंकुलाद्वा । प्रचण्डवाताच्छमनाच्च भीतो गुरोः प्रकोपादपि कृच्छ्रसाध्यात् । अभ्यर्च्य देवीं प्रपठेत्त्रिसन्ध्यं स स्यान्महेशप्रतिमो जयी च ॥२६॥ त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं मन्मुखोदितम् । विलिख्य भूर्जे गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥ २७ ॥ कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ त्रैलोक्यविजयी भवेत् । तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि भवन्ति कुसुमानि च ॥ २८ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती तस्य निवसेद्भुवने सुखे । एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेद्भैरवीं पराम् ॥ २९ ॥ बालां वा प्रजपेद्विद्यां दरिद्रो मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

इति श्रीरुद्रयामले देवीश्वरसम्वादे त्रैलोक्यविजयं
नाम भैरवीकवचं समाप्तम् ।

अथ श्रीविद्यास्तोत्रम् ।

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभिर्लक्ष्मी स्वयं वरणमङ्गलदीपिकाभिः सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले, नाकारि किं मनसि भक्तिमतां

जानानाम् ॥१॥ एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते, त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थ-सरोजनेत्रे । सान्निध्यमुद्यदरुणाम्बुजसोदरस्य, त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाप्लुतस्य ॥ २ ॥ ईषत्प्रभावकलुषाः कति नाम सन्ति, ब्रह्मादयः प्रतिदिनं प्रलयाभिभूताः । एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते, यः पादयोस्तव सकृत्प्रणतिं करोति ॥३॥ लब्ध्वा सकृत्त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं, कारुण्यकन्दलितकान्तिभवं कटाक्षम् । कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्ति-भाजः संमोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेऽपि ॥ ४ ॥ ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति देवा, मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे । त्वत्संस्मृतौ यमभटा-भिभवं विहाय, दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः ॥ ५ ॥ हन्तु पुराम-धिगलं परिपूर्यमानः, क्रूरः कथं न भविता गरलस्य वेगः । नाश्वासनाय यदि मातरिदं तवार्द्धं, देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य ॥ ६ ॥ सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते, देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः । किञ्च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं, द्वे चामरे च महतीं वसुधां ददाति ॥ ७ ॥ कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु कारुण्य-वारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः । आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं, त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि बद्धदृष्टिम् ॥ ८ ॥ हन्तेतरेष्वपि निधाय मनांसि चान्ये भक्तिं वहन्ति किल पामर-दैवतेषु । त्वामेव देवि मनसाहमनुस्मरामि, त्वामेव नौमि शरणं जननि त्वमेव ॥ ९ ॥ लक्षेषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनानामालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथञ्चित् । नूनं मया च सदृशं करुणैकपात्रं, जातो जनिष्यति जनो न च जायते वा ॥ १० ॥ ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां, किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुरधिवासे । मालाकिरीट-मदवारणमाननीयांस्तान्सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः ॥ ११ ॥ सम्प-त्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि, साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि । त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि, मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम् ॥१२॥ कल्पोपसंहरणकल्पिततांडवस्य, देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य । पाशांकुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा, स साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका ॥ १३ ॥ लग्नं सदा भवतु मातरिदं त्वदीय, तेजः परं बहुलकुंकुमपङ्क-शोणम् । भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं रूपं त्रिकोणमुदितं परमा-मृतात्तम् ॥ १४ ॥ ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण सन्दीपितं, स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित् । तस्य क्षौणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी, वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं यशः ॥ १५ ॥ इति श्रीविद्यास्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ किङ्किणीस्तोत्रम् ।

किं किं दुःखं सकलजननि क्षीयते न स्मृतायां, का का कीर्तिः कुल-कमलिनि प्राप्यते नार्चितायाम् । किं किं सौख्यं सुरवरनुते प्राप्यते न स्तुतायां, कं कं योगं त्वयि न तनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥ १ ॥ स्मृता भव-भयं हंसि पूजितासि शुभङ्करि । स्तुता त्वं वाञ्छितं देवि ददासि करुणाकरे ॥ २ ॥ परमानन्दबोधाब्धिरूपे तेजःस्वरूपिणि । देव-वृन्द-शिरोरत्न-निघृष्ट-चरणाम्बुजे । चिद्विश्रान्तिमहासत्तामात्रे मात्रे नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ सृष्टिस्थित्युपसंहार-हेतुभूते सनातनि । गुणत्रयात्मिकासि त्वं जगतः करणेच्छया ॥ ४ ॥ अनुग्रहाय भूतानां गृहीतदिव्यविग्रहे । भक्तस्य मे नित्यपूजायुक्तस्य परमेश्वरि ॥ ५ ॥ ऐहिकामुष्मिकीं सिद्धिं देहि त्रिदशवन्दिते । तापत्रयपरिम्लानभाजनं त्राहि मां शिवे ॥ ६ ॥ नान्यं वदामि न शृणोमि न चिन्तयामि, नान्यं स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि । त्यक्त्वा त्वदीय चरणाम्बुजमादरेण, मां त्राहि देवि कृपया मयि देहि सिद्धिम् ॥ ७ ॥ अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च । यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धा-मन्त्रविवर्जितम् । तत्सर्वं कृपया देवि क्षमस्व त्वं दयानिधे ॥ ९ ॥ यन्मया क्रियते कर्म तन्महत्स्वल्पमेव वा । तत्सर्वंश्च जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमञ्जलिः ॥ १० ॥

इति किङ्किणीस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ श्रीविद्याकवचम् ।

देव्युवाच : देवदेव महादेव भक्तानां प्रीतिवर्द्धन । सूचितं यन्महा-देव्याः कवचं कथयस्व मे ॥ १ ॥

श्रीमहादेव उवाच : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं मन्त्रविग्रहम् । अप्रकाश्यं परं गुह्यं सकलाभीष्टसिद्धिदम् ॥ २ ॥ कवचस्य ऋषिर्देवि दक्षिणामूर्तिरव्ययः । छन्दः पंक्तिः समुद्दिष्टं देवो त्रिपुरसुन्दरी । धर्मार्थ-काममोक्षाणां विनियोगश्च साधने ॥ ३ ॥ वाग्भवं कामराजश्च शक्तिबीजं सुरेश्वरि । वाग्भवः पातु शीर्षे मां कामराजस्तथा हृदि ॥ ४ ॥ शक्तिबीजं सदा पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः । ऐं क्लीं सौर्वदने पातु बाला मां सर्वसिद्धये ॥ ५ ॥ हसैं हसकलरीं हसौः पातु भैरवी कण्ठदेशतः । सुन्दरी नाभिदेशेऽव्याच्छीर्षे कामकला सदा ॥ ६ ॥ भ्रूनासयोरन्तराले महा-

त्रिपुरसुन्दरी। ललाटे सुभगा पातु भगा मां कण्ठदेशतः ॥७॥ भगोदया तु हृदये उदरे भगसर्पिणी। भगमाला नाभिदेशे लिङ्गे पातु मनोभवा ॥ ८ ॥ गुह्ये पातु महादेवी राजराजेश्वरी शिवा। चैतन्यरूपिणी पातु पादयोर्जगदम्बिका ॥ ९ ॥ नारायणी सर्वगात्रे सर्वकार्ये शुभङ्करी। ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे दक्षिणे वैष्णवी तथा ॥ १० ॥ पश्चिमे पातु वाराही उत्तरे तु महेश्वरी। आग्नेय्यां पातु कौमारी महालक्ष्मीश्च नैर्ऋते ॥ ११ ॥ वायव्यां पातु चामुण्डा इन्द्राणी पातु ईशके। जले पातु महामाया पृथिव्यां सर्वमङ्गला। आकाशे पातु वरदा सर्वत्र भुवनेश्वरी ॥ १२ ॥

इदन्तु कवचं देव्या देवानामपि दुर्लभम्। पठेत्प्रातः समुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ १३ ॥ नाधयो व्याधयस्तस्य न भयञ्च क्वचिद्भवेत्। न च मारीभयं तस्य पातकानां भयं तथा ॥ १४ ॥ न दारिद्र्यवशं गच्छे-त्तिष्ठेन्मृत्युवशे न च। गच्छेच्छिवपुरं देवि सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ १५ ॥ इदं कवचमज्ञात्वा श्रीविद्यां यो जपेत्प्रिये। स नाप्नोति फलं तस्य प्राप्नुयाच्छस्त्रघातनम् ॥ १६ ॥

इति सिद्धयामले श्रीविद्याकवचं समाप्तम्।

अथ महात्रिपुरसुन्दरीकवचम्।

देव्युवाच : भगवन् देवदेवेश लोकानुग्रहकारक। त्वत्प्रासादान्महा-देव श्रुता मन्त्रास्त्वनेकधा ॥ १ ॥ साधनं विविधं देव कीलकोद्धारणं तथा। शापादिदूषणोद्धारः श्रुतस्त्वत्तो मया प्रभो ॥ २ ॥ राजराजेश्वरी-देव्याः कवचं सूचितं मयि। श्रोतुमिच्छामि त्वत्तस्तत्कथयस्व मयि प्रभो ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच : लक्षवार सहस्राणि वारितासि पुनः पुनः। स्त्रीस्व-भावात्पुनर्देवि पृच्छसि त्वं मयि प्रिये ॥ ४ ॥ अत्यन्तगुह्यं कवचं सर्वकाम-फलप्रदम्। प्रीतये तव देवेशि कथयामि शृणुष्व तत् ॥ ५ ॥ अस्य राजराजेश्वरी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीषोडशीविद्याकवचस्य महादेवऋषिः प्रस्तारपङ्क्तिच्छन्दो राजराजेश्वरी-महात्रिपुरसुन्दरी देवता पुरुषार्थसाधने विनियोगः ॥ ६ ॥ पूर्वे मां भैरवी पातु बाला मां पातु दक्षिणे। मालिनी पश्चिमे पातु त्रासिनी तूत्तरेऽवतु ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वं पातु महादेवो महात्रिपुर-सुन्दरी। अधस्तात्पातु देवेशी पातालतलवासिनी ॥ ८ ॥ आधारे वाग्भवः पातु कामराजन्तथा हृदि। डामरः पातु मां नित्यं मस्तके

सर्वकामदः ॥ ६ ॥ ब्रह्मरन्ध्रे सर्वगात्रे छिद्रस्थाने च सर्वदा । महाविद्या भगवती पातु मां परमेश्वरी ॥१०॥ ऐं क्लीं ललाटे मां पायात् ह्रीं क्लूं सः पातु नेत्रयोः । नासायां कर्णयोश्चैव द्रां द्रैं द्रां द्रीं चिबुके तथा । सौः पातु च गले सह्रीं हृदये नाभिदेशके ॥११॥ कलह्रीं क्लीं स्त्रीं गुह्यदेशे सह्रीश्च पातुपादयोः । सहह्रीं मां सर्वतः पातु सक्लीं पातु च सन्धिषु ॥१२॥ जले स्थलेतथाकाशे दिक्षु राजगृहे तथा । हूं क्षे मां त्वरिता पातु सह्रीं सक्लीं मनोभवा ॥ १३ ॥ हंसः पायान्महादेवी परं निष्कलदेवता । विजया मङ्गला दूती कल्याणी भगमालिनी । ज्वाला च मालिनी नित्या सर्वदा पातु मां शिवा ॥ १४ ॥ इत्येवं कवचं देवि देवानामपि दुर्लभम् । तव प्रीत्या मया ख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ इदं रहस्यं परमं गुह्याद्-गुह्यतरं प्रिये । धन्यं यशस्यमायुष्यं भोगमोक्षप्रदं शिवम् ॥ १६ ॥ दुःस्वप्ननाशनं पुंसां नरनारीवशङ्करम् । आकर्षणकरं देवि स्तम्भो-च्चाटकरं शिवे ॥ १७ ॥ इदं कवचमज्ञात्वा राजराजेश्वरी शिवाम् । योऽर्चयेद्योगिनीवृन्दैः स भक्ष्यो नात्र संशयः ॥ १८ ॥ न तस्य मन्त्रसिद्धिः स्यात्कदाचिदपि शङ्करि । इहलोके च दारिद्र्यं रोगदुःखभयानि च । परत्र नरकं गत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् । तस्मादेतत्सदाभ्यस्येदधिकारी भवेत्ततः ॥ १९ ॥ मद्वक्त्रनिर्गतमिदं कवचं सुपुण्यं, पूजाविधेश्च पुरतो विधिना पठेद्यः । सौभाग्यभोगललितानि शुभानि भुक्त्वा, देव्याः पदं भजति तत्पुनरन्तकाले ॥ २० ॥

इति कुलानन्द संहितायां त्रिपुरसुन्दरीषोडशीविद्या कवचं समाप्तम् ।

अथ प्राचण्डचण्डिका-स्तोत्रम् ।

नाभौ शुद्धसरोजरक्तविलसद्बन्धूकपुष्पारुणं, भास्वद्भास्करमण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रं महत् । तन्मध्ये विपरीतमैथुनरतप्रद्युम्न तत्कामिनी पृष्ठस्थां तरुणार्क कोटिविलसत्तेजः स्वरूपां शिवाम् ॥ १ ॥ वामे छिन्नशिरोधरां तदितरे पाणौ महत्कर्तृकां प्रत्यालीढपदां दिगन्तवसना-मुन्मुक्तकेशव्रजाम् । छिन्नात्मीयशिरः समुल्लसदसृग्धारां पिबन्तीं परां, बालादित्यसमप्रकाशविलसन्नेत्रत्रयोद्भासिनीम् ॥ २ ॥ वामादन्यत्र नालं बहुबहुलगलद्रक्तधाराभिरुच्चैः । पायन्तीमस्थिभूषां करकमललसत्कर्तृ-कामुग्ररूपाम् । रक्तामारक्तकेशीमपगतवसनां वर्णिनीमात्मशक्तिं, प्रत्यालीढोरुपादामरुणितनयनां योगिनीं योगनिद्राम् ॥ ३ ॥ दिग्वस्त्रां

मुक्तकेशीं प्रलयघनघटाघोररूपां प्रचंडां दंष्ट्रादुष्प्रेक्ष्यवक्त्रोदरविवरलसल्लोलजिह्वाग्रभासाम् । विद्युल्लोलाक्षियुग्मां हृदयतटलसद्भोगिभीमां सुमूर्ति सद्यश्छिन्नात्मकण्ठ-प्रगलितरुधिरैर्डाकिनीं वर्द्धयन्तीम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मेशानाच्युताद्यैः शिरसि विनिहितामन्दपादारविन्दैरात्मज्ञैर्योगिमुख्यैः प्रतिदिनमनिशं चिन्तिताचिन्त्यरूपाम् । संसारे सारभूतां त्रिभुवनजननीं छिन्नमस्तां प्रशस्तामिष्टां तामिष्टदात्रीं कलिकलुषहरां चेतसा चिन्तयामि ॥ ५ ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुं त्रैगुण्याज्जगतो यदीयविकृतिर्ब्रह्माच्युतः शूलभृत् । तामाद्यां प्रकृतिं स्मरामि मनसा सर्वार्थसंसिद्धये, यस्याः स्मेरपदारविन्दयुगले लाभं भजन्तेऽमराः ॥ ६ ॥ अलिपिशितपरस्त्री-योगपूजापरोऽहं, बहुविधजनभावारम्भसम्भावितोऽहम् । पशुजनविरतोऽहं भैरवीसंस्थितोऽहं गुरुचरणपरोऽहं भैरवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ७ ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं ब्रह्मणा भाषितं पुरा । सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् ॥ ८ ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय देव्याः सन्निहितोऽपि वा । तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ ९ ॥ धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च । वसुन्धरां महाविद्यामष्टौ सिद्धीर्भवेद्ध्रुवम् ॥ १० ॥ वैयाघ्राजिनरञ्जितस्वजघने रम्ये प्रलम्बोदरे खर्वेऽनिर्वचनीयपर्वसुभगे मुण्डावली मण्डिते । कर्त्रीं कुन्दरुचिं विचित्रललितां ज्ञानं दधाने पदे, मातर्भक्तजनानुकम्पिनि महामायेऽस्तु तुभ्यं नमः ॥ ११ ॥

इति प्रचण्डचण्डिकास्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ प्रचण्डचण्डिकाकवचम् ।

देव्युवाच : कथिताश्छिन्नमस्ताया या या विद्याः सुगोपिताः । त्वया नाथेन जीवेश श्रुताश्चाधिगता मया ॥ १ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं कथ्यतां प्रभो ॥ २ ॥

भैरव उवाच : शृणु वक्ष्यामि देवेशि सर्वदेवनमस्कृते । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वमोहनम् ॥ ३ ॥ सर्वविद्यामयं साक्षात्सुरासुरजयप्रदम् । धारणात्पठनादीशस्त्रैलोक्यविजयी विभुः ॥ ४ ॥ ब्रह्मा नारायणो रुद्रो धारणात्पठनाद्यतः । कर्ता पाता च संहर्ता भुवनानां सुरेश्वरि ॥५॥ न देयं परशिष्येभ्योह्य भक्तेभ्योपि विशेषतः । देयं शिष्याय भक्ताय प्राणेभ्योप्यधिकाय च ॥ ६ ॥

देव्याश्छिन्नमस्तायाः कवचस्य च भैरवः । ऋषिर्विराट् छन्दस्तु

देवता च्छिन्नमस्तका ॥७॥ त्रैलोक्यविजये मुक्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः।
हूंकारो मे शिरः पातु छिन्नमस्ता बलप्रभा ॥ ८ ॥ ह्रां ह्रूं ऐं त्र्यक्षरो पातु भालं वक्त्रं दिगम्बरी। श्रीं ह्रीं हूं ऐं दृशौ पातु मुण्डकर्त्रीधरापि सा ॥९॥ सा विद्या प्रणवाद्यन्ता श्रुतियुग्मं सदाऽवतु। वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा च ध्रुवादिका ॥१०॥ घ्राणं पातु छिन्नमस्तामुण्डकर्तृविधारिणी। श्रीमायाकूर्चवाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हूं ॥ ११ ॥ हूं फट् स्वाहा महाविद्या षोडशी ब्रह्मरूपिणी। स्वपार्श्वेवर्णिनी चासृग्धारां पाययन्ती मुदा ॥ १२ ॥ वदनं सर्वदा पातु छिन्नमस्ता स्वशक्तिका। मुण्डकर्तृधरा रक्ता साधका-भीष्टदायिनी ॥ १३ ॥ वर्णिनी डाकिनीयुक्ता सापि मामभितोऽवतु। रमाद्या पातु जिह्वां च लज्जाद्या पातु कण्ठकम् ॥१४॥ कूर्चाद्या हृदयं पातु वागाद्या स्तनयुग्मकम्। रमया पुटिता विद्या पार्श्वौ पातु सुरेश्वरी ॥ १५ ॥ मायया पुटिता पातु नाभिदेशे दिगम्बरी। कूर्चेन पुटिता देवी पृष्ठदेशे सदावतु ॥ १६ ॥ वाग्बीजपुटिता चैषा मध्यं पातु सशक्तिका। ईश्वरी कूर्चवाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हूं ॥ १७ ॥ हूं फट् स्वाहा महाविद्या कोटिसूर्यसमप्रभा। छिन्नमस्ता सदा पायादूरुयुग्मं सशक्तिका ॥१८॥ ह्रीं ह्रूं वर्णिनो जानुं श्रीं ह्रीं हूं च डाकिनी पदम्। सर्वविद्यास्थिता नित्या सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ १९ ॥ प्राच्यां पायादेकलिङ्गा योगिनी पावकेऽवतु। डाकिनी दक्षिणे पातु श्रीमहाभैरवी च माम् ॥ २० ॥ नैर्ऋत्यां सततं पातु भैरवी पश्चिमेऽवतु। इन्द्राक्षी पातु वायव्येऽसितांगी चोत्तरे ॥ २१ ॥ संहारिणी सदा पातु शिवकोणे सकर्तृका। इत्यष्ट शक्तयः पान्तु दिग्वि-दिक्षु सकर्तृकाः ॥ २२ ॥ क्रीं क्रीं क्रीं पातु मां पूर्वे हूं हूं मां पातु पावके। ह्रीं ह्रीं मां दक्षिणे पातु दक्षिणे कालिकेऽवतु ॥२३॥ क्रीं क्रीं क्रीं चैव नैर्ऋत्यां ह्रूं ह्रूं च मां पश्चिमेऽवतु। हूं हूं पातु मरुत्कोणे स्वाहा पातु सदोत्तरे ॥ २४ ॥ महाकाली खड्गहस्ता शिवकोणे सदावतु। तारो माया वधूः कूर्चं फट्कारोऽयं महामनुः ॥ २५ ॥ खड्गकर्तृधरा तारा चोर्ध्वदेशं सदावतु। ह्रीं स्त्रीं हूं फट् च पाताले मां पातु चैकजटा सती। तारा तु सहिता खेऽव्यान्महानीलसरस्वती ॥ २६ ॥ इति ते कथितं देव्याः कवचं मन्त्रविग्रहम्। यद्धृत्वा पठनाद्भीमः क्रोधाख्यो भैरवः स्मृतः ॥ २७ ॥ सुरासुरमुनीन्द्राणां कर्ता हर्ता भवेत्स्वयम्। यस्याज्ञया मधुमती याति सा साधकान्तिकम् ॥ २८ ॥ भूतिन्याद्याश्च डाकिन्यो यक्षिण्याद्याश्च खेचराः। आज्ञां गृह्णन्ति तास्तस्य कवचस्य प्रसादतः ॥ २९ ॥

एतदेव परं ब्रह्मकवचं मन्मुखोदितम्। देवीमभ्यर्च्य गन्धाद्यैर्मूलेनैव

पठेत्सकृत् ॥ ३० ॥ सम्वत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् । भूर्जे विलिखिश्चैतत्गुटिकां काञ्चनस्थिताम् ॥ ३१ ॥ धारयेद्दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा यदि वाग्यतः । सर्वैश्वर्युतो भूत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ ३२ ॥ तस्य गेहे वसेल्लक्ष्मीर्वाणी च वदनाम्बुजे । ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रे यान्ति सौम्यताम् ॥ ३३ ॥ इदं कथचमज्ञात्वा यो भजेच्छिन्नमस्तकाम् । सोपि शस्त्रप्रहारेणमृत्युमाप्नोति सत्वरम् ॥ ३४ ॥

इति भैरवतन्त्रे छिन्नमस्ताकवचं समाप्तम् ।

अथ श्यामास्तोत्रम् ।

कर्पूरं मध्यमात्यस्वरपरिरहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं बीजं ते मातरेतत्त्रिपुरहरवधूः त्रिःकृतं ये जपन्ति । तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसंत्येव वाचः स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम् ॥१॥ ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि द्वन्द्वचेता मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित् । जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्त्यन्नम्बुजाक्षीवृन्दं चन्द्रार्द्धचूडे प्रभवति स महाघोररावावतंसे ॥ २ ॥ ईशो वैश्वानरस्थः शशिधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो बीजं ते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति । द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वे वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधः सव्येऽभीतिं वरं च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके च । जप्त्वैतन्नाम ये वा तव मनुविभवं धारयन्त्येतदम्ब तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितवदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ॥ ४ ॥ वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरतिवलितं तत्त्रयं कूर्चयुग्मं लज्जाद्वन्द्वं च पश्चात्स्मितमुखि त्वदधष्ठद्वयं योजयित्वा । मातर्ये ये जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूपं ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति ॥ ५ ॥ प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति । तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमलावक्त्र शुभ्रांशुबिम्बे वाग्देवी दिव्यमुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठपीनस्तनाढ्ये ॥ ६ ॥ गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम् । श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरतप्रयुक्तां त्वां ध्यायञ्जननि जडचेता अपि कविः ॥ ७ ॥ शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः परं संकीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम् । प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरतेनातियुवतीं सदा

त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥ ८ ॥ वदामस्ते किं वा जननि वयमुच्चैर्जडधियो न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम्। तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते तदेतत्क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ॥ ९ ॥ समन्तादापीनस्तन-जघनधृग्यौवनवतीरता-सक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम्। विवासास्त्वां ध्यायन्गलित-चिकुरस्तस्य वशगाः समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥ १० ॥ समाः सुस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम्। तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः कराम्भोजे वश्या हरवधूसिद्धिनिवहाः ॥ ११ ॥ प्रसूते संसारं जननि भगवति पालयति च समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च। अतस्त्वं धातापि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरहो महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम् ॥१२॥ अनेके सेवन्ते हरगृहिणी गीर्वाणनिवहा विमूढास्ते मातः किमपि नहि जानन्ति परमम्। समाराध्यामाद्यां हरिहरविरञ्च्या-दिविबुधैः प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ॥ १३ ॥ धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम्। स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकं प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम मनुः ॥ १४ ॥ श्मशानस्थः स्वस्थो गलित-चिकुरो दिक्पटधरः सहस्रं त्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम्। जपनस्त्वत्प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ॥ १५ ॥ गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलित वीर्यं हि कुसुमं समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने। समुच्चार्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत्कालि सततं गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ॥ १६ ॥ स्वपुष्पै-राकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो पुरो ध्यायं यदि ध्यायं जपति भक्तस्तव मनुम्। स गन्धर्वश्रेणीपतिरिव कवित्वामृतनदीनदेनः पर्यन्ते परमपद-लीनः प्रभवति ॥ १७ ॥ त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनियताम्। समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो जनो यस्त्वा ध्यायेदपि जननि स स्यात्स्मरहरः ॥ १८ ॥ सलोमास्थि स्वैरं फललमपि मार्ज्जारमपि ते परं चौष्ट्रं मैषं नरमहिष-योच्छागमपि वा। बलिं ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥ १९ ॥ वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याश-नरतो दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणः। परं नक्तं नग्नो निधुवन-विनोदेन च मनुं जपेल्लक्षं सम्यक्स्मरहरसमानः क्षितितले ॥ २० ॥

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगल-पूजाविधियुतम् । निशार्द्धे वा पूजासमय अथवा यस्तु पठति प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥ २१ ॥ कुरङ्गाक्षीवृन्दस्तमनुसरति प्रेमतरलं वशस्तस्य क्षौणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः । रिपुः कारागारं कलयति च तत्केलिकलया चिरं जीवन्नन्मुक्तः स भवति सुभक्तः प्रतिजनुः ॥२२॥

इति महाकालविरचितं श्यामास्तोत्रं समाप्तम् ।

अथास्याः कवचम् ।

भैरव्युवाच : कालीपूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविधाः प्रभो । इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ॥ १ ॥ त्वमेव स्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि । त्वमेव शरणं नाथ पाहि मा दुःखसङ्कटात् ॥ २ ॥

भैरव उवाच : रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवी प्राणवल्लभे । श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥ ३ ॥ पठित्वा धारयित्वा च त्रैलोक्यं मोहयेत्क्षणात् । नारायणोऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरम् ॥ ४ ॥ योगेशं क्षोभमनयद्यद्धृत्वा च रघूत्तमः । वरदृप्तान् जघानैव रावणादि-निशाचरान् ॥ ५ ॥ यस्य प्रसादादीशोऽपि त्रैलोक्यविजयी विभुः । धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छचीपतिः ॥ ६ ॥

एवं हि सकला देवाः सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये ।

श्रीजगन्मङ्गलस्यापि कवचस्य ऋषिः शिवः ॥ ७ ॥ छन्दोऽनुष्टुप्देवता कालिका दक्षिणेरिता ॥ ८ ॥ जगतां मोहने दुष्टविजये भुक्ति-मुक्तिषु । योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ९ ॥

ॐशिरो मे कालिका पातु क्रीङ्कारैकाक्षरी परा । क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटं च कालिका खड्गधारिणी ॥ १० ॥ हूं हूं पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम । दक्षिणे कालिका पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरि ॥ ११ ॥ क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हूं हूं पातु कपोलकम् । वदनं सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी ॥ १२ ॥ द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा । खड्ग-मुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥ १३ ॥ क्रीं हूं क्रीं त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदयं मम । ऐं हूं ॐ ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम् ॥ १४ ॥ अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्तृका । क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं करौ पातु षडक्षरी मम ॥ १५ ॥ क्रीं नाभिं मध्यदेशं च दक्षिणे कालिका-वऽतु । क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठं च कालिका सा दशाक्षरी ॥१६॥ क्रीं मे गुह्यं सदा पातु कालिकायै नमस्ततः । सप्ताक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता

॥ १७ ॥ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिका हूं हूं पातु कटिद्वयम् । काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा ममोरुयुग्मकम् ॥ १८ ॥ ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनि सदा । कालो हृदयविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ १९ ॥ क्रीं ह्रीं ह्रीं पातु सा गुल्फं दक्षिणे कालिकावतु । क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा पदं पातु चतुर्दशाक्षरी मम ॥२०॥ खड्गमुण्डधरा काली वरदा भयहारिणी । विद्याभिः सकलाभिः सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥ २१ ॥ काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी । विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ताघनत्विषा ॥ २२ ॥ नीला घना बालाका च मात्रा मुद्रामिता च माम् । एताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमाला विभूषणाः ॥ २३ ॥ रक्षन्तु दिग्विदिक्षु मां ब्राह्मी नारायणी तथा । माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ॥ २४ ॥ वाराही नारसिंही च सर्वाश्चामितभूषणाः । रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु मां यथा तथा ॥ २५ ॥ इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्‌भुतम् । श्रीजगन्मङ्गलं नाम महाविद्यौघविग्रहम् ॥ २६ ॥ त्रैलोक्याकर्षकं ब्रह्मन् कवचं मन्मुखोदितम् । गुरुपूजां विधायाथ विधिवत्प्रपठेत्ततः ॥ २७ ॥ कवचं त्रिः सकृद्वापि यावज्जीवं च वा पुनः । एतच्छतार्द्धमावर्त्य त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ २८ ॥ त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः । महाकविर्भवेन्मासात्सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ २९ ॥ पुष्पाञ्जलिं कालिकायै मूलेनैवार्पयेत्सकृत् । शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ भूर्जे विलिखितं चैतत्स्वर्णस्थं धारयेद्यदि । शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद्यदि ॥ ३१ ॥ त्रैलोक्यं मोहयेत्क्रोधात्त्रैलोक्यं चूर्णयेत्क्षणात् । पुत्रबान्धवान्श्रीमान्नानाविद्यानिधिर्भवेत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्‌गात्रस्पर्शनात्ततः । नाशमायान्ति या नारी वन्ध्या च मृतपुत्रिणी ॥ ३३ ॥ कण्ठे वा वामबाहौ वा कवचस्य धारणात् । बह्वपत्या जीववत्सा भवत्येव न संशयः ॥ ३४ ॥ न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः । शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यश्चान्यथा मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥ स्पर्द्धामुद्‌धूय कमलावाग्देवीमन्दिरे मुखे । पौत्रान्तं स्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम् ॥ ३६ ॥ इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत्कालिदक्षिणाम् । शतलक्षं प्रजप्त्वापि तस्य मन्त्रो न सिद्धयति । सशस्त्रघातमाप्नोति सोचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

इति भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे कालीकल्पे श्यामाकवचं समाप्तम् ।

अथ तारास्तोत्रम् ।

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्यसम्पत्प्रदे प्रत्यालीढपदस्थिते शवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे । फुल्लेन्दीवर लोचने त्रिनयने कर्त्रीकपालोत्पले खड्गश्चादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये ॥ १ ॥ वाचामीश्वरि भक्तिकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि गद्यप्राकृतपद्यजातरचनासर्वार्थसिद्धिप्रदे । नीलेन्दीवरलोचनत्रययुते कारुण्यवारान्निधे सौभाग्यामृतवर्द्धनेन कृपया सिञ्च त्वमस्मादृशम् ॥२॥ खर्वगर्वसमूहपूरिततनो सर्पादिवेषोज्वले व्याघ्रत्वक्परिवीतसुन्दरकटिव्याधूतघण्टाङ्किते । सद्यः कृत्तगलद्रजः परिमिलन्मुण्डद्वयीमूर्द्धजग्रन्थिश्रेणिनृमुण्डदामललिते भीमे भयन्नाशय ॥ ३ ॥ मायानङ्गविकाररूपललनाविन्द्वर्धचन्द्राङ्कितं हुंफट्कारमयो त्वमेव शरणं मन्त्रात्मिके मादृशः । मूर्तिस्ते जननि त्रिधामघटिता स्थूलातिसूक्ष्मा परा वेदनां न हि गोचरा कथमपि प्राप्तां नु तामाश्रये ॥ ४ ॥ त्वत्पादाम्बुजसेवया सुकृतिनो गच्छन्ति सायुज्यतां तस्याः श्रीपरमेश्वरत्रिनयनब्रह्मादिसाम्यात्मनः । संसाराम्बुधिमज्जने पटुतनुर्देवेन्द्रमुख्यान्सुरान् मातस्ते पदसेवने हि विमुखान् किं मन्दधीस्सेवते ॥ ५ ॥ मातस्त्वत्पदपङ्कजद्वयरजोमुद्राङ्ककोटीरिणस्ते देवा जयसङ्गरे विजयिनो निःशङ्कमङ्के गताः । देवोऽहं भुवने न मे सम इति स्पर्द्धां वहन्तः परे तत्तुल्यान्नियतं यथा शशिरवी नाशं व्रजन्ति स्वयम् ॥ ६ ॥ त्वन्नामस्मरणात्पलायनपराद्रष्टुं च शक्ता न ते भूतप्रेतपिशाचराक्षसगणा यक्षाश्च नागाधिपाः । दैत्या दानवपुङ्गवाश्च खेचरा व्याघ्रादिका जन्तवो डाकिन्यः कुपितान्तकाश्च मनुजान्मातः क्षणं भूतले ॥ ७ ॥ लक्ष्मीः सिद्धगणाश्च पादुकमुखाः सिद्धास्तथा वैरिणां स्तम्भश्चापि वराङ्गने गजघटास्तम्भस्तथा मोहनम् । मातस्त्वत्पदसेवया खलु नृणां सिध्यन्ति तेते गुणाः क्लान्तिः कान्त मनोभवोत्र भवति क्षुद्रोऽपि वाचस्पतिः ॥ ८ ॥ ताराष्टकमिदं पुण्यं भक्तिमान्यः पठेन्नरः । प्रातर्मध्याह्नकाले च सायाह्ने नियतः शुचिः ॥ ९ ॥ लभते कवितां विद्यां सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् । लक्ष्मीमनश्वरां प्राप्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । कीर्तिं कान्तिं च नैरुज्यं सर्वेषां प्रियतां व्रजेत् । विख्यातिश्चापि लोकेषु प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नुयात् ॥ १० ॥

इति नीलतन्त्रे ताराष्टकं समाप्तम् ।

अथ ताराकवचम् ।

ईश्वर उवाच : कोटितन्त्रेषु गोप्या हि विद्यातिभयमोचिनी । दिव्यं हि कवचं तस्याः शृणुष्व सर्वकामदम् ॥ १ ॥

ताराकवचस्याऽक्षोभ्यऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो भगवती तारा देवता सर्वमन्त्रसिद्धिसमृद्धये जपे विनियोगः ।

प्रणवो मे शिरः पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी । ह्रींकार पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी ॥ २ ॥ स्त्रींकारः सदा वदने लज्जारूपा महेश्वरी । हूंकारः पातु हृदये भवानीशक्तिरूपधृक् ॥३॥ फट्कारः पातु सर्वाङ्गे सर्वसिद्धि फलप्रदा । खर्वा मां पातु देवेशीगण्डयुग्मे भयापहा ॥४॥ लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी । व्याघ्रचर्मावृता कट्यां पातु देवी शिवप्रिया ॥५॥ पीनोन्नतस्तनो पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी । रक्तवर्तुलनेत्रा च कटिदशे सदावतु ॥ ६ ॥ ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मां भुवनेश्वरी । करालास्या सदा पातु लिङ्गे देवी हरप्रिया ॥ ७ ॥ पिङ्गोग्रैकजटा पातु जङ्घायां विघ्ननाशिनी । प्रेतखर्परधरा देवी जानुचक्रे महेश्वरी ॥ ८ ॥ नालवर्णा सदा पातु जानुनी सर्वदा मम । नागकुण्डलधरा देवी पातु पादयुगे ततः ॥ ६ ॥ नागहारधरा देवी सर्वाङ्गं पातु सर्वदा । नागकङ्कधरा देवी पातु प्रान्तरदेशतः ॥ १० ॥ चतुर्भुजा सदा पातु गमने शत्रुनाशिनी । खड्गहस्ता महादेवी श्रवणे पातु सर्वदा ॥ ११ ॥ नीलाम्बरधरा देवी पातु मां विघ्ननाशिनी । कर्तृहस्ता सदा पातु विवादे शत्रुमध्यतः ॥ १२ ॥ ब्रह्मरूपधरा देवी संग्रामे पातु सर्वदा । नागकङ्कणधरा देवी भोजने पातु सर्वदा ॥ १३ ॥ शवकर्णा महादेवी शयने पातु सर्वदा । वीरासनधरा देवी निद्रायां पातु सर्वदा ॥ १४ ॥ धनुर्बाणधरा देवी पातु मां विघ्नसंकुले । नागाञ्चितकटी पातु देवी मां सर्वकर्मसु ॥ १५ ॥ छिन्नमुण्डधरा देवी कानने पातु सर्वदा । चितामध्यस्थिता देवी मारणे पातु सर्वदा ॥ १६ ॥ द्वीपिचर्मधरा देवी पुत्रदारधनादिषु । अलङ्कारान्विता देवी पातु मां हरवल्लभा ॥ १७ ॥ रक्षरक्ष नदीकुञ्जे हूं हूं फट् समन्विते । बीजरूपा महादेवी पर्वते पातु सर्वदा ॥ १८ ॥ मणिधरा वज्रिणि देवी महाप्रतिसरे तथा । रक्षरक्ष हूं हूं ॐ ह्रीं स्वाहा महेश्वरी ॥१६॥पुष्पकेतुराजार्हेति कानने पातु मां सर्वदा । ॐ ह्रीं वज्रपुष्पे हूं फट् प्रान्तरे सर्वकामदा ॥ २० ॥ ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पातु पुत्रान्महेश्वरी । हूं स्वाहा शक्तिसंयुक्ता दारान् रक्षतु सर्वदा ॥२१॥ ॐ मां हूं फट् स्वाहा महेशानी

पातु द्यूते हरप्रिया । ॐ ह्रौं सर्वविघ्नोत्सारिणी देवी विघ्नान्मां सदावतु ॥२२॥ ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं फट् स्वाहासमन्विता । पृथिव्यां पातु मां देवी सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ २३ ॥ ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूं फट् स्वाहा-समन्विता । पाताले पातु मां देवी लाकिनी नामसंज्ञिका ॥ २४ ॥ ह्रींकारी पातु मां पूर्वे शक्तिरूपा महेश्वरी । स्त्रींकारी पातु देवेशी वधूरूपा महेश्वरी ॥२५॥ हूं स्वरूपा महादेवी पातु मां क्रोधरूपिणी । फट् स्वरूपा महामाया उत्तरे पातु सर्वदा ॥ २६ ॥ पश्चिमे पातु मां देवी फट् स्वरूपा हरप्रिया । मध्ये मां पातु देवेशी हूं स्वरूपा नगात्मजा ॥२७॥ नीलवर्णा सदा पातु सर्वत्र वाग्भवा सदा । भवानी पातु भवने सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥ २८ ॥ विद्यादानरता देवी पातु वक्त्रे सरस्वती । शास्त्रे वादे च संग्रामे जले च विषमे गिरौ ॥ २९ ॥ भीमरूपा सदा पातु श्मशाने भयनाशिनी । भूतप्रेतालये घोरे दुर्गा मां भीषणावतु ॥३०॥ पातु नित्यं महेशानी सर्वत्र शिवदूतिका । कवचस्य च माहात्म्यं नाहं वर्षशतैरपि ॥ ३१ ॥ शक्नोमि कथितुं देवि भवेत्तस्य फलं च यत् । पुत्रदारेषु बन्धूनां सर्वदेशे च सर्वदा ॥ ३२ ॥ न विद्यते भयं यस्य नृपपूज्यो भवेच्च सः । शुचिर्भूत्वाऽशुचिर्वापि कवचं सर्वकामदम् ॥ ३३ ॥ प्रपठन् वा स्मरन्मर्त्यो दुःखशोकविवर्जितः । सर्वशास्त्रे महेशानि कविराट् भवति ध्रुवम् ॥३४॥ सर्ववागीश्वरो मर्त्यो लोकवश्यो धनेश्वरः । रणे द्यूते विवादे च जयस्तत्र भवेद्ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ पुत्रपौत्रान्वितो मर्त्यो विलासी सर्वयोषिताम् । शत्रवो दासतां यान्ति सर्वेषां वल्लभः सदा ॥ ३६ गर्वी खर्वी भवत्येव वादी स्खलति दर्शनात् । मृत्युश्च वश्यतां याति दासास्तस्यावनीभुजः ॥ ३७ ॥ प्रसङ्गात्कथितं सर्वं कवचं सर्वकामदम् । प्रपठन्वा स्मरन्मर्त्यः शापानुग्रहण क्षमः ॥ ३८ ॥ आनन्दवृन्दसिन्धूनामधिपः कविराड्भवेत् । सर्ववागीश्वरो मर्त्यो लोक-वश्यः सदा सुखी ॥३९॥ गुरोः प्रसादमासाद्य विद्यां प्राप्य सुगोपिताम् । तत्रापि कवचं देवि दुर्लभं भवनत्रये ॥ ४० ॥ गुरुर्देवो हरः साक्षात्पत्नी तस्य हरप्रिया । अभेदेन भजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः ॥४१॥ मन्त्राचारा महेशानि कथिताः पूर्ववत्प्रिये । नाभौ ज्योतिस्तथा वक्त्रं हृदयोपरि चिन्तयेत् ॥ ४२ ॥ ऐश्वर्यं सुकवित्वं च महावागीश्वरोनृपः । नित्यं तस्य महेशानि महिलासङ्गश्चरेत् ॥ ४३ ॥ पश्वाचाररतो मर्त्यः सिद्धो भवति नान्यथा । शक्तियुक्तो भवेन्मर्त्यः सिद्धो भवति नान्यथा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये देवासुरमानुषाः । तं दृष्ट्वा साधकं देवि लज्जायुक्ता भवन्ति ते ॥ ४५ ॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये देवाः सिद्धिदायकाः ।

प्रशंसन्ति सदा देवि तं दृष्ट्वा साधकोत्तमम् ॥ ४६ ॥ विघ्नात्मकाश्च ये देवाः स्वर्गे मर्त्ये रसातले । प्रशंसन्ति सदा सर्वे तं दृष्ट्वा साधकोत्तमम् ॥ ४७ ॥

इति ते कथितं देवि मया सम्यक्प्रकीर्तितम् । भुक्तिमुक्तिकरं साक्षात्कल्पवृक्षस्वरूपकम् ॥ ४८ ॥ आसाद्याद्यगुरुं प्रसाद्य य इदं कल्पद्रुमालम्बनं मोहेनापि मदेन वापि रहितो जाड्येन वा युज्यते । सिद्धोऽसौ भुवि सर्वदुःखविपदां पारं प्रयात्यन्तको मित्रं तस्य नृपाश्च देवि विपदो नश्यन्ति तस्याशु च ॥ ४९ ॥ तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मास्त्रादीनि वै भुवि । माल्यानि कुसुमान्येव भवन्ति सुखदानि च । तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्वाणी वक्त्रे वसेद्ध्रुवम् ॥ ५० ॥ इदं कवचमज्ञात्वा तारां यो भजते नरः । अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः ॥ ५१ ॥ लिखित्वा धारयेद्यस्तु कण्ठे वा मस्तके भुजे । तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद्यद्यन्मनसि वर्तते ॥ ५२ ॥ गोरोचनाकुंकुमेन रक्तचन्दनकेन वा । यावकैर्वा महेशानि लिखेन्मन्त्रं समाहितः ॥५३॥ अष्टम्यां मङ्गलदिने चतुर्दश्यामथापि वा । सन्ध्यायां देवदेवेशि लिखेद्यन्त्रं समाहितः ॥५४॥ मघायां श्रवणायां वा रेवत्यां वा विशेषतः । सिंहराशौ गते चन्द्रे कर्कटस्थे दिवाकरे ॥ ५५ ॥ मीनराशौ गुरौ याते वृश्चिकस्थे शनैश्चरे । लिखित्वा धारयेद्यस्तु उत्तराभिमुखो भवन् ॥ ५६ ॥ श्मशाने प्रान्तरे वापि शून्यगारे विशेषतः । निशायां यो लिखेद्यन्त्रं तस्य सिद्धिरचञ्चला ॥ ५७ ॥ भूर्जे पत्रे लिखेन्मन्त्रं गुरुणा च महेश्वरि । ध्यानधारणयोगेन धारयेद्यस्तु भक्तितः ॥ ५८ ॥ अचिरात्तस्य सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५९ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे उग्रताराकवचं समाप्तम् ।

अथ त्रैलोक्यमोहनं नाम ताराकवचम् ।

देव्युवाच : तारापूजा श्रुता नाथ विद्याश्च सकलास्ततः । साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥ १ ॥ त्रैलोक्यमोहनं नाम सर्वापद्विनिवारकम् । पुरैव सूचितं नाथ कृपया मे प्रकाशय ॥ २ ॥

भैरव उवाच : देवदानव-विद्याधृक्पूजिते प्राणवल्लभे । त्रैलोक्यमोहनं नाम श्रूयतां कवचं परम् ॥ ३ ॥ सर्वविद्यामयं देवि सर्वमन्त्रमयं ध्रुवम् । सर्वरक्षाकरं देवि सर्वविद्याप्रदायकम् ॥ ४ ॥ वेदव्यासोऽपि यद्धृत्वा सर्वज्ञः पठनाद्यतः । यद्धृत्वा पठनादीशस्त्रैलोक्यविजयी प्रभुः । धनाधिपः

कुबेरोऽपि देवाधिपः शचीपतिः। पठनाद्धारणात् नित्यं यतः सर्वे दिगीश्वराः। सर्वसिद्धियुताः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ ५ ॥ अस्य प्रसादादीशोऽहं भैरवाणां सुरेश्वरि। क्रोधाधिपो महाभीमो देवेषु कथितः प्रभुः ॥६॥ न दद्यात्परशिष्येभ्यो दद्याच्छिष्येभ्य एव च। अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ त्रैलोक्यमोहनस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः। छन्दो विराट् देवता च सोग्रतारा प्रकीर्तिता। चतुर्वर्गेषु विद्यायां विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥ ॐ ह्रीं स्त्रीं मे शिरः पातु हूं फट् पातु ललाटकम्। सार्द्धपञ्चाक्षरी तारा पायान्नेत्रयुगं मम ॥ ९ ॥ ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं श्रुती पायान्नमः पातु च नासिकाम्। तारा षडक्षरी पायाद्वदनं मुण्डभूषणा ॥ १० ॥ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् वदनं पातु जिह्वां पातु महेश्वरी। ह्रीं स्त्रीं हूं मे गलं पायात्सापि नीलसरस्वती ॥ ११ ॥ स्त्रीं स्कन्धौ पातु नियतं तारैकाक्षररूपिणी। हूं घाटां मे सदा पातु बीजैकाक्षररूपिणी ॥ १२ ॥ ऐं ह्रीं स्त्रीं हूश्च फट् पायाद्वाक्तारा मे भुजद्वयम्। श्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं च फट् पायात्श्रीतारा मे स्तनद्वयम् ॥ १३ ॥ ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हूश्च फट् पायात्तारा च हृदयं मम। हूं ह्रीं स्त्रीं हूश्च फट् बीजं तारा पृष्ठं सदावतु ॥ १४ ॥ क्लीं ह्रीं स्त्रीं हूश्च फट् पायात्पार्श्वौ कामस्वरूपिणी। ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं नमः पायात्महाषडक्षरी ॥ १५ ॥ ऐं सौः ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा कटिदेशं सदाऽवतु। अष्टाक्षरी महाविद्या साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी। खं हूं ह्रौं ॐ ऐं श्रीं ह्रीं सा गुह्यदेशं सदाऽवतु। सप्ताक्षरी चोग्रतारा मूलविद्यास्वरूपिणी ॥१६॥ ॐ ह्रीं हां हूं नमस्तारायै सकलपदन्ततः। दुस्तरः तारयपदं तारय प्रणवद्वयम्। स्वाहेति च महाविद्या जानुनी सर्वदाऽवतु ॥ १७ ॥ ऐं सौः ॐ ऐं क्लीं फट् स्वाहा जङ्घे पातु परात्मिका। ॐ ह्रीं स्त्रीं हूश्च फट् तारा हंसाद्यन्ता नवाक्षरी। महोग्रतारा पादौ मे पातु मे नित्यं महेश्वरी ॥ १८ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः वद वद वाग्वादिनी च। कामबीजत्रयं नीलसरस्वतीस्वरूपकम्। ऐं ऐं ऐं काहि काहि कलरीं स्वाहेति सर्वदा। चतुस्त्रिंशल्लिपिमयी पातु ताराखिलं वपुः ॥ १९ ॥ इन्द्रो वामाक्षियुक्पृथ्वी सरस्वत्यनलप्रिया। कूर्चाद्यन्ता पातु चोर्ध्वं मूलविद्यादशाक्षरी ॥ २० ॥ तारं माया वधूः कूर्चं कालो कामकला ततः। उग्रतारे भगं कामः परा लक्ष्मीः शिवांकुशौ। सा महाषोडशी प्रोक्ता तारादेव्या मयाधुना।

विधिवद्ग्रहणादस्या मृत्युं मृत्युपथं नयेत् ॥ २१ ॥ एषा विद्या मया गुप्ता तन्त्रादियामलेषु । साम्प्रतं कथिता तुभ्यं कवचाङ्गतया प्रिये ॥ २२ ॥

इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परम् । त्रैलोक्यमोहनं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥२३॥ ब्रह्मविद्यामयं भद्रे केवलं ब्रह्मरूपिणम् । मन्त्रविद्यामयश्चैतत्कवचं मन्मुखोदितम् । गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं प्रपठेद्यदि । त्रिः सकृद्वा यथाज्ञानं भैरवस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥ २४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटीः समुद्धरेत् । गुरुः स्यात्सर्वविद्यास्वप्यधिकारी जपादिषु ॥ २५ ॥ शतमष्टोत्तरश्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृताः । शतमष्टोत्तरं जप्त्वा भवेद् भूमिपुरन्दरः । त्रैलोक्यं विचरेद्वीरो गणनाथो यथा गुहः ॥ २६ ॥ गद्यपद्यमयी वाणी भवेद्गङ्गाप्रवाहवत् । पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्वा मूलेनैव पठेत्ततः । पञ्चवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ २७ ॥ भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि । पुरुषो दक्षिणे बाहौ योषिद्वामभुजे तथा । बहुपुत्रवती नारी पुरुषो धनपुत्रवान् । सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा विचरेद्भैरवो यथा ॥ २८ ॥ तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मास्त्रादीनि भैरवि । माल्यानि कुसुमान्येव भवन्ति सुखदानि च । तस्य गेहे चिरं लक्ष्मीर्वाणी वसेद्ध्रुवम् ॥२९॥ इदं कवचमज्ञात्वा तारां यो भजतेऽधमः । अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः ॥ ३० ॥

इति भैरवीभैरवसंवादे ताराकल्पे त्रैलोक्यमोहनं
नाम ताराकवचं समाप्तम् ।

अथ बगलामुखीस्तोत्रम् ।

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलीं लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दुबिम्बाननाम् । गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलां स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मनस्स्तम्भिनीम् ॥ १ ॥ पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रक्तोत्पले मण्डले यः सिंहासनमौलिपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम् । स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां बिभ्रतीमित्थं ध्यायति यान्ति तस्य सहसा सद्योथ सर्वापदः ॥ २ ॥ देवि त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलीन् भक्त्या वामकरे निधाय च मनुं मन्त्री मनोज्ञाक्षरम् । पीठध्यानपरोऽथ कुम्भकवशाद्बीजं स्मरेत्पार्थिवं तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत्तत्क्षणात् ॥ ३ ॥ वादी मूकति रंकति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति । गर्वी

खर्वंति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्यामि तुभ्यं नमः ॥ ४ ॥ मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रं च ते यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं च चित्रं च ते। मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम् ॥ ५ ॥ दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं भूभृद्भीशमनं चलन्मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम् । सौभाग्यैकनिकेतनं ममदृशोः कारुण्यपूर्णेक्षणं मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥ ६ ॥ मातर्भञ्जय मद्विपक्षवदनं जिह्वां चलाः कीलय ब्राह्मीं मुद्रय दैत्यदेवधिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय। शत्रूञ्चूर्णय देवि तीक्ष्णगदया गौराङ्गि पीताम्बरे विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णे क्षणे ॥ ७ ॥ मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये श्रीविद्ये समये महेशि बगले कामेशि रामे रमे। मातङ्गि त्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहि माम् ॥ ८ ॥ संरम्भे चौरसंघे प्रहरणसमये बन्धने व्याधिमध्ये विद्यावादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम्। वश्ये वा स्तम्भने वा रिपुवधसमये निर्जने वा जने वा गच्छंस्तिष्ठन् त्रिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशुधीरः ॥ ९ ॥ नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादराद्धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले। राजानोऽप्यरयो मदान्धकरिणस्सर्पा मृगेन्द्रादिकास्ते वै यास्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिरा सिद्धयः ॥ १० ॥ त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसंछेदिनी योषित्कर्षणकारिणी जनमनःसम्मोहसन्दायिनी। स्तम्भोत्सारणकारिणी पशुमनःसम्मोहसन्दायिनी जिह्वाकीलनभैरवी विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा ॥ ११ ॥ विद्या लक्ष्मीर्नित्यसौभाग्यमायुः पुत्रैः पौत्रैः सर्वसाम्राज्यसिद्धिम्। मानो भोगो वश्यमारोग्यसौख्यं प्राप्तं तत्तद्भूतलेऽस्मिन्नरेण ॥ १२ ॥ यत्कृतं जपसन्नाहं गदितं परमेश्वरि। दुष्टानां निग्रहार्थाय तद्गृहाण नमोस्तु ते ॥ १३ ॥ ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम। गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्य चित् ॥ १४ ॥ पीताम्बरां द्विभुजां च त्रिनेत्रां गात्रकोमलाम्। शिलामुद्गरहस्तां च स्मरेत्तां बगलामुखीम्। प्रातर्मध्याह्नकालेस्तत्र पठनमिदं कार्यसिद्धिप्रदं स्यात् ॥ १५ ॥

इति रुद्रयामले तन्त्रे श्रीबगलामुखीस्तोत्रं समाप्तम्।

अथ मातङ्गीकवचम् ।

श्रीदेव्युवाच ः साधु साधु महादेव कथयस्य सुरेश्वर । मातङ्गीकवचं दिव्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच : शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मातङ्गीकवचं शुभम् । गोपनीयं महादेवि मौनी जापं समाचरेत् ॥ २ ॥

अस्य श्रीमातङ्गीकवचस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिर्विराट् छन्दो मातङ्गी देवता चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः ।

ॐ शिरो मातङ्गिनी पातु भुवनेशी तु चक्षुषी । तोडला कर्णयुगलं त्रिपुरा वदनं मम ॥ ३ ॥ पातु कण्ठे महामाया हृदि माहेश्वरि तथा । त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु गुदे कामेश्वरी मम ॥ ४ ॥ ऊरुद्वये तथा चण्डी जङ्घयोश्च रतिप्रिया । महामाया पादयुग्मे सर्वाङ्गेषु कुलेश्वरी ॥५॥ अङ्गं प्रत्यङ्गकं चैव सदा रक्षतु वैष्णवी । ब्रह्मरन्ध्रे सदा रक्षेन्मातङ्गीनाम संस्थिता ॥ ६ ॥ रक्षयेन्नित्यं ललाटे सा महापिशाचिनीति च । नेत्रयोः सुमुखी रक्षेद्देवी रक्षत्तु नासिकाम् ॥७॥ महापिशाचिनी पश्चात्मुखे रक्षतु सर्वदा । लज्जा रक्षतु मां दन्ताञ्चोष्ठौ सम्मार्जनीकरा ॥ ८ ॥ चिबुके कण्ठदेशे च ठकारत्रितयं पुनः । सविसर्गं महादेवि हृदयं पातु सर्वदा ॥६॥ नाभिं रक्षतु मां लोला कालिकाऽवतु लोचने । उदरे पातु चामुण्डा लिङ्गे कात्यायनी तथा ॥१०॥ उग्रतारा गुदे पातु पादौ रक्षतु चाम्बिका । भुजौ रक्षतु शर्वाणी हृदयं चण्डभूषणा ॥ ११ ॥ जिह्वायां मातृका रक्षेत्पूर्वे रक्षतु पुष्टिका । विजया दक्षिणे पातु मेधा रक्षतु वारुणे ॥ १२ ॥ नैर्ऋत्यां श्रद्धया रक्षेद्वायव्यां पातु लक्ष्मणा । ऐशान्यां रक्षयेद्देवी मातङ्गी शुभकारिणी ॥ १३ ॥ रक्षेत्सुरेशी चाग्नेये बगला पातु चोत्तरे । ऊर्ध्वं पातु महादेवि देवानां हितकारिणी ॥ १४ ॥ पाताले पातु मां नित्यं वशिनी विश्वरूपिणी । प्रणवं च ततो माया कामबीजं च कूर्चकम् ॥१५॥ मातङ्गिनी ङेयुतास्त्रं वह्निजायावधिर्मनुः । सार्द्धैकादशवर्णा सा सर्वत्र पातु मां सदा ॥ १६ ॥

इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परम् । त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं देवदुर्लभम् ॥ १७ ॥ य इदं प्रपठेन्नित्यं जायते सम्पदालयम् । परमैश्वर्यमतुलं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ १८ ॥ गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं प्रपठेद्यदि । ऐश्वर्यं सुकवित्वं च वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम् ॥ १६ ॥ नित्यं तस्य तु मातङ्गी महिला मङ्गलं चरेत् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये देवाः

सुरसत्तमाः ॥ २० ॥ ब्रह्मराक्षसवेताला ग्रहाद्या भूतजातयः। तं दृष्ट्वा साधकं देवि लज्जायुक्ता भवन्ति ते ॥ २१ ॥ कवचं धारयेद्यस्तु सर्वसिद्धि लभेद्ध्रुवम्। राजानोऽपि च दासत्वं षट्कर्माणि च साधयेत् ॥ २२ ॥ सिद्धो भवति सर्वत्र किमन्यैर्बहुभाषितैः। इदं कवचमज्ञात्वा मातङ्गी यो भजेन्नरः ॥ २३ ॥ अल्पायुर्निर्द्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः। गुरौ भक्तिः सदा कार्या कवचे च दृढा मतिः ॥ २४ ॥ तस्मै मातङ्गिनी देवी सर्वसिद्धिं प्रयच्छति ॥ २५ ॥

इति नन्द्यावर्ते उत्तरखण्डे त्वरिफलदायिनी
मातङ्गिनीकवचं समाप्तम्।

इति चतुर्थ परिच्छेदः।

इति महामहोपाध्याय-श्रीकृष्णानन्द-भट्टाचार्य विरचिते
तन्त्रसारे चतुर्थः परिच्छेदः।
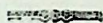
पञ्चमः परिच्छेदः

अथ प्रसङ्गादुपचारादयो निरूप्यन्ते

अथ चतुःषष्ट्युपचाराः। सर्वोपचारमन्त्रास्त्रितारी पूर्वाः कल्पयामि नम इत्यन्ताः कार्याः। यथा : १। ऐं ह्रीं श्रीं पाद्यं कल्पयामि नमः २। एवं अर्घ्यं कल्पयामि नमः ३। इत्यादिक्रमेण।

तथा सिद्धयामले : त्रितारीञ्च मुखे कृत्वा देयस्य भुवनेश्वरी। कल्पयामि नमः पश्चादुपचारेष्मयं विधिरिति ॥ १ ॥

४। आसानरोपणम् ५। सुगन्धितैलभ्यङ्गम् ६। मज्जनशालाप्रवेशनम् ७। मज्जनमण्डपे मणिपीठोपवेशनम् ८। दिव्यस्नानीयम् उद्वर्तनम् ९। उष्णोदकस्नानम् १०। कनक कलसस्थितसर्वतीर्थाभिषेकम् ११। धौतवस्त्रपरिमार्जनम् १२। अरुणदुकूलपरिधानम् १३। अरुणदुकुलोत्तरीयम्, १४। आलेपमंडपप्रवेशनम् १५। आलेपमणिपीठोपवेशनम् १६। चन्दनागुरुकुंकुममृगमदकर्पूरकस्तूरीरोचनादिव्यगन्धसर्वाङ्गानुलेपनम् १७। केशभारस्य कालागुरुधूपमल्लिकामालतीजातीचम्पकाशोकशतपत्रपूगकुहरीपुन्नागकह्लारयूथीसर्ववर्तुकुसुममालाभूषणम् १८। भूषणमण्डपप्रवेशनम्, १९। भूषणमणिपीठोपवेशनम् २०। नवरत्नमुकुटम् २१। चन्द्रशकलम्, २२। सीमन्तसिन्दूरम् २३। तिलकरत्नम् २४। कालाञ्जनम् २५। कर्णपालीयुगलम् २६। नासाभरणम् २७। अधरयावकम् २८। ग्रथनभूषणम् २९। कनकचित्रपदकम् ३०। महापदकम् ३१। मुक्तावलीम्, ३२। एकावलीम् ३३। देवच्छन्दकम् ३४। केयूरयुगलचतुष्कम् ३५। वलयावलीम् ३६। ऊर्मिकावलीम् ३७। काञ्चीदामकटीसूत्रम् ३८। शोभाख्याभरणम् ३९। पादकटकम् ॥ २ ॥ ४०। रत्ननूपुरम् ४१। पादांगुरीयकम् ४२। एककरे पाशम् ४३। अन्यकरे अंकुशम् ४४। इतरकरेषु पुण्ड्रेक्षुचापम् ४५। अपरकरे पुष्पबाणान् ४६। श्रीमन्माणिक्यपादुकाम् ४७। स्वसमानवेशास्त्रावरणदेवताभिः सह सिंहासनारोहणम् ४८। कामेश्वरपर्यङ्कोपवेशनम् ४९। अमृताशनचषकम् ५०। आचमनीयम्, ५१। कर्पूरवटिकाम् ५२। आनन्दोल्लासविलासहासम् ५३। मङ्गलारात्रिकम् ५४। श्वेतच्छत्रम् ५५। चामरयुगलम् ५६। दर्पणम् ५७। ताल-

वृन्तम् ५८। गन्धम् ५६। पुष्पम् ६०। धूपम् ६१। दीपम् ६२। नैवेद्यम् ६३। पानार्थम् ६४। पुनराचमनीयम्, ताम्बूलम्, नमस्कारम्, कल्पयेत्। एतेषामुपचाराणामभावे एते मन्त्रा जप्याः।

तदुक्तं नवरत्नेश्वरे : चतुःषष्ट्युपचाराणामभावे तन्मनुं जपेत्। तत्तदेव फलं विन्द्यात्साधकः स्थिरमानसः ॥ २क ॥

अथाष्टादशोपचाराः

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः। गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नञ्च तर्पणम्। माल्यानुलेपनञ्चैव नमस्कारविसर्जने। अष्टादशोपचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत् ॥ ३ ॥

अथ षोडशोपचाराः

पाद्यमर्घ्यं तथाचामं स्नानं वसनभूषणे। गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनं ततः। ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया। प्रयोजयेच्च पूजायामुपचारांस्तु षोडश ॥ ४ ॥

अथ दशोपचाराः

पाद्यमर्घ्यं तथाचामं मधुपर्काचमनं तथा। गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दशक्रमात् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चोपचाराः :

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च। अखण्डं फलमासाद्य कैवल्यं लभते ध्रुवम् ॥ ६ ॥

अथ मणिमुक्ताद्रव्याणां निर्माल्यकालकथनम् :

योगिनीतन्त्रे : मणिमुक्तासुवर्णानि देवेदत्तानि यानि वै। न निर्माल्यं द्वादशाब्दं ताम्रपात्रं तथैव च ॥ ७ ॥ पटी शाटी च षण्मासं नैवेद्यं दत्तमात्रतः। मोदकं कृषरञ्चैव यामार्द्धेन महेश्वरि ॥ ८ ॥ पट्टवस्त्रं त्रिमासाच्च यज्ञसूत्रमहं स्मृतम्। यावदुष्णं भवेदन्नं परमान्नं तथैव च ॥ ९ ॥ मस्तकं रुधिरञ्चैव अहोरात्रेण पार्वति। मुहूर्तं दधि दुग्धञ्च आज्यं यामेन शङ्करि ॥ १० ॥ करवीरमहोरात्रं बिल्वपत्रं तथैव च। जवारक्तञ्च माध्यञ्च निर्माल्यं सार्द्धयामके ॥ ११ ॥ माल्यं वै करवीरस्य पद्मस्य बिल्वकस्य च। यामार्द्धेन महेशानि ताम्बूलं दत्तमात्रतः ॥ १२ ॥ न निर्माल्यञ्च दाडिम्बं तथा बिल्वफलं प्रिये। सौगन्धिकञ्च कदलीं प्रयत्नेन नियोजयेत् ॥ १३ ॥

अथ त्रिपुरसुन्दर्याः षोडशोपचारमन्त्राः

उद्यच्चन्दनकुंकुमारुणपयोधाराभिराप्लाविता, नानानर्घ्यमणिप्रवाल-घटितां दत्तां गृहाणाम्बिके। आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो, मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥ १ ॥ देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं चञ्चत्काञ्चनसञ्चयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम्। एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं, गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणी दत्तं गृहाणाम्बिके ॥ २ ॥ पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो, गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम्। तत्केशान परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि, स्नात्वा प्रोज्वलगन्धकं भवतु ते श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥ ३ ॥ सुराधिपतिकामिनी-करसरोजनालीधृतां, सचन्दनकुंकुमागुरुभरेण विभ्राजिताम्। महा-परिमलोज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां, गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्री पदे ॥ ४ ॥ गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुजप्रस्तारैर्घ्रियमानमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम्। मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्ति-प्रदानोज्वलं, चैनं निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥ ५ ॥ स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका, मध्ये सरासना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये। हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके, विन्यस्तं, मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मुदं स्तूयताम् ॥ ६ ॥ ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं, सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम्। राजत्कज्ज्वलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने, तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीपदे ॥ ७ ॥ अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धुद्भुवं निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीपदे। गृहाण गुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बाविद्रुमैर्विनिर्मितसमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम्। कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं, चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम्। देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजैरम्भः शाम्भवि विमलं संभ्रमेण दत्तं गृहाणाम्बिके ॥९॥ कह्लारोत्पलनागकेशरसरोजाख्यावलीमालतीमल्लीकैरवकेतकादिकुसुमैः रक्ताश्वमारादिभिः। पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा, ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीसुन्दरीं पूजये ॥१०॥ मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजः-कर्पूरशैलेयजैर्माध्वीकैः सह कुंकुमैः सुरभितैः सर्पिभिरामिश्रितैः। सौरम्यास्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रेऽभवत्प्रीतये धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥ ११ ॥ घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्या

न्वितो महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः। सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वितस्तवत्रिपुरसुन्दरि स्फुरतु देवि दीपो मुदे ॥ १२ ॥ जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं, युक्तं हिंगुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः। पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसंमिश्रितं, नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥१३॥ लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम्। सुधामधुरिमाकुलं रुचिरत्नपात्रस्थितं, गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥ १४ ॥ शरत्प्रभवचन्द्रम.स्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं, दलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम्। गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं, महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥ १५ ॥ मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदान्दोलितं, शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम्। सद्योऽगस्त्य-वसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥ १६ ॥ स्वाङ्गने वेणुमृदङ्ग शङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना। कोलाहलैराकुलिता तवास्तुविद्याधरीनृत्यकलासुखाय ॥ १७ ॥ देविभक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते। तत्रनौन्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥ १८ ॥ एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः। यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥ १९ ॥

अथ रुद्राक्षमाहात्म्यम्

पद्मपुराणे : शिखायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चापि यो नरः। रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या स शैवं लोकमाप्नुयात् ॥ १ ॥ नववक्त्रन्तु रुद्राक्षं धारयेद्वामबाहुना। चतुर्दशमुखञ्चैव शिखायां धारयेद्बुधः ॥२॥ एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति। अवध्यत्वं प्रतिस्रोता वह्निस्तम्भं करोति च ॥ ३ ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्गोवधाद्यघनाशकृत्। त्रिवक्त्रोऽग्निस्त्रिजन्मोत्थपापराशिं विनाशयेत् ॥ ४ ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति। पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याक्ष्यपापनुत् ॥५॥ षडवक्त्रस्तु गुहः साक्षाद्गर्भहत्यां व्यपोहति। सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात् स्वर्णस्तेयाघनुत्सदा ॥ ६ ॥ विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत्। भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः ॥ ७ ॥ दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतपिशाचहा। एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः ॥ ८ ॥ द्वादशास्यो भवेदर्कः सर्वक्रतुफलप्रदं। त्रयोदशमुखः कामःसर्वकामफलप्रदः

॥ ९ ॥ चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः । निश्छिद्राश्च सुपक्वाश्च रुद्राक्षा धारणे स्मृताः ॥ १० ॥

अथ रुद्राक्षसंस्कारः

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठयां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ ११ ॥ त्र्यम्बकादिमन्त्रश्च तथा तत्र प्रयोजयेत् । ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्यो-र्मुक्षीयमामृतात् ।

तथा : ॐ ह्रौं अघोरे ह्रीं घोरे हूं घोरतरे ॐ ह्रैं ह्रीं श्रीं ऐं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिणे हूं हूं । अनेनापि च मन्त्रेण रुद्राक्षस्य द्विजोत्तमः । प्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यात्ततोऽधिकफलं लभेत् । ततो यथास्व-मन्त्रेण धारयेद्भक्तिसंयुतः ॥ १२ ॥

ततो क्रमेण मन्त्राः : ॐ ॐ भृशं नमः । १ । ॐ ॐ नमः । २ । ॐ ॐ नमः । ३ । ॐ ह्रीं नमः । ४ । ॐ हूं नमः । ५ । ॐ हूं नमः । ६ । ॐ ॐ हूं हूं नमः । ७ । ॐ सं हूं नमः । ८ । ॐ हूं नमः । ९ । ॐ हं नमः । १० । ॐ ह्रीं नमः । ११ । ॐ ह्रीं नमः । १२ । ॐ क्षां क्षौं नमः । १३ । ॐ नमो नमः । १४ । ॥ १३ ॥ रुद्राक्षे देहसंस्थे तु कुक्कुरो म्रियते यदि । सोऽपि रुद्रपदं याति किं पुनर्मानवा गुह ॥१४॥ सप्तविंशतिरुद्राक्ष-मालया देह-संस्थया । यः करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ १५ ॥ यो ददाति द्विजातिभ्यो रुद्राक्षद्भुवि षण्मुखम् । तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदञ्च प्रयच्छति ॥ १६ ॥ विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरकान् घोरान्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १७ ॥ इति रुद्राक्ष-माहा-त्म्यम् ।

अथ प्रकारान्तर-रुद्राक्ष-संस्कारे देवतामन्त्रादिकथनम् :

स्कन्दपुराणे-कार्तिकेय उवाच : एकद्वित्रिचतुःपञ्चषटसप्तवसवो नव । दशैकादशद्वादशत्रयोदशचतुर्दश ॥१८॥ एतेषाञ्च मुखानान्तु देवता कात्र शङ्कर । गुणश्च कीदृशं तेषां कथयस्व यथार्थतः ॥ १९ ॥

श्रीशङ्कर उवाच : शृणु षण्मुख तत्त्वेन वक्त्रे वक्त्रे यथाक्रमम् ॥ २० ॥ एकवक्त्रः शिवः साक्षात्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २१ ॥ द्विवक्त्रो देवदेव्यौ च गोवधं नाशयेद्ध्रुवम् । त्रिवक्त्रो दहनः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २२ ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति । पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः । अगम्यगमनाच्चैव अभक्ष्यस्य च भक्ष-णात् । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥ १३ ॥ षड्वक्त्रः

कार्तिकेयस्तु धारणाद्दक्षिणे भुजे । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २४ ॥ सप्तवक्त्रो महासेन चानन्तो नाम नागराट् । गुरुतल्पादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २५ ॥ अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो विनायकः । पृष्ठोदरकरेणापि संस्पृशेद्वा गुरोः स्त्रियम् ॥२६॥ एवमादीनि पापानि अतिपापानि सर्वशः । विघ्नास्तु तस्य नश्यन्ति मुक्तो याति परां गतिम् ॥ २७ ॥ गुणा ह्येतेषु सर्वेषु अष्टवक्त्रस्य धारणात् । नववक्त्रो भैरवः स्याद्धारयेद्वामके भुजे ॥२८॥ कापिलं मुक्तिदं प्रोक्तं मम तुल्यबलो भवेत् । लक्षकोटिसहस्राणि ब्रह्महत्यां करोति यः । तत्सर्वं दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात् ॥ २९ ॥ दशवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो जनार्दनः । ग्रहाश्चैव पिशाचाद्या वेताला ब्रह्मराक्षसाः । पन्नगाश्च विनश्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥ ३० ॥ वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रा एकादश स्मृताः । शिखायां धारयेन्नित्यं पुण्यफलं शृणु । अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । हेमशृंग्याश्च लक्षस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात् ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षं द्वादशैर्वक्त्रैः कण्ठदेशे च धारयेत् । आदित्यस्तुष्यते नित्यं द्वादशार्का व्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥ त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः । चतुर्दशास्यः वंशोद्धारकरः परः ॥ ३३ ॥ रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितानमस्तके विंशतिर्द्वे, षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलके द्वादश द्वादशैव । बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथग्नियमितं चैकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति कलुषं सः स्वयं नीलकण्ठः ॥ ३४ ॥

तत्र क्रमेणधारणमन्त्राः : ॐ ऐं । १ । ॐ श्रीं । २ । ॐ ध्रुं ध्रुं । ३ । ॐ ह्रीं हः । ४ । ॐ ह्रीं । ५ । ॐ ऐं ह्रीं । ६ । ॐ ह्रां । ७ । ॐ क्रं रं । ८ । ॐ ह्रां । ९ । ॐ ह्रीं । १० । ॐ श्रीं । ११ । ॐ हां ह्रां । १२ । ॐ क्षौं स्त्रौं । १३ । ॐ ङं मां । १४ । ॥ ३५ ॥

अथ नित्यं नैमित्तिकादिकर्मभङ्गे प्रायश्चित्तम् :

गौतमीये : यद्यत्कर्मणि वैगुण्यं नित्ये नैमित्तिके तथा । सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं मूलश्चायुतमेव च । नित्ये सहस्रं प्रजपेत् नैमित्तिके तथायुतम् । इति विष्णुविषयम् ।

अन्यत्र तु तन्त्रराजे : नित्यातिक्रमदोषाणां शान्त्यै विद्यां शतं जपेत् । नैमित्तिकातिक्रमेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ।

पापसङ्करे तु : सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते । प्रायश्चित्तन्तु तन्त्रोक्तमयुतं मन्त्रजापतः ॥ ३६ ॥

अथ परिभाषा :

गौतमीये : परिभाषामथो वक्षे उपचारविधौ हरेः । द्रव्याणां यावती संख्या पात्राणां द्रव्यसंहृतिः । हाटकं राजतं ताम्रभारकूटमृदादिना । उपचारविधावेतद्द्रव्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ३७ ॥ आसने पञ्चपुष्पाणि स्वागते षट् चतुःपलम् । श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् । पाद्ये चार्घ्यं जलं तावद्गन्धपुष्पाक्षतं यवाः । दूर्वास्तिलाश्च चत्वारः कुशाग्रश्वेत-सर्षपाः । जातीलवङ्गकक्कोलक्वाथतोयञ्च षट्पलम् । प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्के घृतं मधु । दध्ना सह पलैकन्तु शुद्धं वारि तथाचमे ॥ ३८ ॥ परिमाणन्तु पञ्चाशत्पलं स्नानार्थमम्भसः । निर्मलेनोदकेनाथ सर्वत्र परिपूर्णता ॥ ३९ ॥ मलिनं गर्हितं सर्वं त्यजेत्पूजाविधौ हरेः । वितस्तिमात्रादधिकं वासोयुग्मञ्च नूतनम् ॥ ४० ॥ स्वर्णाद्याभरणान्येव मुक्तारत्नयुतानि च । चन्दनागुरुकर्पूरपङ्कगन्धः पलावधिः ॥ ४१ ॥ नानाविधानि पुष्पाणि पञ्चाशदधिकानि च । कांस्यादिनिर्मिते पात्रे धूपो गुग्गुलुकर्षभाक् ॥ ४२ ॥ यावद्भक्ष्यं भवेत्पुंसस्तावद्दद्याज्जनार्दने । नैवेद्यं विविधं वस्तु भक्ष्यादिकचतुर्विधम् ॥ ४३ ॥ कर्पूरादियुता वर्तिः सा च कार्पासनिर्मिता । सप्तावृत्त्या सुसंयुक्तो दीपः स्याच्चतुरंगुलः । शिलापिष्टं वन्दनायां सप्तधा वर्तयेन्नरः । कार्यं ताम्रादिपात्रे तत्प्रीतये वनमालिनः ॥ ४४ ॥ दूर्वाक्षतप्रमाणन्तु विज्ञेयस्तु शताधिकम् । उत्तमोऽयं विधिः प्रोक्तो विभवे सति सर्वदा ॥ ४५ ॥ एषामभावे सर्वेषां यथाशक्त्या तु पूजयेत् । अनुकल्पं वर्जयेच्च द्रव्याणां विभवे सति ॥ ४६ ॥ अनेन विधिना यस्तु पूजयेदुपचारतः । सर्वभोगान्वितो भूत्वा व्रजेदन्ते हरेः पुरम् ॥ ४७ ॥

अथ विष्ण्वाराधनमन्त्राः :

तत्र गौतमीये : सर्वान्तर्यामिने देव सर्वबीजमयं ततः । आत्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् । इति आसनम् ॥ १ ॥

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः । कृपया देवदेवेश मदग्रे सन्निधीभव । यस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो । इति स्वागतम् । ॥ २ ॥

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितन्तु मे । यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय । अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात्साधनस्य च । यदपूर्णं भवेत्कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव । इत्यावाहनम् ॥ ३ ॥

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात्परमानन्दसम्भवः। तस्यै ते परमेशान पाद्यं शुद्धाय कल्पये। इति पाद्यम् ॥ ४ ॥

देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने। आचामं कल्पयामीश सुधायाः श्रुतिहेतवे। इत्याचमनीयम् ॥ ५ ॥

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्। तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्। इत्यर्घ्यम् ॥ ६ ॥

सर्वकल्मषहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम्। मधुपर्कमिमं देव कल्पयामि प्रसीद मे। इति मधुपर्कः ॥ ७ ॥

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः। शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्। इति पुनराचमनीयम् ॥ ८ ॥

परमानन्दबोधाब्धि-निमग्न-निजमूर्तये। साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते। इति स्नानीयम् ॥ ९ ॥

मायाचित्रपटाच्छन्न-निजगुह्योरुतेजसे। निरावरणविज्ञाय वासस्ते कल्पयाम्यहम्। इति वस्त्रम् ॥ १० ॥

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा। तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम्। इत्युत्तरीयम् ॥ ११ ॥

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत्। यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये। इति यज्ञोपवीतम् ॥ १२ ॥

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते। भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित। इति भूषणानि ॥ १३ ॥

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्। इति जलम् ॥ १४ ॥

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्। गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर। इति गन्धः ॥ १५ ॥

तुरीयगुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम्। आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम्। इति पुष्पम् ॥ १६ ॥

वनस्पतिरसोदिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः। आघ्रेयः सर्वदेवानां प्रतिगृह्यताम्। इति धूपः ॥ १७ ॥

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्मिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। इति दीपः ॥ १८ ॥

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम्। निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत्। इति नैवेद्यं ॥ १९ ॥

ततो जलं समस्तदेवदेवेश इत्यादिना ॥ २० ॥

तथा गौतमीये : पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदान्शृणुष्व मे। अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च। इज्या पञ्चप्रकारार्चाः क्रमेण कथयामि ते।

तत्राभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम्। उपलेपननिर्माल्यदूरीकरणमेव च ॥ २१ ॥

उपादानं नाम गन्ध-पुष्पादि-चयनं तथा। योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मत्वेनैव भावना ॥ २२ ॥

स्वाध्यायो नाम मन्त्रार्थसन्धानपूर्वको जपः। सूक्तस्तोत्रादिपाठस्तु हरेः संकीर्तनं तथा। तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्च स्वाध्यायः परिकीर्त्तितः। ॥ २३ ॥

इज्यानाम स्वदेवस्य पूजनन्तु यथार्थतः।

इति पञ्चप्रकारार्चाः कथितास्तव सुव्रते। सार्ष्टि-सामीप्य-सालोक्य-सायुज्य-सारुप्यदाः क्रमात् ॥ २४ ॥

अथ द्वादशशुद्धिः :

अथ द्वादशशुद्धिश्च वैष्णवानामिहोच्यते। गृहोपसर्पणञ्चैव तथानुगमनं हरेः। भक्त्या प्रदक्षिणञ्चैव पादयोः शोधनं पुनः ॥ १ ॥ पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः। करयोः सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते ॥ २ ॥ तन्नामकीर्तनञ्चैव गुणानामपि कीर्तनम्। भक्त्या च कृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते ॥ ३ ॥ तत्कथाश्रवणञ्चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम्। श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते ॥ ४ ॥ पादोदकस्य निर्माल्यमालानामपि धारणम्। उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः ॥ ५ ॥ आघ्राणं गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधन। विशुद्धिः स्यादनन्तरस्य घ्राणस्यापि विधीयते ॥६॥ पत्रपुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितम्। तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत् ॥ ७ ॥ ललाटे च गदा कार्या मूर्ध्नि चापं शरांस्तथा। नन्दकञ्चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये ॥ ८ ॥ शङ्खचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि। प्रयागे या गति प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम ॥ ९ ॥

अथ विष्णोर्द्वात्रिंशदपराधाः :

तन्त्रान्तरे : यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे। देवोत्सवेष्वसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः ॥ १० ॥ उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्द-

नादिकम् । एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥ पाद प्रसारणश्चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् । शयनं भक्षणश्चैव मिथ्याभाषणमेव च ॥ १२ ॥ उच्चैर्भाषो मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः । निग्रहानुग्रही चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम् ॥ १३ ॥ कम्बलावरणश्चैव परनिन्दा परस्तुतिः । अश्लीलभाषणश्चैव अधोवायुविमोक्षणम् ॥ १४ ॥ शक्तौ गौणापचारश्च अनिवेदितभक्षणम् । तत्तत्कालोद्भवानाञ्च फलादीनामनर्पणम् ॥ १५ ॥ विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनस्य च । पृष्ठीकृत्यासनश्चैव परनिन्दा परस्तुतिः ॥ १६ ॥ गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा । अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तितः ॥ १७ ॥ इदमुपलक्षणम् ।

वासिष्ठे : केशवाग्रे नृत्यगीतं न करोति हरेर्दिने वह्निना किं न दग्धाऽसौ गतः किं न रसातलम् ॥ १८ ॥

नारदीये : स्मरणं कीर्तनं विष्णोः कलौ मन्त्रजपादिकम् । दानन्तु प्रीतये तस्य नान्यथा गतिरिष्यते ॥ १९ ॥

गौतमीये : शालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके । प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते ॥ २० ॥ विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिजन्माघनाशनम् । तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ विन्दुनिपातनात् ॥ २१ ॥

धारणमन्त्रस्तु : अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् । विष्णुपादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥ २२ ॥

अगस्त्ये : हत्यां हन्ति यदंघ्रिजापि तुलसी स्तेयञ्च तोयं पदे नैवेद्यं बहुमद्यपानजनितं गुर्वङ्गनासजम् । श्रीशाधीननतिः स्थितिर्हरिजनैस्तत्सङ्गजं किल्विषं, शालग्रामशिलानृसिंहमहिमा कोऽप्येष लोकोत्तरः

सनत्कुमारे : केशवाग्रे नृत्यगीतं यः करोति कलौ नरः । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नित्यशः ॥ २४ ॥

वासिष्ठे : सुप्तः प्रवोधकालश्च मन्त्राणामभिधीयते । मन्त्रविद्याविभागेन द्विविधा मन्त्रजातयः ॥ २५ ॥ मन्त्राः पुंदेवताः प्रोक्ता विद्याः स्त्रीदेवता स्मृताः । स्त्रीपुंनपुंसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिताः ॥ २६ ॥ पुंमन्त्रा हुंफडन्ताः स्युर्द्विठान्ताः स्युः स्त्रियो मताः । नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा । एतच्छून्या भवेद्विद्या महाशब्देति गीयते ॥ २७ ॥

एवं तन्त्रेऽपि : अग्नीषोमात्मका मन्त्रा विज्ञेयाः क्रूरसौम्ययोः ।

कर्मणोर्वह्नितारान्त्यवियत्प्रायाः समीरिताः ॥ २८ ॥ आग्नेया मनवः सौम्या भूयिष्ठेन्दुमृताक्षराः । आग्नेया संप्रबुध्यन्ते प्राणे चरति दक्षिणे ॥२९॥ भागेऽन्यस्मिन् स्थिते प्राणे सौम्या बोधं प्रयान्ति हि । नाडीद्वयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति ते । प्रयच्छन्ति फलं सर्वे प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा ॥ ३० ॥

यद्वा : प्राणापानसमायोगात् शिवशक्त्योश्च मेलनम् । प्रबोधकालो विज्ञेयः स्वापकालस्ततः परः ॥ ३१ ॥

तथा : वामावहो यदा वायुर्ह्रस्वानां योजनं तदा । दक्षिणस्यां यदा वायुस्तदा दीर्घास्तु योजिताः । उभयस्थो यदा वायुस्तदा स्यादुभयात्मकः ॥ ३२ ॥ संपुटीकृत्य मन्त्रेण आदिलान्तान्सविन्दुकान् । पुनश्च सविसर्गान्तान् क्ष-कारं केवलं पठेत् । एवं जप्तो यदोष्ठश्चेत्प्रबुद्धः शीघ्रसिद्धिदः ॥ ३३ ॥ इति सुप्तप्रबोधकालः ।

अथ योगाङ्गासनानि :

पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनन्तथा । वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ॥ १ ॥

ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले उभे । अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः । पद्मासनमिदं प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥ २ ॥

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे । ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ३ ॥

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् । वृषणाधः पार्श्वपादौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत् । भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः परिकल्पितम् ॥ ४ ॥

ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जानुनोः प्राङ्मुखांगुलि । करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥ ५ ॥

एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम् । ऋजुकायो विशेन्मन्त्री वीरासनमितीरितम् ॥ ६ ॥

अथ मुद्राप्रकरणम् :

मुद्रापदव्युत्पत्तिमाह तन्त्रे : मोदनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसन्ततेः । तस्मान्मुद्रेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥ १ ॥

अथ मुद्राः प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु कल्पिताः । याभिर्विरचिताभिश्च मोदन्ते मन्त्रदेवताः ॥ २ ॥ अर्चने जपकाले च ध्याने काम्ये च कर्मणि ।

स्नाने चावाहने शङ्खे प्रतिष्ठायाश्च रक्षणे। नैवेद्ये च तथान्यत्र तत्तत्कल्प-प्रकाशिते। स्थाने मुद्राः प्रद्रष्टव्याः स्वस्वलक्षणलक्षिताः ॥ ३ ॥ आवाहन्यादिका मुद्रा न साधारणी मता। तथा षडङ्ग-मुद्राश्च सर्वमन्त्रेषु योजयेत् ॥ ४ ॥ एकोनविंशतिर्मुद्रा विष्णोरुक्ता मनीषिभिः। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-वेणु-श्रीवत्सकौस्तुभाः। वनमाला तथा ज्ञानमुद्रा विल्वाह्वया तथा। गरुडाख्या परा मुद्रा विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी। नारसिंही च वाराही हायग्रीवी धनुस्तथा। वाणमुद्रा ततः पर्शुर्जगन्मोहनिका परा ॥ ५ ॥ काममुद्रा परा ख्याता शिवस्य दश मुद्रिकाः। लिङ्गयोनित्रिशूलाक्ष-मालेष्टाभीमृगाह्वयाः। खट्वाङ्गा च कपालाख्या डमरुः शिवतोषदाः ॥ ६ ॥ सूर्यस्यैकैव पद्माख्या सप्त मुद्रा गणेशितुः। दन्तपाशांकुशा विघ्न-पर्शुलड्डुकसंज्ञिताः। बीजपूराह्वया मुद्रा विज्ञेया विघ्नपूजने ॥ ७ ॥ पाशांकुश-वराभीतिखड्गचर्म-धनुः-शराः। मौषली मुद्रिका दौर्गी मुद्राः शक्तेः प्रियङ्कराः ॥ ८ ॥ लक्ष्मीमुद्रार्चने लक्ष्म्या वाग्वादिन्याश्च पूजने। अक्षमाला तथा वीणा व्याख्या पुस्तकमुद्रिका। सप्तजिह्वाह्वया मुद्रा विज्ञेया वह्निपूजने ॥ ९ ॥ मत्स्यमुद्रा च कूर्माख्या लेलिहा मुण्डसंज्ञिका। महायोनिरिति ख्याता सर्वसिद्धिसमृद्धिदा ॥ १० ॥ शक्त्यर्चने महायोनिः श्यामादौ मुण्डमुद्रिका। मत्स्यकूर्मलेलिहाख्या मुद्राः साधारणी मताः ॥ ११ ॥ तारार्चने विशेषास्तु कथ्यन्ते पञ्च मुद्रिकाः। योनिश्च भूतिनी चैव बीजाख्या दैत्यधूमिनी। लेलिहानेति संप्रोक्ताः पञ्चमुद्रा विलोकिताः ॥ १२ ॥ दशमा मुद्रिका ज्ञेयास्त्रिपुरायाश्च पूजने। संक्षोभद्रावणाकर्ष-वश्योन्माद-महांकुशाः ॥ १३ ॥ खेचरी-बीजयोन्याख्या त्रिखण्डा परि-कीर्तिता। कुम्भमुद्राभिषेके स्यात्पद्ममुद्रासने तथा। कालकर्णी प्रयोक्तव्या विघ्नप्रशमकर्मणि। गालिनी च प्रयोक्तव्या जलशोधनकर्मणि ॥ १४ ॥ श्रीगोपालार्चने वेणुर्नृहरेर्नारसिंहिका। वराहस्य स पूजायां वाराहाख्यां प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥ हयग्रीवार्चने चैव हायग्रीवीं प्रदर्शयेत्। रामार्चने धनुर्बाणमुद्रे पर्शुस्तथार्चने। परशुरामस्य विज्ञेया जगन्मोहनसंज्ञिका। वासुदेवाह्वया ध्याने कुम्भमुद्रा तु रक्षणे। सर्वत्र प्रार्थने चैव प्रार्थनाख्यां प्रयोजयेत्। उद्देशानुक्रमादासामुच्यन्ते लक्षणानि च ॥ १६ ॥ हस्ताभ्या-मञ्जलिं बद्ध्वानामिकामूलपर्वणि। अंगुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वावाहनी स्मृता ॥ १७ ॥ अधोमुखी त्वियश्चेत् स्यात् स्थापनी मुद्रिका स्मृता। उच्छ्रितांगुष्ठमुष्ट्योश्च संयोगात् सन्निधापनी ॥ १८ ॥ अन्तःप्रवेशितांगुष्ठा

सैव संरोधनी मता। उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणी मता ॥ १९ ॥ देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः। सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी। अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ॥ २० ॥ अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः। तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्त्तिता। अमृतीकरणं कुर्यात्तया साधकसत्तमः ॥ २१ ॥ अन्योन्यग्रथितांगुष्ठा प्रसारितपरांगुली। महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः। प्रयोजयेदिमा मुद्रा देवताह्वानकर्मणि ॥ २२ ॥ अङ्गन्यासस्य मुद्राणां लक्षणं प्राक्समीरितम्। वैष्णवीनान्तु मुद्राणां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ॥ २३ ॥ वामांगुष्ठन्तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना। कृत्वोत्तानं ततो मुष्टिमंगुष्ठन्तु प्रसारयेत्। वामांगुल्यस्तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः स्युः प्रसारिताः। दक्षिणांगुष्ठसंस्पृष्टा ज्ञेयैषा शङ्खमुद्रिका ॥ १ ॥ हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्नौ सुप्रसारितौ। कनिष्ठांगुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ॥ २ ॥ अन्योऽन्याभिमुखौ हस्तौ कृत्वा तु ग्रथितांगुली। अंगुष्ठौ मध्यमे भूयः सुलग्ने सुप्रसारिते। गदामुद्रेयमुदिता विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी ॥ ३ ॥ हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सन्नतप्रोत्थितांगुली। तलान्तमिलितांगुष्ठौ कृत्वैषा पद्ममुद्रिका ॥ ४ ॥ ओष्ठे वामकरांगुष्ठौ लग्नास्तस्य कनिष्ठिका। दक्षिणांगुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता। तर्जनीमध्यमानामाः किञ्चित्सङ्कोच्य चालिताः। वेणुमुद्रा भवत्येषा सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥ ५ ॥ अन्योन्यपृष्ठकरयोर्मध्यमानामिकांगुली। अंगुष्ठेन तु बध्नीयात्कनिष्ठामूलसंस्थिते। तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिता ॥ ६ ॥ अनामापृष्ठसंलग्ना दक्षिणस्य कनिष्ठिका। कनिष्ठयान्यया बद्धा तर्जन्या दक्षया तथा। वामानामाञ्च बध्नीयाद्दक्षिणांगुष्ठमूलके। अंगुष्ठमध्यमे वामे संयोज्य सरलाः पराः। चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका ॥ ७ ॥ स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्यंगुष्ठया तथा। करद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका ॥ ८ ॥ तर्जन्यंगुष्ठकौ सक्तावग्रतो विन्यसेत्सुधीः। वामहस्ताम्बुजं वामजानुमूर्ध्नि विन्यसेत्। ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य प्रेयसी ॥ ९ ॥ अंगुष्ठं वाममुद्दण्डितमितरकरांगुष्ठकेनाथ बद्ध्वा तस्याग्रं पीडयित्वांगुलीभिरपि च ता वामहस्तांगुलीभिः। बद्ध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधीर्व्याहरन्मारबीजं बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह गदिता गोपनीया विधिज्ञैः ॥ १० ॥ हस्तौ तु विमुखौ कृत्वा ग्रथयित्वा कनिष्ठके। मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे श्लिष्टावंगुष्ठकौ तथा। मध्यमानामिके द्वे तु द्वौ पक्षाविव चालयेत्। एषा गरुडमुद्रा स्यात् विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी ॥ ११ ॥

जानुमध्ये करौ कृत्वा चिबुकाष्ठौ समावुभौ । हस्तौ तु भूमिसंलग्नौ कम्पमानः पुनः पुनः । मुखं विवृतकं कुर्यात्लेलिहानाञ्च जिह्विकाम् । नारसिंही भवेदेषा मुद्रा तत्प्रीतिवर्द्धिनी ।

प्रकारान्तरम् : अंगुष्ठाभ्यान्तु करयोस्तथाक्रम्य कनिष्ठिके । अधोमुखीभिः सर्वाभिर्मुद्रेयं नृहरेर्मता ॥ १२ ॥ देवोपरि करं वामं कृत्वोत्तानमधः सुधीः । नमयेदिति सम्प्रोक्ता मुद्रा वाराहसंज्ञिका ।

प्रकारान्तरम् : दक्षहस्तञ्चोर्ध्वमुखं वामहस्तमधोमुखम् । अंगुल्यग्रन्तु संयुक्तं मुद्रा वाराहसंज्ञिका ॥ १३ ॥ वामहस्ततले दक्षा अंगुलीस्तास्त्वधोमुखीः । संरोप्य मध्यमां तासामुन्नम्याधो विकुञ्चयेत् । हयग्रीवप्रिया मुद्रा तन्मूर्तेरनुकारिणी ॥ १४ ॥ वामस्य मध्यमाग्रन्तु तर्जन्यग्रेण योजयेत् । अनामिकां कनिष्ठाञ्च तस्यांगुष्ठेन पीडयेत् । दर्शयेद्वामके स्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता । दक्षमुष्टेस्तु तर्जन्या दीर्घया बाणमुद्रिका ॥ १५ ॥

यद्वा ज्ञानार्णवे : यथा हस्तगतं चापं तथा हस्तं कुरु प्रिये । चापमुद्रेयमाख्याता वामहस्ते व्यवस्थिता । यथा हस्तगता बाणास्तथा हस्तं कुरु प्रिये । बाणमुद्रेयमाख्याता रिपुवर्गनिकृन्तनी ॥ १६ ॥ तले तलन्तु करयोस्तिर्यक्संयोज्य चांगुलीः । संहताः प्रसृताः कुर्यान्मुद्रा परशुसंज्ञिका ॥१७॥ उच्छ्रितांगुष्ठमुष्टि द्वे मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी ॥१८॥ हस्तौ तु सम्पुटौ कृत्वा प्रसृतांगुलिके तथा । तर्जन्यौ मध्यमापृष्ठे अंगुष्ठौ मध्यमाश्रितौ । काममुद्रेयमुदिता सर्वदेवप्रियङ्करी ॥ १९ ॥ महादेवप्रियाणान्तु कथ्यन्ते लक्षणान्यथ । उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं वामांगुष्ठेन बन्धयेत् । वामांगुलीर्दक्षिणाभिरंगुलीभिश्च बन्धयेत् । लिंगमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥ १ ॥ मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके । अनामिकोर्ध्वं संश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरधः । अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यसेद्योनिमुद्रेयमीरिता ॥२॥ अंगुष्ठेन कनिष्ठान्तु बद्ध्वा श्लिष्टांगुलित्रयम् । प्रसारयेत्त्रिशूलाख्या मुद्रेषा परिकीर्तिता ॥ ३ ॥ अंगुष्ठ तर्जन्यग्रेषु ग्रथयित्वांगुलित्रयम् । प्रसारयेदक्षमाला मुद्रेयं परिकीर्तिता ॥४॥ अधःस्थितो दक्षहस्तः प्रसृतोवरमुद्रिका ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वीकृतो वामहस्तः प्रसृतोऽभयमुद्रिका ॥ ६ ॥ मिलितानामिकांगुष्ठं मध्यमाग्रे नियोजयेत् । श्लिष्टांगुल्युच्छ्रिते कुर्यान्मृगमुद्रेयमीरिता ॥ ७ ॥ पञ्चांगुल्यो दक्षिणास्तु मिलिता ह्यूर्ध्वमुन्नताः । खट्वाङ्गमुद्रा विख्याता देवस्यातिप्रिया मता ॥ ८ ॥ पात्रवद्वामहस्तञ्च कृत्वाङ्ग वामके तथा । निधायोच्छ्रितवत्कुर्यान्मुद्रा कापालिकी मता

॥ ९ ॥ मुष्टिञ्च शिथिलां बद्ध्वा ईषदुच्छ्रितमध्यमाम् । दक्षिणां तूर्ध्वमुन्नम्य कर्णदेशे प्रचालयेत् । एषा मुद्रा डमरुका सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ १० ॥ तथा गणेशमुद्राणामुच्यते लक्षणान्यथ । उत्तानोर्ध्वमुखी मध्या सरला बद्धमुष्टिका । दन्तमुद्रा समाख्याता सर्वागमविशारदैः ॥ १ ॥ वाममुष्टेस्तु तर्जन्या दक्षमुष्टेस्तु तर्जनीम् । संयोज्यांगुष्ठकाग्राभ्यां तर्जन्यग्रे स्वके क्षिपेत् । एषा पाशाह्वया मुद्रा विद्वद्भिः परिकीर्तिता ॥ २ ॥ ऋज्वीञ्च मध्यमां कृत्वा तर्जनीं मध्यपर्वणि । संयोज्याकुञ्चयेत् किञ्चित्मुद्रैषांकुशसंज्ञिका ॥ ३ ॥ तर्जनीमध्यमानामा कनिष्ठांगुष्ठमुष्टिका । अधोमुखी दीर्घरूपा मध्यमा विघ्नमुद्रिका ॥ ४ ॥ पर्शुमुद्रा निगदिता प्रसिद्धा लड्डुमुद्रिका । बीजपूराह्वया मुद्राप्रसिद्धत्वादुपेक्षिता ॥ ५ ॥ शाक्तेयीनाञ्च मुद्राणां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ । पाशांकुशवराभीतिधनुर्बाणाः समीरिताः ॥ ६ ॥ कनिष्ठाऽनामिके बद्ध्वा स्वांगुष्ठेनैव दक्षतः । शिष्टांगुली तु प्रसृते संसृष्टे खड्गमुद्रिका ॥७॥ वामहस्तं तथा तिर्यक्कृत्वा चैव प्रसार्य च । आकुञ्चितांगुलीं कुर्याच्चर्ममुद्रेयमीरिता ॥ ८ ॥ मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् । कुर्यान्मुषलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ ९ ॥ मुष्टिं कृत्वा कराभ्याञ्च वामस्योपरि दक्षिणम् । कृत्वा शिरसि संयोज्य दुर्गामुद्रेयमीरिता ॥ १० ॥ चक्रमुद्रां तथा बद्ध्वा मध्यमे द्वे प्रसार्य च । कनिष्ठिके तथानीय तदग्रेऽगुष्ठकौ क्षिपेत् । लक्ष्मीमुद्रा परा ह्येषा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ॥ ११ ॥ वीणावादनवद्धस्तौ कृत्वा सञ्चालयेच्छिरः । वीणामुद्रेयमाख्याता सरस्वत्याः प्रियङ्करी ॥ १ ॥ वाममुष्टिं स्वाभिमुखीं कृत्वा पुस्तकमुद्रिका । दक्षिणांगुष्ठतर्जन्यावग्रलग्ने परांगुलीः ॥ २ ॥ प्रसार्य संहतोत्ताना एषा व्याख्यानमुद्रिका । श्रीरामस्य सरस्वत्या अत्यन्तप्रेयसी मता ॥३॥ मणिबन्धस्थितौ कृत्वा प्रसृतांगुलिकौ करौ । कनिष्ठांगुष्ठयुगले मिलित्वान्तः प्रसारयेत् । सप्तजिह्वाख्यमुद्रेयं वैश्वानरप्रियङ्करी ॥ १ ॥ कनिष्ठांगुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम् । तर्जनीमध्यमानामाः संहता-भुग्नवर्जिताः । मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरिचालिता ॥ १ ॥ दक्षांगुष्ठं परांगुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु । सावकाशामेकमुष्टिं कुर्यात् सा कुम्भमुद्रिका ॥ २ ॥ मुष्ट्योरूर्ध्वीकृतांगुष्ठौ तर्जन्यग्रे तु विन्यसेत् । सर्वरक्षाकरी ह्येषा कुम्भमुद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ ३ ॥ प्रसृतांगुलिकौ हस्तौ मिथः श्लिष्टौ च सम्मुखौ । कुर्यात्स्वहृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका ॥ ४ ॥ अञ्जल्यञ्जलिमुद्रा स्याद्वासुदेवाह्वया च सा ॥ ५ ॥ अंगुष्ठावुन्नतौ कृत्वा मुष्ट्योः संलग्नयोर्द्वयोः तावेवाभिमुखौ कुर्यान्मुद्रेषा

कालकर्णिका ॥ ६ ॥ दक्षिणा निविड़ा मुष्टिर्नासिकार्पिततर्जनी ॥ ७ ॥ मुद्रा विस्मयसंज्ञा स्याद्विस्मयवेशकारिणी ॥ ८ ॥ मुष्टिरूर्ध्वीकृतांगुष्ठा दक्षिणा नादमुद्रिका। तर्जन्यंगुष्ठसंयोगाग्रतो विन्दुमुद्रिका ॥ ९ ॥ अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम्। क्षिप्त्वांगुलीरंगुलीभिः संग्रथ्य परिवर्तयेत्। एषा संहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ स्मृता ॥ १० ॥ दक्षपाणिपृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत्। अंगुष्ठौ चालयेत्सम्यक्मुद्रेयं मत्स्यरूपिणी ॥ ११ ॥ वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम्। तथा दक्षिणतर्जन्यां वामांगुष्ठं नियोजयेत्। उन्नतं दक्षिणांगुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः। अंगुलीर्योजयेत्पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च। वामस्य पितृ-तीर्थेन मध्यमानामिके तथा। अधोमुखे च ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च। कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद्दक्षपाणिश्च सर्वतः। कूर्ममुद्रेयमाख्याता देवताध्यान-कर्मणि (पृष्ठे क्रोडे) ॥ १० ॥ अन्तरांगुष्ठमुष्टिन्तु कृत्वा वामकरस्य च। मध्यमाग्रं दक्षिणस्य तथालम्ब्य प्रयत्नतः। मध्यमेनाथ तर्जन्यामंगुष्ठाग्रेण योजयेत्। दक्षिणं योजयेत्पाणिं वाममुष्टौ तु साधकः। दर्शयेद्दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमुच्यते ॥ १२ ॥

ताराया योन्यादिमुद्रा यथा : योनिमुद्रा च वक्तव्या दर्शयेत्तामधो-मुखीम्। भूतिनी वक्तव्या बीजाख्यापि। परिवर्त्य करौ स्पष्टौ कनिष्ठा-कृष्टमध्यमे। अनामायुगलश्चाधस्तर्जनीयुगलं पृथक्। अन्योऽन्यं निविडं बद्ध्वांगुष्ठाग्रेऽनामिके ततः। दानवधूमकेत्वाख्या मुद्रैषा कथिता प्रिये। अस्यास्तु बन्धनान्मन्त्री बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥ १ ॥ वक्त्रं विस्तारितं कृत्वाप्यधोजिह्वाञ्च चालयेत्। पार्श्वस्थं मुष्टियुगलं लेलिहनेति कीर्तिता ॥२॥ एषा ताराराधने, अन्या लेलिहाना वक्तव्या। योनिर्मायाधरः सेन्दू-र्वधूः कूर्चं क्रमाद्विदुः। बीजानि चोच्चरन्मन्त्री मुद्राबन्धनमाचरेत् ॥ ३ ॥ तर्जनीमध्यमानामाः समः कुर्यादधोमुखीः। अनामायां क्षिपेद्वृद्धाम् ऋज्वीं कृत्वा कनिष्ठिकाम्। लेलिहानाम मुद्रेयं जीवन्यासे प्रकीर्तिता ॥४॥ तर्जन्यनामिका-मध्या-कनिष्ठा क्रमयोगतः। करयोर्योजयत्येव कनिष्ठा-मूलदेशतः। अंगुष्ठाग्रे तु निक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥ वाम-केश्वरतन्त्रोक्ताः प्रकाश्यन्तेऽत्र मुद्रिकाः। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मुद्राः सर्वार्थसिद्धिदाः याभिर्विरचिताभिश्च सान्निध्यं त्रैपुरं भवेत् ॥ १ ॥ परिवर्त्य करौ स्पृष्टावंगुष्ठौ कारयेत्समौ। अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती। कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि। त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराध्यानकर्मणि ॥ २ ॥ मध्यमामध्यगे कृत्वा कनिष्ठे-

ऽंगुष्ठरोधिते । तर्जन्यौ दण्डवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके । एषा च परमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी ॥ ३ ॥ एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा । क्रियते परमेशानि सर्वविद्राविणी तदा ॥ ४ ॥ मध्यमातर्जनीभ्याञ्च कनिष्ठानामिके समे । अंकुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि । अंगुष्ठन्तु नियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि । इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी परा ॥ ५ ॥ पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती । परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते । क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके तथा । संयोज्य निविडाः सर्वा अंगुष्ठावग्रदेशतः । मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ॥ ६ ॥ सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽन्त्यजे । अनामिके तु सरले तद्वहिस्तर्जनीद्वयम् । दण्डाकारौ ततोंगुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ । मुद्रैषोन्मादिनी नाम्नाकर्षिण सर्वयोषिताम् ॥ ७ ॥ अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधः-कृत्वांकुशाकृती । तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् । इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी ॥८॥ सव्यं दक्षिणदेशे तु सव्यदेशे तु दक्षिणम् । बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तौ संपरिवर्त्य च । कनिष्ठानामिके देवि युक्त्वा तेन क्रमेण तु । तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे । अंगुष्ठौ तु महेशानि सरलावपि कारयेत् । इयं सा खेचरी नाम्ना पार्थिवस्थान-योजिता ॥ ९ ॥ परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये तर्जन्यंगुष्ठ-युगलं युगपत्कारयेत्ततः । अधःकनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् । तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके । बीजमुद्रेयमचिरात्सर्वसिद्धि-विवर्द्धिनी ॥ १० ॥ मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते । अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके । सर्वा एकत्र संयोज्य अंगुष्ठपरिपीडिताः । एषा तु परमा मुद्रा योनिमुद्रेयमीरिता ॥ ११ ॥ एता मुद्रा महेशानि त्रिपुराया मयोदिताः । पूजाकाले प्रयोक्तव्या यथानुक्रमयोगतः ॥ १२ ॥ वामहस्तेन मुष्टिन्तु बद्ध्वा कर्णप्रदेशके । तर्जनीं सरलां कृत्वा भ्रामये-न्मनुवित्तमः । सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा न्यासकालेऽपि सूचिता ॥ १३ ॥ अन्तरांगुष्ठमुष्ट्या तु निरुध्य तर्जनीमिमाम् । रिपुजिह्वा ग्रहा मुद्रा न्यासकालेऽपि सूचिता ॥ १४ ॥ बद्ध्वा तु योनिमुद्रां वै मध्यमे कुटिले कुरु । अंगुष्ठौ च तदग्रे मुद्रेयं भूतिनी मता ॥ १५ ॥ वाममुष्टिं विधायाथ तर्जनीमध्यमे ततः । प्रसार्य तर्जनीमुद्रा निर्दिष्टा वज्रपाणिना ॥ १६ ॥ इति मुद्राप्रकरणम् ।

अथ धारणयन्त्रादि :

तत्रादौ भुवनेश्वरीयन्त्रम् :

शारदायाम् : आलिख्याष्टदिगर्गलान्युदरगं पाशादिकं त्र्यक्षरं, कोष्ठेष्वङ्गमनून्परेषु विलिखेदष्टार्णमन्त्रद्वयम् । अच्पूर्वापरयट्क्-युग्लषव-रान् व्योमासनानर्गलेष्वालिख्येन्द्रजलादिपाधिगुणशः पंक्तिद्वयं तत्परम् ॥ १ ॥ कोष्ठेष्वष्टयुगार्णमात्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गतां, मायां केशरगां दलेषु विलिखेत्मूलं त्रिपंक्तिक्रमात् । त्रिः पाशांकुशवेष्टितश्च लिपिभिर्वीतं क्रमादुत्क्रमात्, पद्मस्थेन घटेन पङ्कजमुखेनावेष्टितं तद्बहिः । घटार्गलमिदं यन्त्रं मन्त्रिणां श्रीपदं मतम् । पाशश्रीशक्तिकन्दर्पकामशक्तिरमांकुशाः । प्रथमोऽष्टाक्षरो मन्त्रस्ततः कामिनिरञ्जिनि । स्वाहान्तोऽष्टाक्षरः सद्भिरपरः परिकीर्तितः । ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्मं फट् । द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदीरितः ॥ १-क ॥ इति घटार्गलयन्त्रम् ।

अथ त्वरितायन्त्रम् :

तारे हूं विलिखेत्सरोजकुहरे साध्याभिधानान्वितं, मन्त्रर्णान् वसुसंख्यकान् वसुदलेष्वालिख्य तद्बाह्यतः । शक्त्या त्रिः परिवेष्टितं घटगतं पद्मस्थमब्जाननं, यन्त्रं वश्यकरं ग्रहादिभयहृल्लक्ष्मीप्रदं कान्तिदम् ॥ २ ॥ इति त्वरितायन्त्रम् ।

अथ नवदुर्गायन्त्रम् :

पद्मं भानुदलान्वितं प्रविलिखेत्तत्कर्णिकायां पुनस्तारं शक्तिगबीज-साध्यसहितं तत्केशरेषु क्रमात् । मांदन्त्या मनुसम्भवान् युगलशो वर्णान् पुनः पत्रगान्, मन्त्रार्णान् गुणशो विधाय विलिखेदन्त्यं तदन्त्ये दले ।

मन्त्रस्तु : ॐ उत्तिष्ठ पुरुष किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम् । यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा । मातृकावर्ण-संवीतं भूपुरद्वयमध्यगम् । यन्त्रञ्च विन्ध्यवासिन्याः प्रोक्तं सर्वसमृद्धिदम् । रक्षाकरं विशेषेण क्षुद्रभूतादिनाशनम् । राज्यदं भ्रष्टराज्यानां वश्यदं वश्यमिच्छताम् । सुतार्थिनां च सुतदं रोगिणां रोगशान्तिदम् । बहुना किमिहोक्तेन यन्त्रं तत्कामदो मणिः ॥ ३ ॥ इति नवदुर्गायन्त्रम् । (नव-दुर्गाधारणयन्त्रम् चित्र ५२)।

अथ लक्ष्मीयन्त्रम् :

वेदादिस्थितसाध्यनाम युगशः श्रीशक्तिमारान्वितं, किञ्जल्केषु दिनेशपत्रविलसन्मन्त्राक्षरं तद्बहिः । पद्मं व्यञ्जनकेशरं स्वरलसत्पत्राष्ट-युग्मं धराविम्बाभ्यां वषडन्तरा त्वरितया यन्त्रं लिखेद्वेष्टितम् । भूपुरद्वय-कोणेषु हक्षौ लेख्यौ पुनः पुनः । महालक्ष्मीयन्त्रमिदं सर्वैश्वर्यफलप्रदम् ।

सर्वदुःखप्रशमनं सर्वापद्विनिवारकम्। बहुना किमिहोक्तेन परमस्मान्न विद्यते ॥ ४ ॥ इति लक्ष्मीयन्त्रम्।

अथ त्रिपुरभैरवीयन्त्रम् :

मध्याद्यं नवयोनिषु प्रविलिखेद्वीजानि वर्णांस्त्रिशो, गायत्र्याः पुनरष्टपत्रविवरेष्वालिख्य लिप्यावृतम्। भूविम्बद्वितयेन मन्मथयुजा कोणेषु संवेष्टितं, यन्त्रं त्रैपुरमीरितं त्रिभुवन प्रक्षोभणं श्रीपदम्। (त्रिपुरभैरवीयन्त्रम् चित्र ५३)।

गायत्री तु : मन्मथं त्रिपुरादेवि विद्महे पदमुद्धरेत्। उक्त्वा कामेश्वरिपदं प्रवदेदथ धीमहि। अन्ते च प्रवदेद्भूयस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् गायत्र्येषा समाख्याता त्रैपुरी सर्वसिद्धिदा ॥ ५ ॥

अथ त्रिपुरायन्त्रम् :

वह्नेर्गेहयुगान्तरस्थसदने मायां लिखेद्वाग्भवं, षट्कोणेष्वथ सन्धिषु प्रविलिखेत् ब्लूंकारमावेष्टयेत्। स्त्रींबीजेन समीरितं त्रिभुवनप्रक्षोभणं त्रैपुरं, यन्त्रं पञ्चमनोभवात्मकमिदं सौन्दर्यसम्पत्करम् ॥ ६ ॥ इति त्रिपुरायन्त्रम्।

अथ श्रीविद्यायन्त्रम् :

विशेषं धारणं यन्त्रं प्रसङ्गात्कथयामि ते। रेफहकारयोर्मध्ये देवीनामाभिमुख्यकम्। साध्यनामद्वितीयान्तं तस्योर्ध्वे विलिखेन्मनुम्। तत्रैव मातृकां सर्वां विलिखेच्चक्रवाह्यतः। पञ्चगव्यामृतेनैव मूलेन परिवेष्टयेत्। तत्र प्राणं प्रतिष्ठाप्य विद्यामष्टोत्तरं शतम्। तत्स्पृष्ट्वा प्रजपेन्मन्त्रं न्यासध्यानपरायणः ॥ ७ ॥ हेम्नो मध्यगतं कृत्वा राजतस्याथवा पुनः। करे धृता जगद्वश्यं हृदये स्त्रीषु वल्लभः। कण्ठे धनं लभेद्भाले स्तम्भनं भवेत्। शिखायां मोक्षमाप्नोति तस्माद्यत्नेन धारयेत् ॥ ७-क ॥ इति श्रीविद्यायन्त्रम्।

अथ गणेशयन्त्रम् :

बीजं षट्कोणमध्ये स्फुरदनलपुरे तारगं दिक्षु लक्ष्मीर्मायाकन्दर्पभूमीस्तदनु रसपुटेष्वालिखेद्वीजषट्कम्। तत्सन्धिष्वङ्गमन्त्रान् वसुदलकमले मूलमन्त्रस्य वर्णान्, शिष्टान् पत्रेषु विद्वान् बिलिखतु गुणशश्चान्त्यमन्त्ये पलाशे। आवीतं लिपिभिः क्रमोत्क्रमवशात्पाशांकुशाभ्यामपि, भूविम्ब द्वितयेन वेष्टितमिदं यन्त्रं गणाधीशितुः। लाक्षा-कुंकुम-रोचना-मृगमदैर्भूर्जोदरे हेम्नि वा, संलिख्याभिवहन् लभते सकलैः संप्रार्थनीयां

श्रियम । उक्तं महागणपतेर्विधानं सुरपूजितम् । सर्वसिद्धिकरं पुंसां समस्त-पुरुषार्थदम् ॥ ८ ॥ इति गणेशयन्त्रम् ।

अथ श्रीरामयन्त्रम् :

तारं मध्ये विलिखतु मनुं षट्सु कोणेषु सन्धिष्वङ्गं मायां स्मरमपि च लिखेत्कोणगण्डेषु पश्चात् । किञ्जल्केषु स्मरगणमथो पत्रमध्येषु मालामन्त्रस्यार्णान् गुहमुखमितानष्टमे पञ्चवर्णान् ॥ ९ ॥ दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादिवर्णैश्च भूपुरे । दिग्विदिक्षु लिखेद्बीजे नरसिंहवराहयोः । नमो भगवते ब्रूयाच्चतुर्थ्या रघुनन्दनम् । रक्षोघ्नविशदायान्ते मधुरादि समीरयेत् प्रसन्नवदनायेति पश्चादमिततेजसे । वलाय पश्चाद्रामाय विष्णवे तदनन्तरम् । प्रणवादिनमोऽन्तोऽयं मालामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ९-क ॥ इति श्रीरामयन्त्रम् । (श्रीरामस्य धारणयन्त्रम् चित्र ५४)

अथ नृसिंहयन्त्रम् :

बीजं साध्यसमन्वितं प्रविलिखेन्मध्येऽष्टपत्रेष्वथो मन्त्रार्णान् श्रुतिशो विभज्य विलिखेल्लिप्या वहिर्वेष्टयेत् । वाह्ये कोणगबीज-रुद्धवसुधागेह-द्वयेनावृतं, यन्त्रं क्षुद्रविषग्रहामयरिपुप्रध्वंसनं श्रीपदम् ॥ १० ॥ इति नृसिंहयन्त्रम् । (नृसिंहधारणयन्त्रम् चित्र ५५)

अथ गोपालयन्त्रम् :

पिण्डं मूलेन वीतं दहनपुरयुगे कोणराजत्-षडर्णं, कुर्यात्पद्मं दशार्णं-स्फुरितदशदलं कामबीजेन वीतम् । पद्मं किञ्जल्कसंस्थं स्मरविकृति-दलप्रोल्लसत्षोडशार्णं, किञ्जल्कव्यञ्जनाढ्यं विकृतियुगदलेष्वर्पितानुष्टु-वर्णम् । पाशांकुशाभ्यामावीतं क्षौणीपुरयुगाश्रिषु । अष्टाक्षरेण लसितं यन्त्रं गोपालदैवतम् । धर्मार्थकामफलदं सर्वरक्षाकरं परम् । पञ्चान्तको धरासंस्थो मनुरिन्दुविभूषितः । पिण्डबीजमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं परम् । स्मरः कृष्णाय ठद्वन्द्वं षडर्णो मनुरीरितः । गोपीजनान्ते प्रवदेद्वल्लभाया-ग्निवल्लभा । अयं दशाक्षरो मन्त्रोः दृष्टादृष्टफलप्रदः । प्रणवं हृदयं कृष्णं ङेऽन्तमुक्त्वा ततः परम् । तादृशं देवकीपुत्रं हुं-फट्-स्वाहा समन्वितम् । षोडशाक्षरमन्त्रोऽयं गोविन्दस्य समीरितः । पिण्डं रतिपतेर्बीजं नमो भगवते ततः । नन्दपुत्राय बालादिवपुषे श्यामलाय च । गोपीजनपद-स्यान्ते वल्लभाय द्विठावधिः । अनुष्टुप्मन्त्र आख्यातो गोपालस्य जगत्पतेः । अनङ्गः कृष्णगोविन्दौ ङेऽन्तावष्टाक्षरो मनुः ॥ ११ ॥ इति गोपालयन्त्रम् ।

अथ श्रीकृष्णयन्त्रम् :

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदग्विधिवदभिलिखेत्स्पष्टरेखाचतुष्कं, कोणोद्यच्छूल-युक्तं वलययुगयुतं मध्यपूर्वं तदन्तम्। श्लोकस्यार्णान्पुरस्ताद्वसुपदविवरे-ष्वष्टवर्णं लिखित्वा, तद्बाह्ये द्वादशार्णैस्तदनु परिवृतं देवकीपुत्रयन्त्रम्। तत्सुकीदेवदेवेतं तं वेदे वरतोरतं तं रतो रूढतोऽख्यातं तं ख्यातो देवकी-सुतम्। लिखितं भूर्जपत्रादौ यन्त्रमेतद्यथाविधि। विधृतं बाहुना नित्यं सर्वकामफलप्रदम्। पलाशवृक्षफलके लिखितं साधुसाधितम्। गोस्थाने निखनेदेतत्गवां वृद्धिर्भवेत्तदा ॥ १२ ॥ इति श्रीकृष्णयन्त्रम्। (श्रीकृष्ण-यन्त्रम् चित्र ५६)

अथ शिवयन्त्रम् :

तत्रादौ षट्कोणमण्डलं कृत्वा तदन्तः साध्यनामयुक्तंप्रासादबीजं विलिख्य षट्कोणेषु प्रणवसहितपञ्चाक्षरवर्णान्विलिख्य कोणविवरेषु षडङ्गमन्त्रांस्तद्बहिः पञ्चदलानि विरचय्य तद्दलेषु ॐ ईशानाय नमः ॐ तत्पुरुषाय नमः ॐ अघोराय नमः ॐ सद्योजाताय नमः ॐ वामदेवाय नमः। इति पञ्चमन्त्रान् प्रागादिक्रमेण लिखेत्। तद्बहिरष्टदलानि रचयित्वा दलेषु मातृकाष्टवर्णान्लिखेत् ॥ १३ ॥ तद्बहिर्वृत्तं त्र्यम्बकेन वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रं जपहोमादिना सम्पूज्य धारयेत्, आयुरारोग्यैश्वर्यादिचतुर्वर्गादि-सिद्धिर्भवति ॥ १३क ॥ इति शिवयन्त्रम्। (शिवस्य धारण-यन्त्रम् चित्र ५७)।

अथ मृत्युञ्जययन्त्रम् :

मध्ये साध्याक्षराढ्यं ध्रुवमभिविलिखेन्मध्यमं दिग्दलेषु, कोणेष्वन्त्यं मनोस्तत्क्षितिभवनमथो दिक्षु चान्द्रं विदिक्षु। टान्तं यन्त्रं तदुक्तं सकल-भयहरं क्ष्वेडभूतापमृत्युव्याधिव्यामोहदुःख-प्रशमन-मुदितं श्रीपदं कीर्ति-दायि ॥१४॥ इति मृत्युञ्जययन्त्रम्। (मृत्युञ्जयधारण-यन्त्रम् चित्र ५८)।

अथ कालीयन्त्रम् :

तत्र यामले : आद्यं बीजं ससाध्यं प्रथमवसुगृहे तद्बहिश्चाष्टकोणे, पूर्वाद्यश्चाष्टबीजं तदनु वसुगृहद्वन्द्वके बीजषट्कम्। किञ्जल्कं तत्स्वराढ्यं वसुदलविवरे स्वाहया बीजषट्कं, कूर्चाभ्यामेव वीतं क्षितिगृहयुगयोरन्तरे यन्त्रराजम्। देवीबीजत्रयं तत्प्रतिदिशमपरं शक्तिबीजद्वयं तत् कोणे कोणे लिखेद्यस्त्रिजगति स गुरुः शङ्करस्यापि विष्णोः ॥ १५ ॥ इति काली-यन्त्रम्। (काल्या धारण-यन्त्रम् चित्र ५९)।

अथ शान्तिकादौ ताराधारणयन्त्रम् :

तदुक्तं फेत्कारिणीये : योनियुग्मे लिखेन्मन्त्रं मन्त्री हेमशलाकया। क्लीवहीनान्दीर्घवर्णान् षट्कोणे विलिखेत्ततः। अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् तद्बहिर्भूपुरद्वयम्। अष्टवज्रं भूपुरे च विलिख्य साधकोत्तमः। सुवर्णपट्टे भूर्जे वा रौप्ये वाप्यथ सुव्रते। विलेखेद्धेमलेखन्या गन्धाष्टकसमन्वितम्। दूर्वाकाण्डेन वालिख्य कुशमूलेन वा पुनः॥ (ताराया-धारणयन्त्रम् चित्र ६०)।

एकवीराकल्पे : वेष्टितं पीतवस्त्रेण जतुना परिवेष्टयेत्। बध्नीयात् पट्टसूत्रेण शिशूनां कण्ठभूषणं स्त्रीणां वामभुजे चैवमन्येषां दक्षिणे भुजे बन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो धनवान्भवेत्। इयं लब्धा परा रक्षा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः। प्रीत्यर्थं पार्थिवैरन्यैः संग्रामे जयकांक्षिभिः।

अस्यार्थः : योनियुग्मे षट्कोणे। तन्मध्ये हेमशलाकादिना भूर्जपत्रादौ कुंकुमगोरोचनारक्तचन्दन जटामांसीसमांशं विधाय पंक्तिक्रमेण मूलमन्त्रं लिखित्वा तस्य हृल्लेखारेफमध्ये अमुकस्य रक्षां कुरु कुरु अमुकीनां शुभं पुत्रमुत्पादय इति वा अस्य ज्ञानं कुरु कुरु इत्यादि वा साध्यसहितं विलिख्य षट्कोणे क्लीवहीनान् आ ई ऊ ऐ औ अः इति दीर्घवर्णानेकैकं लिखेत्।

तदुक्तम् : स्वराणां मध्यगं यच्च तच्चतुष्कं नपुंसकमिति। अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहेति लिखेत्।

तदुक्तम् : वाग्भवं कुलदेवीश्च तारकं वाग्भवं तथा। हृल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः। अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्त्राणां सार ईरितः॥ १६॥

अथ यन्त्रलेखनद्रव्यम् :

काश्मीर-रोचना-लाक्षा-मृगेभमद-चन्दनैः। विलिखेद्धेमलेखन्या यन्त्राणि तानि देशिकः। भूमिस्पृष्टं शवस्पृष्टं दग्धं निर्माल्यसङ्गतम्। विदीर्णं लङ्घितं मन्त्री यन्त्रं नैव च धारयेत्। सौवर्णे राजते पात्रे भूर्जे वा सम्यगालिखेत्। अथवा ताम्रपट्टेन गुटिकीकृत्य धारयेत्। यावज्जीवन्तु सौवर्णे रौप्ये विंशतिवार्षिकाम्। भूर्जे द्वादशवर्षाणि तदर्द्धं ताम्रपट्टके॥ १७॥ इति यन्त्रलेखनद्रव्यम्।

अथ प्रयोगानन्तरं शान्त्युदकस्नानम् :

तद्यथा : सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय

ते। आखण्डलोऽग्निर्भगवान यमो वै निर्ऋतिस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः। ब्रह्मणा सहिता ह्येते दिक्पालाः पान्तु ते सदा। कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा मतिः। बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्मयिा निद्रा च भावना। एतास्त्वामभिसिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः। आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः। एते त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः। देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च। देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसोऽङ्गनाः। अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च। औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः। एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥ १८ ॥ इति वसिष्ठसंहितोक्ताभिषेकमन्त्राः।

अथात्र संक्षेपतो नित्यपूजाविधिः :

तदुक्त यामले : आदावृष्यादिविन्यासः करशुद्धिस्ततः परम्। अंगुलिव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च। तालत्रयश्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम्। ध्यानं पूजा जपश्चेति सर्वतन्त्रेष्वयं क्रमः ॥ १ ॥ पूजा च मूलदेवताया एव। मातृकान्यासोऽप्यावश्यकस्तथा च : जपार्थं सर्वमन्त्राणां विन्यासश्च लिपेर्विना। कृतं तन्निष्फलं विद्यात्तस्मादादौ लिपिं न्यसेत् ॥ २ ॥

श्रीविद्यायाः संक्षेप-पूजाविधिः :

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे : पूजाविशेषान्देवेशि शृणु नित्यक्रमोदितान्। अशक्तानान्तु विस्तारे तथा चापत्सु शस्यते। अन्यथानर्थकारि स्यात् संकोचार्चनमीश्वरि ॥ ३ ॥ हेतिभिर्मध्यमाद्यं स्यात् द्वितीयं नवयोनिषु। चतुर्दशारावध्यन्यच्चतुर्थं प्रोक्तरूपतः। पञ्चमं सर्वदुःखार्तिनाशनं वाञ्छितप्रदम्।

अस्यार्थः : अशक्तानां हेतिभिर्मध्यमाद्यं स्यात्। हेतिचतुष्टयसहितदेवताचतुष्टयार्चनम्। पाशांकुशधनुर्बाणा हेतयः।

देवतास्तु : कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिनी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवताचतुष्टयार्चनरूपमेतदाद्यार्चनमित्यर्थः। द्वितीयमाह नवयोनिष्विति। वशिन्यादिमध्यमान्तमिति। तृतीयार्चनमाह चतुर्दशारचक्रस्थितसर्वसंक्षोभिण्यादिमध्यमान्ता सपर्या तृतीया। चतुर्थं प्रोक्तरूपत इति। तत्र प्रोक्तरूपेणेत्यर्थः। षोडशदलादि-मध्यमान्तमिति यावत्। पञ्चमं भूगृहादिमध्यमान्तमिति यावत्। इति पञ्चप्रकारार्चा प्रोक्ता सर्वार्थं-

सिद्धिदा। तत्रादौ भूतशुद्धि प्राणायामपुरःसरं करशुद्धयासनचतुष्टयाङ्ग-वशिन्यादिन्यासचतुष्टयं विधाय बालया अर्घ्यद्वयं संशोध्य षडासन-विद्यया पीठपूजां विधाय विन्दौ हृल्लेखया परचितिमावाह्य यथाशक्त्यु-पचारैरभ्यर्च्य पूर्ववत्सर्वभूतवलिं दत्त्वा जप-स्तोत्रैः सन्तोषयेदिति ॥ ४॥

तदुक्तं नवरत्नेश्वरे : न्यासत्रयं समासाद्य चक्रपूजासनेन वै। बालयार्घ्यं समासाद्य हृल्लेखामनुना शिवे। चक्रमध्ये समावाह्य संक्षे-पार्चनमर्चयेदिति ॥ ५ ॥

अथवा तदुक्तं विशुद्धेश्वरतन्त्रे : पूजासंकोचकश्चैव कथयामि सुरेश्वरि। यत्पूजाबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते। प्रथमाग्रे तु त्रिपुरा द्वितीया त्रिपुरेश्वरी। तृतीया चक्रराजे तु त्रिपुरादिसमन्विता। देवीपूजाक्रमेणैव सुन्दरी वासिनीति च। पञ्चमे त्रिपुराश्रीश्च षष्ठे त्रिपुर-मालिनी। सप्तमे त्रिपुरा सिद्धा चाष्टमे त्रिपुरात्मिका। मध्ये शक्तौ महेशानि महात्रिपुरसुन्दरी।

यथा वाराहीतन्त्रे : षडङ्गं विन्यस्य देवीमावाह्य विन्दुचक्रे अणिमां द्वितीये कामकलां तृतीये ब्राह्मीं चतुर्थे सुन्दरीं पञ्चमे आकर्षिणीं षष्ठे कामेश्वरीं वसुदले भेरुण्डां षोडशदले कुलेश्वरीं सम्पूज्य देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मन्त्रं जपेदिति ॥ ६ ॥ इति श्रीविद्यायाः संक्षेपार्चा।

अथ नैमित्तिकविधिः :

तत्र गौतमीये—नारद उवाच : कर्मान्तरमथो वक्ष्ये शृणुष्वावहितो मुने। यत्कृत्वा मन्दभाग्योऽपि लभेन्मन्त्रफलानि वै। प्रणवद्वयमध्यस्थं जपेदयुतसंख्यया। त्रिरात्रजपमात्रेण वृहस्पतिसमो भवेत्। व्याख्याता सर्वशास्त्राणां वेदानामपि जायते। रविवारेऽश्वत्थमूले जपेदष्टोत्तरं शतम्। भूयो भूयो भवेच्छान्तिर्जीवेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७ ॥ तस्य शान्तिर्भवेन्नूनं यमुद्दिश्य कृत्वा क्रिया। अंशुकैरर्चयेत्कृष्णं मासमान्त्रन्तु-निर्मलैः। मुच्यते मलिनैः कृच्छ्रैः पापैर्घोरतरैरपि ॥ ८ ॥ पट्टवस्त्रैर्यजेद्-भक्त्या सम्पत्तिमतुलां लभेत्। विद्रुमैः पूजयेत्कृष्णं त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ ९ ॥ माणिक्यै पूजयेद्भक्त्या सार्वभौमसमो भवेत्। पद्मरागैर्यजेत् कृष्णं राजा भवति निश्चितम् ॥ १० ॥ क्षत्रियः सार्वभौमः स्यात्साधयेत् सकलां महीम्। गारुत्मतमयै रत्नैः पूजयन् ज्ञानवान् भवेत् ॥ ११ ॥ अपि हीरकरत्नेन पूजयन् किं न लभ्यते। सुवर्णपुष्पैरभ्यर्च्य मासं भक्ति-परायणः। कुवेरसमसम्पत्तिं संप्राप्य मोदतेऽचिरात्। देहान्ते हरित्वां

प्राप्य निर्वाण पदमृच्छति ॥१२॥ रविवारे सरसिजैः कह्लारैः सोमवारके। मङ्गले रक्तपद्मैश्च बुधे तगरसम्भवैः ॥ १३ ॥ चम्पकैर्गुरुवारे च शुक्रे कुमुदसम्भवैः। शनिवारे शमीपुष्पैः पूजयेद्भक्तितो यतिः ॥१४॥ रविवारे घृताक्तन्तु पयोभक्तं निवेदयेत्। सोमवारे पिष्टकादि सितया सह योजयेत्। मङ्गले गुडसंमिश्रमन्नं बहुगुणान्वितम्। बुधवारे यावकैस्तु गुरौ सूपसमुद्भवैः ॥ १५। शुद्धान्नं शुक्रवारे तु शनौ सघृतपायसम्। वैशाखे मासि विधिवत्तर्पयेद्धिमवज्जलैः ॥ १६ ॥ ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन फलैः सम्पूजयेद्धरिम्। आषाढे मासि विधिवत्पवित्रैः पूजयेद्धरिम् ॥ १७ ॥ एकैकं स्वर्णसूत्राणि ग्रन्थियुक्तानि कारयेत्। अथवा पट्टसूत्राणि पद्मसूत्राणि वा पुनः। पूजान्ते देवराजाय महिषीभ्यो निवेदयेत् ॥ १८ ॥ मिथुने-भ्यस्तदा दत्वा महान्तमुत्सवं चरेत्। तोषयेद् भक्ष्यभोज्यैश्च ब्राह्मणान् संशितव्रतान्। एवं संवत्सरं मन्त्री कृत्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ न चेद्वर्षकृताः पूजा वास्तोर्भक्ष्याय कल्पते। श्रावणे मासि कृष्णं तु पूजयेत् केतकोद्भवैः ॥२०॥ चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुंकुमादिसुवासितैः। एलालवङ्ग-कक्कोलफलानि बहुधार्पयेत् ॥ २१ ॥ भाद्रे मासि यजेद्विष्णुं भक्ष्यैर्बहु-गुणान्वितैः। ईषे मासि यजेद्भक्त्या भक्ष्यैर्भोज्यैः सुविस्तरैः ॥ २२ ॥ कार्पासनिर्मितैर्वस्त्रैर्नानाभरणभूषितैः। तुलास्थे भास्करे कृष्णं पूजयेन्मा-समात्रकम् ॥ २३ ॥ रात्रौ प्रदोपैर्होमैश्च दुग्धपिष्टादिसंयुतैः। घृतदीप-विच्छिन्नं दद्यान्मासं महोज्ज्वलम् ॥ २४ ॥ एकादश्यामुपवसेद्द्वादश्या पारणादिने ॥ शुक्लायां विष्णुमभ्यर्च्य वस्त्रालङ्करणादिभिः। अस्यां तिथौ तु मतिमान् वार्षिकोत्सवमाचरेत् ॥ २५ ॥ भोज्यानि बहुभक्ष्याणि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्। एवं कृते देवतास्य तुष्ट्या चेष्टं प्रयच्छति ॥२६॥ सत्तं लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम्। मार्गशीर्षे यजेद्देवं नवान्नव्यं-ञ्जनैः शुभैः। नारिकेलफलक्षोदं मिश्रितं गुडजीरकैः। सुपक्वं देवराजाय भक्त्या तस्मै निवेदयेत् ॥ २७ ॥ पौषे मासि च मासं वै धूतैः पुष्पैः प्रपूजयेत्। ग्रहदोषं विजित्वाशु भूयान्नृपतिसन्निभः ॥ २८ ॥ माघे मासि यजेत्कृष्णमक्षतैः सगुडैः सितैः। दुग्धान्नं शर्करायुक्तं मिष्टान्नञ्च निवेदयेत् ॥ २९ ॥ अस्मिन् मासि शुभदिने वस्त्रेणाच्छादयेद्विभुम्। फाल्गुने देवकीपुत्रं पूजयेत्स्वर्णपङ्कजैः। सुगन्धिकुसुमैर्धूपैर्दीपैस्तत्र सुविस्तरैः ॥ ३० ॥ चैत्रे मासि वासुदेवं सर्वपुष्पैः समर्चयेत्। पौर्णमास्यां यजेद्भक्त्या दमनैश्च सगुच्छकैः। अस्मिन् दिने रतिं कामं पूजयेद्भक्तितत्परः। नचेत् सांवत्सरी पूजा विफला तस्य जायते ॥ ३१ ॥ भस्मीभूतं स्मरं दृष्ट्वा

रुदिता सा रतिः सती । तां दृष्ट्वा कृपयाविष्टो वरं दातुं शिवः स्वयम् ॥ ३२ ॥ प्रत्युवाच रतिं तेऽयं सुभगत्वमवाप्नुयात् । सुन्दरः सर्वलोकेषु क्रीडार्थं व्रजसुन्दरि ॥ ३३ ॥ ततोऽभूत्क्रन्दनजलात्पुष्पं दमनकं शुभम् । तेन पूजनमात्रेण संवत्सरफलं लभेत् ॥ ३४ ॥ होमयेल्लक्षमात्रं यः पिष्टकैर्घृतभर्जितैः । तावत्संख्यं मनुं जप्त्वा कृष्णं पश्यति मन्त्रवित् ॥ ३५ ॥ इति ते कथितं सम्यक्पूजनं वार्षिकोद्भवम् । कृत्वानेन विधानेन किं न सिध्यति भूतले ॥ ३६ ॥

अथ श्रीविद्यापूजनम् :

ज्ञानार्णवे : अथ वक्ष्ये महेशानि श्रीविद्यापूजनं महत् । ब्रह्महत्यादिदोषाणां प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ १ ॥ ब्रह्मपत्रैर्महेशानि पूजयेत्क्रममुत्तमम् । समस्तरश्मिसहितं नित्याम्नाय पुरस्कृतम् ॥ २ ॥ कुलाचारक्रमाद्देवि कर्पूरक्षोदमण्डितम् । मासमात्रेण देवेशि महापातककोटयः । जन्मान्तरकृता सर्वा नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३ ॥ लक्ष्मीस्तस्य गृहे वश्या सुस्थिरा सुरवन्दिते । जवापुष्पैर्महेशानि पूजयेत्पूर्ववच्छिवाम् ॥ ४ ॥ मासमात्रं क्रमेणैव तेनैव परमेश्वरीम् । ब्रह्महत्यादिपापानि पूर्वजन्मकृतानि च । नाशयेन्मात्र सन्देहो धनवान् जायते बुधः ॥ ५ ॥ केतक्यास्तरुणैः पुष्पैः पूर्ववत्पूजयेत्प्रिये । उपपातकसङ्घाश्च मासमात्रेण नाशयेत् । सौभाग्यमतुलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ६ ॥ शतपत्रैर्मनोरम्यैः पूजयेन्मासमात्रकम् । पूर्ववत्परमेशानि सर्वं पापं प्रणाशयेत् ॥ ७ ॥ चम्पकैः सुमनोरम्यैः पूर्ववत्पूजयेच्छिवाम् । मासमात्रेण हन्त्येव शतजन्मजम् । सौभाग्यवान्भवेन्मन्त्री त्रिपुरायाः प्रसादतः ॥ ८ ॥ श्वेतपद्मैर्महादेवि महद्भिः पूजयेत्पराम् । पूर्वजं नाशयेत्पापं विंशजन्मकृतं प्रिये । मासमात्रेण सकलं मोक्षस्तस्य करे स्थितः ॥९॥ बन्धूककुसुमैर्देवि मासमात्रं प्रपूजयेत् । त्रैलोक्यं वशगं तस्य पूर्वपापं दहेन्नरः ॥ १० ॥ बिल्वपत्रैश्च लाजैश्च सदैव परिपूजयेत् । पूर्ववत्परमेशानि मासमात्रं प्रसन्नधीः । समृद्धिमान्भवेत् सोऽपि सर्वपापहरः सदा ॥ ११ ॥ मल्लिकामालतीपुष्पैः कुन्दैश्च शतपत्रकैः । श्वेतोत्पलसमुत्थैश्च पूजयेन्मासमात्रकम् ॥ १२ ॥ कुलाचारक्रमेणैव पातकः शतजन्मजम् । ब्रह्महत्यादिजनितं नाशयेन्नात्र संशयः । मुक्तिस्तस्य करे देवि वाचा जीवसमो भवेत् ॥ १३ ॥ अगस्त्यबाणबन्धूकजवारक्तोत्पलैः प्रिये । पूर्वक्रमेण सम्पूज्य मासमेकं प्रसन्नधीः । पातकं नाशयेन्मन्त्री साक्षात्कामसमो भवेत् ॥ १४ ॥ चम्पकैः पाटलैर्देवि बकुलैर्नागकेशरैः । कह्लारैः सिन्धुवारैश्च पूजयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥ १५ ॥

सौभाग्यमतुलं तस्य मासमात्रेण जायते। पापं विनाशयेद्देवि यदि जन्मसहस्रजम् ॥ १६ ॥ रविवारेऽरुणाम्भोजैः कुमुदैः सोमवारके। भौमे रक्तोत्पलैः सौम्यवारे तगरसम्भवैः। गुरुवारे च कह्लारैः शुक्रवारे सिताम्बुजैः। उत्पलैः शनिवारे च पूजयेदब्दमादरात्। निवेदयेत्क्रमोक्तेषु रविवारादिसप्तषु। पायसं दुग्धकदली नवनीतं सिता घृतम्। एवमब्दं समाराध्य देवीं गन्धादिभिः क्रमात्। ग्रहपीडां विजित्याशु स सुखानि समश्नुते ॥ १७ ॥

ताराकाल्योर्मत्स्यसूक्ते: अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः। यद्यत्प्रार्थयते मन्त्री तत्तदाप्नोति नित्यशः। लभते मंजुलां वाणीं कृष्णाष्टम्यां सदा यजेत् ॥ १८ ॥ अत्र नित्यार्चनानन्तरं नैमित्तिकं कार्यम्। यत्र कालनियमो न दृश्यते तत्र मासार्द्धं मासं तद्द्विगुणं वा मण्डलं नैमित्तिकानुष्ठानं कर्त्तव्यमिति।

तथोक्तं रुद्रयामले: मासार्द्धमथवा मासं द्विगुणं त्रिगुणं तथा। यावत्फलाप्तिमान्योगी तावदेवं समाचरेत् ॥ १९ ॥

अन्यत्रापि: नैमित्तिके तथा काम्ये फलाप्तिर्मण्डलावधिः। नचेत्। तद्द्विगुणं कुर्यात्यथा स्यात्फलभाक्सुधीः। अष्टम्यां पूजनं देव्याः सर्वकामफलप्रदम्। रम्भाजातीबीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम्। मिश्रीकृत्य बलिं दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः। स्वर्णमालां महादेव्यै दद्याद्गन्धैर्विशेषतः। फलं क्षीरं तथा दद्यादधिकं शर्करान्वितम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पत्त्यै पूजयेच्छिवाम्। फलञ्चाक्षयसिद्ध्यर्थं दद्याद्देव्यै प्रयत्नतः ॥ २० ॥

तथा नीलतन्त्रे: अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च यथाविधि। आज्ञासिद्धिमवाप्नोति जवापुष्पञ्च बर्बराम्। चन्दनञ्चार्ककुसुमं दद्यात्श्वेतापराजिताम्। यस्तु सम्पूजयेद्दुर्गां महाष्टम्यां विशेषतः। जन्मत्रयार्जितं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत्। दुर्गां तारिणीमिति प्रकरणानुमूलत्वात् ॥२१॥

अथ प्रयोगविधिः:

सर्वप्रयोगे अयुतजपः।

तथा च शारदायाम्: अयुतं होमसंख्या स्यात् जपस्तावान् प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥

तत्रादौ भुवनेश्वरी प्रयोगः।

तद्यथा: मन्त्री त्रिमधुरोपेतैर्हुत्वाश्वत्थसमिद्वरैः। ब्राह्मणान् वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान्पद्महोमतः ॥ २३ ॥ पलाशपुष्पैस्तत्पत्नीर्मन्त्रिणः कुमुदैरपि। पञ्चविंशतिसञ्जप्तैर्जलैः स्नानः दिने दिने ॥ २४ ॥ आत्मा-

नमभिषिञ्चेद्यः सर्वसौभाग्यवान्भवेत्। पञ्चविंशतिसञ्जप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः। अवाप्य महतीं लक्ष्मीं कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥ २५ ॥

तथा : हुत्वा पलाशकुसुमैर्वाक्श्रियं लभते ध्रुवम्। ब्राह्मीघृतं[१] पिबेद्यस्तु मूलमन्त्राभिमन्त्रितम्। कवित्वं लभते मन्त्री वत्सरान्नात्र संशयः। सिद्धार्थान् लवणोपेतान्हुत्वा मन्त्री वशं नयेत्। नरं नारीं नरपतिं नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥

अथ त्वरिता :

योनिकुण्डं प्रकल्प्याथ कुर्याद्धोमं यथेच्छया। मल्लिकाकुसुमैर्हुत्वा वशयेदखिलं जगत् ॥ २८ ॥ कृत्याद्रोहादिशमनं पलाशकुसुमैर्हुतम्। इक्षुदण्डैः शुभैर्हुत्वा महतीं वृद्धिमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ दीर्घमायुरवाप्नोति दूर्वाहोमेन साधकः। धान्यैः प्रक्षालितैर्हुत्वा श्रियमिष्टामवाप्नुयात् ॥३०॥ अशोकैः पुत्रमाप्नोति मधुकैरिष्टमाप्नुयात्। फलैर्जम्बूद्भवैर्हुत्वा लभते धनमीप्सितम् ॥ ३१ ॥ पुष्पैर्बकुलसम्भूतैः कीर्तिः स्यादनपायिनी। दीर्घमायुर्भवेदाम्रैश्चम्पकैः काञ्चनं लभेत् ॥ ३२ ॥ कुर्वीत सर्षपैर्होमं शत्रुनाशकरं सुधीः। पत्रैर्बकुलजैर्हुत्वा शीघ्रञ्चोत्सादयेदरीन् ॥ ३३ ॥ शाल्मलीपत्रहोमेन सपत्नान्नाशयेद्ध्रुवम्। माषहोमेन मूकः स्यादुन्मत्तोऽक्षैर्भवेदरिः ॥ ३४ ॥

अथ दुर्गा :

वशयेत्तिलहोमेन नरान्नरपतीनपि। सिद्धार्थैर्जुहुयान्मन्त्री रोगान्मुच्येत तत्क्षणात् ॥३५॥ पद्मैर्हुत्वा जयेच्छत्रून्दूर्वाभिः शान्तिमाप्नुयात्। पलाशकुसुमैः पुष्टिं धान्यैर्धान्याश्रयं लभेत् ॥ ३६ ॥ काकपक्षैः कृतो होमो द्वेषं वितनुयान्नृणाम्। मरीचहोमान्मरणं रिपुराप्नोति सर्वदा ॥ ३७ ॥

अथ सरस्वती :

पीत्वा तन्मन्त्रितं तोयं सहस्रं प्रत्यहं जपेत्। महाकविर्भवेन्मन्त्री वत्सरेण न संशयः ॥ ३८ ॥ उरोमात्रोदके स्थित्वा ध्यायेन्मार्तण्डमण्डले। स्थितां देवीं प्रतिदिनं त्रिसहस्रं मनुं जपेत्। लभते मण्डलात्सिद्धिं वाचामप्रतिमामपि ॥ ३९ ॥ पलाशबिल्वकुसुमैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः। समिद्भिर्वा तदुत्थाभिर्यशः प्राप्नोति वाक्पतेः ॥ ४० ॥ पलाशकुसुमैर्हुत्वा परां वाक्सिद्धिमाप्नुयात्। कदम्बकुसुमैस्तद्वत्फलैः श्रीफलसम्भवैः। अचिरात्श्रियमाप्नोति वाचां कुन्दसमुद्भवैः। नन्द्यावर्तप्रसूनैर्वा हुत्वा वाग्वल्लभो भवेत् ॥ ४१ ॥

अथ लक्ष्मीः :

यथा : वक्षःप्रमाणे सलिले स्थित्वा मन्त्रमिमं जपेत् । त्रिलक्षं संजपेन्मन्त्री देवीं ध्यात्वार्कमण्डले । स भवेदल्पकालेन रमाया वसतिः स्थिरा ॥ ४२ ॥ आराध्योत्तरनक्षत्रे देवीं स्रक्चन्दनादिभिः । नन्द्यावर्तभवैः पुष्पैः सहस्रं जुहुयात्ततः । पौर्णमास्यां फलैर्बिल्वैर्जुहुयान्मधुराप्लुतैः । पञ्चम्यां विशदाम्भोजैः शुक्रवारे सुगन्धिभिः । अन्यैर्वा विशदैः पुष्पैः प्रतिमासं विशालधीः । स भवेदब्दमात्रेण सर्वदा सम्पदां निधिः ॥ ४३ ॥ शालिभिर्जुह्वतो नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् । अचिरादेव महती लक्ष्मीः संजायते ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ जवापुष्पाणि जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् । गृहीत्वा प्रजपेद्भस्म नागवल्लीरसान्वितम् । तिलकं धारयेत्तेन सर्ववश्यकरं भवेत् । नागवल्ली पर्णम् ॥ ४५ ॥

अथ गणेशः :

तर्पयेत्सलिलैः शुद्धैर्दिनशो गणनायकम् । चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतमतन्द्रितः । प्राप्नुयान्मण्डलादर्वागभीष्टमाधिकं नरः ॥ ४६ ॥ नारिकेलैः कृतो होमश्चतुर्थ्यां श्रीपदो भवेत् । शुक्लपक्षे प्रतिपदमारभ्य दिनशः सुधीः । चतुर्थ्यन्तं नारिकेलशक्तुलाजतिलैः क्रमात् । चतुःशतं प्रजुहुयाद्वश्याः स्युः सर्वजन्तवः ॥ ४७ ॥ सतिलैस्तण्डुलैर्होमश्चतुर्थ्यां श्रीपदो भवेत् । पद्महोमेन भूपालांस्तत्पत्नीरुत्पलैः शुभैः । मन्त्रिणः कुमुदैः पुष्पैर्विप्रान् पिप्पलसम्भवैः । समिद्भिरैर्नरपतीनुडुम्बरसमुद्भवैः । प्लक्षैर्वैश्यान् वटोद्भूतैः शूद्रान्मन्त्री वशं नयेत् ॥ ४८ ॥ मधुना स्वर्णलाभः स्याद्गोदुग्धेन लभेत गाः । आज्यहोमेन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः । दया सर्वसमृद्धिः स्यादन्नैरन्नपतिर्भवेत् ॥ ४९ ॥

अथ सूर्यः :

यथा : एवं सम्पूज्य विधिवद्भास्करं भक्तवत्सलम् । दद्यादर्घ्यं प्रतिदिनं वारे वा तस्य चोदिते । प्रभाते मण्डलं कृत्वा पूर्ववत्पीठमर्चयेत् । पात्रं ताम्रमयं प्रस्थतोयग्राहि मनोहरम् । निधाय तत्र मनुना पूरयेत्तच्छुभोदकैः । कुंकुमं रोचनाराजोरक्तचन्दनकैरवान् । करवीरजवाशालिकुशश्यामाकतण्डुलान् । निक्षिपेत्सलिले तस्मिन्नैक्यं सम्भाव्य भानुना । साङ्गमभ्यर्चयेत्तस्मिन् भास्करं प्रोक्तलक्षणम् । गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्यथाविधि विधानवित् । अपिधाय जपेन्मन्त्रं सम्यगष्टोत्तरः शतम् ॥ ५० ॥ पुनः सम्पूज्य गन्धाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः । आमस्तकं समुद्धृत्य व्योम्नि सावरणे रवौ । दृष्टिं निधाय ऐक्येन मूलमन्त्रं जपन् । दद्यादर्घ्यं दिनेशाय

प्रसन्नेनान्तरात्मना । दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं भूयो जपेदष्टोत्तरं शतम् । यावदर्घ्यामृतं भानुः समादत्ते निजैः करैः । तेन तृप्तो दिनमणिर्दद्यात्तस्मै मनोरथान् ॥ ५० क ॥ अर्घ्यदानमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्द्धनम् । धनधान्य-पशुक्षेत्रपुत्रमित्रकलत्रदम् । तेजोवीर्ययशःकान्तिविद्याविभवभाग्यदम् ॥ ५१ ॥

अथ श्रीरामः :

जातीप्रसूनैर्जुहुयादिन्दिरावाप्तये नरः । जातीप्रसूनैर्जुहुयाच्चन्दनाम्भः समुक्षितैः । राजवश्याय कमलैर्धनधान्यादिसम्पदे । नीलोत्पलानां होमेन वशयेदखिलं जगत् ॥ ५२ ॥ विल्वप्रसूनैर्जुहुयादिन्दिरावाप्तये नरः । दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्भवेन्मन्त्री निरामयः ॥ ३५ ॥ रक्तोत्पलहुतान्मन्त्री धनमाप्नोति वाञ्छितम् । मेधाकामेन होतव्यं पलाशकुसुमैर्नवैः ॥ ५४ ॥ तज्जप्तमम्भः प्रपिबेत्कविर्भवति वत्सरात् । तन्मन्त्रितान्नं भुञ्जीत महदा-रोग्यमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥

अथ श्रीकृष्णः :

अथ प्रयोगान्वक्ष्यामि मन्त्रयोरुभयोः समान् । यान्कृत्वा साधकवरो लोकत्रयप्रपूजितः ॥ ५६ ॥ वन्दे तं देवकीपुत्रं सद्योजाताम्बुदप्रभम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् । एवं ध्यात्वा मनुवरं लक्षं ब्राह्म-मुहूर्तके । जप्त्वा मेधां परां प्राप्य कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥ ५७ ॥ अथवा स्फटिकाभासं लेखपुस्तकधारिणीम् । तं विचिन्त्य जपेल्लक्षं मूलं ब्राह्म-मुहूर्तके । जप्त्वा मन्त्री त्रिकालज्ञो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥५८॥ चलद्गो-चारणं बालं ध्यायन्ब्राह्ममुहूर्तके । जप्त्वा मनुवरं विद्वान् सर्वशास्त्रार्थ-विद्भवेत् । सर्ववेदार्थकुशलो ज्ञानवान्भवति ध्रुवम् ॥ ५९ ॥ नन्दाङ्गने पर्यटन्तं धूलीनिचयधूसरम् । दीप्तमणिगणोद्दीप्तं यशोदालोचनोत्सुकम् । एवं ध्यात्वा मनुवरं जपेन्नियमसमास्थितः । लक्षैकजपनादस्य किं न सिध्यति भूतले ॥ ६० ॥ प्रातः प्रातः पिबेत्तोयमष्टोत्तरशतं जपन् । अत्यन्तमूको दुष्टात्मा जडः पाषाणवत्तथा । अनेन जलपानेन साक्षाद्वा-क्पतिसन्निभः । जायते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥ ६१ ॥ पद्भ्यां निक्षिप्य शकटं रुदन्तं प्राकृतं यथा । लक्षं जप्यादिति ध्यात्वा आपद्भ्यो मुच्यते ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ शत्रुतो न भयं तस्य राजतो दस्युतोऽपि वा । न तस्य विद्यते भीतिः कदाचिदपि सुव्रत ॥ ६३ ॥ नित्यं कर्मरतं कृष्णं वन्यैः पुष्पैः समर्चयेत् । वश्या भवन्ति सर्वे च ब्राह्मणा नात्र संशयः ॥ ६४ ॥ गोपालवेशं मनसा जातीपुष्पैः समर्चयेत् । वश्या भवन्ति

राजानो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६५ ॥ तमालोद्भवपुष्पैश्च वैश्या वश्या भवन्ति हि ॥ ६६ ॥ नीलोत्पलैश्च शूद्राश्च मासं कृष्णं समर्चयेत् । जुहुयाद्रक्तपुष्पैश्च मिश्रितैस्तिलतण्डुलैः । मन्त्रेणाष्टसहस्रन्तु जप्त्वा तद्भस्म धारयेत् । ललाटे विधृते तस्य सर्वे वश्या भवन्ति हि ॥ ६७ ॥ अनेन च शरीरेण राजानो वश्यतामियुः । स्त्रियो वश्या भवन्त्यत्र पुत्रमात्याश्च सर्वथा ॥ ६८ ॥ विवाहार्थी जपेन्मन्त्रं मासमष्टसहस्रकम् । रासमण्डलमध्यस्थं कृष्णं ध्यात्वा व्रजे स्थितम् । विवाहयेदुत्तमाङ्गीं कन्यां सर्वगुणोज्ज्वलाम् । पुत्रं मे रक्ष रक्षेति द्विजेन प्रार्थितो हरिः । हृतपुत्रं समाहृत्य ददौ यस्तं विचिन्तयेत् ॥ ६८ ॥ पुत्रकामो लभेत्पुत्रं मासेनैकेन सुन्दरम् । दीर्घायुरप्रतिहतबलवीर्यसमन्वितम् ॥ ७० ॥ कुन्दपुष्पैः समाराध्य कृष्णं ध्यायेच्च कन्यका । मासद्वयं तथा मन्त्रं जपेदष्टसहस्रकम् । मनोरथपतिं लब्ध्वा दीर्घकालञ्च क्रीडति ॥ ७१ ॥ अञ्जनं कुसुमं वस्त्रं ताम्बूलं चन्दनं तथा । अन्यान्यप्युपभोग्यानि स्पृष्ट्वा मन्त्रं शतं जपेत् । दीयते यस्य यस्येति सोऽचिराद्दासवद्वशी ॥ ७२ ॥ स्त्रियो वश्या अनेनैव भवन्ति मुनिसत्तम । पुरुषं वशयेन्नारी अनेनैव विधानतः ॥ ७३ ॥ अन्नाद्यकामः श्रीपुष्पैः सिततण्डुलमिश्रितैः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु जुहुयादन्नवान् भवेत् ॥ ७४ ॥ विश्वरूपधरं ध्यात्वा शतमष्टोत्तरं जपेत् । समाहितमना मन्त्री यशोऽर्थी कीर्तिमाप्नुयात् । भूतप्रेतपिशाचादि-स्कन्दादिग्रहपीडितः । पूतनास्तनपातारं ध्यात्वा मन्त्रं शतं जपेत् ॥ ७६ ॥ प्रणश्यन्ति ग्रहा दुष्टाः पलायन्ते इतस्ततः । सर्पमण्डलदष्टे च मूषिकाद्यैश्च दंशिते । कृष्णं कालियदमनं चिन्तयित्वा जपेन्नरः । तर्जयन्तं विषं घोरं हूंकारेण विनाशयेत् ॥ ७७ ॥ अत्रापान्यमनुं वक्ष्ये बीजाद्यं शृणु तत्त्वतः । कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् । नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ॥ ७८ ॥ ज्वरार्तोऽभ्यर्चयेन्मन्त्री जपेदष्टशतं तथा । ज्वरेण ॥ संस्तुतं कृष्णं बलप्रद्युम्नसंयुतम् । दहन्तं वाणनगरीं गरुडोपरिसंस्थितम् । नजज्वरेण संपिष्टं ध्यात्वा नाशयते क्षणात् । शीतलाकामलादीनि तथा चतुर्थिक ज्वरान् । प्लीहगुल्मषकृद्वायुनपस्मारभयं तथा । नाशयेन्नात्र सन्देहो दृष्टिमात्रेण मान्त्रिकः ॥ ७९ ॥ गोपालजुष्टपादश्च वेणुमादाय संस्थितम् । ध्यात्वा कृष्णं जपेन्मन्त्रं पशुमान स तु मासतः । राज्ञः पुरोधा भवितुमिति यस्य मतिर्भवेत् । मधुसिक्तैः सितैः पुष्पैर्हुत्वा तन्मण्डलाल्लभेत् । महैश्वर्यमथ प्राप्य विश्वख्यातो भवेद्ध्रुवम् ॥ ८० ॥ गोवर्धनधरं कृष्णं ध्यात्वा मन्त्रं जपेन्नरः । वातवर्षादिभिर्घोरैर्भये सम्यगु-

पस्थिते । भयमाशु विनश्येत्तु नात्र कार्या विचारणा ॥८१॥ वृन्दावनगतं कृष्णं वृष्टिकामो विचिन्तयन् । जपेदष्टसहस्रन्तु वृष्टिमाप्नोत्यसंशयम् । एवञ्च मनसा ध्यात्वा वृष्टिं वर्षासु चाहरेत् ॥ ८२ ॥ एवं जलाशये ध्यात्वा जपेदष्टसहस्रकम् । वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नात्र संशयः ॥८३॥ गायन्तं वेणुना कृष्णं गानकामो विचिन्तयन् । आज्यमष्टशतं हुत्वा किन्नरैः सह गीयते ॥८४॥ जयकामो जपेद्यस्तु हरन्तं कल्पकद्रुमम् । संस्तुतं देवताभिश्च गरुडारूढमच्युतम् । ध्यात्वा रक्तकरवीरसमिद्भिर्जुहुयाद्वशी । अष्टोत्तरसहस्रन्तु साक्षात्पराजितो रिपुः । राजादिभयमापन्ने संशये दुर्गसंसदि । हुत्वा दशसहस्रन्तु तत्क्षणान्नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ नीलोत्पलादिभिर्हुत्वा अष्टोत्तरसहस्रकम् । शङ्खादिनिधिसंयुक्तं द्वारकामध्यगं हरिम् । ध्यात्वा तण्डुलदूर्वाभिर्हुत्वा शान्तिकमाहरेत् ॥ ८६ ॥ कदम्बमूले गायन्तं गोपालं वनमालिनम् । कदम्बकुसुमैर्जुष्टं चिन्तयित्वा जनार्दनम् । अपामार्गदलैर्हुत्वा अष्टोत्तरसहस्रकम् । सर्वान् लोकान् वशीकृत्य आशु विज्ञो भविष्यति ॥ ८७ ॥ राजद्वारे सभायाञ्च व्यवहारे च मन्त्रवित् । शतमष्टोत्तरं जप्त्वा प्रथमं वाक्यमुच्चरेत् । अनेनैव विधानेन सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ८८ ॥ मोक्षकामो जपेद्यस्तु पुण्डरीकाक्षमव्ययम् । सनकादिस्तुतं कृष्णं शुक्लाम्बरधरं प्रभुम् । शङ्खचक्रधरं ध्यात्वा मन्त्रं लक्षं जपेन्नरः । तारसम्पुटितं कृत्वा विधिवत् स्थानमाश्रितः । चक्राब्जमण्डले कृष्णं पूजयेद्भक्तिमावहन् । संसारसागरात्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८९ ॥

अथ दधिवामनः :

पायसान्नेन जुहुयात्सहस्रं श्रियमाप्नुयात् । धान्यहोमेन धान्याप्तिः शतपुष्पसमुद्भवैः । बीजैः सहस्रसंख्यातैर्होमो भयविनाशनः ॥ ९० ॥ दध्योदनेन शुद्धेन हुत्वा मुच्येत दुर्गतेः । स्मृत्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । मुक्तो वन्धाद्भवेत्सद्यो नात्र कार्या विचारणा ॥ ९१ ॥

अथ हयग्रीवः :

बिल्वैः फलैः कृतो होमः श्रीपदः परिगीयते । कुन्दपुष्पाणि जुहुयादिच्छन वाक्श्रियमव्ययम् । मनुनानेन सञ्जप्तं घृतं ब्राह्मीरसैः शृतम् । कवितामाहरेत् पुंसामनर्गलविजृम्भिणीम् । वचामनेन सञ्जप्तां भक्षयेत्प्रातरन्वहम् । सर्ववेदागमादीनां व्याख्याता जायतेऽचिरात् ॥९२॥

अथ नृसिंहः

अथ पुष्पैर्जुहुयान्मन्त्री बिल्वकाष्ठेधितेऽनले । सहस्रं श्रियमाप्नोति पत्रैर्वा बिल्वसम्भवैः । श्रीपुष्पं लवङ्गपुष्पम् ॥ ९३ ॥ प्रसूनैर्वा फलैस्तद्वत्

दूर्वाहोमादरोगिताम् । दुःस्वप्ने निशि संजाते स्नात्वा मन्त्रं शतं जपेत् । अनिद्रो मन्त्रवित्पश्चात्सुस्वप्नस्तस्य जायते ॥ ९४ ॥ व्याघ्रचौरमृगादिभ्यो महारण्ये भयाकुले । रक्षेन्मनुरयं जप्तो भयेष्वन्येषु मन्त्रिणम् । अनेन मन्त्रितं भस्म विषग्रहमहोरगान् । नाशयेदचिरादेव मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ॥ ९५ ॥ घोराभिचारे सोन्मादे महोत्पाते महाभये । जपेन्मन्त्रं स्मरेदेनं दुःखान्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ९६ ॥ सिंहरूपं महाभीमं नखदंष्ट्रातिभीषणम् । स्मृत्वात्मानं विभुं पश्चाद्ध्यायेन्मृगशिशुं रिपुम् । गृहीत्वा गलदेशे तं पुनर्दिक्षु क्षिपेद्द्रुतम् । पुत्रमित्रकलत्रादेरुच्चाटो जायते रिपोः ॥ ९७ ॥ पूर्वमृत्युपदे साध्यनाम कृत्वा स्वयं हरिः । निशितैर्नखदंष्ट्राद्यैः खाद्यमानं रिपुं स्मरन् । नित्यमष्टोत्तरशतं जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः । जायते मण्डलादर्वाक्शत्रुसेनानिवारणम् ॥ ९८ ॥ विभीतकाष्ठैर्ज्वलिते पावके रिपुमर्दनम् । विचिन्त्य देवं नृहरिं सम्पूज्य कुसुमादिभिः । समूललुनैर्जुहुयाच्छरैर्दशशतं पृथक् । रिपुं खादन्निव जपेन्निर्भिन्दन्निव निक्षिपेत् । कृत्वा सप्तदिनं मन्त्री सेनामिष्टां महीपतेः । प्रस्थापयेच्छुभे लग्ने परराष्ट्रजयेच्छया । तस्याः पुरस्तान्नृहरिं निघ्नन्तं रिपुमण्डलम् । स्मृत्वा प्रयोगं कुर्वीत यावदायाति सा पुनः । विजित्य निखिलान् शत्रून् सह वीरश्रिया सुखम् । आगत विजयी राजा ग्रामक्षेत्रधनादिभिः । प्रीणयेन्मन्त्रिणं सम्यग्विभवैः प्रीतमानसः । मन्त्री यदि न सन्तुष्येदनर्थः स्यान्महीपतेः ॥ ९९ ॥

अथ वराहः :

रवौ सिंहगतेऽष्टम्यां शुक्लपक्षे सितां शिलाम् । पञ्चगव्येषु निक्षिप्य स्पृष्ट्वा सामयुतं जपेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा तां शिलां निखनेद्भुवि । शत्रुचौरमहाभूतैः कृत्वांबाधां विनाशयेत् ॥१००॥ भानूदये भौमवारे साध्यक्षेत्रात्समाहरेत् । मृत्तिकां संजपन्मन्त्रं तं पुनर्विभजेत्त्रिधा । चुल्ल्यामेकां समालिख्य पाकपात्रे तथापराम् । गोदुग्धे परमालोड्य शोधितांस्तण्डुलान् क्षिपेत् । शोधितेऽग्नौ पचेत्सम्यक् चरु मन्त्री जपन्मनुम् । अवतार्य चरुं पश्चादग्नौ देवं यथाविधि । धूपदीपादिकैरिष्ट्वा पुनराज्यप्लुतं चरुम् । जुहुयादेधिते वह्नौ यावदष्टोत्तरं शतम् । एवं सप्तारवारेषु जुहुयात् क्षेत्रसिद्धये ॥ १ ॥ प्रातःकाले भृगोर्वारे मृदं साध्यमहीतलात् । आदाय हरिरापाद्य पूर्ववज्जुहुयात्सुधीः । विरोधो नश्यति क्षेत्रे सह चौराद्युपप्लवैः ॥ २ ॥ राजवृक्षसमुत्थाभिः समिद्भिर्मनुनामुना । त्रिसहस्रंप्रजुहुयात्तस्य स्युः सर्वसम्पदः । शालिभिर्जुहुयान्मन्त्री नित्यमष्टोत्तरं

शतम् । समृद्धिर्धान्यसंघातैः शोभते तस्य मन्दिरम् । तावदाज्येन जुहुयान्मण्डलात्स्वर्णमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

अथ मृत्युञ्जयः :

दुग्धसिक्तैः सुधाखण्डैर्मन्त्री मासं सहस्रकम् । आराधितेऽग्नौ जुहुयाद्विधिवद्विजितेन्द्रियः । सुधाखण्डं गुडूचिः । सन्तुष्ट शरङ्कस्तेन सुधाप्लावितविग्रहः । आयुरारोगसम्पत्तिर्यशः पुत्रान् विवर्द्धयेत् ॥ ४ ॥ सुधा वटतिला दूर्वा पयः सर्पिः पयो हविः । इत्युक्तैः सप्तभिर्द्रव्यैर्जुहुयात्सप्तवासरम् । क्रमाद्दशशतं नित्यमष्टोत्तरमतन्द्रितः । सप्ताधिकान् द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितम् । विकारानुगुणं मन्त्री वर्द्धयेद्धोमवासरान् । गुरवे दक्षिणां दद्यादरुणा गाः पयस्विनीः । गुरुं सम्पूज्येत् पश्चाद्धनाद्यैर्देवताधिया । अनेन विधिना साध्यः कृत्याद्रोहादिभिस्ततः । विमुक्तः सुचिरं जीवेच्छरदां शतमञ्जसा ॥ ५ ॥ अभिचारे ज्वरे तीव्रे घोरोन्मादे शिरोगदे । असाध्यरोगे क्ष्वेडार्तौ मोहे दाहे महाभये । होमोऽयं शान्तिदः प्रोक्तः सर्वसम्पत्प्रदायकः । द्रव्यैरेतैः प्रजुहुयात् त्रिजन्मसु यथाविधि । भोजयेन्मधुरैर्भोज्यैर्ब्राह्मणान् वेदपारगान् । दीर्घमायुरवाप्नोति वाञ्छितां विन्दते श्रियम् ॥६॥ एकादशाहुतीर्नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयाद्बुधः । अपमृत्युजिदेव स्यादायुरारोग्यवर्द्धनः ॥ ७ ॥ त्रिजन्मसु सुधावल्लीकाश्मीरबकुलोद्भवैः । समिद्वरैः कृतो होमः सर्वमृत्युगदापहः ॥ ८ ॥ सिद्धार्थैर्विहितो होमो महाज्वरविनाशनः । अपामार्गसमिद्धोमः सर्वाभयनिसूदनः ॥ ९ ॥

अथ दक्षिणामूर्तिः :

भिक्षाहारो जपेन्मासं मनुमेनं जितेन्द्रियः । नित्यं सहस्रमष्टोर्ध्वं परां विन्दति वाक्श्रियम् । त्रिवारं जप्तमेतेन मनुना सलिलं पिबेत् । नित्यशो दक्षिणामूर्तिं ध्यायेत्साधकसत्तमः । शास्त्रव्याख्यानसामर्थ्यं लभते वत्सरान्तरे ॥ १० ॥ ब्राह्मी सैन्धवसिद्धार्थवचाकुष्ठकणोत्पलैः । सुगन्धिसंयुतैः कल्कैः शृतं ब्राह्मीरसैर्घृतम् । मनुनानेन संजप्तमयुतं साधु साधितम् । निपीतं कविता-कान्ति-बलायुः-श्रीधृतिप्रदम् ॥ ११ ॥

अथ भैरवी :

जुहुयादरुणाम्भोजैरदोषैर्मधुराप्लुतैः । लक्षसंख्यं तदूर्ध्वं वा प्रत्यहं भोजयेद्द्विजान् । वनिता युवती रम्याः प्रीणयेद्देवताधिया । होमान्ते धनधान्याद्यैस्तोषयेद्गुरुमात्मनः । एवं कृते जगद्वश्यो रमाया भवनं

भवेत् ॥ १२ ॥ रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैररुणैर्वा हयारिजैः । पुष्पैः पयोऽन्नैः सघृतैर्होमाद्विश्वं वशं नयेत् ॥ १३ ॥ वाक्सिद्धिं लभते मन्त्री पलाश-कुसुमैर्हुतात् । कर्पूरागुरुसंयुक्तं गुग्गुलुं जुहुयात्सुधीः । ज्ञानं दिव्यमाप्नोति तेनैव स भवेत्कविः । क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमः सर्वापमृत्युजित् । दूर्वा-भिरायुषे होमः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम् । गिरिकर्णीभवैः पुष्पैर्ब्राह्मणान् वशयेद ध्रुवम् ॥ १४ ॥ कह्लारैः पार्थिवान् पुष्पैस्तद्वधूः कर्णिकारजैः । मालतीकुसुमैर्हुत्वा तत्पुत्रांश्च वशं नयेत् ॥ १५ ॥ कोरण्टकुसुमैर्वैश्यान् वृषलान् पाटलोद्भवैः । अनुलोमविलोमान्तःस्थित-साध्याह्वयान्वितम् । मन्त्रमुच्चार्य जुहुयान्मन्त्री मधुरलोडितैः । सर्षपैः कटुसंमिश्रैर्वशयेत् पार्थिवान् क्षणात् ॥ १६ ॥ अनेनैव विधानेन तत्पत्नीं तत्सुतानपि । जातीविल्वफलैः पुष्पैर्मधुरत्रयसंयुतैः । नरनारीनरपतीन् होमतो वशयेद्ध्रुवम् ॥ १७ ॥ मालतीवकुलोद्भूतैः पुष्पैश्चन्दनलोडितैः । जुहुयात् कवितां मन्त्री लभते वत्सरान्तरे । मधुरत्रयसंयुक्तैः फलैर्विल्वसमुद्भवैः । जुहुयाद्वशयेल्लोकान् श्रियमाप्नोति वाञ्छिताम् । पाटलैः कुसुमैः कुन्दै-श्चोत्पलैर्नागचम्पकैः । नन्द्यावर्तैर्विकसितैः कृतमालैर्जुहोति यः । जायते वत्सरादर्वाक्श्रिया विजितपार्थिवः ॥ १९ ॥ साज्यमन्नं प्रजुहुयाद्भवेदन्न-समृद्धिमान् । कस्तूरीकुंकुमोपेतं कर्पूरं जुहुयाद्वशी । कन्दर्पादधिकं सद्यः-सौन्दर्यमधिगच्छति ॥२०॥ लाजान् प्रजुहुयान्मन्त्री दधिक्षीरघृतप्लुतान् । विजित्य रोगानखिलान् स जीवेच्छरदां शतम् ॥ २१ ॥ पादद्वयं मलयजं पादं कुंकुमकेशरम् । पादं गोरोचनायाश्च त्रीणि पिष्ट्वाहिमाम्भसा । विदध्यात्तिलकं भाले यान् पश्येद्वैर्विलोक्यते । यान् स्पृशेत्स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात् ॥ २२ ॥ कर्पूर कपिचोराणि सम-भागानि कल्पयेत् । चतुर्भागजटामांसी तावती रोचना मता । कुंकुमं सप्तभागं स्याद्द्विभागं चन्दनं मतम् । अगुरुर्नवभागः स्यादिति भगक्रमेण च । हिमाद्रिः कन्यकापिष्टमेतत्सर्वं सुसाधितम् । आदाय तिलकं भाले कुर्याद्भूमिपतीन्नरान् । वनिता मदगर्वाढ्यां मदोन्मत्तान्मतङ्गजान् । सिंहव्याघ्रान् महासत्वान् भूतवेतालराक्षसान् । दर्शनादेव वशयेन्नात्र कार्या विचारणा ॥ २३ ॥

अथ सुन्दरी :

ज्ञानार्णवे : मल्लिका-मालती-जाती-कुसुमैर्मधुमिश्रितैः । घृतपूर्णैर्हुने-र्देवि वागीशत्वं प्रजायते । मूकस्यापि हि मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा ॥ २४ ॥ जवापुष्पैराज्यसिक्तैः करवीरैस्तथाविधैः । हवनान्मोहयेन्मन्त्री

लोकत्रयनिवासिनः ॥२५॥ कर्पूरं कुंकुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि । हवनान्मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत् । सौभाग्येन विलासेन समर्थेनापि सुव्रते ॥ २६ ॥ चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्रोल्लसिताम्बराम् । प्राप्नोति मन्त्री महतीं स्तम्भयेज्जगतीमिमाम् ॥ २७ ॥ श्रीखण्डं गुग्गुलुं चन्द्रमगुरं होमयेत्ततः । नागेन्द्रासुरदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ॥ २८ ॥ सर्वलोका वशास्तस्य भवन्त्येव न संशयः । लक्षहोमाल्लभेद्राज्यं दारिद्र्यभयपीडितः । दुर्गोपशमनं देवि पलत्रिमधुहोमतः । रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः । मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः । परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्ववशं नयेत् ॥ २९ ॥ गोक्षीरं मधुदध्याज्यं पृथग्घुत्वा वरानने । आयुर्बलमथारोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ॥ ३० ॥ क्रमेण शैलजे क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम् । दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ सितया केवलं वैरिस्तम्भनकारकः । होमो दधिमधुक्षीरलाजैश्च वीरवन्दिते । कालहन्ता रोगहन्ता मृत्युहन्ता न संशय ॥ ३२ ॥ कमलैररुणैर्होमः सम्यक्सम्पत्तिदायकः । रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं राजानो वशगाः क्षणात् ॥ ३३ ॥ नीलोत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा । श्वेतोत्पलैः श्रियं वाचं लभते हवनात्प्रिये ॥ ३४ ॥

तथा : अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन सुपूजिताम् । समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं सदा शुचिः । योषितो भ्रामयन्त्येव मनस्तस्य सुनिश्चितम् । तदा द्वितीयलक्षन्तु प्रजपेत्साधकोत्तमः । पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम् । तासां कटाक्षमात्रेण सम्मोहयति साधकम् । तदा लक्षत्रयं कुर्यात्साधकः स्थिरमानसः । तृतीयलक्षे संजप्ते भ्रामयन्ति सुराङ्गनाः ॥ ३६ ॥ अभिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमदकारिणा । साधकं भ्रामयन्त्येव तत्रासौ स्थिरमानसः ॥ ३७ ॥ तदा लक्षत्रयं साधु सर्वपापनिकृन्तनम् । एवं लक्षत्रये जप्ते साधकः सुस्थमानसः । सम्मोहयति स्वर्लोकभूर्लोकतलवासिनः । पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरमपि प्रिये ॥ ३८ ॥ गोरचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत् । अतीवसुन्दरीं रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां वराम् । ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम् । चिन्तयेत्तु ततो देवीं योजनानां सहस्रतः । अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्रापि दुर्लभा । राजकन्याथवा भार्या भयलज्जाविवर्जिता । आयाति साधकं सम्यक्मन्त्रमूढा सती प्रिये ॥ ३९ ॥ चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेत् सदा । उद्यद्भानुसहस्राभमात्मानमरुणं तथा । साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत्परमेश्वरि । अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपवान् । सर्वसौभाग्यसुभगः

सर्वलोकवशङ्करः । सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहितविग्रहम् । चक्रं सम्पूजयेद्यस्तु यस्य नामविदर्भितम् । स भवेद्दासवद्देवि धनाढ्यो वापि भूपतिः । चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषितः । अट्टष्ठाया महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः । हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम् । नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम् । विद्याधरीं दिव्यरूपां ऋषिकन्यां रिपुस्त्रियम् । मदनोद्भूतसन्तापस्थलब्धघनमण्डलाम् । कामबाणविभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषम् ॥४०॥ महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते । क्षोभयेत्स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः ॥४१॥ रोचनाभागमेकन्तु भागमेकन्तु कुंकुमम् । अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत्समम् । एकत्र तिलकं कुर्यात्त्रैलोक्यवशकारिणम् । अष्टोत्तरशतं विद्यां मन्त्रयित्वा वशं नयेत् । राजानं नगरं ग्रामं येन यद्वत्प्रदृश्यते । मन्त्रिणा परमेशानि तत्सर्वं तस्य वश्यगम् ॥ ४२ ॥ ताम्बूलं धूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि । दुग्धं चूर्णमात्रं वस्त्रं कर्पूरमेव च । कस्तूरीधुसृणश्चैव लवङ्गं जातिपत्रकम् । जलम्बा वस्तु सकलं यद्यत्तु परमेश्वरि । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यस्मै यस्मै प्रयच्छति स वश्यो जायते देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४३ ॥ स्त्रियस्तु सकला वश्या दासीभूता भवन्ति ताः । हठाकर्षणमेतत्तु कथितं नान्यथा भवेत् ॥ ४४ ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम् । शिवां सम्पूजयेद्देवि सुगन्धैः कुसुमैः प्रिये । महापातकयुक्तात्म, तत्क्षणात् पापहा भवेत् ॥४५॥ शमीदूर्वांकुराश्वत्थपल्लवैरथवाकंजैः । मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः ॥ ४६ ॥ मुद्रासन्नद्धयोगः सन्पूर्वोक्तध्यानयोगतः । लक्षमात्रं जपेद्यस्तु महापापैः प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मकृतान्यपि । महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४८ ॥ ततो लक्षद्वयं जप्त्वा कुलेश्वरि । महापातककोटिस्तु नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४९ ॥ चतुर्लक्षजपाद्देवि महावागीश्वरो भवेत् । कुबेर इव देवेशि पञ्चलक्षान्न संशयः ॥ ५० ॥ षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत् । सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरीमेलको भवेत् ॥ ५१ ॥ अष्टलक्षजपान्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः । अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये । वशगास्तस्य राजानो योषितश्च विशेषतः ॥ ५२ ॥ नवलक्षप्रमाणानि जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम् । रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता स तु साक्षात् न संशयः । सर्वैर्वन्द्यः सदा सुस्थः सर्वसौभाग्यवान्भवेत् ॥ ५३ ॥

अथ छिन्नमस्ता ।

श्रीफलानां पलाशानां तथैवोडुम्बरस्य च । सर्वसिद्धिप्रदो होमः

कर्तव्योऽथ प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥ शतमष्टोत्तरं हुत्वा जपं कुर्यात्ततः परम् । मालतीकुसुमैर्होमः कर्तव्यो मधुसंयुतैः । घृतेन सहितो वापि वागीशत्वप्रदायकः ॥ ५५ ॥ आज्ययुक्तेन भक्तेन वलिर्देयः सदामिषैः । षण्मासं दधिसंयुक्तैर्लक्ष्मीस्तस्य स्थिरा भवेत् ॥ ५६ ॥ छागमांसं सरक्तञ्च घृतेन प्लावितं तथा । यो जुहोत्ययुतं देवीं तस्य वशो भवेत् ॥ ५७ ॥ श्वेतेन करवीरेण होमं सम्यक्करोति यः । लक्षमात्रं विधानेन स जीवेच्छरदां शतम् ॥ ५८ ॥ जुहुयात्तिलपुष्पेण मधुना तेन साधकः । सक्षलसंख्यानि यो देवीं सिद्धिस्तस्य न संशयः ॥५९॥ कर्णिकारसहस्राणि यो जुहोति घृतैः सहः । स प्राप्नोति परां सिद्धिमीप्सितां सुरसुन्दरि । पायसेन चरेद्धोमं घृतेन सह सुन्दरि । त्रिसन्ध्यं मासमात्रन्तु वागीशत्वमवाप्नुयात् ॥ ६० ॥

अथ श्यामा :

कालीतन्त्रे : अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र पारगः । साधकः साधयेत्सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ॥ ६१ ॥ कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः । अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः । केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत् ॥ ६२ ॥ संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकास्तथा । वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य च नान्यथा ॥ ६३ ॥ अथवा मुक्तकेशस्तु हविर्भुक्त्वा सुसंयतः । प्रजपेदयुतं प्राज्ञ एतदेव फलं लभेत् ॥ ६४ ॥ नग्नां परलतां पश्यन् अयुतं यस्तु साधकः । प्रजपेत् स भवेत्शीघ्रं विद्याया वल्लभः स्वयम् ॥ ६५ ॥ तस्य दर्शनमात्रेणं वादिनः कुण्ठतां गताः । गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ ६६ ॥ तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः । तस्य वाक्य परिचयाज्जडा भवन्ति वाग्मिनः ॥ ६७ ॥

कुलचुडामणौ : रजोयुक्तां समासाद्य तद्गात्रे स्वेष्टदेवताम् । पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं प्रजपेन्मनुम् । लक्षपीठफलं देवि लभते नात्र संशयः ॥ ६८ ॥ वेतालपादुकासिद्धिं खड्गसिद्धिश्च भैरव । अञ्जनं तिलकं गुह्यं साधयेत्साधकोत्तमः । प्रजपेत्प्रतिदिनमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः ॥ ६९ ॥ यत्र जापे च होमे च संख्या नोक्ता मनतोषिभिः । तत्रैव गणना प्रोक्ता गजान्तकसहस्रकमिति ॥ ७० ॥ विद्याकामेन होतव्यं पद्मैर्मधुसमन्वितैः । धनकामेन होतव्यं तिलाज्यमधुसंयुतम् ॥ ७१ ॥ वन्धूकपुष्पहोमेन दासञ्च कुरुते नृपम् । सर्पिर्लवणहोमेन सदाकर्षति कामिनी ॥ ७२ ॥ वकुलैर्होममात्रेण सौभाग्यं लभते नरः । मल्लिकाजातिपुन्नागकदम्बैः पुष्टिमाप्नुयात्

॥ ७३ ॥ क्षीराज्यतगरैर्होमान्महतीं कवितां लभेत् ॥ ७४ ॥ चन्दनागुरु-काश्मीरकर्पूरहोमतः पुनः । मन्त्री नीलसरस्वत्याः सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् । नीलसरस्वतीपदमुपलक्षणम् ॥ ७५ ॥ कर्पूरहोमतो मन्त्री सर्वाभीष्टम-वाप्नुयात् । सम्पूज्य मूलमन्त्रेण बिल्वपत्रैर्घृतान्वितैः । सहस्रं प्रत्यहं हुत्वा प्राप्नोति परमां गतिम । प्रतिदिनमिति मण्डलपर्यन्तम् ॥ ७६ ॥ घृताक्तमालतीपुष्पहोमाद्द्रुतकविर्भवेत् । अत्र यत्र यत्र होमे संख्या नोक्ता तत्र तत्रायुतसंख्यया होतव्यम् ।

तदुक्तं तत्रैव : सर्वस्यैव तु होमस्य नियमोऽयुतसंख्यकः ॥ ७७ ॥

अथ तर्पणम :

मत्स्यसूक्ते : मधुना तर्पणं कुर्यात्सर्वकामप्रपूरकम् । मन्त्रसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम् ॥ ७८ ॥

नीलतन्त्रे : कर्पूरमिश्रितैस्तोयैर्मासमात्रं हि तर्पयेत् । वशीकृत्य नृपान् सर्वान् भोगी स्याद् यावदायुषम् ॥ ७९ ॥ घृतैः पूर्णायुषः सिद्धयै दुग्धैरारोग्यसिद्धये । अगुरुमिश्रितैस्तोयैः सर्वकालः सुखी भवेत् ॥ ८० ॥ नारिकेलोदकमिश्रैस्तोयैः सर्वार्थसिद्धये । मरीचमिश्रितैस्तोयैस्तथा शत्रून् विनाशयेत् ॥ ८१ ॥ केवलैरुष्णतोयैश्च शत्रुमुच्चाटयेत्क्षणात् । ज्वराविष्टो भवेत्तेन दुग्धसेकात्समं नयेत् ॥ ८२ ॥

सिद्धसारस्वते : शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलकं नरः । कृत्वा पश्यति यं मन्त्री तं कुर्याद्दासवत्सुधीः ॥ ८३ ॥

फेत्कारीये : उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत् । राजानं जपमात्रेण बलिना सकलं जगत् । उपचारविशेषेणेति अधिकारिभेदाद् बोद्धव्यम् । जपमात्रेणेति पूजाबहिर्भावेनेत्यर्थः ॥ ८४ ॥

बलिद्रव्यन्तु मत्स्यसूक्ते : रम्भाजातीबीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम् । मिश्रीकृत्य बलिन्दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः ॥ ८५ ॥

बलिमन्त्रस्तु : प्रणवं पूर्वमुच्चार्य उग्रतारे ततः परम् । विकटदंष्ट्रे मोहयपदद्वयं समुच्चरेत् । मारय खादय शत्रुन् पचद्वयं वदेत्ततः । ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनी चक्रैस्तान हारय हुं फट् स्वाहा परविद्यामाकर्षय-त्रुटद्वयं कपाले गृह्ण गृह्ण बलिं स्वाहेति । अयन्ताराविषये, कालिकादौ तु तत्पटलोक्त-बलिसम्भारो बोद्धव्यः ॥ ८६ ॥

अथ निग्रहाद्युपायः :

वीरतन्त्रे : श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासरे निशि । कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य बध्नीयाद्रक्ततन्तुना । शताभिमन्त्रितं कृत्वा निक्षिपेद्वैरिवेश्मनि ।

सप्ताहाभ्यन्तरे तस्य चोच्चाटनमिदं महत् ॥ ८७ ॥

तदुक्तं फेत्कारीये : नरास्थिनि लिखेन्मन्त्रं क्षारयुक्तहरिद्रया । सहस्रं परिसंजप्य निशायां शनिवासरे । निक्षिप्यते यस्य गेहे मृत्युस्तस्य द्विमासतः ॥ ८८ ॥ क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्याद्धयवहानिस्तुरङ्गमे । धनहानिर्धनागारे ग्राममध्ये तु तत्क्षयः । क्षारस्तु श्येनविट्युक्तं विटलवणम् ॥ ८६ ॥ हृल्लेखाधोगतरेफमध्ये अमुकामुकयोर्महाद्वेषं कुरु इति ।

तदुक्तम् : द्वेषे तु विलिखेन्मन्त्रं प्रेतकर्पटके सुधीः । द्वेष्यद्वेषकयोर्नाम्नी तस्य द्वेषो महान् भवेत् । विलिखेन्मन्त्रमिति मन्त्रं लिखित्वा हृल्लेखारेफमध्ये अमुकं मारय मारयेत्यादि साध्यसहितमित्यर्थः ॥ ६० ॥ अथवा साध्यं लिखित्वा तदन्ते लिखेत् । सहस्रं परिजप्येति अमुकं मारय मारयेति अन्ते मन्त्रजपः । विद्वेषे तु अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु इत्यस्यान्ते सहस्रं जपेत् ॥ ६१ ॥

अथ वेतालादि-सिद्धिः :

तदुक्तं कुलचुडामणौ : भैरव उवाच : वेतालादिमहासिद्धिः कथं भवति चण्डिके । तन्मे कथय देवेशि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥६२॥

देव्युवाच : निम्बवृक्षोद्भवं काष्ठं श्मशाने साधकोत्तमः । भौमवारे मध्यरात्रौ गत्वा कुलयुगान्वितः । खनित्वा चाष्टलक्षं वै जपेन्महिषमर्दिनीम् । तत्सहस्रं हुनेत्तद्वत्तत्रैव पितृकानने काष्ठमुद्धृत्य तस्मिन् वै दण्डं पादुकचिह्नितम् । कृत्वा दुर्गाष्टमीरात्रौ श्मशाने निक्षिपेत्ततः । तस्योपरि शवं कृत्वा पूजयित्वा यथाविधि । शवासनगतो वीरो जपेदष्टसहस्रकम् ॥ ६३ ॥ ततो मातृबलिं दत्त्वा काष्ठमामन्त्रयेत्ततः । स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदयप्रिय । मम हस्तस्थितो नाथ ममाज्ञां परिपालय । एवमामन्त्र्य वेतालः यत्र यत्र प्रयुज्यते । तं तं चुर्णीविधायाथ पुनरायाति कौलिकः ॥ ६३-क ॥ गच्छ गच्छ द्रुतं गच्छ पादुके वरवर्णिनि । मत्पादस्पर्शमात्रेण गच्छ त्वं शतयोजनम् । अष्टलौहं समासाद्य पञ्चाशदंगुलाकृतिम् । खड्गं कृत्वा तत्र मन्त्रं लिखित्वा प्रजपेन्मनुम् । तत्सहस्रं ततो हुत्वा महाशवकलेवरे । खनित्वा जीववृक्षाग्रे वद्ध्वा शुष्कन्तु भावयेत् । कुलाष्टम्यामर्द्धरात्रौ चितामध्ये संयुतम् । प्रीतिपूर्वं समामन्त्र्य हुनेत्पितृवने ततः । मधुरत्रयसंयुक्तं बिल्वपत्रेण संयुतम् । पादादिमूर्ध्वपर्यन्तं होमान्ते बलिमाहरेत् । बल्यन्ते परमा माया देवी महिषमर्दिनी । आयाति बलिपूर्णास्या वरहस्ता हसन्मुखी । गृह्ण वत्सेति शब्देन खड्गमुत्तोल्य धारयेत् । घोरदंष्ट्र महाकालि करवालस्व-

रूपिणि। आं घ्रां घ्रीं घ्रूं इं ऊं कुरु कल्याणं विपक्षच्छेदविस्तरम्। एवमामन्त्र्य खड्गन्तु यमुद्दिश्य क्षिपेन्नरः। छित्त्वा छित्त्वा पुनश्छित्त्वा गच्छत्याकृष्यते पुनः ॥ ९४ ॥ अथवा कृष्णमार्जारमेकघातेन घातयेत्। कुजे चतुष्पथे रात्रौ निखनेन्मन्त्रितं ततः। तत्र शोचां समारोप्य यावत्पत्रं प्रजायते। तावत्भुक्त्वा हविष्यान्नं प्रतिरात्रं जपेन्मनुम्। अष्टोत्तरसहस्रन्तु एकाकी दीपवर्जितः। उत्पन्नं पत्रमालोक्य छित्त्वा निश्छिद्रमानयेत्। तत्र भुक्त्वा हविष्यान्नं तद्दिने तटिनीतटे। तमानीय सुहृत्सङ्गः क्षालयेन्मन्त्रमुच्चरम्। ततः स्रोतोमुखं वत्स यदस्थि प्रतिगच्छति। तदानीय यजेत्तत्र कालिकां घोरनिस्वनाम्। अभिमन्त्र्य सहस्रन्तु कालीमन्त्रं प्रयत्नतः। सिद्धाञ्जनो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥ ९५ ॥ चन्दनागुरुकस्तूरीमिश्रितश्चास्थि घर्षितम्। कृत्वा तिलकमादाय सर्वं जयति साधकः। कुलमीनं कुलान्नञ्च कुलमद्यं कुलेश्वर। कुलस्थाने समानीय दत्त्वा देव्यै प्रयत्नतः। अष्टोत्तरसहस्रन्तु जप्त्वा भूमितले स्थितः। भूमौ फूत्कारमात्रेण विवरं तत्र जायते। शतयोजनदूरे वा यत्र साध्यस्थितिर्भवेत्। तत्रैव गमनं तस्य भूतलान्तःप्रसर्पिणः। एवं विवरमध्ये तु गवाक्षकुहरेऽपि वा। कामसङ्कोचमासाद्य गच्छत्यविकलो नरः ॥ ९६ ॥ दुर्गामन्त्रं विना वत्स कालीमन्त्रं तथैव च। सिद्धयः कुलनाथेश जायन्ते न कथञ्चन ॥

अथ बालकसंस्कारः :

मधुलाजाभ्यां नाडीच्छेदात् प्राक्स्वर्णशलाकया यज्ञदारुशिखया श्वेतदूर्वया वा बालकस्य जिह्वामौष्ठं वा दक्षिणपाणिना त्रिवारं सम्मार्ज्य तत्र पिता पंक्त्याकारेण मूलमन्त्रं विलिख्य देवीं पूजयेत्।

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते : अथवा मधुलाजाभ्यां जिह्वायां बालकस्य च। नाडीच्छेदाद्यथापूर्वं लिखेत्स्वर्णशलाकया। मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री यस्योष्ठे श्वेतदूर्वया वाक्योच्चारणतो बालो वाग्मीद्रुतकविर्भवेत् ॥ ९८ ॥

महोग्रताराकल्पे तु : नैमित्तिकसंस्कारानन्तरमेव मन्त्रलिखनं कार्यम्। तदुक्तं महोग्रे जन्मसंस्कारकं नाम पुत्रे जाते प्रशस्यते। जिह्वायान्तु लिखेन्मन्त्रं यज्ञदारुकुशेन वा। वारत्रयन्तु सम्मार्ज्य दक्षिणेनैव पाणिना। मूलमुच्चार्य प्रत्येकं पंक्तिं कुर्यात्सुशोभनम्। आदौ संस्कारः कर्तव्यस्तदन्ते विलिखेन्मनुम्। गन्धचन्दनपुष्पैश्च पूजयेत्तारिणीं शिवाम् ॥ ९९ ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थापयेत्पीठमुत्तमम्। पूजयेत्तारिणीं देवीं नानाभक्ष्यैः सुशोभनैः। कविर्वाग्मी भवेत्पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः।

अत्र तारिणीपदमुपलक्षणं देवीमात्रमेव बोद्धव्यम् । बृहच्छ्रीक्रमादितन्त्रेषु बालकसंस्कारदर्शनात् ॥ ९९क ॥

तदुक्तं तत्रैव : बालकस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे लिखेत् । मधुना श्वेतदूर्वाभिर्लिखेत्स्वर्णशलाकया । अमुं वाग्भवकूटञ्च लिखेद्वै जननान्तरम् । एतेन तद्दिनाशक्तौ त्रिरात्राभ्यन्तर इति सूचितम् । अमुमिति भैरव्या वाग्भवकूटमित्यर्थः । अथैकादशाहे देवतां सम्पूज्य मन्त्रं लिखेदिति कश्चित् । अथ यदि पिता दूरस्थो भवति तदा पितृव्यो मातुलो वा मन्त्रं लिखेदिति ।

तदुक्तं महोग्रे : पितुर्भ्राता लिखेन्मन्त्रं मातुर्भ्राताथवा पुनः । पितुरेव लिखेन्मन्त्रं नान्य एव कदाचन ॥१००॥ मातुः क्रोडे तु संस्थाप्य दर्भाना-स्तीर्य यत्नतः । शान्तिं कुर्याद्बालकस्य ब्राह्मणैः सह साधकः ॥ १ ॥

अथ शान्तिमन्त्रः :

इमं पुत्रं कामयतः कामजानामिहैव हि । देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं मज्जननं शिवशान्तिस्तारायै केशवेभ्यस्तारायै रुद्रेभ्य उमायै शिवाय शिवयशसे । इत्यनेन कुशोदकेन शान्तिं कुर्यात् ॥ २ ॥

अथ छागादिबलिः :

मुण्डमालायाम् : छागे दत्ते भवेद्वाग्मी मेषे दत्ते कविर्भवेत् । महिषे धनसमृद्धिः स्यान्मृगे मोक्षफलं लभेत् ॥ ३ ॥ पक्षिदाने समृद्धिः स्याद्गो-धिकायां महाफलम् । नरे दत्ते महद्धिः स्यादष्टसिद्धिरनुत्तमा ॥ ४ ॥ एवं—राजा नरबलिं दद्यान्नान्यो हि परमेश्वरि । सिंहव्याघ्रनरान्दत्त्वा ब्राह्मणे नरकान्व्रजेत् । इति वचनात् ब्रह्मणानां नरबलिदाने नाधिकारः । तथा : चण्डालबलिदानेन महासिद्धिः प्रजायते । तत्र सलक्षणं पशुं देव्यग्रे संस्थाप्य वक्ष्माणेन विधिना उत्सृजेत् ।

तदुक्तं यामले : देव्या अग्रे स्थापयित्वा पशुं लक्षणसंयुतम् । श्वेत-सर्षपविक्षेपाद्भूतानुत्सारयेत्ततः अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य अस्त्रमन्त्रेण रक्षणम् । कवचेन समागुण्ठ्य धेनुमुद्रामृतीकृतम् । गन्धचन्दनपुष्पाद्यैः पूजयित्वा पशुं ततः । वामहस्तेन तं धृत्वा सप्तधा तत्त्वमुद्रया । प्रोक्षये-न्मूलमन्त्रेण ततः पूजां समाचरेत् । ततः श्वेतसर्षपेण भूतोत्सारणं कृत्वा अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्यास्त्रेण संरक्ष्य, कवचेनावगुण्ठ्य, धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, गन्धपुष्पाक्षतैः पशुं सम्पूज्य, मूलेन तत्त्वमुद्रया प्रोक्षणं कृत्वा कर्णे इमं मन्त्रं पठेत् । पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोद-

यात् । ततो ह्रीं कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डाय नमः । इति मन्त्रेण खड्गं पूजयेत् । ततः खड्गस्याग्रमध्यमूलक्रमेणैव पूजयेत् । यथा हूं वागीश्वरीब्रह्मभ्यां नमः । हूं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः । हूं उमामहेश्वराभ्यां नमः । ततः ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुक्ताय खड्गाय नमः । इति सर्वत्र पूजयेत् । तत खड्गं प्रणमेत् । खड्गाय खरशाणाय शक्तिकार्यार्थतत्पर । पशुश्छेद्यस्तया शीघ्रं खड्गनाथ नमोऽस्तु ते ।

ततो महावाक्यं : अमुकदेवता-प्रीतिकाम इमं पशुं तुभ्यमहं सम्प्रददे इति । ततो निवेदयेत् । यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् । ततो बलिं छिन्द्यात् । ततो रुधिरं समांसं बलिं देव्यै दद्यात् ॥ ६ ॥ रुधिरदाने स्थाननिर्णयः ।

कालिकापुराणे : छागन्तु वामतो दद्यान्महिषन्तु भवेत्पुरः । दक्षिणेवा मतो दद्यादग्रतो देहशोणितम् ।

तथा : सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्याधारे तथैव च । निधाय देव्यै दद्यात्तु तद्रक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥७॥ ततोऽवशिष्टं वटुकादिभ्यो दद्यात् ।

यथा : हूं वां वटुकाय नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, पूर्ववन्मन्त्रेण वायव्ये बलिन्दद्यात् । हूं यां योगिनीभ्यो नमः सम्पूज्य ईशाने पूर्वमन्त्रेण बलिं दद्यात् । हूं क्षां क्षेत्रपालाय नमः इति सम्पूज्य पूर्वमन्त्रेण नैर्ऋत्यां बलिं दद्यात् । हूं गां गणपतये नमः । इति सम्पूज्याग्नेयां गणेशाय बलिं दद्यात् ॥ ८ ॥

स्वगात्ररुधिरदाने तु : नाभेरधःस्थाद्रुधिरं पृष्ठभागस्य च प्रिये । स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचित्तु साधकः । नोष्ठस्य-चिबुकस्यापि नेन्द्रियाणं तथैव च । कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं हृद्भागस्य यतस्ततः । पार्श्वयोश्चापि रुधिरं दुर्गायै विनिवेदयेत् । न च रोगाविलादङ्गन्नान्यधाताद्धि भैरव ॥ ९ ॥

फलन्तु कुमारीतन्त्रे : गृहीत्वा शोणितं पात्रे स्वकीयहृदयोद्भवम् । पूजयेत्त्रिपुरादेवीं सर्वसौभाग्यहेतवे ॥ १० ॥

तथा : स्वगात्ररुधिरं दत्वा नत्वा राजत्वमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

अन्यच्च : यः स्वहृदयसञ्जातं मांसं मासप्रमाणतः । तिलमुद्गप्रमाणं वा दद्याद्भक्तियुतो नरः । षण्मासाभ्यन्तरे तस्य काममिष्टमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

अन्यच्च : मद्यं दत्त्वा महादेव्यै ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् । स्वगात्ररुधिरं

दत्त्वा आत्महत्यामवाप्नुयात् ॥ १३ ॥ इति बलिविधिः ।

अथ कुलाचारो निरूप्यते :

कालीतन्त्रे : अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते । सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपालकः । अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः । मंत्राराधनमात्रेण भक्तिभावेन तत्परः । परस्यां देवतायान्तु सर्वकर्मनिवेदकः । अन्यमन्त्रार्चने श्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम् । कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च तद्द्रव्यस्यापहारणम् । स्त्रीषु रोषं प्रहारञ्च वर्जयेन्मतिमान् सदा ॥ १४ ॥ स्त्रीमयञ्च जगत्सर्वं तथात्मानञ्च भावयेत् । पेयं चर्व्यं तथा चुष्यं भोज्यं लेह्यं गृहं सुखम् । सर्वञ्च युवतीरूपं भावयेन्मतिमान् सदा ॥ १५ ॥ कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात्समाहितः । यदि भाग्यवशाद्देवि कुलदृष्टिः प्रजायते । तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् । तासां भगादिदेवीनाम् ॥ १६ ॥

तथा च : भगिनीं भगचिह्नाञ्च भगास्यां भगमालिनीम् । भगदन्तां भगाक्षीञ्च भगकर्णीं भगत्वचाम् । भगनासां भगस्तनीं भगसर्पिणीम् । सम्पूज्य ताभ्यो गन्धैर्मानसैर्गुरुमेव च । नमस्कृत्य यथाध्यानं स्वयमक्षोभितः सुधीः । बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धाम्वा सुन्दरीं तथा । कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् । तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा । सर्वथा च न कुर्यात्तु चान्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥ १७ ॥ स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियश्चैव विभूषणम् । स्त्री सङ्गिनी सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि । विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि । तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम् । तद्धस्तावचितं द्रव्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ॥ १८ ॥ स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात्पूजनं महत् । जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वे जपञ्चरेत् ॥ १९ ॥ स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन्विशेषात्कुलजां शुभाम् । भक्षन् ताम्बूलमत्स्यांश्च भक्ष्यद्रव्याण्यथारुचि । भक्ताद्यशेषभक्ष्याणि भुक्त्वा शेषं जपञ्चरेत् ॥ २० ॥

वीरतन्त्रे : दिक्कालनियमो मात्र स्थित्यादिनियमो न च । जपे न कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि । स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने ॥ २१ ॥ वस्त्रासनस्थानगेहदेहस्पर्शादिवारिणः । शुद्धिं न चाचरेत्तत्र निर्विकल्पं मनश्चरेत् ॥ २२ ॥

कुलार्णवे : कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये । याचयेदमृतं

कौलं तदभावे जलं पिबेत् ॥ २३ ॥ कुलाचारेण यद्दत्तं कृत्वा पात्रन्तु भक्तितः । नमस्कृत्य च गृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥

अन्यत्रापि : न वृथा गमयेत्कालं द्यूतक्रीडादिभिः सुधीः । गमये-द्देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥ २५ ॥ वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकाले प्रशस्यते । सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यो नात्र संशयः ॥ २६ ॥

शिवागमे : शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्माजनार्दनः । शक्ति-रिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा ध्रुवम् । शक्तिरूपं जगत्सर्वं यो न जानाति नारकी ॥ २७ ॥

वीरतन्त्रे : स्नानादिमानसं शौचं मानसः प्रभवो जपः । मानसं पूजनं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् । सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् । न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि । सर्वदा पूजयेद्देवीमस्नातः कृतभोजनः ॥ २८ ॥ महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥ २९ ॥

यत्तु : रात्रावेव महापूजा कर्तव्या वीरवन्दिते । न दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते । तत्पुनः कुलपूजाविषयम् ॥ ३० ॥

महानिशा तु तत्रैव : अर्द्धरात्रात्परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च । सा महा-रात्रिरुद्दिष्टा तद्दत्तमक्षयं भवेत् ॥ ३१ ॥

गान्धर्वे : पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्य सहस्रं-यदि नित्यशः । तदा वादी स्वसिद्धान्तहतः क्षितितलं व्रजेत् । नित्यशः इति षोडशदिनं यावत् ॥ ३२ ॥ पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः । कवितां लभते सोऽपि अमृतत्वञ्च गच्छति । अत्रापि सहस्रमिति सम्बन्धः । पृथ्वीं कुलं पर्वतं स्तनम् ॥ ३३ ॥

अनुच्च नीलतन्त्रे : पद्मं दृष्ट्वा तथा विद्धं खञ्जनं शिखरं तथा । चामरं रविविम्बञ्च तिलपुष्पं सरोरुहम् । त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावतः । मुखं प्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यकम् । सुवेशं सुगतिश्चैव सुगन्धं सुखमेव च । लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति सादरम् । पद्मं मुखं विम्बमधरं खञ्जनं चक्षुः शिखरं मस्तकं चामरं केशम् । रविविम्बं सिन्दूरं तिलपुष्पं नासिकां सरोरुहं नाभिं त्रिशूलं त्रिवलीम् इति बोध्यम् ॥ ३४ ॥

भावचूडामणौ : एकाकी निर्जने देशे श्मशाने विजने वने । शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत्सदा । महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत् । तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः । स भवेत्कुलदेवश्च

कुलद्रुमगतः शुचिः ॥ ३५ ॥ बह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि । तत्सुधारसधारेण तर्पयेन्मातृकानने ॥ ३६ ॥ महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः । रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ॥ ३७ ॥ तिथिक्रमेण संख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि । तदा मासेन सिद्धिः स्यात्सहस्रजपमानतः ॥ ३८ ॥ अष्टम्याश्च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते । तत्रैव महती सिद्धिर्देवतानां सुदुर्लभा ॥ ३९ ॥

कुलचूडामणौ : शृणु पुत्र रहस्यं मे समयाचारसम्भवम् । येन हीना न सिध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रशः ॥ ४० ॥ मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुचारिणाम् । उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः । परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा । पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे । चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवाद्गतिर्भवेत् । क्षणं स्थित्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम् । गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितः । क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बूकीं यमदूतिकाम् । कुररीं श्येनकाकौ च कृष्णमार्जारमेव च । कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये । कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ ४२ ॥ श्मशानञ्च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् । प्रणम्यानेन मनुना मन्त्री सुखमाप्नुयात् । घोरदंष्ट्रे करालास्ये किटिशब्दनिनादिनि । घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनि ॥ ४३ ॥ रक्तवस्त्रं तथा पुष्पं विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम् । प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ इमं मन्त्रं पठेन्नरः । बन्धूकपुष्पसङ्काशे त्रिपुरे भयनाशिनि । भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनी ॥ ४४ ॥ कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपुरुषम् । हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान्वीरपुरुषान् । महिषं कुलदेवञ्च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् । प्रणम्य जयदुर्गां वा स च विघ्नैर्न लिप्यते । जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते । भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥ मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम् । दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विभृषन्मनुम् । घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये । नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते । रक्तधारासमाकोर्णवदने त्वां नमाम्यहम् । सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे ॥ ४६ ॥ एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते । शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न जायते ॥ ४७ ॥

तथा कुलचूडामणौ : कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः । योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम् ॥ ४८ ॥ यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः । तथा कुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी ॥४९॥

कुलवारादिनियमन्तु यामले : रविश्चन्द्रो गुरुः सौरिश्चत्वारश्चाकुला इमे। भौमशुक्रौ कुलाख्यौ हि बुधवारः कुलाकुलः ॥ ५० ॥ द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम् । विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः ॥ ५१ ॥ वरुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम् । कुलानि समधिष्ण्यानि शेषाणि चाकुलानि च ॥ ५२ ॥ तिथिवारे च नक्षत्रे अकुले स्थायिनोऽजयः । कुलाख्ये जयिनो नित्यं साम्यश्चैव कुलाकुले । एवं कुलवारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्यात् ॥ ५३ ॥

अथ शिवाबलिः :

तदुक्तं कुलचूडामणौ : बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः । मांसप्रधाननैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ॥ ५४ ॥ कालि कालीति वक्तव्ये तत्रोमा शिवरूपिणी । पशुरूपधरायाति परिवारगणैः सह । भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सुन्दरम् । तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलभूषण ॥ ५५ ॥ अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम् । नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्या-वन्दनं पितृतर्पणम् । तथैव कुलसेव्यानां नित्यता कुलपूजने । पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने । शिवारावेण तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम् ॥ ५६ ॥ जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च । गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ॥ ५७ ॥ एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव । तत्रैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परम-दुर्लभा ॥५८॥ पशुशक्तिःपक्षिशक्तिर्नरशक्तिर्यथाक्रमात् । पूजनात्त्रिगुणं कर्म मङ्गलं साधयेद्यतः । तेन सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं पूजन महत् ॥ ५९ ॥ राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके । शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् ॥ ६० ॥

मन्त्रस्तु : गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि । शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिन्तव । एवमुच्चार्य दातव्यो बलि. कुलजनप्रिय । यदि न भुज्यते वत्स तदा नैव शुभं भवेत् ॥ ६१ ॥ शुभं यदि भवेत्तत्र भुज्यते तदशेषतः । एवं ज्ञात्वा महादेव शान्तिस्वस्त्ययनं चरेत् ॥ ६२ ॥ इति शिवाबलिः ।

कुलवर्त्मनो गोपनीयता :

कुलवर्त्म सर्वत्र गोपनीयम् ।

तथा च नीलतन्त्रे : निर्जने चैव कर्त्तव्यं न चैवं जनसन्निधौ । किम्वा पक्षिपतङ्गादिदर्शने नैव कारयेत् ॥ ६३ ॥ पातालमण्डपे वापि गह्वरे सुनियन्त्रिते । निश्छिद्रमण्डपे वापि कर्तव्यं न च सन्निधौ ॥ ६४ ॥

कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम् । कुलं कुलपतिश्चैव कुलमालां कुलाकुलम् । कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् । प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात्प्रकाशान्निधनादिकम् । प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात् प्रकाशात्कुलहिंसनम् । प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन । ॥ ६६ ॥ पूजाकाले च देवेशि यदि कोऽप्यत्र गच्छति । दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम् । प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात्तत्प्रकाशान्न दूषणम् । गोपनाद्यदि व्यक्तिः स्यान्न गुप्तिः सा विधीयते ॥ ६७ ॥ कदाचिद्देहहानिस्तु न चाव्यक्तिः कदाचन । वरं पूजा न कर्तव्या न च व्यक्तिः कदाचन ॥ ६८ ॥

अथ प्रातःकृत्यम् :

साधकः प्रातरुत्थाय कुलवृक्षं प्रणम्य च ।

कुलवृक्षो यथा : पादाघातादशोको वदनमदिरया केशरः कर्णिकारः, चूतो निम्बो हसाभ्यां तिलकतरुनमेरु पियालश्च गीत्वा । संलापात् कर्णिकारः कुरुवकतरुरालिङ्गनात् । सिन्धुवारः, कादम्बः कामिनीनामुदयति नियतं स्पर्शनाच्चम्पशाखी ॥ ६९ ॥ तथा च श्रुतिः । दशकुलवृक्षाणामनुपप्लवः ।

दशकुलवृक्षो यथा : श्लेष्मातककरञ्जौ च बिल्वाश्वत्थकदम्बकाः । निम्बो वटोडुम्बरौ च धात्री चिञ्चा दश स्मृताः । मूलादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तं-कुलं ध्यात्वा गुरुं स्मरेत् ॥७०॥ प्रह्लादानन्दनाथाख्यं सनकानन्दमेव च । कुमारानन्दनाथाख्यं वसिष्ठानन्दनाथकम् । क्रोधानन्दं सुखानन्दं ज्ञानानन्दमतः परम् । बोधानन्दमथाभ्यर्च्य ध्यायेत्कुलमुखोपरि । महासवरसोल्लासहृदया घूर्णलोचनाः । कुलालिङ्गनसंभिन्नचूर्णिताशेषतामसाः । कुलशिष्योपरिकृपा-पूर्णान्तःकरणोद्यताः । वराभयोद्यतकराः कुलतन्त्रार्थवेदिनः । एवं कुलगुरु नत्वा विसृज्य कुलनायिकाम् । कुलस्थानं समाश्रित्य स्नानार्थं तीर्थमाश्रयेत् ॥ ७१ ॥ आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वै राचाम्यान्यत्समाचरेत् ॥ ७२ ॥

कुलार्णवे : कुलसूर्याय देवाय त्रिरर्घ्यंन्तु प्रदापयेत् । देवानृषीन् पितृंश्चैव तर्पयेत्कुलवारिणा ॥ ७३ ॥

कुलचूडाणौ : आचान्तः कुलदर्भेण सदर्भः कुलपुण्ड्रकः । कुलपात्रं सदूर्वाञ्च सतिलं सजलं तथा । गृहीत्वा कुलदेव्याश्च प्रीतये स्नानमाचरेत् । एवं हि कृतसङ्कल्पः कुलचक्रं जले न्यसेत् । कुलस्थानात्समानीय कुलमुद्रांकुशेन च । कुलतीर्थानि तथैव समावाह्य शिवात्मकम् । तत्तोयञ्च

त्रिधा पीत्वा त्रिधा च प्रोक्षणं तनोः ॥ ७५ ॥

स्वतंत्रेऽपि : मूलं पठन्मूर्ध्नि तोयं मुद्रयाकुम्भसंज्ञया । क्षिप्त्वावारत्रयं देवि आचामेत्साधकाग्रणीः ॥ ७६ ॥ इति कुलाचारः ।

अथ दूतीयागो निरूप्यते :

तत्रादौ विजयास्वीकारः ।

तथा च विजयाकल्पे : संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी । संवित्प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः । कर्तव्यश्च महापूजा करणीया सुनिश्चितैः । अयं प्रयोगः पूजादौ कुलीनैः सर्वत्र कर्तव्यः ॥ ७७ ॥

अन्यत्रापि : आनन्देन विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति देवताः ॥ ७८ ॥

सा च चतुर्विधा : ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्राः शुक्लरक्तपीत-कृष्णपुष्पभेदैः ।

तासां शुद्धिस्तु विजयाकल्पे : संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे । भैरवाणाश्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा । ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहेति शोधयेत् । ततः सिद्धमूलिकरे देवि मूलबोध प्रबोधिनि । राजपुत्रि वशङ्करि शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि । ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा शोधयेदपरां ततः ॥ ७९ ॥ अज्ञानेन्धनदीप्ताग्नि-ज्ञानाग्निज्वलरूपिणि । आनन्दाज्या-हुतिं मत्वा सम्यग्ज्ञानं प्रयच्छ मे । ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा वैश्याश्च शोधयेत्ततः । नमस्यामि महामाये योगमार्गप्रदर्शिनि । त्रैलोक्यविजये मातः समाधिफलदा भव । श्रीं शूद्रायै नमः स्वाहेति शूद्राश्च परि-शोधयेत् ।

ततः सर्वासां शोधनम् : ॐ अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि पदं ततः । अमृतमाकर्षयद्वन्द्वं सिद्धिं देहि ततः परम् । अमुकं मे ततो ब्रूयाद्व-शमानय तत्परम् । द्विठान्तोऽयं मनुः प्रोक्तः सर्वासामिह शोधने । ज्ञाने प्रत्येकेन तत्तन्मन्त्रेण प्रत्येकं शोधयेत् अज्ञाने त्वनेन शोधयेत् ॥७९क॥

उत्तरतन्त्रे : मूलमन्त्रं सप्तवारं तस्योपरि नियोजयेत् । आवाहनादि-मुद्राश्च धेनुं योनिं ततः परम् । दिग्बन्धनं छोटिकाभिस्तालत्रयपुरः-सरम् । दिव्यदृष्ट्या पार्ष्णिघातैः सर्वान्विघ्नान् निरस्य च । सप्तधा तर्पयेद्ब्रह्मरन्ध्रे मूलं जपन्मनुम् । गुरुं पद्मे सहस्रारे तथा सङ्केतमुद्रया । त्रिवारं तर्पयेद्भक्त्या साधकः सिद्धिहेतवे । मूलमिष्टदेवतामन्त्रमुच्चार्य अमुकदेव तां तर्पयामि एवं गुरुञ्च तर्पयेत् । ततः सङ्केतमुद्रया तत्त्वमुद्रया च तत् स्वीकुर्यात् ।

यथा : ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्व-वशङ्करि स्वाहा ।

तथा च : ऐं वद वद पदं ब्रूयाद्वाग्वादिनिपदन्ततः । मम जिह्वाग्रे स्थिरोति भव सर्वपदं ततः । सत्त्ववशङ्करि स्वाहामन्त्रेण जुहुयान्मुखे ॥ ८० ॥

तन्त्रचूडामणौ : विना हेतुकमासाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः । न पूजां हवनं कुर्यान्न ध्यानं नापि चिन्तनम् । तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् । पीत्वेति विजयामेव प्रकरणात् ॥ ८१ ॥

अथ यजनप्रकारः :

तत्र रात्रौ प्रहरे गते ताम्बूलपूरितमुखः सन् कुलनायिकां पूजयेत् ॥ ८२ ॥

उत्तरतन्त्रे : याममात्रे गते रात्रौ कुलगेहं ततः पुमान् । ताम्बूल-पूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः । रक्तचन्दनदिग्धाङ्गो रक्तमाल्यानु-सेवितः । रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारसगृहङ्गतः । रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः । पञ्चीकरणसङ्केतैः पूजयेत्कुलनायिकाम् ॥ ८३ ॥

कुलनायिका यथा, तत्रैव : नटी कापालिका वेश्या पुक्कसी नापि-ताङ्गना । रजकी रङ्गकी चैव सैरिन्ध्री च सुवासिनी । वटिकाघटिका चैव तथा गोपालकन्यका । विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः । गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः । सङ्गोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः । अक्षताचारसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् । सदनुष्ठान-निरतां सात्त्विकीं भक्तिसंयुताम् । कालुष्यरहितां कुर्यात्समयां भक्त-वत्सलाम् । चातुर्यौदार्यदाक्षिण्यकरुणादिगुणान्विताम् । रूपयौवनसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् । सदा परिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम् । अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम् । विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बरविभूषिताम् । सुगन्धिरक्तकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम् । सुधूप-धूपितां तन्वीं दूतीकर्मसु योजयेत् ॥ ८४ ॥

कुमारीतन्त्रे : नटी कापालिका वेश्या रजकी नापिताङ्गना । ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका । मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिताः । ब्राह्मणीति तु ब्राह्मणविषयम् ॥ ८५ ॥ एवम्भूतां यजेत्तान्तु प्रसूनतुलिकोपरि । व्यङ्गाङ्गीं विकृताङ्गीं वा सविकल्प-कमानसीम् । वर्षीयसीं पापरतां हूंकारामर्षलोलुपाम् । अभक्तमानसा दीना वर्जयेत्साधकोत्तमः ॥ ८६ ॥ अथाद्वा कामतो वापि सौख्यादपि च

यो नरः। लिङ्गयोनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ८७ ॥ उपदिष्टा यदा देवि तथा पुत्री तु कन्यका। पूजार्हा च यदा देवि तदा माता न संशयः ॥ ८८ ॥ एवंविधं कुलमानीय उद्वर्तनादिकं विधाय तुलिकोपरि नियोजयेत् ॥ ८९ ॥

तथोत्तरतन्त्रे : तदानीय कुलं सम्यक उद्वर्तनमनन्तरम्। स्नातं शुद्धदुकूलादि-गन्धलेपनशोभितम्। अलंकृतं गतश्रान्ति स्वागतं चासनं तथा। निवेश्य तुलिकामध्ये नानापुष्पसुगन्धिना। चंदनागुरुकर्पूरकस्तूरी-कुंकुमादिभिः। समाकीर्णे निवेश्याथ पूजयेत्कुलनायिकाम् ॥ ९० ॥ ततो भूतशुद्ध्यादिकं विधाय तत्तत्कुलाङ्गे न्यासं कुर्यात्।

तद्यथा : अङ्गन्यासकरन्यासौ प्राणायामं ततः परम्। विधाय मातृकान्यासं कुलाङ्गेऽपि प्रविन्यसेत्। ततः पञ्चमकारमानीय शोधयेत्।

पञ्चमकारो यथा : मद्यं मांसञ्च मत्स्यञ्च मुद्रां मैथुनमेव च। मकार-पञ्चकञ्चैव महापातकनाशनम्। तत्र सुरायाः शोधनं यथा—घटं धृत्वा पठेत्। एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्। कचोद्भवां ब्रह्महत्यां केन ते नाशयाम्यहम्। सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे। अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्। वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि। तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु। तत ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशाप-विमोचितायै सुधादेव्यै नमः। इति तदुपरि दशधा जपेत्। ततः ॐ शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः। इति तदुपरि दशधा जपेत्। एवं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णशापं विमोचयामृतं स्रावय स्वाहेति दशधा जपेत्। ततो मूलमन्त्रं तदुपरि अष्टधा जप्त्वा देवतामयं विभावयेत्। इति द्रव्यशुद्धिः ॥ ९१ ॥ एतद् द्रव्यदानन्तु शूद्रस्यैव।

तथा च श्रीक्रमे : न दद्यात्ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन। वामकामो ब्राह्मणो हि मद्यं मांसं न भक्षयेत् ॥ ९२ ॥

कुलचूडामणौ : यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्मणस्तु विशेषतः। गुडार्द्रकं तदा दद्यात्ताम्रे वा विसृजेन्मधु। देव्यास्तु दक्षिणे भागे चक्रपार्श्वे निवेदयेत्। एतद् द्रव्यन्तु शूद्रस्य नान्येषान्तु कदाचन। वैश्यस्य माक्षिकं शुद्धं क्षत्रियस्य तु साज्यकम्। ब्राह्मणश्च गवां क्षीरं ताम्रे वा विसृ-जेन्मधु। नारिकेलोदकं कांस्ये सर्वेषां द्रव्यशोधनम्। क्षत्रियवैश्ययोस्तु गौडी माध्वी च दातव्या तत्र तयोरधिकारात्। तदभावेऽनुकल्प-विधानम्।

तथा च : गौक्षीरं ब्राह्मणो दद्यातगव्यमाज्यश्च बाहुजः । माक्षिकं द्रव्यं शूद्रः पौष्टादिकं पुनः । तेन शूद्रस्य अनुकल्पः ॥ ९३ ॥

कुलार्णवे : जलं क्षीरं घृतं भद्रे मधु मैरेयमैक्षरवम् । पौष्पं तरुभवं धान्यसम्भवं चक्रनिर्मितम् । सहकारभवं देवि त्रिविधं बहुभेदकम् । मादकं धर्मसम्भेदाद्वर्ज्यमासीत्सुलोचने । ज्ञानेन संस्कृतं तत्तु महापातक-नाशनम् । तद्दाने पातकाभावो दिव्यभावविषयां वा । माकन्दफलजं रम्यं द्रव्यं सेव्यं द्विजातिभिः । अमादकत्वाद्देवेशि ऐक्षवं सेव्यते बुधैः । एतेन क्षत्रियादिभिरमादकं द्रव्यं सेव्यम् । मादकस्य पापहेतुकत्वं उक्तम् ॥९४॥

भैरवतन्त्रे : मद्यं मांसं विना वत्स यत्किञ्चित्कुलसाधनम् । शक्त्यै दत्त्वा ततः शेषं गुरवे तन्निवेदयेत् । तदनुज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा शोषमात्मनि योजयेत् । तेन क्षत्रियादीनां मुख्यस्य दानेऽधिकारः न पाने ॥ ९५ ॥

यत्तु : पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा च महीतले । उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ९६ ॥

भैरवतन्त्रे : पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणा स्यात् रक्तरेतसोः । शुचौ चाऽशुद्धताभ्रान्तिः पापाशङ्का च मैथुने । स भ्रष्टः पूजयेद्देवीं चण्डीमन्त्रं कथं जपेत् ॥ ९७ ॥

तथा : मदिरायां मैथुने च जातिवृत्ति न चाचरेत् । एतत्तु चतुर्था-श्रमिपरम् । तत्तद्द्रव्यग्रहणे जातिचिन्तां न कुर्यात् । एतेषां शोधनास्या-वश्यकत्वात् ।

तथा च : संशोधनमनाचर्यं स्त्रीषु मद्येषु साधकः । आचर्यं सिद्धि-हानिः स्यात्क्रुद्धा भवति सुन्दरी । मद्येषु मुख्यानुकल्पेषु ॥ ९८ ॥

तथा : कुलपूजायामस्यावश्यकत्वम् ॥ ९९ ॥

तथा च : मधु मांसं विना देवि कुलपूजा समारभेत् । जन्मान्तर-सहस्रस्य सुकृतं तस्य नश्यति ॥ १०० ॥

अथ मांसादिशोधनम् ।

मांसन्तु त्रिविधं ज्ञेयं जलखेचरभूचरम् । त्रिविधं मांसं संप्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ॥ १ ॥ मत्स्यन्तु त्रिविधं देवि उत्तमाधममध्यमम् । उत्तमं त्रिविधं देवि शालपाठीनरोहितन् । प्रवीणं कण्टकैर्हीनं तैलाक्तं तल्कलैर्युतम् । देव्याः प्रीतिकरश्चैव मध्यमन्तचतुर्विधम् । क्षुद्राणि तानि सर्वाणि अधमानि विदुर्बुधाः ॥ २ ॥

भूधरमांसञ्च : गोनृमेषाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम् । महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ॥ ३ ॥ मांसाभावेऽनुकल्पः ।

समयाचारे : लवणार्द्रकपिण्याकतिलगोधूममाषकम् । लशुनञ्च महादेवि मांसप्रतिनिधिः स्मृतः ॥ ४ ॥ मुद्रा तु द्विविधा ।

कुलार्णवे : कृषरं मण्डलाकारं चन्द्रबिम्बनिभं शुभम् । चारुपक्वं मनोहारि शर्कराद्यैश्च पूरितम् । पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्तिता ॥ ५ ॥

यामले : भृष्टधान्यादिकः यावच्चर्वणीयं प्रकल्पयेत् । तेषां संज्ञा कृता मुद्रा महामोदप्रदायिनी ॥ ६ ॥

एतेषां शोधनन्तु स्वतन्त्रतन्त्रे : ॐ प्रतद्विष्णुरित्यादिना मांसम् । ॐ त्र्यम्बकमित्यादिना मीनम् । ॐ तद्विष्णोरित्यादिना मुद्राञ्च शोधयेत् ॥ ७ ॥

अथ शक्तिशोधनम् :

तत्र भावचूडामणौ : अदीक्षितकुलासङ्गात्सिद्धिहानिः प्रजायते । तत्कथाश्रवणञ्चेत्स्यात्तत्तल्पगमनं यदि । स कुलीनः कथं देवि पूजयेत् परमेश्वरीम् ।

श्रीक्रमे : संशोधनमनाचर्य नाचरेत्कुलपूजनम् ॥ ८ ॥

कौलिकतन्त्रे : अभिषेकाद्भवेच्छुद्धिर्मन्त्रस्योच्चारविन्दुभिः । बलाद्वा यत्नतो वापि अभिषेकं समाचरेत् ॥ ९ ॥

अभिषेकमन्त्रस्तु : आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुद्धरेत् । नमः शब्दं समुच्चार्य इमां शक्तिं ततो वदेत् । पवित्रीकुरुशब्दान्ते मम सिद्धिं कुरु प्रिये । वह्निजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्रः सुरेश्वरि । तस्याः कर्णेऽभेद-बुद्ध्या मायाबीजं समुच्चरेत् । इति शक्तिशोधनम् ॥ १० ॥

ततः शोधितद्रव्यमर्घ्ये क्षिपेत् ।

श्रीक्रमे अर्घ्यविधौ : पूर्वशोधितद्रव्यन्तु गुप्तेनैव च संक्षिपेत् ॥११॥

स्वतन्त्रतन्त्रे : आद्यद्रव्यमर्घ्यपात्रे निक्षिप्य प्रयतः सुधीः । कुण्डगोलो-द्भवं द्रव्यं स्वयम्भुकुसुमन्तथा । अर्घ्यं दत्त्वा महेशानि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । सुधया चार्घ्यदानेन योगिनीनां भवेत्प्रियः । महायोगी भवेद्देवि पीठप्रक्षालनैर्जलैः ॥ १२ ॥

भैरवतन्त्रे : पञ्चमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः । केवलैः पञ्चमैर्वापि सिद्धो भवति साधकः । तेन पञ्चमकारेण पूजा कर्त्तव्या ॥ १३ ॥ ततोऽर्घ्यस्थापनानन्तरं पर्यङ्कमध्ये पीठं पूजयेत् । मण्डूकाय नमः इत्यादिक्रमेण ।

तदुक्तम् : पूजयेदथ पर्यङ्कमध्ये मण्डूकमग्रतः । कालाग्निरुद्रमाधार-

शक्तिं कूर्ममनन्तकम् । वराहं पृथिवीं कन्दं नालञ्च केशराणि च । पद्मञ्च कर्णिकञ्चैव मण्डलञ्च समर्चयेत् । धर्मं वैराग्यमैश्वर्यं ज्ञानमज्ञानमेव च । अनैश्वर्यमवैराग्यमधर्ममपि पूजयेत् । ज्ञानविद्यात्मकञ्चैव आत्मानञ्चापि पूजयेत् । गन्धपुष्पाक्षतादीनि दत्त्वा तत्रैव पूजयेत् । अथ तुलिकोपरि कुलं स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ।

तथा च : तस्योपरि कुलं स्थाप्य पूजानुष्ठानमेव च । पूजयेच्च ततस्तस्यां पञ्चकामान्समाहितः । ह्रीञ्चैव कामराजञ्च क्लीं कन्दर्पं ऐं च मन्मथम् । ब्लूं मकरध्वजं स्त्रीञ्चैव हि मनोभवम् । ओङ्कारादिनमोऽन्तञ्च कुसुमैर्गन्धसंयुतैः । अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु पूजयेत्कुलनायिकाम् । वटुकं भैरवीञ्चैव दुर्गाञ्च क्षेत्रपालकम् ॥ १४ ॥

पूजावाक्यन्तु : ॐ ह्रीं कामराजाय नमः इत्यादि । तत ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं ब्लूं आधारशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीत्यनेन तस्या ललाटे त्रिकोणं विलिखेत् ।

तथा च तन्त्रसारे : वाग्भवं कामबीजञ्च स्त्रीबीजं कामराजकम् । ब्लूमात्मकं ततो दत्त्वा आधारशक्तिमुद्धरेत् । श्रीपादुकां ततो दत्त्वा पूजयामि वदेत्ततः । अनेन मनुना देवि ललाटे सुमनोहरम् । त्रिकोणं तत्र संलिख्य सिन्दुराद्यैर्वरानने ।

उत्तरतन्त्रे : तस्या मूर्ध्नि त्रिकोणञ्च यन्त्रमालिख्य साधकः । महाप्रेतासनं मध्ये बालाञ्च पूजयेत्ततः । तत एवञ्च ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इति पूजयेत् । ततो बालां कामेश्वरीञ्च पूजयेत् ॥१५॥

कुलार्णवे : गणेशञ्च कुलाध्यक्षं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् । त्रिकोणेषु च सम्पूज्य वसन्तं मदनं प्रिये । स्तनयोः पूजयेत्पश्चान्मुखे तस्याः सुधाकरम् ।

उत्तरतन्त्रे : मौलौ गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके । दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम् । इति यत् स्थानवैपरीत्यं तदैच्छिकम् ॥ १६ ॥

ज्ञानार्णवे : दक्षपादादिमूर्द्धान्तं वाममूर्द्धादि सुन्दरि । पादान्तं पूजयेत्सर्वाः कला वै कामसोमयोः । श्रद्धा प्रीति रतिश्चैव भूतिः कान्तिर्मनोभवा । मनोहरा मनोरमा मदनोत्पादिनी तथा । मोहिनी दीपना चैव शोधनी च वशङ्करी । रञ्जनी चैव देवेशि षोडशी प्रियदर्शना । षोडशस्वरसंयुक्ता एताः कामकला यजेत् ।

वाक्यन्तु : अं श्रद्धायै नमः आं प्रीत्यै नमः इत्यादि । ततश्चन्द्रकलाः

पूज्याः शिरसश्चरणावधि । पूषा वशा च सुमना रतिः प्रीतिस्तथा धृतिः । ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च शैलजे चांशुमालिनी । अङ्गिरा वशिनी चैव छाया सम्पूर्णमण्डला । तथा तुष्ट्यमृते चैव कलाः सोमस्य षोडश । अङ्गिरास्थाने मदिरेति वा पाठः ॥ १७ ॥

उत्तरतन्त्रे : स्वरैरेव प्रपूज्या हि सर्वकार्यार्थसिद्धये ।

ललितातन्त्रे : भगे त्वदीये विज्ञेया नाड्यस्तिस्रः प्रवाहिकाः । एका तु वाहिका चान्द्री सौरी चान्या तु वाहिका । अग्नेयी चापरा ज्ञेया पूजयेत्तास्तु साधकः । अम्बु स्रवति चान्द्री सा पुष्पं स्रवति भानवी । बीजं स्रवति चाग्नेयी तास्तु नाभिरर्चयेत् ।

ललितातन्त्रे : वाग्भवाद्यैर्नमोयुक्तैस्ताःपूजयेत्प्रसन्नधीः । तेन ऐं चान्द्र्यै नमः । ऐं सौर्यै नमः । ऐं आग्नेयै नमः ॥ १८ ॥

उत्तरतन्त्रे : पूजयेन्मदनागारे रक्तचन्दनचर्चिते । भगमालामनुं प्रोच्य त्रितारानन्तरं तथा ।

तथा : ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जं ब्लूं क्लिन्ने ततः परम् । सर्वाणीति भगानीति वशमानय तत्परम् । स्त्रीं ह्रीं क्लीं ब्लूं भगमालिन्यै नमः । ऐं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण गन्धाद्यैस्तामर्चयेत् । ततस्तु तत्रैव मूलं पूजयेत् ।

तन्त्रान्तरे : इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासो महेश्वरि । तथैवञ्च विधानेन तां षोडशोपचारकैः । इष्टदेवीं प्रपूज्याथ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । ततः स्वलिङ्गं पूजयेत् । अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम् । मूलमन्त्रं ॐ नमः शिवाय ततः परम् । यजेत्तत्पुरुषाघोरसद्योजातक-संज्ञकैः ।

श्रीविद्यायान्तु : तारञ्च भुवनेशानीं तथा त्रिपुरसुन्दरीम् । नमः शिवाय विद्येयं दशार्णा परिकीर्तिता । इति विशेषः । सुन्दरीं सुन्दरी-त्रिकूटम् । तत्पुरुषादिमन्त्रस्तु पूर्वोक्तः । निवृत्तिञ्च प्रतिष्ठाञ्च विद्याञ्च तदनन्तरम् । शक्तिञ्च शान्त्यतीताञ्च तदङ्गं तदनन्तरम् । समग्रविद्या-मुच्चार्य त्रिकोणञ्चैव पूजयेत् । अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि । चक्रेश्वरीं कालिकाञ्च तथा दिक्वरवासिनीम् । महाचण्डेश्वरीं तारां पूजये-दत्र साधकः । तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमेव च । शिवञ्च तत्र निक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया । धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा । सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् । स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः । ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन्विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् । जपेदिति अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा अक्षुब्धो जपेत् ।

तथा च स्वतन्त्रतन्त्रे : प्रजपेत्क्षोभहरतिश्चाष्टोत्तरसहस्रकम् । शतमष्टोत्तरं वापि प्रजपेत्शुद्धमानसः । प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा । धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् । स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्तितः ॥ १८क ॥

विशेषस्तु ज्ञानार्णवे : शिवशक्तिसमायोगो योग एव न संशयः । सीत्कारो मन्त्रजापश्च वचनं स्तवनं भवेत् । आलिङ्गनश्च कस्तूरी कर्पूरं चुम्बनं भवेत् । नखदंष्ट्रक्षतादीनि पुष्पाणि विविधना च । मथनं तर्पणं विद्धि बीजपातो विसर्जनम् ॥ १८ख ॥

कुलार्णवे : आलिङ्गनं चुम्बनञ्च स्तनयोर्मर्दनन्तथा । दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाशो लिङ्गघर्षणम् । प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नव पुष्पाणि पूजने ॥ १९ ॥

यामले : संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम् । कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद्दुर्लभं नरः । तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति हि । यत्कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिध्यति ॥ २० ॥

ज्ञानार्णवे : कुलद्रव्यञ्च संशोध्य शिवशक्तिमयं प्रिये । जीवामृतं परंब्रह्मरूपं निक्षिप्य सुन्दरि । अर्घ्यपात्रामृतैर्यष्ट्वा निर्विकल्पः सदा नरः । श्रीविद्याक्रममभ्यर्च्य परब्रह्ममयो भवेत् । श्रीविद्येत्युपलक्षणम् ॥ २१ ॥ इति ते कथितं ज्ञानं सर्वं रम्यं वरानने । सविकल्पस्तु सततं पापभाग्जायते नरः । विचिकित्सापरो मन्त्री जायते गुरुतल्पगः । अतएव वरारोहे निर्विकल्पः सदा भवेत् ॥ २२ ॥

समयाचारे : कुलामृतं समादाय तदर्घ्ये निक्षिपेत्ततः । तदर्घ्येण समाराध्य पूजाशेषं समाचरेत् । कुलामृतं शोधितम् ॥ २३ ॥

शोधनमन्त्रस्तु श्रीक्रमे : अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि प्रिये । देवीपदं शुक्रशापं प्रमोचयपदद्वयम् । अमृतं स्रावयद्वन्द्वममृतं कुरुयुग्मकम् । स्वाहापदं ततो देवि शुक्रशुद्धिर्भवेत्प्रिये ॥ २४ ॥ शुक्रैरक्षततण्डुलैः सुगन्धिकुसुमैर्युतैः । अर्घ्यद्रव्यैश्च देवेशि योनौ देवीं प्रपूजयेत् ॥ २५ ॥

उत्तरतन्त्रे : धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैः कुलसाधकः । विधाय वन्दितां ताञ्च तदुच्छिष्टं स्वयञ्चरेत् ॥ २६ ॥

शिवागमे च : अविचारं शक्त्युच्छिष्टं न पिबेत्पुरुषो यदि । घोरञ्च नरकं याति कुलमार्गात्पतेद्ध्रुवम् । तस्माद्विचार्यं यत्नेन शक्त्युच्छिष्टं भजेत्सुधीः । आनन्दं कारयेद्वीरस्तत्त्वं निर्भ्रान्तितः पिबेत् ॥ २७ ॥

कुलामृते : पूजाकालं विना नैव पश्येच्छक्तिं दिगम्बराम् । पूजा-

कालं विना नैव सुधा पेया च साधकैः। आयुषा हीयते स्पृष्ट्वा पीत्वा च नरकं व्रजेत्। इति कुलपूजा ॥ २८ ॥

यामले : नैवेद्यं त्रिपुरादेव्या वाञ्छन्ति विबुधाः सदा। तस्मादेवं कुरु श्रेष्ठ ब्रह्मणे विष्णवेऽपि च। महारुद्राय सूर्याय गणेशाय यमाय च। वह्नये च वरुणाय वायवे धनदाय च। ईशानाया महादेवि साधकाय प्रदापयेत्। त्रिपुरेत्युपलक्षणम् ॥ २९ ॥

अथ वीराणां पुरश्चरणम् :

तत्रादौ परकीयां नारीं दीक्षितां पूजयेत्।

तथा च कुलचूडामणौ : पुरश्चरणकाले हि परयोषां प्रपूजयेत्। दीक्षितां वस्त्रभूषाद्यैर्भोज्यैः पायससम्भवैः। आरम्भकाले तु नियतं स्वयं-पक्वान्नभोजनम्। नानाविधं पिष्टकञ्च नानारससमन्वितम्। दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम्। उपलाखण्डचूतानि नानाविधरसायनम्। नारिकेलं कपित्थञ्च नागरङ्गं सुदर्शनम्। लिम्पाकं बीजपूरञ्च दाडिमीफलमुत्तमम्। नानारम्यफलञ्चैव नानागन्धविलेपनम्। चन्दनं मृगनाभिञ्च श्रीखण्डं नवपल्लवम्। टङ्कणं लोध्रकञ्चैव जलजं वनजं तथा। नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषितम्। शून्यगेहे समानीय चार्घ्योदकविशोधिताम्। अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिश्चाभिमुखीं नयेत् ॥ ३० ॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा। वैश्या नापितकन्या च रजकी नटकी तथा। विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ॥३१॥ अथ दीक्षिता अष्टशक्तीः क्रमेण संस्थाप्याार्घ्यपात्रं स्थापयित्वा अर्घ्योदकेन ताश्चाभ्युक्ष्य वभिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्याष्टशक्तिरूपभेदं कृत्वा ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां संज्ञाभिर्नामकरणं कृत्वा क्रमेणासनादिकं दद्यात्।

तदुक्तं तत्रैव : अष्टकन्यारूपभेदं विलोक्यामर्षवेष्टितम्। ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसंज्ञया। आसनं प्रथमं दत्त्वा स्वागतञ्च पुनः पुनः। अर्घ्यं पाद्यञ्च पानीयं मधुपर्कं जलन्ततः। स्नापयेद् गन्धपुष्पादिकेशसंस्कारमेव च। धूपयित्वा ततः केशान् कौषेयञ्च निवेदयेत्। ततः स्थानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकाद्वयम्। दत्त्वा तत्र समासीनां नानालङ्कारभूषणैः। भूषयित्वानुलेपञ्च गन्धं माल्यं निवेदयेत्। ततस्तां तां शक्तिं यथाक्रमेण ब्रह्माण्यादिरूपां समावाह्य जीवन्यासादिकं कृत्वा गन्धपुष्पधूपदीपान्नव्यञ्जनादिकं दत्त्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तोत्रं पठेत्।

तदुक्तं तत्रैव : तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां समानयेत् । भोज्यं मण्डलमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने । चर्व्यं चूष्यं लेह्यं पेयं भोज्यं भक्ष्यं निवेदयेत् । अदीक्षिता भवेद् या तु तदा मायां निवेदयेत् । तासां सव्येषु कर्णेषु ततः स्तोत्रं समाचरेत् ॥ ३२ ॥

ॐ मातार्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे । कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ॐ माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि । कृपयेत्यादि ॥ ॐ कौमारि सर्वविघ्नेशि कुमारक्रीडने वरे । कृपयेत्यादि ॥ ॐ विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि । कृपयेत्यादि ॥ ॐ वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे । कृपयेत्यादि ॥ ॐ शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते । कृपयेत्यादि ॥ ॐ चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि । कृपयेत्यादि ॥ ॐ महालक्ष्मि महोत्साहे क्षोभसन्तापहारिणि । कृपयेत्यादि ॥ मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते । एकेबहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते । एतत्स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः । विदग्धां वा समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते । कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव पुत्रक । दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद्यदि । तस्य पूजाफलं वत्स नीयते यक्षराक्षसैः ॥ ३३ ॥

यदि क्रीडापरा सा तु भोजने तद्गृहाद्बहिः । स्थितस्तावत्पठेत्स्तोत्रं यावत्तृप्तिः प्रजायते । आचम्य मुखवासादि ताम्बूलञ्च निवेदयेत् । ततो दद्यात्पुनर्मालां गन्धचन्दनपंकिलम् । विसृज्य प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत् ॥ ३४ ॥

अन्या यदि न गच्छेत्तु निजकन्या निजानुजा । अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका । पूर्वाभावे परा पूज्या सर्वा योषितो मताः । अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका । एका चेत्कुलशास्त्रञ्च-पूजार्हा तत्र भैरव । सर्व एव सुराः पूज्याः सत्यं ब्रह्मशिवादयः ॥ ३५ ॥

एका चेद्युवती तत्र पूजिता चावलोकिता । सर्वा एव परा देव्यः पूजिताः कुलभैरव । आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्तौ विशेषतः । न पूजयति चेत्कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते ॥ ३६ ॥

पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परजन्मनि । तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन पूजयेत्कुलसुन्दरीम् ॥ ३७ ॥

अथैवं क्रमेण लक्षजपादौ मध्ये अन्ते च शक्तिं पूजयेत् । लक्षमित्युलक्षणम् । ततो रात्रौ पश्चिमेन देवीं सम्पूज्य रहस्यमालया कुलयुक्तं

गुरुं शिरसि हृदि देवीञ्च ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् जपं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

मुण्डमालायाम् : गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि । निशायाञ्च प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न तु ॥ ३९ ॥

स्वतन्त्रतन्त्रे: रात्रौ मांसासवैर्देवीं पूजयित्वा विधानतः । ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो रमन् क्लेदयुतोऽपि वा । जपेल्लक्षं ततो देवीं होमयेज्जलदिन्धनैः । योनिकुण्डे स्थिते सर्पिर्मांसमत्स्ययुतं भृशम् । दशांशं तर्पयेद् द्रव्यैर्मांसमिश्रैस्तु साधकः । तर्पणस्य दशांशेन अभिषिच्य जगन्मयीम् । दशांशं भोजयेत्साधु साधकं देवताप्रियम् । दिव्यं मांसञ्च मत्स्यञ्च चर्वणञ्च प्रदापयेत् । तदन्ते तोषयेद्भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये । एतत्कल्पान्महादेवि मन्त्रः सिध्यति निश्चितम् ॥ ४० ॥ इति कुल-पुरश्चरणम् ।

अथ मन्त्रिणां मन्त्रस्नानम् :

तन्त्रान्तरे : स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते । विन्दुतीर्थेऽथवा स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४१ ॥ इडासुषुम्ने शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे । ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः किन्तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा ॥ ४२ ॥ इति स्नानम् ।

अथ सन्ध्या :

शिवशक्त्योः समायोगे यस्मिन् काले प्रजायते । सा सन्ध्या कुल-निष्ठानां समाधिस्थे प्रजायते ॥ ४३ ॥

तर्पणस्तु : मूलाधारात्ज्वलन्तीञ्च सोमसूर्याग्निरूपिणीम् । कुण्डलिनीं समुत्थाप्य परविन्दुं निवेश्य च । तदुद्भवामृतेनैव तर्पयेद्देहदेवताम् ॥ ४४ ॥

तदुक्तं नवरत्नेश्वरे : चन्द्रार्कानलसङ्घट्टाद् गलितं यत्परामृतम् । तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेदिष्टदेवताम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम् । कलासारेण सम्पूर्य तर्पयेत्तेन खेचरीम् ॥ ४६ ॥

ध्यानन्तु : किरणस्थं तदग्निस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम् । महाशून्ये लयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ॥ ४७ ॥

अथवा : निरालम्बे पदे शून्ये यत्तेज उपजायते तद्‌गर्भमभ्यसेन्नित्यं ध्यानमेतद्धि योगिनाम् । तद्‌गर्भमित्यन्तःकरणस्थमभ्यसेदिति ॥ ४८ ॥

अथान्तरपूजा :

मूलाधारात्कुलकुण्डलिनीम् उत्थाप्य, हृदयादर्कमण्डलं नीत्वा,

सहस्रदलकमलान्तर्गतचन्द्रामृतधारया मूलमन्त्रं स्मरन् सिञ्चेत् ॥ ४९ ॥ अर्चयन्विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् । न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहं भावेन पूजयेत् । तन्मयेति तदेकत्वज्ञानं सोऽहमिति । मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि परिभावयेत् । तामेव परमव्योम्नि परमानन्दवृंहिते । दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विनेति ॥ ४९क ॥

विषयपुष्पाणि यथा : अमायमनहङ्कारमरागममदन्तथा । अमोहकमदम्भञ्च अनिन्दाक्षोभकौ तथा । अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः । अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः । दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम् ॥ ५० ॥

अथ होमः :

आत्मानमपरिच्छिन्नं विभाव्यात्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मरूपं चतुरस्रं चित्कुण्डमानन्दमेखलायुतम् । अर्द्धमात्राकृतियोनिविभूषितं नाभौ ध्यात्वा, तन्मध्यस्थज्ञानाग्नौ जुहुयात् ।

यथा मूलान्ते : नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा । ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा । इति प्रथमाहुतिम् ।

मूलान्ते: धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा । सुषुम्ना-वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् स्वाहेति द्वितीयाहुतिम् ।

मूलान्ते : प्रकाशाकाशहस्ताभ्यां अवलम्ब्योन्मनी स्रुचा । धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् स्वाहेति तृतीयाहुतिं दद्यात् ।

ततो मूलान्ते : अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ । कस्मिंश्चिद्भूतमरीचिविकाशभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम् । इति चतुर्थाहुतिं जुहुयात् ॥ ५१ ॥ इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् । न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् । अयम् अन्तर्यागो ज्ञानिनामेव ॥ ५१-क ॥

अथान्तःपञ्चमकारयजनप्रकारः ।

तदुक्तं कुलार्णवे-अन्तर्यजने : सुरा शक्तिःशिवो मांसं तद्भोक्ता भैरवःस्वयम् । तयोरैक्ये समुत्पन्न आनन्दो मोक्ष उच्यते ॥ ५२ ॥ आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम् । तस्याभिव्यञ्जकं द्रव्यं योगिभिस्तेन पीयते । लिङ्गत्रयविशेषज्ञः षट्चक्रपद्मभेदकः । पीठस्थानानि चागत्य महापद्मवनं व्रजेत् । आमूलाधारमाब्रह्मरन्ध्रं गत्वा पुनः पुनः । चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्तिसामरस्यमहोदयः । व्योमपङ्कजनिस्यन्दसुधापानरतो नरः ।

मधुपानमिदं देवि चेतरन्मद्यपानकम् ॥ ५३ ॥ पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित् । परे लयं नयेच्चित्तं पलाशीति निगद्यते ॥ ५४ ॥ मानसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत् । मांसाशी स भवेद्देवि इतरे प्राणिघातकाः ॥५५॥ परशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भराः । मुक्तास्ते मैथुनं तत्स्यादितरे स्त्रीनिषेवकाः ॥ ५६ ॥

अथ कुमारी पूजा :

ज्ञानार्णवे : होमादिकं हि सकलं कुमारीपूजनं विना । परिपूर्णफलं न स्यात्पूजया तत्भवेद् ध्रुवम् । कुमारीपूजया देवि फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ५७ ॥ पुष्पं कुमार्यै यद्दत्तं तन्मेरुसदृशं फलम् । कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥ ५८ ॥

तत्र कुमारीनिर्णयो यामले : एकवर्षा भवेत्सन्ध्या द्विवर्षा सा सरस्वती । त्रिवर्षा च त्रिधामूर्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका । सुभगा पञ्चवर्षा तु षड्वर्षा तु उमा भवेत् । सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा तु कुब्जिका । नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चापराजिता । एकादशे च रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी । त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्ता पीठनायिका । क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चाम्बिका स्मृता । एवं क्रमेण सम्पूज्या यावत्पुष्पं न विद्यते ॥ ५९ ॥ प्रतिपदादिपूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् । महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके । महानवम्यां देवेशि कुमारीं च प्रपुजयेत् ॥ ६० ॥

अथ पूजाक्रमः :

तत्र कुमारीमानीय ऐंकारेण जलं तत्तन्नाम्ना देवीबुद्ध्या दद्यात् । ह्लींकारेण तथा पाद्यं श्रींकारेण चार्घ्यं हूंबीजेन चन्दनं ह्लींकारेण पुष्पाणि ह्सौः मन्त्रेण धूपदीपौ दद्यात् । ततः षडङ्गेन पूजयेत् ।

तद्यथा : ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं ह्सौः कुलकुमारीके हृदयाय नमः । हैं वैं ह्रैं श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा शिरसे स्वाहा ॥ ॐ श्रीं शिखायै वषट् । ऐं कुलवागीश्वरि कवचाय हुं । ऐं कुलेश्वरि नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्लीं अस्त्राय फट् । ततः ऐं सिद्धजयाय पूर्ववक्त्राय नमः । ऐं जयाय उत्तर-वक्त्राय नमः । ऐं ह्लीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः । ऐं कालिके दक्षवक्त्राय नमः । वाग्भवेन पुरक्षोभं मायाबीजे गुणाष्टकम् । श्रियो बीजे श्रियो लाभः हूं बीजेनारिसंक्षयः । भैरवेण च बीजेन खगत्वममरा-दिभिः । कुमारिका ह्यहं नाथ सदा त्वं हि कुमारिका ॥ ६१ ॥ अष्टोत्तरशतं वापि एकां वापि प्रपूजयेत् । पूजितां प्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्यव-मानिताः । कुमारी योगिनी साक्षात्कुमारी परदेवता । असुरा

दुष्टनागाश्च ये ये दुष्टग्रहा अपि । भूतवेतालगन्धर्वा डाकिनीयक्षराक्षसाः । याश्चान्या देवताः सर्वा भूर्भुवःस्वश्च भैरवाः । पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ॥ ६१-क ॥ विधियुक्तं कुमारी-भिर्भोजयेच्चैव भैरवीम् । पाद्यमर्घ्यं तथा धूपं कुंकुमं चन्दनं शुभम् । भक्तिभावेन सम्पूज्य कुमारीभ्यो निवेदयेत् ॥ ६२ ॥ प्रदक्षिणत्रयं कुर्यादादौ मध्ये तथान्ततः । पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतं स्वर्णमौक्तिकैः । दक्षिणाश्च कुमारीभ्यो दद्यात्प्रक्रमतस्तथा ॥ ६३ ॥

तथा तत्रैव : विवाहयेत्स्त्रयं कन्यां ब्रह्महसां व्यपोहति । गवां हत्या च स्त्रीहत्या सर्वं पापं विनश्यति । यो यश्च पुण्यकाले तु कन्यादानं प्रकल्पयेत् । भुक्तिमुक्तिफलं तस्य सौभाग्यं सर्वसम्पदः ॥ ६४ ॥ रुद्रलोके वसेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरः । तीर्थकोटिसहस्राणि अश्वमेध-शतानि च । तत्फलं लभते मर्त्यो यस्तु कन्यां विवाहयेत् ॥ ६५ ॥ वालुकासागरे ज्ञेयं तावदब्दसहस्रकम् । एकैकं कुलमुद्धृत्य रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६६ ॥ कन्यादानन्तु तत्त्वद्दैवताप्रीतये इति सम्प्रदायविदः । वस्तुतस्तु तत्तद्वर्षीयायाः कन्यायास्तत्तद्दैवता बुद्ध्या शिवरूपत्वं सम्प्रदानीये विभाव्य दद्यादिति रहस्यार्थः ॥ ६७ ॥

अथ योगप्रक्रिया :

गौतमीये : गौतम उवाचः । देवर्षे योगयुक्तात्मन् योगानुभवदर्शक । सांख्ययोगविशेषज्ञ कर्मयोगनिषेवक । विना योगं न सिध्येत्त कुण्डली चंक्रमः प्रभो । मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो । तावत्किञ्चिन्न सिध्येतयन्त्रमन्त्रार्चनादिकम् । जागर्ति यदि सा देवि बहुभिः पुण्यसञ्चयैः । तदा प्रसादमायान्ति यन्त्र-मन्त्रार्चनादयः ॥६८॥ शिववद्विहरेल्लोकेष्वष्टै-श्वर्यसमन्वितः । योगयोगाद्भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डिता । सिद्धे मनो परावाप्तिरिति शास्त्रार्थनिर्णयः । तस्मात्कार्यं परं योगं कथयस्व मुनीश्वर । मुक्तात्मा येन विहरेत्स्वर्गे मर्त्ये रसातले । जीवन्मुक्तश्च देहान्ते निर्वाणपदमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥

नारद उवाच : कथयामि तव स्नेहात्योगयोग्योऽसि गौतम् । संसारोत्तारणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते । ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥ ७० ॥ तव स्नेहात्समाख्याता योगविघ्नकरास्त्विमे । कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यसंज्ञकाः । योगाङ्गैरेभिर्जित्वा तान् योगिनो योगमाप्नुयुः ॥ ७१ ॥ यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् । प्रत्याहारं

धारणाख्यं ध्यानं सार्द्धं समाधिना । अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो योगसाधने ॥ ७२ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् । क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ ७३ ॥ तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् । सिद्धान्तश्रवणश्चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् । दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ॥ ७४ ॥ आसनानि पूर्वोक्तानि । इडयाकर्षयेद्वायुः वाह्यं षोडशमात्रया । धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया । सुषुम्नामध्यगं सम्यक्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः । नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद् योगवित्तमः । प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्र-विशारदाः ॥ ७५ ॥ भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् । मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश । जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तं विदुर्बुधाः । तदपेतं निर्गर्भञ्च प्राणायामं परं विदुः ॥७६॥ क्रमादभ्यासतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः । मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः । उत्तमस्यगुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥७७॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम् । बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारो विधीयते ॥ ७८ ॥ अंगुष्ठ-गुल्फजानूरुसीमनीलिङ्गनाभिषु । हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां तथा नसि । भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि । धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥ ७९ ॥ समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्त्तिना । आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥ ८० ॥ समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः । समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥ ८१ ॥ इत्यादि कथितं विप्र कामादिषट्कनाशनम् । इदानीं कथये तेऽहं मन्त्र-योगमनुत्तमम् ॥ ८२ ॥ विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं मुने । चन्द्र-सूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् । तिस्रः कोट्यस्तदर्द्धेन शरीरे नाड्यो मताः । तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः ॥८३॥ प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी । इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी । शक्तिरूपा च सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा । दक्षिणे पिङ्गलाख्या तु पुंरूपा सूर्यविग्रहा । दाडिमीकेशर-प्रख्या विषाख्या मुनिभिः स्मृता ॥ ८४ ॥ मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलादाब्रह्मविग्रहा । सर्व-तेजोमयी सा तु सुषुम्ना बहुरूपिणी ॥८५॥ तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा । सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा । विसर्गा-द्विन्दुपर्यन्तमेतात्तिष्ठति तत्त्वतः ॥ ८६ ॥ मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छा-ज्ञानक्रियात्मके । मध्ये स्वयम्भुलिङ्गन्तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ ८७ ॥ तदूर्ध्वं कामबीजन्तु कलशान्तीन्दुनादकम् । तदूर्ध्वे तु शिखाकारा

कुण्डली ब्रह्मविग्रहा ॥ ८८ ॥ तद्बाह्ये हेमवर्णाभं वसवर्णं चतुर्दलम् । द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ॥ ८९ ॥ तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् । बादिलान्तषड्वर्णेन युक्ताधिष्ठानसंज्ञकम् ॥९०॥ मूलमाधार-षट्कानां मूलाधारं ततो विदुः । स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ ९१ ॥ तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महत्प्रभम् । मेघाभं विद्यु-दाभश्च बहुतेजोमयन्ततः । तत्पद्मं मणिवद्भिन्नं मणिपूरं तथोच्यते ॥९२॥ दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् । शिवेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वलोकैककारणम् ॥ ९३ ॥ तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् । कादिठान्ताक्षरैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ॥ ९४ ॥ तन्मध्ये बाणलिङ्गस्तु सूर्यायुतसमप्रभम् । शब्दब्रह्ममयं शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते । अनाहताख्यं पद्मं तन्मुनिभिः परिकीर्त्यते ॥ ९५ ॥ आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् । तदूर्ध्वन्तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम् । स्वरैः षोडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णैर्महत्प्रभम् । विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्या हंसलोकनात् । विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ॥ ९६ ॥ आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् । आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम् ॥९७॥ कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु बोधनीन्तु तदूर्ध्वतः । एवञ्च शिवचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥ ९८ ॥ सहस्राराम्बुजं विन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ॥ ९९ ॥ आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः । गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ॥ १०० ॥ लिङ्गभेदक्रमेणैव विन्दुचक्रन्तु प्रापयेत् । शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभावं विचिन्तयेत् ॥ १ ॥ तत्रोत्थितामृतरसं द्रुतलाक्षारसोपमम् । पाययित्वा च तां शक्तिं कृष्णाख्यां प्रयोगसिद्धि-दाम् । षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया । आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ॥ २ ॥ एवमभ्यस्यमानस्य अहन्यहनि मारुतम् । जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ३ ॥ पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिध्यन्ति नान्यथा । ये गुणाः सन्ति देवस्य पञ्चकृत्यविधायिनः । ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा । इत्येतं कथितं सर्वं योगमार्ग-मनुत्तमम् ॥ ४ ॥ इदानीं धारणाख्यान्तु शृणुष्वावाहितो मया । दिक्काला-द्यनवच्छिन्ने कृष्णे चेतो निधाय च । तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्य-योजनात् ॥ ५ ॥ अथवा समलं चित्तं यदा क्षिप्रं न सिध्यति । तदावय-वयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत् ॥ ६ ॥ पादाम्भोजे मनो दद्यान्नख-किञ्जल्कचित्रिते । जङ्घायुग्मे तथा रामकदलीकाण्डशोभिते । ऊरुद्वये मत्तहस्तिकरदण्डसमप्रभे । गङ्गावर्त्तगभीरे तु नाभौ सिद्धविले ततः ।

उदरे वक्षसि तथा हारे श्रीवत्सकौस्तुभे। पूर्णचन्द्रायुतप्रख्ये ललाटे चारुकुन्तले। शङ्खचक्रगदाम्भोजदोर्दण्डपरिमण्डिते। सहस्रादित्यसङ्काशे किरीटे कुण्डलद्वये। स्थाने नियोजयेन्मन्त्री विशुद्धः शुद्धचेतसा ॥ ७ ॥ मनो निवेश्य कृष्णे वै तन्मयो भवति ध्रुवम्। यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्मये। तावदिष्टमनुर्मन्त्री जपहोमं समभ्यसेत्। कृष्ण इत्युपलक्षणम् ॥ ८ ॥ अतःपरं न किञ्चित्तु कृत्यमस्ति तथा हरेः। विदिते परतत्त्वे तु समस्तैर्नियमैरलम्। तालवृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते ॥ ९ ॥ मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते। न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः। द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धि-कारणम् ॥ १० ॥ तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते। एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ ११ ॥ एवं ते कथितं ब्रह्मन्मन्त्रयोग-मनुत्तम्। दुर्लभं विषयासक्तैः सुलभं त्वादृशामपि ॥ १२ ॥

अथ प्रकारान्तरम् :

शारदायाम् : षण्णवत्यंगुलायामं शरीरमुभयात्मकम्। गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद्द्व्यंगुलं विदुः। तस्य द्विगुण विस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम्। नाड्यस्तत्र समुद्भूता मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्तिताः ॥ १३ ॥ इडा वामे स्थिता नाडी पिङ्गला दक्षिणे मताः। तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्ना वंशमाश्रिता ॥ १४ ॥ पदांगुष्ठद्वयं याता शिखाभ्यां शिरसा पुनः। ब्रह्म स्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी ॥ १५ ॥ तस्या मध्यगता नाडी चित्राख्या योगिवल्लभा। ब्रह्मरन्ध्रं विदुस्तस्यां पद्मसूत्रनिभं परम्। आधारांश्च विदुस्तत्र मतभेदादनेकधा। दिवामार्गमिदं प्राहुरमृतानन्द-कारणम् ॥ १६ ॥ इडायां सञ्चरेच्चन्द्रः पिङ्गलायां दिवाकरः। ज्ञातौ योगनिदानज्ञैः सुषुम्नायाश्च तावुभौ ॥ १७ ॥ आधारकन्दमध्यस्थं त्रिकोणमतिसुन्दरम्। ज्योतिषां निलयं दिव्यं प्राहुरागमवेदिनः ॥ १८ ॥ तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता। परिस्फुरति सर्वात्मा सुप्ताहि-सदृशाकृतिः ॥ १९ ॥ विभर्ति कुण्डलीशक्तिरात्मानं हंसमाश्रिताः। हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणा नाडीपथाश्रयाः ॥ २० ॥ आधारादुत्थितो वायुर्यथावत्सर्वदेहिनाम्। देहं वाप्य स्वनाडीभिः प्रयाणं कुरुते वहिः ॥ २१ ॥ द्वादशांगुलमानेन तस्मात्प्राण इतीरितः। रम्ये मृद्वासने शुद्धे पट्टाजिनकुशोत्तरे। बद्धैवमासनं योगी योगमार्गपरो भवेत् ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा भूतोदयं देहे यथावत्प्राणवायुना। तत्तद्भूतं यजेद्देहे दृढत्वावाप्तये सुधीः। आसनभूतोदये प्रागुक्ते ॥ २३ ॥ अंगुलीभिर्दृढं वद्धा करणानि

समाहितः। अंगुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने। नासारन्ध्रे मध्याभ्यामन्याभिर्वदनं दृढम्। वद्धात्मप्राणमनसामेकत्वं समनुस्मरन्। धारयेन्मारुतं सम्यग्योगोऽयं योगिवल्लभः ॥ २४ ॥ नादः सञ्जायते तस्य क्रमादभ्यस्यतः शनैः। मत्तभृङ्गावलीगीतसदृशः प्रथमो ध्वनिः ॥ २५ ॥ वंशी कांस्यानिलापूर्णवंशध्वनिनिभोऽपरः। घण्टारवसमः पश्चाद्घन-मेघस्वनोऽपर। एवमभ्यस्यतः पुंसः संसारध्वान्तनाशनम्। ज्ञानमुत्पद्यते पूर्वं हंसलक्षणमव्ययम् ॥२६॥ पुंप्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ विन्दुसर्गौ मनीषिभिः। ताभ्यां क्रमात् समुद्भूतौ विन्दुसर्गावसानकौ। हंसौ तौ पुं-प्रकृत्याख्यौ हं पुमान् प्रकृतिस्तु सः। अजपा कथिता ताभ्यां जीवो यामुपतिष्ठते ॥ २७ ॥ पुरुषं त्वाश्रयं मत्वा प्रकृतिर्नित्यमात्मनः। यदा तद्भावमाप्नोति तदा सोऽहमियं भवेत् ॥ २८ ॥ सकारार्णं हकारार्णं लोपयित्वा ततः परम्। सन्धि कुर्यात्पूर्वरूपं तदासौ प्रणवो भवेत् ॥ २९ ॥ परमानन्दमयं नित्यं चैतन्यैकगुणात्मकम्। आत्माभेदस्थितं योगी प्रणवं भावयेत्सदा ॥ ३० ॥ आम्नायवाचामतिदूरमाद्यं वेद्यं सुसम्वेद्यगुणेन सन्तः। आत्मा-नमानन्दरसैकसिन्धुं, पश्यन्ति ते तारकमात्मनिष्ठाः ॥ ३१ ॥ सत्यं हेतुविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं, व्याप्तं स्थावरजङ्गमं निरूपमं चैतन्यमन्तर्गतम्। आत्मानं रविचन्द्रवह्निवपुषं तारात्मकं सन्ततं नित्या-नन्दगुणालयं सुकृतिनं पश्यन्ति रुद्धेन्द्रियाः ॥ ३२ ॥ तारस्य पञ्चविभवैः परिचोयमानं, मानैकगम्यमनिशं श्रुतिमौलिमृग्यम्। सम्वित्समस्तममल-स्वरच्युतं तत्तेजः परं भजत सान्द्रसुधाम्बुराशिम् ॥ ३३ ॥ हिरण्मयं दीप्तमनेकवर्णं त्रिमूर्तिमूलं निगमादिबीजम्। अंगुष्ठमात्रं पुरुषं भजन्ते, चैतन्यमात्रं रविमण्डलस्थम् ॥ ३४ ॥ ध्यायन्ति दुग्धाब्धिभुजङ्गभोगे शयानमाद्यं कमलासहायम्। प्रफुल्लनेत्रोत्पलमञ्जनाभं चतुर्मुखेनाश्रित-नाभिपद्मम् ॥ ३५ ॥ आम्नायगं त्रिचरणं घननीलमुद्यत्श्रीवत्सकौस्तु-भगदाम्बुजशङ्खचक्रम्। हृत्पुण्डरीकनिलयं जगदेकमूलमालोकयन्ति कृतिनः पुरुषं पुराणम् ॥ ३६ ॥ विन्दोर्नादसमुद्भवः समुदिते नादे जगत्कारणं, तारं तत्त्वमुखाम्बुजं परिवृतं वर्णात्मवाहुव्रजैः। अम्नायांघ्रि-चतुष्टयं पुररिपोरानन्दमूलं वपुः, पायान्नो मुकुटेन्दुखण्डविल-सद्दिव्यामृतौघप्लुतम् ॥ ३७ ॥ पिण्डं भवेत्कुण्डलिनी शिवात्मा पदं तु हंसः सकलान्तरात्मा। रूपं स्मृतं विन्दुरमन्दकान्तिरतीवरूपं शिव-सामरस्यम् ॥ ३८ ॥ पिण्डादियोगं शिवसामरस्यात्सबीजयोगं प्रवदन्ति सन्तः। शिवे लयं नित्यगुणाभियुक्ते, निर्बीजयोगं फलनिर्व्यपेक्षम् ॥ ३९ ॥

मूलोन्निद्रभुजङ्गराजसदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं, भित्त्वाधारसमूहमाशुविलसत्सौदामिनीसन्निभाम् । व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतौघैः प्लुतां, संभाव्य स्वगृहं गतां पुनरिमां सञ्चिन्तयेत्कुण्डलीम् ॥ ४० ॥ हंसं नित्यमनन्तमव्ययगुणं स्वाधारतो निर्गता, शक्तिः कुण्डलिनी समस्तजननी हस्ते गृहीत्वा च तम् । याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनानुभूय स्वयं, यान्ती स्वाश्रयमर्ककोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी ॥ ४१ ॥ अव्यक्तं परबिन्दुसञ्चितरुचिं नीत्वा शिवस्यालयं, शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयवपुर्विद्युल्लतासन्निभा । आनन्दामृतमध्यगं पुरभिदं चन्द्रार्ककोटिप्रभं, संवीक्ष्य स्वपुरं गता भगवती ध्येयानवद्या गुणैः ॥ ४२ ॥ मध्ये वर्त्म समीरणद्वयमिथःसङ्घट्टसंक्षोभजं, शब्दस्तोममतीत्य तेजसि तडित्कोटिप्रभाभास्वरे । उद्यान्तीं समुपास्महे नवजवासिन्दूरसन्ध्यारुणां, सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवं प्राप्तां परां देवताम् ॥ ४३ ॥ गमनागमनेषु जाङ्घिकी सा तनुयाद्योगफलानि कुण्डली । उदिता कुलकामधेनुरेषा भजतां कांक्षितकल्पवल्लरी ॥ ४४ ॥

अथ प्रशंसामाह :

यामले : आगमे सर्वविद्याश्च सर्वशास्त्राणि चागमे । आगमे देवदेव्या हि आगमाच्च परा गतिः ॥ ४५ ॥ येऽभ्यस्यन्ति इदं शास्त्रं पठन्ति पाठयन्ति वा । सिद्धयोऽष्टौ करे तेषां धनधान्यादिसूनवः ॥ ४६ ॥ आदृताः सर्वलोकेषु भोगिनः क्षोभकारकः । आप्नुवन्ति परं ब्रह्म सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ४७ ॥ वेदार्थशास्त्रविपरीतविलोकनेन, प्रायो भवद्यजनलोपभवेक्ष्य मातः । तद्गूढकूटविशदीकरणेन जातान् दोषान् क्षमस्व तव पादयुगेषु याचे ॥ ४८ ॥ यद्यन्मया नाथ विमूढबुद्ध्या, स्पष्टीकृतं गुह्यतमन्तु तन्त्रे । क्षन्तव्यमेतत्करुणानिधान, क्रोधो न चार्हः खलु पामरेषु ॥ ४९ ॥

इति महामहोपाध्यायश्रीकृष्णानन्दवागीशभट्टाचार्यविरचितस्तन्त्रसारः समाप्तः ।

परिशिष्टम्

देवताविशेषाणां मन्त्रस्तोत्रादिप्रकरणम्

अथ गङ्गामन्त्रः :

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गङ्गां भुवनपावनीम्। यथोक्तचिन्तया चिन्त्यां भोगमोक्षप्रदायिनीम् ॥ १ ॥

ब्रह्मसंहितायाम् : विषबीजं समुद्धृत्य मायां विष्णुप्रियां ततः। गङ्गापदं ङेयुतान्तं वह्निजायावधिर्मनुः। अष्टाक्षरी महाविद्या गङ्गाया भुवि दुर्लभा ॥ २ ॥ विषबीजं प्रणवः माया ह्रीं, विष्णुप्रिया श्रीं।

ध्यानं यथा-क्रियायोगसारे : ददर्श पुरतो गङ्गां द्विभुजां मकरासनाम्। कुन्देन्दुशङ्खधवलां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ ३ ॥ (अन्यद ध्यानं ब्रह्मवैवर्तादौ द्रष्टव्यम्)। इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्। दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचारांश्च षोडश ॥४॥ आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम्। धूपदीपौ च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥ ५ ॥ वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानि षोडश ॥ ६ ॥ दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत् संस्तूय सम्पुटाञ्जलिः। सम्पूज्यैवं पकारेण भोगमोक्षफलं लभेत्। अन्यत्सर्वं सामान्यपद्धत्युक्तवत् ॥७॥

अथ कार्तिकेयमन्त्रः :

भूतडामरे : विषं रौद्रं क्रोधपदं धारिणे च ततः परम्। वह्निजायान्ते उक्तोऽयं मन्त्रः कौमाररूपिणः। विषं प्रणवं, रौद्रं मायाबीजम् ॥ १ ॥

ध्यायेद्यथा : कार्तिकेयं महाभागं मयूरोपरिसंस्थितम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं शक्तिहस्तं वरप्रदम्। द्विभुजं शत्रुहन्तारं नानालङ्कारभूषितम्। षण्मुखं तुङ्गनेत्रञ्च सर्वसैन्यपुरस्कृतम् ॥ २ ॥ एवं ध्यात्वा पूर्ववत्सर्वं कृत्वा प्रणमेत्—ॐ कार्तिकेयं नमस्यामि गौरीपुत्रं शुभप्रदम्। षडाननं महाभागं दैत्यदर्पनिसूदनम्। षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कलाः। देव्याश्चरितमेतत्तु, सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ ३ ॥

अथ षष्ठीमन्त्रः :

यथा : वेदादि-बीजमुद्धृत्य मायाबीजं ततः परम्। षष्ठीदेवीपदं ङेऽन्तं

वह्निजायान्वितो मनुः। अष्टाक्षरो महामन्त्रः षष्ठीदेव्याः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥

ध्यानं यथा : शष्ठांशं प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठाञ्च सुप्रभाम् । सुपुत्रदाञ्च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । पवित्ररूपां परमां देवसेनामहं भजे ॥ २ ॥ अन्यत्सर्वं पूर्ववत् । पुरश्चरणं लक्षजपः ।

ब्रह्मवैवर्ते : अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने। स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः । मङ्गलचण्डया ब्रह्मवैवर्ते ज्ञेयम् ॥ ३ ॥

अथ विषहरी-जगद्गौरी-मनसामन्त्रः :

हलाहलं समुद्धृत्य लज्जाबीजमतः परम् । नमः पदं ततः पश्चात् मनसायै ततो वदेत् । स्वाहान्ता परमा विद्या विषघ्नी सर्वदेहिनाम् । दशाक्षरीयं कथिता सर्वेषामधिदेवता । हलाहलं प्रणवः ॥ १ ॥

ध्यानं तत्रैव : श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् । महाज्ञानयुताञ्चैव प्रवरां ज्ञानिनां सत्यम् । सिद्धाधिष्ठातृदेवीञ्च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे । पूजादिकं पूर्ववत् । एवं जरत्कारुमुन्यास्तीकमुनिनागाद्यावरणान्पूजयेत् ॥ २ ॥

अथ स्वाहा-मन्त्रः :

ब्रह्मवैवर्ते : ॐ ह्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा ततः परम् । द्वादशार्णा महाविद्या स्वाहादेव्याः प्रकीर्तिता ।

ध्यानं तत्रैव : स्वाहां मन्त्राङ्गभूताञ्च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् । सिद्धाञ्च सिद्धिदां नृणाम् कर्मणां फलदां भजे । पूजादिकं सर्वं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

अथ कर्मणां दक्षिणामन्त्रः :

तत्रैव : ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा च द्विपञ्चाक्षरः ।

ध्यानं यथा : लक्ष्मीदक्षांशसम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम् । सर्वकर्मसु दक्षाञ्च फलदां सर्वकर्मणाम् । विष्णोः शक्तिस्वरूपाञ्च सुशीलां शुभदां भजे । पूजादिकं पूर्ववत् ॥ ४ ॥

अथ क्रोधराज-मन्त्रः :

यथा भूतडामरे : विषञ्च वज्रज्वालेन हनयुग्ममतः परम् । सर्वभूतान्ततः कूर्चमन्त्रान्तमन्त्रमीरितम् । ध्यानपूजादिकं तत्रैव द्रष्टव्यम् । अस्य मन्त्रस्य लक्षजपः सर्वार्थसिद्धये आत्मरक्षार्थमादौ सर्वत्रैव कार्यम् ।

अथ गङ्गाकवचम् :

ॐ गङ्गायै नमः। गङ्गाकवचस्य विष्णुर्ऋषिर्विराट्छन्दः चतुर्दश-पुरुषोद्धारणार्थपाठे विनियोगः। ॐ द्रव्यरूपा महाभागा स्नाने च तर्पणेऽपि च। अभिषेके पूजने च पातु मां शुक्लरूपिणी ॥ १ ॥ विष्णु-पादप्रसूतासि वैष्णवी नामधारिणो। पाहि मां सर्वतो रक्षेत्गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ २ ॥ मन्दाकिनी सदा पातु देहान्ते स्वर्गवल्लभा। अलकनन्दा च वामभागे पृथिव्यां या तु तिष्ठति ॥ ३ ॥ भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा। पञ्चाक्षरमिमं मन्त्रं यः पठेच्छृणुयादपि ॥ ४ ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात्। गुर्विणी जनयेत् पुत्रं बन्ध्या पुत्रवती भवेत् ॥ ५ ॥ गङ्गास्मरणमात्रेण निष्पापो जायते नरः। यः पठेद्गृहमध्ये तु गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ ६ ॥ स्नानकाले पठेद्यस्तु शतकोटिफलं लभेत्। यः प्रठेत्प्रयतो भक्त्या मुक्तः कोटिकुलैः सह ॥ ७ ॥ इति विष्णुयामले शिवपार्वतीसंवादे गङ्गाकवचं समाप्तम् ॥

अथ कार्तिकेयाक्षयकवचम् :

देव्युवाच : ये ये मम सुता जातास्ते ते कंसनिषूदिताः। कथं मे सन्ततिस्तिष्ठेत् ब्रूहि मे मुनिपुङ्गव ॥ १ ॥

नारद उवाच : येनोपायेन लोकानां सन्ततिश्चिरजीविता। तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ॥२॥ अस्य स्कन्दाक्षयकवचस्य नारद-ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सेनानीर्देवता वत्सरक्षणे विनियोगः। ॐ बाहुलेयः शिरः पायात् स्कन्धौ शङ्करनन्दनः ॥ ३ ॥ मुण्डं मे पार्वतीपुत्रो हृदयं शिखिवाहनः। कटिं पायाच्छक्तिहस्तो जङ्घे मे तारकान्तकः ॥ ४ ॥ गुहो मे रक्षतां पादौ सेनानीर्वत्समुत्तमम्। स्कन्दो मे रक्षतामङ्गं दश-दिगग्निभूर्मम् ॥ ५ ॥ षाण्मातुरो भये घोरे कुमारोऽव्याच्छ्मशानके ॥ ६ ॥ ॐ इति ते कथितं भद्रे कवचं परमाद्भुम्। धृत्वा पुत्रमवाप्नोति सुभव्यं चिरजीविनम् ॥ ७ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा कवचं विधृतं तया। कवचस्य प्रसादेन जीववत्सा भवेत्सती ॥ ८ ॥ कवचस्य प्रसादेन तस्याः पुत्रो जनार्दनः। धारिकायास्तथा पुत्रो निर्जरैरपि दुर्जयः ॥ ९ ॥ इति उमायामले कार्तिकेयाक्षयकवचं समाप्तम्।

अथ वंशलाभाख्य-कवचम् :

नारद उवाच : भगवन् सर्वधर्मज्ञ पार्वतीप्राणवल्लभ। वंशलाभाख्य-कवचं कृपया मे प्रकाशय ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच : वंशलाभाख्यकवचं दुर्लभं भुवनत्रये। यस्य प्रसादात्

कमला लेभे तनयमुत्तमम् ॥ २ ॥ कामदेवमपर्णा च विनायक-षडाननौ । जयन्तमिन्द्रवनिता देवपत्न्यः सुतानपि ॥ ३ ॥ यस्य वंशलाभाख्यकवचस्य भैरवऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीपार्वती देवता जीवित्तनयप्राप्तये विनियोगः । ॐ पार्वती मे शिरः पातु वक्त्रं पातु महेश्वरी । भवानी नयने पातु भ्रुवौ शङ्करसुन्दरी ॥ ४ ॥ मध्ये पातु महेशानि नितम्बं सुरवन्दिता । ऊरु गौरी सदा पातु कौषिकी जानुयुग्मकम् ॥ ५ ॥ बाहु द्वौ सुमुखी पातु पाणियुग्मं सुभाविनी । पादौ ब्रह्ममयी पातु श्रवणे भुवनेश्वरी ॥ ६ ॥ नासिके ललिता पातु कण्ठं त्रिपुरसुन्दरी । रुद्राणी हृदयं पातु स्तनद्वन्द्वं महेश्वरी ॥ ७ ॥ आपादमस्तकं पातु सर्वाङ्गं सर्वमङ्गला । ॐ इति ते कथितं विप्र कवचं देवपूजितम् ॥ ८ ॥ पठित्वा धारयित्वा च अक्षयं तनयं लभेत् । ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा पठेन्नरः ॥ ९ ॥ ॐ सहस्रादित्यसङ्काशां सर्वाभरणभूषिताम् । त्रिनेत्रां पाणिविन्यस्त पाशां-कुशवराभयाम् ॥१०॥ इति श्रीभैरवतन्त्रे शिवनारद-संवादे वंशलाभाख्य-कवचं समाप्तम् ।

अथ षष्ठी-स्तोत्रम् :

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् । वाञ्छाप्रदञ्च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥ १ ॥

प्रियव्रत उवाच : ॐ नमो देव्यै महादेव्यै सिद्धयै शान्त्यै नमो नमः । शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ २ ॥ वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः । सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ३ ॥ शक्तिषष्ठीस्वरूपायै सिद्धायै च नमो नमः । मायायै सिद्ध-योगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ४ ॥ सारायै सारदायै च परायै सर्वकर्मणाम् । बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ५ ॥ कल्याण-दायै कल्याण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । फलदायै फलिन्यै च फलदायै च कर्मणाम् । प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६॥ पूज्यायै स्कन्द-कान्तायै सर्वेषु सर्वकर्मसु । देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ७ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नमो नमः । धनं देहि श्रियं देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥ ८ ॥ धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । देहि भूमिं प्रजां देहि राज्यं देहि सुपूजिते । कल्याणञ्च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ९ ॥ ॐ इति देवीञ्च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः । यशस्विनञ्च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ १० ॥ षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति दिने-दिने । अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥ ११ ॥ वर्षमेकञ्च

यो भक्त्या इदं स्तोत्रं शृणोति च । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते ॥ १२ ॥ वीरपुत्रञ्च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम् । सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीदेवी प्रसादतः ॥१३॥ इति ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे षष्ठीस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ विषहरीमनसा-स्तोत्रम् :

ॐ जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी । वैष्णवी नागभगिनी शैवा नागेश्वरी तथा ॥ १ ॥ जगत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरीति च । महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥२॥ ॐ । द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥ ३ ॥ नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे । नागक्षतमहादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ ४॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः । नित्यं पठेद्यस्तु दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥ ५ ॥ दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः ॥ नागौघभूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः । विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत् ॥ ६ ॥ इति ब्रह्मवैवर्ते मनसा-स्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ स्वाहा-स्तोत्रम् :

वह्निरुवाच : ॐ स्वाहाद्याः प्रकृतेरंशा मन्त्रान्तरशरीरिणी । मन्त्राणां फलदात्री च धात्री च जगतां सती ॥ १ ॥ सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् । हुताश-दाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥ २ ॥ संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी । देवजीवनरूपा च देव-पाषाणकारिणी ॥ ३ ॥ ॐ । षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् । अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥ ४ ॥ इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे स्वाहा-स्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ दक्षिणा-स्तोत्रम् :

यक्ष उवाच : ॐ गोलोकगोपी त्वं देवी गोपीनां प्रवरा परा । राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिये ॥ १ ॥ कार्तिकीपूर्णिमायान्तु रासे राधामहोत्सवे । आविर्भूता दक्षिणांसात्कृष्णस्य तेन दक्षिणा ॥ २ ॥ पुरा त्वञ्च सुशीलाख्या शीलेन शोभनेन च । कृष्णदक्षांसवासाच्च राधा-शापाच्च दक्षिणा ॥ ३ ॥ गोलोकात्त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता । कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु ॥ ४ ॥ कर्मिणां कर्मणां देवि त्वमेव फलदायिका । त्वया विना च सर्वेषां सर्वकर्म च निष्फलम् ॥ ५ ॥

फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले। त्वया विना तथा कर्म कर्मिणाञ्च न शोभते ॥ ६ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च। कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥ ७ ॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपो महेश्वरः। यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥ ८ ॥ फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः। स्वयं कृष्णश्च भगवान् स च शक्तस्त्वया सह ॥ ९ ॥ त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि। सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा तत्परस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः। तुष्टा बभूव सा देवी भजेत्तां कमलाकलाम् ॥ ११ ॥ ॐ। इदञ्च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत्। फलञ्च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ॥ १२ ॥ राजसूये बाजपेये गोमेधे नरमेधके। अश्व-मेधे मङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्वरे ॥ १३ ॥ धनदे भूमिदे फल्गौ पूर्णेष्टौ गजमेधके। लौहयज्ञे स्वर्णयज्ञे पाटने ब्रह्मखण्डने ॥ १४ ॥ शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शत्रुयज्ञे च बन्धुके। इष्टौ वरुणयागे च कण्टके वैरिमर्दने ॥ १५ ॥ शुचियागे धर्मयागे रोचने पापमोचने। बन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥ १६ ॥ एतेषाञ्च समारम्भे इदं स्तोत्रञ्च यः पठेत्। निर्विघ्ने च तत्कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥ इति ब्रह्मवैवर्ते नारायण-नारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दक्षिणास्तोत्रं समाप्तम्।

अथ बलराम-स्तोत्रम् :

ॐ नमस्ते हलधृग् राम नमस्ते मुषलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥१॥ नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥ २ ॥ ॐ। इदं स्तोत्रं परं पुण्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। यः पठेतप्रयतो भक्त्या सर्वसिद्धेः स भाजनम् ॥ ३ ॥ इति उत्कलखण्डे बलरामस्तोत्रम्।

अथ महाकाली-स्तोत्रम् :

महाकालरुद्र उवाच : ॐ अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रति-व्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वैकमूर्तिः। गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या त्वमेका परब्रह्म-रूपेण सिद्धा ॥ १ ॥ अगोत्राकृतित्वादनैकान्तिकत्वादलक्ष्या-गमत्वादशेषाकरत्वात्। प्रपञ्चालसत्वादनारम्भकत्वत्त्वमेका पर-ब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ २ ॥ असाधारणत्वादसम्बन्धकत्वादभिन्नाश्रयत्वादना-कारकत्वात्। अविद्यात्मकत्वादनाद्यकत्वात्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥३॥ यदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो न कालो न वा पञ्चभूतानि नाशा। तदा कारणी भूतसत्त्वैकमूर्तिस्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ४ ॥ न

मीमांसका नैव कालादितर्का न सांख्या योगा न वेदान्तवेदाः। न देवा विदुस्ते निराकारभावं त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ५ ॥ न ते नामगोत्रे न ते जन्ममृत्युर्न ते धामचेष्टे न ते दुःखसौख्ये। न ते मित्रशत्रू न ते बन्धमोक्षौ त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ६ ॥ न बाला न च त्वं वयःस्था न वृद्धा न च स्त्री न षण्डः पुमान्नैव च त्वम्। न च त्वं सुरो नासुरो नो नरो वा त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ७ ॥ जले शीतलत्वं शुचौ दाहकत्वं विधौ निर्मलत्वं रवौ तालकत्वम्। तवैवाम्बिके यस्य कस्यापि शक्तिस्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ८ ॥ पपौ क्ष्वेडमुग्रं पुरा यन्महेशः पुनः संहरत्यन्तकाले जगच्च। तवैव प्रसादान्न च स्वस्य शक्त्या त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ ९ ॥ करालाकृतीन्याननानि श्रयन्ती भजयन्ती करास्त्रादि बाहुल्यमित्थम्। जगत्पालनायासुराणां वधाय त्वमेका परब्रह्म-रूपेण सिद्धा ॥ १० ॥ महाचण्डयोगेश्वरी गुह्यकाली कराली महाडामरी साट्टहासा। जगद्भासिनी चण्डिका पालिकेति त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥११॥ रुवन्ती शिवाभिर्वहन्ती कपालं जयन्ती सुरारीन् वदन्ती प्रसन्ना। नटन्ती पटन्ती चलन्ती हसन्ती त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १२ ॥ अपादापि वाताधिकं धावसि त्वं श्रुतिभ्यां विहीनापि शब्दं शृणोषि। अनासापि जिघ्रस्यनेत्रापि पश्यस्यजिह्वापि नानारसास्वादविज्ञा ॥ १३ ॥ यथाविम्बमेकं रवेरम्बरस्थं प्रतिच्छायया यावदेकोदकेषु। समुद्भासतेऽनेक-रूपं यथावत्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥ १४ ॥ यथा भ्रामयित्वा मृदं चक्रमध्ये कुलालो विधत्ते शरावं घटञ्च। महामोहयन्त्रेषु भूतान्यशेषान् तथा मानुषांस्त्वं सृजस्यादिसर्गे ॥ १५ ॥ यथा रज्जुरञ्जकर्कटष्टिष्वक्क-स्मान्नृणां रूप्यदर्वीकरम्बुभ्रमः स्यात्। जगत्यत्र तत्तन्मये तद्वदेव त्वमेकैव तत्तन्निवृत्तौ समस्तम् ॥ १६ ॥ महाज्योतिराकारसिंहासनं यत्स्वकीयान् सुरान् वाहयस्युग्रमूर्त्ते। अवष्टभ्य पद्भ्यां शिवं भैरवञ्च स्थिता तेन मध्ये भवत्येव मुख्या ॥ १७ ॥ कुयोगासने योगमुद्राभिनीतिः कुगोमायुपोतस्य बलाननञ्च। जगन्मातराटक्तदापूर्वलोला कथङ्कारमस्मद्विधैर्देवि गम्या ॥ १८ ॥ विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशामृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च। तवेदृग्विधा या निजाकारमूर्तिः किमस्माभिरन्तर्हृदि ध्यायितव्या ॥ १९ ॥ महाघोरकालानलज्वालजालाहितत्यन्तवासा महाट्टाट्टहासा। जटाभारकाला महामुण्डमाला विशाला त्वमीदृग्मया ध्यायसेऽम्ब ॥२०॥ तपो नैव कुर्वन् वपुः खेदयामि व्रजन्नापि तीर्थं पदे खञ्जयामि। पठन्नापि वेदान् जनिं यापयामि त्वदंघ्रिद्वयं मङ्गलं साधयामि ॥ २१ ॥

तिरंकुर्वतोऽन्यामरोपासनार्चे परित्यक्त धर्माध्वरस्यास्य जन्तोः। त्वदाराधनान्यस्तचित्तस्य किं मे करिष्यन्त्यमी धर्मराजस्य दूताः ॥२२॥ न मन्ये हरिं नो विधातारमीशं न वह्निं न चार्कं न चेन्द्रादिदेवान्। शिवोदीरितानेकवाक्यप्रबन्धैस्त्वदर्चाविधानं विशत्वम्ब मत्यास् ॥ २३ ॥ नरा मां विनिन्दन्तु नाम त्यजद्वान्धवा ज्ञातयः सन्त्यजन्तु। यमीया भटा नारके पातयन्तु त्वमेका गतिर्मे त्वमेका गतिर्मे ॥ २४ ॥ ॐ। महाकालरुद्रोदितस्तोत्रमेतत्सदा भक्तिभावेन योऽध्येति भक्तः। न चापन्न शोको न रोगो न मृत्युर्भवेत्सिद्धिरन्ते च कैवल्यलाभः ॥ २५ ॥ इदं शिवायाः कथितं सुधाधाराह्वयं स्तवम्। एतस्य सतताभ्यासात्सिद्धिः करतले स्थिता ॥ २६ ॥ एतत्स्तोत्रञ्च कवचं पद्यं त्रितयमप्यदः। पठनीयं प्रयत्नेन नैमित्तिकसमर्हणे ॥ २७ ॥ सौम्येन्दीवरनीलनीरदघटाप्रोद्दाम-देहच्छटालास्योन्मादनिनादमङ्गलचयैः श्रोण्यन्तदोलज्जटा। सा काली करवालकालकलना हस्त्वश्रियं चण्डिका ॥२८॥ काली क्रोधकरालकाल-भयदोन्मादप्रमोदालया नेत्रोपान्तकृतान्तदैत्यनिवहा प्रोद्दामदेहाभया। पायाद्वो जयकालिका प्रबलिका हूङ्कारघोरानना भक्तानामभयप्रदा विजयदा विश्वेशसिद्धासना ॥ २९ ॥ करालोन्मुखी कालिका भीमकान्ता कटिव्याघ्रचर्मावृता दानवान्ता। हूं हूं कङ्मडीनादिनी कालिका तु प्रसन्ना सदा नः प्रपन्नान् पुनातु ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाकालसंहितायां महाकालरुद्रविरचितसुधाधाराह्वयकालीस्तोत्रम्।

अथ नायिका-कवचम् :

उन्मत्तभैरव उवाच : शृणु कल्याणि मद्वाक्यं कवचं देवदुर्लभम्। यक्षिणी-नायिकानान्तु संक्षेपात्सिद्धिदायकम् ॥ १ ॥ ज्ञानमात्रेण देवेशि सिद्धिमाप्नोति निश्चितम्। यक्षिणी स्वयमायाति कवचज्ञानमात्रतः ॥२॥ सर्वत्र दुर्लभं देवि डामरेषु प्रकाशितम्। पठनाद्धारणान्मर्त्यो यक्षिणी वशमानयेत् ॥ ३ ॥ कवचस्य ऋषिर्गर्गो गायत्रीच्छन्द ईरितम्। देवता यक्षिणी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥४॥ साक्षात्सिद्धिसमृद्धयर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः। ॐ शिरो मे यक्षिणी पातु ललाटं यक्षकन्यका ॥ ५ ॥ मुखं श्रीधनदा पातु कर्णौ मे कुलनायिका। चक्षुषी वरदा पातु नासिकां भक्तवत्सला ॥ ६ ॥ केशाग्रं पिङ्गला पातु धनदा श्रीमहेश्वरी। स्कन्धौ कुलालपा पातु गलं मे कमलानना ॥ ७ ॥ किरातिनी सदा पातु भुजयुग्मं जटेश्वरी। विकृतास्या सदा पातु महावज्रप्रिया मम् ॥ ८ ॥ अस्त्रहस्ता पातु नित्यं पृष्ठमुदरदेशकम्। भेरुण्डा माकरी देवी हृदयं देवसम्मता

॥ ९ ॥ अलङ्कारान्विता पातु मे नितम्बस्थलं दया। धार्मिकागुह्यदेशं मे पादुयुग्मं सुराङ्गना ॥ १० ॥ शून्यागारे सदा पातु मन्त्रमातास्वरूपिणी। निष्कलङ्का सदा पातु चाम्बुवत्यखिलां तनुम् ॥ ११ ॥ प्रान्तरे धनदा पातु निजबीजप्रकाशिनी। लक्ष्मीबीजात्मिका पातु निजबीजप्रकाशिनी ॥ १२ ॥ लक्ष्मीबीजात्मिका पातु खड्गहस्ता श्मशानके। शून्यागारे नदीतीरे महायक्षेशकन्यका ॥ १३ ॥ पातु मां वरदाख्या मे सर्वाङ्गं पातु मोहिनी। महासङ्कटमध्ये तु संग्रामे रिपुसञ्चये ॥ १४ ॥ क्रोधरूपा सदा पातु महादेवनिषेविका। सर्वत्र सर्वदा पातु भवानी कुलदायिका ॥ १५ ॥ ॐ। इत्येतत्कवचं देवि महामन्त्रौघविग्रहम्। अस्यापि स्मरणादेव राजत्वं लभतेऽचिरात् ॥ १६ ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि स्थिरो भवति भूतले। वेदज्ञानी सर्वशास्त्रवेत्ता भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥ अरण्ये सिद्धिमाप्नोति महाकवचपाठतः। यक्षिणी कुलविद्या च समायाति सुसिद्धिदा ॥ १८ ॥ अणिमा लघिमा प्राप्तिः सुखसिद्धिफलं लभेत्। पठित्वा धारयित्वा च निर्जनेऽरण्यमस्तके। स्थित्वा जपेल्लक्षमन्त्रमिष्टसिद्धिं लभेन्निशि ॥ १९ ॥ भार्या भवति सा देवी महाकवचपाठतः। योगिनां दुर्लभं देवि किमन्यत् साधनादिकम्। ग्रहणादेव सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२०॥ इति वृहद्भूतसन्धानडामरे महातन्त्रे योगिनीनायिकाकवचं समाप्तम्।

अथ नायिकास्तोत्रम्ः

आस्याः स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय। साक्षात्सिद्धिं समाप्नोति योगिनीस्तोत्रपाठतः ॥ १ ॥

उन्मत्तभैरव उवाच : ॐ वन्दे योगिनि योगसिद्धिधनदे बन्धूकपुष्पोज्वले, नानालंकृतिविग्रहे सुरमणि श्रीदेवकन्ये प्रिये। दारिद्र्यं हन मे सुखं प्रियपदं वाञ्छादिसिद्धिप्रदं राज्यं मित्रकलत्र-पुत्रधनदे मातः समाधेहि मे ॥ २ ॥ तवांघ्रिकमलद्वयं तरुणि देवते दारुणं महाभयसमाकुलं हर भजामि भूमण्डले। कृपां कुरु ममालये सपरिवारदेवैः सह सदा भव हि भागिनी क्षम कुलापतापं मुदा ॥ ३ ॥ त्वमेका योगिनी कन्या पिङ्गला युवती रतिः। गौरी विद्याधरी श्यामा प्रसन्ना भव सर्वदा ॥ ४ ॥ त्वं सन्ध्या खेचरी विद्या यक्षिणी भूतिनी प्रिया। त्वमेका पातु मां धात्री स्वर्णपात्रकराम्बुजा ॥ ५ ॥ हिरण्याक्षी विशालाक्षी चपला नागिनी जया। प्रसन्ना भव चन्द्राख्या कामिनी कामदायिनी ॥ ६ ॥ सिद्धिदा कुलमन्त्राणां डाकिनी खेचरी भव। नमामि वरदे देवि योगिनीगणसेविते

॥ ७ ॥ तवांघ्रियुगलं कान्ते चन्द्रकान्तिसुमालिनी । अमले कमले देवि दारिद्रयदोषभञ्जिनी ॥ ८ ॥ वन्दे त्वां मनसा वाचा प्रसन्ना भव सुन्दरि । कलिकालकृते देवि खेचरीशतनायिके ॥ ९ ॥ धनसिद्धिं देहि शीघ्रं समागच्छ गृहे मम् । सिद्धिदा विधुराणाञ्च अकालमृत्युनाशिनी ॥ १० ॥ दशवर्षसहस्राणि स्थिरा भव कुले मम । वाक्यसिद्धिप्रदा देवी पद्मराग-सुमालिनी ॥ ११ ॥ सर्वालङ्कारभूषाङ्गी प्रसन्ना भव सर्वदा । मायाबीजा-त्मिका देवी वधूबीजसमाकुले ॥ १२ ॥ सिद्धिद्रव्यं सदा देहि कन्ता भव ममालये । विचित्रम्बारशोभाङ्गी नानालङ्कारवेष्टिते ॥ १३ ॥ विम्बार-मणिसूर्याभे चन्द्रकान्तिप्रभोज्वले । स्मेराननाब्जे कामेशि ममाज्ञापय दुर्लभम् ॥ १४ ॥ कामेशि परमानन्द-राजभोगप्रदायिनी । सिद्धिदा वरदा माता भगिनी वा भव प्रिया ॥ १५ ॥ तवाज्ञाकिङ्करो देवि पूजयाम्यहमादरात् । ममाग्रे संस्थिरा भूत्वा सिद्धिदा भव सर्वदा ॥१६॥ कौलिनी गगनस्था त्वं मम पार्श्वचरी भव । शतवर्षसहस्राणि मामेकं रक्ष सेवकम् ॥ १७ ॥ हृदयाम्भोरुहे ध्यायेत्सुन्दरीं नवयौवनाम् । किङ्किणी-जालमालाढ्यां त्रिपुरां पद्मलोचनाम् ॥ १८ ॥ वराभयकरां धन्यां योगिनीं कामचारिणीम् । त्वामेकां जगतां देवि सिद्धिविद्यां नमाम्यहम् ॥ १९ ॥ ममाङ्गे चैव पार्श्वे त्वं कामिनी भव मे सदा । दशवर्षसहस्राणि सिद्धे कमललोचनाम् ॥ २० ॥ वनिता भव मे नित्यं नित्यं देहं कुरु प्रिये । एतत्स्तोत्रं पठेद्विद्वान् ध्यानाभ्याससमन्वितम् ॥ २१ ॥ पक्वान्नं नारिकेलं वा खण्डमिश्रं निवेदयेत् । सिद्धिं यच्छन्ति भूतिन्यः स्तोत्रपूजा-प्रभावतः ॥ २२ ॥ इति वृहद्भूतसन्धानडामरे महातन्त्रे भैरवीभैरव-संवादे नायिका-स्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ गुरुकवचम् :

नारद उवाच : ब्रह्मन् गुरोर्मनुस्तोत्रं यथावदवधारितम् । कवच-श्रवणे श्रद्धा साम्प्रतं कथ्यतां मम ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच : श्रीगुरोः कवचं गुह्यं वर्ण्यमानं निबोध मे । नाभक्ताय प्रदातव्यं देयं भक्तिमते सदा ॥ २ ॥ श्रीगुरोः कवचस्यास्य ब्रह्मर्षि परिकीर्तितः । छन्दोऽनुष्टुब्देवता च त्रिदेवात्मा गुरुः स्वयम् ॥ ३ ॥ ॐ शिरो मे सर्वदा पातु गुरुः सर्वाङ्गसुन्दरः । उद्यद्भालललाटं मे कृपादृष्टिर्दृशौ मम ॥ ४ ॥ मन्दस्मितो मुखं पातु श्रुती च मधुरं वचः । हृदयं पातु मन्त्रोक्तिर्वराभयधरः करौ ॥ ५ ॥ गुरुपद्मासनं पातु नाभ्यादि-चरणान्तिकम् । गुरुपादनखज्योत्स्ना सर्वाङ्गं सर्वदावतु ॥ ६ ॥ वाग्बीजं

मे सदा पातु कामाद्यन्तांश्च खेचरो। आनन्दभैरवः पातु सदैवानन्द-मन्दिरम् ॥ ७ ॥ आनन्दभैरवी पातु ममानन्दं सदैव सा। हिंस्रेभ्यः सर्वदा पातु श्रीप्रासादपरो मनुः ॥ ८ ॥ परा प्रासादमन्त्रस्तु पातु नित्यं विपद्दशाम्। हंसः पीठं पातु चोर्ध्वं सर्वदिक्षु सदावतु ॥ ९ ॥ कुलन्तु गुरवः पान्तु पात्वधः कमलासनः। ज्ञानं पातु च दिव्यौघा इच्छां सिद्धौघसंज्ञकाः। मानवौघाः क्रियां पान्तु श्रीगुरुः सर्वदावतु ॥ १० ॥ ॐ। इतीदं कवचं नित्यं प्रातःकृत्यावसानके। यः पठेन्मानवो भक्त्या त्रैलोक्यविजयी भवेत्। मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य देवता च प्रसीदति। सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ गुर्वभिधानं कवचमज्ञात्वा क्रियते जपः। वृथाश्रमो भवेत्तस्य न सिद्धिर्मन्त्रपूजने ॥ १२ ॥ गुरुपादं पुरस्कृत्य कवचं पठ्यते शुभम्। तदा मन्त्रस्य यन्त्रस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ १३ ॥ गुरु-गोप्यश्च कर्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन ॥ १४ ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन। दातव्यं भक्तियुक्ताय कुलीनाय विशेषतः ॥१५॥ त्रैलोक्यदुर्लभश्चैतद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। सर्वतीर्थफलं येन पठ्यते कवचं गुरोः। इति ते कथितं पुत्र सावधानोऽवधारय ॥ १६ ॥ इति ब्रह्मयामले श्रीमद्गुरुकवचं समाप्तम्।

अथ योषिद् गुरु-ध्यानम् :

यथा : ॐ प्रफुल्लपद्मपत्राक्षीं घनपीनपयोधराम्। प्रसन्नवदनां क्षीणमध्यां ध्यायेच्छिवां गुरुम् ॥ १ ॥ पद्मरागसमाभासां रक्तवस्त्र-सुशोभनाम्। रक्तकङ्कणपाणिश्च रत्ननूपुरशोभिताम् ॥ २ ॥ स्थलपद्म-प्रतीकाशपादपद्मसुशोभिताम्। शरविन्दुप्रतीकाशवक्त्रोद्भासितविग्रहाम् ॥ ३ ॥ स्वनाथ-वामभागस्थां वराभयकराम्बुजाम्। एवं ध्यात्वा पूजयेत् ॥ ४ ॥

अथ स्त्रीगुरु-कवचम् :

अस्य स्त्रीगुरुकवचस्य स्त्रीगुरुर्देवता चतुर्वर्गप्राप्तये विनियोगः। शिरसि सदाशिव ऋषये नमः। हृदि स्त्रीगुरुदेवतायै नमः।

ईश्वर उवाच : स्त्रीगुरोः कवचस्यास्य सदाशिवऋषिः स्मृतः। तदाख्या देवता प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१॥ ॐ क्लीं बीजं मे शिरः पातु तदाख्या च ललाटकम्। क्लीं बीजं चक्षुषोः पातु सर्वाङ्गं मे सदाशिवः ॥ २ ॥ ऐं बीजं मे मुखं पातु ह्रीं जिह्वां परिरक्षतु। श्रीं बीजं स्कन्धदेशं मे हसखफ्रें भुजद्वयम् ॥ ३ ॥ हकारः कण्ठदेशं मे सकारः षोडशं दलम्। क्षवर्णस्तदधः पातु लकारो हृदयं मम् ॥ ४ ॥ वकारः पृष्ठदेशञ्च रकारो

दक्षपार्श्वकम् । हूङ्कारो वामपार्श्वंश्च सकारो मेरुमेव च ॥ ५ ॥ हकारो मे दक्षभुजं क्षकारो वामहस्तकम् । मकारश्चांगुलिं पातु लकारः पातु मे नखम् ॥ ६ ॥ वकारो मे नितम्बश्च रकारो जठरं मम् । यीङ्कारः पादयुगलं ह्सौः सर्वाङ्गकेऽवतु ॥ ७ ॥ ह्सौः लिङ्गश्च लोमानि केशश्च परिरक्षतु । ऐं बीजं पातु पूर्वे मे ह्रीं बीजं दक्षिणेऽवतु ॥ ८ ॥ श्रीं बीजं पश्चिमे पातु उत्तरे भूतसम्भवम् । ऐं पातु चाग्निकोणे च वेदाद्या नैर्ऋतेऽवतु ॥ ९ ॥ देव्यम्बा पातु वायव्यां शम्भोः श्रीपादुकान्तथा । पूजयामि तथा चोर्ध्वं नमश्चाधः सदाऽवतु ॥ १० ॥ ॐ । इति ते कथितं कान्ते कवचं परमाद्भुतम् । गुरुमन्त्रं जपित्वा तु कवचं प्रपठेद्यदि । स सिद्धः स गणः सोऽपि शिवः साक्षान्न संशयः ॥ ११ ॥ पूजाकाले पठेद्यस्तु कवचं मन्त्रविग्रहम् । पूजाफलं भवेत्तस्य सत्यं सत्यं सुरेश्वरि । त्रिसन्ध्यं यः पठेद्देवि स सिद्धो नात्र संशयः ॥१२॥ भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि । तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ॥ १३ ॥ विवादे जयमाप्नोति रणे च नैर्ऋतेरिव । सभायां जयमाप्नोति मम तुल्यो न संशयः ॥ १४ ॥ सहस्रारे भावयन् यस्त्रिसन्ध्यं प्रपठेद्यदि । स एव सिद्धलोकेशो निर्वाणपदमीयते ॥१५॥ समस्तमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ॥१६॥ देयं शिष्याय शान्ताय चान्यथा विफलं भवेत् । अभक्तेभ्यस्तु देवेशि पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ॥ १७ ॥ इदं कवचमज्ञात्वा विद्याश्चैव च यो जपेत् । स नाप्नोति फलं तस्य परे च नरकं व्रजेत् ॥ १८ ॥ इति ब्रह्मयामले पार्वतीश्वरसंवादे श्रीमत्स्त्रीगुरुकवचं समाप्तम् ।

अथ गुरु-स्तोत्रम् :

ज्ञानात्मानं परमात्मानं दानं ध्यानं योगं ज्ञानम् । जानन्नपि तत्सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १ ॥ प्राणं देहं गेहं राज्यं भोगं मोक्षं शक्तिं पुत्रम् । मन्ये मित्रं वित्तकलत्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ २ ॥ वाणप्रस्थं यतिविधधर्मं पारमहंस्यं भिक्षुकचरितम् । साधोः सेवा बहुसुरभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ३ ॥ विष्णोर्भक्तिःपूजनचरितं वैष्णवसेवा मातरि भक्तिः । विष्णोरिव पितृसेवनयोगो न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ४ ॥ प्रत्याहारं चेन्द्रियजयता प्रणायामं न्यासविधानम् । इष्टेः पूजा जपतपोभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ५ ॥ काली दुर्गा कमला भुवना त्रिपुरा भीमा बगला पूर्णा । श्रीमातङ्गी धूम तारा एता विद्या त्रिभुवनसारा न गुरोरधिकं न

गुरोरधिकम् ॥ ६ ॥ मात्स्यं कौर्मं श्रीवाराहं नरहरिरूपं वामनचरितम् । अवतारादिकमन्यत्सर्वं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ७ ॥ श्रीरघुनाथं श्रीयदुनाथं श्रीभृगुदेवं बौद्धं कल्किम् । अवतारानिति दशकं मन्ये न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ८ ॥ गङ्गा काशी काञ्ची द्वारा मायायोध्यावन्ती मथुरा । यमुना रेवा परतरतीर्थं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ६ ॥ गोकुलगमनं गोपुररमणं श्रीवृन्दावनमधुपुरमटनम् । एतत्सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १० ॥ तुलसीसेवा हरिहरभक्तिर्गङ्गासागरसङ्गममुक्तिः । किमपरमधिकं कृष्णे भक्तिरेतत्सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ११ ॥ एतत्स्तोत्रं पठति च नित्यं मोक्षज्ञानी सोऽप्यतिधन्यः । ब्रह्माण्डान्तर्यद्यद् ज्ञेयं सर्वं न गुरोरधिकम् ॥ १२ ॥ इति बृहत्पारमहंस्यां संहितायां श्रीशिव पार्वतीसंवादे श्रीगुरुस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीहनूमत्स्तोत्रम् :

ईश्वर उवाच : अत्युत्कटप्रकटितातुलधैर्यवर्यः श्रीरामकार्यकरणे प्रथितैकवीरः । गत्या विलंघ्य गतवारिधिवारितीरः श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥ १ ॥ यो जातमात्रसमये बलवान् गभस्तेर्बिम्बं निरीक्ष्य फलमित्यविचार्य सम्यक् । जग्राह पाणियुगले सहसा मुमोच श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥ २ ॥ बिभ्रत्सदा वपुषि व्रजचये बलीयान् तेजः सहायसमयं प्रकटीचकार । लङ्कां ददाह दशवक्त्रसभासमक्षं श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥ ३ ॥ रामानुजे महति यो जगतीतलेऽस्मिन् शक्त्या हते रणमुखे दशकन्धरेण । आनीय भेषजमजीवयदेवमाशु श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥ ४ ॥ मुद्रां समर्प्य रघुनन्दननामचिह्नां चूडामणिं जनकराजसुतागतं तम् । आनीय राममभिनेदयति स्म वीरः श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥ ५ ॥ निघ्नन्नशोकवनभूरुहरक्षपालान् भञ्जन् महाविटपशृङ्ग शतं सहस्रान् । भुञ्जन् फलानि विविधानि हि वीक्ष्य सीतां श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥ ६ ॥ कारागृहे मनसि चिन्तित एव यस्मिन् बद्धो जनो हि लभते तत आशु मोक्षम् । क्रव्यादयक्षपवनादिभयापहारी श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥७॥ तुभ्यं नमः सकलमङ्गलदायकाय तुभ्यं नमोऽस्तु पवनानलसम्भवाय । तुभ्यं नमोऽस्तु जगतां परमोपकर्त्रे सर्वार्तदुःखहरणाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥ इदं हनूमतः स्तोत्रं महापातकनाशनम् । संग्रामजयदं पुण्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ६ ॥ यः पठेत्

प्रातरुत्थाय स्नाने वा शयनेऽथवा । विषं न बाधते तस्य न तं हिंसन्ति हिंसकाः ॥ १० ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् । पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति नारी पत्युः प्रिया भवेत् ॥ ११ ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत वद्धो मुच्येत बन्धनात् । दुर्वलो बलमाप्नोति भवेत्वायुसुतोपमः ॥ १२ ॥ विघ्नः सर्वे पलायन्ते तं दृष्ट्वा नात्र संशयः । संग्रामे व्यवहारे च विजयस्तस्य जायते । बन्धनान्मुक्तिमाप्नोति यात्रायां सिद्धिरेव च ॥ १३ ॥ इति श्रीगरुडतन्त्रे हनूमत्कल्पे हनूमत्स्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ मातङ्गीस्तवः :

ईश्वर उवाच : ॐ आराध्य मातश्चरणाम्बुजे ते ब्रह्मादयो विश्रुतकीर्तिमापुः । अन्ये परं वा विभवं मुनीन्द्राः परां श्रियं भक्तिभरेण चान्ये ॥ १ ॥ नमामि देवीं नवचन्द्रमौलेर्मातङ्गिनीं चन्द्रकलावतंसाम् । आम्नायवाग्भिः प्रतिपादितार्थं प्रबोधयन्तीं प्रियमादरेण ॥ २ ॥ विनम्रदेवासुरमौलिरत्नैर्विराजितं ते चरणारविन्दम् । भजन्ति ये देवि महीपतीनां व्रजन्ति ते सम्पदमादरेण ॥ ३ ॥ मातङ्गिनीनां गमने भवत्याः शिञ्जानमञ्जीरमिदं भजे ते । मातस्त्वदीयं चरणारविन्दमकृत्रिमाणां वचनं विशुद्धम् ॥ ४ ॥ पादात्पदं शिञ्जितनूपुराभ्यां कृतार्थयन्तीं पदवीं पदाभ्याम् । आस्फालयन्तीं कलवल्लकीं तां मातङ्गिनी सद्धृदयां धिनोमि ॥ ५ ॥ लीलांशुकावद्धनितम्बविम्बां तालीदलेनार्पितकर्णभूषाम् । माध्वीसदाघूर्णितनेत्रपद्मां धनस्तनीं शम्भुवधूं नमामि ॥ ६ ॥ तडिल्लताकान्तमलक्ष्यभूषं चिरेण लक्ष्यं नवलोमराज्या । स्मरामि भक्त्या जगतामधीशे बलित्रयाङ्कं तव मध्यमम्ब ॥ ७ ॥ नीलोत्पलानां श्रियमावहन्तीं कान्त्या कटाक्षैः कमलाकराणाम् । कदम्बमालाञ्चितकेशपाशां मतङ्गकन्यां हृदि भावयामि ॥८॥ ध्यायेयमारक्तकपोलविम्बं विम्बाधरन्यस्तललामरम्यम् । आलोलनीलालकमायताक्षं मन्दस्मितं ते वदनं महेशि ॥ ९ ॥ स्तुत्यानया शङ्करधर्मपत्नीं मातङ्गिनीं वागधिदेवतां ताम् । स्तुवन्ति ये भक्तियुता मनुष्याः परां श्रियं नित्यमुपाश्रयन्ति ॥ १० ॥ ॐ । इति रुद्रयामले श्रीमातङ्गीस्तोत्रम् ।

अथ धूमावतीस्तोत्रम् :

ईश्वर उवाच : ॐ प्रातर्या स्यात्कुमारी कुसुमकलिकया जपमालां जपन्ती, मध्याह्ने प्रौढरूपा विकसितवदना चारुनेत्रा निशायाम् । सन्ध्यायां वृद्धरूपा गलितकुचयुगा मुण्डमालां वहन्ती, सा देवी देवदेवी त्रिभुवनजननी चण्डिका पातु युष्मान् ॥ १ ॥ बद्ध्वा खट्वाङ्गकोटौ

कपिलवरजटामण्डलं पद्मयोनेः, कृत्वा दैत्योत्तमाङ्गैः स्रजमुरसि शिरः-शेखरं तार्क्ष्यपक्षैः । पूर्णं रक्तैः सुराणां यममहिषमहाशृङ्गमादाय पाणौ पायाद्वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितया भैरवः कालरात्र्या ॥ २ ॥ चर्वन्ती ग्रन्थिखण्डं प्रकटकटकटाशब्दसङ्घातमुग्रं, कुर्वाणा प्रेतमध्ये ककह-कह-कहा-हास्यमुग्रं कृशाङ्गी । नित्यं नृत्यप्रमत्ता डमरुडिमडिमान् स्फारयन्ती मुखाब्जं पायान्नश्चण्डिकेयं झझम-झम-झम-झमा जल्पमाना भ्रमन्ती ॥ ३ ॥ टण्टट्-टण्टट्-टटण्टा प्रकट-मटमटानादघण्टा वहन्ती स्फें स्फें स्फें-कारकारा टकटकितहसा दन्तसङ्घट्टभीमा । लोलं मुण्डाग्रमाला ललह-कहलहा लोललोलोग्ररावं, चर्वन्तो चण्डमुण्डं मटमटमटितं चर्वयन्ती पुनातु ॥ ४ ॥ वामे कर्णे मृगाङ्कं प्रलयपरिगतं दक्षिणे सूर्यबिम्बं, कण्ठे नक्षत्रहारं नरविकटजटाजूटके मुण्डमालम् । स्कन्धे कृत्वोरगेन्द्रध्वज-निकरयुतं ब्रह्मकङ्कालभारं, संहारे धारयन्ती मम हरतु भयं भद्रदा भद्रकाली ॥ ५ ॥ तैलाभ्यक्तैकवेणी त्रपुमयविलसत्कर्णिकाक्रान्तकर्णा, लोहेनैकेन कृत्वा चरणनलिनकामात्मनः पादशोभाम् । दिग्वासा रासभेन ग्रसति जगदिदं या जवाकर्णपूरावर्षिण्यूर्ध्वप्रवृद्धा ध्वजविततभुजा सासि देवी त्वमेव ॥ ६ ॥ संग्रामे हेतिकृत्तैः सरुधिरदशनैर्यद्भटानां शिरोभि-र्मालामावध्य मूर्ध्नि ध्वजविततभुजा त्वं श्मशाने प्रविष्टा । दृष्ट्वा भूतैः प्रभूतैः पृथुजघनघना बद्धनागेन्द्रकाञ्चीशूलाग्रव्यग्रहस्ता मधुरुधिरमदा ताम्रनेत्रा निशायाम् ॥७॥ दंष्ट्रा-रौद्रे मुखेऽस्मिंस्तव विशति जगद्देवि सर्वं क्षणार्द्धात् संसारस्यान्तकाले नररुधिरवसासंप्लवे धूमधूम्रे । काली कापालिकी त्वं शवशयनरता योगिनी योगमुद्रा रक्ता ऋद्धी कुमारी मरणभयहरा त्वं शिवा चण्डघण्टा ॥ ८ ॥ ॐ । धूमावत्यष्टकं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम् । यः पठेत्साधको भक्त्या सिद्धिं विन्दति वाञ्छिताम् महापदि महाघोरे महारोगे महारणे । शत्रूच्चाटे मारणादौ जन्तूनां मोहने तथा ॥ १० ॥ पठेत् स्तोत्रमिदं देवि सर्वत्र सिद्धिभाग्भवेत् । देव-दानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ११ ॥ सिंहव्याघ्रादिकाः सर्वे स्तोत्र-स्मरणमात्रतः । दूराद्दूरतरं यान्ति किं पुनर्मानुषादयः ॥ १२ ॥ स्तोत्रे-णानेन देवेशि किं न सिध्यति भूतले । सर्वशान्तिर्भवेद्देवि चान्ते निर्वाणतां व्रजेत् ॥ १३ ॥ इत्यूर्ध्वाम्नाये धूमावतीकल्पे धूमावत्यष्टकं स्तोत्रसारं समाप्तम् ।

घटस्थापनम् :

आगमतत्त्वविलासे यथा : राजेश्वरीतन्त्रे शाक्ताभिषेकप्रकरणे घट-

मित्यनुवृत्तौ : नातिह्रस्वं नातिदीर्घं मृत्ताम्रस्वर्णनिर्मितम् । कामबीजेन सम्प्रोक्ष्य वाग्भवेनैव ताडयेत् । शक्त्या कलसमारोप्य मायया पूरयेज्जलैः । मन्त्रेणानेन तीर्थानि देशिकस्तत्र विन्यसेत् । गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च । सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः । ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः । सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् । रमाबीजेन जप्तेन पल्लवं प्रतिपादयेत् । कूर्चेन फलदानं स्यात् स्त्रीबीजेन स्थिरीकृतिः । सिन्दूरं वह्निबीजेन पुष्पं दद्याच्छवानुना । मूलेन दूर्वां प्रणवैः कुर्यादभ्युक्षणं ततः । हूं फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद्दर्भेण ताडनम् । विचिन्त्य देवीपीठन्तु तत्रावाह्य प्रपूजयेत् । शक्त्या सौरिति बीजेन । शवानुना इत्यत्र शरानुना । इति आगमतत्त्वधृतः पाठः । शरानुना अस्त्रमन्त्रेण इति तदर्थः ॥ १ ॥

कवचसंस्कारः :

दीपिकाधृततन्त्रान्तरे : विलिख्य कवचं देवि रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् । वेष्टयित्वा ततो देवि स्वर्णादौ स्थापयेत्ततः । पञ्चमृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा शुभेऽहनि । सम्पूज्य देवतारूपां गुलिकां सर्वकामदाम् । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणांस्तत्र नियोजयेत् । अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र स्थापयेद्बुधः । एषा तु गुलिका देवि कण्ठलग्ना सुखप्रदा ॥ १ ॥

अथ मन्त्रणां श्रोत्रादिनिरूपणम् :

यथा यक्षडामरे : मर्त्यानामुपकाराय त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । भगवान् पुनराचक्षे श्रोत्रादीनां निरूपणम् ॥ १ ॥ हृदयं मूर्तिमास्थाय दृढचित्तः समाहितः । सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् । मनो हृत्वेन्द्रियाद्यैश्च सर्वभावेन साधकः । पश्यतीतिलयं श्रोत्रं नान्यथा शृणुयाद्वचः ॥ २ ॥ सौरे तथा गाणपत्ये दौर्गे शैवे तथैव च । भौतिके च मनावास्यहृन्नेत्रं द्योतते यथा । मूलाक्षरे विचारोऽयं मूलानां बीजमुच्यते । मनोविचारः कर्तव्यो बीजे सति विषान्विते । बीजत्वेन गता रुद्रहंसी डिण्डिमविद्रुमा । पुरी सेन्दुक्रमादत्र कुर्यादास्यादिचिन्तनम् ॥ ३ ॥ यमस्त्यागी शुको दण्डी मणिभद्रो घटत्कचः । भृङ्गिप्रभृतिबीजानां प्राग्वत्कुर्याद्विचारणम् । यत्र यक्षेश्वरो मन्त्रे तत्रैवास्यं प्रधानतः । चण्डिकाया अभावेऽत्र विद्युन्नेत्रहृदासवः ॥ ४ ॥ ज्योतिःकपर्दीखद्योतो ग्रासिनी च सुरान्तकः । वैवस्वतः केतुनाम शिखी प्राणप्रहारिणी । कस्मिन्नुल्कामुखी जालन्धरी चण्डयुगान्तकौ । किङ्करी पिशिताक्षी

सुकिन्नरश्च मनोहरी। ध्वांक्ष्यं वैतानिकं फेत्कारिणी शूलपयोधरी। चतुर्विंशतिबीजानि मन्त्रे स्युर्यक्षडामरे। एभिरशेषमन्त्राणां हृन्नेत्रवदनानि च। अनयोऽस्य परिज्ञेयाः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः॥ ५॥ तथा मूलार्णं मुखमादिष्टं हृदयं स्वरसंज्ञकम्। मूलार्णं प्रणवं मन्त्रस्य मुखमित्यर्थः। हृदयं स्वरशक्तयः इति षोडशाक्षरात्मिकाः शक्तयो मन्त्रस्य हृदयमित्यर्थः। तथा च मूलार्णमास्यमाख्यं तं हृदयं स्वशक्तयः। स्वरशक्तयो वक्तव्याः।

अथ प्रणवाभावे तत् स्वरूपबीजानां विशेषमाह तत्रैव : आदिमध्यावसानेषु पूर्वाभावे तथोत्तरम्। कीर्त्याख्या कालवक्त्रेण महाकालेन साधितम्। तदनादि पञ्चरश्मि सृष्टिस्थित्यव्ययं विषम्। शूलिन्या सहितो गुह्यश्चण्डीशोऽग्नीन्दुविन्दुमान्। एतद्विष्णुप्रियाबीजं जगन्मान्यं जगत्प्रियम्। आदिमध्यावसानेषु इति मन्त्रस्यादौ मध्ये चान्ते वा प्रणवस्थितिश्चेत्तदा तदेव तन्मुखमित्यर्थः। पूर्वाभावे यथोत्तरमिति प्रणवाभावे तत्परं विधानं यथेति कीर्त्याख्या कालवक्त्रेणेति अकार-उकारेण, महाकालेनेति मकारेण साधितं तदनादि पञ्चरश्मि इति तदेव प्रणवम्। एतद्विष्णुप्रियाबीजं श्रीबीजमिति सार्द्धद्वयश्लोकेनान्वयः। तथा च यस्मिन् मन्त्रे श्रीबीजादिकमस्ति तत्र तदेव मुखमिति प्रणवस्वरूपत्वात्, अतः क्रमेण मन्त्रमुखात्मकबीजान्याह तत्रैव श्रीबीजमुक्तम्।

तत्परं यथा : क्षतजं व्योमवक्त्रञ्च चण्डोग्रेन्द्वादिभूषितम्। आद्यं रौद्रञ्च भूतञ्च बीजं प्राथमिकं स्मृतम्। क्षतजं रेफः, व्योमवक्त्रं हकारः, चण्डोग्रा ईकारः, इन्द्वादिभूषितमिति इन्दुनादाभ्यां भूषितं मायाबीजम्। "क्रोधीशं रक्तगं धूम्र-भैरव्येन्द्वाद्यलंकृतम्। पितृभूवासिनाबीजं कालेयं पलभोजनम्।" क्रोधीशं ककारं, रक्तगं रेफगं धूम्रभैरवी ईकारः, विन्दुनादयोगेन कालीबीजम्। "नादविन्दुसमायुक्तां समादयोग्रभैरवीम्। भौतिकं वाग्भवं बीजम् ऋद्धिबुद्धिविवर्द्धनम्।" उग्रभैरवी ऐकारः, तेन वाग्भवबीजम् इत्यर्थ। "फडस्त्रञ्च प्रसिद्धं स्यात्काल्याग्निव्यापकांकुशः। शिरः स्वाहा द्विठो वह्निजाया ज्वलनवल्लभा।" "इन्द्रासनगतो ब्रह्मा सा त्रिमूर्तिस्तु मन्मथः। व्योमास्यः कालवक्त्राढ्यो वर्मविन्द्विन्दु संयुतः।" एतेन कामबीजं कूर्चबीजञ्च। "शून्यं क्षतजमारूढं चण्डभैरव्यलंकृतम्। विन्द्विन्दुभूषितं मूर्ध्नि ज्योतिर्मन्त्रमुदीरितम्।" शून्यं हकारः, क्षतजं रेफः, चण्डभैरवी ऐकारः। आदिदेवेन निर्दिष्टं मन्त्रकोषमनुत्तमम्। यदास्येभ्यः परं गोप्यं तन्मयात्र प्रकीर्त्तितम्। यक्षडामरमन्त्रस्य मनु-

कोषविवेचनम् । क्रोधाधिपेन यत्प्रोक्तं भैरवाय महात्मने । इति । अत-एव प्रणव-श्रीबीज-माया-काली-वाग्भव- अस्त्र - वह्निजाया-काम - कूर्च-ज्योतिर्मन्त्राणां यत्र मन्त्र मन्त्रे यस्य स्थितिस्तत्र तस्य अस्यत्वमुक्तम् । एतेषां द्वयं वा त्रयं वा बीजं यत्र तिष्ठति । तत्र तु उक्तमन्त्रेण तत्पूर्व-बीजस्य ग्रहणम् ॥ ६ ॥

अथ नेत्रनिर्णयः :

तदुक्तं तत्रैव : बीजे रक्तमुखाः सर्वे मूलार्णा हृदयं स्वराः । दक्ष-वामदृशौ चण्डीविकले मध्यमे न चेत् । बीजाभावे मनोर्विद्युन्नेत्रमास्यं मनोहरी । मूलार्णं हृदयं दण्डी प्राणोऽपि स्वरशक्तयः । बीजे रक्तमुखा इति सर्वे मूलार्णाः श्रीबीजादयः बीजे सति इति स्वयं मन्त्रे सति रक्तमुखा भवन्तीति । चण्डीविकले विसर्गविन्दु मध्यमे न चेदिति मन्त्रस्य मध्यस्थौ न चेत्तदा तस्य दक्षवामदृशावित्यर्थः । बीजाभावे इति मुख-नेत्रात्मकबीजानामभावे । मनोर्विद्युन्नेत्रमिति मन्त्रस्य नेत्रम् । विद्युदिति अकारः । आस्यं मनोहरीति वह्निजाया मूलार्णमित्युक्तेः, हृदयं दण्डीति अनुस्वारः प्राणोऽपि स्वरशक्तय इति दण्डिनः स्वरशक्तीनाञ्च हृत्प्राण-त्वमिति रहस्याः । अत्र चिन्तामणिनृसिंहयोर्विचारो न स्यात् । तथा च चिन्तामणिनृसिंहख्यौ श्रोत्रास्यनेत्रहृद्दते । यत्र बीजाक्षरं मन्त्रं तत्र सर्वंश एव हि । प्रधानपूर्वा परगा विकला यत्र दृश्यते । तत्र नेत्रं विजानीयान्मुखञ्च क्षतजोक्षितम् । अत्र बीजाक्षरं मन्त्रमिति केवलश्री-बीजादिकं मन्त्रं यत्र भवति प्रधानपूर्वापरगेति चण्डी पूर्वा विकला स्वयं परगा यत्र दृश्यते च तत्रैव नेत्रं बिजानीयात् इति मुखञ्च क्षतजोक्षितं रेफ इत्यर्थः ।

रेफहीने मनौ तु तन्मूलवर्णं मुखमित्याह तत्रैव : रक्तवर्जमनौ मूलवर्णमास्यं प्रकीर्तितम् । विद्युन्नेत्रं विनिर्दिष्टं चण्डीविकलावर्ज्जिते । अन्यच्च : गर्जिनीधूम्रभैरव्यावभावे च दृशौ स्मृतौ । गर्जिनी तृतीय-स्वरः धूमभैरवी चतुर्थस्वरः । एतावपि विन्दुविसर्गयोरभावे दृशावित्यर्थः । यत्र यक्षेश्वरो मन्त्रे तत्रैवास्यं प्रधानतः । चण्डिकाया अभावेऽत्र विद्युन्नेत्रहृदासवः ।

तत्रैवाह : सुग्रीवः स्याद् द्वयं श्रोत्रं हृं शून्यं विकला दृशः । विकलाया अभावे च स्यातां गौरी च पार्वती । यक्षेश्वरो हकारः, चण्डिका विसर्गः, विद्युद् अकारः, सुग्रीवा रेफः शून्यं हकारः विकला द्विबिन्दुः, गौरी

तृतीयस्वरः, पार्वती चतुर्थस्वरः। सर्वाभावे तु अकार एव तत्तद्रूपत्वेन ज्ञेय इत्यर्थः।

तथा च : विद्युदेवाह हृन्नेत्रं हृद्वक्त्रप्राणवर्जिते। एतेन हृन्नेत्रप्राणाः विद्युदेवेति प्राणोऽपि स्वरशक्तय इति वचनात्। इति श्रोत्रादिज्ञानम् ॥ ७ ॥

एतज्ज्ञानस्य नित्यत्वमाह : तत्रैव, यज्ज्ञानेन विना नालं जपहोमप्रयोगनिदानमिति।

तथा : श्रवणास्यहृदयनेत्रज्ञानान्मोक्षो मनोः सद्यः। सिद्धिः सर्वविधा स्यात् सा शिव एव स साधकः। श्रोत्रादीनां ज्ञानाभवे मन्त्रस्य ग्रहणमात्रात्। दारिद्र्यश्च विपत्तिर्नरकप्राप्तिर्यशोभ्रंशः। दीनोऽतिदुःखी पराजितः शत्रुपीडितः शोकी। कुर्यादेव हि तच्चित्तो मन्त्रो श्रोत्रदिविज्ञानम् ॥ ८ ॥ इत्यादि ज्ञेयम्।

अथ स्वरशक्तयः :

तत्रैव : अकारे भीषणा कीर्तिविद्युज्जिह्वेति कीर्तिता। अ। आकारे तामसी कालरात्र्युग्रा कालभैरवी। आ। इकारे गर्जिनी चण्डा ज्ञेया रुद्रभयङ्करी। इ। ईकारे शूलिनी ख्याता चण्डोग्रा धूम्रभैरवी। ई। उकारे कालवक्त्राख्या प्रचण्डा चण्डवल्लभा। उ। विदार्युकारगा ज्ञेया तालजङ्घा कपालिनी।ऊ। ऋकारे स्यान्महारौद्री ज्वालिनी योगिनीत्यपि। ऋ। ॠकारे कालिकादेवी पितृकाली भयङ्करी ॥ ॠ। संहारिणी ऌकारे स्यान्मेघनादोग्रहासिनी। ऌ। रुद्रचण्डा कालजिह्वा ॡकारे च करालिनी। ॡ। ऊर्द्धकेशी च चामुण्डा नादिन्येकारगा स्मृता। ए। ऐकारे कोटराक्षी च मानिन्युत्तमभैरवी। ऐ। ज्वालास्योकारगा ज्ञेया भीमाक्षी मुण्डमालिनी। ओ। औकारे डाकिनी सिंहनादिनी चण्डभैरवी ॥ औ। अक्रूराख्या विकारी च अंकारे रुद्रडाकिनी। अं। शेषे कपालिनी याम्या चण्डिका कुण्डलद्वयम्। विसर्ग आदनुस्वारः कलाश्च स्वरशक्तयः। अः। इत्येतासां या या यस्मिन्मन्त्रे योजितास्तास्ता एव तस्य हृदयत्वेन भाव्या इति रहस्यार्थः। एवं क्रमेण मन्त्रस्य श्रोत्रादिं विज्ञाय पुरस्क्रियां कुर्यात्।

तथा च : मन्त्रं नीत्वा गुरोः पार्श्वे गुरुभक्तिपरायणः। मन्त्रश्रोत्रास्यहृन्नेत्रप्राणान् विज्ञाय यत्नतः मन्त्रस्य कीलकं ज्ञात्वा कुर्यान्मन्त्रपुरस्क्रियाम्। पुरश्चरणसम्पन्नो वीरसिद्धिं समाचरेत् ॥ ९ ॥ इति मन्त्रस्य श्रोत्रादिपरिज्ञानम्।

अथ मन्त्राङ्गसङ्केत: :

ज्ञानतन्त्रे : कैलासशिखरे रम्ये गन्धर्वगणसेविते । स्थाणोर्वक्ष:स्थिता देवं पृच्छति स्म नगात्मजा ।

पार्वत्युवाच : गणेशनन्दिचन्द्रेश भूतनाथ महेश्वर । अनेकतन्त्र-मन्त्राणां प्रकाशोऽन्तरगाणि च । भेदश्च कीलकश्चैव शापोद्धारणमेव च । त्वत्प्रसादान्मया नाथ ज्ञातं तत्त्वं न संशयः । नानातन्त्रेषु देवेश विद्या वर्णमयी स्मृता । इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्त्राङ्गं नामनिर्णयम् । मन्त्रसङ्केतकं नाम बहुधा मयि सूचितम् । अस्मिंस्तु निर्जने देशे यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति । तद्वदस्व महादेव नात्र कार्या विचारणा । नो चेत् सत्यं वदाम्यद्य पुरस्कृत्य तवाग्रतः । प्राणत्यागं करिष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ।

ईश्वर उवाच : साधु पृष्टं त्वया भद्रे यद्यन्मे मनसि स्थितम् । देवि योषिच्चपलत्वात्पुरा नोक्तं त्वयि प्रिये । इदानीं स्थिरतां ज्ञात्वा कथयामि तवानघे । न प्रकाश्यं महादेवि कदाचिदपि पार्वती । प्रकाशिते महातत्त्वे नश्यन्ति सिद्धयस्तव । पुनरुक्तं महादेवि न वक्तव्यं सुनिश्चितम् । विना जपेन होमेन पूजया वा दयान्विते । येन विज्ञानमात्रेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते । मन्त्रसङ्केतमज्ञात्वा यो जपेन्मन्त्रराजकम् । शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्न जायते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञातव्याङ्गविभावना । तत्रातिगौरवात्साध्वि जगतां हितकाम्यया । वक्ष्यामि शृणु देवेशि सारात् सारतरं महत् । एकाक्षरे महामन्त्रे सम्पूर्णं देहरूपकम् । विभावयेन्महेशानि नान्यच्च परिचिन्तयेत् । प्रथमं बाहूमूलान्तं कट्यन्तं द्वितीयं भवेत् । तृतीयं पादमूलान्तं क्रमेण परिचिन्तयेत् । चतुरर्णकमन्त्रेषु गण्डान्तं प्रथमं भवेत् । बाह्वन्तं द्वितीयश्चैव नाभ्यन्तं तृतीयं भवेत् । चतुर्थञ्च ततो देवि पदान्तं परिचिन्तयेत् ॥ १ ॥ पञ्चाक्षरे तु मन्त्रे तु पञ्चधा परिकल्पयेत् । ग्रीवान्तं प्रथमं देवि बाह्वन्तं द्वितीयं भवेत् । तृतीयं कुक्षिपर्यन्तम् ऊर्वन्तं चतुर्थं भवेत् । पादान्तं पञ्चमं देवि भवत्येव न संशयः । षडक्षरे तु मन्त्रे तु मुखान्तं प्रथमं भवेत् । द्वितीयं गलपर्यन्तं बाह्वन्तं तृतीयं भवेत् । चतुर्थं हृदयान्तञ्च ऊर्वन्तं पञ्चमं भवेत् । पदञ्च षष्ठवर्णञ्च क्रमेण परिचिन्तयेत् । सप्ताक्षरे तु मन्त्रे तु मुखान्तं प्रथमं भवेत् । द्वितीयं गलपर्यन्तं बाह्वन्तञ्च तृतीयकम् । चतुर्थं पृष्ठपर्यन्तं कुक्ष्यन्तं पञ्चमं भवेत् । षडर्णमूरुपर्यन्तं पादान्तं सप्तमं भवेत् । अष्टाक्षरे महामन्त्रे मुखान्तं प्रथमं भवेत् । चिबुकान्तं द्वितीयञ्च गलान्तं तृतीयं भवेत् । चतुर्थं बाहुपर्यन्तं पृष्ठान्तं पञ्चमं भवेत

षडर्णमुदरान्तश्च जायन्तं सप्तमं भवेत् । पादान्तमष्टमश्चैव भावाङ्गेऽपि न संशयः । नवाक्षरे तु मन्त्रे तु नासान्तं प्रथमं भवेत् । मुखान्तश्च द्वितीयं स्याद् ग्रीवान्तं तृतीयं भवेत् । चतुर्थं बाहुपर्यन्तं कुक्ष्यन्तं पञ्चमं भवेत् । षष्ठश्च मस्तकं ज्ञेयं स्तनान्तं सप्तमं भवेत् । ऊर्वन्तमष्टमश्चैव पादान्तं नवमं भवेत् । दशाक्षरे तु मन्त्रे तु शिरोऽन्तं प्रथमं भवेत् । चिबुकान्तं द्वितीयं स्यात् तृतीयं कर्णयुग्मकम् । चतुर्थश्च भवेद् ग्रीवा पञ्चमं बाहुयुग्मकम् । षष्ठं पृष्ठश्च जानीयात्सप्तमं स्तनमण्डलम् । उदरान्तमष्टमश्च ऊर्वन्तं नवमं भवेत् । पादान्तं नवमं ज्ञेयमिति मन्त्राङ्गभावना । एवं क्रमेण एकादशाक्षरादीनां मन्त्राणां वाह्याङ्गविभावनां कृत्वा मन्त्रजपादिकं कुर्यात् ॥ २ ॥

ग्रन्थगौरवभयादन्यन्योक्तम इति देवताया वाह्याङ्गसङ्केतः ।

परिशिष्टं सम्पूर्णं ॥

यन्त्र

चित्रावली

चित्र १ — कुलाकुल चक्रम् (पृ० ८)

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

चित्र २ — राशि चक्रम् (पृ० ६)

वृष उऊऋ मिथुन ॠऌॡ	मेष अआइई	मीन यरलवक्ष कुम्भ पफबभम
कर्क एऐ	RĀŚI-CAKRA	मकर तथदधन
सिंह ओऔ कन्या अंअःशषसह	तुला कखगघङ	धनु टठडढण वृश्चिक चछजझञ

चित्र ३ : नक्षत्रचक्रम् (पृ० १०)

NAKSATRA CAKRA

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
अ आ	इ	ई उ ऊ	ऋ ॠ लृ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
देव	नर	राक्षस	नर	देव	नर	देव	देव	राक्षस
मघा	**पू.फाल्गुनी**	**उ.फाल्गुनी**	**हस्त**	**चित्रा**	**स्वाती**	**विशाखा**	**अनुराधा**	**ज्येष्ठा**
घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट ठ	ड	ढ ण	त थ द	ध
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
मूल	**पूर्वाषाढ़ा**	**उत्तराषाढ़ा**	**श्रवणा**	**धनिष्ठा**	**शतभिषा**	**पू.भाद्रपद**	**उ.भाद्रपद**	**रेवती**
न प फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह	क्ष अं अः
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	राक्षस	नर	नर	देव

अ क थ ह १	उ ङ प २	आ ख द ३	ऊ च फ ४
ओ ड ब ५	लृ झ म ६	औ ढ ष ७	ॡ ञ य ८
ई घ न ९	ऋ ज भ १०	इ ग ध ११	ॠ छ व १२
अः त स १३	ऐ ठ ल १४	अं ण श १५	ए ट र १६

चित्र ४ : अकथह चक्रम्
(पृ० ११)

चित्र ५ : अकडम चक्रम् (पृ० १३)

कुम्भ अं ट ब / मीन अः ठ भ	मेष अ क ड म	वृष आ ख ढ य / मिथुन इ ग ण र
कर्क औ ञ फ क्ष	अ क ड म चक्रम्	मकर ई घ त ल
धन ओ झ प ह / वृश्चिक ऐ ज न स	तुला ए छ ध ष	कन्या ऊ च द श / सिंह उ ङ थ व

चित्र ६ : ऋणि-धनि चक्रम् (पृ० १३)

९	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	लृ ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

चित्र ७ : कूर्मचक्रम् (पृ० ४०)
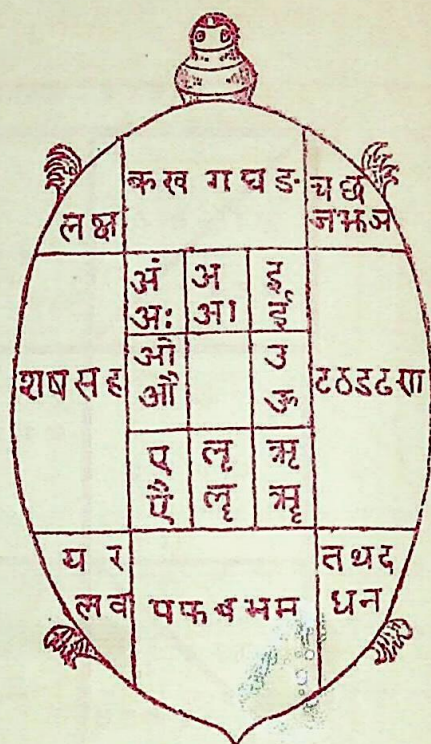
चित्र ८ : मातृका चक्रम् (पृ० ४१)
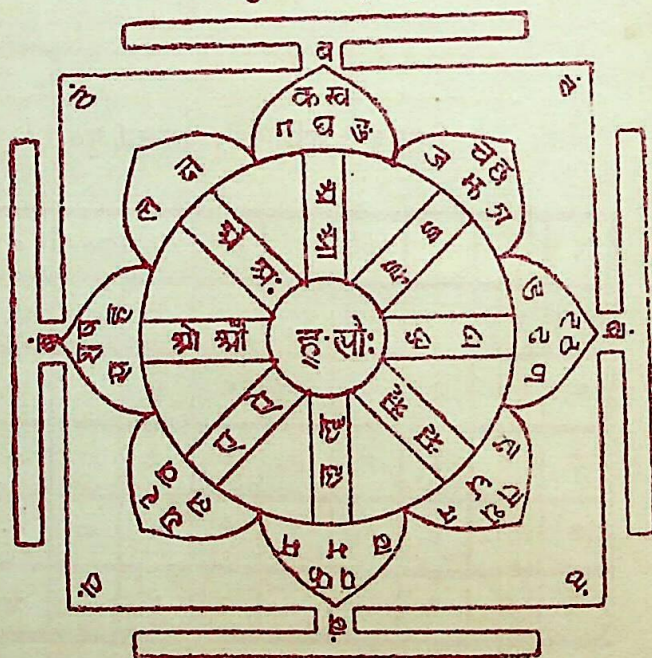
चित्र ९ : प्रकारान्तर मातृका चक्रम् (पृ० ४१)
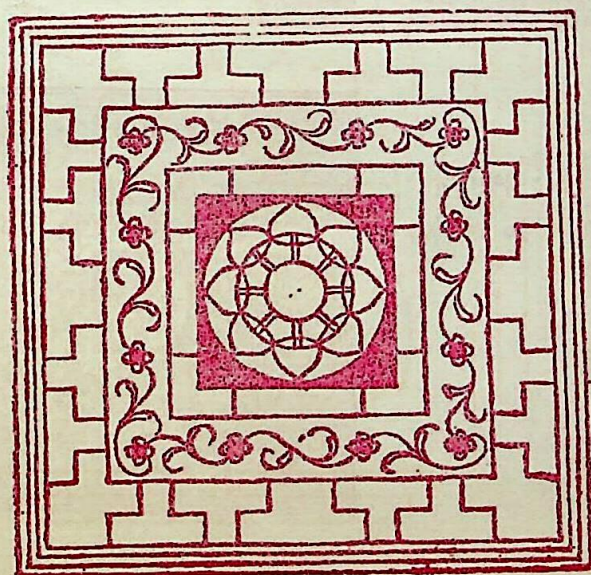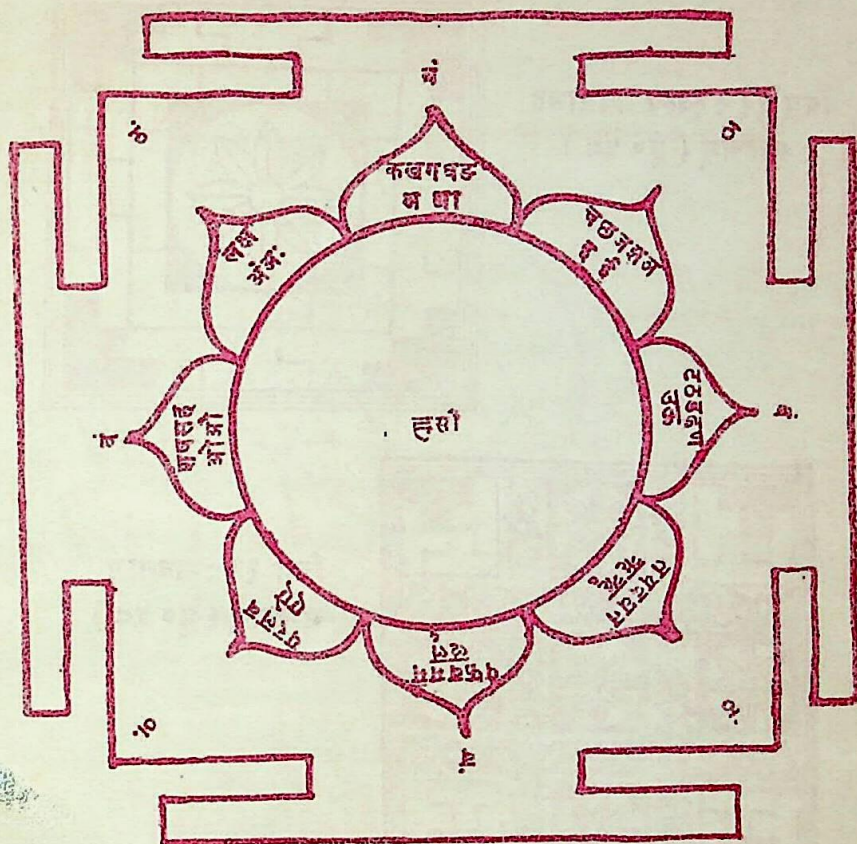
चित्र १० : सर्वतोभद्र मण्डलम् (पृ० ५७)

चित्र ११ : स्वल्प सर्वतोभद्र
मण्डलम् (पृ० ५८)
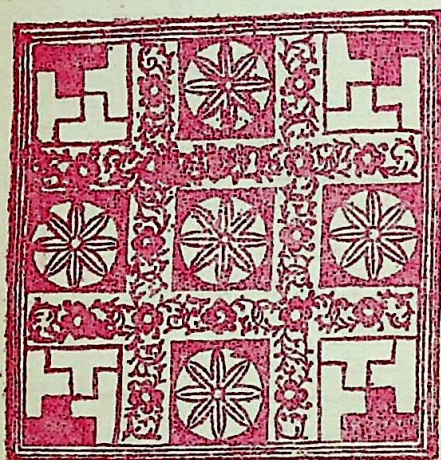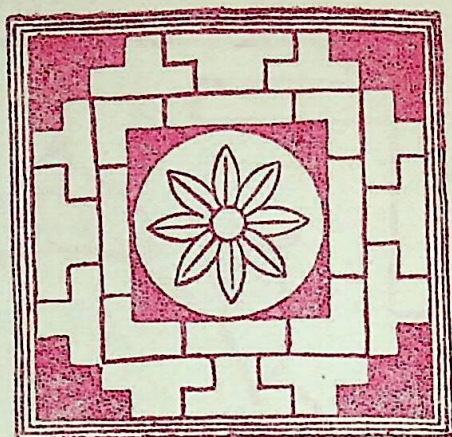
चित्र १२ : नवनाभ
मण्डलम् (पृ० ५८)

चित्र १३ : पञ्चाब्ज
मण्डलम् (पृ० ५८)
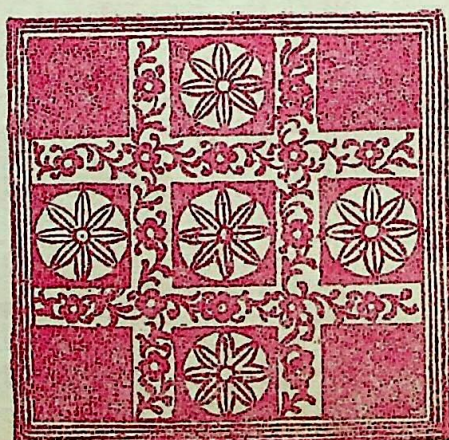
चित्र १४ : सामान्यपूजा यन्त्रम् (पृ० ७८)
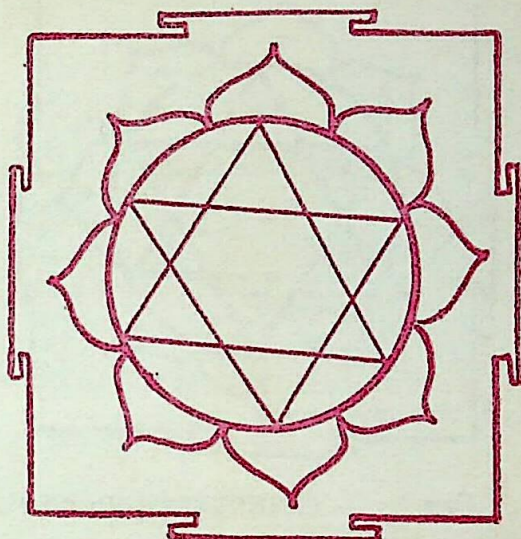
चित्र : १५ भुवनेश्वरी यन्त्रम् (पृ० ८०)
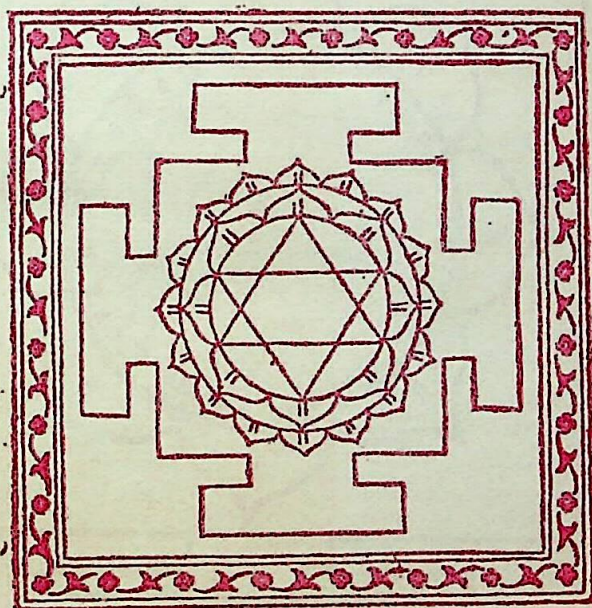
चित्र १६ — त्रिपुटा यन्त्रम् (पृ० ८५)
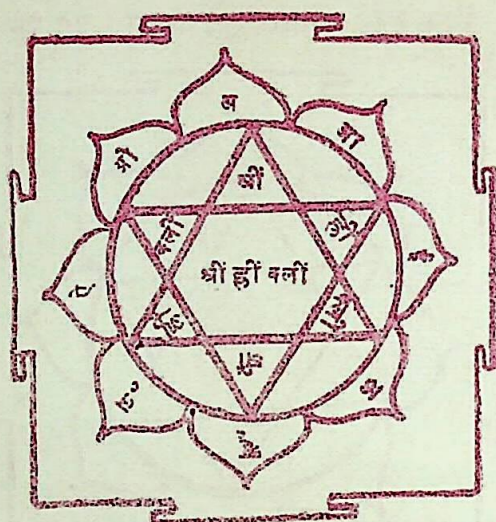
चित्र १७ — त्वरिता यन्त्रम् (पृ० ८७)
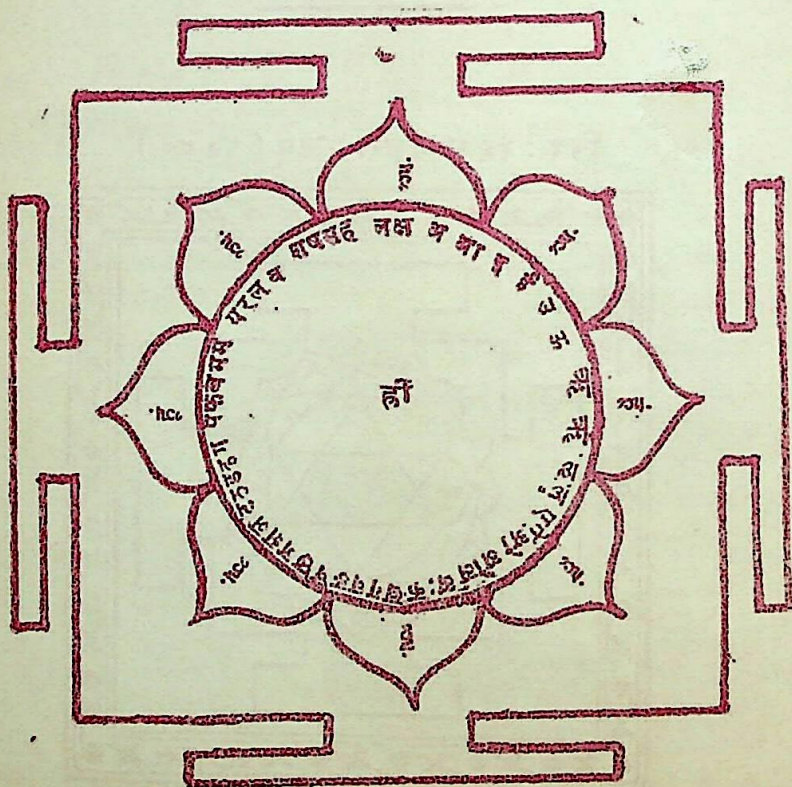
चित्र १८ — नित्या यन्त्रम् (पृ० ६०)
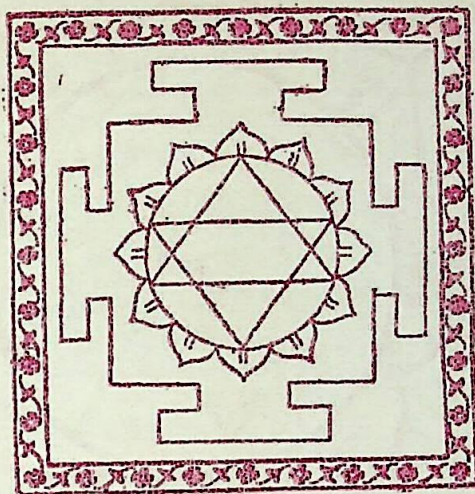
चित्र १९ — वज्र प्रस्तारिणी यन्त्रम (पृ० ६०)
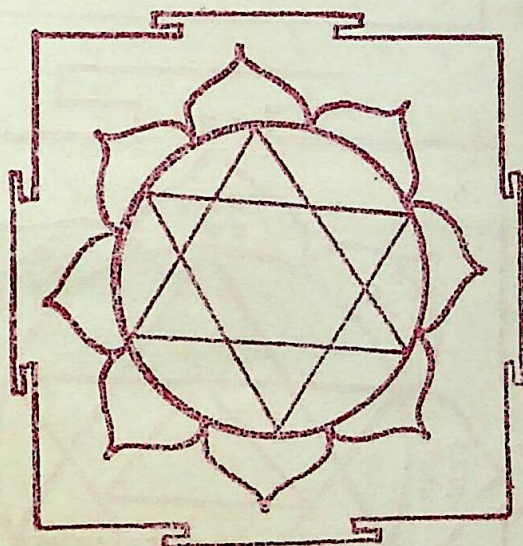
चित्र २० : वागीश्वरी यन्त्रम (पृ० ९७)
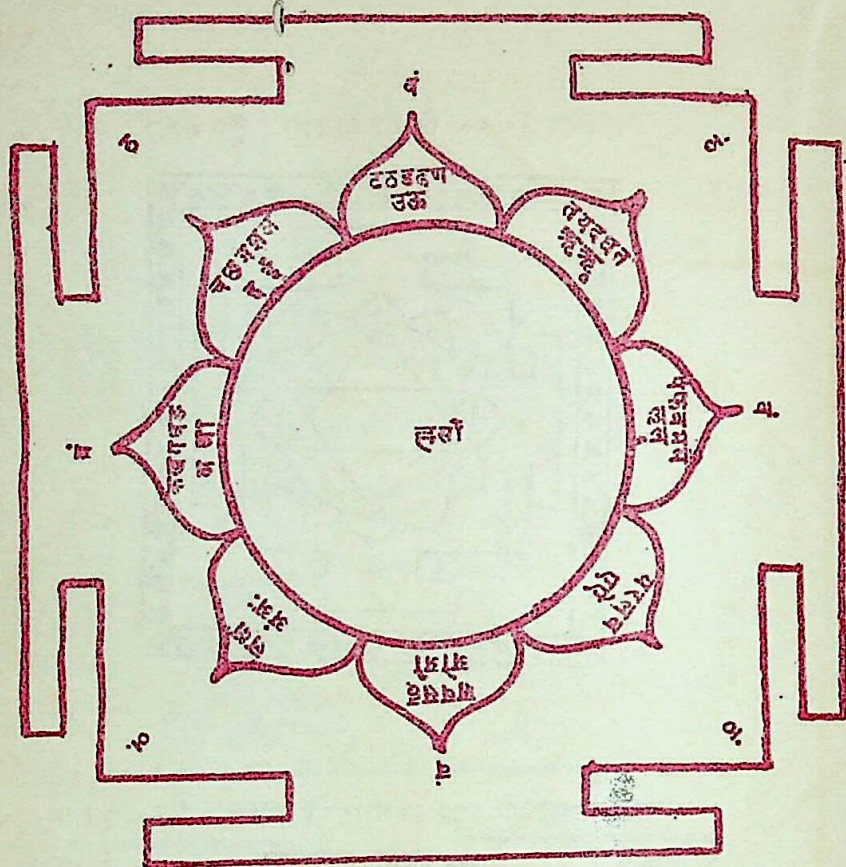
चित्र २१ : गणेश यन्त्रम् (पृ० १०४)
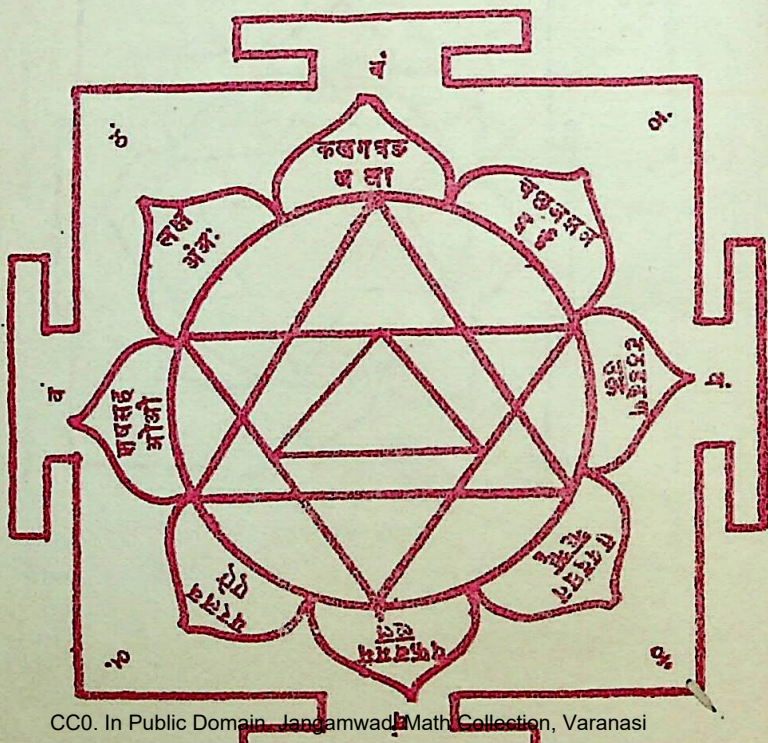
चित्र २२ : गणेशस्य धारण यन्त्रम् (पृ० १०८)
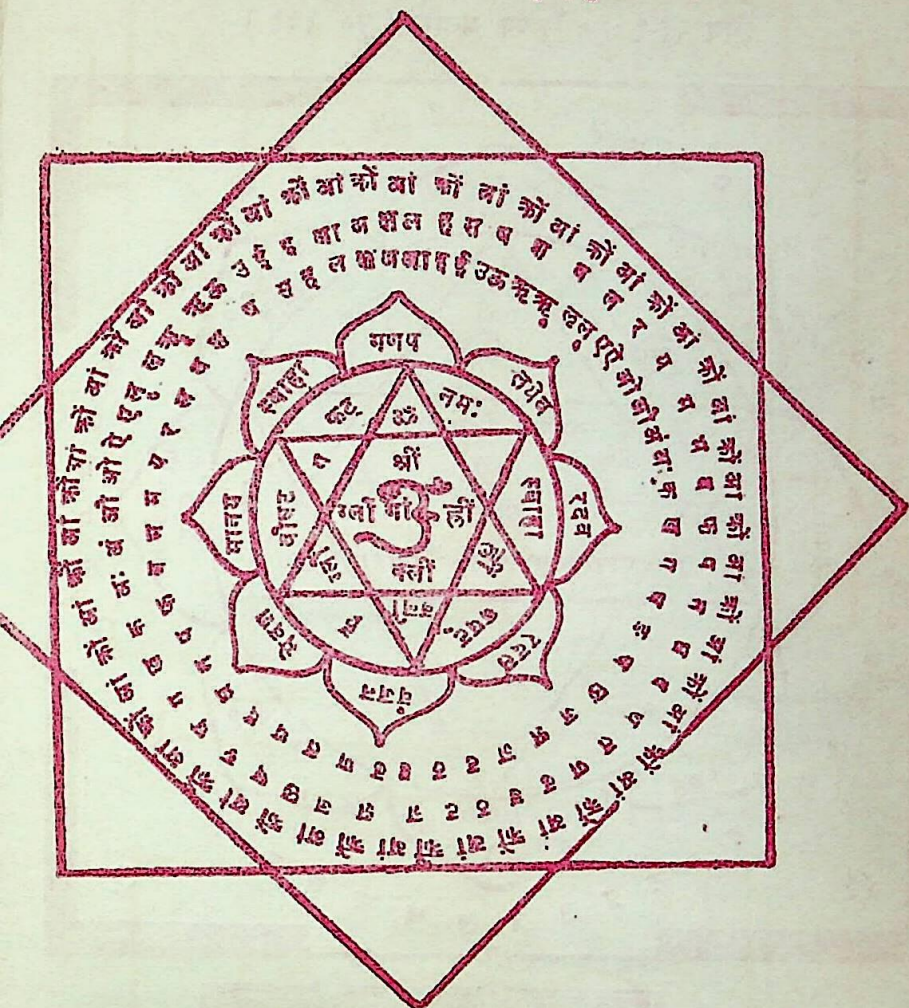
चित्र २३-१ : श्रीकृष्ण यन्त्रम् (पृ० १३९)

कृष्णाय गोविन्दाय

क्लीं

साध्य

गोपीजनवल्लभाय स्वाहा
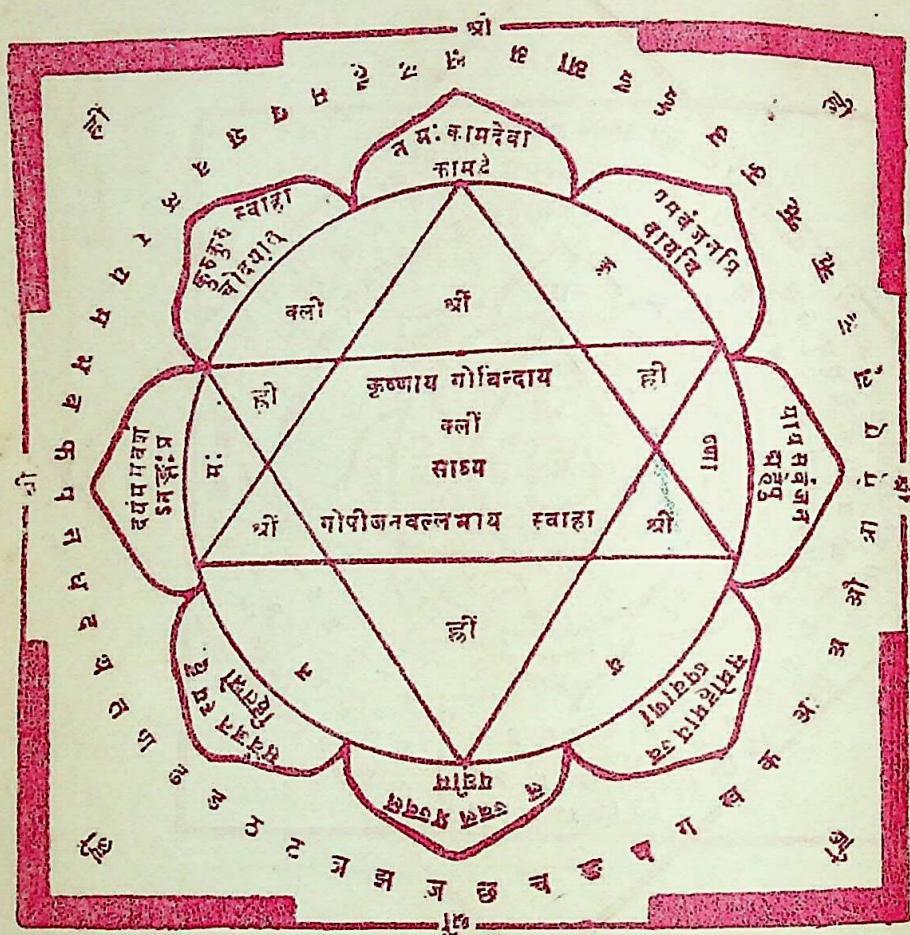
चित्र २३-२ : श्रीकृष्ण यन्त्रम् (पृ० १३९)
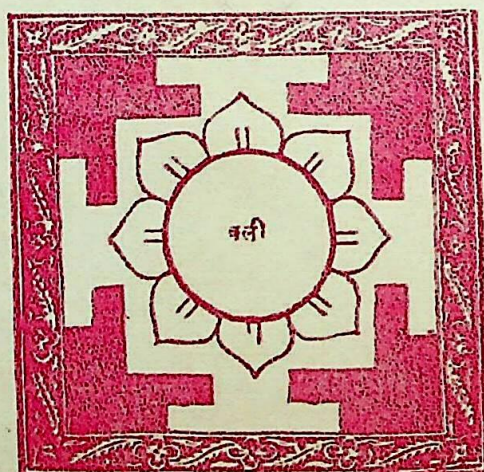
चित्र २३-३ : श्रीकृष्ण यन्त्रम् (पृ० १३९)
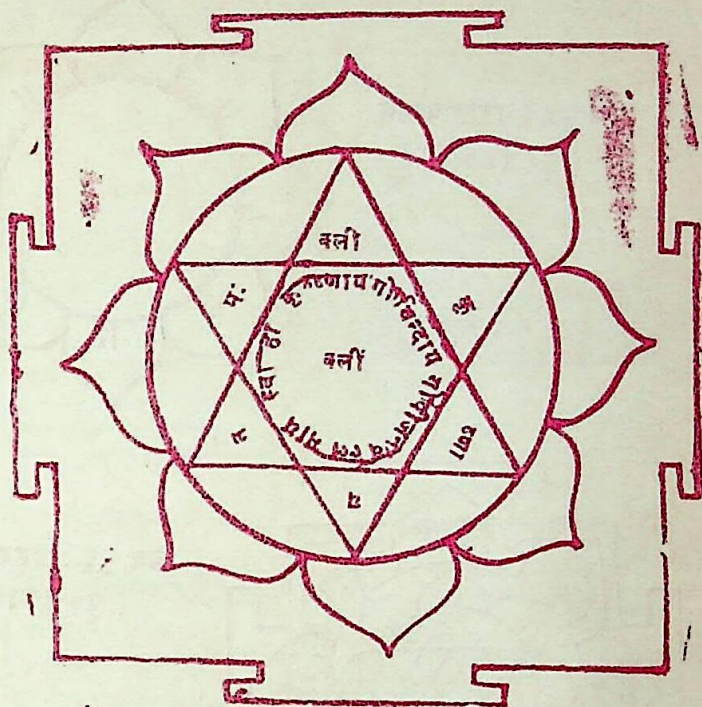
चित्र २४ : गोपाल यन्त्रम् (पृ० १४७)
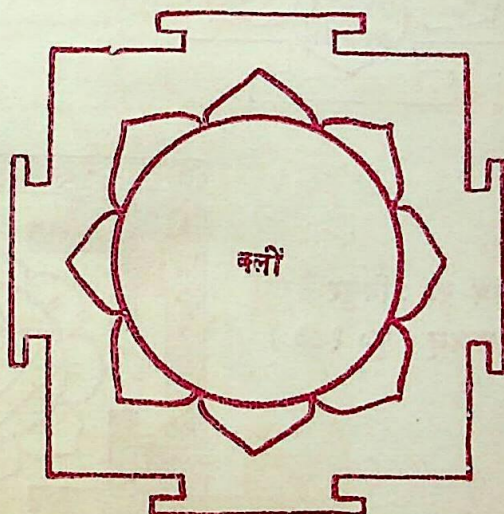
चित्र २५ : वराह यन्त्रम्
(पृ० १५७)
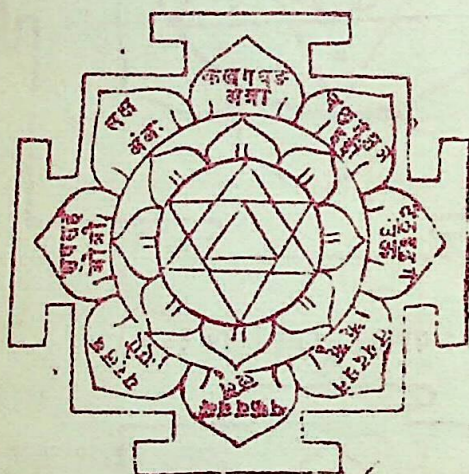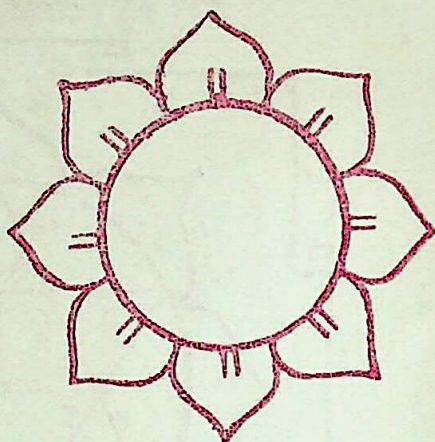
चित्र २६ : बटुक यन्त्रम्
(पृ० १७३)

चित्र २७ : त्रिपुर भैरवी
यन्त्रम् (पृ० १७३)
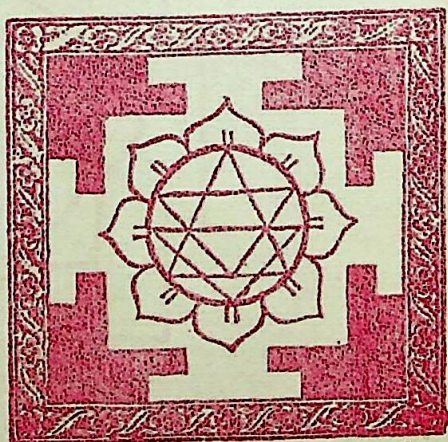
चित्र २८ : चैतन्य भैरवी यन्त्रम् (पृ० १८२)
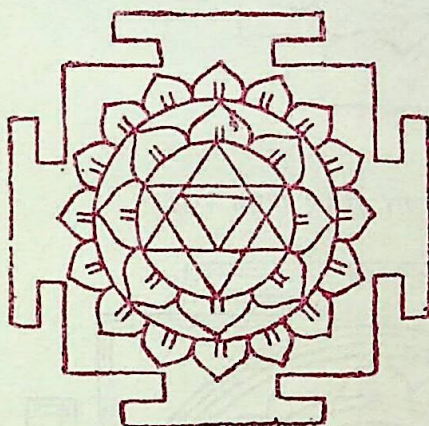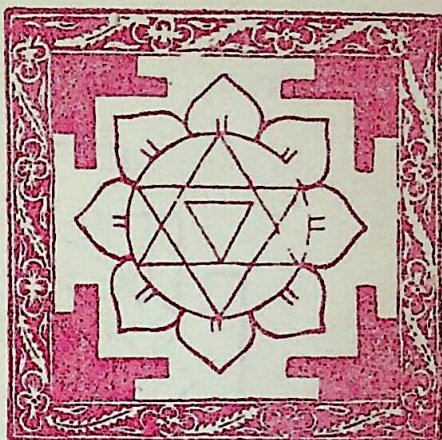
चित्र २९ : षटकूटा भैरवी यन्त्रम् (पृ० १८०)

चित्र ३० : रुद्रभैरवी यन्त्रम् (पृ० १८४)
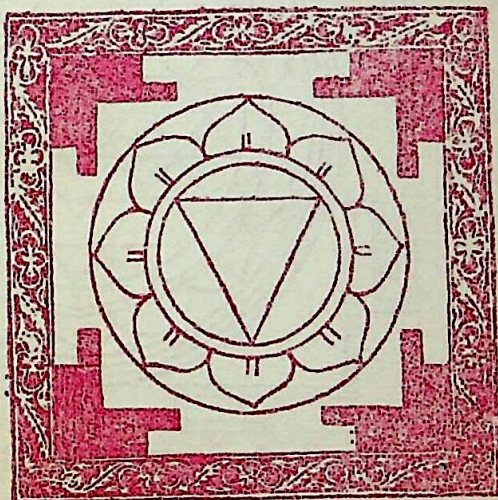
चित्र ३१ — अन्नपूर्णा भैरवी यन्त्रम् (पृ० १९०)
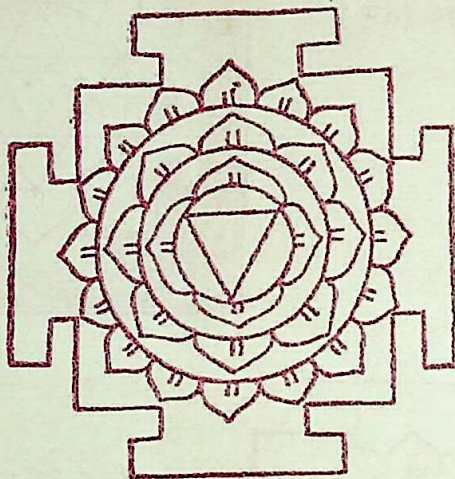
चित्र ३२ — श्रीविद्या यन्त्रम् (पृ० २०४)
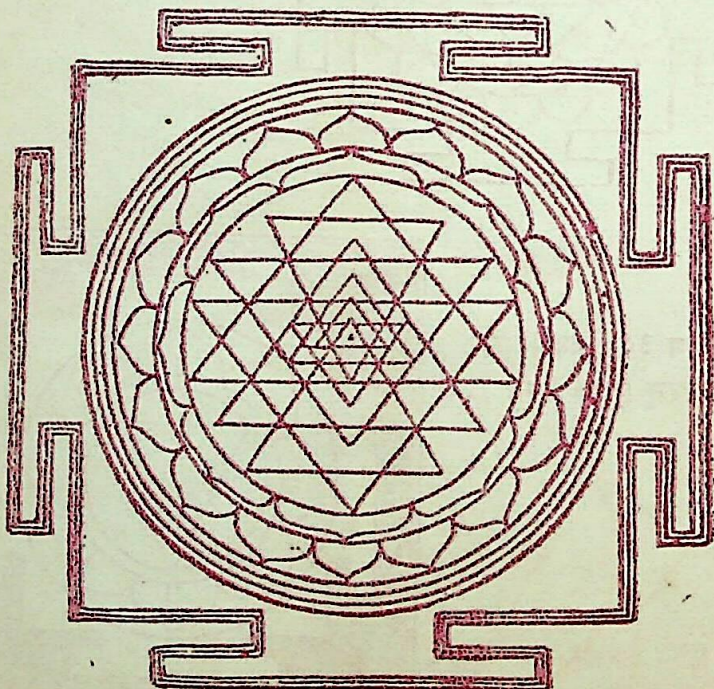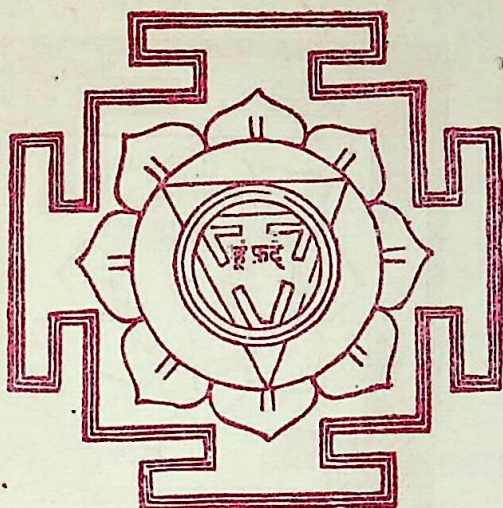
चित्र ३३ : प्रचण्ड चण्डिका यन्त्रम् (पृ० २४४)

चित्र ३४-क : श्यामा यन्त्रम् (पृ० २५२)
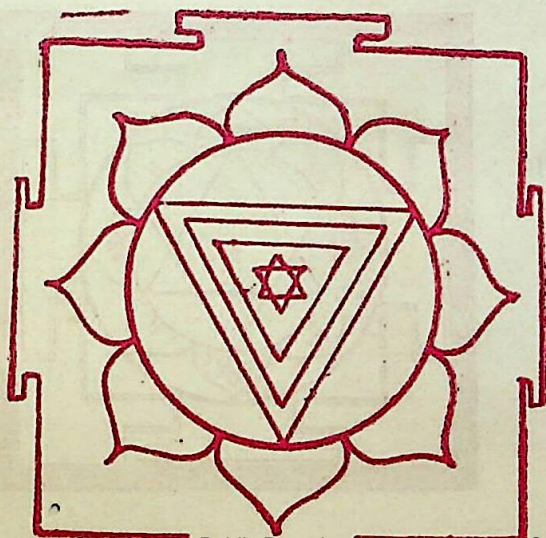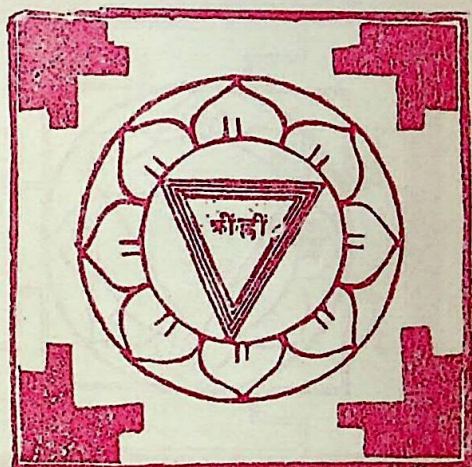
चित्र ३४-ख : श्यामा यन्त्रम् (पृ० २५२)

चित्र ३५ : गुह्यकाली-श्मशानकाली-भद्रकाली-महाकाली (पृ० २६१)
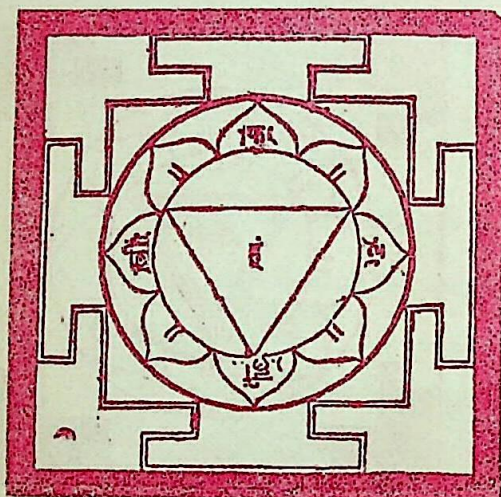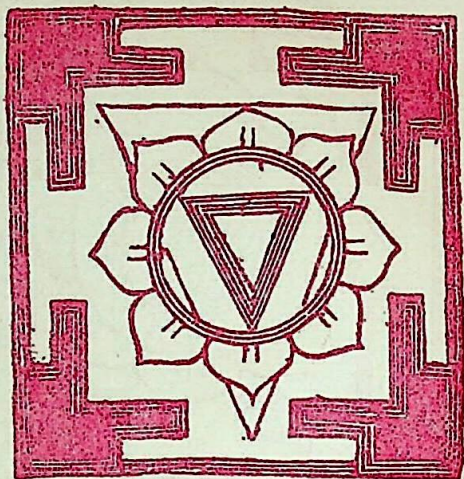
चित्र ३६ : तारा यन्त्रम् (पृ० २६७)

चित्र ३७ : तारा षट्कोण यन्त्रम् (पृ० २६७)
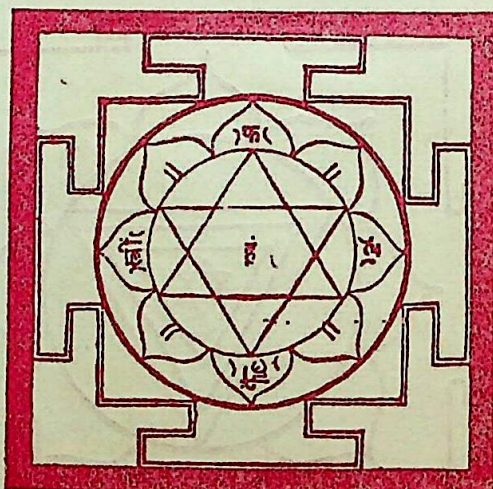
चित्र ३८ : चण्डोग्र शूलपाणि यन्त्रम् (पृ० २६१)
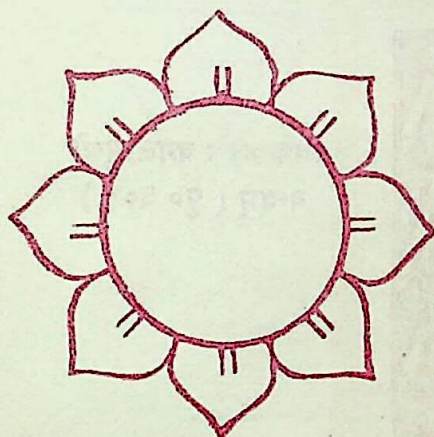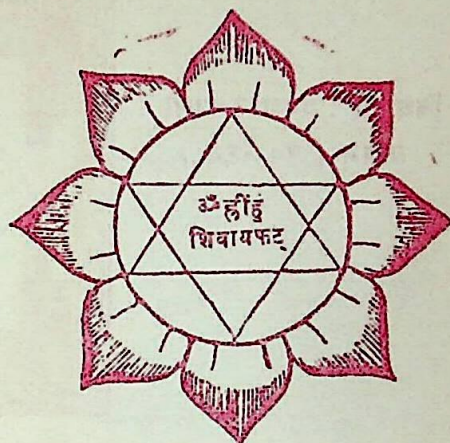
चित्र ३९ : उच्छिष्ट गणेश यन्त्रम् (पृ० २६६)

चित्र ४० : धनदा यन्त्रम् (पृ० २६८)

चित्र ४१ : श्मशान काली यन्त्रम् (पृ० २९९)
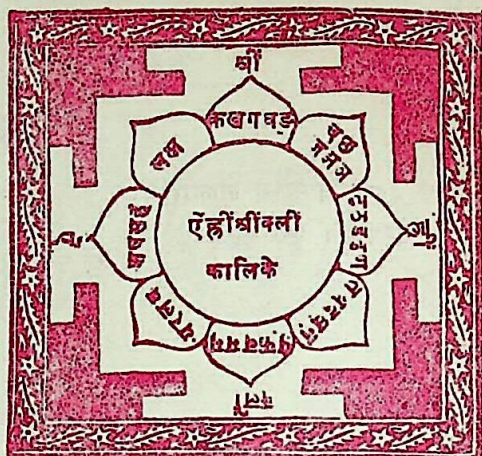
चित्र ४२ : बगलामुखी यन्त्रम् (पृ० ३०१)

चित्र ४३ : बगलामुखी धारण यन्त्रम् (पृ० ३०२)
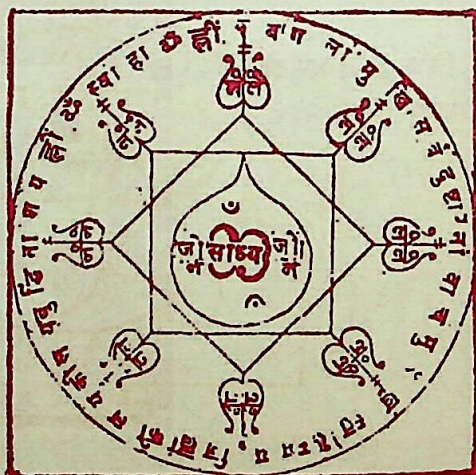
चित्र ४४ : मञ्जुघोष यन्त्रम् (पृ० ३०४)
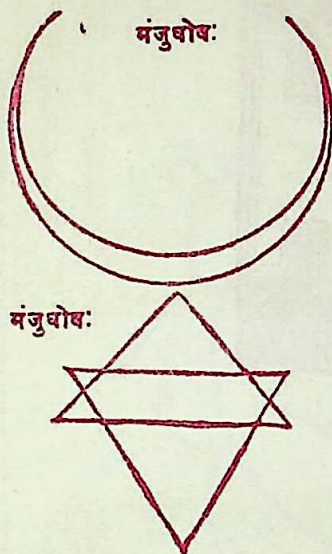
चित्र ४५ : मञ्जुघोष यन्त्रम् (पृ० ३०६
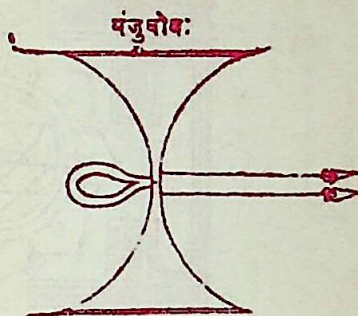
चित्र ४६ : तारिणी यन्त्रम् (पृ० ३१०)
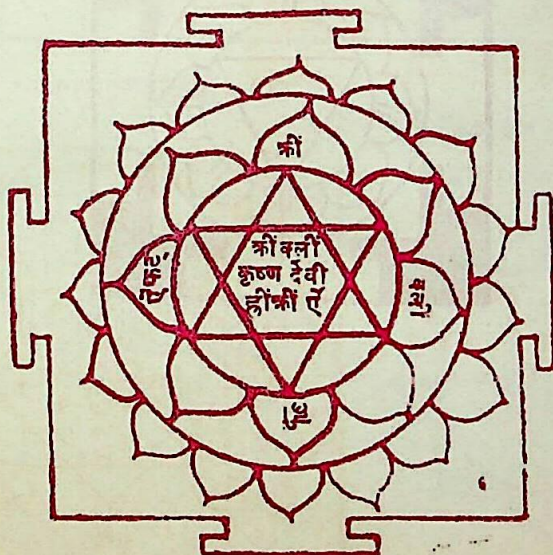
चित्र ४७ : दुर्गा यन्त्रम् (पृ० ३१६)
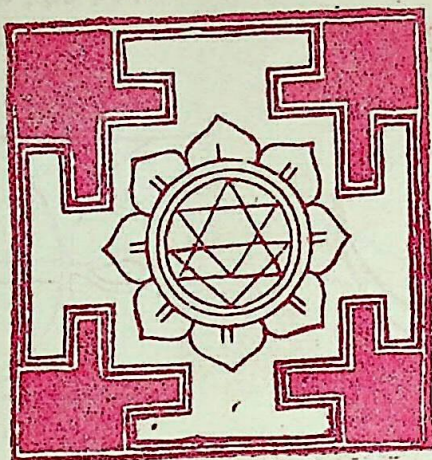
चित्र ४८ : विशालाक्षी यन्त्रम् (पृ० ३१७)
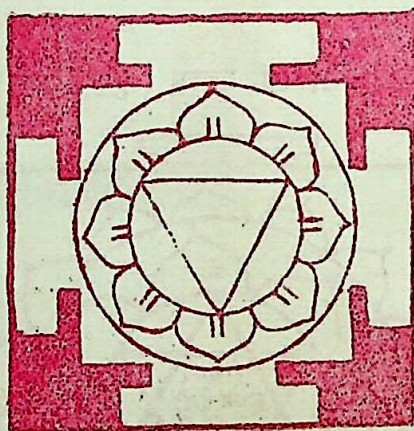
चित्र ४९ : गरुड यन्त्रम् (पृ० ३२०)
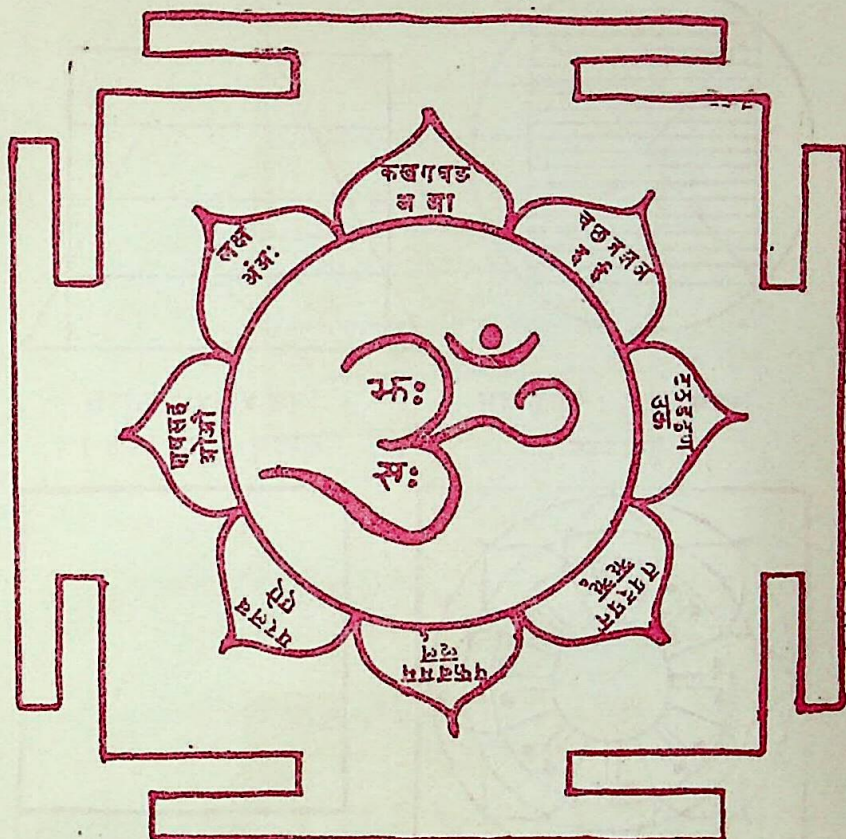
चित्र ५१-१ : अष्टास्रकुण्डम्(पृ० ३४८)
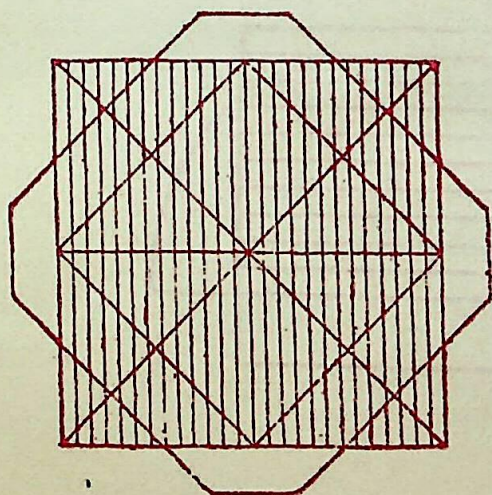
चित्र ५० हनुमत् यन्त्रम् (पृ० ३२२)

हं हनुमते रुद्रात्मकाय फट्

चित्र ५१-१ : वर्तुल कुण्डम् (पृ० ३४८)
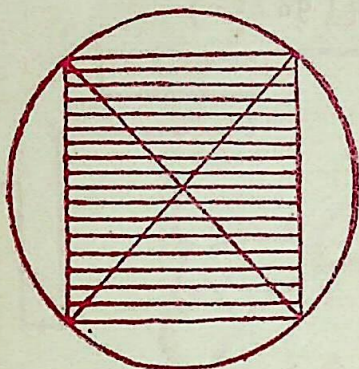
चित्र ५१-२ : त्र्यस्र कुण्डम् (पृ० ३८४)
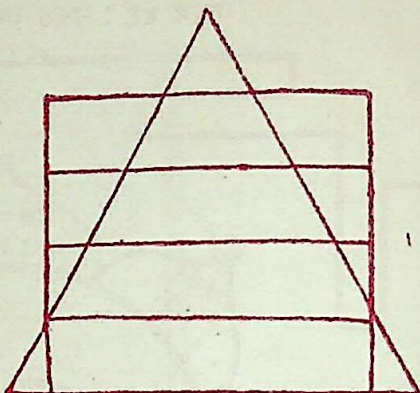
चित्र ५१-३ : पद्मकुण्डम् (पृ० ३४८)
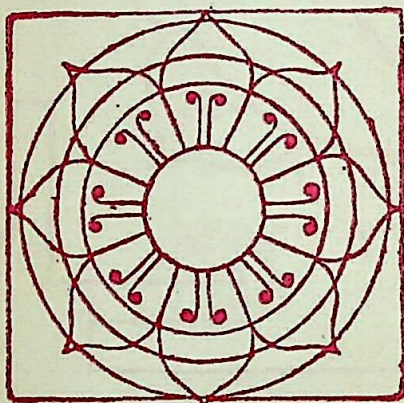
चित्र ५१-४ : चतुरस्र कुण्डम् (पृ० ३८४)
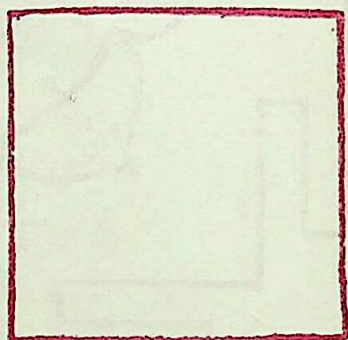
चित्र ५१-५ : अर्द्धचन्द्र कुण्डम् (पृ० ३८४)
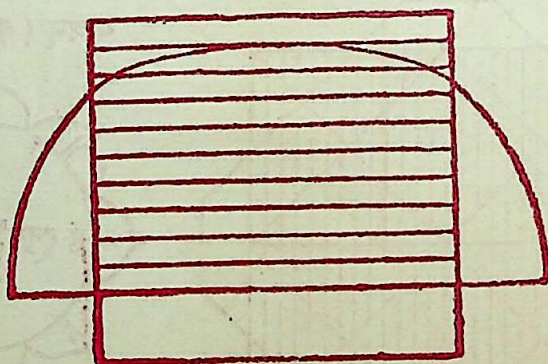
चित्र ५१-७ : षडस्र कुण्डम् (पृ० ३४८)
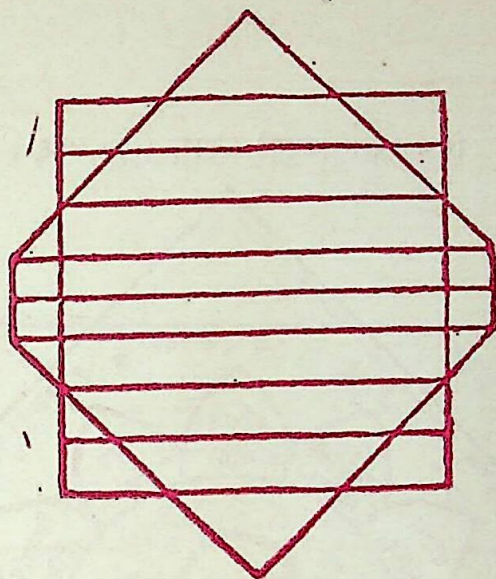
चित्र ५१-८ : योनि कुण्डम् (पृ० ३४८)
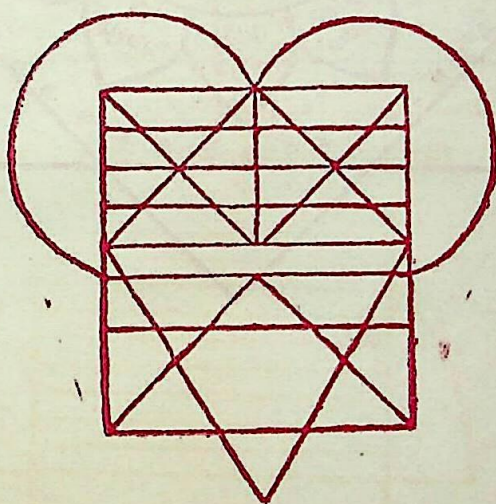
चित्र ५२ : नवदुर्गा यन्त्रम् (पृ० ४३९)
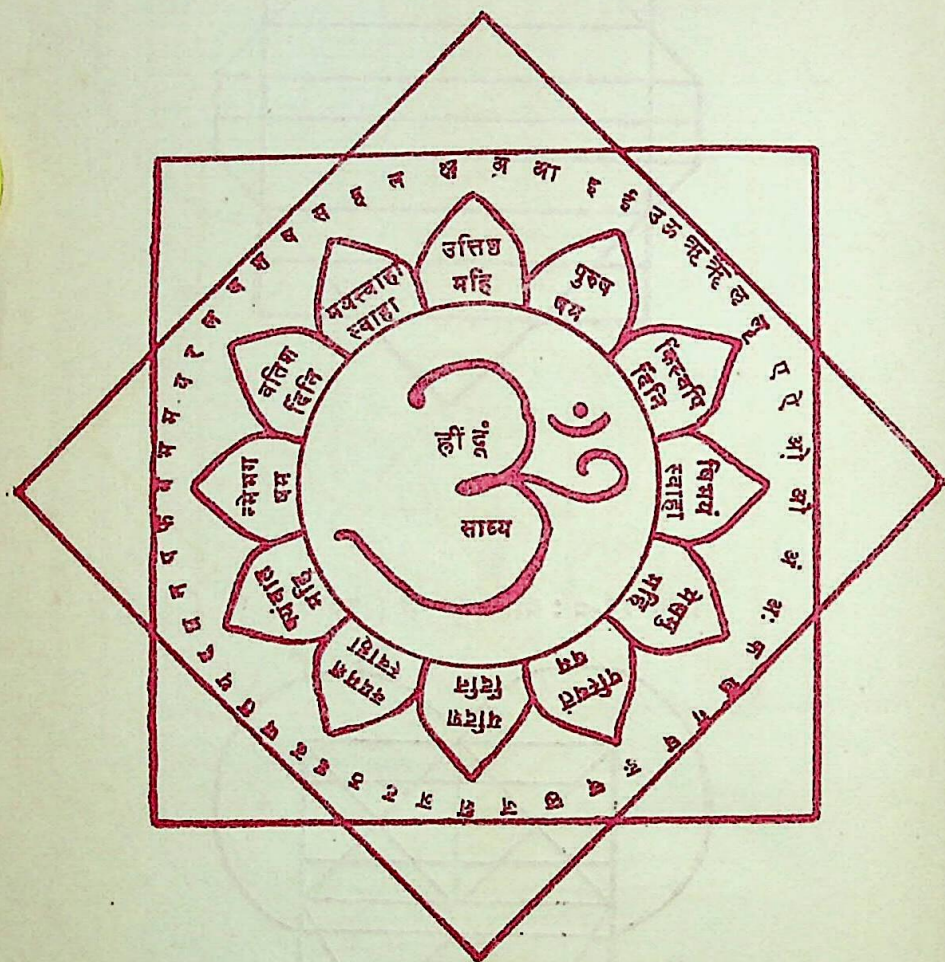
चित्र ५३ : त्रिपुर भैरवी यन्त्रम् (पृ० ४४०)
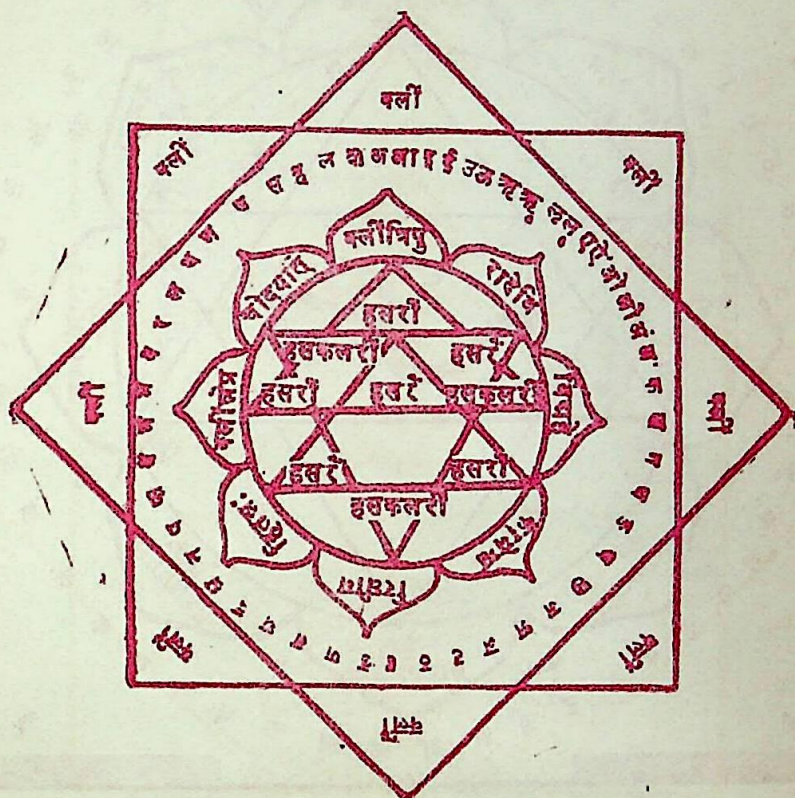
चित्र ५४ : श्रीरामस्य धारण यन्त्रम् (पृ० ४४१)
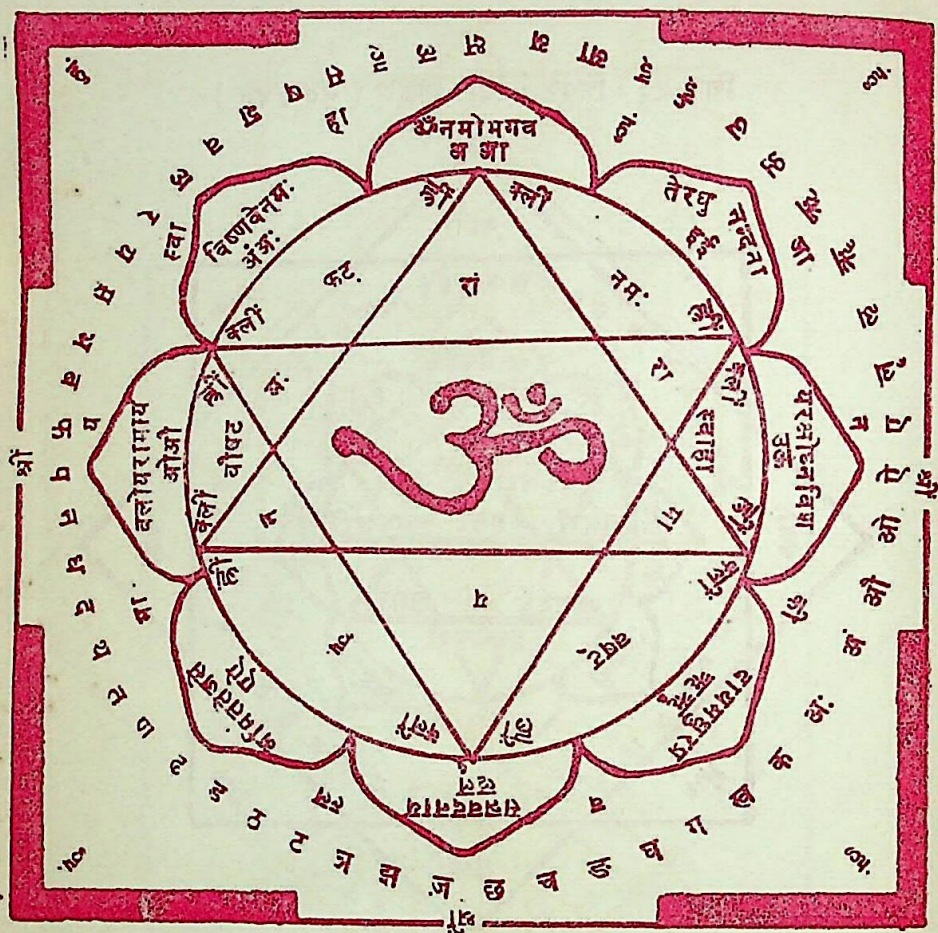
चित्र ५५ : नृसिंह धारण यन्त्रम् (पृ० ४४१)
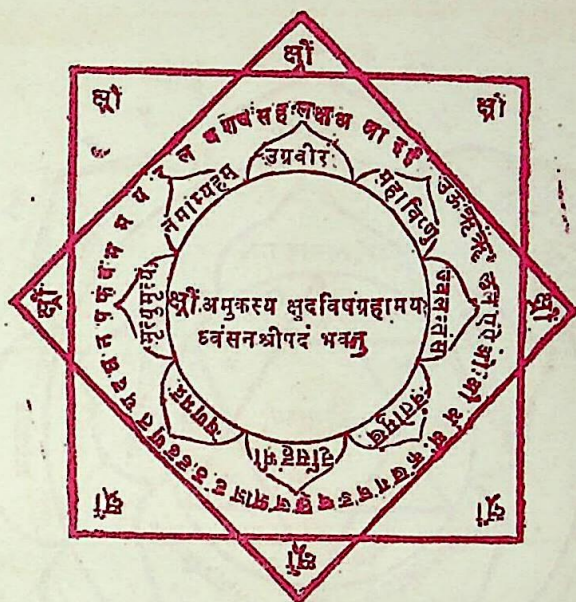
चित्र ५६ : श्रीकृष्ण यन्त्रम् (पृ० ४४२)
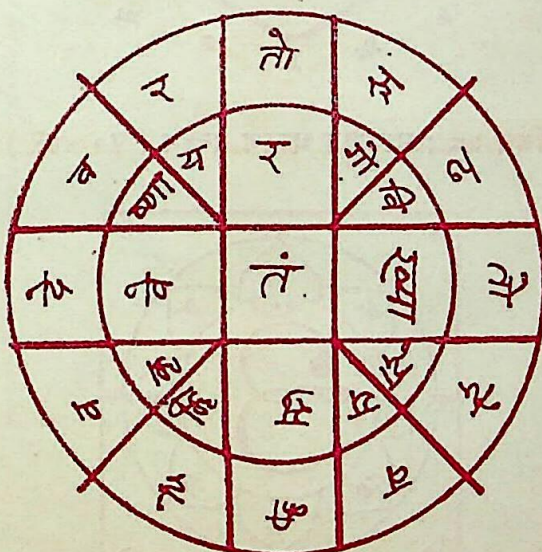
चित्र ५७ : शिवस्य धारण यन्त्रम् (पृ० ४४२)
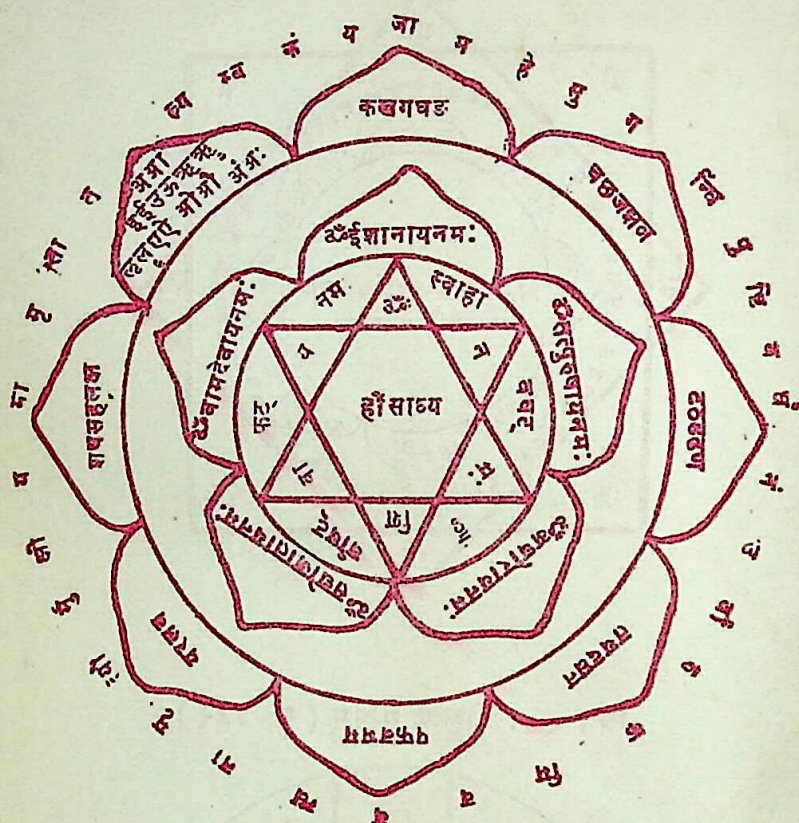
चित्र ५८ : मृत्युञ्जय धारण यन्त्रम् (पृ० ४४२)
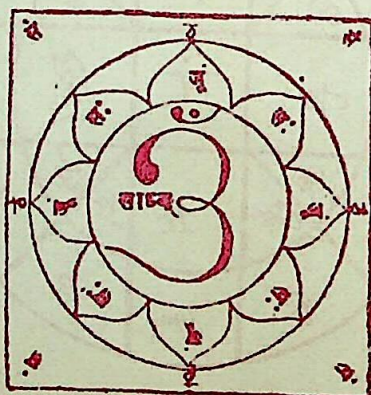
चित्र ५९ : काल्या धारण यन्त्रम् (पृ० ४४३)

चित्र ६० : ताराया धारण यन्त्रम् (पृ० ४४३)

श्रीगणेश ध्यान

श्रीहनुमानध्यान